

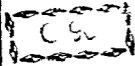
DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Ra) I

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER S No	DUE DATE	SIGNATURE

• श्री गणेशाय नमः •



1988-89

गुरुमण्डलग्रन्थमालायार्थतुर्दशपुष्पम्

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

21837

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनविरचितम्

(ब्रह्म प्रकृति-गणेशखण्डात्मकम्)

तस्य

प्रथमो भागः

“पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्”

(मत्स्यपुराणम्)

राधाकृष्ण मोर

५, क्लाइ रो, कलकत्ता

सन्वत् २०१२]

[सन् १९५५]

Government College Library
KOTAH.

Class No. 291.207

Book No. 4114^B Vol. No. 1

Accession No. 21031

॥ श्री गणेशाय नम ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालायाश्चतुर्दशपुत्रम्

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्



(ब्रह्म प्रकृति गणेशखण्डात्मकम्)

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनविरचितम्

श्रीनाथादि गुरुत्रय गणपति पीठत्रयस्मैरक्षम्,
सिद्धौघ षट्कत्रयम्पदयुगं दृतीकर्म मण्डलम् ।
धीरानुद्वयष्ट चतुष्कपष्टि नवकं धीरावलीपञ्चकम्,
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहित षण्दे गुरोर्मण्डलम् ॥



५, क्लाइव रो,
कलकत्ता

दोनों जिल्द का
मूल्य १२।।)

वैकनाथ
२०११

प्रथमं संस्करणम्
५०००

द्वैस्ताथ
१९५४



Gurumandal Series No. XIV.

THE
Brahma Vaivarta Puranam

(Brahm prakriti-Ganeshkhandatmakam)

1988-89

By

MAHARSHI KRISHNADWAIPAYAN VYAS.

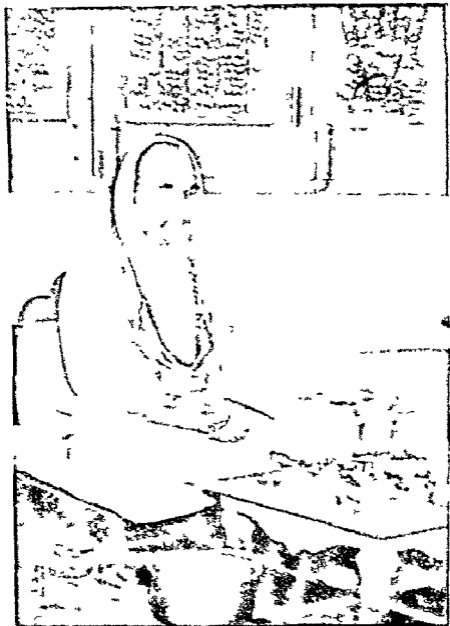
5, Clive Row,
Calcutta.

Vikram Era.
2011

First Edition.
5000

Christian Era.
1954

Printed by
Gopal Printing Works
198/1, Cornwallis St
Calcutta - 6



भगवद्रामानुजपाठाधिपति
वेण्णाचार्य श्रीदेवनायकाचार्यस्वामिपाद
राजमन्दिर, बनारस ।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री पुराणपुरोत्तमाय नमः ॥

समर्पणम्

श्रीमतां विविधज्ञानविज्ञानविचक्षणप्रभविष्णूनां अशेषशास्त्रपारायणैक-
दिव्यचक्षुषां तपसा त्यागेन ब्रह्मवर्चसा शमेन दमेन दयया च प्रकाशित-
दिव्यगुणौघानां अजस्रं कर्मभक्तिज्ञानत्रिवेणीधाराप्रवाहाय कृतभर्गीरथपरि-
श्रमाणां समस्तभारते स्वचिद्धत्ताप्रकाशेन चमत्कृतानैकचिद्धत्परिपत्रकपौत्कर्षवता
शान्तिस्वरूपाणां अधिभूमण्डलं भागवतधर्मप्रसाराय विजयवैजयन्तीसमुत्तोलन-
पराणां नानाविलक्षणयुक्तिवादैरपास्तनिर्विशेषप्रतिपक्षजन्मना विद्वत्कुलभूषणानां
सनातनधर्मधुरन्धराणां वैष्णवाग्रगण्यानां उत्तरप्रतिवादिभयङ्कराणां वाराणसीस्थ
जगद्गुरुभगवद्गुरामानुजाचार्यपीठाधिपतीनां श्रीमता १००८ पूज्यप्रवर भगवत्पाद
श्रीद्वेषनायकाचार्यस्वामिमहाभागानां करकमलेषु श्रीगुरुमण्डलग्रन्थमालाचतुर्दश-
पुष्पोपहारिभूतं श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणमिदं सादरं सविनयञ्च समर्प्यते—

विजयैकादशीदिनम्

विक्रम सं० २०१२ ।

श्रीमतां चरणसेवक

श्रद्धाभक्तिविनम्रः—

राधाकृष्ण मोरः

५, ह्याइव रो, कलकत्ता

॥ श्रीगणेशायनम ॥

प्रारम्भे हसित भुजभ्रमकृतेरन्दोलनैर्विस्मितम् ।
मान् बाहुलतोपीपडनभिया प्रोह्लामने भृभृतः ॥
दत्ता कृष्णकराब्जशायिनि नगे श्रेयामि पुण्णन्तु घो (नो) ।
गोपीभिर्भुजग्रह्णिङ्गण कणल्कारोत्तरास्तालिका ॥

आमुख

श्रीप्रभुकरुपा से पूज्य पिताजी की यह दृष्ट निष्ठा रही है कि अपने पुरुपार्थ से उन्होंने किसी न किसी श्रेष्ठ कर्म के आयोजन में कहीं रहते हुए भीजुत्कर उसकी पूर्ण सफलता तक लगे रहने का ही सदा प्रयत्न किया है। मनुष्य की स्वाभाविक अभिलाषा है कि जीऊँ जागूँ नानूँ, अधिकार समर्थ वनूँ आनन्द पाऊँ, और स्वतन्त्र रहूँ। इसकी विशेष व्याख्या तो विद्वज्जन ही करेंगे परन्तु मनुष्य की लोकैषणा, घनैषणा और पुत्रैषणा में उस इच्छा का कुट्ट-कुट्ट चित्रण अवश्य मिलता है। जीवन को प्रशस्त करने में पुरुपार्थी महानुभाव इसमें कृतकार्य होते हैं एव पुरुपार्थ हीन असफल। आपके दो मुख्य सिद्धान्त हैं सत्कार में मनुष्य परमपिता का ज्येष्ठ पुत्र है अपने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की ज्ञानमय चाभी उसे साप कर प्रभु निरपेक्ष होकर उसके क्रियाकलाप को देखते हैं। प्राणीमात्र की रक्षा का पूरा दायित्व उसपर रखकर निर्भर हो जाते हैं और उसके श्रेष्ठ कार्यों से प्रसन्न हो सदैव उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। इसके साथ साथ मनुष्य अपनी ओर से अहिंसा, सत्य एव प्रेम का पाठ जगत् के प्राणीमात्र को अपने सद् आचरण से पढ़ाकर

सभी को "जीयो और जीने दो" की कला सिखाता है। सृष्टि में कोई भी आतं न रहने पावे इसके लिये अदृश्य उत्साह से यथाशक्ति प्रयत्न करता है। उसकी यह चेष्टा प्राचीनकाल से आरम्भ होकर आजतक नीचे लिखे डिण्डिमधोप करने योग्य मन्त्र का जप करते हुए भारतीय जनपद में हिंसा को नष्ट कर अहिंसा प्रचार के रूप में रहती आई है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम् ॥

[शुक्ल यजुर्वेद ४० अ० १ मन्त्र] ।

ईश्वर का कथन है कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरी ही आत्मा है, ज्ञान के द्वारा प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग, जो कि प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है, भोगो। किसी भी प्राणी की शक्ति को (दूध को) हरण करने की भावना मनमें भी न आने दो। यह क्रम मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, पुलह और पुलस्त्य आदि महान् विभूतियों से स्वीकृत होता हुआ संसार के सभी मतमतान्तरों और सम्प्रदायों को लेकर सृष्टि के उत्थानकालतक बराबर चलता रहा जो आज भी विरयसाहित्य में सन्तवाणी के रूप में भारतीयों के विश्वभ्रातृत्व का उत्कृष्ट उदाहरण और अहिंसक भावना का अपूर्व आदर्श है। विशेषता यही है कि यह सब अमर साधक अरविन्द, महर्षि रमण, विश्वयन्त्र राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, कवीन्द्र रवीन्द्र और सुप्रसिद्ध अमरसेनानी सुभाषचन्द्रबाबू के ही भारत में विशेषरूप से प्रचलित हुआ। भगवान् बुद्ध, महावीर तीर्थङ्कर और सम्राट् अशोक के ज्वलन्त आदर्श सिद्धान्तों को आज भी भारत सरकार ने "अहिंसा परमो धर्म" के रूप में अशोक चक्र के राज्यचिह्न के रूप में प्रधानस्थान देकर अपना शान्तिमार्ग को प्रशस्त किया है यह एक अभूतपूर्व घटना है। ऐसे सभी वरेण्य मानव और प्राणीमात्र के उद्धारक तरपुत्रों को हम अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करते हैं।

जिनके नि स्वार्थ विश्वप्रेमने मानव को दानव एवं पशु होने से सदा बचाया साथ ही प्राणिरक्षा के सामने अपने जीवन की भी आहुति दे मानव का गौरव बढ़ाया।

दूसरे सिद्धान्त का रूप है शास्त्रप्रचार—इसमें मानव की उदात्त भावनाओं का सभी दिशाओं में विकास होने से जीवनस्तर ऊँचा होगा और सभी प्रकार की आधिभ्याधिया सृष्टि से विदा हो जायगी। उन्हें यह इष्ट है कि जिस भारतीय साहित्य ने गङ्गा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती और पञ्चाम्बु तथा कृष्णा और कावेरी आदि की रज में उद्भूत होकर विश्व का मार्ग दर्शन किया उसका प्रसार आज के विज्ञानयुग में अधिकाधिक प्रकाशन द्वारा किया जाय। इसी उद्देश्य से आपने अपने गार्हस्थ्यजीवन को कठिन अनुभवों की कसौटी पर कसते हुए गम्भीर मनन और अध्ययन द्वारा शास्त्रचर्चा के व्याज से विद्वत्समुदाय की सहायता से विशुद्ध पवित्र त्रिचारो का सङ्कलन ग्रन्थ 'गृहस्थधर्म' पद्य संस्करणात्मक वितरण किया। इसका स्पष्ट प्रभाव हिन्दीभाषी क्षेत्रों में लोकप्रियता और एक अपूर्व धार्मिक क्रान्ति, उत्साह की लहर, एवं जनजागृति के रूप में स्पष्ट हुआ जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमारे ग्रन्थप्रकाशन के सम्बन्ध में प्रतिदिन आनेवाले वीसियों प्रशस्तिपत्र हैं जिनमें कितने हजार तो 'सम्मति और उद्गार' के आकार में गुरुमण्डल के आठवें पुष्प के रूप में सङ्कलित कर दो वर्ष पूर्व प्रकाशित भी किये गये हैं। मुझे आरम्भ से उनके सान्निध्य का लाभ मिला है और इसीलिये उनके अगाध वात्सल्य का पूर्ण अनुभव करने का सुयोग भी। उनकी इच्छानुसार जैसे मैं उनके 'पदचिह्नो पर चलकर आदर्श नागरिक होने का स्वप्न देखता हूँ, उसी प्रकार एक चरित्र पिता में भगवत्सन्निधि समस्त पालन, पोषण शिक्षा और दीक्षा द्वारा अपने तुच्छ क्रियाकलाप से उनकी आज्ञा में रहते हुए एक आज्ञाकारी पुत्र होने का भी मुझे गौरव मिले इसके लिये प्रयत्नशील रहता हूँ। पूज्य पिताजी अपने सत्यवादपूर्ण जीवन में एक ओर तो अजेय हिमालय के समान सिद्धान्तरूप में अडिग हैं तो दूसरी ओर वसीसे निकलनेवाली कलकल शब्द से विश्व को

मुद्रित करनेवाली श्वेताभ पवित्र निर्मल गङ्गा के समान अपने मे विश्ववन्द्यत्व की भावना (सभी प्राणीमात्र के प्रति सहानुभूतिपूर्ण उदार भाव) रखते हुए पुष्प से भी कोमल हृदय रखते हैं। अपने आदर्श वाक्य 'कामये दुःखतप्तान्ना प्राणिनामर्तिनाशनम्' के द्वारा उठते-बैठते उन्हें प्राणीमात्र के दुःखको भेटने की याद बनी रहती है और उसीके लिये वृत्तसङ्कल्प हो दिन रात भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

त्रिभुवः सन्वत् २०१० के चैत्रमास में जब श्री पितृश्री स्वास्थ्यसुधार के लिये नवलगाढ़ गये हुए थे वहाँ पर अपने पण्डितद्वय श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी तथा प० बनोडीलाल मिश्र के सहयोग से स्थानीय विद्याविबुद्धन पुस्तकालय तथा सात्विकजीवनशाला के पुस्तकालय से प्रायः अठारह पुराणों के पारायण का उपक्रम किया। पुराण पूर्ण सरया में न मिलने के कारण केवल बारह पुराणों की ही आवृत्ति हो सकी। जो लोग आपके स्वास्थ्ययक्षकों में साथ रहते और उन्हें शास्त्रचर्चा करने का अवसर देते हैं उन्हें शास्त्रीय परम्परानुमोदित नवीन नवीन अनुसन्धानों से आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। मैं तो अपने पिताजी को ही इस सब का श्रेय दूँ तो अत्युक्ति नहीं, फिर भी जिनके निःस्वार्थ कार्यों का सहयोग इन सभी शास्त्रचर्चाओं में हुआ है उन सभी महानुभावों का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूँ। हाँ तो पितानी को जो धुन सवार होती है उसे वे करके रहते हैं। मत्स्यपुराण के शङ्खचूड़ आल्यान को बार बार पढ़ते हुए उन्हें वर्तमान शासन की परिस्थिति और कलहप्रिय प्रजा का दयनीय दृश्य व्याकुल करने लगे। आपने सृष्टि को अपने पूर्व गौरवगाथा का स्मरण करा पुरुषार्थ द्वारा स्वर्गलुप्त बनाने के लिये 'मानवजीवन और अहिंसा', 'गृहस्थधर्म के सिद्धान्त और सृष्टि की रक्षिका मातृताति' शीर्षक से कई लेखमालायें कलकत्ता के दैनिक 'सन्मार्ग', 'राजमान्य एन' विश्ववन्द्य पत्रों में निकालीं। फिर तो मूल से ही मन्त्रको मानवता का अमूल्य मन्देश मिले इस आशय से पुराणों के प्रकाशन का श्रीगणेश का प्रभाव मुझ प्रत्यक्ष आदेशरूप में कलकत्ता लिए भेजा। अभी तक पूर्वपरम्परा के

अनुसार जहा व्यवसाय, वाणिज्य और उद्योगधन्धो मे उनके आज्ञाकारी विनयावनत पुत्र के रूप मे आदेश पालन करने का मैं अधिकारी हू वहा घर के सभी कार्यों मे उनका आदेश ईश्वराज्ञा रूप मे ही हमे इष्ट होता है। यही बात पुराणप्रकाशन के प्रस्ताव के समय भी हुई। कलकत्ते मे वायूजी के अन्यतम कार्यकर्ता और उनके निरक्त स्मृति सन्दर्भ के सम्पादन मे कार्य करनेवाले अपना व्यस्तजीवन का उपयोग शास्त्रों के स्वाध्याय मे लगानेवाले श्री रामनाथदाधीच शास्त्री नवलगढ निवासी ने निरन्तर परिश्रम कर वायूजी के स्वदेशवास के सात मास की खल्प अवधि मे दश हजार श्लोकों के प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया। अपने उत्साह की सीमा का अन्किमण कर श्रीमान् वायूजी ने स्वास्थ्य मे सुधार होते ही पुराण-परिचय से अपनी भूमिका तैयार की। इसमे अठारहो पुराणों की सक्षिप्त विषय-सूची बड़ी गवेषणा और प्रामाणिकता के साथ बनाई गई। आपका यह लेख वास्तव मे पुराणोक्त परिचय के सम्बन्ध मे नई सूक्त है। यह प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के पुराण एवं भारतीय समाज के प्रति सम्माननीय सामयिक उद्घरणों से बहुत ही गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं मननीय सामग्री प्रस्तुत करता है। विषय की प्रगल्भता और दुरुहता से लम्बा होने पर भी पाठ्य-वस्तु का क्रम पठनीय है साथ ही चारों ओर के पुष्ट प्रमाणों द्वारा उसकी प्रतिपादन शैली विशेष प्रौढ़ हो गई है। वास्तव मे पुराणों के सम्बन्ध मे सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री से सुसज्जित पूर्ण परिचय देनेवाली अपने ढंग की यह एक अभिनव रचना है।

सदा की तरह ही इन महान् ग्रन्थों के प्रकाशन के प्रेरक श्रीमान् पिताजी की इस ब्रह्मवैवर्त महापुराण के विषयो को ध्यान मे रखते हुए एक ही मान्यता रही है कि जो पाश्चात्य राष्ट्र शास्त्रचर्चा को तिलाञ्जलि देकर शस्त्र के बल पर परमाणु एवं उद्भजन जैसे सहाराखों के हिंसक प्रयोगों के बल पर शान्ति सुरक्षा और न्याय का दम भरते हैं उनकी आज खोली जाय तथा उनका अनुकरण करनेवाली मध्यपूर्व, पूर्व और सुदूरपूर्व दक्षिण-पूर्वों

एशिया के अल्पविकसित आत्मनिर्भरता के पथ को प्रशस्त करनेवाले राष्ट्रों को नव-जागरण के प्रभात में ही इस अमूल्य देन से सच्चा मार्ग दर्शन हो, जिसकी आधार-शिला विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व, कल्याण और अहिंसा के अमर सन्देश देनेवाले इस ब्रह्माण्ड के प्राण इन महापुराणों के पारायण से मन्थन की हुई विचारधारा हो और जनताजनार्दन सच्चे अर्थों में मानवी गुणों को अपनाकर लोकहित में अपना पराया न समझकर लग जाय। इसी उद्देश्य से यह बृहत्प्रकारान सेवा में प्रस्तुत है।

वैसे तो “न हि कस्तूरिकामोद् शपथेन विभाव्यते” इस अभियुक्तोक्ति के अनुसार किसी प्रकार विद्वत्समुदाय के सामने ब्रह्मवैवर्त के विषयों के लिये निवेदन करना सूर्य को दीपक दिखाना है फिर भी प्रसङ्गवश ब्रह्मवैवर्त के विभिन्न खण्डों का परिचय देना आवश्यक है। यह महापुराण सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार और वैष्णवों के हृदय का हार है। इसके प्रतिपाद्य गोलोकनाथ परब्रह्म आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी आह्लादिनी शक्ति राधिकाजी है जो नित्य ही गोलोक में गोपीगोपगण के साथ रामक्रीड़ा करते हुए सहृदय भक्तगण को अपूर्व अलौकिक आनन्द प्रदान करते हैं। इसमें चार खण्ड हैं—प्रथम ब्रह्मखण्ड; द्वितीय प्रकृतिखण्ड, तृतीय गणेशखण्ड और चतुर्थ श्रीकृष्णजन्मखण्ड है—

सारभूतपुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रममञ्जनम् । हरिभक्तिप्रदं सर्वं तत्त्वज्ञानविचर्द्धनम् ॥
 कामिनां कामदब्धेदं मुमुक्षूणांश्चमोक्षदम् । भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम् ॥
 ब्रह्मखण्डे सर्वग्रीजपरब्रह्मनिरूपणम् । ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत्परत्परम् ॥

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम् ।

ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम् ॥

जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम् ।

तासांश्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम् ॥

कीर्त्तरेत्कीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः ।
 सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत्स्थानं शुभाशुम् ॥
 वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणन्ततः ।
 ततो गणेशगण्डे च तज्जन्मपरिकीर्तितम् ॥
 अतीवाचूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम् ॥१२॥
 गणेशभृगुसम्पादसर्पतत्त्वनिरूपणम् ।
 निगूढकवचस्तोत्र मन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥१३॥
 श्रीकृष्णजन्मखण्डश्च कीर्तितश्च ततः परम् ।
 भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीष्णजन्मकर्म च ॥
 भुजो भारावतरणं व्रीडाकौतुम्भङ्गलम् ।
 सता सेतुविधानश्च जन्मखण्डनिरूपितम् ॥
 सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम् ।
 विद्वान् ब्रह्मकात्स्न्यश्च कृष्णेन यत्र शौनक ! ॥
 ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रयदन्ति पुराविदः ॥

(उपक्रमाध्यायः)

इस बार ब्रह्मवैवर्त मे त्रिपय-सूची बहुत विस्तार से हिन्दी भाषाभाषी जनता के लाभार्थ दी गई है । आशा है, पुराण-प्रेमियों को इससे सन्तोष होगा । अभी कुछ समय से ब्रह्मवैवर्त के तृतीयखण्ड का एक काशीरहस्यभाग बनारस से मिलने की आशा है जो सम्पूर्ण ग्रन्थ को साङ्गोपाङ्ग बनाने और अथतक के छपे ब्रह्मवैवर्त के संस्करणों में विशिष्टता रखनेवाला होगा । भगवत्कृपा से उसको परिशिष्टरूप से ही सम्मिलित करने का विचार है इसके लिये हम श्रद्धेय वैष्णवाचार्य प्रतिपादिभयंकर श्रीदेवनाथकाचार्यजी महाराज भगवद्रामानुजपीठा-

धिपति, राजमन्दिर बनारस के शुभाशीर्वाद से अनुगृहीत हुए हैं। इस ग्रन्थ का सादर समर्पण उन्हीं आचार्यश्री के करकमलों में अर्पित कर मैं अपना कर्तव्य का पालन कर सन्तुष्ट होता हूँ। अब इसके प्रकाशन के सम्बन्ध में दो शब्दलिखकर उपसंहार करना चाहता हूँ।

इतने बड़े विस्तार को लेकर साकृत के ग्रन्थों का सम्पादन वैसे ही कठिन है। प्रुफ सशोधन, भूमिका लेखन, विषय सूची और शुद्धिपत्र तैयार करने में हमारे श्री मोरप्राच्य शोधप्रतिष्ठान की विद्वन्मण्डली का पूर्ण सहयोग रहा है। प्रभु उन्हें हमारे इस कार्य की पूर्णता के लिये सतत सम्मल और क्षमता प्रदान करते रहे और उनका सदा ही हमें पूर्ण सहयोग मिलता रहे यही शुभ कामना है। पूज्यपाद १०७८ श्रीमान् गुरुवर्य आचार्य करणामय सरस्वती और राजगुरु पण्डित हरिदत्तजी शास्त्री देहरादून का कृपानिधानपूर्ण आभार मानता हूँ। उभय विद्वद्गुरुन्धर हैं इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य, अद्भुत विवेचन, प्रतिभा, विलक्षण सृष्टि, अपूर्व मेधा और विचित्र वाग्बैदग्ध्य पूर्ण समन्वय शक्ति से हमें शङ्काखलो पर विशेष प्रमाणों द्वारा सन्देह निवृत्ति के लिये अवसर और शुभाशीर्वाद मिला है।

पुन अपने सभी अनुपाहक सम्मान्य पाठक महानुभावों से अपनी भूलों के लिये प्रार्थना करते हुए आप सभी को अमूल्य सत्परामर्शों के लिये बारम्बार साम्ह अनुरोध करता हूँ किनसे हम भूलसुधार में सहायता मिलती रहे। अब आप सभी गुणमदणैक पक्षपाती महानुभावों की सेवा में अपने परिवार की यह अनुपम भेंट 'पुरा नव भवति' कहते हुए मुझे आत्मसन्तोष एवं गौरव अनुभव हो रहा है।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप सभी महानुभाव हमारी अपूर्णताओं को क्षमा करते हुए प्रतिदिन इस दिव्यवाणी के स्वाध्याय प्रसार द्वारा इस परिश्रम को सफल बनायेंगे और जो कुछ तुच्छ सेवा हमसे होगी उससे उन पुराणवत्ता महर्षिकल्प आचार्यों के आदर्शवाक्यों से जनता का विशेष हित सम्पादन करेंगे ।

“त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये”

कार्तिक शुद्ध
देवोत्थापिनी एकादशी
विक्रम संवत् २०११

विद्वज्जनचरणसेवक—
गधाकृष्ण मोर
५, हाइव रो, कलकत्ता ।

श्रीराधाकृष्णो प्रसीदेताम्

सम्पादकीयं निवेदनम्

श्रीभगवत्पुण्या वैष्णवहृदयहारीभूतं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणं महदयधुरीणानां विद्वज्जनचूडामणीनां करकमलेषु प्रसूयमाना नितराहृदयतोषं प्रसन्नताश्चाऽनुभवामः । प्रत्येऽस्मिन् क्रियता विस्तारेण ज्ञानरुमोपासनरहस्यानां गूढतमं तत्त्वं सविस्तरं प्रकटीकृतमिति विद्वांस एवाऽवगच्छन्ति । गमिष्यन्ति च ग्रन्थस्य पारं प्रतिदिनं पारायणैकशीला कृष्णभक्तिविलसितदेहभाज सज्जनाः । श्रीमता भगवत्पाद रामानुजाचार्यपीठाधिपतिना वाराणसेयप्रतिवादिभयङ्करेत्यादिविविधविरदोपेतानां श्रीः१८०८ देवनायकाचार्यस्वामिमहाभानां करकमलेषु समर्पयन्तः श्रेष्ठिप्रवरवैदिकविचारचर्चापरायणैक शास्त्रग्रन्थस्था प्रकाशननिपुणामां गोर्वाणवाणीसेवासत्तत्त्वनामधन्यश्रीमनसुत्तरायमोरमहोदयानां ज्येष्ठसुपुत्राः श्रीराधाकृष्णमोरमहाशयाः नितराधन्यवादाहं । स्थाने एव यत्सद्गमप्रचाराय कृतस्य प्रयत्नस्य पूर्णता गोविन्दगुणानुवादकीर्तनपरायणानां विद्वद्गुरन्धराणां श्रीस्वामिसदृशाचार्यचरणानां कृतेऽपूर्वज्ञानविज्ञाननिधानयोः श्रीराधाकृष्णयोर्भक्तिप्रसङ्गात्मकस्य पुराणस्यास्य समर्पणं विश्वरहस्याणकारणपरमिति निश्चिनुमः । आशास्महेऽस्माकं भ्रमप्रमादालस्यादिसदोपशान्ताद्ग्रन्थेऽस्मिन् वृत्तयःस्युन्ताः गुणग्रहणैकपक्षपातिनो विद्वांसो निपुणं संशोध्यकृतार्थविष्यन्तीति ।

विदुषोविधेयाः

श्रीब्रह्मदत्तत्रिवेदि कजोड़ीलाल मिश्र रामनाथदाधीचाः ।

गङ्गादशहरादिनम्
ज्येष्ठ शुद्धा दशमी
२०११ विजयमासः

श्रीमोरप्रान्यशोधमंस्थानम्
६, डाइय रो,
बलकृता ।

॥श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण की विषय-सूची

ब्रह्मखण्ड

अध्याय

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ गणेशानङ्गेशसुरेशशेषाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः ।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च नमन्ति देवाः प्रणमामि तं विभुम् ॥

अनुक्रमणिकाऽध्यायवर्णनम्

नारायण, नर, नरोत्तम तथा देवी सरस्वती को प्रणाम कर जय (पुराण) का उच्चारण करे। नैमिषारण्यक्षेत्र में शौनकादि ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि भगवान् आप कहाँ से आये हैं आपके दर्शन से ही हमारा पुण्य दिन हुआ है आप पुराण वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं तथा सब पुराणों को जानते हैं इसलिये कृष्ण भगवान् मे हमारी निश्चल भक्ति हो ऐसे पुराण का वर्णन कीजिये। सृष्टि की उत्पत्ति, साकार एवं निराकार का वर्णन, वैष्णव भक्त क्या ध्यान करते हैं तथा योगिराज क्या ध्यान करते हैं, प्रकृति का आकार, गुणों का लक्षण, महदादि का निर्णय, गोलोक का तथा वैकुण्ठ लोक का वर्णन, समुद्र, नदी, पहाड़ों की उत्पत्ति, प्रकृति की कलाओं का चरित्र तथा स्तोत्र, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री और राधिका के आख्यान का वर्णन, जीवों के कर्मों का विपाक, नरकों का वर्णन, कर्मों का सण्डन तथा उनसे मोक्ष तथा मनसा, तुलसी, काली, गङ्गा, पृथिवी और

शालग्रामशिला की कथा, धर्माधर्म का वर्णन, गणेश का चरित्र तथा स्तोत्र-कवच एवं मन्त्र तथा श्रीकृष्ण भगवान् के जन्म चरित्रों का वर्णन कीजिये ।

सूतजी ने कहा—शौनकजी ! आपके प्रश्न को मैं भली भाँति समझ चुका हूँ आपका प्रश्न ब्रह्मवैवर्त पुराण विषयक है । इसमें (१) ब्रह्मखण्ड में परब्रह्म का वर्णन जिसका ध्यान वैष्णव, योगिराज तथा सन्त करने है इन तीनों में कोई भेद नहीं है ।

मन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः ।

वैष्णवा भक्तमङ्गेन क्रमान् सद्योगिनः पराः ॥

इसी खण्ड में देवी, देव तथा सर्व जीवों की उत्पत्ति का वर्णन है ।

(२) प्रकृति खण्ड में—देवियों का चरित्र, जीवों का कर्मविपाक, शालग्राम का वर्णन, कवच, स्तोत्र, मन्त्र और पूजा का वर्णन, प्रकृति का लक्षण सुकर्मा तथा दुष्कर्मा मनुष्यों के स्थानों का वर्णन, शुभाशुभ का वर्णन और नरकों का वर्णन किया है ।

(३) गणेश खण्ड में—गणेश का जन्म तथा गणेश के अपूर्व चरित्रों का वर्णन, गणेश और भृगु का संवाद और गुप्त स्तोत्र मन्त्रतन्त्र कवचादिकों का वर्णन किया है ।

(४) श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में—भारत में श्रीकृष्ण का जन्म तथा कर्म, और पृथ्वी का भारहरण एवं सज्जनों की मर्यादा का विधान वर्णित है ।

हे शौनकजी ! इस प्रकार चारखण्डों से युक्त सर्व धर्मों का सारभूत, पुराणों में श्रेष्ठ, सब आशाओं की पूर्ति करनेवाला यह ब्रह्मवैवर्त पुराण है ! इसको सर्व प्रथम श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को दिया । ब्रह्माजी ने महातीर्थ पुष्कर में धर्म को धर्म ने अपने पुत्र नारायण को, नारायण ने नारदजी को और नारदजी ने व्यासजी को दिया । व्यासजी ने इस पुराण सूत्र को मुझे दिया और मैंने आपको कहा । इसमें अट्टारह हजार पाठ हैं सम्पूर्ण पुराण के श्रवण से जो फल मिलता है वह इस अध्याय के श्रवण से मिल जाता है ।

२

परब्रह्मनिरूपणम्

५

शौनकजी के प्रश्न करने पर कि ब्रह्म का निरूपण कीजिये तब सौतिने सृष्टि के उपादान कारण रूप में उसका प्रतिपादन किया और नाना लोकों की स्थिति बतलाई ।

३

सृष्टिनिरूपणम्

७

सृष्टि के रचना के सम्बन्ध में कई प्रचलित मत हैं कोई पहले जलजन्तु और पशुपक्षियों की उत्पत्ति बताते हैं और बन्दर मानुष आदि के बाद मनुष्य तक पहुँचते हैं । कोई कहते हैं कि अनादि परम्परा प्राप्त इस क्रम का पूरा पता अभी मिलना कठिन है अनुसन्धान चल रहा है । यहाँ ब्रह्मवैवर्त के मतानुसार सृष्टि प्रक्रिया का सामयिक निरूपण पठनीय है :—

सृष्टि के आरम्भ में सम्पूर्ण विश्व शून्यमय निर्जन्तु होकर अन्धकारपूर्ण था; न कहीं वृक्ष थे न पर्वत और न नदी नदादि का कहीं नाम था । अब महान् हिरण्यगर्भ ने अपने आपको अकेला देखा तो स्वेच्छा से “एकोऽहं बहु स्याम्” की भावना का प्रस्तुरण हुआ । उसके साथ ही सृष्टि के कारणस्वरूप मूर्तिमान् तीनों गुण आविर्भूत हुए, फिर महान् अहंकार, पञ्चतन्मात्रा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द के साथ उन्पन्न हुए । फिर भगवान् नारायण स्वयं आविर्भूत हुए । वे भगवान् श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे । साथ ही वाम पार्श्व से पाँच मुख एवं तीन नेत्रवाले शङ्करजी का आविर्भाव हुआ उन्होंने शङ्करजी की वही स्तुति की ।

सौतिजी ने कहा फिर भगवान् श्रीकृष्ण के नाभि कमल से महातपस्वी ब्रह्माजी का तथा ब्रह्मस्यल से धर्म का आविर्भाव हुआ । वाम पार्श्व से कन्या आविर्भूत हुई, जो साक्षात् सरस्वती ही थी उनके मन से महालक्ष्मीजीव परमात्मा की बुद्धि से सर्वाधिष्ठातृ देवी मूल प्रकृति का आविर्भाव हुआ उनसे ।

निद्रा, वृष्णा, क्षुत्पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि हुए। वह आदिशक्ति समस्त पार्षद और आयुधों के साथ भगवती माक्षान् ही श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी और आदि शक्ति वहीं विराजमान हो गई।

४

सृष्टि निरूपणम्

१२

प्रभु के रमना के आगे के भाग से देवी सावित्री का आविर्भाव हुआ और फिर मानस से एक पुरुष मन्मथ कामदेव हुए उनके वाम पार्श्व से सबको मोहने वाली रति हुई, उसके पास मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण, और उन्मादन नामक पाँच बाण थे; उसने उन बाणों की परीक्षा लेने के लिये उन्हें छोड़ दिया जिससे सभी काम के बशीभूत हो गये। इसी समय अग्नि का आविर्भाव हुआ इस लपेटे में ब्रह्माजी था गये उसको शान्त करने के लिये भगवान् ने जल को रचा एवं उसका अधिष्ठाता वरुण को बनाया। अग्नि के वाम भाग से एक कन्या का आविर्भाव हुआ जिसे अग्नि की पत्नी स्वाहा नाम दिया गया। वरुण के वामपार्श्व में वरुणानी और विभु के निःश्वास वायु से पवन का आविर्भाव हुआ उसकी पत्नी भी। कृष्ण के काम बाण से धीरे-धीरे हुआ एक हजार वर्ष तक वह डिम्ब रूप में रहा तब महान् विराट् हुए जो सम्पूर्ण विश्वों का आधार है जिसके एक लोमविबर में सारा विश्व व्यवस्थित है। वडे भारी समुद्र में शयन करते हुए भगवान् विष्णु के कान से दो देव्य पैदा हुए और ब्रह्मा को ज्यो ही मारना चाहा कि विष्णु ने उन्हे मार डाला।

५

सृष्टिप्रकारवर्णनम्

१४

शौनकजी का प्रश्न “क्या गौ, गोप, गोपी और सभी उनके सहचर गोलोक में निरत्य है कि कल्पित है ? इस पर सौति ने काल मान घनलाते हुए सृष्टि की स्थिति बतलाई। इसके अनन्तर गोलोक का वर्णन, गोलोक के राममण्डल में राम का सुन्दर निरूपण। प्रधान अधिष्ठात्री रासेश्वरी राधा का वर्णन, वहीं पर

गोप, गोपी, गाय, वत्स और उनके उपकरणों का सुन्दर वर्णन । फिर सारे दिक्पाल डाकिनी, योगिनी आदि की उत्पत्ति का वर्णन ।

६

सृष्टिप्रकरणम्

१८

श्रीकृष्ण भगवान् ने नारायणके लिये सादर महालक्ष्मी और महासरस्वतीजी, नाबित्री को ब्रह्माजी के लिये, मूर्ति को धर्म के लिये, रति को कामदेव के लिये, मनोरमा को कुबेर के लिये और अन्यान्य पुढप देवताओं को उन-उन स्त्री देवी गण को आदरपूर्वक दे दिया । शङ्कर जी को भगवती मिहवाहिनी (अमितपराक्रम-शीला) देदी । इस पर भगवान् शङ्कर ने प्रार्थना कर इस अनुपम भेंट को भगवान् की भक्ति में बाधक बताकर टालने को कहा ।

तपस्याच्छन्नरूपाश्च महामोहकरण्डिकाम् । भवकारागृहे घोरं दृढं निगडरूपिणीम् ॥
 शरवद्विबुद्धिजननीं सद्वुद्धिच्छेदकारिणीम् ।
 शरवद्विभागत्ताराश्च विपयेच्छाविब्रद्धिनीम् ॥
 नेच्छामि गृहिणीं नाथ ! वरं देहि मदीप्सितम् ॥

यह गृहिणी का समागम संनाररूपी घोर कारावास में हथकड़ी बेड़ी का काम करती है । सद्वुद्धि को छेदन करती है विपयों के प्रति इच्छा को बढ़ाने वाली है अतः हे नाथ गृहिणी को मैं नहीं चाहता । कृपया मेरा इच्छित वर मुझे दीजिये । आपके चरणों के सेवन, पूजन, वन्दन, और नाम कीर्तन से बढ़कर संनार में दूसरी कोई वस्तु मैं नहीं चाहता । सारी कल्पवन्धा तक आपके ध्यान में लगा रहकर नवधा भक्ति ही मेरे जीवन का लक्ष्य हो । यह मेरी कामना है ।

“त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नाम कीर्तने । सद्रोद्धमिननेपाश्च विरतौ विरतिं लभेत् ॥१४॥
 स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः । त्वच्चान्तरूपञ्चानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥१५॥
 समर्पणश्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । वरं वरेश ! देहीदं नवधा भक्तिलक्षणम् ॥”

सार्ष्टि, सालोक्य, साहस्य, सामीप्य, साम्य और लीनता ये छे प्रकार की मुक्तियां एव १८ सिद्धियां हैं, सम्पूर्ण वैभव, ब्रह्मपद, विष्णुपद और शिवपद भगवान् की भक्ति की १६ धों कला की भी परावरी नहीं कर सकने ।

शङ्करजी को भगवान् कृष्ण का वरदान कि इस महाशक्ति शिवा के साथ तुम्हारा त्रिकालाबाधित सम्बन्ध सदा ही बना रहे । जो कुली (खराव ली) होती है वह स्वामी के लिये कलहकारिणी बन जाती है वाकी तो कुल की उत्पत्ति से अपने स्नेह से पुत्र पौत्र की उन्नति कर पति का सर्वथा कल्याण करती है । शिव नाम की महिमा और शिवभक्त भगवान् कृष्ण को अत्यन्त ही प्रिय है । सिंहवाहिनी को कृष्ण भगवान् ने अपने यह रखकर कहा कि कल्प के बाद मे सत्ययुग के आरम्भ मे दक्ष की कन्या बन तुम शङ्कर की ली बनोगी उसी जन्म मे सती के रूप मे शरीर को त्यागकर हिमालय की पत्नी के पार्वती रूप मे आविर्भूत होकर शम्भु के साथ विहार करोगी । सम्पूर्ण विश्व मे शरत्काल मे प्रति वर्ष सर्वत्र तुम्हारी पूजा हुआ करेगी, उसमे भगवती के पूजन करनेवाले को यश, कीर्ति, धर्म और ऐश्वर्य सत्र कुद्द मिलेगा श्रीमाया काम बीज भगवती को दिया । ऐसे ही कामदेव, बरुण, कुबेर आदि को नानामन्त्र और सिद्धिया दी तथा विदा किया स्वयं वृन्दावन मे गोपी एव गोपो के साथ निवास करने चले आये ।

७

सृष्टिप्रकरणम्

२२

ब्रह्माजी ने मधु-कैटभ के मेद से तपस्या कर पृथ्वी को रच आठ पर्वत समुद्र, नदी, नद, वृक्ष, वनस्पति, ग्राम, नगर सभी बनाये ।

“लवणक्षुमुरासर्पिर्दधिदुग्धजलाणवान्”

सात उर्ध्वलोक, सात पाताल, सप्तद्वीप बनाये इनकी गणना सम्भव नहीं । ये सब अनादि परम्परावच्छेदेन कृत्रिम और स्वप्न के समान अनित्य नश्वर हैं केवल वैकुण्ठ और शिवलोक से ऊपर गोलोक ही नित्य है ।

सृष्टि रचने के बाद सावित्री के गर्भ से ब्रह्माजी ने मनोहर चारो वेदो, शास्त्रो, व्याकरण, एव न्यायादि को ३९ राग एव रागिणी चारो युग—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलहप्रधान कलि बनाये। वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण, रात, दिन, वार, सन्ध्या, प्रातःकाल, मातृका, चारो प्रलयकाल, मृत्युकन्यका और व्याधिगण को उपन्न कर उन्हें पोषित किया। ब्रह्माजी के पीठ से अलक्ष्मी हुई। नाभि से विश्वकर्मा जो शिल्पी जाति के गुरु हुए। आठ वसु चारो कुमार आदि नाना अङ्गों से हुए। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा मनुष्यों के उत्पादन करने में प्रवृत्त हुए। ऋषियो की उत्पत्ति। पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, अङ्गिरा, रुचि, भृगु, दक्ष, यदम, पञ्चशिख, वोढु, नारद, मरीचि, वशिष्ठ, हंस और यति हुए इन्हें सन्तान की वृद्धि का ब्रह्मा ने आदेश दिया। फिर नारदजी ने विषयरूपी त्रिष एवं भक्ति रूपी अमृत की तुलना कर इन महर्षियों को बचाकर रखने के लिये अनुरोधपूर्वक निवेदन किया। इसपर ब्रह्माजी ने श्राप दिया कि तू नाना जन्मों में भिन्न-भिन्न योनि ग्रहण कर अन्त में लोगों को ज्ञान वांछता फिरेगा इस पर नारदजी ने क्षमा-प्रार्थना की। भगवान् कृष्ण की भक्ति का माहात्म्य।

ब्रह्माजी ने अपने सत्र पुत्रों को सृष्टि सञ्चालन का आदेश दिया। मरीचि महर्षि के मानस पुत्र कश्यप प्रजापति हुए। अत्रि के नेत्रो के मल से समुद्र में चन्द्रमा उपन्न हुए। पुलस्त्यजी के मानसपुत्र मैत्रावरुण हुए मनु के शतरूपा में तीन कन्यायें हुईं आकृति, देवहृति और प्रमृति जो परम प्रसिद्ध पतिव्रता हुईं तथा प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हुआ जो परम धार्मिक

प्रवर प्रसिद्ध हुआ। मनुजी ने आकृति को रुचि नामक ऋषिको व प्रसूति को प्रजापति दक्षको एवं देवहूति को कर्दम ऋषि को दिया जिसके गर्भ से भगवान् साख्याचार्य कपिल हुये। प्रसूति मे दक्ष के सकाश से ६० कन्याये पैदा हुईं जिनमें से ८ धर्म को, ११ मद्र को, १ सती शिवजी को, १३ कश्यपजी को और बाकी २७ चन्द्रमा को प्रदान कीं। दक्ष कन्याओं के नाम एवं वंश का वर्णन। इस प्रकार सूत्रजी ने सृष्टि क्रम का सुन्दर वर्णन किया।

१०	धनेशजन्मकथनम्	३१
	घृताचीविश्वकर्मासंवादवर्णनम्	३५
	संकरजात्पुत्रपति विवरणम्	३७
	जातिसम्बन्धनिर्णयवर्णनम्	३९

शुक्रजी के पुत्र च्यवन और शुक हुए, क्रतु की क्रिया नाम की स्त्री से बालविलय हुए। अङ्गिरा के तीन पुत्र हुए बृहस्पति, उत्तप्य और शम्बर। वसिष्ठ के पुत्र शक्ति हुए उनके पराशर हुए उनके सुपुत्र महाभागवत कृष्ण-द्वैपायन माक्षान् भगवान् व्यासजी हुए। व्यासजी के शिवजी के अंशरूप ज्ञानी प्रवर शुकदेवजी हुए। पुलस्त्य के विश्वश्रवा और उनके धनेश्वर नामक पुत्र हुआ। विश्वश्रवा के पुत्र कुबेर, रावण, कुम्भकर्ण और धिभीपण हुए। पुलह के पुत्र वात्स्य और रुचि के शाण्डिल्य हुए, इनके पांच गोत्रवाले नाना जन हुए, ब्रह्मा के मुप से ब्राह्मण जातियां बाहुदेश से क्षत्रिय जातियां जह्वा से वैश्य और पैर से शूद्र जातियां हुईं। (विशाल ब्रह्माण्ड मे सभी वर्णों का विशिष्ट स्थान है इनमे छोटे बड़े का कोई अन्तर नहीं सभी मानव अपने-अपने कर्मों से सुगति और दुर्गति को प्राप्त होते हैं।) उनकी संकरता से नाना वर्णसंकर जातियां हुईं। यगिकू जातियां और मच्छूद्र आदि की उत्पत्ति का इतिहास। मच्छूद्र जातियों की उत्पत्ति का विवरण एवं जातियों के सम्बन्ध में निर्णय।

सुतपा नामक ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या एक लाख वर्ष तक की। कृष्ण की अलौकिक ज्योति का उसे अकस्मात् दर्शन हुआ और आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मण तुम मोक्ष मत मागना केवल लोकव्यवहार की परम्परा के लिये विवाह करो बाद में अपनी भक्ति और दास्य मैं तुम्हें दूंगा। स्वयं ब्रह्मा ने पितरो की मानसी कन्या को उसे दिया उसमें ब्राह्मण के द्वारा कल्याणमित्र का जन्म हुआ। इस महापुरुष के स्मरण करने से वज्र से भी भय नहीं रहता। वैष्णव ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने से भगवान् नारायण स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं। ब्राह्मण प्रशंसा के पद। विष्णुमन्त्र की दीक्षा गुरु से लेने से ही सत्र तरह की सिद्धि होनी है।

उपर्युक्त गन्धर्व के रूप में नारदजी का जन्म। पूर्व जन्म में नारदजी ने पिता के साथ विरोधकर क्या किया और उसका परिणाम सुनाने के लिये शौनरुजी की प्रार्थना पर सौति ने बताया कि ब्रह्माजी की पूजा पुत्रों के शाप देने से नहीं होती है। इसीलिये ब्रह्माजी की आराधना भी विद्वान् लोग नहीं करते। नारदजी जिस प्रकार गुरुननो के शाप से गन्धर्व हुए उसकी कथा का प्रसङ्ग। गन्धर्व होकर भी वैभव हुआ परन्तु पुत्र न हुआ इसपर गुरुजी की आज्ञा से उन्होंने पुष्कर तीर्थ में भगवान् शङ्करजी की तपस्या की। भगवान् शङ्करजी का मन्त्र उसे गुरुदेव वशिष्ठ ने दिया था। दिव्य सौ वर्ष तक उसका जप करता हुआ गन्धर्वराज अन्न में शिवजी को प्रसन्न करने में सफल हुआ भगवान् चन्द्रशेखर ने उसे वर मागने को कहा तो गन्धर्व ने हरि भक्ति और परम भागवत पुत्र की याचना की। भगवान् शङ्कर ने कहा कि श्रीकृष्ण की आराधना करनेवाले को कभी कोई पाप ताप नहीं सता सकता अतः तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो

परन्तु तुम दूसरा वर मांगो । गन्धर्वराज ने अपने पहले वरों की पूर्ति न होने पर शिर काट कर चढ़ाने की धमकी दी । तब भक्तों के ऊपर दया करनेवाले भगवान् शङ्कर ने पुत्र रत्न की प्राप्ति का सुन्दर वरदान दिया और अन्तर्धान कर गये ।

१३ उपवर्हणभार्याया मालावत्या विलापकथनम् ४५

गन्धर्वराज के पुत्र उपवर्हण को भी गुरु दीक्षा पर भगवान् विष्णु का मन्त्र मिला । एक बार गन्धर्वों की ५० पत्नियों ने उस युवक को इस प्रकार सुन्दर वेष में देस कर मूर्च्छित होकर योग से प्राण छोड़ नया जन्म धारण कर चित्ररथ की कन्याओं के रूप में जन्म लिया । बड़ी होनेपर उन्होंने उपवर्हण गन्धर्व को अपना पति घर लिया जब वह सानन्द तीन लाख वर्ष तक जीवन बिताकर भगवान् में मन लगाने की तैयारी कर रहा था तो रुम्भा के नव यौवन को देखकर उसका वीर्य स्तब्ध हो गया । इसपर ब्रह्माजी ने उसे शूद्र योनि की गति पाने का शाप दिया । उस गन्धर्व ने योग के द्वारा अपना शरीर छोड़ा और उसकी पचास रानियों में प्रधान महिषी ने पति विरह में मार्मिक विलाप किया ।

१४ विष्णुमालावतीसम्वादवर्णनम् ५०

ब्राह्मण बालक के वेश में भगवान् विष्णु का मालावती के पास जाना और उस ब्राह्मण बालक का मालावती के साथ सम्वाद होने के प्रसङ्ग में कर्मफल का कथन ।

१५ मालावतीकालपुरुषसम्वादवर्णनम् ५३

ब्राह्मण ने रोग और व्याधि का बीज शास्त्रानुसार बताने उसके दूर करने के उपाय बताये । मालावती के सामने कालपुरुष को प्रगट किया गया । व्याधि ममूह और यमराज सभी उपस्थित हुए । मालावती ने गुले शब्दों में उससे पूछा

हे धर्मराज आप मेरे पतिदेव के हरने का कारण बताइये । यमराज ने इसपर ईश्वराज्ञा द्वारा मृत्यु कन्याओं को व्याधिरूप मे मनुष्य एवं प्राणियों की मृत्यु का कारण बताया ।

१६

विष्णुमालावतीमंवादे व्याधिप्रणयनम्

५६

वैद्यकीसंहितावर्णनम्

मालावती के यह पूछने पर कि रोग की उत्पत्ति, शमन और उसे दूर करने का उपाय बताइये तो ब्राह्मण ने परम्परानुसार जैसे आयुर्वेद का प्रादुर्भाव हुआ उसे बताया और वेदाङ्ग के रूप मे ही चिकित्सा को एक अङ्ग कहकर इसकी विशेष प्रशंसा की । इसके १६ तन्त्रों मे एक से एक बढ़कर रोगों की चिकित्सा बतलाई गई है । व्याधि का ज्ञान और कष्ट का निग्रह करना यही वैद्य का वैद्यत्व है वह आयु का मालिक नहीं है, फिर ज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ, प्लीहा, शूल, ज्वरातिमार, ग्रहणी, खासी, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म (गोला) रक्तदोष के विकार वाले रोग, विषमेह, कुचडापन, गोद, गलगण्ड, भ्रमरी, सन्निपात, विसूची आदि ६४ भेद रोगों के बतलाये । पापों से रोगों की वृद्धि और मृत्यु का आगमन बतलाया और ईश्वरभक्ति से शमन ।

चक्षुर्जलञ्च व्यायाम. पादाधस्तैलमर्दनम् । कर्णोर्मूर्ध्नि तैलञ्च जराव्याधिविनाशनम्
वसन्ते भ्रमणं वह्निसेवा स्वप्नं करोति यः । बालाञ्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति ॥
खातशीतोदकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम् । नोपयाति जरा तञ्च निद्राद्येऽनिल सेवनम्
प्राग्धुष्णोदकस्नायी घनतोयं च सेवते । समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति
शरद्रीद्रं न गृहाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत् । खातेस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति

खातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निञ्च सेवते ।

मुद्गुक्ते नवान्नमुष्णञ्च जरा तं नोपगच्छति ॥

गुड्के सदन्नं क्षुत्काले तृष्णाया पीयते जलम् ।

नित्यं मुड्के च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति ॥

दधि हैयद्ग्रीनश्च नवनीतं तथा गुडम् । नित्यं मुड्के संयमी यो जरा तं नोपगच्छति
अर्थात् नेत्रों को ठण्डे पानी से धोना, व्यायाम करना, तैल का पैरों के
तलवे में मर्दन, कान में तेल डालना, और शिर में अच्छे तैल की मालिस करना
बुढ़ापा और रोग को दूर करता है । वसन्त ऋतु में प्रातः सायं टहलने, चित्रक के
सेवन और गहरी नींद लेने और समय पर वाला युवती के साथ सम्भोग करने से
बृद्धावस्था नहीं सताती । कूपजल, नदीजल अथवा तालाब या बाघड़ी के जल में
स्नान, चन्दन का लेपन और गर्मों में ठण्डी वायु का सेवन ये बृद्धावस्था से दूर
रहने के साधन हैं । वर्षा में गर्म जल से स्नान और वर्षा के जल का सेवन तथा
समय पर हित, मित और पथ्य आहार के सेवन का स्वास्थ्य पर बहुत सुन्दर
प्रभाव होता है । शरद ऋतु में सुन्दर औषध का सेवन, भ्रमणादि का वर्जन,
नदी, कुआ, बाघड़ी या तालाब में ठण्डे जल से सदा स्नान करने से बृद्धावस्था
नहीं सताती । हेमन्त ऋतु में नदी कुआ, बाघड़ी या तालाब में स्नान और अग्नि
का सेवन, नवीन और गर्म मुपाच्य भोजन करनेवालों को बृद्धावस्था नहीं आती ।
सातम्नान के साथ-साथ मुपाच्य रुचिकर और अच्छे अन्न का भूय लगने पर
रानेवाला, व्यास लगने पर जल पीनेवाला और नित्य ताम्बूल (पान) का सेवन
करनेवाला बृद्धावस्था को नहीं प्राप्त करता । दही, विना घी निकाला हुआ मट्ठा,
नवनीत (मक्खन) और गुड का जो संयमी व्यक्ति सेवन करता है उसे बृद्धावस्था
नहीं सताती ।

इस प्रकार सारी रोगविनाशक और शरीर वर्द्धक प्रक्रियाओं को सुन्दर
मालावती ने उपवर्हण की मृत्यु का कारण ब्रह्माज्ञी द्वारा शाप और संसार में
महत्पद की प्राप्ति विपत्ति के विना नहीं हो सकती इस प्रकार जन्मान्तर से उन्नति
होना बतलाया है ।

१७

देवानां मनीषे विष्णोर्गमनम्

६०

मालावती के साथ ब्राह्मण वेप में विष्णु का देवताओं की सभा में जाना और उपवर्हण की मृत्यु का स्फोटिकरण करने के लिये देवमृन्द से पूछना । ब्रह्माजी ने उपवर्हण को शाप दिया उसका कारण बताया और महेश्वर ने तथा धर्म ने देवताओं के आगे विष्णु को न देखकर उस ब्राह्मण से कटाक्ष करते हुए कारण पूछा । इसपर भगवान् ने स्वयं को विष्णु बतलाकर गोलोक, वैकुण्ठ आदि की स्थिति बतलाई और उस गन्धर्व को जिलाने का आदेश दिया ।

१८

गन्धर्वाय जीवदानम्

६४

ब्रह्माजी ने कमण्डलु जल ज्योंही उसपर छिड़का त्योंही मन बापी आदिका सञ्चार अवश्य हो गया परन्तु आत्मा के अधिष्ठान के बिना वह जड़वन् शव के रूप में ही पड़ा रहा इसी समय ब्रह्माजी के वचन से माध्वी ने विष्णु को प्रसन्न किया और भगवान् की कृपा से वह उपवर्हण गन्धर्व उठ खड़ा हुआ अपने सामने उपस्थित देव समूह तथा ब्राह्मण वेपवारी भगवान् विष्णु को प्रणाम किया । देवताओं के वरसे जीवित वह गन्धर्व अपनी राजधानी में लौट आया और इस उपलक्ष्य में बहुत आमोद प्रमोद के साथ स्नान महोत्सव मनाया गया । इस महापुरुष के स्तोत्र का वर्णन जो करता है उसकी सम्पूर्ण मनोकामनाये हरि भगवान् की कृपा से पूर्ण हो जाती है ।

१९

ब्रह्माण्डपावनं श्रीकृष्णकवचम्

६७

शिवकवचवर्णनम्

६९

शिवस्तोत्रवर्णनम्

७१

ब्रह्माण्ड को पवित्र करनेवाले श्रीकृष्ण के कवच का वर्णन । इनके साथ ही

सौमित्रिजी ने शङ्कर ऋषि वनाया और वाणेश्वर के द्वारा कहे गये शंकरजी का समस्त पाप ताप को दूर करनेवाला स्तोत्र सुनाया ।

२०	उपवर्हण जन्मकथनम्	७२
	कलावतीमुनिभम्वादकथनम्	७३

उपवर्हण का जन्म किस प्रकार हुआ उसका निरूपण । कान्यकुब्ज देश में द्रुमिल नामक राजा की कलावती नाम की पतिव्रता स्त्री थी जो वाम थी । स्वामी के दोष से उस वन्द्या कलावती ने अपने पति की आज्ञा से नारदजी की तपस्या की । वह यद्यपि उनके सामने आने में असमर्थ थी फिर भी मुनि की समाधि टूटने पर नारदजी ने उसे देखकर सारी बातें पूछीं । उसने वीर्याधान का प्रस्ताव किया और काश्यप नारद ने इस पर कईएक बातें बुरी-भली सुनाई । भोग करने योग्य जो अपनी गृहलक्ष्मी को दूसरे को देने की इच्छा करता है, वह अवश्य उसे छोड़ देती है ऐसी वेदों की घोषणा है । कभी भी वर्णसङ्कर सृष्टि नहीं होने देनी चाहिये ऐसा होने से देवता और पितर उस पतित का जल और धाढ़ तथा पूजा ग्रहण नहीं करते । इसके बाद वह वृषली मुनि के सामने चुपचाप खड़ी रही और मेनका को देखकर स्तब्ध वीर्य होने पर उस कलावती ने उसे पी लिया और द्रुमिल को सारे गर्भहेतु के कारण बतलाये । द्रुमिल ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस गर्भाधान की प्रशंसा की तथा सभीको प्रसन्न होकर अतुल धन दान किया । फिर वद्विक्राश्रम में जाकर योग साधना से अपने शरीर को छोड़ा । वहाँ से विष्णुदूतों ने उसे बैकुण्ठ लेजाकर भगवान् का दास बना दिया । इधर भौतिक शरीर को निर्जीव देखकर कलावती विलाप करने लगी और उमने पति के साथ ही चिता में प्राण छोड़ने की पूरी तैयारी की परन्तु ब्राह्मण ने उसे मात. कहकर बचा लिया क्योंकि उसके गर्भ में बालक का आविर्भाव होगा ।

२१ उपवर्हणजन्मान्तरकथनम् ७५

नारदशापविमोचनम् ७७

जब बालक होकर पांच वर्ष का हुआ तो उसे पूर्वजन्मों की स्मृति बराबर बनी रही और वह निरन्तर ही जहाँ भगवान् कृष्ण की पवित्र कथा का अनुवाद होता हो वहाँ वह अवश्य ही पहुँचता है। उसे जत्र माता भी चुलाती तो वह यही कहता कि आता हूँ थोड़ी भगवान् की पूजा करलूँ। यह बालक नारद नाम से विख्यात हुआ। वह दिन दूना रात चौगुना बटता गया। उसे जिसे कृष्ण मन्त्र की प्राप्ति हुई उसका वर्णन। इसके बाद नारदजी शाप से छुटकारा पा गये।

२२ ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनम् ७६

ब्रह्माजी के पुत्रों की नाना सुन्दर व्युत्पत्तियों का वर्णन।

२३ ब्रह्मनारदमन्वादवर्णनम् ८१

भगवान् ब्रह्माने अपने सब पुत्रों को सृष्टि के विधान में लगाकर नारदजी से सृष्टि करने को कहा। उन्होंने कहा कि सम्पूर्ण संसार में गृहस्थ ही प्रधान हैं और पुण्यशील हैं। यह स्त्री, पुत्र, पौत्रों का जो मन्दिर है वह बड़ी तपस्या का फल है देव पितर और ऋषि सभी गृहस्थ के नित्य, नैमित्तिक और काम्य विधियों से प्रसन्न होते हैं इसलिये गृहस्थ पालन करना आवश्यक है। नारदजी ने इसपर बहुत ही सुन्दर आदर्श बचन कहकर कि गृहस्थजीवन यदि कृष्णभक्ति विहीन है तो उसका सारा का सारा जीवन ही व्यर्थ है ऐसे धृणित जीवत की भर्त्सना की। आगे उन्होंने बताया कि जीवन में स्त्री के साथ पाणिग्रहण दुःख के लिये है सुख के लिये नहीं साथ ही तप, स्वर्ग, भक्ति और मुक्ति के उन्नत मार्ग पर चलने के लिये बड़ी भारी रुकावट है। साध्वी, भोग्या, कुञ्चटा तीन प्रकार की स्त्रियाँ बतलाई गई हैं। परलोक

के डर से और कामस्नेह से केवल अपने पति की जो सेवा करती है, वह साध्वी है। बल, अलङ्कार, सुन्दर स्तिग्ध आहार जतक जिस स्त्री को मिलते हैं वह भोग्या है और कुञ्ठा तो बुल की अङ्गार होकर नित्य ही पति को जलाती रहती है। नारदजी कहते हैं सम्भोग से तेज नष्ट होता है 'दिनमे वात करने से यश का क्षय होता है' अधिक प्रेम करने से धन का क्षय होना है और अति आसक्ति होने से शरीर का क्षय होता है। साथ रहने से पुरुषार्थ नष्ट होता है कलह में मान्यता समाप्त होती है उनका विश्वास करने से सर्वनाश होता है हे पितृ, आप ही कहिये स्त्रीमात्र में क्या सुख है। इस प्रकार पिता से क्षमाप्रार्थनापूर्वक नारदजी ने तपस्या के लिये आज्ञा मागी। इसपर ब्रह्माजी गधे लिपटकर ऊँचे स्वर से रोने लगे वास्तव म मनुष्यों का विज्ञोह भी तु सह (असह) होता है।

२४ नारदम्प्रति दारपरिग्रहार्थं ब्रह्मण उपदेशः ८३

तदनन्तर ब्रह्माजी नारदजी को फिर समझाने लगे और दार परिग्रह के लिये नाना उपदेशपूर्ण वचना से अपना मन्त्रव्य प्रगट कर कहा कि कृष्णभक्त को घर में ही तपस्या का फल मिल जाता है।

आदौ भवेद् गृहीलोको वानप्रस्थस्तन परम् ।

तनस्तपस्वी मोक्षाय ब्रमण्य श्रुतौश्रुतः ॥

गृहीभव मुनिश्रेष्ठ । गृहीणां सर्वदासुखम् ।

कामिन्या मुखसम्भोग स्वर्गभोगात्सुदुर्लभ ॥

तद्दर्शनमुपस्पर्शं वान्छन्त्येव मुमुक्षव । सर्वस्पर्शमुपमान् स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं परम् ॥

तव मुखनमपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने । नास्ति पुत्रात्परोऽन्युनास्तिपुत्रात्पर प्रियः ॥

सर्वेभ्यो जयमन्त्रिच्छेद् पुत्रादेशात्पराजयम् ॥

इसपर भी नारदजी थोड़े ही मानने वाले थे। उन्होंने भगवान् कृष्ण की साधना के लिये मन्त्रदीक्षा मागी और अपने पाद ही दार परिग्रह करने की

बात कही तब ब्रह्माजी ने पति से, पिता से और विविक्त आश्रम (सन्यासी) वालों से मन्त्रदीक्षा न लेकर जन्मत प्राप्त अपने इष्टगुरु से मन्त्र लेनेकी बात कही । क्योंकि पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षण । विविक्ताश्रमिणाञ्चैव न पुन सुखदायकः निपेकाहभ्यते मन्त्रो गुरुर्मर्ता च कामिनी । विद्या सुखंभयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च

अब महेश्वर तुम्हारे गुरु हैं उनके पास जाकर भगवन्मन्त्र को लेकर फिर मेरे पास आओ । इसके बाद नारदजी पिता के आदेश से शिवलोक को चले गये ।

२५ नारदकृत शिवस्तुतिः शिवनारदसम्मेलनञ्च ८६

शिवलोक में जाकर नारदजी ने उनकी स्तुति की तथा भगवान् के सम्मुख अपना हार्द (भाव) कहकर उनसे अपनेको दीक्षित करने की प्रार्थना की ।

२६ शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम् ८८
आह्निकप्रकरणम् ६१

जब शिवजीने सम्पूर्ण स्तोत्र कवच, मन्त्र, ध्यान और पूजा का विधान कह दिया तो नारदजी ने प्रतिदिन करने योग्य आचार प्रसङ्ग के सम्बन्ध में उपदेश करने की प्रार्थना की । भगवान् भूतनाथ देवाधिदेव महेश्वर ने प्रातः काल ब्राह्ममुहूर्त से शय्या त्यागकर रात्रि में शयन तक की आदर्श दिनचर्या का निरूपण किया जिसमें निम्नलिखित मुख्य है :—

गुरु इष्टदेव के ध्यानपूर्वक शौच निवृत्ति के लिये वन में एकान्त स्थान पर उत्तराभिमुखादि होकर जावे तदनन्तर जल से हाथ पैर धोकर १६ गणहूप करे और दन्तमार्जन काष्ठ से अच्छी प्रकार दाँतों को साफ करे फिर जलस्नान कर प्रातः सन्ध्या करे । तर्पण, स्नान, दान, तप, होम, दैवपितृ कर्म के पहिले तिलक को अवश्य धारण करे । तदनन्तर तर्पण और आवश्यक नित्यकार्यों को सम्पादनकर वेद विहित शालग्राम की पूजा करे । शालग्राम शिला का माहात्म्य ।

शालग्राम शिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद । सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम्

शालग्राम की षोडश उपचार या चारह वस्तुओं तथा पञ्चद्रव्यों से पूजा का विधान आता है —

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् । पुष्पं चन्दन धूपञ्च दीप नैवेद्यमुत्तमम् ॥६१॥

गन्धं माल्यञ्च शय्याञ्च ललिता सुविलक्षणाम् ।

जलमन्नञ्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ॥६२॥

गन्धान्नमल्पताम्बूलं विना द्रव्याणि द्वादश ।

पाद्यार्घ्यं जल नैवेद्यं पुष्पाण्येतानि पञ्च च ॥६३॥

प्रथम भूतशुद्धि कर प्राणायाम करे अङ्गन्यास एवं प्रत्यङ्गन्यास और मन्त्र न्यास करे । वर्णन्यास के बाद अर्घ्य प्रदान किया जाय ।

२७

नराणां भक्ष्याभक्ष्यकर्तृत्याकर्तृभ्य कथनम्

६३

नारदजी के द्वारा द्विज, गृहस्थ, यति, वैष्णव, विधवा एवं ब्रह्मचारियो के लिये भक्ष्याभक्ष्य के विषय में पूछने पर भगवान् महादेवजी ने कहा कि ब्राह्मणों के लिये भगवान् नारायण के प्रसादरूप में चढ़ाया हुआ हविष्य अन्न भोज्य है अन्य सब त्याज्य है, एकादशी को अन्न सर्वथा त्याज्य है ।

ब्राह्मण कामतोऽन्नं च यो भुङ्क्ते हरिवासरे ।

त्रैलोक्यजनितं पार्ष सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥७॥

जन्माष्टमी, शिवरात्रि, रामनवमी और एकादशी को उपवास करने में, असमर्थ व्यक्ति अन्न का सेवन न करे हाँ फल मूल जल का सेवन कर सकता है ।

नित्यं नैवेद्यभोजी यः श्रीकृष्णस्य च वैष्णवः ।

नित्यं शतोपवामाना जीवन्मुक्त फलं लभेत् ॥

भगवान् श्रीकृष्ण को नैवेद्य लगाकर भोजन करनेवाला मनुष्य सौ उपवासों का फल पाता है और वह जीवन्मुक्त है। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और तपस्वी लोगों के लिये ताम्बूल का सेवन गोमास के सेवन के बराबर है। ताम्रपात्र में पयःपान और लवण के साथ दुग्ध सेवन गोमास के समान है। कास्यपात्र में नारिकेल का जल और ताम्रपात्र में मधु और ईस का रस सुरा के समान है। जो द्विज वाये हाथ से जल पीते हैं वह सुरा पीनेवाले हैं।

अनिवेद्यं हरेरन्नं भुक्तशेषश्च नित्यशः । पीतशेषजलञ्चैव गोमांससदृशं मुने ॥२५॥

मत्स्यादि का मास सदा ही अभक्ष्य है। प्रतिपदा को कृष्माण्ड, द्वितीया को वृहती भोजन, और पटोल रात्रियों की वृद्धि करता है तृतीया और चतुर्थी को मूलक का सेवन, पञ्चमी को विल्व का सेवन, षष्ठी को निम्ब का भक्षण, सप्तमी को ताल का भक्षण शरीर नाशक है। नारिकेल फल का भक्षण अष्टमी के दिन बुद्धि को नाश करता है नवमी को तुन्वी (घिया) दशमी को कलम्बिका, एकादशी को शिन्नीधान्य द्वादशी को पूतिका, त्रयोदशी को बेंगन का भक्षण पुत्र नाश करता है अतः वर्ज्य है, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या को मासभक्षण सदा महापातक करनेवाला है अतः उसे कभी सेवन न करे।

सरसों का तैल, पकनैल का सेवन प्रातःस्नान में, विशेष रूप से पार्वण श्राद्ध में, व्रत के दिन, कुडू, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी को प्रशस्त है। रविवार, श्राद्ध, व्रत के दिन स्त्रीसेवन और तिल तैल, मास, रक्त शाक और कास्य के वर्तन में भोजन निषिद्ध है। सम्पूर्ण वर्षों के लिये दिन में स्त्रीप्रसङ्ग वर्जित है। रात्रि में दधि भक्षण, दोनों सन्ध्या में शयन, रजस्वला स्त्री में गमन ये नरक के कारण हैं।

रजस्वला और वीरान्न पुञ्जलि का अन्न, शूद्रयाजक और शूद्र के श्राद्ध का अन्न, वृषलीपति का अन्न, ज्योतिषी का अन्न और वैद्य का अन्न वर्जित है। अमावास्या,

कृतिका में क्षौर वर्जित है जो व्यक्ति मैथुन और क्षौर कर देव और पितरो का तर्पण करता है वह रुधिर के समान है और दाता नरक में जाता है इसलिये मनुष्य को इनस बचकर अपनी भीरनी बनानी चाहिये ।

२८

ब्रह्मनिरूपणम्

६५

साकार निराकार ईश्वर के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने पर भगवान् शङ्कर ने ब्रह्मा का निरूपण किया । पाँचों प्राण साक्षात् स्वयं विष्णु हैं मन ब्रह्मा प्रजापति है सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप में ही शक्तिरूपा प्रकृति ईश्वरी है आत्माधीन ही हम सब हैं । कर्म के भोगने के लिये जीव उसका प्रतिबिम्ब है, जैसे--जल से पूर्ण घड़े में सूर्य और चन्द्रमा की परछाया दी जाती है और घड़े के फूट जाने पर बिम्ब चन्द्र और सूर्य म लीन हो जाता है वैसे ही सृष्टि के भंग होनेपर जीव ब्रह्म में मिल जाता है ससार के प्रलय के समय एक परब्रह्म ही स्थित रहता है और हम सब तथा सारा ससार उसी में लीन हो जाते हैं । वह ज्योतिस्वरूप मण्डलाकार है ग्रीष्म के प्रचण्ड मध्याह्न सूर्यो की करोड़ों की सत्या में जैसी प्रभा होती है वैसा है । आकाश के समान विस्तीर्ण है सर्वव्यापक है विनाश रहित है योगिवृन्द के द्वारा सुख से दिखलाई पड़ता है इसको वे ही रात दिन ध्यान करते हैं । परमानन्दस्वरूप परमानन्द का कारण पर प्रधानपुरुष निर्गुण है और प्रकृति से परे है । वहींपर सम्पूर्ण वीजरूपा प्रकृति लीन रहती है जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति, सूर्य में प्रभा, दुग्ध में धवलना, जल में शीतलता, आकाश में शब्द, पृथ्वी में गन्ध वैसे ही निर्गुण ब्रह्म और प्रकृति का सम्बन्ध है । सृष्टि के आरम्भ होते ही वह सगुण रूप बनकर उपरिधत होता है और त्रिगुण प्रकृति छायामयी वहाँ विराजमान रहती है यह सुन नारदजी ने भगवान् शङ्कर से प्रार्थना कर बिना ली ।

भगवान् नारायण के पास नारदजी का शुभागमन जब उन्होंने श्रीकृष्ण को ध्यान में मग्न देखा तो निम्नलिखित प्रश्न पूछे। हे प्रभो ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता इन्द्र और मुनिजन किसका ध्यान करते हैं ? सृष्टि किससे होती है और कहाँ लीन हो जाती है ? सम्पूर्ण कारणों का करनेवाला विष्णु कौन हैं ? उनका स्वरूप और कर्म क्या हैं ? यह आप बतलाने की कृपा करें।

भगवान् नारायण ने उन देवाधिदेव भगवान् पूर्ण कलावतार श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की स्तुति करते हुए श्री नारदजी से उन्हीं के चरणों में ध्यान लगाने का आदेश दिया।

ब्रह्मवैवर्त के ब्रह्मखण्ड की विषय-सूची समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः ।

२ प्रकृति खण्ड

अध्याय

विषय

पृष्ठाङ्क

१

प्रकृतिचरितसूत्रम्

१०२

सृष्टि में जो कुछ शक्ति विभूति का दर्शन होता है वह सब सर्वव्यापी परब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति प्रकृति का ही विलास है। उस अनन्त ब्रह्माण्डों की नायिका महादेवी प्रकृति के सृष्टिविधि में पाँच प्रकार का रूप उपलब्ध होता है गणेश जननी भगवती पार्वती, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी और सरस्वती एवं सावित्री। सभी स्त्रियों में ये ओत-प्रोत हैं व्याप्त हैं। यह अनादिकाल से ही सृष्टि के जनन पालन-पोषण में तत्पर हैं इनकी महिमा किसी से भी नहीं कही जासकती। प्रकृति की यही व्युत्पत्ति है कि प्र=प्रकृष्ट का वाचक, कृति=सृष्टि का वाचक। सृष्टि प्रक्रिया में जो देवी प्ररूप रूप में विराजमान रहती है वह प्रकृति है।

स्त्री मात्र की प्रतिनिधि पृथ्वीरूपा है। जैसे पृथ्वी अपने प्रणव श्वास से वायु के द्वारा तीन गुण हैं, मत्स्व, रजस् और तमस्! प्र=प्रकृष्ट सत्त्व कृ=रजस् त्वि=तमस् त्रिगुणात्मिका सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न और सम्पूर्ण सृष्टि करने में प्रधान प्रकृति कहलाती है। सृष्टि के आरम्भ में योग से विराट ने अपना दो रूप बना दक्षिण अर्द्धाङ्ग से पुरुष और वामाङ्ग से प्रकृति हुईं जैसे परमार्थतः स्त्री और पुरुष का भेद नहीं है सम्पूर्ण संसार ही ब्रह्ममय है। सृष्टि रचने की इच्छा करने पर श्रीकृष्ण के द्वारा प्रकृति ईश्वरी पैदा हुई। उसकी आज्ञा से ही पञ्चविध भेद या भक्तों पर कृपा करने की इच्छा से भगवती प्रकृति के पाँच प्रकार के रूप हो गये

यह जड़ चेतन सब मे अधिष्ठात्री रूप मे रहती है । भगवान् की प्राणभूता है जो-जो पदार्थों मे प्राणियों मे सरब है वह सब इसी की प्रतिच्छाया है या यह सब यही है क्रमशः दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, पञ्चतत्व दुर्गा, पार्वती, पृथ्वी, राधा राक्षिणी शक्ति, लक्ष्मी जनतन्त्र, सरस्वती आकाश, सूर्य एवं सावित्री का विधिपूर्वक वर्णन ।

२

देवदेव्युत्पत्तिः

१०६

प्रकृति के बिना परब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकते जैसे विना सोने के स्वर्णकार कुण्डल नहीं बना सकता और विना मिट्टी के कुलाल घड़ा नहीं बना सकता वैसे ही प्रकृति के बिना ब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकता । समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति, यश का नाम भाग है । उससे युक्त होने से प्रकृति भगवती और भगवती से युक्त भगवान् । श्रीकृष्ण और राधा की विशेष नामों के साथ व्युत्पत्ति और उनकी अलौकिक ह्लादिनी शक्ति राधा की विशेष प्रशंसा । भगवती राधा के साथ भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी की आयु तक सुखसम्भोग किया उससे प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान तथा अयः प्राण हुए । इसके बाद उनके जिह्वा के अप्रभाग से शुद्धवर्ण की मनोहर कन्या का आविर्भाव हुआ वह पीतवस्त्र पहने हुए थी वीणा पुस्तकधारिणी रत्न आभूषणों से सज्जित सम्पूर्ण शास्त्रों की अविदेवता थी । इसी के बाद श्रीकृष्ण द्विधा रूपवाले हो गये । दक्षिण अर्ध दो भुजावाला, और वामार्द्ध चार भुजावाला बन गया । उस वाणी को श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम इसकी कामिनी बनो । उन नारायण के साथ वह मनोहरा कन्या स्त्री रूप मे वैकुण्ठ मे चली गई । सौ मन्वन्तरों तक स्वर्गमय दिव्य को राधिकेजी ने सेवन किया और उसे क्रोध से जल मे फेंक दिया इस प्रकार ब्रह्माजीने शाप दिया कि तुमने कोपशील होकर उसको छोड़ दिया अतः अब तुम आगे से विना पुत्रों की होजावोगी।

जब यह विश्व (गर्भ का विश्व) ब्रह्माजी के सम्पूर्ण रूप तक बड़ा में रहा तो समय पर उनका जो रूप हो गये उनके बीच में से गीता हुआ एक बालक अपने प्रकाश से सर्गों सूर्य की उत्पत्तिगाष्ट को भी फीका करता हुआ निकला । वह सूर्य से व्याकुल था । अपने महाविगाद् रूप में भगवान श्रीकृष्ण के १. वें अंश से अपना रूप प्राण चित्रा । वह सूर्यो विश्व का आधार है और उसके प्रत्येक गोलद्वार में सूर्यो विश्व के ब्रह्माण्डों के प्रवेश गलित है । इन विश्व संख्याओं को भगवान भी नहीं बता सकते । प्रति विश्व में ब्रह्मा, विष्णु और शिव है पाताउ से ब्रह्माण्ड तक ब्रह्माण्ड है इससे ऊपर ब्रह्माण्ड है इससे ऊपर पचास कोटि योजन पर गैटोके है । मात्र द्वीपराठी पृथ्वी मात्र मात्र बुरु १८ द्वीप द्वीप समेत अन्त्य पर्वतों के साथ ऊपर ब्रह्माण्ड, महागोंक, जनडोक और नीचे मात्र पाताउ, तडाकत ग्माकत आदि इनसे भी ब्रह्माण्ड से ऊपर तपोडोक, मन्व्यडोक और ब्रह्माण्ड की स्थिति है । इन प्रकार से पृथ्वी के अन्तर्ग में सबकुछ है । पृथ्वी के नाग होने पर सबकुछ छर हो जाता है । वह विगाद् भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगा और प्रसुके प्रगट होने से उद्वान पाद्य उद सृष्टि निर्माण में लग गया ।

४	सम्भतीपूजाविधानं मन्त्रद्वय	११७
	सम्भती मूढमन्त्रः	११८
	सम्भतीविचवर्णनम्	१२१

प्रकृति के पक्षधरों में से एक मन्त्रों के मन्त्रों में पूजादि विधान पृथ्वी पर भगवान नागनाग ने संज्ञेप से दुर्गा और भगवती गारा के मन्त्रों में न बनाकर जागन्म में सम्भती पूजा का विधान कराया । जिसे करने से सूर्य भी पण्डित बन जाता है । जब श्रीकृष्ण की की के मुख से यह उचर ब्रह्मों कामनिधि

उम देवी ने भगवान् श्रीकृष्ण की उन्हा की तब श्रीकृष्ण ने कहा हे माथि
 तुन मेरे अंग नागायम को मजो क्योंकि यहाँ पर रहने से गया जैमी बलवती
 तुन मानिनी के मानने टिठ नही मकोगी और न तुन्दारा कल्याण होगा। अतः
 नागायम को खी बनकर रहो और तुन्दारी पूजा भाव शुद्ध पञ्चर्मा को विद्यारम्भ
 में मारे मनुष्य करेगे यह भेग धरदान है। उनके अनेनर मरन्वती के मूलमन्त्र,
 और मरन्वती कवच का विधान बतलाया गया है। जिमको करने से मनुष्य
 त्रैलोक्य विजयी तथा वृद्धनति के मनान महावाग्नी और कवीन्द्र हो जाता है।
 वान्तव में यह कवच मन्पूर्ण इच्छित वन्तुओं को देनेवाला है।

५

याज्ञवल्क्योक्तवार्णान्तवः

१२२

श्री याज्ञवल्क्य ने वाग्देवी मरन्वती को जिम स्त्रोत्र से प्रसन्न किया उससे
 भगवान् सूर्य के आदेग से उन्हे निद्रि निल गडे। याज्ञवल्क्यजी के द्वारा जो
 मगवती का स्त्रोत्र है उसकी फलश्रुति और विधान का वर्णन।

६

गङ्गालक्ष्मीमरन्वतीनामुपाख्यानम् मङ्गलक्षमत्र

१२५

मगवती मरन्वती गङ्गा के शाप से भाग्न में नदी रूप में अवतीर्ण हुई और
 उसमें स्नान करने से अनन्त पुण्यों का फल। लक्ष्मी, मरन्वती और गङ्गा ये तीन
 भगवान् नागायम की खी हैं। अपने सौतेले डाह के कारण गङ्गा और मरन्वती का
 कदु वादविवाद और मरन्वती को मर्त्यलोक में नदी रूप में जाने के लिये गङ्गा का
 शाप और बदले में गङ्गा को मरन्वती का शाप। त्रि नारायण द्वारा महालक्ष्मी
 जी को मर्त्यलोक में जाकर त्रैलोक्यपावनी तुलसी रूप में रहने को आदेग करना।
 मनी को जाने के लिये नागायण का आदेग। गङ्गा को गिबम्भान के लिये और

सरस्वती को ब्रह्मा के स्थान पर जाने को कहा गया तदनन्तर स्त्री के बशीभूत रहनेवाले पति के पतन का वर्णन । फिर सरस्वती, गङ्गा तथा लक्ष्मी का भगवान् को अपने लोक में आने के लिये अवधि का पृष्ठना और भगवान् का उन्हें आधे अंश से अपने पास और आधे से मर्त्यलोक में रहकर जन कल्याण करने का आदेश देकर सान्त्वना देना । भगवान् के भक्तों के चरण जहाँ टिके वह स्थान पवित्र हो जाता है भक्त अपने चरित्रों से ससार का कल्याण कर अन्त में भगवान् में मन लगाते हैं।

७

कालकालेश्वरगुणनिरूपणम्

१३०

भगवती गङ्गाजी द्वारा मर्त्यलोक के कल्याण के लिये संसार में अवतरण । भगीरथ के प्रयत्नो द्वारा भगवान् शङ्कर के शिर पर धारण कर सम्पूर्ण प्रवाह से हिमालय से निकलना । भगवती महालक्ष्मी पद्मावती नाम से और फिर तुलसी रूप से जनकल्याण के लिये इस लोक में आई । कलिके पांच हजार वर्षों के बीतने के बाद यद्वा पर रहकर भगवान् की आज्ञा से वैकुण्ठ में गमन । केवल काशी और वृन्दावन तीर्थ ही प्रधान रूप से यहाँ पर रहेंगे । सभी आस्तिक सम्प्रदाय को प्रसन्न करनेवाली परम्पराय धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त हो जायेंगी । इसके बाद सभी मनुष्य आचार हीन विष्णुभक्ति विमुख, शठ, क्रूर, दाम्भिक, हिंसक और दुराचारी बन जायेंगे वहीं भी गुणीजन का आदर नहीं होगा । सभी सारपूर्ण वस्तुय निःसार हो जायेंगी । श्राणी वर्ग शौर्य और प्रतापहीन हो जायेंगे । सभी बालक स्त्री और पुरुष कुत्सित एवं विकृताकार हो जायेंगे । आपस में बातचीत करते हुए भी लोग अपराधों का प्रयोग करेंगे । सभी प्राणों व नगरों में अरण्य के समान दृश्य हो जायेंगे । सभी नागरिकों पर कर इतना लाद दिया जायगा कि वे उम्र वृद्ध से अपना जीवनन्तर ऊँचा नहीं बना सकेंगे और सभी स्थान कृषि से रहित हो जायेंगे । सभी मिथ्यावादी, धूर्त, असत्यवादी होंगे । पापी लोग पुण्यात्मा माने जायेंगे, लम्पट पुरुष जितेन्द्रिय होंगे, पुथली पतिव्रता मानी जायगी । पातक करनेवाले

मरपंच कहलायेंगे, भगवान् के नाम पर लोग कमाई करेंगे और कलि आने पर सभी म्लेच्छमय बन जायेंगे। एक हाथ के वृक्ष हो जायेंगे और अद्भुतमात्र पुरुष हो जायेंगे ऐसे घोर समय में उधान के बाद जब पतन की चरम सीमा पहुंच जायगी तो भगवान् नारायण की कला के अंश सम्पूर्ण बलिपुरुषों में श्रेष्ठ विष्णु-यशा नामक ब्राह्मण के पुत्र कल्की रूप में अवतार लेकर दुष्टों से शून्य इस भूमण्डल को तीन रात में बना देंगे। उस समय घोर वर्षा होगी और बारह आदित्य फिर उदय होकर पृथ्वी को सुखा देंगे। इसके बाद कल्प के अनुसार सत्ययुग का आगमन होगा और फिर वेदप्रयुक्त धर्म का प्रचार होकर सभी प्राणियों का सार्वत्रिक विकास होगा सभी धर्मपरम्पराओं का पालन करेंगे। भगवान् के बड़े भारी भक्त और श्रुति स्मृति पुराणों के अच्छे ज्ञाता सभी होंगे। अधमों का लेशमात्र भी फिर नहीं चलेगा। धर्म पूर्ण चारों पादों से युक्त सत्ययुग में होगा, त्रेता में तीन पादोंवाला होगा, द्वापर में दो पाद का रहेगा, कलि में एक पाद वाला और वह भी फिर लुप्तप्रायः हो जायगा। मनुष्यों के ३६० युग बीतने पर देवताओं का एक युग होता है एवं देवताओं के ७१ दिव्ययुगों से एक मन्वन्तर या इन्द्र की आयु का प्रमाण बतलाया गया है १०८ ब्रह्मा की आयु बीतने पर प्राकृत लय हो जाता है। भगवान् कृष्ण में सम्पूर्ण भूतप्राण लीन होता है अतः इसका नाम यथार्थ रक्षता गया यह सब भगवान् कृष्ण की कालकालेश्वर की लीला बतलाई है।

८

पृथिव्युपाख्यानम्

१३५

पृथिवी पूजामन्त्रः पृथिवीस्तोत्रञ्च

१३७

हरि के निमेष मात्र से ब्रह्मा का पात हुआ उसको प्राकृतिक प्रलय कहा गया है। उस समय लीन प्राणी भगवान् में समा जाते हैं और पृथिवी की स्थिति कहां रहती है और विधान के समय उसका आविर्भाव कैसे हो जाता है। इस

प्रकार नारदजी के पुल्लने पर नारायण ने भगवान् श्रीकृष्ण को ही सबका उत्पत्ति और तिरोभाष का स्थान बतलाया । मधुकैटभ के भेद से यह सृष्टि बनी ऐसा कोई कहते हैं भेद से उत्पन्न होने से इसका नाम भेदिनी पड़ा । भगवान् वाराह कल्प में इसे समुद्र में से ऊपर ले आये । पृथ्वी की स्तुति ।

६ भूमिदानफलतद्वरणेपापञ्च १३६

भूमिदान का फल यदि उसका हरण कोई करे तो नरक का गामी होता है:-

स्वदत्ता परदत्ताम्वा ब्रह्मवृत्तिहरेत्सु यः । स तिष्ठति कालसूत्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६॥

भूमि की निरुक्ति सम्पूर्ण प्राणियों का आवास होने से उसकी भूमि सञ्ज्ञा है । वसु=धन रत्नादि देने से उसका वसुन्धरा नाम सार्थक है हरि के उरु से यह जानी गई इसलिये उर्वी नाम रक्ता गया और सम्पूर्ण प्राणिमात्र एवं स्थावरजङ्गम को धारण करने से धरा, धरित्री धरणी हुआ ।

१० गङ्गोपाख्यानम् १४०

कौथुमोक्त गङ्गाध्यानम् गङ्गास्तोत्रञ्च १४५

भगवती गङ्गा के अवतरण प्रसङ्ग में सगर के वंश का विस्तार से वर्णन

भगवती गङ्गा को सरस्वती के शाप से अनादिकाल में सगर के पुत्रों के उद्धार के लिये मर्त्यलोक में जाने के लिये श्रीकृष्ण भगवान् का आदेश । गङ्गा की अमित महिमा सम्पूर्ण पापताप का नाश करनेवाली यह भगवती गङ्गा है । जाह्नवी के तटपर उसकी पवित्र वायु के सेवन से ही दशगुणा पुण्य लाभ होता है । सामान्य दिनों में केवल स्नानमात्र से ही असंख्य पाप नष्ट होते हैं । विशेष पर्वों पर तो कहना ही क्या । अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के अवसर पर चातुर्मास्य के समय स्नान, दान एवं पुण्य का अनन्तकौटुम्भित फल कहा गया है ।

भगवती गङ्गा की स्तुति इनके पूर्व भगवान ने गङ्गा जी को कई बरदान दिये जिसमें गङ्गा नाम स्मरणपूर्वक नर्गवामी होनेवाले मनुष्य की भगवान् के यहा सार्वभ्य मुक्ति विशेष बताई है ।

भगवती भागीरथी की भगीरथ ने जो कौमुदशाखा की स्तुति की उनका नविसुग वर्णन ।

	गङ्गोपाख्यानम्	१४७
११	गङ्गारूपनोहित कृष्णम्प्रति राधाया उपालम्भः	१४६
	गङ्गाप्रति क्षुपितया राधया गङ्गामन्निपानम्	१५१

भगवती गङ्गा की विभूति कलियुग के पाच हजार वर्ष बीतने पर कहा चली गई । इस पर भारद्वाज ने गोलोक में गङ्गाजी की राधाकृष्ण के शरीर से उत्पत्ति बताकर उस परमपावन धारा की प्रशंसा की और गोलोक में रासेश्वरी राधा के श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दचन्द्र के बाएँ अङ्ग में विराजने पर गङ्गाजी उनके रूप तथा गुणों पर मोहित हुई । इस पर राधा ने श्रीकृष्ण से कहा कि आप बार-बार गङ्गा को ही देख रहे हैं । अतः आप गोलोक में चले जाय आप इसे बहुत अधिक चाहते हैं और आप मेरे थोड़े शब्द से ही क्षिप गये । आपने बराबर सारे विरव के प्राणिवर्ग को कुछ न कुछ विभूति दी है आपका क्या क्या गुणानुवाद कहा जाय । राधा द्वारा गङ्गाजल के पान की इच्छा और ब्रह्मादि देवों द्वारा भगवती गङ्गा की प्रशंसा ।

भगवान् नागयण को किं नारदजी ने प्रश्न किया कि भगवान् शङ्कर के सङ्गीत में सुन्ध होकर जब श्रीकृष्ण एवं राधिका द्रव रूप में होगये तो क्या हुआ और उपस्थित लोगों ने क्या किया इसे विस्तार से समझाइये । भगवान् श्रीनारायण बोले—राधाजी के महोत्सव पर जब कार्तिकी पूर्णिमा का दिन था रामनण्डल की सुन्दर शोभा हो गयी थी उमी मनत्र भगवती वीणापाणी मरस्वती

ने सुन्दर शास्त्रीय मङ्गीत से वातावरण को विमुग्ध कर दिया। इसपर ब्रह्माजी, भगवान् कृष्ण, राधिकाजी एवं लक्ष्मीजी अमूल्य रत्न उन्हें भेंटस्वरूप दिये और भगवती दुर्गा ने विष्णुभक्ति दी। संसार में उनके द्वारा धर्म वृद्धि के साथ यश अर्जन हो यह धर्म ने वरदान दिया। अग्नि ने विशुद्ध वस्त्र दिये और वायु ने मणिनूपुर दिये। फिर ब्रह्माजी ने शङ्कर देवाधिदेव को रासोहासयुक्त श्रीकृष्ण सङ्गीत के लिये प्रेरणा की। इसपर भगवान् शङ्कर ने इतना मुललित गान किया कि सभी देवतावृन्द मूर्च्छित होगये जैसे चित्र में चित्रित पुत्तलिका हो। एक क्षण में जब चेतना हुई तो वहा पर जल से पूर्ण स्थल को देखा तथा श्रीराधाकृष्ण को अन्तर्धान। इसपर सभी गाणगोपीवृन्द तथा देवता ब्राह्मण ऋषे स्वर से रोने लगे। ध्यान लगाकर जब ब्रह्माजी ने देखा तो उन्हें सारा रहस्य हृदयङ्गम हुआ कि भगवती राधा के साथ श्रीकृष्ण पिघलकर जल रूप हो गये। तब ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीकृष्ण की आराधना की और उन्हें स्वरूप का दर्शन देकर वाञ्छित वर देने की प्रार्थना की। इसपर आकाशवाणी हुई कि सम्पूर्ण भक्तजन पर दया करनेवाली यह जलरूपा मेरी ही शक्ति है हम दोनों के रूप की फिर दया आवश्यकता है। इसके दर्शनों से ही मेरा परम पद प्राप्त होगा। यदि आपलोग मुझे ही देखना चाहते हैं तो भगवान् शङ्कर मेरी आज्ञा का पालन करें और ब्रह्माजी भी वेदाङ्ग शास्त्र को बनाव। तिससे संसार में सभी प्राणी लाभ उठाकर मुझे प्राप्त होव। यदि यह सब आप सबको मान्य हो तो मेरी प्रत्यक्ष मूर्ति के दर्शन सुलभ है। इसपर ब्रह्मा ने शङ्करजी को प्रमत्त होकर कहा और शङ्करजी ने गङ्गाजल हाथ में लेकर सत्य प्रतिज्ञा की कि भगवान् विष्णु की मायादि के सम्बन्ध में मन्त्रशास्त्र की रचना कर वेदों का सार उपस्थित करूँगा जिससे भगवान् कृष्ण की आज्ञा का पालन होसके। इसलिये कोई भी व्यक्ति गङ्गाजल लेकर झूठ न बोले नहीं तो ब्रह्मा के वय तक नरक में रहना होगा।

इसपर भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी आज्ञादिनी शक्ति राधिका फिर

आविर्भूत हुए इस प्रकार गङ्गाजी की उत्पत्ति एवं उनकी महिमा के जगन्मान्य प्रभाव का वर्णन हुआ—

१२

गङ्गाया विवाहः

१५६

लक्ष्मी, मरुन्वती, गङ्गा और लोहपावनी तुलसी भगवान् नागयण की ये चार प्रिया हैं। भगवती गङ्गा कैसे उनकी पत्नी बनी इस प्रकार नारदजी के पूछने पर ब्रह्माजी के मुख से कहे गये उपाख्यान को नागयण भगवान् ने बतलाया। उन राधाकृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न गङ्गाजी को गवा ने मान से न देवना चाहा और उसे पान करने को अधीर हो गई तो गङ्गा श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों में मना गई। भगवान् विष्णु ने सम्पूर्ण देवगण के मनका अभिप्राय जानकर अपने पैरों के नख के अग्रभाग से उसे गोलोक से बाहर निकाल दिया। उसे राधिका मन्त्र की दीक्षा दी और ब्रह्मा उसे लेकर नागयण को गान्धर्व विवाह से ग्रहण कराने के लिये ले गये। इस प्रकार गङ्गाजी सहित तीन भार्या भगवान् विष्णु के हुई और तुलसी के साथ चार का योग हो गया।

१३

तुलस्युपाख्यानम्

१५७

नारदजी द्वारा तुलसी के कुल, जन्म और प्रभाव के मन्वन्ध में पूछे जाने पर भगवान् नागयण ने दक्ष मावर्णि मनु से लेकर धर्म मावर्णि, विष्णु मावर्णि, देव मावर्णि, राज मावर्णि और वृषभज की वंश परम्परा बतलाई। वृषभज की शिवनिष्ठा प्रसिद्ध थी उसने भगवान् नागयण, लक्ष्मी और मरुन्वती किमीको भी अपना इष्टदेवता न माना। इसपर सूर्य ने उसे भ्रष्टात्री होने का शाप दिया। इसपर सूर्य के पीछे भगवान् शङ्कर त्रिशूल लेकर दौड़े और उन्हें ब्रह्माजी तथा विष्णु के यहाँ शरण लेने को बाध्य किया। देवता लोग विष्णु की स्तुति करने लगे। तब विष्णु ने उन्हें अभय का आश्वामन दिया और शङ्करजी के आनेपर

विष्णु भगवान् की स्तुति करने पर भगवान् विष्णु ने उन्हें आने का कारण पूछा और वृषध्वज को शाप देकर भागे हुए सूर्य के पीछे आने का कारण बताकर विष्णु से वृषध्वज के शाप के उद्धार का उपाय पूछा। इसपर भगवान् ने वृषध्वज के पुत्र हंसध्वज और दो पौत्र धर्मध्वज एवं कुशध्वज के वाद लक्ष्मी प्राप्ति की बात कह अन्तर्धान हो गये।

१४	वेदवत्याश्चरित्रम्	१६०
	वेदवत्याः सीतारूपेणजन्म	१६०

भगवान् नारायण ने कहा कि धर्मध्वज और कुशध्वज दोनों ने कठिन तपस्या से लक्ष्मी को प्रसन्न कर उससे इच्छित वरदान प्राप्त किया। कुशध्वज की पत्नी मालावती के कमला लक्ष्मी की अंशभूता एक कन्या उत्पन्न हुई। वह जन्मतेही वेदध्वनि करती हुई उठ खड़ी हुई इसलिए उसे वेदवती नाम से पुकारा जाता है। उसने भगवान् विष्णु की कठिन तपस्या पुष्करक्षेत्र में एक सन्वन्तर तक की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर आकाशवाणी हुई।

हे सुन्दरी दूसरे जन्म में माक्षात् भगवान् हरि तुम्हारे पति होंगे फिर वह सन्तुष्ट नहीं हुई और गन्धमादन पर्वत पर जाकर पहले से भी कठिन तपस्या करने लगी। वहापर रावण को आया देव उसे अतिथि सुलभ सत्कार भावना से सुखादु कन्दमूल फल और जल से सम्मानित किया। उस पापी ने एकान्त में ऐसी यौवन प्राप्त स्त्री को देव काममोहित होकर पूछा हे सुन्दरी तुम कौन हो ? वह मूर्ख कामवाण से पीड़ित होकर उसे हाथ से ज्योंही खींचकर शृङ्गार करना चाहा वैसे ही उम मनी ने कोप दृष्टि से उसे स्मित कर दिया और भगवती पद्मा की आराधना से वह स्वप्न हो गया और वह मययोगद्वारा देह को छोड़कर परमधाम सिधार गई। रावण भी उसे गङ्गाजी में प्रधाहित कर अपने घर चला गया मार्ग में वह नाना प्रकार से पश्चात्ताप करता हुआ रिताप करने लगा। वही

कालान्तर मे साधु जनरूपी सीतारूप मे अवतीर्ण हुई और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम को अपनी कठिन तपस्या से पतिरूप मे पाकर धन्य-धन्य बन गई इन्ही के कारण रावण अन्न मे मारा गया । भगवती सीता के साथ अपने पिता श्री के सत्य वचनों को पालन करने के लिये जब राज्यपाट को छोड़कर राघवेन्द्र रामचन्द्र बन को गये तो समुद्र के निकट विप्रवेपधारी अग्निदेव से उनका साक्षात्कार हुआ । श्रीरामचन्द्र को इस प्रकार दुःखी देखकर वह बहुत दुःखी हुए और उन्होंने श्रीराम से कहा कि भगवन् अब आपके लिये सीताहरण का समय आ गया है देव दुर्निवार्य है मेरी पुत्री को मेरे पास छोड़कर उसकी छाया आप अपने पास रखें, फिर परीक्षकाल आने पर आपको सीता देदूँ गा देवताओं ने मुझे भेजा है मैं ब्राह्मण वेप में अग्नि हूँ । तब राम ने दुःखी होकर लक्ष्मण के बिना जाने इसे स्वीकार कर लिया और योग से अग्नि ने माया की सीता बनाकर उसी के समान गुण, रूपवाली श्रीराम को देदी । इसी समय रामने सोने का मृग देखा सीता ने उसे लाने के लिये श्रीरामजी को कहा । अब लक्ष्मण की देखरेख मे सीता को छोड़ रामचन्द्र ने मायामृग के पीछे रहकर उसे मार दिया और वह परमधाम को चला गया । उसने मरते मरते लक्ष्मण को सम्बोधन कर प्राण छोड़े । इसपर जानकी ने भगवान् रामचन्द्र को खोजने के लिये लक्ष्मण को भेजा और अकेली सीता को पाकर दुष्ट रावण ने छलकर लङ्का मे ले जाकर रक्खा । फिर राम ने जानकी का सारा पता पाकर वानरों की सहायता से उस दुष्ट रावण को मार डाला और सीता को प्राप्त किया । अग्निपरीक्षा के लिये जब सीताजी ने अग्निप्रवेश किया तो छाया की सीता ने अग्नि से अपना कर्तव्य पूछा । तब उन्होंने पुष्कर मे जाकर तपस्या करने की आज्ञा दी और तीन लाख दिव्य वर्षों तक तप कर स्वर्ग मे लक्ष्मी बन गई । सत्ययुग में कुशाध्वज की कन्या वेदवती, त्रेता में रामपत्नी और द्वापर में त्रैपदी रूप में हुई । अग्निप्रवेश के समय निकलकर जब शङ्करजी से पतिव्रत सीता ने ५ बार पति दो पति दो यह कहा तो शङ्कर ने पाँच पति होंगे यह बर

दिया। इसी से वह पाण्डवों की प्रिय स्त्री द्रौपदी बनी। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लंका में विभीषण को राज्य देकर अयोध्या लौट कर ११ हजार वर्ष तक राज्य कर वैकुण्ठ मिथार गये।

१५

धर्मध्वजपत्न्या माधव्यातुलस्याजन्म

१६४

धर्मध्वज की पत्नी माधवी के पद्मिनी नामक मनोहर कन्या का जन्म हुआ। उसकी अप्रतिम शोभा से लोग उसकी तुलना करने में असमर्थ रहे इसलिये उसे तुलसी नाम दिया गया। उसने भी भगवान् नारायण मेरे पति हो इस कामना से बड़ी कठिन तपस्या की, गर्मी में पश्चाग्नि तप, शरद में जल में रहकर और वर्षा में श्मशानों में रहकर उसने कड़ी साधना की। कई हजार वर्ष तक फल और जल पर रही, फिर पत्तों पर, फिर वायु पर, फिर निराहार रहकर उसने भगवान् ब्रह्मा को वर देने को प्रमत्त कर लिया। इसपर तुलसी ने पूर्वजन्म की कथा बतलाई और भगवान् नारायण को पति रूप में पाने की इच्छा कही। ब्रह्माने कहा भगवान् कृष्ण के अङ्ग से उपन्न सुकामा नामक गोप का शंखचूड़ के रूप में राक्षस वंश में जन्म हुआ है और उसको तुम तपस्या से मिलोगी और याद में तुलसी का पैदल धन सारे संसार में पवित्र बन जाओगी। ब्रह्मा ने फिर तुलसी को राधा मन्त्र की दीक्षा दी और उसे चारह वर्ष जप कर तुलसी द्वारा तपस्या से विराम लेना।

१६

तुलस्या मह शङ्खचूडम्य मेलनं कथोपकथनञ्च

१६७

शङ्खचूडवृत्तान्तम्

जब तुलसी वन में तपस्त्रांतवाम कर रही थी तो वह कामन्दर से पीड़ित रहने लगी। भगवान् विष्णु की तपस्या क्रिया हुआ किमीशाप से मत्स्यलोक में दैत्य योनि पारर शंखचूड़ श्रीकृष्ण के मन्त्र का जप कर विवि के विधान से वहापर आ पहुंचा। इस प्रकार व्याकुल वह तुलसी अपने वस्त्र से अपना मुंह ढँककर

उस युवा पुरुष को बड़ी लज्जा से ध्यानपूर्वक देखने लगी। शङ्खचूड़ ने इस रमणी को देखकर एकान्त में आने का कारण पृथ्वा और उसके सम्बन्ध में विल्लार से जानना चाहा। इसपर तुलसी ने व्यर्थ में ही किसी अज्ञात कुलवाली लड़ना से वार्तालाप करना उचित नहीं समझा और धर्मध्वज की पुत्री के रूप में तपस्या करने की इच्छा से वन में आने का कारण बतलाया। साथ ही तुलसी ने स्त्रीजीवन की भर्त्सना की। इसपर स्त्री के दो रूपों की विशद विवेचना कर लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, मावित्री, राधा रूप में स्त्रीमात्र को बताकर उनसे होनेवाले सम्पूर्ण संसार के अतीव उपकार गिनाये जो सात्विकतापूर्ण हैं। कृत्यारूप में स्त्रियां संसार के लिये घातक हैं। शङ्खचूड़ ने ब्रह्माजी की आज्ञा से विवाह करने का अपना प्रस्ताव रक्खा इसपर तुलसी ने योग्य वर कन्या से ही आगामी गृहस्थ जीवन अच्छा रहता है और वर के लक्षण बतलाये। जब सारी बातें हो गईं तो ब्रह्माजी प्रगट हुए उन्होंने शङ्खचूड़ को तुलसी के साथ गान्धर्व विवाह करने की बात कही क्योंकि चतुर मनुष्य का चतुर दक्ष स्त्री के साथ सङ्गम गुणवान् ही होता है। इसपर तुलसी का शङ्खचूड़ के साथ गान्धर्व विधि से विवाह सम्पन्न हो गया वह उसे तपोवन से दूसरे स्थान पर ले गया। वह दुर्दान्त दैत्य अपने नगर में जाकर स्वच्छन्द विहार करने लगा। इससे देवतामृन्द बहुत व्यथित हुए और वे सीधे ब्रह्माजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी उनको साथ लेकर शिवलोक गये और शङ्करजी के साथ वे सभी वैकुण्ठलोक में भगवान् विष्णु के यहाँ अपनी पुकार सुनाने गये। भगवान् के द्वारपालों ने जब शिवजी एवं ब्रह्माजी के साथ देवताओं का आगमन सुनाया तो उनमें सबको अन्दर लिवाने की आज्ञा दी। इसपर सभी विष्णु की सभा में चले गये और भगवान् के अलौकिक प्रभाव की प्रशंसा करते हुए आने आने की बात ब्रह्माजी को अपना प्रतिनिधि बनाने कही। तब भगवान् ने शङ्खचूड़ के पूर्वजन्म की कथा कही कि किम प्रकार वह मुदामा नामक गोप था और राधाजी के शाप से उसे दानवी योनि मिली। फिर राधा को बहुत

समझाया गया तो उन्होंने कहा कि एक आये क्षण में शाप का पालन कर वह फिर आ जायगा परन्तु गोलोक का आधा क्षण तो एक सन्वत्तर के बराबर होता है। हे ब्रह्मन् ! मेरी शूल लेजाकर शङ्कर उमसे युद्धकर उमकी योनि छुड़ा दे तो परम कल्याण हो क्योंकि उमको यह वर दिया गया है कि जब तेरी पत्नी का सतीत्व भङ्ग होगा तो वहीं पर उमकी मृत्यु होजायगी। मैं तुलसी का सतीत्व भङ्ग करूंगा और उसके साथ ही तुलसी की योनि छूट जायगी तथा वह मेरी स्त्री बनेगी। तब विष्णु ने शिव को गदा दी और देवता लोग भारत में चले आये।

१७ शिवेन सह शङ्खचूडस्य युद्धार्थं पुष्पदन्तप्रेषणम् १७६

ब्रह्माजीने शिवजी को शङ्खचूड़ के संहार के लिये नियुक्त कर अपने लोक में पदार्पण किया। इधर शङ्करजी चन्द्रभागानदी के किनारे अपने कार्य के लिये और देवताओं के उद्धार के लिये जुट गये। इसके लिये उन्होंने अपने पुष्पदन्त को शङ्खचूड़ के पास दूतरूप में भेजा। पुष्पदन्त ने वड़ी कठिनता से उमके राज दरवार में प्रवेश कर शङ्कर के अभिमत युद्ध के सन्देश को कहा। उसका संक्षेप सार यही था कि सम्पूर्ण देवताओं को उनका राज्य दो। श्रीहरि ने शङ्कर को शूल देकर भेजा है कि यदि वह दैत्येश्वर ना कर दे तो युद्ध करके उन्हें राज्य दिलवा दिया जाय। शङ्खचूड़ ने हँसकर प्रातःकाल आकर युद्ध के आह्वान को स्वीकार किया शङ्कर के साथ अब उनके पार्षद एवं गण लोग जुटने लगे। सभी अर्य, योगिनीवृन्द भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, वेताल, यक्ष, रक्ष और किन्नर लोग आगये। जब शङ्खचूड़ अपने अन्तःपुर में गया तब उस माधवी तुलसी ने सब बातें सुनी तो उमने काल निकट है यह संकेत देकर सम्पूर्ण जीवन की मार बात करने को कहा शङ्खचूड़ ने इसपर भगवान् काल की महिमा बताने भगवान् कृष्ण के चरणों में हृदभक्ति करने का उपदेश दिया और अपने पूर्वजन्म की बात कहकर डाढ़स बंधाया और दोनों आनन्द में केलि विलस में मग्न हो गये।

फिर शङ्करजी ने भगवत्परायण होकर हरिगुणगान का उपदेश दिया क्योंकि वही संसार की आधि और व्याधि को छुड़ानेवाली अचूक रामबाण औषधि है। तब शङ्खचूड़ ने बड़ी विनय से शंकर भगवान् की बातों को मानते हुए कहा कि देव दानवों का यह शक्ति प्राप्ति के लिये युद्ध अनादिकाल से होता आया है। इसमें कभी उनकी जय कभी हमारी जय चली आई है। परन्तु हमारे साथ सदा ही बहुत बुरा बर्ताव हुआ है। आपको हमारे साथ होड़ लगी है जीतने पर कोई बाहबाही नहीं हारने पर बुराई होगी। शङ्कर ने सारी बातों का उत्तर देकर या तो बात मानने को कहा अन्यथा युद्ध करने की ही धमकी दी।

१७ शिवेन सह युद्धार्थं शङ्खचूड़स्य कथोपकथनम् १८१

प्रातःकाल होते-होते शङ्खचूड़ ने नित्यकृत्य से निवृत्त होकर अपने पुत्र को राज्याभिषिक्त किया और तरह-तरह के अपूर्व दान युद्धयात्रा की सिद्धि के लिये किये। उसने लम्बी चतुर्गहिनी रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सेना इन्ट्री की और पश्चिम समुद्र की ओर बढ़कर भगवान् शङ्कर से युद्धार्थं चन्द्रभागा नदी के किनारे साक्षात् उपस्थित हुआ। भगवान् शङ्कर ने शङ्खचूड़ के पूर्व वंश का इतिहास बताते हुए उस की गौरवगाथा गाई और देवताओं तथा दानवों दोनों को ही अपने-अपने अधिकार बराबर मिलें इसके लिये शङ्खचूड़ को कहा। उन्होंने उन्नति एवं अवनति दोनों को ही दिखाकर शङ्खचूड़ से देवतागणों के लिये अधिकार देने की बात कही।

१८ देवैः सह शङ्खचूड़स्य युद्धम् १८५

कालिकया सह शङ्खचूड़स्य युद्धम् १८७

शङ्खचूड़ने युद्ध के लिये पहले से ही पूरी तैयारी कर रखी थी। उसने शङ्कर को प्रणाम कर युद्ध की साजसज्जा से आगे आने को अपने अमात्य

लोगों को आज्ञा दी। अब बड़ा भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। देवता लोग भाग गये केवल कार्तिकेयन्वामी अकेले बच रहे। उनका शङ्खचूड़ के साथ घोर युद्ध हुआ इसमें दोनो दलों ने महान् वीरत्व दिखलाया और नाना शक्तियाँ भी आ धमकी कई दिनों तक लड़कर युद्ध हुआ। अन्त में, आकाशवाणी हुई कि हे कार्तिकेय ! यह दानव शंखचूड़ तुम से अवध्य है मारा नहीं जासकता।

२०

शिवशङ्खचूड़युद्धम्

१८६

शङ्करजी ने अपने गणों के साथ युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया। शिवजी को साष्टाङ्ग प्रणाम कर वह युद्ध के लिये तैयार हो गया। युद्ध एक वर्ष तक चला। दोनों दलों में वह अनिर्णयात्मक रूप में ही चलता रहा। तब भगवान् विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का वेष धरकर आये और शङ्खचूड़ से कवच की भिक्षा मांगी। शङ्खचूड़ ने कवच उन्हें दे दिया। विष्णु भगवान् उस कवच को लेकर शङ्खचूड़ के रूप में तुलसी के पास आये और माया से उसमें गर्भाधान किया और शंकरजी ने श्रीत्रिशूल से उस दैत्य को भस्म कर दिया। वह भी दिव्य शरीर धरकर गोलोक में कृष्ण भगवान् के यहाँ चला गया। वहाँ फिर सुझामा गोप बनकर श्रीकृष्णका पार्षद होकर सानन्द रहने लगा। शंकरजी ने दानव के अस्त्रिञ्जट को अपने त्रिशूल से समुद्र में डाल दिया उन्हीं की शंख जाति बनी। इसी कारण से शङ्ख का जल तीर्थ जल के समान पवित्र है और लक्ष्मीकारक है। अपना काम पूरा कर शङ्करजी शिवलोक पधार गये।

२१

तुलसीवृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम्

१६१

शालग्रामचक्रनिर्देशस्तद्गुणकथनञ्च

१६५

नारद के यह पढ़ने पर कि तुलसी में नारायण ने किम रूप में गर्भाधान किया। इसपर नारायण ने कहा कि शङ्खचूड़ के पाम से छल से कवच लेकर और

फिर उसीका रूप बनाकर तुलसी के द्वार पर विष्णु पहुच गये। वहा उन्होंने विजय दुन्दुभी बजाई। जय शब्द सुनकर अपने पति को आया हुआ देख तुलसी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने छद्मवेपधारी विष्णु से अपनी विजय का कारण पूछा। विष्णु ने सारी मनगढन्त कहकर ब्रह्मा द्वारा वीचवचाव होने से शङ्करजी के साथ समझौता हो गया और देवतागण को अपना इच्छित अधिकार मिल गया। ऐसा सुनदुःख सम्बाद सुनाया। जब तुलसी के साथ भगवान् शङ्खचूड़ वेप में रमण करने लगे तो उसे कुछ दूसरा अनुभव हुआ और भगवान् को अपने सामने देखकर उसने शाप दिया कि आपने धर्म का भङ्ग कर मेरे स्वामी को मारा हे आपमे दया की भावना तनिक भी नहीं है जाइये आप पापाण (पत्थर) के समान दयाहीन हो जाइये। आपको अपने भक्त का भी थोड़ासा खयाल नहीं रहता अतः एक जन्म मे आप अपनेको भी भूल जायेंगे। अब वह महासती जोर-जोर से रोने लगी और करुण विलाप करने लगी। इसपर भगवान् नारायण ने उसे बोध दिया हे साध्वि ! तुमने पूर्वजन्म मे मेरे लिये तपस्या की और शङ्खचूड़ ने तेरे लिये की अब सारा फलाफल भोगकर वह चला गया और तुम्हारे तप का फल देना बाकी है सो अब इस शरीर को छोड़कर दिव्य देह से रास मे लक्ष्मी के बराबर शोभावाली तुम बनोगी और तेरे केश पास के तुलसी के पुण्य वृक्ष होंगे। तेरे ही नामपर उन्हें भी तुलसी कहा जायगा। हे बरानने सभी पत्रपुष्पो मे जो देवपूजा के योग्य होंगे स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल, वैकुण्ठ और मेरे पास गोलोक मे तुलसी के वृक्ष प्रधान रूप मे काम मे आयेंगे। जहा पुण्यतीर्थस्थान है वही तुलसी के वृक्ष होंगे।

तुलसीपत्रतोयश्च मृत्युकाले च यो लभेन् ।

स मुच्यते सर्वपापान् विष्णुलोकं स गच्छति ॥२॥

तुलसी का प्रतिदिन सेवन और तुलसीकाष्ठमाला के जप से अनन्तकोटि पुण्य लाभ होता है। अपने लिये भगवान् विष्णु ने कहा कि गण्डकी नदी के तीर के पास शैलरूप मे मैं रहूंगा। वहापर नानारूप मे मेरी शिला मिलेगी उसके पूजन

से सारे पाप ताप नष्ट हो जायेंगे । तुलसीदल का शालग्राम शिलापर चढ़ाने का महान् पुण्य है जो इसे नहीं चढ़ायेगा उसको सात जन्म तक अपनी स्त्री से विद्रोह (वियोग) रहेगा । इसी प्रकार शङ्ख के सम्बन्ध में भी हरिपूजा का अविभाज्य अङ्ग कहकर बहुत प्रशंसा की गई है । एक बार भी प्रेम होने से किसी का वियोग सहा नहीं जाता है । तुलसिके ! तुमने तो एक मन्वन्तर तक उसके साथ गृहस्थ भोगा है तब तो विरह असह्य है ही परन्तु जाओ तुम्हारी पूर्वजन्म की साधना सफल हो । यह कहकर भगवान् चुर हों गये और तुलसी ने अपना शरीर छोड़कर दिव्य शरीर धारण किया और भगवान् के साथ ही वह वैकुण्ठ लोक में चली गई । यह संक्षेप में लक्ष्मी, सरस्वती गङ्गा और तुलसी की कथा हुई जो भगवान् की भाया बनी और भगवान् के देह से गङ्गी नदी पर शालग्राम शिलायें बनी जिनकी पूजा से आज भी भक्तगण इच्छित फल पाया करते हैं ।

२२	तुलसीपूजाविधानम्	१६६
	तुलसीबीजमन्त्रस्तोत्रञ्च	१६७

नारदजी के तुलसीपूजाविधान और स्तोत्र के सम्बन्ध में पूछने पर भगवान् नारायण ने जो तुलसी बीजमन्त्र, पूजाविधान और स्तोत्र बताया उसका संक्षेप से विवरण । तुलसी के दिव्य देह धारण करने पर भगवान् नारायण उसे भी लक्ष्मी के समान मानने लगे, इसपर लक्ष्मी ने अप्सन्न होकर उसे मारा । इस अपमान से लज्जित होकर तुलसी अन्तर्हित हो गई । इसपर भगवान् स्वयं तुलसीवन में गये और तुलसी बीजाक्षर से सिद्धि प्राप्त की । इसके बाद तुलसी ध्यानस्तोत्र और पूजा का संक्षेप से विवरण है ।

मद्र देश मे महाराज अश्वपति एक प्रबल प्रतापी राजा हुए । उनके मालती नामकी प्रबल महिषी थीं उनमे गायत्री की आराधना वशिष्ठजी के उपदेश से की परन्तु कोई फल नहीं मिला । तब फिर सौ वर्ष तक राजा ने तपस्या की अन्तमे उसे आकाशरागी हुई कि हे राजन् १० लाख गायत्री के जप करो । गायत्री जप का माहात्म्य । जपविधान मे हाथ के द्वारा स्वः करने के विशेष फल का वर्णन पराशरजी ने आकर बताया । गायत्री जपके पहले सन्त्वायन्दन अवश्य कर्तव्य है अन्यथा फलदानि होती है । राजा ने तदनुसार सावित्री का जप और पूजा कर उसे प्रसन्न कर दिया उसका वर भी मिला । इसपर राजा अश्वपतिके द्वारा गायत्री विधान का वर्णन ।

राजा अश्वपति ने जब सावित्री को प्रसन्न किया तो वह प्रसन्न मुद्रा में स्वयं उपस्थित होकर राजा से बोली हे महाराज जो आपके मन मे है और आपकी पत्नी को इच्छित है वह मैं दूंगी । तुम्हारी इच्छा पुत्रकी है और स्त्री की इच्छा पुत्री की है । तुम दोनों की ही पुत्री और पुत्र की इच्छा पूर्ण होगी । तब राजा के अपनी स्त्री मालती से कन्या हुई उसका नाम भी सावित्री रखा गया । वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई यहा तक कि उसकी विवाह के योग्य अवस्था हो गई । उसने भी द्युमत्तेन के पुत्र सत्यवान् को बरने का वर लिया था इसलिये राजा अश्वपति ने उसका विवाह सत्यवान् से कर दिया और सूनू दहेज के साथ अपनी पुत्री को श्वसुर गृह भेज दिया । एक वर्ष बीतने पर सत्यवान् अपने पिता की आज्ञा से काठ इन्वन लाने के लिये वन मे गया उसी के साथ दैवयोग से सावित्री भी थी ।

दुर्भाग्य से वृक्ष से गिरकर सत्यवान् मर गया। उसी समय यम भी अंगूठे के समान उसके जीव को लेकर अपने लोक में जाने लगा तो अपने पीछे आती हुई सती सावित्री को देखा। यमराज के द्वारा कर्मफल का विस्तार से वर्णन करते हुए सावित्री को यमलोक में जाने से रोकना यम द्वारा सत्यवान् की आयु क्षीण थी अतः अब वह कर्मफल के भोगने के लिये जाता है उसके लिये रोकने को मना करना।

२५

कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नः

२०५

सावित्री ने शुभ कर्म और अशुभ कर्म क्या है इसको लेकर प्रश्न किया। यमराज ने वेदविहित कर्म को ही मङ्गलकर और शुभ बतलाया तथा अवैदिक कर्मों को अशुभ कहा। कर्म को निर्मूल करनेवाली हरिभक्ति ही सच्ची है, हरिभक्त ही मुक्त है उसे किसी प्रकार की जन्म-मृत्यु एवं व्याधि की अवस्था से थोड़ा भी भय नहीं रहता। मुक्ति दो प्रकार की है एक निर्वाणरूप और दूसरी हरिभक्ति स्वरूप। कर्मरूप भगवान् विष्णु बीजरूप से विराजमान है अतः जीव कर्मफल भोगता है और आत्मा निर्लिप्त रहती है। देही आत्मा का प्रतिविम्ब है वही जीव है देह विनाश-शील है और पाञ्चभौतिक है। यह सब शरीर पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज रूप का विकार है। सृष्टिविधि में यह सब सूत्ररूप में रहते हैं इन सबका कारणरूप श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं हैं इसे जानकर बराबर स्थिर रहकर जीवन-चर्या चलाने से ही मनुष्यजीवन की सफलता है। इसपर सावित्री ने कहा आप तो बुद्धि के सागर हैं मुझे बतलाइये कि इस पतिदेव को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ। कृपया यह समझाइये कि किन कर्मों से जीव किन-किन योनियों को प्राप्त करता है, किनसे स्वर्ग मिलता है, किनसे नरकगामी होता है, किनसे भगवान् में भक्ति बढ़ती है और किन कर्मों से मुक्ति होती है। किस कर्म से रोगी और नीरोग होता है किनसे दीर्घायु और अल्पायु होता है। अङ्गहीन, काना, अन्धा, बहरा, कृपण,

प्रमादी, लोभी, पागल और नरघातक किन-किन कर्मों से होता है ? किस कर्म से चारों प्रकार की मुक्ति मिलती है ? किससे ब्राह्मणत्व और तपस्वी जीवन मिलता है ? स्वर्ग के भोग और वैकुण्ठ किनसे मिलते हैं ? गोलोक किस कर्म से मिलता है ? नरक किनसे प्रकृत का है ? उसके भेद बतलाइये । कौन नरकगामी होता है और कितने समयतक बहापर रहता है ? पापियों को किन-किन कर्मों से व्याधियाँ हो जाती हैं आदि-आदि मुझे समझाइये ।

२५ कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम्

२०७

सावित्री का वचन सुनकर विस्मित होकर यम ने कहा हे सावित्री १२ वर्ष की कन्या होकर भी तुम्हारा ज्ञान अपूर्ण है मानो पहले के विद्वान् योगियों से भी बड़ी बड़ी हो अतः मैं प्रसन्न हूँ और जैसे पूर्वकाल के असंख्य स्त्री पुरुषों ने जीवन धर्ममय बनाकर आदर्श रक्खा वैसे तुम भी सत्यवान् के साथ सौभाग्यशीला बनो अब तुम्हें जो दूसरा वर इच्छित हो वह कहो । सावित्री ने इसपर कहा कि मेरे पति के ही औरस से मेरे १०० पुत्र हों, मेरे पिता के सौ पुत्र और श्वशुर के आँखें हो जाय और मेरा गृहस्थजीवन सुखपूर्वक व्यतीत होनेपर मैं अपने पतिदेव सत्यवान् के साथ एक लक्ष वर्ष के बाद क्षिणुलोक में चली जाऊँ । इसके बाद आप क्रमशः मुझे जीवकर्मविपाक और निश्ववित्त्वारधीन विरोध रूप से समझाइये ।

यमराज ने तथास्तु कहकर जीवकर्मविपाक बताना आरम्भ किया । भारत में जन्म लेने से ही शुभ और अशुभ कर्मों का भोग भोगना पडना है क्योंकि यही पुण्यक्षेत्र है और नहीं । देवता, राक्षस, गन्धर्व, दानव और मनुष्य ये कर्म भोगने की योनियाँ हैं परन्तु सभी समजीवी नहीं हैं । अच्छे कर्मों के प्रभाव से ऊँची योनियाँ मिलती हैं बुरे कर्मों के प्रभाव से नीच योनियाँ प्राप्त होती हैं । कर्म को उन्हाड फेरने में दो प्रकार की युक्ति बतलाई गई है । एक निर्वाण परमपद और दूसरी कृप्यभगवान् की सेवा । जीव कर्म न करने से रोगी और शुभ कर्म

करने से स्वस्थ होना है। कुत्सित कर्म से अन्धा, बूढ़ा, लूटा, लगड़ा बनता है इसी प्रकार सत्रसे जन्म कर्मों के करने से नई नई सिद्धियाँ प्राप्त करता है। हे सावित्री ! मनुष्यजाति में जन्म दुर्लभ है वह भी फिर भारत में तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति में ना और भी कठिन मुर्भ करने में यह जाति ही सत्रसे उत्तम कही गई है। भारत में विष्णुभक्त द्विज की तो शोभा ही मत पूछो वह भी दो प्रकार का है सकाम और निष्काम। निष्काम विष्णुभक्त का मार्ग प्रशस्त है, उसे कहीं भी रुकावट नहीं। सत्राम मनुष्य को कर्म का भोग भोगने को बार बार जन्म लेनेको आना होता है अतः निष्काम भक्ति ही ऊँची है। भगवान् कृष्ण के आराधक गोलोक में जाते हैं और विष्णु के भक्त वैजुष्ठ में। सकाम भक्तियाँ को बार बार जन्म लेकर आना पड़ता है। फिर यम ने भिन्न भिन्न दानों की भूरि-भूरि प्रशंसा कर उनकी फलधुति बतलाई। यम ने बतलाया कि आरब्ध कर्मों का भोग होने से ही क्षय होता है। हाँ, यदि देवतीर्थ में कही मनुष्य की परम गति हुई तो कायव्यूह से वह शुद्ध हो जाता है।

२७

शुभकर्मविपाक प्रथमम्

२११

सावित्री ने स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये जो कर्म पूजने चाहे उनका यम ने विस्तार से अन्नदान, धेनुदान, वृषदान, शालग्राम शिला का दान, छत्र, पादुका, शय्या, दीपक, गणदान, अश्वदान, पालकी, पर्या, शंख चक्र, मत्स्यचक्र, घान्यादि का जो दान करता है वह विष्णुलोक में जाकर कई लाख वर्षों तक वहाँपर निवास करता है।

सतत श्री हरेनाम भारते यो जपेन्नर । स एव चिरजीवी च ततो मृत्यु पलायते ॥

इसके बाद तिलदान, विवाह के लिये आवश्यक सामग्री का दान, फल के पृथक् दान, फलदान, और अपने व्यवहार में आनेवाली सम्पूर्ण वस्तुओं का दान जो योग्य अधिकारी को देता है उसकी परमगति होती है और ऊँची गति

को प्राप्त कर विष्णुलोक में जाता है। फिर भूमिदान, स्पर्शदान, वापी, वृष तडाग और धर्मशाला आदि के निमाण का तो पुण्य करता है वह स्वयंस्वामी होकर महागजराजेश्वर बनता है उसको विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। यथाशक्ति दानादि करम करने में यदि कोई व्यक्ति असमर्थ है तो उसे भगवान् विष्णु के दिव्य नामों का जप कर अपना ऐहिक स्वर्ग करना चाहिये। समाज में सभी नाश को प्राप्त होते हैं, परन्तु विष्णुभक्त कभी नष्ट नहीं होते। कार्तिक मास में जो तुलसी और भगवान् को दीप दान करता है उसे अत्यन्त पुण्य का लाभ मिलता है। माघ में गङ्गा स्नान जप अन्गोदय हो उस समय करनेवाला मनुष्य ६० हजार वर्ष तक भगवान् के मन्दिर में आनन्द करता है। फिर पारह मासों के नाना कृत्यों का वर्णन कर उनके फल प्रतलावे हैं। भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद के साथ यम ने मन्वजान् के साथ सावित्री को लौट जाने की आज्ञा दी।

२८

सावित्रीकृत यमस्तोत्रम्

२१८

सावित्री ने यम के द्वारा भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद को सुनकर आँसुओं में आँसू बगते हुए गद्गद् होकर भगवान् हरि के नामाक्षर की अभित महिमा स्वरुं अपनेआप गाई। सावित्री जैसी मासों के द्वारा कृष्ण गुणों की प्रशंसा स्वामि-विक्र है। उनसे कृष्णभक्ति और भगवन्नाम कीर्तन से अपने कुल का उद्धार होना कहा और सुनने तथा बोलनेवाले सभी को समान रूप से उनके जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा को हरनेवाला होने के कारण लाभदायक बनठारा। भगवान् के कीर्तन से दान, व्रत, तपस्या और योगाभ्यास की निद्विषां भी तुच्छ (छोटी) जान पड़ती है। मुक्ति, अमरता और मन्मूर्ण निद्विया भी श्रीकृष्ण भक्ति की शक्ति की कला की भी बगवरी नहीं कर सकती। फिर अशुभ कर्मविपाक के मन्वज्य में पूज्य उमने वेदोक्त स्तोत्र से यमराज की स्तुति की। इस स्तुति को प्राप्त पढ़नेवाले को किसी प्रकार का पाप-ताप नहीं मताता।

यम ने सावित्री को विष्णुमन्त्र की दीक्षा विधिपूर्वक देकर कर्माशुभविपाक के सम्बन्धमे विस्तार से बतलाया । वृद्धों को मदा नरक की गति मिलती है । इसके सम्बन्ध मे नाना प्रकार के नरककुण्डों को विस्तार से पुराणों मे जहाँ-जहाँ वर्णन आया है उसे माररूप मे यमराज ने सावित्री को बतलाया । ८०६ कुण्ड है, उनमें अग्निकुण्ड तम्रकुण्ड, क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, श्लेष्मकुण्ड, गरकुण्ड, दूषिकाकुण्ड, वसाकुण्ड शुनकुण्ड, मस्त्कुण्ड, मश्रुकुण्ड और कान, आँसु, आदि के मलो के कई कुण्ड, मज्जाकुण्ड मासकुण्ड, नपकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, और दुःखद अस्थि कुण्ड, ताम्रकुण्ड लौहकुण्ड, तीक्ष्णकण्ठकुण्ड, विपकुण्ड, घर्मकुण्ड (ताप का कुण्ड) तम्रसुगाकुण्ड, प्रतप्तनैलकुण्ड, दन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड पूयकुण्ड, सर्पकुण्ड, मशककुण्ड, दशकुण्ड, गरलकुण्ड, वज्रदंष्ट्री जीवों का कुण्ड, त्रिष्टुभों का कुण्ड, शरकुण्ड, शूल कुण्ड, सडगकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, वाक्कुण्ड, मध्वालकुण्ड, वाजकुण्ड, दुस्तर-वन्धककुण्ड, तम्रपापाणकुण्ड, तीक्ष्णपापाणकुण्ड, लार का कुण्ड, असिकुण्ड, चूर्ण-कुण्ड, चक्रकुण्ड बच्चकुण्ड, कूर्मकुण्ड, ज्वालकुण्ड, भस्मकुण्ड, पूतिकुण्ड, तम्रशक्त्यप्यसी-पात्र, क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, गोधासुख, नम्रमुख, गजदंश, गोमुख, कुम्भीपात्र, कालसूत्रनरक, अवटोद, अरन्तुद पाशुभोज, पाशवेष्ट, शूलप्रोत, उल्कामुख, अन्धकूप, वेधन, दण्डताडन, जालबन्ध, देहचूर्ण, दलन, शोषणङ्कार, सर्पज्वालामुख, जिम्भ, धूम्रान्ध, और नागपेट्रन इन कुण्डों का विवरण दिया तथा यहाँपर निङ्कर लोन धरारर रत्नक रूप से नियुक्त है । वे अपने हाथ मे दण्ड, शक्ति, शूल, पाश, गदा लेकर मदीन्मत्त होकर निर्दयता से पापी जीवों के पूर्वकृत पापों का भोग कराते हैं । आगे त्रिन-त्रिन पापों से त्रिन-त्रिन कुण्डों का वाम होता है यह बताया जायगा ।

संसार में जो भगवान् की सेवा में लगजाता है मन, बुद्धि और शरीर से शुद्ध है, योगी, सिद्ध और व्रती, तपस्वी एवं ब्रह्मचारी है वह कभी भी नरकगामी नहीं होता है। अपने बन्धुबान्धवों को जो कड़ी याणी से और दुष्टता से व्यवहार करता है वह अग्निकुण्ड को जाता है। शरीर में जितने लोम हैं उतनी संख्या के वर्षों तक उसमें नरक भोगकर तीन जन्मों तक पशुयोनि पाता है। भूखे प्यासे ब्राह्मण को जो अपने घरपर अतिथि सत्कार के अनुरूप भोजन नहीं कराता, वह तप्तकुण्ड का गामी होता है और शरीर के जितने रोम हैं उतने वर्षों तक रहकर फिर सात जन्म तक पक्षी होता है। रविवार, अर्क की संक्रान्ति, अमावास्या और श्राद्ध के दिन जो कोई अपने कपड़ों में क्षार वा साबुन लगाकर सफाई करता है वह क्षारकुण्ड में जितने कपड़े में सूत के धागे हैं उतने वर्ष तक रहता है बाद में धोबी की योनि पाता है। अपनी दी गई या दूसरे की दी गई ब्राह्मण की वृत्ति को जो हरता है वह ६० हजार वर्ष तक विट् कुण्ड में रहता है। वही उसका भोजन होता है फिर ६० हजार वर्ष तक पृथ्वी पर विष्टा का कीड़ा बनता है। दूसरे के बनाये गये तालाब पर यदि तडाग बनाया जाता है तो दैवदोष का अपराध होने से वह मूत्र कुण्ड में जाता है। जितनी पृथ्वी की रेणुका हैं उतने वर्ष तक उसे खाने वाला कीड़ा बनकर वहीं रहता है, फिर भगरमन्त्र की योनि सात जन्म तक लेकर उससे छुटकारा पाता है। अकेला यदि कोई मिष्टान्न खाता है तो श्लेष्म कुण्ड में जाता है और पूरे सौ वर्ष तक उसे खाते हुए अपना जीवन बिताता है फिर सौ वर्ष तक भारत में प्रेन योनि में जाता है श्लेष्म, मूत्र, गर को खाकर फिर छूटता है। पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और अपनी पुत्री को अनायावस्था में जो पालन नहीं करता वह गर कुण्ड में पड़ता है और वहीं सहस्र वर्ष तक रहकर फिर भूत योनि सौ वर्ष तक भोगकर शुद्ध बनता है। जो अतिथि को देखकर

मुह मोड़ता है या टेढ़ी नजर से अपमान करता है उस पापी के यहाँ देवता और पितर जल नहीं लेते। ब्रह्महत्यादि जैसे जवन्म पापों का फल इसी जीवन में मिलता है। अन्त में दूषिता कुण्ड में गिरने से शुद्ध होता है ऐसा आदमी सात जन्म तक दरिद्र बनता है। ब्राह्मण को दिया हुआ धन यदि दूसरे को दिया जाय तो उसको देनेवाला २०० वर्ष तक बसाकुण्ड में गिरता है फिर चाण्डाल योनि में तीन जन्म रहकर शुद्ध होता है और भारत में गिरगिट योनि सात जन्म तक लेकर फिर दरिद्र और अल्पायु होता है। स्त्री-पुरुष को रज या पुरुष-स्त्री को यदि शुक पिछाता है तो शुक कुण्ड में गिरता है। १०० वर्ष तक उस कुण्ड का कीड़ा बनकर फिर पृथ्वी का कीड़ा बनता है और शुद्ध होना है बाद में सात जन्म तक व्याध के यहाँ पैदा होकर क्रम से शुद्ध होता है। भगवान् के भक्त को जो भक्ति से विह्वल और अश्रुपातादि से गद्गद हो गया हो यदि कोई उसकी हँसी करना है तो १०० वर्ष तक अश्रुकुण्ड में कीड़ा होता है फिर तीन जन्म तक चाण्डाल होकर शुद्ध होना है। सदा दुष्टता करनेवाला १० वर्ष तक शरीर के मलस्थानों के कुण्ड में गिरता है फिर तीन जन्म में गधा और तीन जन्म में गृगाल (सियार) बनकर शुद्ध होना है। जो उहरे की हमी या अपमान तथा निन्दा करता है वह कानों के मल के कुण्ड में १०० वर्ष तक रहता है और फिर सात जन्म तक दरिद्री और बहुरा होता है और सात जन्म तक अङ्गहीन होकर शुद्ध होता है। जो लोभ से अपना पालन करने के लिये जीव को मारता है वह तारु वर्ष तक मज्जा कुण्ड में कीड़ा होता है। अपनी कन्या का पालन कर बेचनेवाला माम कुण्ड में पड़ता है, तम्मा व्यक्ति ६० हजार वर्ष तक व्याध होता है फिर घराह, कुत्ता, भेदरु, जोंरु, और कौआ सात-सात जन्म तक होकर शुद्ध होता है। अन्न, उपवास, श्राद्धादि में संयम न कर क्षौर कर्म करता है वह कभी शुद्ध नहीं होता उसे कहीं भी कर्म करने का अविकार नहीं। इम प्रकार सम्पूर्ण पापों के नाना कुण्डों की गति और परिणाम का विस्तार में वर्णन किया गया है। पाप पुण्य के वामन और अतिदेशों के सम्बन्ध

में सावित्री ने जय यम से पूछा तो उसे यह बतलाया गया कि अतिदेशिक से वाल्मिक का चार गुना हत्या अधिक पाप का फल देती है। जो व्यक्ति किसी भी देवता के मन्त्र की दीक्षा नहीं लेना वह अदीक्षित है उनको कहीं भी अधिकार नहीं। प्रमत्त, पतित आदि के भेद का वर्णन।

३१

सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयः

२३०

हरि सेवा के बिना कर्म का खण्डन नहीं होता। शुभकर्म स्वर्ग का जनक है और कुरुर्म नरक का जनक है। पुश्वल्यान्न, वेस्यान्न आदि के खानेवाली की गतियाँ बतलाई और अगम्यागमन का सेवन करनेवाले का बन्ध पाप नया योनि भोगने पर भी नहीं छूटता इसलिए सदा इनसे बचते रहना मनुष्य का परम धर्म है। पृथ्वी, वायु, आकाश, तेज और तोय देही जनके शरीरों के मूल हैं और सृष्टिविधि में ये ही कारण हैं। पृथिवी आदि पञ्चभूतों से देह निर्मित है वह नश्वर और कृत्रिम है तथा भस्मीभूत हो जाता है। वृद्ध के अङ्गुष्ठ के प्रमाणवाला जीव पुरुषाकार में सूक्ष्म देह धारण कर नाना योनियों में जाता है। यह सूक्ष्म देह न शस्त्र से छिद्रता है न अग्नि से जलना है न जल में लोहित है। यही भोग योनियों में जाता हुआ प्रभु की कृपा से प्रभुशरण होकर भगवान् के रूप में एकाकार हो जाता है। भक्तों को चार प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त होनी हैं उसका निरूपण किया और निष्काम भक्ति की सर्वत्र प्रशंसा की। तदनन्तर सत्यवान् को जिलाकर यमराज ने जाने की तैयारी की। सज्जन पुरुष का वियोग सदा ही दुःखदायी होता है दोनों ही इस मज्जन मङ्गल से प्रभावित हुए और विदा के समय दुःखी होकर रोने लगे। तब यमराज ने सावित्री को कहा कि लाख वर्ष तक भारत में कुराजपूर्वक जीवन बिनाकर अन्न में गोल्लोरु में जाओगी। अब तुम घर जाकर सावित्री का व्रत करो। चौदह वर्ष तक ज्येष्ठ मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को यह सावित्री का मङ्गल व्रत है। भाद्र शुद्ध की अष्टमी को महालक्ष्मी का व्रत आठ वर्ष

नक लगातार करने में भगवान् में भक्ति होकर अन्त में उनके लोक की प्राप्ति होती है। प्रति मास प्रति मङ्गलवार को शुक्लपक्ष की पष्ठी को मङ्गल चण्डी के व्रत का विधान है और इसी प्रकार आपाढ़ की संक्रान्ति में सर्वसिद्धि देनेवाली मनसा तथा कार्तिक शुक्लपक्ष में रासेश्वरी राधा का व्रत करना और प्रतिमास की शुक्लपक्ष की अष्टमी को विष्णुमाया भगवती दुर्गा का उपवास धन, सन्तान और सौभाग्य को देनेवाला है। इसे तुम अवश्य करना इस प्रकार कह कर यमराज अपने लोक में तथा सावित्री सत्यवान् के माथ अपने घर को चली गई। सावित्री के पिता को पुत्रों की प्राप्ति हुई और उसके स्वमुर को आँसु की ज्योति मिल गई वह स्वनाम-धन्या पतिव्रता एक लाख वर्ष तक सुख से गृहस्थ जीवन बिताकर नित्यलोक गोलोक में चली गई। सूर्य की अधिदेवी तथा सूर्य मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवी होने से उसका नाम सावित्री सार्थक हुआ।

३२

यमसावित्री सम्वादवर्णनम्

२३४

फिर सावित्री ने इन नरककुण्डों में न जाने का उपाय पूछा और कहा कि भौतिक देह के जलजाने के बाद मनुष्य कैसे और किस शरीर से शुभ और अशुभ कर्मों का भोग भोगते हैं फिर दीर्घकाल तक भोग भोगने पर भी देह का नाश नहीं होता है आदि बातें मुझे संक्षेप से बतलाइये। सम्पूर्ण चारों वेद, धर्मसंहिता, धर्मों का सार, पुराण, इतिहास, पञ्चरात्र आदि में तथा वेदान्त और १८ विद्याओं में सम्पूर्ण ज्ञानों का सार मङ्गलरूप कृष्णसेवन बतलाया है। यह भगवत्कीर्तन, सेवन, भजन, ध्यान, मनुष्य का जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, शोक और मन्ताप से छुटकारा करवा देता है। यह सर्वमङ्गलरूप है, परम आनन्द का कारण है, भक्तिरूपी वृक्ष का यह अङ्कुर है और सम्पूर्ण कर्मवृक्ष को जड़मूल से छेदन करनेवाला है। नरक बुध, यमदूत, यम और यम के नौकरों को वृष्ण भक्त कभी नहीं देखते। तीन काल की मन्था करनेवाले आचार में लगे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का मार्ग प्रशस्त है।

३३ कण्डानां मानलक्षणवर्णनम् २३५

भिन्न-भिन्न नरककुण्डों की लम्बाई चौड़ाई और गहराई का वर्णन ।

३४ श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् २४१

सावित्री ने जब कृष्णगुणकीर्तन के सम्बन्ध में यमराज से पूछा तो भगवान् के नामगुणकीर्तन का जो सुन्दर निरूपण किया वह पठनीय है । सावित्री ने अपनी कमी बतलाते हुए धर्मज्ञान से शून्य होने की बात कही और अज्ञान को मिटानेवाले कृष्णकीर्तन ज्ञान की पूरी कथा के लिये आग्रह किया । यम ने पूर्वपुरुषों की लम्बी सूची देकर कृष्णभक्तों का गुणानुवाद करते हुए इस शास्त्र के प्रवर्तकों का नाम निर्देश किया उन्होंने सूर्य से प्राप्त भुक्ति मुक्ति के कारण भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद का सचिन्तर वर्णन किया । भगवान् विष्णु सम्पूर्ण सृष्टि के मूल हैं पालनकर्ता हैं और संहारक हैं इनके आदेश से ही सृष्टि में सम्पूर्ण कार्यक्रम विधिविधान से चलना है । सृष्टि, स्थिति और लय भी उनके द्वारा होता है । भगवान् में ही सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है ।

३५ लक्ष्म्युपाख्यानम् २४६

नारदजी ने लक्ष्मीजी के उपाख्यान के लिये भगवान् नारायण से प्रार्थना की । तब भगवान् नारायण ने लक्ष्मीजी के उपाख्यान को विस्तार से बतलाया । सृष्टि के आरम्भ में श्रीकृष्ण के वामाश से रासमण्डल में इम भगवती का आविर्भाव हुआ । वैकुण्ठ में नारायण विष्णु चतुर्भुज और गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण द्विभुज राधा और गोप गोपियों के साथ आनन्द से विहार करते हैं । इन्हीं की कला समन संसार में स्त्रीमात्र में विराजमान हैं । सम्पूर्ण संसार में इस देवी की पूजा होती है । सर्व प्रथम क्षीर समुद्र में विष्णु ने इन्हें पूजा फिर

गन्धर्वादि तथा नागो ने पाताल मे इनकी पूजाकी। भाद्रपद की शुक्लपक्ष की अष्टमी को ब्रह्मा ने एक पक्ष तक भक्ति से इनकी पूजा की। चैत्र, पौष और भाद्रपद के मङ्गलवार के दिन भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित इस महालक्ष्मी देवी की पूजा तीनों लोको मे प्रसिद्ध हो गई। पौष मास की संक्रान्ति में मनु ने इस भुवन-पावनी की पूजा की जो अवतक भी पूजी जाती है और सद्यः फल देती है। राजेन्द्र मङ्गल ने इसे पूजा। केदार, नल, नील, सुवलय सभी ने इसकी अपने लिये पूजा की। ध्रुव ने भी, जो उत्तानपाद का पुत्र था, इसे पूजा। कश्यप, दक्ष, मनु, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि, वरुण सबने अपने-अपने इच्छित फल पाने के लिये भगवती की साक्षात् पूजा की। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य, विभूति और सम्पत्ति को देनेवाली है।

२६

इन्द्रम्रतिदुर्वाससःशापः

२४८

मुनीन्द्रसुरेन्द्रसम्वादः

२५१

भगवती महालक्ष्मीजी पृथिवी पर सिन्धु कन्या किस प्रकार हुई इस प्रश्न के उत्तर मे नारायण भगवान् ने इन्द्र को दुर्वासा के द्वारा शाप देनेपर जब उसकी श्री जाकर वैकुण्ठ में महालक्ष्मी में मिल गई तो देवता लोग दुःखित होकर ब्रह्माजी के यहाँ गये और ब्रह्माजी के नेतृत्व मे भगवान् नारायण की शरण मे जाकर उनसे अपनी कष्टकथा मुनाई, तब विष्णु की आज्ञा से देवराज इन्द्र की सम्पत्स्वरूपिणी लक्ष्मी सिन्धु की कन्या हुई और क्षीरसागर के मन्थन के समय लक्ष्मी से वर पानर लक्ष्मी को वहाँ देया। दुर्वासा के शाप का कारण पूछने पर भगवान् नारायण ने कहा कि रम्भा के माथ इन्द्र मद्यपान कर रमण करता था। दुर्वासा आये और प्रणाम करते हुए इन्द्रको पारिजात पुष्प से शुभाशीर्वाद दिया और प्रमादी इन्द्र ने यह पुष्प अपने हाथी के मस्तरु पर धर दिया जिससे वह शोभा-

युक्त अन्यत्र चला गया इसी पर इन्द्रको शाप दिया। संसार के आवागमन से छुड़ाने का उपाय दुर्वासा ने इन्द्र को भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना बताया। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त सभी अवस्थाओं का वर्णन और सभी का स्वरूप वर्णन।

२७

हरिगुणश्रवणादिन्द्रस्यज्ञानप्राप्तिः

२५७

भगवान् हरि के गुणों को सुनकर इन्द्र को स्वरूप का ज्ञान हुआ और वैराग्य में अपना मन लगाया और अमरावती में जाकर उसकी सारी दुर्दशा देखी। तब भगवान् देवगुरु बृहस्पति के पास आकर उसने सारी अवस्था सुनाई। बृहस्पति ने इन्द्र को सान्त्वना देते हुए पूर्वजन्म के सुकृत से सम्पत्ति और दुष्कृत से विपत्ति आती है। पहिये की घुरी के समान उत्थान पतन सभी के साथ रहता है। बिना भोगे हुए कर्म करोड़ों जन्मतक भी क्षीण नहीं होते उनका भोग अवश्यम्भावी है।

मा भुक्त्वं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१७॥

सामवेद की कौथुम शाखा में इसका प्रतिपादन श्रीकृष्ण भगवान् ने विस्तार से किया है। कालभेद, देशभेद, और पात्रभेद से कर्मों की न्यूनता और अधिकता होती रहती है, जैसे, सामान्य दिन में विप्र को दान देने से समफल होता है। अमावास्या, रवि की संक्रान्ति में उसीका सौगुना फल होता है। चातुर्मास्य की पौणमासी को अनन्त फल होता है। सूर्यग्रहण के समय उसी दान का करोड़गुना फल सूर्यग्रहण में उसका दशगुना फल होता है। सामान्य देश में दान का सामान्य फल विशेष देश में जैसे—गंगा देश में दश, सौ और अनन्त गुना फल होजाता है। सामान्य ब्राह्मण को देने से सामान्य फल होता है व जितेन्द्रिय पण्डित को देने से लाखगुना फल होता है। जैसे—दण्ड, सूत्र, शराव, जल और चक्र से मिट्टी को लेकर कुम्भ (घड़ा) बनता है यही बात कर्म

पर लागू होती है। जो विपत्ति में भगवान् को भजता है उसे कोई भी भय नहीं विपत्ति भी सम्पत्ति का रूप लेलेती है।

३८	महालक्ष्म्युपाख्यान विष्णुभक्तस्य शुभकथनम्	२५६
	विष्णुभक्तिहीनस्य लक्ष्मीत्यागः	२६१

सभी देवताओं के साथ भगवान् हरि कृष्णस्मरण करते हुए ब्रह्माजी के यहाँ गये और ब्रह्माजी ने सबका अभिवादन कर देवराज इन्द्र से उनके विशेष शुद्ध कुल की प्रशंसा करते हुए यह आपत्ति क्यों आई इसका कारण पूछा क्योंकि जन पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च। गुरोर्दोषाश्रीतिदोषैर्हृदिद्वेषी भवेद्भुवम् ॥

शिवजी ने जिस पुष्प से भगवान् की पूजा की उस पुष्प को महर्षि दुर्वासा ने आपको दिया और आपने उसका अनादर किया। इसलिये दैवसे आप बन्धित होकर ऋद्धशा को प्राप्त हुए हो। अब भगवान् श्रीलक्ष्मीपति के सिवा कोई भी आपकी रक्षा करनेवाला नहीं है अतः यहाँ जाओ। तब ब्रह्मा उन सब देवताओं के साथ इन्द्र को विष्णुलोक में, जहाँ लक्ष्मीजी के साथ वे विराजमान थे, लैगये और सारा वृत्तान्त अथ से इति तक भगवान् विष्णु को निवेदन किया। भगवान् विष्णु ने अभय करते हुए कहा कि जो कोई मेरे भक्त को रुष्ट करता है उसके घरमें पद्मा के साथ मैं नहीं रहता। जो मेरी भक्ति से दूर है, मेरे नामको वेचता है और अतिथि सत्कार जहाँ नहीं होता उन गृहस्थों के यहाँ लक्ष्मी नहीं रहती। ब्राह्मण निन्दक, धर्मशून्य, भगवान् विष्णु की भक्ति से हीन मनुष्य से लक्ष्मी कोसों दूर रहती है। सूर्यादय मे दो चार खानेवाला, दिनमें सोनेवाला और मैथुन करनेवाले व यहाँ मेरी लक्ष्मी नहीं टिकती। शिवपूजा, देवपूजा, अतिथिपूजा और दुर्गा की पूजा जहाँ होती है वहाँ लक्ष्मी स्थिर होकर निवाम करती है। लक्ष्मी को भगवान् न क्षीरसागर में जन्म लेने की आज्ञा दी और देवताओं ने क्षीरसागर को मन्थन कर चौदह रत्न समेत लक्ष्मीजी को प्राप्त किया।

३६ लक्ष्मीनाशात्पुनस्तत्प्राप्तये इन्द्रेण लक्ष्म्याः पूजनम् २६२

भगवान् हरि के गुणानुवाद सुनकर इन्द्र ने लक्ष्मीजी के ध्यान, स्तोत्र आदि के सन्बन्ध में प्ररन किया। श्रीनारायण ने देवराज इन्द्र को पूजा प्रकार कहा उसने गणेश, दिनेश (सूर्य), अग्नि, पिष्णु, शिव, पार्वती की पूजा की और महालक्ष्मी का आवाहन किया। उन्होंने सहस्रदल पद्म की कर्णिका में निवास करनेवाली महालक्ष्मी भगवती का ब्रह्माजी की आज्ञा से षोडश उपचारों से पूजन किया। इस मूल मन्त्र से भगवती का जप किया। “लक्ष्मीर्माया कामजाणी कमलवासिनी स्वाहा” इस वैदिक द्वादशाक्षर मन्त्रराज से भगवती को प्रसन्न करते ही वे साक्षात् उपस्थित हो गईं। इन्द्र ने गद्गद् अन्नओ की धारा से महालक्ष्मीजी की सच्चे भाव से स्तुति की। इस देवराज इन्द्र के द्वारा किये गये सिद्ध स्तोत्र का जो तीन सन्ध्या तक प्रतिदिन पाठ करता है वह राजराजेश्वर कुबेर के समान धनी होता है। “पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्” एक मास तक इस सिद्ध स्तोत्र का लगातार पाठ करनेवाला महासुखी राजेन्द्र होता है।

४० स्वाहोपाख्यानम् २६७

भगवान् नारायण से इन्द्र के द्वारा वेदोक्त स्वाहा के उपाख्यान पूछने पर उन्होंने कहा। सृष्टि के आदिकाल में देवताओं ने अपने आहार के लिये निवेदन किया। ब्रह्मा उन्हें भगवान् के पास ले गये। भगवान् यज्ञरूप में उपस्थित होकर सभी द्विजों के भक्तिपूर्वक दिये गये हविर्दान को ग्रहण किया। परन्तु वह यज्ञभाग देवताओं को नहीं मिला। फिर वे ब्रह्मा के पाम आकर अपनी कष्टकथा सुनाने लगे। ब्रह्मा द्वारा प्रकृति की स्तुति। प्रसन्न हुई प्रकृति ने ब्रह्मा से कहा कि घर मागो। ब्रह्मा ने कहा कि अग्नि में वाहिका शक्ति तुम्हारी ही है इसलिये तुम्हारे नाम से जो आहुति दे वह देवों को मिले यही प्रार्थना है। स्वाहा का निज अभिप्राय का

प्रकट करना । स्वाहा की पूजा करने का विधान एव फलधृति । स्वाहा के षोडश नामों को पढ़ने से मवसिद्धि की प्राप्ति होती है ।

४१

स्वधोपाख्यानम्

२७०

स्वधा के स्थान का कथन । सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने सप्त पितरों को उ पत्र किया तथा उनके लिये श्राद्ध का अन्न एव तर्पण का जल ही आहार बनाया । क्षुधित पित्रेश्वरों का ब्रह्मा के पास गमन और अपना दुःख प्रकट करना । ब्रह्मा द्वारा मानसी कन्या का प्रकट होना । कन्या ने पित्रेश्वरों का दान कर ब्राह्मणों के लिये उपदेश किया कि पित्रेश्वरों को स्वधा शब्द के उच्चारण से ही वृत्ति है । स्वधा की पूजा विधि । श्राद्ध समय स्वधा स्तोत्र को पढ़ने का फल । स्वधा स्तोत्र को सुनने से वेद पठन के समान फल ।

४२

दक्षिणोपाख्यानम्

२७३

दक्षिणास्तोत्रम्

२७७

दक्षिणा के आख्यान का कथन । गोलोक में मुशीला नाम की गोपी रहती थी । वह अत्यन्त सुन्दरी एव गुणवती एव श्रीकृष्ण को प्रिय थी । मुशीला को देव राधा का कुपित होना । दोनों के विरोध के भय से श्रीकृष्ण का अन्तर्धान । राधा ने श्रीकृष्ण के वियोग में विलाप करते हुए कहा कि हे श्रीकृष्ण आप कहाँ गये हैं । स्त्रियों के पति ही एकमात्र देव हैं जैसे—

पतिर्वन्धु कुलस्त्रीणामधिदेव सदागति ।

पर सम्पत्स्वरूपश्च मुखरूपश्च मूर्तिमान् ॥ इत्यादि

दक्षिणा देवी का गोलोक से गमन । दक्षिणा की तपस्या एव कमला का शरीर में प्रवेश । ब्रह्मा की प्रार्थना से दक्षिणा का प्रादुर्भाव । उससे किये कर्मों का पूर्ण फल । कर्म कराकर दक्षिणा उसी वक्त देने चाहिये नहीं देने से मुहूर्त भर में दुःखी हो जाती है । यज्ञस्मृत्यु दक्षिणा स्तोत्र का वर्णन एव फल कथन ।

पृथी का उपाख्यान का कथन । पृथी देवी की उत्पत्ति प्रकृति के छठे अरा से ह । स्वायम्भुव मनु का पुत्र प्रियव्रत राजा था । वह तपस्या में ही लगा रहता था । ब्रह्मा की आज्ञा से राजा ने विवाह किया । राजा को पुत्रोष्टि यज्ञ करने से मृत पुत्र की प्राप्ति । उससे अन्य नारीगण एवं राती को महा दुःख । तत्पश्चान् निमान का आगमन । राजा को देवी का दर्शन । राजा के द्वारा देवी की स्तुति । प्रसन्न हुई देवसेना द्वारा राजा को पुत्र प्राप्ति । राजा ने देवी की पूजा कर ब्राह्मणों को द्रव्यदान किया । प्रत्येक भास में शुद्ध पृथी में राजा द्वारा देवी की पूजा । पृथी देवी की स्तुति एवं फल कथन ।

मङ्गलचण्डी का उपाख्यान भी भगवान् नारायण ने कहे हुए उतलाया कि मङ्गल नामक मनु की पूज्य अभीष्ट देवी होने से इसका नाम मङ्गलचण्डी हुआ । सर्व प्रथम भगवान् शङ्कर ने त्रिपुर के उध के अवसर पर विष्णु भावान् की प्रेरणा से पूजा की । त्रिपुर ने शररजी के यान को आकाश से गिरा दिया उस समय ब्रह्मा विष्णु के उपदेश से दुर्गा की आराधना की और भावती दुर्गा ने अभय देकर मङ्गलचण्डी नाम से प्रसिद्ध होकर शंकर की सहायता की और विष्णु के दिये हुए अस्त्र से शंकर ने उस दैत्य को मार डाला । शंकरजी पर देवतामृन्द ने पुष्प वृष्टि की । शंकरजी द्वारा मङ्गलचण्डी का मूलमन्त्र चण्डी का स्तोत्र उसका फल कथन ।

४५

मनसादेव्युपाख्यानम्

२८४

फिर कथाप्रसङ्ग से मनसा का उपाख्यान भी सुनाया। यह कश्यप की मानसी कन्या होने से मनसा नाम से विख्यात हुई। इसने मनसे भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न कर वाञ्छित वरदान प्राप्त किया। स्वर्ग, नागलोक और पृथिवी में गौरी रूप में, नागेश्वरी और नागभगिनी के रूप में पूजा होती है। यही आस्तिक माता प्रसिद्ध है जो जरत्कार मुनि की स्त्री थी। मनसा के वारह नामों का फल इससे सपों का भय नहीं रहता।

४६

मनसापूजाविधानम्

२८५

इन्द्रकृत मनसास्तोत्रम्

२६१

मनसादेवी का पूजा विधान। मनसा को पहले कश्यपजी ने जरत्कार मुनि को विना याचना किये ही दे दा। एक दिन सायंकाल पुष्कर तीर्थ में बट के मूल में थक कर मनसा की गोद में सिर रखकर ही जरत्कार सो गये। धर्म लोप न हो इस भय से उसने अपने धर्मनिष्ठ पतिदेव को सन्ध्या के लिये जगाया इसपर जरत्कार ने नाराज होकर पति का अप्रिय करनेवाली स्त्री को भला-बुरा कहा। मनसा ने इसपर कहा कि सन्ध्या के लोप भय से ही आपको जगाया अब मुझे आप क्षमा करें और स्वामी के चरणों में लोटकर विलाप करने लगी। जब मुनि सूर्य को शाप देने के लिये तैयार हुए तो स्वयं भगवान् सूर्य ने उपस्थित होकर क्षमा याचना की और श्रीकृष्ण भक्ति की प्रशंसा कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। अब मनसा को जरत्कार ने छोड़ दिया परन्तु ब्रह्मा, शंकर और कश्यपजी के समझाने पर जरत्कार ने गर्भाधान होने तक मनसा के यहाँ रहना स्वीकार कर लिया और योग द्वारा नाभिस्पर्श कर गर्भ धारण करवा दिया। जरत्कार ने मनसा को वरदान दिया कि उसकी यह सन्तान तेजस्वी विष्णुभक्त होगी और

प्रेम में विह्वल रहेगी यही जनमेजय के नाग यज्ञ में आन्तिक होकर नागों का प्राणकर्ता हुआ। मनसा का स्तोत्र।

४७

मुरभ्युपाख्यानम्

२६३

नारद ने गोलोक से आई हुई मुरभी के विषय में पूछा तो नारायण भगवान् ने गोमात्र की अधिष्ठात्री गौओं की प्रधान यह मुरभी गोलोक में प्रधान हुई यह बतलाया। एक दिन राधिकानाथ को राधाजी के साथ क्षीरपान की इच्छा हुई। अपने वाम पार्श्व से लीला से ही भगवान् ने मुरभी बत्सयुक्त उत्पन्न की और सुदामा ने उसका दूध रत्नभाण्ड में दूह लिया वही भगवान् ने पी लिया और भाण्ड के उलट जाने से उसका क्षीरसरोवर प्रसिद्ध हो गया। वही भगवान् की कृपा से लक्षकोटि गायें हो गईं उनसे संसार धारण किया जाता है। उनका मूल मन्त्र पूजा और स्तोत्र।

४८

राधिकाख्यानम्

२६५

प्राचीनकाल में गोलोक में रासमण्डल में मालती मणिका के वन में भगवान् श्रीकृष्ण रत्नसिंहासन में विराजमान थे। उन्हें रमण करने की इच्छा हुई। तब भगवान् के दो स्वरूप हुए दक्षिणाङ्ग में कृष्ण और वामाङ्ग में राधिकाजी का आविर्भाव हुआ। भगवती राधा सम्पूर्ण मुक्तियों को देनेवाली है। वही महालक्ष्मी और गृहलक्ष्मी रूप में सर्वत्र विराजमान है। वही राधा सुदामा के शाप से गोलोक से पृथिवी पर आ गईं। वृषभानु के गृह में जन्म लिया उनकी माता का नाम कलावती थी।

४९

हरगौरीमन्वादे राधोपाख्यानम्

२६८

भृत्य ने किस प्रकार राधा को शाप दिया इसपर भगवान् ने वित्सार से सारी कथा समझाई। भगवान् गोलोक में राधिकाजी के साथ रास क्रीड़ा में

लग रहा था। अभी समय मुरत के आनन्द में राधिका को चार दूतियों ने जगाया और क्रोधित हो राधिका ने हरि को छोड़ दिया। श्रीकृष्ण भी उसी समय विरोधान हो गये और मर्त्यलोक में मरिद्रूप से अवतीर्ण हुए। जब श्रीकृष्ण फिर आठ गाथा के साथ अपने घर आये तो उन्होंने राधिका को नहीं देखा और अन्न पुर में गये। वही पर श्रीकृष्ण को राधिकाजी ने फटकारा और बदले में मुद्रामा न उसी समय राधा की भर्त्सना की। तब राधा ने मुद्रामा को दैत्य होने का शाप दिया। आगे शम्भुचूट रूप में तब तुलसी के पति के रूप में मुद्रामा हुआ और वृषभानु के यहाँ राधा ने जन्म लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथ्वी के भार को हलका करने के लिये अवतार लने पर वृन्दावन में सुन्दर रास द्वारा राधा की आह्लादिनी शक्ति का अलौकिक चमत्कार सप्ताह को दियाया।

५०

सुयज्ञोपारयानम्

३०२

पार्वतीजी के प्रश्न करने पर ही सुयज्ञ नामक राजा कौन था उसने भगवान् श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति राधा को विप्र शाप से शत्रु होकर भी प्राप्त किया तिनके दर्शनों के लिये भगवान् ब्रह्मा को भी ६० हजार वर्ष तक पुष्करजेत्र में उनकी चरणरमलों की रेणु में तप करना पडा था। हे शम्भुजी आपलोग भी जिनके दर्शन नहीं कर सकते उनको इस महालक्ष्मी का दर्शन कैसे हुआ ? भगवान् शम्भुजी ने ध्यायन्मुख मनु और शतरूपा से आरम्भ कर उत्तानपाद उनके पुत्र ध्रुव और अमरा पुत्र उज्ज्वल तिनके पुत्र में हजारों राजमूय यज्ञ कराये अमोने सम्पूर्ण धन रत्न आदि प्रमत्त होकर ब्राह्मणों को दे दिये उस शोभन यज्ञ को देखकर मुरसमद्रु में सुयज्ञ को यह स्थान दिलाया। वही सुयज्ञ राजा अश्वत्थामा, रत्नदाता और सम्पूर्ण सम्पत्तियों को देनेवाला तथा दशलाय गाथा के सींग पर रत्न राधा चन्द्र मामग्री से बनकर दर्शना समेत ब्राह्मणों को देना था। उसे इन यह भारी दाना को देने पर भी कृति नहीं होती थी। इस प्रकार धर्मवीरन

बिताते हुए उसके पास एक दिन मलिन वस्त्र पहने कण्ठ, ओष्ठ और तालु जिसके तृषा से व्याकुल होनेसे सूख गये हैं, ऐसे ब्राह्मणदेव आये और प्रसन्न चित्त से उन्हो ने सुयज्ञ को आशीर्वाद दिया । राजा ने उसे प्रणाम अवश्य किया परन्तु अभिवादन के लिये थोड़ासा भी खड़ा नहीं हुआ न सभासद ही खड़े हुए उलटे हैंसे । इसपर मुनिदेवगण को नमस्कार कर उस द्विजराज ने क्रोध से राजा को शाप दिया कि हे पामर ! यहाँ से दूर जाओ और राज्य से च्युत हो जाओ । साथ ही गलत्कृतवाली बुद्धि हो तथा अस्थिर चित्त होओ । जैसे ही उसने सभासदों को, जो हैंसे थे उनको शाप देना चाहा तो सत्रने परिहार किया और ब्राह्मण देवता शान्त हो गये । फिर राजा न अपनी ओर से क्रोध शान्त करने की प्रार्थना की और सभा से जानेवाले उस ब्राह्मण को सभी मुनियो ने समझाने का प्रयत्न किया ।

५१

नृपमुनिसम्वाद

३०४

ब्राह्मण को सनत्कुमार ने कहा कि राजा आपके शाप से भ्रष्टश्री हो गया है । आप आशुतोष हैं उसपर कृपा कीजिये । आप अतिथि रूप में आये । आपका राजा के द्वारा स्वागत होना चाहिये । पुलस्त्य ने राजा का दोष बतलाकर उसे क्षमा करनेको कहा । पुलह, व्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, वश्यप, प्रचेस् दुर्वासा ने अतिथि, ब्राह्मण, देवता, गुरु आदि को अभिवादन न करनेवाले का अपराधक्षमा योग्य नहीं होता ऐसा कहा । फिर भी आप हम सत्र के कहने से इसका अपराध क्षमा करें और आतिथ्य ग्रहण करें । राजा ने गोत्र, स्त्रीत्र, कृतत्र, गुरुस्त्री-गामियो और नरुत्त लोगो को क्या दोष लगता है इस तरह प्रश्न किया । इसके लिये वशिष्ठ ने गोहृत्यारे को एक वर्ष तक तीर्थों में घूमकर और जौ के ही अन्न से अपना गुनारा करे और हाथ से जल पीये ऐसा बतलाया । सौ गायो को दक्षिणा समेत दान करने से उस पाप से छुटकारा हो जाता है । शुक्राचार्य ने गोहृत्या से

दुगुना पाप स्वीहत्या में कहा है। बृहस्पति ने स्त्रीहत्या से दुगुना पाप ब्रह्महत्या में कहा। कृत्तन्न उससे चारगुना पापी है। फिर राजा ने कृत्तन्नो के भेद पूछे। ऋष्य ऋद्ध ने एक प्रकार के कृत्तन्न सामवेद के अनुसार बतलाये फिर कात्यायन, मनन्द सनातन ने कृत्तन्नो के सम्बन्ध में विस्तार से समझाया। शूद्रान्न भोजन, उनके शत्रु जलाने, और शूद्र स्त्री गमन के दोष पूछे तब पराशर, जरत्कार ने सारी बातें विस्तार से बताकर उपरोक्त दोषों से सदा बचने को कहा। भरद्वाज और विभाण्डक ने शूद्रों का शत्रु दाह करनेवाले और शूद्रों के यहाँ पितृश्राद्ध में भोजन करनेवालों को कृत्तन्न बतलाया है। उन्हें देव और पितृकार्यों को करने का अधिकार नहीं रहता।

५२

हरगौरीसंवादे कर्मनिपाकर्णनम्

३०६

पार्वतीजी ने कृत्तन्नो के अन्य-अन्य कर्मफलों के सम्बन्ध में पूछा, तो महेश्वर ने नारायण, नारद, देवल, जैगीपक्य, वाल्मीकि, आस्तिक आदि महर्षियों ने कृत्तन्न पुण्यों के कर्म विपाक बताकर कभी भी कृत्तन्न न बनने को कहा और राजा से ब्राह्मण को प्रणाम करने के लिये कहा और घर जाकर तपस्या कर फिर आनन्द से ब्रह्मशाप से छूटकर कृतकृत्य हो जाओगे। यह कह सत्र विदा हो गये।

५३

मुत्तपः सुयज्ञमग्नादवर्णनम्

३१२

पार्वतीजी के महेश्वर को इसके बाद क्या हुआ ऐसे पूछने पर महेश्वर ने कहा कि निन्दाप्रल राजा वशिष्ठजी के द्वारा प्रेरित होकर ब्राह्मण के पैरो परश्रमा याचना के लिये दण्डयन् गिर गया और ब्राह्मण ने क्रोध को त्यागकर आशीर्वाद दिया। इसपर राजा ने आगों में आँसू भरकर हाथ जोड़कर ब्राह्मण से उसके विषय का मारा हाल पूछा और कहा कि आप अपना राज्य, जोष, अपने नौकर चाकर पुत्र और स्त्री को अपने अधिनार में कर लीजिये और मुझे अपना नौकर

रख लीजिये । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि और उनके पुत्र कश्यप हुए । कश्यप के पुत्रों ने देवत्व प्राप्त किया । उनमें महाज्ञानी त्वष्टा हुए जिन्होंने दिव्य हजार वर्षों तक पुष्कर में तपस्या की । उन्होंने ब्राह्मणार्थ देवदेव भगवान् हरि की पूजा की । भगवान् से वर पाकर उनके तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ । इसका नाम विश्वरूप रत्ना, विश्वरूप अतीव कीर्तिशाली थे । उसके विरूप मेरे पितृपाद हुए उनमें सुतपा नामवाला वैरागी मैं हुआ । मेरे गुरुदेव महादेव हैं जिनके अभीष्ट देव सर्वात्मा श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं । मुझे तो उनके चरणकमलों की चिन्ता है किसी सम्पत्ति की परवाह मैं नहीं करता । मुझे सभी भुक्तियाँ, ब्रह्मत्व या अमरत्व उन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति के बिना मिले तो मैं उन्हें सहर्ष छोड़ दूँगा । संसार के बड़े-से-बड़े अधिकार मुझे जलविन्ध के समान मिथ्या मालूम होते हैं । मुनियों का आपके यहाँ आना सुनकर उनसे विष्णु भक्ति का आनन्द लूटने को मैं आया था । मुझे शाप न देकर तेरा हित ही साधन किया गया है । हे राजन् अब विशेष विलम्ब मत करो, घर के सभा उत्तरदायित्व बेटे को सौंपकर बाहर हो जाओ और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में ध्यान लगाओ क्योंकि वही परम तत्व है बाकी तो ब्रह्मादिलम्बपर्यन्त मिथ्या है । भगवान् की ही माया से ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टिको रचते, पालते और संहार करते हैं । समय पर वर्षा होती है काल, अग्नि आदि पाक करते हैं । प्रति ब्रह्माण्ड में सृष्टि की यह क्रिया चालू है । भगवान् श्रीकृष्ण के लोमकूपों में ही ब्रह्माण्डों के ब्रह्मादि समाये हुए हैं । महान् विराट् क्षुद्र विराट् सभी भगवान् कृष्ण की अनुगामिनी प्रकृति के आधार से चलते हैं वही सब की धीजरूपा है । काल की अल्पण्ड साधना से ही वे भगवान् श्रीकृष्ण में लीन होते हैं । इस प्रकार सभी कालभीत होकर आविर्भूत और तिरोभूत होते हैं । इसी भाँति महेश द्वारा दिये गये सारे दुर्लभ महा ज्ञान को बतलाया ।

राजा ने महाविष्णु का आधार और क्षुद्र विराट् ब्रह्मा और प्रकृति, मनु, इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमा की आयु का मान पूछा और कहा कि सम्पूर्ण विश्वों के ऊपर कौनसा लोक है उसे मुझे समझाडवे। सम्पूर्ण विश्वों का गोलोक आकाश के समान व्यापक सदा हिम्य रूप श्रीकृष्ण की इच्छा से समुद्भूत श्रीकृष्ण के मुख बिन्दु जल से परिपूर्ण यह गोलोक महाविष्णु का मूल है। यह राधेश्वर श्रीकृष्ण का षोडशाश कहा गया है। विष्णु से ऊपर नित्य वैकुण्ठ है यह भी आकाश के समान निःसीम है। यहाँ नारायण भगवान् चतुर्भुज रूप में निवास करते हैं। गोलोक गोलोक है और सुन्दर-सुन्दर रत्नमाणिक्य से जड़े गृह महलों से शोभित है भगवान् के पार्षद, गोप गोपियाँ वहाँ पर रहते हैं। शिशुरूप में गोपाल-वेषधारी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी राधेश्वरी राधिकाजी के साथ रहते हैं। इस प्रकार वैकुण्ठ और गोलोक का वर्णन कर दण्ड, मुहूर्त, घड़ी, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष, उत्तरायण और दक्षिणायन, इनका निरूपण किया गया। फिर कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगों के परिमाण बतलाये। मन्वन्तर आदि का वर्णन किया। आद्यमनु ब्रह्माजी के पुत्र मनु हुए शतरूपा उनकी धर्मपत्नी वह सध गुणों से युक्त हुआ। उसने बड़े-बड़े अश्वमेध, नरमेध और गोमेध यज्ञ किये एवं भगवान् शंकर दुर्लभ कृष्ण मन्त्र को प्राप्त कर श्रीकृष्ण का दास्य पाकर गोलोक में चले गये। अपने पुत्र स्वायम्भुव के इस प्रकार मुक्त होने पर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उसके प्रियव्रत हुआ प्रियव्रत के बाद दो मनु विष्णुभक्ति परायण इसके बाद पाँचवा मनु वैवत छठा चाक्षुष मनु, सातवा परमभगव्रत सूर्य का पुत्र आह्वदेव हुआ। आठवा सूर्यपुत्र मार्चि हुआ, नवम दशमावर्णि हुआ, दशम ब्रह्मावर्णि हुआ, ग्यारहवाँ धर्ममावर्णि और बारहवा ग्द्रमावर्णि, तेरहवा देवमावर्णि और चौदहवा चन्द्रमावर्णि हुआ। जयन्त मनु और इन्द्रों की आयु है उतना

ब्रह्मा का दिन उतने ही समय तक ब्रह्मा की रात्रि है। ब्रह्मा का दिन क्षुद्रकल्प कहा जाता है। ब्रह्मा ने रात बीतने पर फिर सृष्टि की रचना की इस ब्रह्मनिशा को क्षुद्रप्रलय कहा जाता है। ऐसे ३० दिन रात तक ब्रह्मा का मास कहा जाता है। कालरात्रि का वर्णन पहले आया है। १२ मास का एक ब्रह्मा का वर्ष और १५ वर्ष के बाद फिर प्रलय होता है यही मोहरात्रि वेदों में कही गई है। ब्रह्मा के निपात के बाद महाकल्प होता है वही महारात्रि कही जाती है। प्रकृति का निमेषकाल भी यही होता है निमेष के अन्त में श्रीकृष्ण की इच्छा से सृष्टि का निर्माण होता है। श्रीकृष्ण निमेष रहित है और श्रीकृष्ण में ही सारी प्रकृति आकर युगों के बाद लीन होती है तब उसे प्राकृतिक लय कहते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों का संहार कर वह स्वयं कृष्ण के वक्षस्थल में लीन हो जाती है वही मूल प्रकृति और ईश्वरी है इसे ही दुर्गा, नारायणी और सनातनी कहते हैं। इसीमें भी सबकुछ समाया है यह ईश्वर में समाई है। सभी क्षुद्र वैष्णवमय हैं विष्णु में लीन हैं महाविष्णु प्रकृति में और वही परमात्मा में लीन है। प्रकृति योगनिद्रारूप में श्रीकृष्ण के नेत्रों में इस इच्छा से अधिष्ठान करने लगी। प्रकृति का एक दिन का जितना काल है उतने समय तक वृन्दावन में श्रीकृष्ण की निद्रा होती है यही प्रलयकाल है। उनके जागने पर सर्व सृष्टि होती है उनका वन्दन, स्मरण, ध्यान, अर्चन, कीर्तन और उनके गुणों का स्मरण महापातक नाशन है। इसके बाद सुयज्ञ के द्वारा भगवान् शिव का प्राकृतलय के समय में लीन होने पर भी मृत्युञ्जय नाम जैसे हुआ यह पूजने पर सुतपाने सारा सृष्टिक्रम वित्सार से उतलाया।

ब्रह्मा के वय के अन्त में मृत्युकन्या जलनिम्न के नमान नष्ट हो गई यह नय लोको की संहर्त्री है और ब्रह्मादिकों अपने में समेट लेती है। भगवान् शंकर ने मृत्युकन्या को जीता न कि शम्भु को मृत्यु ने। पुण्य वृन्दावन में कृष्ण ने प्रलयकाल के अपने वामाश से उत्पन्न राधिका में गर्भाधान किया। ब्रह्मा के उन्नपर्यन्त राधा

ने गर्भ धारण किया तब गोलोक में उस डिम्ब को जन्म दिया फिर दुःखी हृदय से उस डिम्ब को विश्वगोलोक में भेजा अपने पुत्र को इस प्रकार छोड़ने से बार-बार महादेवी राधा रोने लगी। श्रीकृष्ण ने इसे कई प्रकार योग से समझाया। उस डिम्ब से सयका आधार महाविराट् हुआ। इस प्रकार सारी सृष्टि का वर्णन सुनकर सुयज्ञ राजा कृतकृत्य हुआ और भगवान् शंकर की शरण में जाने के लिये गुरुजी के विषय में पूछने लगा। भगवान् कृष्ण की भक्ति से ही शंकर भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। इसके बाद राजा को सुतपा ने राधाजी का पूजा विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र और सामवेदोक्त ध्यान बतलाया। इसे लेकर तपस्या के लिये भेज दिया। सब को विलाप करते छोड़ राजा वन में तप करने चला गया। एक सौ दिव्य वर्ष तक उसने परम मन्त्र का जप करते हुए कठोर तपस्या की। तब रथ में विराजती हुई परमेश्वरी को देखा उनके दर्शनमात्र से ही वह निष्पाप हो गया। सुतपा मनुष्य का शरीर छोड़कर दिव्य मूर्ति धारण कर देवीजी के विमान से ही गोलोक चला गया। उसने वहाँ सभी अलौकिक दिव्य-मूर्तिसम्पन्न गोप गोपीवृन्द से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परब्रह्म को देखा। उन्हें देख राजा ने तुरन्त रथ से उतरकर अश्रु गद्गद् नेत्र से प्रणाम किया और परमात्मा ने अपना दास्य प्रदान किया तथा इच्छित घर से राजा कृतकृत्य हो गया। श्रीराधामाधव भगवान् का स्मरण करनेवाला सदा ही उनका भक्त होकर आनन्द लाभ करता है।

भगवान् शंकरजी ने पार्वतीजी के पूछने पर बताया कि श्रीकृष्ण और मेरे रहते राधा मन्त्र को ही क्यों ग्रहण किया। इसका कारण यह था कि राधा मन्त्र से अति शीघ्र सिद्धि मिल जाती है। इस प्रकार राधिका मन्त्र की दीक्षा देकर ध्यान, पूजा, जप का प्रकार बताकर भगवान् शंकर ने राधाजी की स्तुति

कही। फिर श्रीकृष्ण और राधिका के वार्तालाप के रूप में श्रीकृष्ण द्वारा राधाजी के रूप, गुण और प्रभाव का दिव्य वर्णन। इस राधा गुणाख्यान के द्वारा सभी दक्षकन्या परमात्मा को मिली व सावित्री ब्रह्मा को। इसका प्रतिदिन पाठ करनेवाला पुत्रार्थी पुत्र पाता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है। कार्तिक की पूर्णिमा को राधा की पूजा कर पड़नेवाले को अचल लक्ष्मी और राज्यश्री मिलती है। स्त्री सुननेवाली स्वामी के सौभाग्य को पाती है। इस स्तोत्र को भक्ति से सुननेवाले को बन्धन से छुड़कारा होता है और अन्त में गोलोक में परमपद प्राप्त करता है।

५६

राधाकवचवर्णनम्

३२६

भगवती पार्वती ने राधापूजा विधान सुनकर शंकरजी से राधाकवच के विषय में पूछा और भगवान् शंकर ने कवच की महिमा बतलाकर उसके पाठ का फल बताया। जगन्मद्भल इस कवच का प्रजापति ऋषि हैं। रासेश्वरी स्वयं गायत्री देवी हैं श्रीकृष्णभक्ति सम्प्राप्ति का विनियोग है। इस कवच को हर प्रकार से गोपनीय रखना चाहिये। सभी को भगवती राधा के स्तोत्र का जप करने से सत्रसे उच्च पद प्राप्त होता है।

५७

दुर्गोपारयानम्

३३०

भगवती राधा के १६ नामों का वित्सार से वर्णन। इन १६ नामों की प्रथम सृष्टि के आदि में गोलोक में रासमण्डल में पूजा की गई। फिर मधुकैटभ से डरकर ब्रह्मा ने, फिर त्रिपुरारि भगवान् शंकर ने त्रिपुर से प्रेरित होकर फिर दुर्वासा के शाप से भ्रष्टात्री होकर महेन्द्र ने पूजा की और भगवती ने सम्पूर्ण आधि-दैविक, भौतिक एवं दैहिक पापतापों से संसार का उद्धार किया। दूसरे कल्पों में सुरय राजा और मेघस के शिष्य समाधि वैश्य ने वेदोक्त प्रकार से राधाकवच

के द्वारा भगवती की मृण्मयी मूर्ति बनाकर पूजा की। राजा और वैश्य को यथेच्छित धर दिया। राजा अपने सोये हुए राज्य पाकर राजपाट करने लगा और वैश्य अपना शरीर त्यागकर गोलोक में भगवती दुर्गा के धर से चला गया। यह नाना भोग भोगकर दूसरे कल्प में साधर्णि मनु हुआ।

५८

दुर्गापाख्यान तारोपाख्यानम्

३३५

सुरथ, समाधि और मेघस ऋषि के सम्बन्ध में नारद के पूछने पर नारायण ने अत्रि के पुत्र चन्द्रमा से बुध तारा में उत्पन्न हुए। बुध के पुत्र चैत्र और चैत्र का सुरथ हुआ। नारद ने बृहस्पतिजी की पत्नी तारा में चन्द्रमा से कैसे बुध हुए इस व्यतिक्रम का कारण पूछा। इस प्रकार कामयौवनोन्मत्त चन्द्रमा द्वारा आसक्त होकर तारा के साथ सम्भोग चलात्कार से ही होना बताया। तारा ने बहुत रोका परन्तु लम्पट अपने दुरामह से नहीं माना तब शुक ने चन्द्रमा को सत्यमार्ग बताया और विप्रपत्नीगमन में महापातक धतलाया। फिर शुक ने चन्द्रमा को अपने तपोवलय से शुद्ध किया। बहुतसे महापातकों का चन्द्रमा के गुरुपत्नी के साथ अनुगमन करने के महापातकों का वर्णन। शुकजी द्वारा चन्द्र को शुद्ध करने पर तारा को समझावुझाकर बृहस्पति के पास भेजना।

५९

बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिवप्रेषणम्

तारा के नदी से स्नान करके आने में विलम्ब होते देख बृहस्पतिजी को बहुत अधिक चिन्ता हुई उन्होंने अपने शिष्य को ताराको सोझने के लिये स्वर्ण नदी के किनारे भेजा। चन्द्र के इस दुःसाहमपूर्ण निन्दित कर्म की सूचना जब बृहस्पति को मिली तो वे मूर्च्छित हो गये और फिर चेतना पाकर अपने मनके उद्गार शिष्यों को कहने लगे।

श्री विना धर के समान है। जिस धर में मती श्री प्रिय धोलनेवाली

पतिव्रता न हो वह घर बन है । जिसकी पतिसाध्वी पतिव्रता को देवने हर लिया उसका घर बन के समान है ।

यस्यमातागृहेनास्ति गृहणी वा मुराम्मिता । अरप्यंतेनगन्तव्यं यथाऽरप्यं तथा गृहम्
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणवन्धुभिः । अरप्यंतेनगन्तव्यं यथाऽरप्यं तथा गृहम् ॥
भार्यागून्यावनसमाः सभार्याश्च गृहा गृहाः । गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते

अशुचिः स्त्रीविहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः ।

प्रभाहीनो यथा सूर्यः शोमाहीनो यथा शशी ॥

शक्तिहीनो यथा जीवो यथात्मा च तनुं विना ।

विना ऽऽधारं यथाऽऽघेयो यथेशः प्रकृतिम्बिना ॥

न च शक्तो यथा यज्ञः फलदा दक्षिणाम्बिना । कर्मणांचफलं दातुं सामग्रीमूलमेवच
विनास्त्रणं स्वणकारो यथाशक्तः स्वकर्मणि ।

भार्याः मूलाः क्रियाः मर्वाः भार्यामूलागृहान्तथा ॥

भार्यां मूलं सुखंसर्वं गृहस्थाना गृहे सदा । भार्यामूलः सदा हर्षो भार्यामूलश्चमङ्गलम्
भार्यामूलश्चन्तंसारो भार्यामूलश्च सौरभम् । यथा रथश्च रथिना गृहिणाश्च तथा गृहम्
यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभा विना यथा ।

तथैव च गृहमुखं गृहिणा गृहिणीम्बिना ॥

गृह की लक्ष्मी न रहने से संसार में सबकुछ सूना है क्योंकि देव, पितर और सभी माङ्गलिककायों में उसकी आवश्यकता रहती है । इस पर बृहस्पति ने इन्द्र को अपना भाव कहा और इन्द्र ने तुरन्त तारा को लानेकी बात कहकर उसके लिये प्रयत्न करने लगे । वे दोनों ब्रह्मा के पास गये और ब्रह्मा ने उन्हें गुरुरूप में मनुपदेश दिया और तारा के गर्भ को शुद्ध करने के लिये सनत्कुमार भगवान् ने उसे उनका व्रत करवाया । इससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने तारा के सामने आकर उसे इच्छित वर प्रदान किया ।

शिवजी के पास जाकर बृहस्पति ने क्या कहा इसका उत्तर नारायण ने दिया कि शंकर के पास जाते ही बृहस्पति का अभिवादन किया गया और उन्हें आसन पर बैठाकर सारी बातें पूछी गईं । शंकर ने उनके शोक का कारण पूछा क्या वैशद्योप से तपस्याहीन हो गईं कि सन्ध्याहीन हो गये ? क्या भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति नहीं रही क्या अतिथिसेवा नहीं हुई ? आपके शिष्य इन्द्र देवराज हैं और गुरु भगवान् वशिष्ठ हैं । सन्तजन पर प्रशंसक होते हैं ।

पुत्रेशशक्तितोये च समृद्धे च पराक्रमे । ऐश्वर्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधनेषु च ॥

वचनेषु च बुद्धौ च स्वभावे च चरित्रतः ।

आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम् ॥२१॥

यादृग्येषा च हृदयं तादृक् तेषा च मङ्गलम् ।

यादृग्येषा पूर्वपुण्यं तादृक् तेषा च मानसम् ॥२२॥

अतः आप इसका कारण बतलाइये । बृहस्पति ने कर्मवश की बात कहकर अपना आत्मनिवेदन किया । इसपर शंकर ने वैष्णवभक्तों का कष्ट स्वयं श्रीकृष्ण दूर करते हैं वता भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों की प्रशंसा की । भगवान् शंकर द्वारा श्रीकृष्णभक्त बृहस्पति को लक्ष्मी माया का कामजीव प्रदान । बृहस्पति द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में मन लगाने की बात कहना । इन्द्र के द्वारा भगवान् विष्णु के यहाँ जाकर सारी बात कहकर तारा को प्राप्त करने का उपाय ।

६१

ब्रह्मणः शुक्रगृहेगमनम्

३५०

गुरुपत्नी के लिये शुक्राचार्य के यहाँ ब्रह्मा का जाना । शुक्र ने ब्रह्मा को आते देखकर उनकी स्तुति की और अभिवादनपूर्वक सत्कार किया और ब्रह्मा से आने का कारण पूछा । ब्रह्माने शुक्र से गुरुपत्नी तारा को चन्द्रमा द्वारा छूनेकी बात कही और उसका पक्ष भी शुक्राचार्य ले रहे हैं । अतः मैं देवताओं की ओर से यह कहने आया हूँ कि या तो तारा को दो या कामी चन्द्र को छोड़ो । शुक्र ने

शङ्करजी को छोड़कर सभी देवगुन्द को खुला आह्वान किया कि वे युद्ध करें। ब्रह्मा ने फिर कहा कि भगवती काली और शिव के पार्षद वीरभद्रादि तथा कालाग्नि रुद्र तथा राधा कमच कण्ठवाले श्रीविष्णु के युद्ध में आते ही तुम दैत्यों में कौन उनके सामने टिक सकेगा।

प्रह्लाद ने ब्रह्माजी को विनय से प्रत्युत्तर दिया कि अवश्य ही भगवान् विष्णु मधुकैटभ और हिरण्यकशिपु को मारनेवाले हैं फिर भी वह परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण की ही कला है। वही सबके अन्तरात्मा अपने सुदर्शनचक्र से हम सभी की रक्षा करते हैं। उनसे तो कोई भी बलवान् नहीं कहा जासकता। मैं श्रीकृष्ण की शरण में होकर सभी को युद्ध के लिये आह्वान करता हूँ। भगवान् की कृपा का ही सारा बल है। यदि मेरे पिता मरे तो वे विष्णु की निन्दा से। शरत्चूड़ निर्बन्ध (अभिमान से) मधुकैटभ भूटे दर्प से। त्रिपुर तो हमारा सेवक था फिर भी शकर प्रेरित वह मरा था। तब ब्रह्मा ने दोनों पक्षों को युद्ध से शक्ति, बल और सैन्य का दुरुपयोग बतलाकर दैत्यराज प्रह्लाद से तारा की भिक्षा मागी और विमुक्त भिक्षुक के जाने पर गृहस्थ भी पापों का भागी होता है यह कहा। फिर सनत्कुमार, सनन्दन, सनक और ऋषियों ने भी बृहस्पति की स्त्री तारा को लौटाने की धर्मसङ्गत माग की। इसपर प्रह्लाद ने शुक्राचार्य से ही वह कार्य हो सकता है, यह बताकर उन्हीं के पास जानेको ब्रह्मादि देवगण और ऋषि मुनियों को सत्परामर्श दिया। तब सब शुक्रजी से प्रार्थना करने लगे और उन्होंने तारा तथा चन्द्र को लौटा दिया। प्रह्लाद सभी ब्रह्मादि देवगण व मुनिगुन्द को प्रणाम कर घर लौट आया। इधर चन्द्रमा तथा तारा दोनों ही ब्रह्माजी के चरणों पर गिर पड़े। चन्द्रमा को अपनी भूल स्वीकार करने पर ब्रह्मा ने क्षमापूर्वक गोद में उठा लिया और कृपालु ब्रह्माजी ने कहा हे तारे अब डरो मत तुम सौभाग्ययुक्त बनोगी क्योंकि प्रायश्चित्त ही दुर्बलों का जो बलीजन से हरी गई एकमात्र उपाय है।

दुर्बला वलिनाप्रस्ता निष्कामात्प्रच्युता भवेत् ।
 प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुष्यति ॥
 सकामा कामतो जारं भजते स्वमुसेन च ।
 प्रायश्चित्तात् शुद्धा सा स्वामिना परिवर्जिता ॥

उन्होंने उससे गर्भ की स्थिति किस से हुई यह पूछा तो तारा ने चन्द्रमा को उसका कारण बतलाया । इसके बाद तारा ने सुन्दर कुमार को जन्म दिया और चन्द्रमा उसे लेकर ब्रह्माजी को प्रणाम कर चला गया । ब्रह्माजी तारा को देवगुरु बृहस्पतिजी को देकर तथा देवगण को अभय दान कर अपने भवन सिन्धु के तट पर चले गये ।

एक बार बुध ने युवक होने पर घृताची के गर्भ से उत्पन्न कुवेर की कन्या चित्रा को नन्दनवन में देखा । यह बारह वर्ष की यौवन के उद्गम अवस्था में थी । उस चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसे गान्धर्व विधि से ग्रहण कर एकान्तस्थान में वसने वीर्यादान कर दिया । उसके चैत्र नामक पुत्र हुआ जो धर्मात्मा, प्रतापी, दानी हुआ । चैत्र को राजाधिरथ उसके सुरथ हुआ इसी सुरथ ने वैश्यसमाधि के साथ भगवती दुर्गा की सरिता के किनारे पूजा की थी । यह वैश्य धर्मात्मा जयी और क्रिया कुशल था परन्तु दुर्दैव से धन के लोभ में आकर स्त्री पुत्रादि सभी ने इसे घर के बाहर निकाला । भगवती दुर्गा के ध्यान से यह फिर समृद्धि-शाली हुआ । राजा को मनुत्व और निष्कण्टक राज्य मिला ।

६२

राज्ञः सुरथस्य वैश्यसमाधेश्च विवरणम्

३५६

राजा को मेधम मुनि से ज्ञान प्राप्ति और वैश्य को मुक्ति कैसे मिली नारदजी के इस प्रश्न के उत्तर में नारायण ने कहा कि ध्रुव का पौत्र उक्कल का पुत्र नन्दि महा प्रतापी था । उसने सुरथ राजा के देशों पर अधिकार कर लिया । जब सुरथ अकेला रह गया तो वह रात्रि में पीढ़े पर चढ़कर घोर

जङ्गल में निकल गया। पुष्पभद्रा नदी के तट पर उसने वश्य को देखा और उनमें गहरी मित्रता हो गई। पुष्कर क्षेत्र में वैश्य के साथ राजा मेघस ऋषि के आश्रम में गया। वहाँ अपने आश्रम में शिष्यवृन्द को उन्होंने दुर्लभ ब्रह्मतत्त्व समझाते हुए देखा। राजा सुरथ और वैश्य समाधि ने मुनिको प्रणाम किया। मुनि ने उनको शुभाशीर्वादपूर्वक अभिवादन किया और उनको कुशल प्रश्न पूछा तो राजा ने अपना राज्य निष्कासन का वृत्तान्त बतलाया और राज्य प्राप्ति का उपाय पूछा और वैश्य के सम्बन्ध में बतलाया कि वह वैश्य धन के लोभी स्त्री पुत्रादि से निकाला गया है। क्योंकि प्रतिदिन अपने उपार्जित धन में से वह अपने स्त्री पुत्रादिकों के मना करने पर भी सूय रत्न, मणिमाणिक्य प्रतिदिन ब्राह्मणों को दिया करता था। जब उन घेरे, पोते, भाई बन्धुओं ने इसे खोजकर घर जाने को आग्रह किया तो यह ज्ञान पाकर ऊँचा वैराग्य का अभ्यास करने का दृढ़ निश्चय कर भगवान् में भक्ति करने का उपाय ढूँढ़ रहा है। बाद में इसके पुत्र भी अपने पिता के वियोग में शोक से दुःखी होकर वन में जाकर वैरागी हो गये। अब इसे निष्काम भगवान् का दासत्व मिले ऐसा उपाय बतलाइये। मेघस ने भगवती कृपामयी कृष्ण की विष्णुमाया का चमत्कारपूर्ण प्रभाव बताकर उन्हीं की कृपा से कृष्णभक्ति का आनन्द लाभ हो सकता है यह सिद्धान्त कहा। नाना जन्मों के बाद शंकर की भक्ति से विष्णु भक्ति का और विष्णुभक्ति से निर्गुण कृष्ण की भक्ति के सबल मार्ग का रहस्यपूर्ण वर्णन कर श्रीमेघस ने कृष्णभक्त से ही कृष्ण मन्त्र को लेकर अपना मार्ग प्रशस्त करने को कहा। भगवान् की भक्ति दो प्रकार की है एक विवेचना और दूसरी आवरण। प्रथम भक्त को दी जाती है और दूसरी आवरण से सारा जगत् लीला नाटक के सूत्रधार से संचालित होकर अपना भाग ग्रहण करता है। मैं भी भगवान् शंकर से कृष्णभक्ति का ज्ञान लेकर अपना जन्म सफल करने में लगा हूँ। जाओ भगवती की आराधना करो। नदी तीर पर जाकर वही तुम्हें कामनापूर्ण

आवरणी बुद्धि देगी जिससे सब ठीक हो जायगा । निष्काम वैश्य को भगवती विवेचना शक्ति देगी जिससे उसे भगवती के चरणों का सहज ही लाभ होगा । इसपर उन दोनों ने दुर्गास्तोत्र और कवच द्वारा भगवती को प्रसन्न किया । वैश्य को मुक्ति और राजा को मनु का पद तथा इच्छित ऐश्वर्य मिला ।

६३ सुरथसमाधिमेधमसम्वादे प्रकृतिवैश्यसम्वादः ३५८

राजा को कैसे प्रकृति की भक्ति का लाभ हुआ और वैश्य को किस पूजा-विधान, मन्त्र, जप, स्तोत्र, और कवच से हुआ इसके विषय में जिज्ञासा करने पर नारायण ने कहा कि राजा और वैश्य दोनों को सुमेधस ने ध्यान, स्तोत्र, कवच का उपदेश किया । उसकी ही पुष्कर में एक वर्ष तक तीन काल उन दोनों ने साधना की । भगवती ने प्रसन्न होकर उन्हें यथेच्छ वरदान दिया । वैश्य को चेतना देकर जब भगवती ने वर मागने को कहा तो उसने भगवती चरण में रहकर कभी नाश न होनेवाले सम्पूर्ण वस्तुओं का सार वर मागा । प्रकृति ने भगवान् की नवधा भक्ति का वर्णन कर उसकी साधना करनेवाले सफल मुनीश्वर देवगण का परिगणन किया और भगवान् कृष्ण की भक्ति का उपदेश दिया । “कृष्ण” इस नाम का पुष्कर में दशलखा के जप का आदेश दिया जिसे पूर्ण कर वैश्य भगवान् कृष्ण का परमपद पाकर उनका दास बना ।

६४ राज्ञः सुरथस्य दुर्गापूजनम् २६१

फिर नारायण ने राजा के द्वारा भगवती के पूजन का विस्तार से वर्णन किया । सुरथ ने स्नान, आचमन और न्यासत्रय कर (कर, अङ्गअङ्गाङ्ग, न्यास) भूतशुद्धि की तथा प्राणायाम कर शंखशोधन किया । फिर भगवती की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उनका आवाहन किया । फिर देवी के दक्षिण भाग में कमलालय की स्थापना की और गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती छत्रों देवों की पूजा

विधिविधान से की। फिर मूल प्रकृति ईश्वरी का सुन्दर ध्यान किया। इसे भक्तों को सुरथवैश्य की पूजा के अनुसार ही सदा कर आनन्द लूटना चाहिये। स्तोत्र का विधान पूजा तीन प्रकार की है। सात्विकी, राजसी और तामसी। वैष्णवों की सात्विकी, शाक्तादि की राजसी व अदीक्षित और अन्य सज्जन लोगों की तामसी पूजा है। “दुर्गा” यह नामजप मात्र से ही कष्टों का विनाश हो जाता है। पूजा षोडश उपचार से की जानी चाहिये। इसी प्रकार छत्रों देवताओं की, फिर जगदम्बिका, अष्टनायिका, अष्टदलकमल में स्थापित कर आराधना करे। इसके बाद महाभैरव, असिताङ्ग भैरव, ससभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड और चन्द्रचूड की पूजा करे। फिर नवशक्ति जैसे वैष्णवी, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, रौद्री, नारसिंही, बाराही इन्द्राणी कार्तिकी तथा सर्वमङ्गला की पूजा कर फिर शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण और देवी की दासी तथा वदुक और चतुःपष्टि योगिनी की विधिविधान से पूजा करे। कवच को गले में बाधकर पठन करे। फिर बलिदान विधान कर भगवती को प्रसन्न करे। बलिदान के बाद भगवती को प्रणामादि कर ब्राह्मण को दक्षिणा देवे।

६५

दुर्गोपाख्याने दानकथनम्

३६६

श्रीनारायण ने नारदजी द्वारा स्तोत्र, कवच, पूजा के फल को जानने की इच्छा पर आर्द्रा में देवी को बोधन कर मूल से प्रवेश करे और श्रवण में विसर्जन करे, यह कहा। भगवती के बोधनोत्सव का आर्द्रायुक्त नवमी को यदि कोई करला है तो उसे शतवार्षिकी पूजा का फल मिलता है। सुरथ की पूजा से भगवती सन्तुष्ट हुईं और राजा से यथेच्छ वर मागने को कहा। उसे अभीष्ट राज्य और शत्रुनाश होने का वर देकर अन्त में ज्ञानरूप कृष्णभक्ति का उपदेश किया। कृष्ण नाम के गुण प्रभाव का वर्णन कर भगवती अन्तर्धान कर गईं। राजा भी अपनी आराध्या को प्रणाम कर राज्य पाकर घर चला गया।

प्रकृति के कवच स्तोत्र के सम्बन्ध में नारदजी द्वारा पूछने पर श्रीनारायण ने जब-जब श्रीकृष्ण ने गौलीक रासमण्डल में राधा की स्तुति की तथा मधुकैटभ युद्ध में विष्णु ने फिर त्रिपुरारि शंकर ने एवं वृत्रासुरवध के समय देवराज इन्द्र ने एव मनुष्यों, देवतायुन्द और सुरधादि राजाओं ने कल्प-कल्प में आराधना की उस स्तोत्र को बताया। इसकी फलश्रुति सर्वत्र विजय ही प्रकृति की साधना का फल और उनके श्रीचरणों में भक्ति द्वारा भक्त का उद्धार बतलाया गया।

नारदजी के अनुरोध से श्रीनारायण ने प्रकृति कवच अथवा ब्रह्माण्डमोहन कवच का उपदेश किया। सिद्धकवच करने के लिये इसका पाच लाख जप करना आवश्यक है। गणपति मूलप्रकृति के ही पुत्र हैं उनके आविर्भाव के भगवान् श्रीकृष्ण ही श्वास से मूल कारण हैं। ब्रह्मवैवर्तप्रकृतिखण्ड को सुनकर नानाप्रकार से ब्राह्मण भोजन, दान और जपतप करानेवालों को अनन्त फल और पुत्रपौत्र-लक्ष्मी की अनन्तकाल तक प्राप्ति तथा अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण में निश्चला भक्ति होकर गोलोक में परमपद की प्राप्ति होती है।

॥ शुभम्भूयान् ॥

श्रीगणेशाय नम ।

अथ तृतीयं गणपतिखण्डम्

अध्याय

विषय

पृष्ठाङ्क

१

गणेशजन्मविषयक प्रश्नविचारः

३७३

श्रीकृष्ण परब्रह्म की कृपा से गणेशजन्मनी भगवती पार्वतीजी की असीम अनुकम्पा से गणेश आविर्भाव के वृत्तान्त की विषयसूची का वर्णन प्रस्तुत है—

श्री नारदजी ने प्रकृतिखण्ड के अमृत समुद्रमय आख्यान में मूत्र स्नान कर अपनी हार्दिक प्रमत्नता व्यक्त करते हुए गणेशखण्ड के लिये श्रीमन्नारायण से सादर निवेदन किया। उन्होंने गणेश के भगवती पावती के गर्भ से जन्म को लेकर प्रश्न किया। उनका प्रादुर्भाव किस देव के अंश से हुआ वह योनि सम्भव है कि अयोनि सम्भव? उनका तेज, पराक्रम, तपस्या, ज्ञान और निर्मल यश कैसा है? सभी नारायण, ब्रह्मा, शिवशंकर आदि के विद्यमान रहते हुए उनकी पूजा क्यों प्रथम विहित है? इनका जन्म पुराणों में सारपूर्ण और रहस्यमय गाया गया है। यह हाथी के मुखजाले और एकदन्त क्यों है आदि प्रश्नों की कड़ी लगादी। भगवान् नारायण ने कहना आरम्भ किया कि सभी दैत्यों का संहार कर जब दक्षकन्या भगवती ने अपने स्वामी की निन्दा को सहन न कर दक्ष यज्ञ में देह छोड़ दिया तो योग से वह हिमालय के यहा कन्या रूप में उत्पन्न हुईं। विवाहयोग्य अवस्था में हिमालय ने उनका विवाह भगवान् शंकर से कर दिया। भगवान् शंकर और भगवती पार्वती नर्मदा के तट पर सुन्दर पुष्प उद्यान में देवों के हजार वर्ष पर्यन्त शृङ्गारपूर्ण रतिलीला में मग्न हो गये।

दोनों ही एक दूसरे के अङ्गस्पर्श से मूर्च्छित होगये। उस एकान्त स्थान में उनकी यह मनोमुग्धकारिणा सम्भोगलीला देखकर देवगण को चिन्ता हुई। वे लोग ब्रह्माजी को नेत्रावतार नारायण के पास गये और उनसे सारी बातें ब्रह्माजी के द्वारा कहलाई। शंकर भगवान् और भगवती पार्वती के इस सम्भोग से जो सन्तान होगी उसके भविष्य के लिये भी उन्होंने नारायण से पूछा। भगवान् नारायण ने कहा कि आपलोग मेरी शरण आये है आप निर्भय रहिये। आप सब मिलकर एक उपाय कीजिये कि शंकर का वीर्य भूमि में गिरे, नहीं तो पार्वतीजी के पेट में गर्भाधान होने से वह सन्तान देव और असुर दोनों के लिये ही घातक होगी। तब देवगण नर्मदा किनारे शंकर पार्वती को विन्न कर जगाने के लिये गये तथा ब्रह्माजी अपने स्थान पर लौट गये। देवराज इन्द्र ने कुबेर को, कुबेर ने वरुण को, वरुण ने वायु को और वायु ने यम को, यमने अग्नि को, अग्नि ने सूर्य को, सूर्यने चन्द्रमा को और चन्द्रमाने ईशानको रति में भङ्ग डालने के लिये परस्पर कहा परन्तु किसी की हिम्मत न हुई। तब देवराज इन्द्र ने थोड़ा शिर टेढ़ा कर महादेवजी को कहा—हे योगीश्वर महादेव आपको प्रणाम है क्या करते हैं ? इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र और पवन ने धारी धारी से उन्हें उद्बोधन करने का प्रयत्न किया परन्तु पार्वतीजी के डर से सम्भोग अवस्था में उठने का प्रयत्न शंकरजी न कर सके। जब फिर भय से व्याकुल देवगण को स्तुति करनेसे उग्रत देखा तो उन्होंने पार्वतीजी को छोड़कर अलग होने का प्रयत्न किया उसी बीच में उनका वीर्य भूमि पर गिर गया उससे स्फुट हुए। इस मनोहर कथा का प्रसङ्ग स्कन्द जन्म के प्रकरण में आयेगा।

२

श्रीडापरितेन शिपेन देवदर्शनम्

३७५

श्री नारायण ने कथा प्रसङ्ग समाप्त जारी रखते हुए कहा कि महादेवजी ने रति से उग्रत अपने सामने देवगण को देखा और उन्हें यह परामर्श दिया कि

आप सब यहा से पार्वतीजी क्रोधित न हो जाय इसलिये भाग जाइये । जब पार्वतीजी उठी तो अखिलब्रह्माण्ड के संहार करनेवाले भगवान् शंकरजी कांपने लगे । अपने सामने देवगण को न देखकर उन्होंने अपने क्रोध को स्तम्भित कर लिया और बोलीं कि आज से देवतागण व्यर्थवैर्य हो जाय । भगवती क्रोध से आस लाल करती हुई लज्जितसी भूमि खोदने की चेष्टा करने लगीं । भगवान् ने डरते-डरते पार्वतीजी को छाती से लगाकर बैठाया और इस प्रकार मधुर वचन बोले—हे मेरी सौभाग्यरूपे प्राणाधिष्ठात्रीदेवते पार्वती रष्ट क्यों हैं । मुझ निरपराध पर प्रसन्न होओ तुम्हें क्या इष्ट है कहो । मैं तुम्हारे प्रताप से ही शिव हूं नहीं तो शिव तुल्य हूं तुम ही प्रकृति, बुद्धि, क्षमा, दया, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा, छाया, निद्रा, तन्द्रा एवं सम्पूर्ण प्राणियों का आधार सर्वस्व और वीजस्वरूपिणी हो, अब मुझे अपने क्रोध से दग्ध हुए को जिलाओ । तब भगवती ने क्रोधयुक्त होने पर भी मनोहारी वचन कहे—हे भगवान् आप सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित हैं आप सर्वज्ञ को मैं क्या कहूं । सम्पूर्ण विभव आदि के मुख को एक ओर रख दीजिये और अपने पति के सम्भोग मुख को एक ओर तो स्त्री के लिये अपने पतिदेव के साथ रति मुख ही अधिक प्रिय होगा । इससे भद्र होने से स्त्री को अत्यन्त पीडा होती है । उसके बराबर स्त्री के लिये बड़ा दुःख कोई नहीं है ।

कन्ताना कान्तविच्छेदः शोकः परमदारणः । कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने
तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे ॥२८॥

कान्ता रमणियों के लिये पति का विच्छेद परम दारण शोक का कारण होता है । जैसे कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कला दिन-दिन घटती जाती है वैसे ही स्त्री की कला पति के विना क्षण-क्षण क्षीय हो जाती है ।

चिन्ताज्वरश्चसर्वेषामुपतापश्च वाससाम् ।

नाध्वीना कातविच्छेदस्तुरगानाश्च मैथुनम् ॥२९॥

रतिभङ्गो दुःखमेकम् द्वितीयं धीर्यपातनम् । दुःखातिरेकदुःखञ्च तृतीयमनपत्यता ॥२३॥
 आपके रहते मुझे रतिभङ्ग, धीर्यपतन और पुत्र न होने के तीन-तीन दुःख हो इससे अधिक दुःख ससार में मेरे लिये और क्या होसकता है ।

त्रैलोक्य के स्वामी आपको पति पाकर भाँ मेरे सन्तान न हो, जिस स्त्री के रतिसुख से प्राप्त सन्तान न हो उसका जन्म व्यर्थ है । सद्वंश में सत्पुत्र ही गृहस्थ का सब कुछ है कुपुत्र तो कुल का अद्धार है, नाश करनेवाला है । स्वामी अपने अश से अपनी स्त्री के गर्भ से जन्म लेता है । साध्वी स्त्री माता के समान हितकारिणी है । असाध्वी वैरी के समान सन्ताप देनेवाली है । “मुखदुष्टा योनिदुष्टा चैवाऽसाध्यति हि स्मृता” अब आप ही बताइये मैं क्या उपाय करूँ ? इसपर शंकरजी ने हँमकर पार्वतीजी को सान्त्वना देते हुए कहा—

३ पार्वतीम्प्रति हरिव्रतरक्षणाय शिवस्योपदेशः ३७७

महादेवजी ने कार्यसिद्धि के लिये उपाय बतलाया । उन्होंने पुण्यक नामक व्रत को भगवान् हरि की आराधना करते हुए करनेका परामर्श दिया । यह वाञ्छामल्पतरु है, मरका सार है, मुरदेने वाला और पुत्रदाता है, सम्पूर्ण सम्पत्ति का दाता भी यही है । इमलि इसको पालन करो तुम्हें व्रत के आराध्य कृष्ण अवश्य वाञ्छित फल देंगे । अब तुम हरि मन्त्र को लो पितरों के मुक्ति-कारण इम व्रत को करते हुए इष्टसिद्धि पाओगी । यह कहकर उन्होंने शीघ्र गङ्गाजी के तटपर जाकर बड़े प्रेम से भगवान् श्रीकृष्ण के स्तोत्रयुक्त कवच और पूजाविधान के नियमों को बताया ।

भगवती श्रीपार्वती ने सम्पूर्ण व्रतविधान सुनकर इसका विस्तार से वर्णन जानना चाहा । पिता अपनी कन्या को नौमारादस्या मे सत्र प्रकार से भरण पोषण कर योग्य बना देता है । युवावस्था मे पति उसकी शक्ति का ह्रास नहीं होने देता और वृद्धावस्था मे पुत्र उसकी सेवाम्बर अपना जन्म सफल करते हैं । सुन्दर पति को देकर कन्यापिता धन्य होता है । पति गृहस्थ मे उसे सत्र प्रकार सुखीकर वृद्धावस्था में पुत्रो को उसका भार सौंपकर वर्तमानपालन करता है । तीन भाईयों की बहन भाग्यवती है, उससे कम भाग्यशालिनी दो भाई वाली, उसे कम एक भाई वाली और एक भी न होनेपर तो यह बेचारी अधमा है । मुझे पुत्ररत्न की आवश्यकता है आप कृपाकर उसकी व्यवस्था कीजिये । तत्र शंकरजी ने पुण्यक व्रत का आरम्भ माघ शुद्ध त्रयोदशी को करने का विधान कहा । प्रातः काल स्नान ध्यान से निवृत्त होकर स्वस्तिराचन के साथ घटस्थापन किया जाय । पुरोहित को वरण कर पोडशोपचार से भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन हो । इसका विधान साङ्गोपाङ्ग होना चाहिये । थोड़ीसी भी त्रुटि होने से अङ्गहानि होती है तो फल मे भी हानि सम्भव है । नाना द्रव्यों से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा का नाना फल सङ्कल्प मे श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ कहना चाहिये । पुष्पाञ्जलि के बाद सौ प्रणाम करे और छ मास तक हविष्य अन्न खाये । एक पक्ष तक हवि जल का पान करे । रात्रि मे कुशासन पर बैठकर जागरण करे आठ तरह के मैथुनों को छोड़ दे । व्रत की समाप्ति पर पूर्ण सामग्री सजाकर टिल होम कर द्राह्मण भोजन और दक्षिणा देवे । इन व्रत का यही फल है कि भगवान् मे दृढ अचल भक्ति होती है और भगवान् हरि के समान ही सर्वगुणनिधान पुत्र उत्पन्न होता है और व्रत करनेवाली स्त्री को सौन्दर्य, स्वामी का सौभाग्य, ऐश्वर्य और विपुल धन की प्राप्ति होती है । अब महेश्वरी तुम व्रत करो तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी ।

ऋतविधान को सुनकर पार्वतीजी की उत्कण्ठा ऋतमाहात्म्य को सुनने के सम्बन्ध में हुई। महादेवजी ने स्था आरम्भ की। प्राचीन समय में शतरूपा ने जा मुनु की पत्नी थी वह पुत्र न होने से अत्यन्त दुःखित होकर ब्रह्माजी के पास जा बन्धा के पुत्र होने का सफल उपाय पूछा।

तत्रन्मनिष्फलब्रह्मन्नैरव्ययधनमेव च । किञ्चित् शोभते गेहे रिना पुत्रेण पुत्रिणाम् ॥

पुत्र के बिना सत्र सूना है। पुत्र सुखदेनेवाला, मोक्षदाता व प्रीतिदाता है। अपुत्र का सुख कोई नहीं देखना चाहता। स्वयं वह भी लज्जित होता है। ब्रह्माजी ने उसे माघ शुक्ल त्रयोदशी को सुपुण्यक ऋत करने का आदेश किया। इसे एक वर्ष तक लगाना करना चाहिये और इसकी ममात्रि बताई।

नारदजी द्वारा ऋत के आरम्भ का विधान पूछने पर नारायण भगवान् ने दिव्य कथा और ऋत का विधान कहा। जब भगवान् शंकर साभ्रान् तपस्या करने चले गये तो भगवती पार्वती ने शंकरजी की आज्ञा से पुण्यक ऋत को आरम्भ किया। इन अवसर पर ब्रह्मानी पिण्ड आदि देवगण मनः, मनन्दन व सनत्कुमार आदि ऋते-ऋते ऋषि महर्षि उपस्थित हुए। उन समय षड़ी भारी समा जुगे और उममे नाना प्रकार के गीत, नृत्यवादित्रों से शंकरजी ने मन्त्रका स्वागत किया। ब्रह्मानी की प्रेरणा से शंकरजी ने हाथ जोड़कर भगवती पार्वती के पुण्यक ऋत करने की इच्छा की बात कही। उन्होंने अपने रतिभङ्ग और पार्वतीजी

के शोक, क्रोधयुक्त वचनों को ब्रह्मानी से कहा और पुत्राभिलाषा होने से उसे पूर्ण करने का उपाय जानना चाहा, साथ ही स्त्री स्वभाव को लेकर अपना मन्तव्य रक्ता ।

दुर्निवार्यश्च सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापल ।

दुस्त्यज योगिभि सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभि ॥२४॥

स्त्रीस्वभाव अत्यन्त चपल होता है वह किसी के समझाये नहीं ठीक होता इनना होनेपर भी स्त्रीरूप के वश में योगी लोग सिद्धगण और हम तपस्वी भी हैं । यह मोह का कारण है, सम्पूर्ण माया का पिटारा कामवर्द्धन का कारण कामदेव का ब्रह्माक्ष, मोक्ष के द्वार को बन्द करने का कियाड और हरिभक्ति को रोकने-वाला यह है । वैराग्य नाश का बीज है, रागादि को बढ़ाता है । साहसों का समूह, दोषों का घर, अविश्वासों का क्षेत्र और स्वयं मूर्तिमान् कपट है । अहङ्कार का आश्रय सदा ही मुख में अमृत लगे हुए विपकुम्भ के समान यह रहती है । सभी के लिये असाध्य है, दुस्ताप्य कलह के अङ्कुर का बीज है । अतः आपलोग पार्वतीजी के लिये परिणाम में सुगयाह कोई पुत्र प्राप्ति का सुन्दर उपाय बता दीजिये । इसपर भगवान् विष्णु ने सुगुणक व्रत का साहाय्य बतलाया और श्रीकृष्णभक्ति का अमोघ रहस्य कहकर श्रीकृष्ण भक्तों का मार्ग सदैव निष्कण्टक बतलाया और भगवती पार्वती के लिये इस व्रत को करने का विधान बतलाकर उसके प्रभाव से गोलोकनाथ श्रीकृष्ण स्वयं पार्वती के गर्भ से उत्पन्न होंगे यही गणेश नाम से प्रसिद्ध हो जायगे यह कहा । गजानन, एकदन्त आदि नामों की कथा ।

७	हरेरादेशात् व्रतविधानम्	३६१
	व्रतान्ते पुरोहितेन स्वामिदक्षिणायाचनम्	३६३
	देवान्प्रति नारायणवाक्यम्	३६५
	पार्वतीकृत श्रीनारायणस्तोत्रम्	३६७

भगवान् विष्णु के आदेश से शङ्करजी ने पार्वतीजी को व्रत का विधान बताया। उन्होंने सुन्दर वैषभूपा पहनकर शुभ दिन में रत्नकलशादि की स्थापना कर मुनिवृन्द की विधिविधान से पूजन कर पुरोहित, आचार्य, दिक्पाल, देव, नाग, मनुष्य एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि वी पूजा कर स्वस्तिनाचन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का मङ्गल घट में आवाहन किया और षोडश (सोलहों) उपचारों से भक्तिपूर्वक पूजा की। इस व्रत में जो उपकरण (सामग्री) देने की थी उसे मुत्रा सती पार्वती ने मन्त्र सहित प्रदान की। तिल और घृत की तीन लाख आहुतियों से हवन किया। देवता, अतिथि और ब्राह्मणों की सम्पूर्ण साधनों से पूजा की। यह क्रम एक वर्ष तक प्रतिदिन चलना रहा। एक वर्ष के बाद समाप्ति दिवस पर पुरोहित ने भगवती पार्वती से पति को दक्षिणा में मांगा। भगवती इसपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। तब शङ्करजी ने उन्हें दक्षिणा न देने पर फलहानि का भय बताया और धर्म, देवता, मुनिवृन्द ने दक्षिणा के विषय में पार्वती को समझाया तब भगवती ने पति को दक्षिणारूप में मांगने पर आपत्ति उठाई कि पति के देने से स्त्री के पास फिर रह क्या जायगा।

भर्तृवंशश्चतनयः केवलं भर्तृमूलकः । यत्र मूलं भवेद्भ्रष्टं तद्वाणिज्यश्च निष्कलम् ॥

इस प्रकार जब पार्वतीजी एवं धर्म, देवता और मुनिगणों का दक्षिणा के विषय में विचार चल रहा था तो भगवान् चतुर्भुज श्रीकृष्ण रथ से वहाँ उपस्थित हुए। उन्हें देववृन्द ने प्रणाम किया और उन्होंने देववृन्द को सृष्टि का स्वरूप, प्रपत्ति, स्थिति और लय का कारण बताया। सम्पूर्ण प्राणिमात्र का आधार प्रकृति

को बताकर गोलोकनाथ द्विभुज और वैकुण्ठनाथ चतुर्भुज विष्णुरूप का महत्त्व समझाया और पार्वतीजी को अपने प्राणनाथ शङ्करजी को देकर फिर उचित मूल्य द्वारा उन्हें पुनः प्राप्त करने का उपाय कहा। गौएँ विष्णु की देहरूपा है शिवजी विष्णु के साक्षात् शरीर हैं अतः आप गोमूल्य देकर स्वामी को ग्रहण करें। पार्वतीजी ने वैसा ही किया और एक लाख गौओं को बदले में देकर शङ्करजी को फिर मागा। इसपर सनत्कुमार ने ना किया इससे पार्वती को क्रुष्ट हुआ। उन्होंने शङ्कर का ध्यान किया और सामने महत्तेजः पुञ्ज भगवान् का रूप प्रकट हुआ। उसकी क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, धर्म, देवता, मुनिगण, सरस्वती, सावित्री, लक्ष्मी, हिमालय और पार्वतीजी ने भक्तिभाव से स्तुति की। पार्वती ने भगवान् शंकर के तीन जन्म में पति होने के विषय को लेकर इस जन्म में भी सौभाग्य से उनके पति होने एवं पुत्र न होने का प्रकरण कहकर स्तुति की। उन्होंने भगवान् से उनके समान ही पुत्ररत्न की प्राप्ति हो यह कामना की। इस पार्वतीकृत स्तोत्र को संयत होकर सुननेवाले को भगवान् विष्णु के समान पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। एक वर्ष तक हविष्य भोजन कर इस व्रत को करनेवाले को सुपुण्यक व्रत का अवश्य ही फल मिलता है।

८	स्तवप्रीतेन कृष्णेन पार्वत्यै निजरूपप्रदर्शनं वरप्रदानम्	३६६
	वृद्धविप्रातिथिरूपेण विष्णोरागमनम्	४०१
	गणेशोत्पत्तिः	४०३

भगवती पार्वती के स्तवन से प्रसन्न होकर देवाधिदेव श्रीकृष्ण ने अपना दुर्लभ अनुपम सौन्दर्य सौकुमार्यपूर्ण रूप दिखाया उनके साथ चारों ओर गोप एवं गोपिका बँठे हैं और राधा उनके पास विराजमान हैं। उस रूप को देख मुग्ध होकर ऐसे ही सुन्दर पुत्र की अभिलाषा उनसे की। भगवान् 'तथास्तु'

कहकर अन्तर्धान करगये। उन्होंने फिर सबको यथाविधि सन्तुष्ट किया और
 --- बभ्रुतदान से सबको वृत्र किया। स्वयं शङ्करजी के साथ ब्राह्मणों को भोजन
 दक्षिणा से राजी कर आप प्रसाद पाकर सुन्दर शय्या पर पार्वतीजी सो गई।
 उस रतिलीला के अन्त में वीर्यपतन काल में विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का बेंप धरकर
 आ पहुँचे और सब तरह से शङ्कर को तथा पार्वती को उद्वेगित किया। इसपर
 पार्वती और शङ्करजी बीच में ही उठकर धनुष पकड़कर उस रविभवन के द्वार पर
 खड़े ब्राह्मण के पास गये और उसे आने का कारण पूछा। शङ्करजी ने उससे
 नामपन्था पूछा और पार्वतीजी ने अपने द्वार पर आये हुए वृद्ध अतिथि का
 सत्कार कर अतिथि पूजन का फल बतलाते हुए अपनेको धन्य कहा।

अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्तते ।

पितृदेवाग्रयः पश्चाद् गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥ ६ ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

तानिसर्वाणि लभते नाभ्यर्च्यतिथिमीप्सितम् ॥

ब्राह्मण ने भूय-प्यास से पीड़ित अपनेको बतलाकर आहार पाने की बलवती
 इच्छा प्रकट की। ब्राह्मण ने पाँच प्रकार के पिता बतलाये।

विद्यादाताऽऽदाता च भयत्राता च जन्मदः ।

कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः ॥

गुरुपत्नी गर्भदात्री स्तनदात्री पितुः श्वसा ।

श्वमा मातुः सपत्नी च पुत्रभाष्यार्थदायिका ॥

भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यज शरणागतः ।

धर्मपुत्रश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति ॥ ४ ॥

मैं बुढ़ा ब्राह्मण आपके शरण में आया हूँ मेरा अब अन्न से उपकार
 कीजिये। आगे उसने भगवद्भक्ति की प्रशंसा कर उनके चरणों की भक्ति मांगी।
 ब्राह्मण ने कर्म के भोगादि से लेकर भगवत्समरण एवं भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म की प्रशंसा

करते हुए हरिमक्ति एवं विष्णु मन्त्र की अपूर्व प्रशंसा की और भगवान् की भक्ति में एकमात्र कारण ही उसने पार्वतीजी को बतलाया और उनके पुत्र गणेश को साक्षात्कृष्ण का ही रूप कहा। उनकी उत्पत्ति श्रीकृष्ण भगवान् के अंश से हुई है। इसके पूर्व ही वह ब्राह्मण अन्तर्धान कर गया और उनके रूप माधुर्य का सुन्दर वर्णन किया।

६	हरौ तिरोहिते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम्	४०४
	पार्वत्या शिवेन च गणेशदर्शनम्	४०५

बृद्ध ब्राह्मण के रूप में श्रीविष्णु के द्वारा बिना पूजा लिये ही चड़े जानेपर भगवती पार्वती ने उनकी बहुत खोज की पर कहीं पता न चला इसपर आकाश-वाणी हुई कि हे पार्वति ! आप शान्त होइये और शय्या पर अपने घर में लेटे हुए सुपुत्र को देखिये। यह तुम्हारे द्वारा किये गये पुण्यकर्म का फल है और वह ब्राह्मण भूला नहीं स्वयं साक्षान् विष्णु थे। इस पर पार्वतीजी अपने भवन में लौट आईं और अपने पुत्र को उना-उमा कइकर स्नान के लिये रोते हुए देखा। भगवती पार्वती शङ्करजी के पास गईं और उनसे गणेशजन्म का सारा वृत्तान्त कहा। शङ्करजी अपने पुत्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पुत्रप्राप्ति की बहुत प्रकार से प्रशंसा की। भगवती पार्वती ने उस बालक को गोद में लेकर स्नान पान कराया।

१०	सर्वेभ्यो बहुविधदानम्	४०६
	विष्णुप्रभृतिभिर्देवैराशीर्वादप्रयोगः	

पुत्र प्राप्ति के उत्सव पर भगवती पार्वती और शङ्करजी ने अधिकारी ब्राह्मण और याचक वर्ग को प्रचुर मात्रा में दान दिया। इसी प्रकार हिमालय ने भी अपने नाती के जन्म के उपलक्ष्य में खूब दान दिया। सभी गणेशजी की मङ्गल

कामना करते हुए लौटे और सभी देवतृन्द ने इस उत्सव का अमित आनन्द लूटा। सभी देवगण, विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, हिमालय, मेनका, वसु-देव, पृथ्वी और भगवती पार्वती ने मंगलाशासनपूर्वक शुभाशीर्वाद दिया एवं ब्राह्मण धन्वीजन ने मङ्गल कामना की। गणेशजन्म की इस सुमङ्गला-ध्याय के पढ़नेवाले का सदा मङ्गल होता है। इसके पाठ करनेवाले की इप्सित मङ्गल कामना पूर्ण होती है। यह मङ्गलाध्याय जिस किसी के यहाँ होता है उसका मङ्गल होता है। यात्रा में पुण्याह के दिन इसको मन लगाकर सुननेवाले को सब अभीष्ट मिलते हैं।

११	गणेशदर्शनार्थं शनैश्चरागमनम्	४०८
	शनिपार्वतीसम्वादः	४०९

जब गणेशजन्म के उपलक्ष्य में शङ्करजी के यहाँ देवगण आनन्दपूर्वक उत्सव मना रहे थे उसी समय महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर घटा पहुँच गये। श्यामवर्ण शनैश्चर अहर्निश भगवान् कृष्ण के नाम में लगे हुए सभी देवगण को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से शङ्करजी के भवन में श्रीगणेश को देखने गये। द्वार पर हाथ में त्रिशूलधारी विशालाक्ष को देखकर उससे अन्दर जाने की आज्ञा मांगी। विशालाक्ष ने पार्वतीजीकी आज्ञा से शनैश्चर को जाने दिया। अन्दर जाकर गणेशजी की मङ्गल कामना करते हुए आशीर्वाद देकर नीचा शिरकर वह वहीं बैठ गये। जब पार्वतीजी ने नीचे शिर करने का कारण पूछा तो कर्म की गति का वर्णन करते हुए शनैश्चर ने अपनी स्त्री चित्ररथ की पुत्री के द्वारा उसके ऋतुस्नाता होनेपर न जानेपर जो शाप दिया उन्हींके कारण किसीको देखने से वह नाश हो जाता है यह कहा। यद्यपि बाद में उसे मनाया भी गया परन्तु वह शाप को लौटा न सकी।

पार्वतीजी ने हँसी में टालते हुए शनि से बालक को देखने के लिये जोर दिया। शनैश्चर ने ज्यों ही अपनी दक्षिण आँख के कोण से बालक के शिर को देखा वैसे ही उसका शिर अलग हो गया और गोलोक में श्रीकृष्ण के यहाँ चला गया। इस दुर्घटना से पार्वतीजी को बड़ा भारी रोद और शोक हुआ। सभी देवगण को इस अव्यक्त घटना से विस्मय हुआ। सभी लोग मूर्च्छित हो गये। इसपर भगवान् विष्णु ने गहड़ पर चढ़कर पुष्पभद्रानदी के किनारे एक वन में हथिनी के साथ सोये हुए गजेन्द्र को देखा। अपने सुदर्शनचक्र से उसका शिर छेदकर गहड़ के ऊपर चढ़कर वे पार्वती के यहाँ जाने लगे। इधर वह हस्तिनी वधों के साथ अपने पति के अङ्ग विच्छेद से क्रोधित होकर विलाप करने और रोने-पीडने लगी। इससे विष्णु ने उसको दूसरे हाथी का सिर लगा दिया और उसको कल्प पर्यन्त आनन्द से जीवन धिताने का वरदान दिया। कैलास पर आकर पार्वतीजी को जगाकर शिशुको गोद में रख उसके हाथी का शिर लगा दिया और बालक को आध्यात्मिक ज्ञान दिया। विष्णु भगवान् द्वारा कर्म के शुभानुभ फलों के भोगों का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की कलाओं का महत्त्वपूर्ण वर्णन और उन्हीं के कलाअंश होने से गणेशजी की प्रशंसा। ब्रह्मा, विष्णु और देवगण सभी ने गणेशजी को भूरि-भूरि आशीर्वाद दिये। शङ्करजी ने मृतजीवित बालक की शान्ति करने के लिये ब्राह्मणों को खूब दान दिया। हिमालय ने भी इसी प्रकार ब्राह्मणभोजनादि से सब मङ्गल साधन जुटाये। श्रीविष्णु ने इस अवसर पर वेदों और पुराणों का पाठ करवाया। स्त्रीमुलम स्वभाववश पार्वतीजी ने क्रुद्ध होकर शनैश्चर को शाप दिया कि जाओ तुम अङ्गहीन बन जाओ। इसपर सूर्य, कश्यप और यम रुष्ट होकर सभा से

उठकर चले गये। तब ब्रह्मा उन्हें मनाने गये तो कश्यप ने कहा कि शनि का बालक की माता का अनुरोध करने पर देखने से कोई दोष नहीं। सूर्य ने अपने पुत्र के अङ्गहीन होने की बातपर शनि को निरपराध कहकर बदले में गणेशजी के अङ्गहीन होने का शाप दिया। यमने कहा कि यह कहाँ का न्याय है कि देखने की आज्ञा देने पर और सारी बात जानने पर भी शनि को शाप दिया गया। हम भी शाप देते हैं मारनेवाले को मारने में क्या कोई अधर्म है ? ब्रह्माजी ने बीचवर्ई कर उन्हें समझाया कि स्त्री के चपल स्वभाव से यह सब हुआ आप लोग क्षमा करें और पार्वती को कहा कि अपने बालक को देखने की आज्ञा देकर निर्दोष अतिथि को आपने क्यों शाप दिया ? ब्रह्माजी के समझाने बुझाने पर पार्वतीजी ने शाप छुड़ाने का और वर देन का उपक्रम किया। इसपर शनि को महाराज होने, चिरजीव और हरिभक्तिपरायण होने का वरदान दिया गया। शाप के अमोघ होने से थोड़ा थोड़ा खज्र होओगे यह कहा। इस प्रकार आपसकी समझौते की भावना से आनन्द छा गया और शनि विदा हो गये।

१३	विष्णुमृत गणेशस्तोत्र	४१४
	विष्णुमृत गणेशमन्त्रम्	४१७

विष्णु भगवान् ने शुभ समय में देवगणों के साथ बालक गणेश की पूजा की और सबसे प्रथम देवगण में उनकी पूजा होने एवं सर्वभूज्य होने का वरदान दिया। भगवान् विष्णु ने विघ्नश, गणश, हेरम्ब, गनानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पर्ण और विनायक आदि नाम निकाले तथा खूब शुभाशीर्वाद दिये। धर्म ने सिद्धासन, ब्रह्मा ने कमण्डलु शङ्कर ने योगमृत् और दुर्लभतत्त्वज्ञान, इन्द्र ने रत्नमिहामन, सूर्य ने मणिकुण्डल, वरुण आदि देवताओं ने नाना आभूषण और पृथिवी ने वाहन के लिये मूपक दिया। सभी ने भक्ति से पूजा की और देवगण ने

वेदमन्त्रों से गणेशजी को स्नान कराया और गणेशमन्त्र से हिमालय ने पूजा की और दान दिया। तब विष्णु ने गणेशजी का स्तोत्र और कवच पाठ किया। इनके पठन करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है।

१४

कार्तिकेय प्रवृत्तिप्राप्तिः

४२०

प्रथम आदि सर्ग में जो रतिसङ्गम भगवती पार्वती एवं शंकरजी ने किया उससे प्राप्त शङ्कर के अमोघ वीर्य के विषय में पार्वतीजी ने विष्णु भगवान् से जिज्ञासा की और विष्णु भगवान् ने देववृन्द को उस वीर्य की खोजकरने को विशेष जोर दिया। सभी देवगण ने उस वीर्य के हरनेवाले को भला दुरा कहा। इसपर विष्णु ने कहा कि जब देवताओं ने उसे नहीं लिया तो फिर किसने लिया? तब धर्म ने कहा वह पृथ्वी पर गिरा; पृथ्वी ने कहा मैंने उसे धारण न कर सकने के कारण अग्नि में डाल दिया। अग्नि ने भी अपनी असमर्थता बतलाकर उसे शरों के वन में डाल दिया। वायु ने उस वीर्य से सुन्दर बालक होने की बात कही। चन्द्र ने कृत्तिकागण द्वारा उसके पालन-पोषण की बात प्रकट की और उसका कार्तिक नाम का रहस्य बतलाया। इसपर पार्वती ने प्रसन्न होकर अति मात्रा में दान दिया।

१५

शिवदूर्तः कृत्तिकाभवनगमनम् कार्तिकतादिमंवाद्य

४२३

पार्वतीजी के साथ शङ्कर ने कार्तिक के जन्म की बात सुनकर अपने महाबलशाली वीरभद्र, विशालाक्ष आदि पार्षदों को कृत्तिकागण के भवन को घेरने के लिये भेजा। इसपर कृत्तिकागण डर गईं और कार्तिक को सारा वृत्तान्त कहा गया। नन्दिकेश्वर ने कार्तिक को कहा कि गणेशजन्म के मङ्गलोत्सव और बहा परतुम्हारे प्रकरण को लेकर खोजने की आज्ञा देने पर क्रमशः कृत्तिका स्थान में तुम्हारा ठीक ठिकाना बताया गया अतः अब तुम हमारे साथ चलो। कृत्तिकागण

को लेकर विष्णु देवताओं के साथ तुम्हारा अभिषेक करेंगे और तुम्हें तारक देवता को मारने के लिये सब प्रकार के शस्त्रास्त्र देंगे। अब महत्त्वपूर्ण जीवनवाले महान् पुरुष कहीं एफान्न में थोड़े ही रहते हैं। ऐसा समझकर हमारे साथ चलो। इसपर कार्तिक न पूरे जन्मों की सारी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रकृतिशरीर माश्रान् पारंगतीजी को अपनी माता कहा ध्योकि उसके स्वामी भगवान् शङ्कर के शीर्ष से मेरा जन्म हुआ है और कृत्तिकामगण का मैं पौष्यपुत्र हूँ क्योंकि उनके स्नानपान से ही मैं पाटापोसा गया हूँ। हे नन्दिकेश्वर ! मैं शैलकन्या पार्वती का गर्भ से उत्पन्न नहीं हूँ। वह मेरी धर्म-माता है और ये सर्वसम्मत मातायें हैं— स्नानदात्री, गर्भदात्री, भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितु पत्नी च कन्यका सर्गमकन्या भगिनी पुरपत्नी प्रियाप्रसू। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा मातु पितुश्चभगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातर षोडशसंख्या।

ये कृत्तिका कोई छोटी माया नहीं हैं। ये प्रह्लादी की कन्या हैं और महाप्रभूति सम्पन्न हैं। ये तीनों लोकों में पूजित हैं। जब विष्णु ने तुम्हें कहा है तो मैं शङ्करजी का पुत्र हूँ आओ चले देवगण के दर्शन करें।

१६

कार्तिकगमनम्

४२६

कार्तिक ने कृत्तिकामगण को मारी अच्छी तरह से सान्त्वना देकर उनके शङ्करजी के यहाँ जाने के लिये आज्ञा मांगी और सम्पूर्ण जगत् देवाधीन कहकर उन्हें भगवान् कृष्ण के भोजन करने की राते कही। यह जगत् जलजुह्वुद के समान अनित्य है। मूर्ख लोग माया से मग्न रहते रहते हैं। जब वह विदा होने की तैयारी करने लगे तो सुन्दर रथ वहाँ आगया और कृत्तिकामगण ने दुग्दी हृदय से अपना प्रेम का भाव प्रकट किया और अपने पुत्र के गमन वियोग में मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। कार्तिक ने उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा से समझाकर रखपर सवार होकर यात्रा की। मार्ग में पूर्ण पूर्णकल्या, द्विज, वैद्या,

सफेद धान्य, दर्पण, दधि, घृत, मधु, लाज, फूल, दूध, अक्षत आदि शुभशकुन के पदार्थ मिले। कैलास पहुंचने पर भगवती पार्वती को उनके मङ्गलाशासन के लिये प्रचुर सजा करते हुए देखा। सभी को उपस्थित देख पार्वती के सामने रथ से उतर कर कार्तिक ने प्रणाम क्रिया और क्रमशः सबको दण्डयन् प्रणाम के साथ अभिवादन क्रिया। सभी ने कार्तिक को शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन क्रिया।

१७

कुमाराभिषेकः

४२८

अब विष्णु ने शुभलग्न में रत्नसिंहासन पर कार्तिक को बिठाकर वेदमन्त्र से अभिषिक्त तीर्थों के जल से स्नान कराया। ब्रह्मा ने उसे प्रज्ञा एवं सन्ध्यामन्त्र, विष्णुमन्त्र और कवच, स्तोत्रादि वेदों ने दिये शङ्करजी ने पाशुपत संहारास्त्र आदि दिये। अन्य सभी देवतागण ने उन्हें अपने-अपने विरोध आयुध दिये और कार्तिक का अभिषेक कर अपने-अपने घर चले गये। समय आने पर भगवान् शङ्कर ने स्कन्दकार्तिक और गणेश का विवाह कर दिया। इस प्रकार संक्षेप में, कार्तिक के मिलने से सारे देवगणों में आनन्द और उत्साह वी लहर दौड़ गई।

१८

विघ्नेशविघ्नकथनम्

४३०

नारदजी ने भगवान् विघ्ननाशक गणेशजी के मस्तरु छेदन के विघ्न को लेकर प्रश्न किया। इसपर पुराने इतिहास से भगवान् नारायण ने उनका समाधान किया। उन्होंने कहा कि पुराकल्प में एक बार शङ्करजी ने अपने भक्त माली और मुमाली के मारने सूर्य के ऊपर शूल से प्रहार किया। इसपर वह मूर्छित होकर रथ से गिर पड़ा। उसे इस अवस्था में करयपजी ने देखा और अपनी गोद में लेकर शोक से अतीव विलाप किया। अपने निष्प्रभ पुत्र की हीन अवस्था देखकर करयपजी ने शङ्करजी को शाप दिया कि जैसे मेरे पुत्र को छाती में प्रहार कर उसे द्विज किया है वैसे ही तुम्हारे पुत्र का भी शिर द्विज होगा।

जब आगुनोप भगवान् शङ्कर का क्रोध शान्त हो गया तो उन्होंने ब्रह्मज्ञान द्वारा सूर्य को उम्मी अण तिला दिया। सूर्य भगवान् चेतना पाकर उठे और कदम्बकी एक शङ्करा का सामन देकर भक्ति से प्रणाम किया और शङ्कर को न्ये गये शाप का वणन सुनकर सूर्य ने अपने पिता को भला पुरा कहा और सभी सूर्य का आशीर्वाद देकर अपने अपने स्थान को चउ गये। माली और सुमाली क राड निकल आइ रह ब्रह्मा ने सूर्य की प्रार्थना करने की बात कही और सूर्य कच क पाठ से स्वयं हाने का रस्य कहा। व दोनों पुनर जाकर त्रिनाल न्नान कर सूर्य के मन्त्र का तप करते रहे। सूर्य को भक्ति से सन्तुष्ट कर उन्हें परं स्वरूप मिल गया और व आनन्दपूर्ण जीवन बिताने लगे।

१६

भास्करपूजन स्तोत्रञ्च

४३२

नारद ने सूर्य पूजा का स्तोत्र, कच आदि को विस्तार से बताने के लिये जो प्रश्न किया उमने उत्तर म ब्रह्माचो द्वारा सूर्य कच के पारायण की विधि का विस्तार से वणन बताया। इसे बृहस्पति ने इन्द्र को हतार भग होने पर प्रीतिपूर्वक साधन करनेको बतलाया था। इस कच का अनन्त पठ सभी रोगों से छुटकारा और इतिवृद्धि की प्राप्ति हाती है।

२०

गजमुखपूजनहनुमथनम्

४३४

फिर नारदनी ने गणेशनी के हाथी के मुख को छगाने के विषय मे पूछा। इसपर श्रीनारायण ने पाद्मस्वरूप का पुरातन इतिहास ममभाया। एक बार पुण्यमदाननी के तिनारे, महेंद्र देवराज बँठ थ। उस समय रम्भा को रघु मनी-मनाइ देवसर नको कामविहार हो गया और उसने इन्द्रिय चपलता से रम्भा को मुलाया और वई प्रकार के पुमलानेवाडे पाटुसारी वाक्यों से उसे आकृष्ट करने का प्रयत्न किया। इसपर रम्भा ने कामी को धमर के समान एक

पुष्पको छोड़कर दूसरे पुष्प पर बैठने की वृत्तिमाला कहकर फिर अपना मनका भाव कहा। इन्द्र ने कामरात्रानुवार उसके साथ रनि की। इस प्रकार वह काममत्त इन्द्र सुप्त से दिन प्रिताने लगा। एक दिन दुर्गासा संयोग से आगये उन्होंने भगवान् विष्णु के यहा से लाये गये पुष्प को इन्द्र को उपहार देकर पुष्प धारण का माहात्म्य कहा। देवराज ने उपेक्षा करके इस पुष्प को रम्भा को दे दिया। रम्भा ने इसे हाथी के मस्तरु पर रख दिया। जब रम्भा ने देवराज को भ्रष्टात्री देखा तो वह देवगग के यहा सर्ग मे चली गई। देवराज को छोड़कर वह मश्वरी हाथी उस फूल को फेंकर जंगल मे चला गया वहा पर एक हथिनी के साथ कामोन्मत्त होकर खूब आनन्द से रमण किया और उसके सन्तान फैलने लगी। भगवान् विष्णु ने उस पुष्प के प्रभाव से उसका मस्तरु गगेश के मस्तरु के स्थान पर लगाया। यही मस्तरु का रहस्य है।

२१

शकलक्ष्मीप्राप्ति

४३८

नारद ने ब्रह्माजी के शाप से देवता कैसे लक्ष्मी हीन हो गये और फिर कैसे उन्हें लक्ष्मी प्राप्त हो गई इसके लिये पूजा इसपर श्रीनारायण ने कहा कि रम्भा से पराभूत वह इन्द्र जब अमरावती आया तो वहा सब प्रकार से दैत्यप्रल बन्धुहीन और वैरिगग से घिरी हुई पुरी को देखकर उसे अत्यन्त दुःख हुआ। अपने दून से नगरी की सारी दुःशा सुनकर वह बृहस्पतिजी के पास गया। वहा से वह इन्द्र के साथ ब्रह्माजी की सभा मे चले गये और ब्रह्माजी की स्तुति कर अपने आने का सारा वृत्तान्त कहा। इसपर ब्रह्माजी ने अपने प्रपौत्र सम्बन्ध का स्मरण कराकर इन्द्र के दुराचार सम्बन्धी दुष्कृत्यों को फल समेत कहा और श्रीहीनता का कारण दुरासा द्वारा दिये गये भगवान् विष्णु के पुष्प के उपहार को गजेन्द्र के सिरपर उपेक्षा बुद्धि से डालना ही बताया और परस्त्री सेवन से मनुष्य को सदा ही दरिद्र होना पडता है। इसका उपाय उन्होंने

भगवान् नारायण का भक्तिभाव से भजन बनाया। ब्रह्माजी ने उसे नारायण का कवच दिया। उसने देवगुरु वृहस्पतिजी के साथ देवतागण को लेकर उस मन्त्र और कवच का पुष्कर में जप किया। उसने एक वर्ष तक निराहार रहकर साधना की। इसपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि साक्षात् प्रगट होगये और इन्द्र को इच्छामुसार वर दिया, साथ ही लक्ष्मीस्तोत्र, कवच और ऐश्वर्यवर्धन मन्त्र दिया। इन्द्र ने क्षीरसागर में जाकर उस लक्ष्मीस्तोत्र और कवच का विधि विधान से पाठ कर लक्ष्मीजी की फिर वृषा प्राप्त की। और अमरावती पर अधिपति बिये हुए दैत्यो को हरा कर देवगण को अपने अपने स्थान पर फिर प्रतिष्ठित कर दिया।

२०

लक्ष्मीस्तोत्र कवचञ्च

४३६

श्रीनारायण ने कहा पुष्कर में तपस्या करते हुए इन्द्र के सामने साक्षात् हरि प्रगट हुए और इच्छित वर मागने को कहा। इन्द्र ने लक्ष्मी प्राप्ति का वर मागा इसपर भगवान् ने इन्द्र को महालक्ष्मी कवच और लक्ष्मीस्तोत्र दिया और वह अन्तर्धान हो गये और इन्द्र लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिये देवगण के साथ श्रीविष्णु की आज्ञा से क्षीरसागर के तटपर चले गये।

२३

महालक्ष्मीचरितम्

४४२

इन्द्र ने महालक्ष्मी के कवच को सद्रतगुटिका में रखकर अपने गले में बांधकर मनसे दिव्यस्तत्रन का स्मरण करते हुए भगवती को प्रसन्न करने में समर्थ लगाया। देवगण भी अति दीन भाव से आर्यों में आसू लाकर और विनम्र होकर जगद्धात्री की पूजा में लगे। भगवती प्रसन्न होकर प्रगट हुई और ब्राह्मण यदि उनके पास रहने की आज्ञा दें तो रहने का आश्वसन दिया। इसपर सभी ब्राह्मण वहाँ उपस्थित हो गये। इनमें अङ्गिरा, प्रचेता, ऋतु, भृगु, पुलह्य,

मरीचि, और अत्रि आदि प्रमुप हैं। इन्होंने ईश्वरी लक्ष्मी की पूजा विधिविधान से की और लक्ष्मीजी से देवभजन तथा मर्त्यलोक में जाने की प्रार्थना की। इसके बाद महालक्ष्मीजी ने पुण्यवान्, सुनीति को जाननेवाले गृहस्थ और राजा लोगों के पास रहने की बात कहकर जिनके पाम वह नहीं रहतीं उन व्यक्तियों और स्थानों की विस्तार से गगना की। इसपर देवता, ऋषियों एवं मुनिगण ने भगवती को प्रणाम किया। फिर देवगण को निश्चल लक्ष्मी की प्राप्ति हो गई।

२४

गणेशस्य एकदन्तत्व निवरणम्

४४४

नारदजी ने भगवान् नारायण से गणेशजी के एकदन्त होने के सम्बन्ध में पूछा। भगवान् ने कहा एक वार कार्तवीर्य जङ्गल में शिकार खेलने के लिये गया। वहा बहुत मृगों की शिकार कर वह बहुत थक गया। दिन बीतने पर सन्ध्या के समय वह जमदग्नि ऋषि के आश्रम के निकट अपनी सेना के साथ ठहर गया। प्रातःकाल उठकर स्नान, सन्ध्या से निवृत्त होकर उसने दत्तात्रेय द्वारा दिये गये मन्त्र का जाप किया। मुनि ने राजा को शुष्क औष्ठ, कण्ठ, तालु-वाला देखकर प्रेम से कुशल पूछा। राजा ने सादर विनम्र प्रणाम किया और ऋषि ने उन्हें शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन किया। राजा ने अपने अनशन का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा को मुनि ने निमन्त्रण दिया और कामधेनु से आकर सारी बातें कह दीं। माता कामधेनु से सान्जना पाकर जमदग्नि प्रसन्न हुए। उस कामधेनु ने सम्पूर्ण भोज्य सामग्री और पाकपात्र दिये। महर्षि ने परिपक फल, मिष्ठान्न, दुग्ध, घृत, शर्करा, मोदक, ताम्बूलादि सम्पूर्ण सामग्री से राजा को सेना सहित भोजन कराया। इसपर विस्मित होकर राजा ने पूछा कि मेरे से असाध्य इतनी विशाल सामग्रिया कहा से आईं। इसपर उसके सचिव ने कपिला गौ का ही सारा महत्त्व बतलाया। इसपर लोभी राजा ने महर्षि जमदग्नि से उस कामधेनु को मागा। कर्म की विचित्र गति है पुण्य कर्म से

पुण्यगति और पापकर्म से दुर्गति होती है। कर्म मे बन्धे जीव की गति और विस्तार का कोई पता नहीं। अतः सज्जन पुरुष सदा ही कर्म का क्षय किया करते हैं।

सा विद्या तत्तपोज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः ।

सा माता स पितापुत्रस्तत्क्षयं कारयेत्तु यः ॥

इस कर्मभोग के रोग को कृष्णभक्ति रसायन से भक्त वैद्य ही शमन करता है। भगवती जगद्धात्री महामाया ही इसमें प्रधान है। कार्तवीर्य माया से मोहित होकर महर्षि जमदग्नि से कामधेनु को मागने के लिये बड़ी अनुनय विनय करने लगे। मुनि ने बहुत टालमटोल की। अन्त में राजा ने हठ से कामधेनु को लाने के लिये नौकर को भेजा। महर्षि ने कपिला के पास जाकर अपना दुःख कहा। इसपर कामधेनु ने कहा कि यदि राजा होकर आप राजा को मुझे देंगे तो मैं सहर्ष जाऊंगी नहीं तो कभी भी नहीं जाऊंगी। आप सन्तोष करें। यह कहकर कामधेनु ने कई शस्त्र अस्त्र और बड़ी सेना रच डाली। उसके शरीर से कई कोटि नाना भील जातिया उत्पन्न हुई। मुनि को अब निर्भय रहने का आश्वासन दिया। इस सब तैयारी का पता राजा के नौकरों ने उसे तत्काल दिया इससे उसे बड़ी चिन्ता हुई।

२५

जमदग्नि कार्तवीर्यार्जुनयुद्धम्

४४८

महर्षि जमदग्नि के पास दुःखित हृदय से कार्तवीर्य ने अपना दूत भेजा कि मुझ अतिथि को चाहे तो आप युद्ध दें चाहे अपनी कामधेनु। मुनि ने कहा कि कामधेनु को बलान् राजा मागता है तो मैं उसे युद्ध ही देना चाहता हूँ। युद्ध की पूरी तैयारी के बाद राजा ने महर्षि को प्रणाम किया और तुमुल युद्ध हुआ। राजा मूर्च्छित होकर गिरपड़ा, तब कृपानिधि महर्षि ने अपनी सारी सेना को समेट लिया और कमण्डलुजल से शरीर को छिड़क कर आशीर्वाद दिया कि जाओ

जय हो। फिर राजा ने प्रणाम कर महर्षि से आशीर्वाद लिया और राजा को स्नान, भोजन कराकर जाने के लिये कहा। ब्राह्मण स्वभाव से ही कोमल होते हैं। दूसरे लोग छूरे की धारा के समान असाध्यवदाप्य। राजा नहीं माना और अपने हठ को फिर से दोहराया “या तो युद्ध करो या कामधेनु दो।”

२६

पुनः जमदग्नि कार्तवीर्यार्जुनयुद्धम्

४४६

महर्षि ने राजा की हठ भरी बातों को सुनकर उसे नीतियुक्त वचन कहे। हे राजन् देगो तुम्हारा किनना आतिथ्य किया गया। जब तुम युद्ध में मूर्छित होगये तो तुम्हें आशीर्वाद देकर चेतना दी। इसपर भी युद्ध करने की बात को राजा ने बार-बार दोहराया। युद्ध आरम्भ हुआ। कपिला कामधेनु के प्रताप से महर्षि ने राजा को मूर्छित कर दिया। फिर क्रमशः राजा ने अग्निवाण, बरुणास्त्र, गान्धर्व, नागास्त्र, गारुडास्त्र, माहेश्वर, वैष्णव, जृग्मणास्त्र एवं नारायणास्त्रों का प्रयोग किया जिनका समुचित उत्तर उन-उन शस्त्रों के प्रतिकार के अस्त्रों को काम में लेकर मुनि ने दिया। राजा फिर मूर्छित होकर गिर गया। इसपर मुनि ने दया कर उसे चेतना प्रदान की। उठते ही राजा ने अपनी शूल को लेकर मुनि के ऊपर आक्रमण किया पर मुनि ने उसे बीच में ही काट दिया। ब्रह्माजी ने आकर बीचवचाव किया और उनके कहने से वह घर लौट गया।

२७

ससैन्यस्य राज्ञः मुनितपोवने पुनर्गमनम्

४५१

घर से लौटकर फिर जमदग्नि के आश्रम में पूरी सेना की तैयारी कर राजा गया। इस विशाल सेना की सामग्री को देखकर महर्षि जमदग्नि के आश्रम के लोग मूर्छित हो गये और राजा बल से धेनु को लेकर घर जाने को तैयार होगया। महर्षि ने बाणों का एक ऐसा जाल बिछाया कि सारी सेना विध्वंस गई। राजा बार-बार मूर्छित हुआ परन्तु मुनि ने उसे नहीं मारा परन्तु उस दुष्टात्मा ने अपने

मव शस्त्रों की सामर्थ्य को परीक्षा कर फिर अन्त में शक्तिघाण का उपयोग किया। उसने मुनि की छाती को पार कर अपने स्थान में हरि के पास शरण ली और मूर्छित होकर मुनि के वहीं प्राणपखेरू उड़ गये वह ब्रह्मलोक में चले गये। राजा ने ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कर अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया। इधर कपिला भी तात। तात ॥ कहती हुई गोलोक चली गई और वहाँ श्रीकृष्ण को यह सारी घटना उसने कह सुनाई। कामधेनु को कृष्ण ने ब्रह्माजी को दिया, ब्रह्माजी ने भृगु को, और भृगु ने प्रसन्न होकर पुष्करक्षेत्र में जमदग्नि को दिया। इधर रेणुका ने पति को स्वर्गत सुनकर महर्षि जमदग्नि के शव के पास जाकर उसे गोद में लेकर विलाप किया और मूर्छित हो गई। रेणुका ने अपने पुत्र परशुराम को आद किया। योग के प्रभाव से परशुराम ने पुष्कर से आकर बहुत विलाप किया और सुन्दर चिता तैयार की। रेणुका ने राम को छाती से लगाया और कपोल तथा शिर में चुम्बन कर जोर-जोर से रुदन किया और परशुराम को तपस्या करने के लिये कहा। परशुरामजी ने माता की आज्ञा को अनसुनी कर २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियो से शून्य कर दूँगा यह प्रतिज्ञा की। इस पर भी ११ आतनायी लोगों को मारने की वेद आज्ञा देते हैं। इससे प्रसन्न होने को माता से कहा।

पितु शामनहन्तारं पितुर्वधविधायकम् । यो न हन्ति महामूढो रौरवं स प्रजेद्भुवम्
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहा । क्षेत्रदारापहारी च पितृवन्धुर्विहिंसकः ॥४६
मततं मन्दकारी च निन्दकः कटुवाचकः । एकादशैते पापिष्ठा वधाहं वेदसम्भताः ॥
द्विजानां त्रिणादानं स्थानान्निवांसनं सति । वपनं ताडनञ्चैव धर्ममाहुर्मनीषिणः

रोते हुए परशुरामजी को रेणुका ने ज्ञान दिया और कर्मबन्धन के लिये भगवद्भक्ति को ही एक मात्र उपाय बतलाया।

रेणुका ने भृगु से कहा कि ऋतुधर्म का आज चतुर्थ दिवस है अतः तुम अकस्मान् ही पूर्व पुण्यों के प्रताप से उपस्थित हो गये हो अतः मेरे स्वामी के साथ सती होने की व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय दो। इसपर भृगुजी ने चतुर्थदिवस पति के लिये शुद्ध कहा गया है न कि दैव और पितृकायों के लिये। इसलिये महर्षि के साथ सती होकर स्वर्गायात्रा करने की प्रार्थना की।

स पुत्रो भक्तिदाता यः साचस्त्रीयाऽजुगच्छति ।

सबन्धुर्दानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत् ॥

सोऽमीष्टदेवो यो रक्षेत् स राजा पालयेत्प्रजाः ।

स च स्वामी प्रियाधर्मो मतिं दातुमिहेश्वरः ॥

स गुरुधर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः । एते प्रशंस्या देवेषु पुराणेषु च निश्चितम् ॥

फिर भृगु से रेणुका ने स्वामी के साथ जाने योग्य और न जाने योग्य स्त्रियों के लिये पूत्रा। इसपर भृगु ने बालक पुत्रवाली, गर्भिणी, अकृतमती, रजस्वला, कुलटा, गलित व्याधिवाली पतिसेवाहीन, कटु बोलनेवाली अभक्त स्त्री अयोग्य हैं तथा दूसरी सब पति को प्राप्त करती हैं। कृष्णभक्त पति के पीछे साध्वी उसे प्राप्त करती हैं। फिर रेणुका ने भृगुजी के धर्मयुक्त वचन अपने जीवन में पालने के लिये कहा और पति के साथ सती होकर ब्रह्मलोक को गई। तब फिर ब्रह्माजी के यहाँ जाकर परशुरामजी ने कर्नवीर्य की दुष्टता और पिताजीकी स्वर्गगति का वर्णन किया और अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई। ब्रह्माजी ने प्रकृतिगत जन्म-मरण के इस अनादि प्रवाह में इस प्रतिज्ञा को बाधक कहकर शिवजी के पास जाकर उपाय पूत्रने को कहा।

२६ परशुरामस्य शिवमीपेगमनम् तपस्वीधोगश्च ४५६

परशुराम ब्रह्माची से आज्ञा लेकर शिवलोक को गये। वहाँ द्वार पर दो भयानक आकृतिवाले द्वारपालों को उन्होंने देखकर मनमें डरते हुए कहा कि मेरे साथ कार्तवीर्य का सहज वैर पिताची के द्वारा अच्छा व्यवहार करने पर भी उन्हें मारने के कारण हो गया है। इसपर ब्रह्माजी ने मुझे भगवान् शङ्करजी के दर्शनों के लिये कहा है मुझे शिवजी से मिलने का अवसर दो। शङ्करजी ने परशुरामची को लियालाने की आज्ञा दी और उनसे शङ्करजी की सभा में पार्वती-गण कार्तियेय गणेश, माता पार्वती आदि को देखकर विनम्र भाव से प्रणाम किया और भगवान् की भक्तिभाव से स्तुति की। भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और परशुरामची को आशीर्वाद प्रदान किया।

३० शिवशिवसमीपे परशुरामस्य वरप्रार्थनम् ४६२

पार्वती एवं शङ्करजी के यहाँ जानेपर शङ्करजी ने परशुराम को आने का कारण पूछा। परशुराम ने पिता के असामयिक दारुण मृत्यु का आदि से अन्त तक वणन कर कार्तवीर्य की कृतज्ञता की निन्दा की और २१ बार निःशत्रिय भूमि को करने की अपनी वृद्ध प्रतिज्ञा कहकर अपनी रक्षा करने और शरण में आनेकी बात कही। शङ्कर पार्वती दोनों ही इस विषय को सुनकर हक्के बक्के रह गये और परशुराम को हर सम्भव उपाय से समझाया। परन्तु परशुराम ने मरने की कड़ी धमकी दी और अपने निस्तार का उपाय पूछा। इसपर शङ्करजी ने पार्वती और भद्रकाली का मममाकर उनके निर्देश से भृगु को त्रैलोक्यविजय नामक वक्त्र, पूजाविधान, मन्त्र, और सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र चलाने की विद्या सिखाई। परशुराम ने दीर्घकालकर विद्यायें सीखकर, और तीर्थ में मन्त्रसिद्धि कर शङ्कर को प्रणाम कर अपने स्थान की ओर गमन किया।

३१

तुष्टेन शिवेन स्वरूपचादिदानम्

४६४

शङ्कर ने प्रसन्न होकर जो कवच दिया उसके मन्थन्य में नारदजी ने विलार से पूछा। इसपर श्रीनारायण ने त्रैलोक्यविजय कवच का अविकल विधान पाठ और सिद्धि विधान कहा। इसको सिद्ध करनेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है। कवच की अद्वितीय फलश्रुति।

३२

परशुरामाय स्तोत्रमन्त्रपूजाप्रदानम्

४६७

परशुराम ने इसके वाङ् स्तोत्र, मन्त्र और पूजाविधान पूछा। इसपर शङ्करजी ने 'ॐ श्रीं नम श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च' यह सोलह अक्षरो का मन्त्र बताया। इसकी पाच लाख सरया जपने से सिद्धि होजाती है साथ ही इसके जप का दशारा हवन, उसका दशारा अभिषेक, उसका दशारा तर्पण और उसका दशारा मार्जन करना आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्ण की राधा सहित सम्पूर्ण देवगात्रा, विष्णु, महेश्वर के साथ पूजा की गई। गोश, दिनेश, अग्नि, पार्वती, विष्णु एवं शिव की पूजा कर सामवेदोक्त स्तोत्र पढ़ाया। इसको कहकर उन्होंने पुष्करराज में जाकर तपस्या करने को आदेश दिया। जिससे मन्त्रसिद्धि के साथ सन्पूर्ण वाञ्छित मिलेगा।

३३

परशुरामस्य तपञ्चरणम्

४७०

परशुराम पुष्कर तीर्थ में गये और भगवती दुर्गा एवं काली समेत शङ्करजी को प्रणाम कर इस मन्त्रराज को भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए प्राणायामादि से मन और शरीर को सयम कर सिद्ध किया। इसपर श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर प्रगट हुए। परशुराम ने तब २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन कहूँ यह वर मांगा और श्रीकृष्ण भगवान् के चरणारविन्द में भक्ति मागी। 'तथास्तु' कहकर श्रीकृष्ण

अन्तर्धान हो गये। उसी समय भगवान् को ज्योही भक्तिपूर्वक प्रणाम कर रहे थे कि उनका दहिना अङ्ग फडकने लगा। मङ्गलसूचक मुखन आये और समय की प्रतीक्षा कर कार्तवीर्य से युद्ध करनेकी वह तैयारी करने लगे। जाते समय उन्हें मङ्गलकारी शुभ शकुन हुए। रात्रि में भी जयसूचक मङ्गलमय स्वप्नो के दर्शन होने से उन्हें अपनी विजय के लिये मनमें दृढ विश्वास हो गया।

३४

परशुरामस्य राजसर्मापि दूतप्रेषणम्

४७४

नर्मदा के किनारे अपने भाई-बन्धुओ के साथ आकर परशुराम ने अपना दूत युद्ध के आह्वान के लिये और २१ वार बिना क्षत्रियो की पृथ्वी बना देने की प्रतिज्ञा को घताने के लिये राजा के पास भेजा। युद्ध का आमन्त्रण मानकर ज्योही राजा तैयारी कर जाने लगा तो उसकी स्त्री ने रोका। इसपर कार्तवीर्य ने अपनी आशंकामूल भीति को रानी से कहकर अपने दु स्वप्नो की बातें विस्तार से कही। इसपर उसकी स्त्री मनोरमा ने युद्ध न करने के लिये अपने पति कार्तवीर्य को समझाया। विप्र के साथ विरोध न कर सदा विनम्रभाव से झुकने में ही अपना सब का हित है। मती स्त्रियों के लिये सौ पुत्रो से भी अधिक प्रिय पति ही वेदो में साक्षान् भगवान् हरि ने बतलाया है। कार्तवीर्य ने अपनी स्त्री को बार-बार न रोकने के लिये समझाया और काल की विचित्र गति कहकर अपनी मृत्यु जब परशुराम के हाथ में ही लियी है तो फिर टालनेवाला कौन है। इस प्रकार सान्त्वना देकर अपनी अशौहिणी सेना को लेकर कार्तवीर्यार्जुन ने गले से गले मिलकर स्त्री से युद्ध के लिये विदा मांगी।

३५

राजा युद्धयात्रा

४७६

राजा के जाने के पहले ही मनोरमा ने अपने शरीर को योगमाया से पटपत्र भेदन वह परब्रह्म में अपनेको मिला लिया। राजा ने उस सती

को मृत देखकर बहुत विलाप किया परन्तु अब क्या होसकता था ! इसपर आकाशवाणी हुई और उसने घोषणा की कि हे राजन् स्थिर रहो रोदन मत करो । दत्तात्रेय तुम्हारे गुरु हैं तुम ज्ञानी जनमे श्रेष्ठ हो यह संसार जल के बुलबुलो के समान है । वह मनोरमा कमलालय के यहा चली गई अब तुम भी शीघ्र ही युद्ध में जाकर वैकुण्ठ का मार्ग ग्रहण करो । इसपर शोक को छोड़कर राजा ने अपनी प्राणप्यारी मनोरमा के लिये चन्दनकाष्ठ की चिता बनाई और अपने पुत्र से उस का दाह संस्कार करवाया और और्ध्वदेहिक क्रिया के बाद मनोरमा के पुण्य से ब्राह्मणादि को प्रचुर धनधान्य प्रदान किया । राजा दुःखी हृदय से युद्धभूमि में गया परन्तु मार्ग में उसे अशुभ शकुन होते चले गये । युद्धक्षेत्र में जाकर राजा ने भृगु एवं परशुराम को प्रणाम किया और राजा को भृगु ने स्वर्ग जाओ यह आशीर्वाद दिया । फिर रथ पर चढ़कर ब्राह्मणों को उसने युद्ध करने के पहले प्रचुर मात्रा में दान दिया । परशुराम ने कार्तवीर्य से उसके इस दुष्टाचरण का कारण पूछा । इसपर राजा ने ब्राह्मण, मुनि, योगी, भक्त चारों वर्णों की परिभाषा बताकर कामधेनु के प्रति आकर्षण ही राजसी राजा के लोभ का और महर्षि जमदग्नि की मृत्यु का कारण बना । इसके बाद युद्ध में कार्तवीर्य मारा गया और उससे शिख कवच लिया । शिखकवच का वर्णन ।

३६

सुचन्द्रण नृपतिना मह रामस्ययुद्धम्

४०६

मत्स्यराज के बाद कार्तवीर्य ने नाना देशों के राजाओं को लड़ने के लिये भेजा परन्तु सभी परशुराम के सामने हतवीर्य हो गये । तीन रात तक राजाओं के साथ युद्ध किया और वारह अश्वोहिणी सेना को अपने फररो से मार गिराया । अब सूर्यवंशी राजा सुचन्द्र इन राजाओं का मरा देख अपने एक लाख राजाओं के साथ आया । उसे भी परशुराम ने सेना समेत फररो से मौत के घाट उतारा । परन्तु सुचन्द्र के गले में कालीकवच होने से उसकी रक्षा साक्षान् भगवती काली

महाभाया ने की। इसपर परशुरामजी को आश्चर्य हुआ। ब्रह्मा ने आकर परशुरामजी से सारी बात कही और दशाश्रयी महाविद्या को सुचन्द्र से मांगने के लिये कहा तब ही कार्य में सिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं।

३७

कालीकवचम्

४८६

नारदजी ने भद्रकाली के कवच के सम्बन्ध में पूछा। श्रीनारायण ने विस्तार से श्रीकालीकवच का विधान समझाया।

३८

सुचन्द्रं पतितं दृष्ट्वाऽपरः राजभिः सह रामयुद्धम्

४६०

रामेण पाशुपतास्त्रग्रहणम्

४६१

विष्णुना रामाय लक्ष्मीकवचकथनम्

४६३

सुचन्द्र युद्ध में पराजित होकर मारा गया तब राजाओं ने परशुराम से युद्ध किया। सुचन्द्र के पुत्र पुष्कराक्ष से जब युद्ध हो रहा था तो परशुराम के भाइयों ने शूल फेंका तो वह फूट करी मालिका बनाई। ऐसे ही विचित्र चमत्कार उसने दिखाये। तब अन्त में शङ्कर भगवान् की साधना से परशुराम ने पाशुपत अस्त्र धारण किया परन्तु भगवान् नारायण ने बीच में ही विप्र का वेप धरकर पुष्कराक्ष को मारने और कार्तवीर्य पर जय पाने के लिये लक्ष्मीकवच की साधना की बात कही। परशुराम ने नारायण से परिचय पूछकर पुष्कराक्ष और उसके पुत्र के पास से कवच छाने के लिये यचना की। विष्णु भगवान् स्वयं उनके पास गये और दोनों पितापुत्र से उस कवच को मांग लिया। नारद के पूछने से श्रीनारायण ने बताया कि इस कवच को मन्तुकुमार ने पुष्कराक्ष को दिया। यह मन्त्र दश अक्षरों का है। फिर लक्ष्मी कवच का पाठ परशुराम को दिया जिससे वह विजयी बने।

श्रीनारदजी के द्वारा दुर्गाकवच के विषय में पूछने पर श्रीनारायण ने ब्रह्माण्डविजय दुर्गा कवच का अधिकल वर्णन किया।

४० महस्ताक्षमरणानन्तरं कार्तवीर्यस्य युद्धार्थं गमनम् ४६७

कालम्य बलान्नलत्ववर्णनम् ४६६

कार्तवीर्यवधवर्णनम् ५०१

उन दोनों कवचों को लेकर महन्नाक्ष और उसके पुत्र को परशुराम ने एक सनाह तक युद्ध कर मार दिया। अब कार्तवीर्य स्वयं युद्ध में आ उपस्थित हुआ। जब आमने-सामने दोनों आये तो रथ से उतरकर राजा ने परशुराम को प्रणाम किया। परशुराम ने समयोचित आशीर्वाद दिया कि जाओ सकुशल स्वर्ग में रहो। अब भयङ्कर युद्ध हुआ और परशुराम राम के भी इसमें दात खट्टे होगये। एकदण्ड आकाशवाणी हुई कि कार्तवीर्य के पास कृष्णकवच है। शम्भु उसे माग कर परशुराम को देमकते हैं। इसपर शंकरजी ने जाकर कार्तवीर्य से मागकर कृष्णकवच परशुरामजी को दिया। देवगण अपने-अपने स्थानों को चले गये और परशुरामजी ने कार्तवीर्य को फिर युद्ध के लिये बुलाया और कालभेद से जय तथा विजय और पराजय होने की बात कही। इस प्रकार प्रणाम कर कार्तवीर्य ने कालभगवान् की मारी विडम्बना कह सुनाई और श्रीकृष्ण की प्राणाविष्टात्री प्रकृति माहेश्वरी की विस्तार से लीला गाई। इसके बाद कार्तवीर्य रथपर चढ़कर युद्ध के लिये तैयार हुआ और ब्रह्मात्मा से परशुरामजी द्वारा मारा गया। उन्होंने इस प्रकार २१ बार पृथ्वी को अत्रियविहीन बना दिया। इसपर प्रमत्त होकर सारे देवगण ने पुण्यमृष्टि की और ब्रह्माजी ने आकर कण्व-शाब्दोक्त मनुपदेश कहा। उन्होंने पिता, माता और गुरुजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की और भगवान् में भक्ति कर श्री गुरुचरणों की शरण में होने का आदेश दिया।

४१

मार्गस्य सैन्दाशुगमनम्
सैन्दाशुगमनम्

५०२

५०३

अब अपना प्रतिज्ञा पूरी कर परशुगमन के उद्योग पर भगवान् परम गुरु गिर को नमस्कार करने गये वन पर माता पार्वती, गौरी, और कार्तिकेय सबको देखा सबसे बातचीत कर मोक्षी परशुराम जाने लगे तो गौरी ने उन्हें रोका और भगवान् शक असौ निद्रित है उनके जागने पर उनसे आज्ञा लेकर मैं भी साथ ही चटगा इमाउरे वृत्त मन्त्र तक टहरनेकी सलाह दी। इसपर परशुगमनी ने वृत्तवति मन्त्रान् पुच्छित्क यत्न कदा ।

४२

गणेश्वरमर्मापे गमस्य शिवाशिवादिदुर्शनप्रार्थनम्

तयोः तयोपस्थनञ्च

५०४

ज्ञाननिष्पणम्

५०५

जिन भगवान् शकर के प्रसाद से मैंने २१ बार वृक्षों को शत्रियों से शून्य कर दिया और महावीर कार्तवीर्य तथा सुचन्द्र को मारा उनके दर्शन और माताजी के दर्शनों से कृतकृत्य हो मैं गाँव ही घरपर जाऊँगा। जिन महादेवादिदेव जगद्गुरु शंकरजी ने नानाविधा और दुर्दुर्भ गान्धों को पटा उन परम गुरु शकजी के दर्शन करने की इच्छा है। इसके उत्तर में श्रीगौरी ने कहा है ध्यान । कृद्ध क्षण टहरेंगे । पछान्न में स्त्रीपुच्छ पुण्य को न देंगे । उनके स्तन में बह करनेवाला काष्ठमूत्रनामक नरक में जयतक मूत्र, चन्द्रमा की स्थिति है तयतक गृह्य है । विशेष रूप से माता, पिता, गुरु और राजा को मुखमङ्गल ने विच्छृङ्खल न देंगे । पत्नी करनेवाटे का मान जन्म तक श्री विच्छेद होता है ।

श्रीगौरीवत्प्रभ्रंशंरक्षत य परवति परस्त्रिया ।

कामगोप्ये विमूढ मोज्झो मरति निश्चितम् ॥

इसपर भृगुनन्दन परशुरामजी ने कहा है गणेश निर्मिकार बालक का अपने माता-पिता के पाम जानेका सोई डर नहीं। ये पार्वती परमेश्वर केवल तुम्हारे ही नहीं मारे जगत् के माता-पिता है। अब बालक से माता पिता को क्या संज्ञोच है ? फिर हैमकर परशुरामजी ने अन्त पुर मे जाने की इच्छा प्रकट की। अब गणेशजी भी बुद्ध शान्त हो गये। उन्हो ने कहा कि अज्ञानी मनुष्य ज्ञानवान् से ही ज्ञान पाता है और पिता, भाई के मुग्ध से भाग्यशाली ही ज्ञान मुनता है परन्तु मुक्त मन्दबुद्धि का भी है भ्रात निरंजन मुनी जो निर्गुण है, वह निर्लिप्त है। शक्तिगो से वह सयुक्त नहीं है, परन्तु परमशक्तिस्वरूप आनन्दकन्द मविदानन्द जब अपनी प्रीति से प्रकृति मे अपना प्रीत्य छोडते है तो डिम्ब होता है, वह त्रिय लाख वर्ष तक रहकर परब्रह्म के निवास से वायु फिर मुख, पिन्दु और उससे महमा जल होजाता है और उसमे डिम्ब एक लाख वर्ष तक डिम्ब रहकर फिर मारे विश्वो का आधार महा विराट् उपन्न होता है। उस कृष्ण के गात्रशोभ के समान सन्नायाने त्रिधाण्ड है उन सत्र मे प्रत्येक त्रिधा, त्रिष्णु, शिव और देवगण है। अपने म्वाशकला से भगवान् हरि नानाहपधारी होते है। उन्ही की पञ्चप्रकृतिवा त्वीमात्र मे सर्वत्रयात्र है। राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गादेवी तथा मरस्वतीन्प मे विराजमान है, क्या उनकी लजा कहीं चली जाती है ? इस प्रकार परमप्रभु श्रीकृष्ण के गुणानुवाद को कहकर श्री परशुराम से कुछ ठहरने को कहा।

४३	गमन यात्राने रामस्य गणेशेन सह वायुद्वम्	५०८
	गणेश प्रति परशुनिर्घंषायोगः	५०९

इसी बीचमे परशुरामने जाने की शीघ्रता की, परन्तु श्रीगणेश न उन्हें रोका और दोनों का वाग्युद्ध हुआ। इसपर गणेश पर अपने फरशे से आक्रमण करने की पूरी तैयारी की परन्तु कार्तिकेय के बीच मे पडने से कुछ मुल्ल हो गई

और गणेशजी ने योगप्रभाव से सारे ब्रह्माण्डों का परशुराम को दर्शन करा दिया। स्तम्भित परशुराम को वैकुण्ठ, गोलोक सब की लीलायें दिखाई पड़ीं। वहा पर परशुराम का क्षत्रियनाश के समय किये गये अणुहत्यादि पापों से छुटकारा किया गया और फिर उन्हें चेतना दिलाकर उनका स्तम्भन दूर किया। अब परशुराम ने गुरुदत्त कवच और स्तोत्रों का पारायण अभीष्टदेव श्रीकृष्ण, जगद्गुरु शम्भु का स्मरण करते हुए किया। गणेश ने इस प्रकार वार करते हुए फरशेकी अपने दाँवें दात में लगाया वह अव्यर्थ अस्त्र उनके दात को समूल उखाड़ लाया। वह दात लहू समेत शब्द के साथ गिरा और सभी लोग ब्राहि-ब्राहि करने लगे। इस कोलाहल से भगवती पार्वती और शंकरजी धाहर आगये। और गणेश के दात को देखकर पार्वती जी ने स्कन्द से इसका कारण पूछा।

४४ गणेशदन्तभङ्गं दृष्ट्वा रामप्रति गौर्याः उपालम्भः ५१०

पार्वतीजी ने गणेशजी के दात को टूटा देखकर और परशुराम को इसके लिये उत्तरदायी जानकर उन्हें उलाहना दिया कि फरशे की परीक्षा क्षत्रियों पर कर क्या अब घरवालों पर इसे चलाने का दुःसाहस करते हो। शंकरजी से अमोघ अस्त्र पाकर क्या तुम्हें इतना अभिमान हो गया ? यह कहकर शोकाकुल पार्वती क्रोध से परशुराम को मारने को तैयार हो गईं। इसपर परशुराम ने गुरुदेव श्रीकृष्ण को मन से प्रणाम कर स्मरण किया और एक सुन्दर सुबुमार धालक कोटि सूर्य के प्रकाशवाला उन सब के सामने उपस्थित हुआ। शंकरजी एवं पार्वतीजी ने उन्हें प्रणाम किया। मन्त्रों ही धालक शुभाशीर्वाद दिया। शंकरजी ने काण्य शास्त्रोक्त स्तोत्र से उनकी पूजा की और उन्हें अतिथिरूप में पाकर अपनेको धन्य समझा। तब भगवान् ने अपना परिचय दिया कि स्वतद्वीप से आया हूँ और श्रीकृष्णभक्ति विहीन की निन्दा कर कृष्णभक्तों का गणन किया तथा गुप्तत्व की प्रशंसा की। श्रीकृष्ण ने परशुराम और गणेश के विवाद को एक

देवी घटना बताकर उन्हें शान्त किया। तदनन्तर गणेश महिमा और गणेश के आठ नामों का पूर्ण निर्वचन।

४५	गौरीम्बोधयित्वा रामम्प्रतिमत्प्रादिकर्णं विष्णोरुपदेशः	५१५
	दुर्गास्तोत्रम्	५१७

पार्वती को इस प्रकार समझाकर विष्णु ने परशुराम को समझाया। हे राम ! तुमने गणेशजी का फरो से टाँट डगाडकर अपराध किया है अतः काण्यशास्त्रोक्त स्तोत्र से दुर्गाजी का और मेरे कहे हुए स्तोत्र से गणपतिजी का तुम पूजन करो। यही भगवती सत्य की आधार शक्ति है इनको प्रसन्न करना ही इष्ट है। यह कहकर विष्णु अपने लोक में चले गये और परशुराम ने गङ्गाजी में स्नान कर विष्णुदत्त स्तोत्र से गणेश और दुर्गाजी की पूजा की। दुर्गास्तोत्र का निरूपण उनके महत्त्व का वर्णन।

४६	गणेशाय तुलसीदाननिषेधकथनम्	४२०
	तुलसी गणेशमन्त्रादः	४२१

दुर्गाजी, गणेश और शंकरजी की स्तुति कर परशुरामजी जाने को तैयार हुए इसपर नारदजी ने गणेश के तुलसी निषेध का भोग क्यों नहीं लगता यह पूछा तब श्रीनारायण ने ब्रह्मकल्प का वृत्तान्त सुनाया। तीर्थों में एक बार यात्रा करती हुई तुलसी ने युवक गणेशजी को गङ्गातीर पर देखा। इनने सन्नाह होकर गणेश से गजानन, लम्बोदर और गजत्रय होन का कारण पूछा और गणेशजी की हँसी करने लगी और उनके तर्जनी के अग्रभाग को तोड़ने लगी। इसपर जब गणेश का ध्यान भङ्ग हुआ तो तुलसी से उन्होंने पूछा कि हे वत्से ! तुम कौन हो तुमने तपस्वीगण का ध्यान भङ्ग करने में क्या पाप नहीं समझा ? इसपर श्रीगणेश को तुलसी ने अपने स्वामी बनने की प्रार्थना की। इसपर श्रीगणेश ने विवाह कर

स्त्री के साथ जीवन बिताने में दुःख व क्लेश बतलाये और इसे संसार में बन्धन का कारण बतलाया। इसपर तुलसी ने उसे शाप दिया कि जाओ तुम्हारा दारप्रह (विवाह) होगा और गणेश ने तुलसी को शाप दिया कि हे देवि ! तुम असुरप्रस्ता बनोगी। इसके बाद महान् लोगों के शाप से वृक्ष बनोगी। इसे सुनकर तुलसी रोने लगी। इसपर कृपा कर यह कहा कि पुष्पों की सारभूता भगवान् कृष्ण की परमप्रिया तुम बनोगी और श्रीकृष्णजी में तुम्हारा प्रमुख स्थान रहेगा। यह कहकर गणेश तपस्या के लिये बदरिकाश्रम चले गये। तुलसी ने दुःखी हृदय से एक लाख वर्ष तक तप किया फिर गणेश के शाप से शरच्चूड़ की स्त्री बनी। फिर जब वह असुर शक्रजी के विशूल से मर गया तब उनकी कला के अंश से यह नारायणप्रिया वृक्ष बन गई। इस प्रकार तुलसी गणेशजी के नहीं चढ़ती। यह संक्षेप से गणेशखण्ड का इतिहास है। इसको सुननेवाले को राजसूययज्ञ का फल मिलता है और सभी कामनायें पूरी होजाती हैं।

॥ इति तृतीयं श्रीगणेशखण्डम् ॥

शुभम्भूयान्।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमन्महर्षिं वेदव्यास प्रणीतम् ।

ब्रह्मवैवर्त पुराणम् ।

तत्रादौ प्रथमं ब्रह्मखण्डं प्रारभ्यते ।

प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीपुराणावयवाय नमः ।

तत्रादौ मङ्गलाचरणम् ।

गणेशत्रयेशसुरेशशोपाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः ॥
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च नमन्ति देवाः प्रणमामि तं विभुम् ॥
स्थूलात् स्थूलतमां तनुं दधतं विराजं विश्वानि लोमविवरेषु महान्तमाद्यम् ॥
सृष्ट्रोन्मुखः स्वकल्यापि ससर्ज सङ्गमां नित्यां समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि ॥
ध्यायन्ते ध्यातनिष्ठाः सुररत्नमनवो योगिनो योगरूढाः,
सन्तः स्वप्नेऽपि सन्तं कतिकतिजनिमियं न पश्यन्ति तप्त्या ॥
ध्याये स्वेच्छामयं तं त्रिगुणपरमहो निर्विकारं निरीहं,
भक्तध्यानैकहेतोर्निरुपमरुचिरश्यामरूपं दधानम् ॥

वन्दे कृष्णं गुणार्तीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः । भाविर्यभूयुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवाद्यः ॥

ऋतपरम्पूर्यं भारतीकामधेनुं श्रुतिगणहृतवत्सो व्यासदेवो दुदोहः ॥

भक्तिरचिरपुराणं ब्रह्मवैवर्तमेतम् पियत पियत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम् ॥

ओं नमो भगवते वासुदेवाय ।

ओं नारायण नमस्कृत्य नखञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ओं भारते नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः ।

नित्यां नैमित्तिकां कृत्वा क्रियामूयुः कुशासने ॥ १ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सौर्तिमागच्छन्तं यदृच्छया । प्रणतं सुविनीतं तं विलोच्य ददुरासनम् ॥

तंसम्पूज्यातिर्थिभक्त्याशौनकोमुनिपुङ्गवः । पप्रच्छकुशलं शान्तं शान्तः पौराणिकं मुदा

व्रतर्मायासविनिर्मुक्तं घसन्तं सुस्थिरासने । सस्मितं सर्वतन्वहं पुपणानां पुपणवित् ॥

परं कृष्णकथोपेतं पुराणं श्रुतिसुन्दरम् । मङ्गलं मङ्गलार्हञ्च सर्वदा मङ्गलालयम् ॥

सर्वमङ्गलयोजञ्च सर्वदा मङ्गलप्रदम् । सर्वामङ्गलविप्रञ्च सर्वसम्पत्करं वरम् ॥ ६ ॥

हरिभक्तिप्रदं शश्वन् सुखदं मोक्षदं भवेत् । तन्यज्ञानप्रदं दारपुनर्पोश्रविवर्द्धनम् ॥ ७ ॥

पप्रच्छ सुविनीतञ्च विनीतो मुनिसंसदि । यथाकाशे ताक्काणां द्विजराजो विराजते ॥

शौनक उवाच ।

प्रमथानं भवतः कुत्र कुत आयासि ते शिष्यम् । किमस्माकंपुण्यदिर्नवत्स ! त्वद्दर्शनैव च

वयमेव फलत्री भीता विशिष्टवानवर्जिताः । मुमुक्षवो भवे मन्नास्तद्धेतुन्त्वमिहागतः ॥

भवान् साधुर्महाभागः पुराणेषु पुराणवित् । सर्वेषु च पुराणेषु निष्णातोऽतिरूपानिधिः

श्रीकृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती ।

तत् कथ्यतां महाभाग ! पुराणं ज्ञानवर्द्धनम् ॥ १२ ॥

गरीयसो या मोक्षाश्च धर्ममूलनिवृत्तनी । संसारसंश्रियद्धानां निगड्छेद्दृष्टन्तनी ॥

भवदावाग्निदग्धानां पीयूषवृष्टिवर्णिनी । सुखदानन्ददा सौते ! शश्वच्चेतसिजीविनाम् ॥

गन्नादौ सर्ववीजज्ञपरब्रह्मनिरूपणम् । तस्य सृष्ट्योन्मुपस्यापिसृष्टेरुत्कीर्तनं परम् ॥

माकारंयानिराकारंपरमात्मस्वरूपकम् । किमाकारञ्च तद्ब्रह्मतज्जयानं किञ्च भावनम् ॥

ध्यायन्ते वैष्णवाः किम्वा किम्वा सन्तश्च योगिनः ।

मनं प्रधानं केयं वा गृहं वेदे निरूपितम् ॥ १७ ॥

प्रकृतेश्च य आकारो यत्र चत्स ! निरूपितः । गुणानां लक्षणं यत्र महदादेश्च निर्णयः ॥

गोलोकवर्णनं यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम् । वर्णनं शिवलोकस्य यत्रान्यत् स्वर्गवर्णनम् ॥

अंशानाञ्चकलानाञ्चयत्रसंते ! निरूपणम् । के प्राकृताःकाप्रकृतिःकथात्मा प्रकृतेःपरः ॥

निगृहं जन्मयेयावादेवानां देवयोपिनाम् । समुत्पत्तिः समुद्राणां शैलानां सरितामपि ॥

के बांशाः प्रकृतेश्चापि कलाः का वा कलाकलाः ।

तासाञ्च चरितं ध्यानं पूजास्तोत्रादिकं शुभम् ॥ २२ ॥

दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणाञ्च वर्णनम् । यत्रैव राधिकाप्यानमन्यपूर्वं सुधोपमम् ॥

जीवकर्मविपाकश्च नरकाणाञ्च वर्णनम् । कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्षणम्

येषाञ्च जीविनां यत् यत् स्थानं यत्र शुभाशुभम् ।

जीविनां कर्मणो यस्मात् यासु यासु च योनिषु ॥ २५ ॥

जीविनां कर्मणो यस्मात् यो यो रोगो भवेद्दिह ।

मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषाञ्च तन्निरूपय ॥ २६ ॥

मनसातुलसीकालीगङ्गापृथ्वीवलुन्धरा । आसां यत्र शुभाप्यानमन्यासामपि यत्र वै ॥

शालग्रामशिलानाञ्च दानानाञ्चनिरूपणम् । अपूर्वं यत्र वा संते ! धर्माधर्मनिरूपणम् ॥

गणेश्वरस्य चरितं यत्र तन्नम कर्म च । कथयस्तोत्रमन्त्राणां गृहानां यत्र वर्णनम् ॥

यद्रूपंमुपाख्यानमधुतं परमाद्भुतम् । रुन्वा मनसि तत् सर्वं साम्प्रतं चक्षुमर्हसि ॥३०॥

यत्र जन्मत्रनो विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते । परिपूर्णतमस्यापि रुष्णम्य परमान्मनः ॥

जन्म कस्यगृहेल्लयंपुण्यपुण्यवनो मुने । सुतं प्रसूता का धन्या मान्यापुण्यवतीसती ॥

आधिर्मय च तद्गृहे क्व गतः केन हेतुना । गत्वा किं कृतवांस्तत्र कथं वा पुनरागतः ॥

भारावनरणं केन प्रार्थितो गोश्वकार सः ।

विधाय किं वा सेतुञ्च गोलोकं गतवान् पुनः ॥ ३५ ॥

इतीदमन्यद्वारणं पुराणं धुनिदुर्लभम् । दुर्विज्ञेयं मुनीनाञ्च मनोनिर्मलकारणम् ॥३५॥

स्वज्ञानाद् यन्मया पृष्मपृष्ट वा शुभाशुभम् । सद्यो वैराग्यजनन तन्मे व्याप्यातुमर्हसि
शिष्यपृष्मपृष्ट वा व्याध्यात कुरुते च य ।

स सद्गुर सता श्रेष्ठो योग्यायोग्ये च य सम ॥ ३७ ॥

सौतिरवाच ।

सर्वं कुशलमस्माक त्यत्पादपद्मदर्शनात् । सिद्धक्षेत्रादागतोऽहं यामि नारायणाश्रमम्
दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कृतुमिहागत । द्रष्टुञ्च नैमिषारण्य पुण्यदक्षापि भारते ॥३८॥

देव विप्र गुर दृष्ट्वा न नमेट् यस्तु सभ्रमात् ।

स कालसूत्रं व्रजति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४० ॥

हरित्राह्वणरूपेण शब्दं भ्रमति भारते । सुदृतीं प्रणमेत् पुण्यात् ब्राह्मण हरिरूपिणम् ॥
भगवन् ! यत्त्वया पृष्टं ज्ञाति सर्वमभीप्सितम् । सात्भूत पुराणेषु ब्रह्मवैवर्त्तमुत्तमम् ॥

पुगणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभङ्गनम् । हरिमक्तिप्रदं सर्वतत्त्वज्ञानविवर्द्धनम् ॥ ४३ ॥
कामिना कामदञ्चेद् मुमुक्षुणाञ्च मोक्षदम् । भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम्

ब्रह्मखण्डे सर्वानपराह्ननिरूपणम् । ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत् परात्परम्
वैष्णवा योगिनः सन्तो न च मित्राश्च शौनक ।

स्वज्ञानपरिपात्रेण भवन्ति जीविनः क्रमात् ॥ ४६ ॥

सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः ।

वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः परा ॥ ४७ ॥

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम् । ततः प्रवृत्तिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम्
जीविकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम् । तासाञ्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम् ॥

प्रवृत्तेर्क्षणं तत्र वराशानां निरूपणम् । कीर्त्तेश्वरीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितं ॥
सुवृत्तीनां दुष्कृतीनां यद् यत् स्थानं शुभाशुभम् ।

घर्षणं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणं ततः ॥ ५१ ॥

ततो गणेशखण्डे च तत्रन्मं परिक्वचित्तम् । अतीयापूर्वचरितं ध्रुतिवेदसुदुर्लभम् ॥५२॥
गणेशभृगुसंवादसर्वतत्त्वनिरूपणम् । निगुदयचवस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥ ५३ ॥

श्रीहृत्पञ्चमखण्डञ्च कीर्त्तितञ्च ततः परम् । भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्म कर्म च
 मुषो भागवतरणं क्रीडाकौतुकमङ्गलम् । सतां सेतुविधानञ्च जन्मखण्डे तिन्पितम् ॥
 इदं ते कथितं विप्र ! पुराणप्रवरं धरम् । चतुःखण्डपरिमितं सर्वधर्मनिरूपितम् ॥ ५६ ॥
 सर्वधर्माप्तिव्रतमं सर्वाशापूर्णकारणम् । ब्रह्मवैवर्त्तकं नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ ५७ ॥
 नारमृतं पुराणेषु केवलं वेदनम्वितम् । विवृतं ब्रह्मज्ञान्स्वर्यञ्च कृष्णेन यत्र शौनक ! ॥
 ब्रह्मवैवर्त्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः । इदं पुराणसूत्रञ्च पुरा दत्तञ्च ब्रह्मणे ॥ ५८ ॥
 निरानये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना । महार्थं पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा ॥
 धर्मस्य दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च । नारायणर्षिर्मगवान् प्रददौ नारदाय च ॥ ६१ ॥
 नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे । व्यासः पुराणसूत्रं तत् संव्यस्य विपुलं महत् ॥
 मह्यं ददौ सिद्धक्षेत्रे पुष्यदे सुमनोहरम् । मयेदं कथितं ब्रह्मन् ! तत् समग्रं निशामर ॥
 अष्टादशसहस्रन्तु व्यासेनेदं पुगणकम् । पुराणकात्स्नर्यं ध्रुवो यत् फलं लभते नरः ।
 तत् फलं लभते नूनमन्यायश्रवणेन च ॥ ६५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौत्तिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डेऽनुक्रमणिका
 नाम प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

परब्रह्मनिरूपणम्

शौनकउवाच ।

किन्पूर्वं श्रुतं सौते ! पद्माद्भुतर्नाप्सितम् । सर्वं कथय संव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् ॥ १ ॥

सौतिरुवाच ।

घन्द्रेगुरोःपाद्पद्मं व्यासस्याभित्तोऽसः । हरिदेवान् द्विजान्त्वचाधर्मान् वश्यैसनातनान्
 यत् श्रुतं व्यासवक्त्रेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् । अज्ञानान्धतमोऽध्वंसि ज्ञानयन्मप्रदीपकम् ॥

ज्योति समूहं प्रलये पुरासीत् केवलं द्विज ! । सूर्यकोटिप्रभं नित्यमसंख्यविश्वकारणम्
स्वेच्छामयम्य च विभोस्तज्ज्योतिरुज्ज्वलं महत् ।

ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम् ॥ ५ ॥

तेषामुपरि गोलोकं नित्यमाश्रयच्छ द्विज । त्रिकोटियोजनायामविस्तीर्णं मण्डलाकृति
तेजस्वरूपं सुमहद्वत्तभूमिमयं परम् । अद्भुतं योगिभिः स्वप्ने दृश्यं गन्धञ्च वैष्णवैः ॥
योगेन धृतमीशेन चान्तरीक्षस्थितं घरम् । आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवाजितम् ॥
सद्भक्तचित्तासंगमन्दिरैः परिशोभितम् । लये कृष्णयुतं सृष्टौ पापगोपीमिरावृतम् ॥

तदधो दक्षिणे सद्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।

वैकुण्ठं शिवलोकञ्च तत्समं सुमनोहरम् ॥ १० ॥

कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठं मण्डलाकृति ।

लये शून्यञ्च सृष्टौ च लक्ष्मोतारायणान्वितम् ॥ ११ ॥

चतुर्भुजैः पार्यटैश्च जगामृत्यादिवर्जितम् । सद्येचशिवलोकञ्च कोटियोजनविस्तृतम्
लये शून्यञ्च सृष्टौ च सपार्यदशिरान्वितम् । गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीवसुमनोहरम्
परमाह्लादकं शश्वन् परमानन्दकारणम् । ध्यायन्ते योगिनः शाश्वद् योगेन ज्ञानचक्षुषा
तद्वैयानन्दजनकं निराकारं परात्परम् । तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीवसुमनोहरम् ॥ १५ ॥
नवीननगरदृश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम् । शारदीयपार्वणेन्दुशोभातिलोचनाननम् ॥ १६ ॥
कोटिषुर्ध्वलावर्ण्यं लीलाधाम मनोरमम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम् ॥
सद्भक्तभूषणोद्येन भूषितं भक्तवत्सलम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वस्त्रैर्गुडुष्मान्वितम् ॥ १८ ॥
श्रीवत्सवक्ष्मन्नाजत्कौस्तुभेन विराजितम् । सद्भक्तसारचित्किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥
वत्सिंहासनम्यञ्च घनमात्रादिभूषितम् । तमेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २० ॥
स्वेच्छामयं सर्षपीजं सर्षाधारं परात्परम् । किशोरवयसं शश्वद्गोपवेशविधायकम् ॥
कोटिषुर्ध्वलोभादरं भक्तानुग्रहकातरम् । निरीहं निर्विकारञ्च परिपूर्णतमं विभुम् ॥
गसमण्डलमज्यम्भं शान्तं गालेश्वरं घरम् । मङ्गल्यं मङ्गलार्हञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥
परमानन्दपीतञ्च सत्यमक्षमज्ययम् । सर्षसिद्धीश्वरं सर्षसिद्धिरुपञ्च सिद्धिदम् ॥ २३ ॥

प्रकृतेः परमांशानं निर्गुणं नित्यविग्रहम् । आद्यं पुरुषमव्यक्तं पुरदृतं पुरष्टुत्म् ॥ २५ ॥

सत्यं स्वतन्त्रमेकञ्च परमान्मस्वरूपकम् ।

ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं तत् परमायणम् ॥ २६ ॥

एवं रूपं परं विब्रद्गवानेक एव सः । दिग्भिश्च नभसा सार्द्धं शून्यं विश्वं ददर्श ह ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे परब्रह्मनिरूपणं नाम

द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

सृष्टिनिरूपणम्

सौतिख्याच ।

दृष्ट्वा शून्यमयं विश्वं गोलोकञ्च भयङ्कनम् । निर्जन्तु निर्जलं घोरं निर्वातं तमसावृतम्
वृक्षशैलसमुद्रादिविहीनं विरुतावृतम् । निर्मूर्त्तिकञ्च निर्धातु निशस्यं निस्तुपं द्विज ॥

आलोच्य मनसा सर्वमेक एवासहायवान् । स्वेच्छया स्रष्टुमारंभे सृष्टिं स्वेच्छामयःप्रभुः

आविर्बभूवुः सर्वादीं पुंसो दक्षिणपार्श्वतः । भवकारणरूपाश्च मूर्त्तिमन्तस्त्रयो गुणाः

ततो महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्र एव च । रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चैवेतिसङ्गकाः ॥ ५ ॥

आविर्बभूव तत्पश्चात् स्वयं नारायणः प्रभुः । श्यामो युवा र्पातवासां वनमालीचतुर्भुजः

शङ्खत्रगदापद्मधरः स्मेरमुग्वाम्बुजः । रत्नभूषणभूयाढ्यः शार्ङ्गं कौस्तुभभूषणः ॥ ७ ॥

श्रीवन्सवक्षाः श्रीवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः । शारदेन्दुप्रभायुष्टमुत्तेन्दुसुमनोहरः ॥

कामदेवप्रभायुष्टरूपलावण्यसुन्दरः । श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः ॥ ९ ॥

नारायण उवाच ।

घरं वरेण्यं वरदं वराहं वरकारणम् । कारणं कारणानाञ्च कर्म तत्कर्मकारणम् ॥ १० ॥

तपस्तनूफलदं शश्वत्तपस्थिनाञ्च तापसम् । वन्दे नवधनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम् ॥

निष्कामं कामरूपञ्च कामञ्जं कामकारणम् । सर्वं सर्वेश्वरं सर्ववीजरूपमनुत्तमम् ॥
 वेदरूपं वेदवीजं वेदोक्तफलद्रं फलम् । वेदज्ञं तद्विधानञ्च सर्ववेदविदां धरम् ॥ १३ ॥
 इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवाच तदाज्ञया । रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः ॥
 नारायणहृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । त्रिसन्ध्यञ्च पठेन्नित्यं पापं तस्य नविद्यते
 पुत्रार्थो लभते पुत्रं भाष्यार्थो लभते प्रियाम् । भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं स्रष्ट्वनोलभेत्
 कारागारेविषदृष्टस्तस्तोत्रेणमुच्यतेध्रुवम् । रोगात् प्रमुच्यतेरोगविषं श्रुत्वातु संयत ॥
 इति ब्रह्मवैवर्ते नारायणहृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सीतिरवाच ।

श्राविर्भूव तत्पश्यादात्मनो वामपार्श्वतः । शुद्धस्फटिकसङ्काश पञ्चवक्त्रो दिगम्बरः
 तनकाञ्चनवर्णमजटाभारधरो वरः । ईषद्भ्राम्यप्रसथाभ्यखिनेत्रध्वदशेखरः ॥ १६ ॥
 त्रिशूलपट्टिशधरो जपमालाकरः परः । सर्वसिद्धेश्वरः सिद्धो योगिनाञ्च गुरोर्गुरुः ॥
 मृत्योर्मुर्त्युरीश्वरश्च मृत्युर्मुर्त्युज्जयः शिवः । ज्ञानानन्दो महाज्ञानी महाज्ञानप्रदः परः
 पूर्णचन्द्रप्रभायुष्टमुखदृश्यो मनोहरः । वैष्णवानाञ्च प्रवरः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥२२॥
 श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुदाञ्जलिः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिगद्गदः
 महादेव उवाच ।

जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम् । प्रवरं जयदानाञ्च वन्दे तमपराजितम् ॥ २४ ॥

विश्वं विश्वेश्वरेशञ्च विश्वेशं विश्वकारणम् ।

विश्वाघातञ्च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम् ॥ २५ ॥

विश्वरक्षाकारणञ्च विश्वञ्जं विश्वजं परम् । फलवीजं फलाधारं फलञ्च तत्फलप्रदम् ॥

तेजस्वरूपं तेजोदं संपतेजस्वितां धरम् । इत्येवमुक्त्वा तं नवा रत्नसिंहासने धरे ।

नारायणञ्च संभाष्य स उवाच तदाज्ञया ॥ २७ ॥

इति शम्भुहृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत् । सर्वसिद्धिर्भवेत्तान्य विजयश्च पदे पदे ॥

मन्त्रं पठते मित्रं घनमैश्वर्यमेव च । शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुःस्थितानि च ॥२६॥

इति ब्रह्मवैवर्ते शम्भुहृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य नाभिपङ्कजात् । महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वरः
शुक्लवासाः शुक्लदन्तः शुक्लकेशश्चतुर्मुखः । योगीशः शिल्पिनार्माशः सर्वेषां जनको गुरु-
तपसां फलदाता च प्रदातासर्वसम्पदाम् ॥ स्रष्टा विधाता कर्ताचहर्ताचसर्वकर्मणाम् ॥
धाता चतूर्णां वेदानां ज्ञाता वेदप्रसू पतिः । शान्तः सरस्वतीभान्तः सुशीलश्चहृषानिधिः
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुत्राञ्जलिः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकन्धरः
ब्रह्मोवाच ।

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम् । अव्यक्तमव्ययंव्यक्तं गोपवेषविधायिनम् ॥३५॥
किशोरवयसंशान्तं गोपीकान्तं मनोहरम् । नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥
घृन्दावनवनाम्यर्णं रासमण्डलसंस्थितम् । रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम्
इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने चरे । नातपणेशो संभाष्य स उवाच तदाज्ञया ॥

इति ब्रह्मवृत्तं स्तोत्रं प्रातस्त्रयाय यः पठेत् ।

पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥ ३६ ॥

भक्तिभवति गोविन्दे पुत्रपौत्रविवर्द्धनी ।

अकीर्त्तिः क्षयमानोति सत्कीर्त्तिर्वर्द्धते चिरम् ॥ ४० ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मवृत्तं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् रक्षसः परमात्मानः । सस्मितः पुरपः कश्चित् शुक्लवर्णोजटाधरः
सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकारणम् । समः सर्वत्र सद्यो हिंसाकोपविवर्जितः
धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत् । स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मकलोद्भवः ॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद् भुवि । तुष्टाव परमान्मानं सर्वेशं सर्वकामदम्
कृष्णं विष्णुं धामुदेवं परमात्मानमीश्वरम् । गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम् ॥
गोपेश्वरश्च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम् । गवामीराश्च गोष्ट्यंगोवत्सपुच्छधारिणम्
गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुरुगोत्तमम् । वन्दे नवघनश्यामं रासवासं मनोहरम् ॥

इत्युच्चार्य्य समुत्तिष्ठन् रत्नसिंहासने वरे । ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान् सम्भाष्य स उवासीह
 चतुर्विंशति नामानि धर्मवक्योद्गतानि च । यः पठेत् प्रातस्तथाय स सुखी सर्वतो जयी
 मृत्युफाले हरिर्नाम तस्य सायं भवेद्बुधुवम् । स यात्यन्ते हरिःस्थानंहरिदास्यंभवेद्बुधुवम्
 नित्यं धर्मन्त घटते नाधर्मं तद्रतिर्भवेत् । चतुर्वर्गफलं तस्य शश्यत् कर्तव्यं भवेत् ॥
 तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायन्ते भवेन च । भयानि चैव दुःखानि वैनतेयमिवोसता ॥२

इति ब्रह्मवैवर्ते धर्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरवाच ।

आविर्भूव कन्यैका धर्मस्य वामपार्श्वत । मूर्त्तिर्मूर्त्तिमती साक्षात् द्वितीयकमलालया
 आविर्भूव नत्पञ्चान् मुखतः परमात्मनः । एका देवी शुक्लवर्णा चीणापुस्तकधारिणी
 कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना । यद्विशुद्धांशुकाद्याना रत्नभूषणभूषिता ॥१॥
 सस्मिता मुदती श्यामा सुन्दरीणाञ्चमुग्धरी । श्रेष्ठधूर्तानां शास्त्राणांविदुषां जननीपरा
 धाराप्रियातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता । शुद्धसत्वम्बरुपा च शान्तरूपा सरस्वती ॥२॥
 गौविन्दपुरतः स्थित्या जगौ प्रथमतः शुभम् । तन्नामगुणकीर्त्तिञ्च चीणया साननर्त च
 कृतानि यानि कर्माणि जन्मे जन्मे युगे युगे । तानित्तराणि हरिणा तुष्टाय संपुष्टाञ्जलिः
 सरस्वत्युवाच ।

रासमण्डलमयस्य रासोद्गासलमुत्सुकम् । रत्नसिंहासनमथञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥३॥
 रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम् । रासाधिष्ठातृदेवञ्च वन्दे रासविनोदितम् ॥४॥
 रासायासपरिध्रान्तं रासरत्नसिंहासिणम् । गत्वात्सुकानां गौर्यानां यान्तं शान्तंमनोहरम्
 प्रणम्य तं तानीत्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती । उवास सा सरामा च रत्नसिंहासने वरे ॥

इति वार्णाहृतं स्तोत्रं प्रातस्तथाय यः पठेत् ।

बुद्धिमान् धनवान् सोऽपि विद्यावान् पुत्रवान् सदा ॥ ६५ ॥

इति ब्रह्मवैवर्ते सरस्वतीहृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरवाच ।

आविर्भूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः ।

एका देवी गौरवर्णा रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ६५ ॥

पातवस्त्रपरिधाना सम्मिता नवयौवना । सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा ॥

स्वर्गं च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ ६६ ॥

सा हृतेपुरतः स्थित्वा परमान्मानर्माश्वरम् । तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिजत्रात्मकन्धरा
महान्दक्ष्मीस्वाच ।

सत्यम्बन्धुं सत्येशं सत्यर्वाजं मनातनम् । सत्याचारं च सत्यजं सत्यमूलं नमाम्यहम् ॥

इत्युक्त्वा श्रीहर्षि नत्वा सा चोवास सुखासने ।

तत्रकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशो दश ॥ ६६ ॥

आविर्भवूव तनूपञ्चात् बुद्धेश्च परमान्नतः । सर्वाधिष्ठानृदेवी सा मूलप्रकृतिरिध्वरी ॥

तत्रकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा । ईश्वराम्यप्रसन्नाम्या शरत्पङ्कजलोचना ॥ ७१ ॥

रत्नवस्त्रपरिधाना रत्नाभरणभूषिता । निद्रानृप्या क्षुत्पिपासा दया श्रद्धाश्मादिकाः ॥

तासान्य सर्वशक्तीतामीशाधिष्ठानृदेवता । भयङ्करी शतभुजा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

आत्मनः शक्तिरूपा सा जगतां जननीपग । त्रिशूलशक्तिशार्दूलश्च धनुः खड्गशशापि च

शङ्खचक्रगदापद्मशमालां कमण्डलुम् । वज्रमङ्कुशाशस्त्र भुशुण्डादण्डतोमरम् ॥ ७५ ॥

नागयन्त्रास्रं ब्रह्मास्त्रं रौद्रं पाशुपतं तथा । पात्रं च वारुणं बाह्वङ्गान्धर्वं विघ्ननी सती

कृपाम्य पुनः स्थित्वा तुष्टाव तं मुदान्विता ॥ ७६ ॥

प्रकृतित्वाच ।

अहं प्रकृतिर्गद्यानी सर्वेशा सर्वरूपिणी । सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥

त्वया सृष्टा न म्वतन्त्रा त्वमेवजगतांपतिः । गतिश्च पाता ऋष्टा च संहर्ता च पुनर्विधिः

परमानन्दरूपं त्वां वन्दे चानन्दपूर्वकम् । चञ्चुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत् ॥ ७९ ॥

तस्यप्रभावमतुलं वर्णितुं कः क्षमोविभो ! । भूमदूर्ललामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः

चगन्धराश्च विष्णुषु देवान् ब्रह्मपुरोगमान् । महिषाः कतिवादेवीः स्रष्टुं शक्तश्चलीलया

परिपूर्णतमं म्याज्यं वन्दे चानन्दपूर्वकम् ।

महान् विगद् यन्कलांशो विभ्रासंभ्याध्रमो विभो ! ॥

वन्दे चानन्दपूर्वं तं परमान्मानर्माश्वरम् ॥ ८२ ॥

यश्च स्तोत्रमशक्ताश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

वेदा अहश्च वाष्पा च बन्दे तं प्रकृतेः परम् ॥ ८३ ॥

वेदाश्च विदुषां श्रेष्ठाः स्तोत्रं शक्ता न लक्षणः ।

निर्लक्ष्यं क क्षम स्तोत्रं त निर्वाहं नमाभ्यहम् ॥ ८४ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने धरे । उवास नत्वा श्रीकृष्णं तुष्टुपुस्तांसुरेष्वरः ॥

इति दुर्गाष्टोत्रं स्तोत्रं कृष्णस्य परमात्मनः । यः पठेद्द्वन्वाकाले स जयी सर्वतः सुखी ॥

दुर्गा तस्य गृहं त्यक्त्वा नैव याति कदाचन ।

भवद्भौ यशसा भाति यात्यन्ते श्रीहरेः पुरम् ॥ ८७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौत्थीनक संवादे

सृष्टिनिरूपणे दुर्गास्तोत्रं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

सृष्टि निरूपणम्

सौत्थिखाच ।

आविर्भूय तत्पश्चान् कृष्णस्य रसनाग्रतः । शुद्धस्फटिकसङ्काशा देवी चैका मनोहरा

शुक्लवस्त्रपरीधाना सर्वालङ्कारभूषिता । मित्रती जपमालाञ्च सा सावित्री प्रकीर्तिता ॥

सा नुष्टाच पुरः स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम् । पुढाञ्जलिपरा साध्वी भक्तिनम्रात्मबन्धरा

सावित्र्युवाच ।

नमामि सर्वयोज त्वां ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । परान्परतरं श्यामं निर्विकारंनिरञ्जनम्

इत्युक्त्वा सम्मिता देवी रत्नसिंहासने धरे । उवास धांहरिं नत्वा पुनरेव श्रुतिप्रसू ॥

आचिरंभूय तत्पश्चान् कृष्णस्य परमात्मनः । मानसाश्च पुमानेकस्तनकाञ्चनसन्निभः ॥

मनोऽप्यजाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम् । तन्नाम मन्मथं तेन प्रयच्छन्ति मनीषिणः ॥

तस्य पुंसोवामपार्श्वात् कामस्य कामिनी वर । बभूवार्तीवललिता सर्वेषां मोहकारिणी
रतिर्बभूव सर्वेषां तां दृष्ट्वा सस्मितां सतीम् । रतीति तेन तन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः
हरिं स्तुत्वा तथा सार्द्धंसउवासहरेः पुरः । रत्सिंहासने रभ्ये पञ्चबाणो धनुर्द्धरः ॥१०
मारणं स्तम्भनञ्चैव जृम्भनं शोषणन्तथा । उन्मादनं पञ्चबाणान् पञ्चबाणो विभर्ति सः
बाणांश्चिक्षेप सर्वांश्च कामो बाणपरीक्षया । सद्यः सर्वे सकामाश्च बभूवुरीश्वरच्छया
रतिदृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह । तत्र तस्यो महायोगी बल्लेणाच्छाद्य लज्जया
बल्लं दग्ध्वा समुत्तस्थो ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ।

काटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥

कृष्णस्तद्वर्द्धनं दृष्ट्वा ससर्जापः स्वलीलया ।

निःश्वासवायुना सार्द्धं मुखविन्दुं समुद्गिरन् ॥ १५ ॥

विश्वोऽथं ध्वावयामास मुखविन्दुजलं द्विज । तस्य किञ्चिज्जलकणं बहिं शान्तंचकार ह ॥
ततः प्रभृति तेनाग्निस्तोयाग्निर्वाणतां ब्रजेत् । आविर्भूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेवता ॥
उत्तस्थोतज्जलादेकःपुमान्स्वरुणःस्मृतः । जलाधिष्ठातृदेवोऽसौसर्वेषां यादसाम्पतिः ॥
आविर्बभूव कन्यैका तद्वहे वामपार्श्वतः । सा स्वाहा बह्विपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

जलेशस्य वामपार्श्वात् कन्या चैका बभूव सा ।

वरुणानीति विख्याता वरुणस्य प्रिया सती ॥ २० ॥

बभूव पवनः श्रीमान् विभोर्निःश्वासवायुना ।

स प्रमाणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तन्कलोद्भवः ॥ २१ ॥

तस्यबायोर्वामपार्श्वात् कन्याचैकाबभूव ह । बायोःपत्नीस्ताचदेवीवायुर्वापरिकीर्त्तिता ॥
कृष्णस्य कामबाणेन रेतःपातो बभूव ह । जले तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि ॥२३॥
सहस्रवत्सरान्ते तद्विम्बरूपं बभूव ह । ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वोवाधार एव सः ॥
यस्यैकलोमविवरेविश्वैकस्यव्यवस्थितिः । स्थूलात् स्थूलतमःसोऽपिमहाब्रान्यस्ततःपरः
स एव षोडशांशोऽपिरुष्णस्यपरमात्मनः । महाविष्णुः स विज्ञेयःसर्वाधारःसनातनः ॥
महाणवे शयानः स पन्नपत्रं यथा जले । बभूवतुस्तौ द्वौ दैत्यौ तस्य कर्णमलोद्भवा ॥

सौ जलाञ्जलमुत्थायब्रह्माण्डं हन्तुमुद्यता । नारायणश्च भगवान् जघने तौ जघान ह ॥

यभूव मेदिनी कृत्स्ना फान्स्न्येन मेडसा तयो ।

तत्रैव सन्ति विश्वानि सा च देवी वसुधरा ॥ २६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे
चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

सृष्टिप्रकारवर्णनम्

शौनक उवाच ।

गोगोपगोप्यो गोलोके किं निन्याः किं नु कल्पिताः ।

मम सन्नेहमेदार्थं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

सौतिस्त्वाच ।

सर्वादिमृष्टौ ताः क्लृप्ता प्रलये प्रलये स्थिता । सर्वादिमृष्टिकथनं यन्मया कथितं द्विज ॥

सर्वादिमृष्टीक्लृप्तौ च नारायणमहेश्वरो । प्रलये प्रलयेत्यक्तौ स्थितौ तौ प्रकृतिश्च सा ॥

सर्वादीं ब्रह्मकल्पस्य चरितकथितं द्विज । वाराहपादाकृत्यो हौ कथयिष्यामि श्रोष्यसि ॥

ब्राह्मवाराहपादाश्च कल्पश्च त्रिविधा मुने । यथायुगानि च त्वाग्निमेण कथितानि च ॥

सन्त्यनेताटापश्च कलिश्चेति चतुर्गुणम् । त्रिशतेश्च पञ्चवधिकैर्गुणैर्दिव्यं युगं स्मृतम् ॥

मन्वन्तरान्तु दिव्यानां युगानामेकसतति । चतुर्दशसु मनुषु गतेषु ब्रह्मणो दिनम् ॥ ७ ॥

त्रिशतेश्च पञ्चवधिकैर्दिनेर्वर्षश्च ब्रह्मणः । अष्टोत्तरं वर्षशतं विवेगयुर्निरूपितम् ॥ ८ ॥

एतन्निमेषकालन्तु कृष्णस्य परमात्मनः । ब्रह्मणश्चायुषा कल्प काण्डविद्विर्निरूपित ॥

शुद्धकाला धृतरास्ते संवत्सार्दयः स्मृताः । सप्तकपालतर्जोर्वा च मार्कण्डेयश्च तन्मतः

ब्रह्मणश्च दिनेनैव स कल्पः परिकीर्तितः । विधेश्च सतदिवसे मुनेरायुर्निरूपितम् ॥११॥
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः । कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशामय
ब्राह्मे च मेदिनो सृष्ट्वा स्रष्टा सृष्टिं वकार सः ।

मधुकैटभयोश्चैव मेदसा चाज्ञया प्रभोः ॥ १३ ॥

घाराहे तां समुद्धृत्य लुतां मग्नां रसात्तलान् । विष्णोर्वराह रूपस्य द्वारा चात्प्रयत्नतः
पाद्मेविष्णोर्नाभिपद्मेत्त्रष्टा सृष्टिविनिर्ममे । त्रिलोकीं ब्रह्मलोकान्तानित्यलोकत्रयं विना ॥
एतत्तु कालसंख्यानमुक्तं सृष्टिनिरूपणे । किञ्चिन्निरूपणं सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
शौनक उवाच ।

अतःपरन्तु गोलोके गोलोकेशो महान् विभुः ।

एतान् सृष्ट्वा किञ्चकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

शौतिरुवाच ।

एतान् सृष्ट्वा जगामासीं सुष्यं रासनण्डलम् । एतैः समेतो भगवानतीवकमनीयकम्
रम्याणांकल्पवृक्षाणाम् ज्येष्ठावमनोहरम् । सुविस्तीर्णञ्च सुसप्तं मुक्तिग्धनण्डलाकृतम् ॥
चन्दनागुरकस्त्रीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृतम् । दधिलाजाराकुधान्यदूर्वापर्णपरिप्लुतम् ॥२०॥
पट्टस्त्रप्रग्रियुक्तनवचन्दनपल्लवैः । संयुक्तरन्मास्त्रम्भानां सनूहैः परिवेष्टितम् ॥ २१ ॥
सद्रत्नसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः । रत्नप्रदीपञ्चलितैः पुष्पवृषाधिवासितैः ॥२२॥
शृङ्गारार्हभोगवस्तुसनूहपरिवेष्टितैः । अतीवलिताकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम् ॥ २३॥

तत्र गत्वा च तैः सादं समुवास जगन्पतिः ।

दृष्ट्वा रासं विस्मितास्ते बभूवुर्मनिसत्तन ! ॥ २४ ॥

आविर्भूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः । धाविन्वा पुष्पनानीय द्वादशव्यं प्रभोः पदे
रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरेःपुरः । तेन राधासमारजाता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥

प्राणाधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमानन्दनः ।

आविर्भूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ २७ ॥

देवी षोडशवर्षीया नवयोवनसंयुता । षड्विंशुद्धांशुकाधाता सस्मिता सुमनोहरा ॥२८॥

सुकुमलाङ्गी ललिता सुन्दरीषु च सुन्दरी । बृहन्नितम्बभारतां शान्त्रोष्णीपयोधरा ॥
 कन्दुर्जाबजितारक्तसुन्दरोष्ठाधरा धरा । मुक्तापङ्क्तिजिता चाख्यन्तपङ्क्तिर्मनोहरा ॥३०॥
 शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभामुष्टशुभाभरा । चाख्यन्तपङ्क्तिर्मनोहरा ॥३१॥
 खगेन्द्रचञ्चुविजितचाख्यासा मनोहरा । स्वर्णगण्डकविजिते गण्डयुग्मे च विभ्रती ॥
 दध्रती चाहर्कणे च रत्नाभरणभूषिते । चन्दनागुरकस्तूरीयुककुङ्कुमविन्दुभिः ॥ ३३ ॥
 सिन्दूरविन्दुसंयुक्तसुकपोला मनोहरा । सुसंस्कृतं केशपाशं मालतीमाल्यभूषितम् ॥ ३४ ॥
 सुगन्धकवरीभारं सुन्दरं दध्रती सती । श्लथपद्मप्रभामुष्टं पादशुभ्रञ्च विभ्रती ॥ ३५ ॥
 गमनं कुर्वती सा च हसत्प्रवृत्तगञ्जतम् । सद्रत्नसारनिर्माणो घनमालां मनोहराम् ॥३६॥
 हार हीरकनिर्माणं रत्नपूरकङ्कणम् । सद्रत्नसारनिर्माणं पाशकं सुमनोहरम् ॥ ३७ ॥
 अमृत्यरत्ननिर्माणं कणनमञ्जरीरञ्जितम् । नानाप्रकारविद्याद्यं सुन्दरं परिबिभ्रती ॥३८॥

सा च सम्भाष्य गोविन्दं रत्नसिंहासने धरे ।

उवाच सस्मिता भक्तुः पश्यन्ती मुखपङ्कजम् ॥ ३६ ॥

तस्याश्च लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपाङ्गनागणः । आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्समः ॥
 त्रिंशत्कोटिपरिमितशश्वत्सुखिरयौवनः । संप्याविद्विध्वसंप्यातो गौलीकेगोपिकागणः
 कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणोमुने । आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्समः ॥
 त्रिंशत्कोटिपरिमितः कर्मनीयो मनोहरः । संप्याविद्विध्वसंप्यातो बह्वनां गणश्रुतौ ॥
 कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यश्चाविर्बभूव ह । नानावर्णो गोगणश्च शश्वत्सुखिरयौवन-
 घलीवर्दाः सुरभ्यश्च घत्सा नानाविधाः शुभाः ।

अतीवललिताः श्यामा बह्वश्च कामधेनवः ॥ ४५ ॥

तेषामेकं घलीवर्दं कोटिसिंहसमं बले । शिवाय प्रददौ कृष्णो घाहनाय मनोहरम् ॥ ४६ ॥
 कृष्णाङ्घ्रिपदयोर्म्यो हंसपङ्क्तिर्मनोहरा । आविर्बभूव सहसा स्त्रीपुंससमन्विता ॥
 तेषामेकं राजहंसं महाबलपरानमम् । घाहनाय ददौ कृष्णो ब्रह्मणे च तपस्विने ॥४८॥
 घामकर्णस्य विवरात् कृष्णस्य परमात्मनः । गणः श्वेततुरङ्गात्तान्माविर्भूतो मनोहरः ॥
 तेषामेकञ्चरुनेताद्यं धर्माय घाहनाय च । ददौ गोपाङ्गनेशश्च संग्रीत्या सुरसंसदि ॥

दक्षकर्णस्य विवरात् पुंसश्च सुरसंसदि । आविर्भूता सिंहपंक्तिर्महावलपराक्रमा ॥५१॥
 तेषामेकं ददौ कृष्णः प्रकृत्यै परमादरम् । अमृत्यवरमाल्यञ्च धरं यदमिवाञ्छितम् ॥
 कृष्णो योगेन योगीन्द्रश्चकार रथपञ्चकम् । शुद्धरत्नेन्द्रनिर्माणं मनोयायि मनोहरम् ॥
 लक्षयोजनमृदुर्ध्वं च प्रस्थे च शतयोजनम् । लक्षचक्रं वायुरहं लक्षक्रीडागृहान्वितम् ॥
 शृङ्गाराईभोगवस्तुतल्यासंख्यसमन्वितम् । रत्नप्रदीपलक्षणां वाजिमिश्च विराजितम् ॥
 नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्गन्धकलसोज्ज्वलम् । रत्नदर्पणभूपाल्यं शोभितं श्वेतचामरैः ॥
 घट्टिशुद्धांशुकैश्चैत्रैर्मालाजालैर्विभूषितम् । मणीन्द्रमुक्तामणिन्महीराहारविराजितम् ॥
 आरक्तवर्णरत्नेन्द्रसारनिर्माणकृत्रिमैः । पङ्कजावामसंस्पृष्टं सुन्दरैश्चसुशोभितम् ॥५८॥
 ददौ नारायणायैकं तेषां मध्ये द्विजोत्तम ! । एकं दत्त्वा राधिकायै ररक्ष शेषमात्मने ॥
 आविर्भूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्ततः परम् । पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह ॥६०॥

आविर्भूता यतो गुह्यात्तन ते गुह्यकाः स्मृताः ।

यः पुमान् स कुबेरश्च धनेशो गुह्यनेत्रवरः ॥ ६१ ॥

वभूव कन्यका चैका कुबेरवामपार्श्वतः । कुबेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणां मनोरमा ॥६२॥
 भूतप्रेतपिशाचाश्चकुम्भाण्डरहाराक्षसाः । वैताला विहृतास्तस्याविर्भूता गुह्यदेशतः ॥६३॥
 शङ्खचक्रगदापद्मघारिणो वनमालिन । पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः ॥ ६४ ॥
 किरीटिनः कुण्डलितो रत्नभूषणभूषिताः । आविर्भूताःपार्श्वद्वयाश्च कृष्णस्यमुखतो मुने ॥
 चतुर्भुजान् पार्श्वद्वयाश्च ददौ नारायणाय च । गुह्यकान्गुह्यदेशान्भूतादीन्शङ्खचक्रयच ॥
 द्विभुजाः श्यामवर्णाश्च जपमालारुरा धराः । ध्यायन्तश्चरणाम्भोजं कृष्णस्यसन्ततं मुदा
 दास्ये नियुक्ता शक्ताश्चैवावर्यमादाय यत्नतः ।

आविर्भूता वैष्णवाश्च सर्वे कृष्णपरायणाः ॥ ६८ ॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साधुनेत्राः सगद्गदाः । आविर्भूताः पादपद्मात् पादपद्मैकमानसाः ॥
 आविर्भूतुः कृष्णस्य दक्षनेत्राद्गयङ्कराः । त्रिशूलपट्टिशधराखिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥७०॥
 दिगम्बरामहाकायाज्वलदग्निशिखोपमाः । ते भैरवामहाभागाःशिवतुल्याश्च तेजसा ॥
 रत्नसंहारकालाव्यामसितमोर्धर्मापणाः । महाभैरवखट्वाङ्गावित्यष्टौ भैरवाः स्मृताः ।

आचिर्वभूव कृष्णस्य धामनेत्राद्भयङ्करः । त्रिशूलपट्टिशत्र्याग्रधर्माग्ररादाधरः ॥ ७३ ॥

दिगम्बरो महाकायखिनेत्रश्चन्द्रशेखरः । स ईशानो महाभागो दिक्ष्पाटानामधीश्वरः ।

आकृत्यश्चैव योगिन्यः क्षेत्रपालाः सहस्रशः ।

आचिर्वभूव कृष्णस्य नासिकाविषरोदरात् ॥ ७५ ॥

मुपखिन्नोदितस्याता, दिव्यमूर्तिधरा धराः । आचिर्वभूवः सहस्रा पुंसश्च पृष्टदेशतः

इति श्रीब्रह्मवेवर्ते महापुराणे सौ.ति-शौन.कृतंवादे सृष्टि.निरूपणे ब्रह्मकाण्डे

पञ्चमोऽध्यायः ।

पष्ठोऽध्यायः ।

सृष्टि प्रकरणम् ।

सौ.तिस्वाच ।

अथ कृष्णो महालक्ष्मीं सादञ्जसस्वतीम् । नाटयणाय प्रददौ रत्नेन्द्रमालया सह ॥१॥

साचिर्नी श्रेष्ठये प्रादान्मूर्तिं धर्माय सादरम् । रतिं कामाखरूपालयां कुचेराय मनोरमाम्

अन्याच्च या या भक्त्येभ्यो याञ्च येभ्यः समुद्वयाः ।

तस्मै तस्मै ददौ कृष्णस्तां तां रूपवतीं सतीम् ॥ ३ ॥

ततः शङ्खमाह्वय सर्वेशो योगिनां गुणम् । उवाच प्रियमित्येवं गृहाण सिद्धयाहिनीम् ॥

श्रीकृष्णस्य धवः श्रुत्वा प्रहस्य नीललोहित । उवाच भीतः प्रथत. प्राणेशं प्रभुमच्युतम्

श्रीमहेश्वर उवाच ।

अधुनाहं न गृह्णामि प्रवृत्तिं प्रावृत्तो यथा ।

स्यद्भवत्प्रैक्यवहितां दास्यमार्गाधिरोधिनीम् ॥ ६ ॥

तत्त्वमानसमाच्छ्रान्तां योगद्वारखपादिकाम् ।

मुलीच्छान्तं सत्पाञ्च सकामां फामचर्दनीम् ॥ ७ ॥

तपस्याच्छन्नरूपाञ्च महामोहकरण्डिकाम् । भवकारणगृहे घोरे दृडां निगडरूपिणीम् ॥
 शश्वद्विबुद्धिजननीसद्बुद्धिच्छेदकारिणीम् । शश्वद्विभागसाराञ्च विषयेच्छाविषद्विनीम्
 नेच्छामि गृहिणीनाथ ! वरदैहि मर्दाप्सितम् । यस्य यद्वाग्भित्तं तस्मै तद्ददाति सर्दाश्वर
 त्वद्भक्तिविषये दास्ये लालसा वर्द्धतेऽनिशम् । वृत्तिर्न जायते नामजपने पद्मसेवने ॥११॥
 त्वन्नाम पद्मवक्त्रेण गुणञ्च मद्गुणालयम् । स्वप्नेजागरणे शश्वद्गायन् गायन् भ्रनान्दहम्
 आरुण्यकोटिकोटिञ्च तद्रूपध्यानतपाम् । मोगेच्छाविषये नैव योगेतपसि मन्मन ॥१३॥
 स्वत्सेवने पूजने च चन्दने नामकीर्तने । सदोल्लसितमेपाञ्च विरतां विरतिं लभेत् ॥१४॥
 स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः ध्रुवण जपः । त्वञ्चाल्लक्ष्मणं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥
 समर्पणञ्चाननश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । वरं वरेश ! देहीतं नवधा भक्तिलक्ष्मणम् ॥१६॥
 सार्ष्टिताद्योन्मत्ताह्वयसार्नाप्यसर्गलं नतम् । वदन्तिरडविद्यामुक्तिमुक्तामुक्तिविदोविमो
 अग्निना लघिनाप्राप्तिः प्राक्काम्यंमहिमातया । ईशित्वञ्च वशित्वञ्च सर्वकामत्वसायिता
 सर्वज्ञदूरध्रुवणं परकायप्रवेशनम् । वाक्सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्रष्टुं संहर्तुमीशता ॥ १६ ॥
 अमरत्वञ्च सर्वाङ्ग्यं सिद्धयोऽष्टादशस्मृताः । योगास्तपांसि सर्वाग्निदानि च इतानि च
 यदाः कीर्त्तिर्वचः सयं धर्मान्यनरनानि च । भ्रनणं सर्वतीर्थेषु स्नानमन्यनुराचनम् ॥
 सुरार्चां दर्शनं सतद्दीपसतप्रदक्षिणम् । स्नानं सर्वरुमुद्रेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम् ॥ २२ ॥
 ब्रह्मन्वञ्चैव र्द्वयं विष्णुञ्चैव परंपदम् । अतोऽनिर्वदनीयानि वाञ्छनीयानि सन्तिवा
 सर्वाप्येतानि सर्वेश ! कथितानिच यानिच । त्वमत्किं कलांशस्य कलांनार्हन्ति पोडरीम्
 शर्वस्य घबनं ध्रुत्वा कृष्णस्वं योगिना गुरम् । प्रहस्योवाच घबनं सत्यं सर्वं मुत्स्यद्भम्

श्रीभगवानुवाच ।

मन्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविठांवर । कल्पकोटिशतं यावत् पूर्णं शश्वदहर्निशम् ॥
 परस्तपदिनां त्वञ्च सिद्धानां योिनांतया । ज्ञानिना वैष्णव नाञ्च सुरपाञ्च सुरेश्वर
 अमरत्वं लभ नव ! मय मृच्युञ्जयो महान् । सर्वसिद्धिञ्च वेदांश्च सर्वज्ञत्वञ्च मद्रपत् ॥
 असंख्यद्वयानां पातं लीलया वत्स ! द्रक्ष्यसि । अत्र प्रभृते ज्ञानेन तेजसा धरता शिव

पराक्रमेण यशसा महसा मत्समो भव । प्राणानामधिकस्त्वञ्च न भक्तस्त्वत्परो मम ॥
 त्वपरो नास्तिमे प्रेयास्त्व मदीपात्मन पर । येत्वानिन्दन्ति पापिष्ठाज्ञानहीना विचेतना
 पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरो । कल्पकोटिशतान्ते च ग्रहीष्यसि शिवा शिव
 ममाव्यर्थञ्च वचन पालन कर्तुमर्हसि । त्वन्मुखानिर्गते वाक्य करोमि नाधुनेति च ॥
 महास्यञ्च स्ववास्यञ्च पालन तन् करिष्यसि । गृहीत्वाप्रवृत्तिं शम्भोदिव्य वर्षसहस्रकम्
 सुख सुमहत् भृङ्गार करिष्यसि न सराय । न केवल तपस्वी त्वमीश्वरो मत्समोमहान्
 कालेगृही तपस्या च योगीस्त्वेष्व्यामयो हिय । दु खञ्च दारसयोगे यत्त्वया कथितशिव
 बुद्ध्या श्र्दाति दु खञ्च स्वामिने न पतिप्रता । कुलेमहति या जाता कुलजाकुलपालिका ॥
 करोति पालन श्रेष्ठान् सत्पुत्रस्य सम पतिम् । पतिर्गन्धुर्गतिर्भर्ता दैषत कुलयोगित ॥
 पतिनोऽपतिनो चापि वृषणोऽचेष्टवरोऽयथा । अस्तन्कुलप्रसूताया पिनोर्दु शीलमिश्रिता
 धरता परभोग्याश्च पतिं निन्दन्ति सन्ततम् । आबधोरतिरिक्तञ्च या पश्यति पतिं सर्ता
 गोत्रेणैव स्वामिनाम्बुड कोटिख्य प्रमोदते । भविता साशिवारीवा प्रवृत्तवैष्णवीशिव
 मदान्याचता साञ्चा ग्रहाप्यसि भवाचन्य । प्रवृत्त्या योनिसयुक्त त्वाङ्गिर्गतीर्भृतरतम्
 तीर्थ महस्र सपूज्य भक्त्या पञ्चोपचारत । सदक्षिण सयतो च पवित्रश्च जितेन्द्रिय ॥
 कोटिश्च पञ्च गोलोकै मोक्षनेत्र नयासह । लक्ष्मीर्थे पूजयेद्भुयो विधिद्यम् साधुदक्षिणम्
 नच्युनिस्तस्यगोत्रेकात्मभवेदावयो सम । मृदुस्त्वगोशङ्कपिण्डेतीर्थेवालुकयाऽपिव
 वृत्वाङ्गिर्गुलप्रवृत्तयसेत्परपातुनवि । प्रावान्भूमिमानविहान्पुत्रवान्धनचास्तथ
 मानवान् मुक्तिवान् साधु शिवान्निर्गन्तवान् । शिवान्निर्गन्तवान् च नमतीर्थ तीर्थमेवतन
 भवेत्तत्र मृत पापी शिवलोक स गच्छति । महादेव महादेव महादेवेति वाग्नि ॥
 पञ्चाशामि महाप्रस्तो नामश्रवणलोभन । शिवेति शब्दमुच्चार्य्य प्राणास्त्यजति यो नर
 कोटिनन्माज्ञितात्प्राप्तुनोमुक्तिप्रदानिस । शिवकल्याणवचनकरघाणमुक्तिवाचयम्
 यतस्त्वम् प्रभवेत्तेन स शिव परिवर्तित । विच्छेदे धनगन्धना गिग्रा शोकसागरे ॥
 शिवेति शब्दमुच्चार्य्य लभेत् सर्वशिव नर । पापघ्नो वर्त्तते शिश्च यद्य मुक्तप्रदे तथा ॥
 पापघ्नो मोक्षदो नृणां शिवस्तेन प्रसीतित । शिवेति च शिवनाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते

कोटिजन्मार्जितं पापंतस्य नश्यति निश्चितम् । इत्युक्त्वाशूलिने कृष्णोदत्त्वा कल्पनक्षमनुम्
तत्त्वज्ञानं सृष्ट्युजयमुवाच सिद्धवाहिनीम् ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अधुनातिष्ठवन्से ! त्वंगोलोक्रेमम सन्निधौ । कालेभजिष्यसि शिवंशिवदञ्च शिवायनम्
तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूय वरानने ! । संहृत्य दैत्यान् सर्वांश्च भविता सर्वपूजिता ॥
ततः कल्पविशेषे च सत्यं सत्ययुगे सति । भविता दक्षकन्या त्वं सुशाला शम्भुगेहिनी
ततः शरीरं संत्यज्य यजे भर्तुंश्च निन्दया । मेनायां शैलभार्यायां भवितापार्यर्तति च ॥
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च विहरिष्यसि शम्भुना । पूर्णं ततः सर्वकालमभेदत्वं लभिष्यसि ॥
काले सर्वेषु विश्वेषु महापूजा च पूजिते । भविता प्रतिवर्षं च शागदीया सुरेश्वरि ! ॥
ग्रामेषु नगरेष्वेव पूजिता ग्रामदेवता । भवती भवितेत्येवं नामभेदेन चारुणा ॥ ६१ ॥
मदाजया शिवदत्तैस्तन्त्रैर्नानाविधैरपि । पूजाविधिं विधास्यामि कवचं स्तोत्रसंयुतम् ॥
भविष्यन्ति महान्तश्च तत्रैव परिचारकाः । धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धाश्च फलभागिनः ॥
येत्यां मातर्भजिष्यन्ति पुण्यक्षेत्रे च भारते । तेषां यशश्च कीर्त्तिश्च धर्मश्वर्य्यञ्च वर्द्धते ॥
इत्युक्त्वा प्रहृतिं तस्यै मन्त्रमेकादशाक्षरम् । उक्त्वा सकामवीजञ्च मन्त्रराजमनुत्तमम् ॥
चकारविधिना ध्यानंभक्तं भक्तानुकम्पया । श्रीमाया कामवीजाढ्यं ददौमन्त्रं दशाक्षरम्
सृष्ट्यैपयोगिकीशक्तिसर्वसिद्धिञ्चकामदाम् । तद्विशिष्टोत्कृष्टतत्त्वज्ञानंतन्म्यैर्ददौविभुः
त्रयोदशाक्षरं मन्त्रं उक्त्वा तस्मै जगत्पतिः । कवचं स्तोत्रसहितं शङ्कराय तथा द्विज !
उक्त्वा धर्माय तं मन्त्रं सिद्धिज्ञानं तदेव च । कामाय वङ्गयं चैव कुबेराय च धायये ॥
एवं कुबेरादिभ्यस्तु उक्त्वा मन्त्रादिकं परम् । विधिञ्चोवाच सृष्ट्यर्थं विधातुर्विधिरैवसः

श्रीभगवानुवाच ।

मदीयञ्च तपः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रकम् । सृष्टिं कुरु महाभाग विधे नानाविधां पराम्
इत्युक्त्वा ब्रह्मणे कृष्णो ददौमालां मनोरमाम् । जगाम सार्द्धं गोपीभिर्गोपिर्नृन्दावनंवनम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे स्तौति-शौनक-संवादे ब्रह्मण्डे सृष्टिनिरूपणं

नाम पद्योऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

सृष्टिप्रकरणम् ।

सौतिख्याच ।

तदाब्रह्मा तपः कृत्वा सिद्धिं प्राप्य यथेप्सिताम् । ससृजे पृथिवीमादीं मधुकैटभमेदसा
ससृजे पर्यनानष्टौ प्रथ नान् सुमनोहरान् । क्षुद्रानसंख्यानं किञ्चमः प्रथानाप्यां निशामय
सुमेष्ण्वेव कैलामं मलयञ्च हिमालयम् । उदयञ्च तथाऽस्तञ्च मुधेलं गन्धमादनम् ॥
समुद्रान् ससृजे सप्त नदान् कतिविधा नदीः । वृशांश्च ग्रामनगरं समुद्राभ्यां निशामय
खणेषुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान् । लक्ष्योजनमानेन द्विगुणांश्च परात्परान् ॥ ५ ॥
सतदीपांश्च तद्भूमिमण्डले कमलावृजे । उपदीपांस्तथा सप्त सीमशैलांश्च स्म च ॥
निगोच विप्र द्वीपाप्यांपुरा या विविधा कृता । जम्बुशाकटुशशाक्षरौञ्चन्यग्रोधपीष्करान्
मेतोरष्टसु षट्क्षेपु ससृजेऽष्टौ पुरीः प्रभुः । अष्टानां ग्रीकपालानां विहाय मनीहराः ॥
भूलोकञ्च भुवर्लोकं म्यर्लोकं सुमनोहरम् । जल्लोकं तपोलोकं सत्यलोकञ्च शौनक ॥
षट्क्षेपुर्दधि ब्रह्मलोकं जरादिषत्विजितम् । तद्दूर्ध्वं ध्रुवलोकञ्च सर्वतः सुमनोहरम् ॥
तदधः सतपातालान्निर्ममे जगदीश्वरः । स्वर्गातिरिक्तभोगाढरानधोऽधः प्र मतो मुने ॥
अतलं पितृलक्ष्ण्यं सुतलञ्च तलान्तरम् । महातलञ्च पातालं रसातलमधस्ततः ॥ १३ ॥
सतदीपैः सप्तम्यर्गैः सतपातालसंज्ञकैः । णभिलोकैश्च ब्रह्माण्डं ब्रह्माधिकारमेव च ॥
प्रवक्ष्यासंम्यत्रब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव च । महाविष्णोश्च लोभाञ्चदिवरेषु च शौनक ! ॥
प्रतिधिर्येषु दिक्पाला ब्रह्मपिण्डमहेश्वराः । सुरा नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य प्रायया
ब्रह्माण्डगणनां कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः । न शङ्करो न घर्मश्च न च विष्णुश्चक्रे सुराः
भंभ्यन्तुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथापि सः । विश्वाकाशदिशाञ्चैषसर्वतोयद्यपिश्वरः

कृत्रिमाणि च विभ्वानि विभ्वस्थानि च यानि च ।

अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्रवन्नश्वराणि च ॥ १६ ॥

वैकुण्ठः शिवलोकश्च गोलोकश्च तयोः पटः । नित्यो विभवहिर्मूतश्चात्माकामादिशोयया
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौत्थिशांनरु-संवादे ब्रह्मवन्द्ये सृष्टिनिष्पन्न
नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।

सृष्टि प्रकरणम् ।

सौत्थिरुवाच ।

ब्रह्मा विद्मं वि निर्माय सावित्र्यां वस्योपिति ।

चकार धीर्ध्याधानञ्च कानुन्ना कामुको यथा ॥ १ ॥

सा दिव्यं शतवर्षञ्च धृत्वा गमं सुदुःसहम् । सुप्रसूता च सुपुत्रे चतुर्वेदान् मनोहराम् ॥

त्रिप्रियन् शास्त्रसङ्घाश्च तर्कत्रयाकरणादिकान् ।

पटत्रिरात्सख्यका दिव्या रागिणीः सुमनोहराः ॥ ३ ॥

षट्पगान् सुन्दरंस्वैव नान तालसमन्वितान् । सत्यत्रेताद्वापराञ्च कलिञ्च कलहप्रियम्

वरं मासन्तुन्वेव तिर्यं दग्डक्षगादिकम् । दिन रात्रिञ्च धाराञ्च सन्ध्यामुपसमेय च

पुष्टिञ्च देवसेनाञ्च मेराञ्च विजयां जयान् । पद्कृत्तिकाञ्च योगाञ्च करणाञ्च तपोधन!

देवसेनां महाप्रियां कार्तिकेयप्रिया सतीम् । मातृकामु प्रयाना सा यान्त्रानामिष्टदेवता ॥

ब्रह्मं पाद्यञ्च वाराहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम् । नित्यं नैमित्तिकञ्चैव द्विपरुर्दञ्च प्राहृतम्

चतुर्विधञ्च प्रहरं कालञ्च मृच्युक्त्वन्यकाम् । सर्वान् व्याप्रिगणास्त्वैवसा प्रसूय स्तनं ददौ

मथ घानु पृष्टेद्यादयमैः समजायत । अन्नर्शनं स्तद्धामराश्वान्दुवमूय तस्य कामिनी ॥

नामिदेशाद्विस्वकर्मा यमूय शिल्पिनां गुरुः । महान्तो वसपोऽष्टौ च महाम्बुत्पराध्याः

अथ धातुश्च मनस आविमूता कुमारका । चत्वार पञ्चवर्षीया ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
 सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातन । सनत्कुमारो भगवाश्चतुर्थो हानिनां घरः ॥
 आविर्भूय मुपत कुमार कनकप्रभ । दिव्यरूपधर श्रीमान् सखीक सुन्दरो युवा
 क्षत्रियाणा वीजरूपो नाम्ना स्वायम्भुवो मनु ।

या खी सा शतरूपा च रूपाढ्या कमलाकला ॥ १५ ॥

सखीकश्च मनुस्तर्यो धात्राज्ञापतिपालक । स्वय विधाता पुत्राश्च तानुवाच प्रहर्षितान्
 सृष्टिं कर्तु महामागो महाभागवतान् द्विज ॥ जग्मुस्ते च नदीत्युक्त्यातनु वृष्णपरायणा
 पुकोप हेतुना तेन विधाता जगता पति । कोपासकस्य च विधेर्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा
 आविमूता ग्लादाच्च रद्रा एकादश प्रभां । कागश्चिरद्र सहस्रां तेषामेक प्रकीर्त्तित
 सर्वेषामेव विश्वाना स एवतामस स्मृत । राजसश्च रज्य ब्रह्माशिवो विष्णुश्चसात्विकौ
 गोलोकनाथ वृष्णश्च निर्गुण प्रवृत्ते पर । परमाज्ञानिनो मूर्खा वदन्तितामस शिवम्
 शुद्धसन्त्वस्वरूपश्च निर्मल वैष्णवाग्रणीम् । ऋणु नामानि रद्राणा वेदोक्तानि च यानि च
 महान् महात्मा मतिमान् भीषणश्च भयङ्कर । ऋणुपञ्चश्रौणुपञ्चेश पिङ्गलाक्षोरुचि शुचि
 पुलस्त्यो दक्षकर्णाच पुलहो वामकर्णत । दक्षनेत्रात्तथाऽत्रिश्च वामनेत्रात् क्रतुस्वयम्
 अरणिनासिकागन्धार्द्रिराश्च मुखार्द्रुचि । भृगुश्च वामपार्श्वार्च दक्षो दक्षिणपार्श्वत
 ङ्गावाया कर्दमो जातो नामे पञ्चशिवस्तथा । वक्षसश्चैव घोडुश्च यष्टदेशाच्च नारद
 मरीचि स्कन्धदेशाञ्चैवापान्तरत्तमा गलात् । वशिष्ठो रसनदेशात् प्रचेता अधरोष्ठत
 हसश्च वामकक्षेश्च दक्षदुर्क्षेयति स्वयम् । सृष्टिं विधातु स विधिश्चकाराज्ञा सुतान्प्रति
 पितुर्वाक्य समाकर्ण्य तमुवाच स नारद ॥ २८ ॥

नारद उवाच ।

पूर्वमायमप्येष्टान् सनकादीन् पितामह । शारयित्वा दासयुक्तानस्मान् घट्ट जगत्पते ?
 पित्रा ते तपसे युक्ता सत्तापय घय कथम् । अहो हन्त ! प्रभोर्दुर्द्धिर्धिपतीताय कल्पते
 कस्मै पुत्राय पीयूषान् पर दत्त तपोऽधुना । कस्मै ददासि विषय विषमश्च विपाधिकम्

अर्तावनित्ने घोरे च भवार्थो यः पतेत् पितः ।

निष्कृतिस्तस्य नास्तीति कोटिकल्पे गतेऽपि च ॥ ३२ ॥

निन्तारवीजं सर्वेषां बीजञ्च पुर्योत्तमम् । सर्वदं भक्तिदं दास्यप्रदं सत्यं कृपामयम् ॥

भक्तैकशरणं भक्तवत्सलं स्वच्छमेव च । भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ३३ ॥

भक्ताराध्यं भक्तासाध्यं विहाय परमेश्वरम् । मनो दधाति को मूढो विषये नाशकारणे

विहाय कृणुतेवाञ्छं पीयूषादधिकं प्रियाम् । कोमूढो विषमश्नाति विषमं विषयाभिधम्

स्वप्नवत्श्वरं तुच्छमनस्यं नाशकारणम् । यथा दीपशिखाञ्च क्रीडानां मुननोहरम् ॥

यथा वडिशमांसञ्च मत्स्यापातमुन्मत्तम् । तथा विषयिणां तात विषयं मृत्युकारणम्

इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विराम विधेः पुरः । तस्यौ तातं नमस्तु ज्वलद्गतिशिखोपमः ॥

ब्रह्मा कोपररीतश्च शशाप तनयं द्विज । उवाच कल्पिताङ्गश्च रक्षास्यः स्फुरिताधरः ॥

ब्रह्मोवाच ।

भविता ज्ञानलोपस्तै मच्छापेन च नारद । क्रीडाभृगुस्त्वं साध्यश्च योगिल्लुब्धश्च लम्पटः

स्थिरयोवनयुक्तानां स्पाटवानां मनोहरः । पञ्चाशन्कामिर्निनाञ्च भर्ता च प्राणबहुमः

शृङ्गाशाल्वनेता च महाशृङ्गाप्लोलुपः । नानामकारशृङ्गारनिपुणानां गुरोर्गुरः ॥

गन्धर्वाणाञ्च प्रवरः सुस्वरश्च सुगायनः । वीणावादनसन्दर्भनिष्णातः स्थिरयोवनः ॥

प्राज्ञो मधुरवाक् शान्तः सुरालिः सुन्दरः सुर्याः । भविष्यसि न सन्देहो नामनञ्चोपवर्हणः

तार्मिर्दिव्यं लक्षयुगं विहृत्य निर्जने वने । पुनर्मदीयशापेन दासीपुत्रश्च तत्पट ॥ ४६ ॥

वत्स वैष्णवसंसर्गान् वैष्णवोच्छिष्टभोजनान् । पुन कृष्णप्रसादेन भविष्यसि ममान्नजः

ज्ञानं दास्यामि ते दिव्यं पुनरेव पुरातनम् । अधुना भव नष्टस्त्वं मत्सुतो निपत ध्रुवम्

ब्रह्म त्युक्त्वा मुनं विप्र विरराम जगन्पतिः । ररोद् नारदस्तातमुवाच संपुटाञ्जलिः ॥

नारद उवाच ।

क्रोधं संहर संहर्त्तास्तानां जगद्गुरो । स्रष्टुस्तपस्वीशस्याहो क्रोधोऽयन्यताकरः ॥

शनेत् परित्यजेत् विद्वान् पुत्रमुत्पयगाग्निनम् । तपस्विनं मुनं शत्रुं कथमर्हसि पण्डित

उनिर्मवतु मे ब्रह्मन् यामु यामु च योनिषु । न जहातु हरेर्भक्तिमिवं देहि मे धरम् ॥

पुत्रश्चेज्जगतां घातुर्नास्ति भक्तिर्हरैः पदे । शूकरादतिरिक्तश्च सोऽथमो भारते भुवि ॥
 जातिस्मरौ हरेर्भक्तियुक्तः शूकरयोनिषु । जनिलंभेत् स प्रवरो गोलोकं याति कर्मणा
 गोविन्दचरणाम्भोजभक्तिमार्थीकमीप्सितम् । पिथतां वैष्णवादीनां स्पर्शपूतावसुन्धरा
 तीर्थानिस्पर्शमिच्छन्ति वैष्णवानां पितामह । पापानां पापिदत्तानां क्षालनायारमनामपि
 मन्त्रोपदेशमात्रेण नरा मुक्ताश्च भारते । परैश्च कोटिपुरुषैः पूर्वं सादं हरेर्द्वो ॥

कोटिजगमार्जितात् पापान्मन्त्रग्रहणमाश्रतः । मुक्ताः शुभ्यन्ति यत्पूर्वं कर्म निमूलयन्ति च
 पुत्रान् दासंश्चशिष्यांश्चसेवकान्वान्धवांस्तथा, यो दर्शयतिसन्मार्गं सद्गतित्तलभेत्प्रथमम्
 यो दर्शयन्त्यसन्मार्गं शिष्यैर्विश्वासितोगुरुः । कुम्भीपाकेस्थितिस्त्वेत्येवचन्द्रदियाकरौ
 स किं गुरुः स किं तातः स किं स्वामी स किं सुतः ।

यः श्रीरुष्णपदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीदयतः ॥ ६१ ॥

शतो निरपरायेन त्वयाऽहं चतुरानन । मया शर्मं त्वमुचितो प्रन्तं प्रन्थपि पण्डिताः ॥
 क्वचस्तोऽपूजामिः सहितस्ते मनुर्मनोः ॥ लुतो भवतु मच्छायात् प्रतिविश्येपु, निश्चितम्
 अपूज्यो मम विश्वेषु यावत् कल्पप्रयं पितः । गतेषु त्रिषु कल्पेषु पूज्यपूज्यो भविष्यसि
 भयुना यज्ञभागस्ते व्रतादिष्यपि सुव्रत । पूजतं चास्तु मादिकं वन्द्यो मय सुरादिभिः ॥
 इत्युक्त्या नारदस्तत्र विग्राम पितुः पुतः । तस्यै समायां स विविहृदयेन विदूयता ॥
 उपग्रहंजगन्त्रयं नारदस्तेन हेतुना । दासीपुत्रश्च शापेन पितुरैव च शौनक ॥ ६७ ॥
 सतः पुनर्नारदश्च स वभूव महातृपि । ज्ञानं प्राप्य पितुः पश्चात् कथयिष्यामि चायुना
 इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मभारदशापोपलम्भनं
 नाम अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

ब्रह्मपुत्रकृतसृष्टिप्रकरणम् ।

सौतिव्याच ।

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रांस्तनादिदेश च सृष्टये । सृष्टिं प्रवक्तुम्ने सर्वे विप्रेन्द्र नारदं विना ॥
 मरीचिर्मनसो जातः कश्यपश्च प्रजापतिः । अग्नेर्जमलाचन्द्रः क्षीरोद्दे च वभूव ह ॥ २१ ॥

प्रवेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह । पुलस्त्यमानसः पुत्रो मैत्रावरुण एव च ॥३॥
मनोश्च शतरूपायां निम्नः कन्याः प्रजङ्गिरे । आकृतिर्देवहृतिश्च प्रसूतिस्ताः पतिव्रताः ॥
प्रियन्तोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरौ । उत्तानपादतनयो ध्रुवः परमधार्मिकः ॥ ५ ॥
आकृतिं स्वये प्रादात् दक्षाय च प्रसूतिकाम् । देवहृतिं कर्दमाय यत्पुत्रः कपिलः स्वयम्
प्रसूत्यां दक्षवीजेन पष्टिकन्याः प्रजङ्गिरे । अष्टौ धर्माय प्रददौ द्वादशैकादश स्मृताः ॥७॥
शिवायैकां सतीं प्रादात् कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षधन्द्राय दत्तवान्
नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्रनिशामय । शान्तिःपुष्टिर्धृतिस्तुष्टिःश्रमाथद्दामतिःस्मृतिः
शान्तेः पुत्रश्च सन्तोषः पुष्टेः पुत्रो महानभूत् । धृनेर्वैर्यञ्च तुष्टेश्च हर्षदपौ सुतो स्मृतौ
क्षमापुत्रः सहिष्णुश्च श्रद्धापुत्रश्च धार्मिकः । मतेर्गानाभिघः पुत्रः स्मृतेर्जातिस्मरोमहान्
पूर्वपत्न्याञ्च मृत्याञ्च नरनारायणावृषी । यभूर्बुरेते धर्मिष्ठा धर्मपुत्राश्च शौनक ॥ १२ ॥
नामानि रदपत्नीनां सावधानं निबोध मे । कला कलावती काष्ठा कालिका कलहप्रिया
कन्दली मीपणा राज्ञा प्रमोचा भूषणा शुकी । एतासां यहवः पुत्रा यभूयुः शिवपार्श्वदाः
सा सती स्वामिनिन्दायां तनुं तन्याञ्च यजत । पुनर्मृत्या शैलपुत्री लैभे च शङ्करं पतिम्
कश्यपस्य प्रियाणाश्च नामादिष्टुणु धार्मिक । अदितिर्देवमाता या दैत्यमातादितिस्तथा
सर्पमाता तथा कद्रुर्विनता पक्षिन्स्तथा । सुरभिश्च गवां माता महिराणाञ्च निश्चितम्
सायमेयादिजन्तूनां सरमा सूक्ष्मत्पटाम् । दनुः प्रमर्दानयानामन्याश्चेत्येधमादिकाः ॥
इन्द्रश्च द्वादशादित्या उपेन्द्रायाः सुरा मुने ! । कथिताश्चादिनेः पुत्रा महाबलपराक्रमाः
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च ब्रह्मन् शत्रुघ्नानजायत । आदित्यस्य सधर्मायां कन्यायां विश्वकर्मणः
शनीधरयोर्पुत्रौ कालिन्दीकन्यका तथा । उपेन्द्रवीर्यात् पृथ्व्यान्तु मद्गुलःसमजायत
शौनक उवाच ।

कथं सीते स चोपेन्द्रान्मद्गुलः समजायत । वसुन्धरायां बलवान् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि
सीतिरवाच ।

उपेन्द्ररूपमालोक्य कामर्षिं च वसुन्धरा । विधाय मुन्दरीवेशमक्षता प्रौढयाचना २३॥
मलये निर्जने रम्ये चास्वन्दनपक्षये । चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २४ ॥

तं सुरालंशयानञ्जशान्तंसस्मिन्मीप्सितम् । सस्मिता तस्य तस्येव सहसासमुपस्थिता
 सुरभ्यां मालतीमाला दृष्टौ तस्मै वरानना । मुगन्धि चन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्
 उपेन्द्रस्तन्ननो हान्वा कामि मन्मथपीडितम् । नानाप्रकारशृङ्गारं चकार च तदा सह
 तदङ्गसङ्गमंसक्ता मूर्च्छां प्राप सती तदा । मृतेव निद्रितेवासौ रीजाधानं कृते ह्यौ ॥
 तां विलशाक्षमुश्रोणासुखसम्मोगमूर्च्छिताम् । बृहन्मुकनितभ्याञ्चसस्मितांविपुलस्तनीम्
 क्षण वक्षसि दृत्वा ता तदोष्ठञ्च चुचुम्ब ह । विहाय तत्र रहसि जगाम पुरयोत्तमः ॥३०॥
 उर्वशी पथि गच्छन्ती बोधयामास तां मुने ! साचपप्रच्छवृत्तान्तंकथयामासिभूषिताम्
 धीर्यं सवरण कर्तुं सा वाशक्ता च दुर्यया । प्रवालस्याकरेप्रस्तावीर्ष्यासंनकारसा
 तेन प्रवालवर्णाश्च कुमारः सनपद्यत । तेजसा सप्यंसदृशो नारायणसुतो महान् ॥३१॥
 मङ्गलस्य प्रिया मेधा तस्य यण्टेष्टवरो महान् । व्रणदातेति तेजस्वी विष्णुतुभ्योवभूवह
 दितेहिरण्यकशिपुहिरण्याक्षौ महारक्षो । कन्या च सिंहिका विप्र सैहिकेयश्च तन्मुतः
 निर्जाति सिंहिका सा च तेन राघुश्च नैर्जातः । शूकरेणहिरण्याक्षोऽप्यनपत्योमृतोयुवा
 हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रहादो वैष्णवाग्रजाः । विरोचनश्च तन्पुत्रस्तन्पुत्रश्चवलि म्वयम् ॥
 वनेः पुत्रो महायोगी जाना शङ्करकिङ्कुरः । द्वितेवंशश्च कथितः कद्रुवशं निरोध से ॥
 अनन्त वासुकिश्चैव कार्त्तव्यश्च धनञ्जयम् । कर्कोटकं तक्षकश्च पद्ममेरायतं तथा ॥३२॥
 महापद्मश्च शङ्खश्च शङ्खं संवरणन्तथा । भृतराष्ट्रश्च दुर्दयं दुर्जयं दुर्मुरं यत्नम् ॥ ४० ॥
 गोशं भोकामुखन्वीर्य विरुपाक्षश्च शौनक । एतेषां प्रवराश्चैव यावत्यः सर्षजातयः ॥
 पत्न्यसा मनसा देवी कजलांशसमुद्भवा । तस्मिन्निनां प्रवरा महातेजस्विनी शुभा ॥
 यत्पतिश्च जरत्कार्जुनारायणकलोद्भवः । आर्म्नाकस्तनयो यस्या विष्णुतुभ्यश्च तेजसा
 एतेषां नामप्रायेण नास्ति नागमयं नृणाम् । कद्रुवंशोनिगदितो विननायाश्च ध्रुवताम् ॥
 धेननेपाठ्णो पुत्रो विष्णुतुभ्यपराक्रमो । तद्रुवमृषुः क्रमेणैव यावत्यः पश्चिजातयः ॥३५॥
 रावश्च महिशाश्चैव सुरभिप्ररा इमे । सर्वे वै सारमेयाश्च कभूयः सरमासुतयः ॥ ४६ ॥
 दानवाश्च दनोर्वंशा अन्यासान्वयजातयः । उक्तः कश्यपवंशश्च चन्द्राण्यानं निरोध मे
 नामानि चन्द्रपत्नीनां सावधानं निशामय । अन्यपूर्वश्च चरितं पुराणेषु पुरातनम् ॥४८॥

अश्विनी भरणी चैव वृत्तिका रोहिणीतथा । मृगशीर्षा तथाऽर्च्यं पूज्यासा-र्षीपुनर्वसु
 पुष्याश्लेषा मघा पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनी । हस्ताचित्रातथास्वार्ती विशाखाचानुराधिका
 ज्येष्ठा मूला तथा पूर्वाषाढा चैवोत्तरा स्मृता । श्रवणाच घनिष्ठाच तथाऽनभिया शुभा
 पूर्वोत्तरभाद्रपदी रेवत्यन्ता विधुप्रिया । तासां मध्ये च शुभगा रोहिणी रसिका वरा
 सन्तत रत्नभागेन चकार शशिन वशम् । रोहिण्युपातश्चन्द्रो न यान्यन्याञ्च कामिनीम्
 सर्वां भगिन्य पितर कथयामासुरादृता । सप्तर्षिस्तसन्ताप प्राणनाशकर परम् ॥५५॥
 दक्ष प्रदुपितश्चन्द्र शशाप मन्त्रपूर्वकम् । द्रुत इशुरक्षापेन यस्मग्रस्तो बभूव स ॥५६॥
 दिने दिने यक्ष्मणा स क्षायमाणश्च दुःखित । वपुष्वर्द्धं क्षायमाणे शङ्कर शरणं ययौ
 दृष्ट्वा चन्द्र शङ्करश्च हेतित शरणगतम् । वरणासागरस्तस्मै ऋष्या चाभयं ददौ ॥५७॥
 निमुक्त यक्ष्मणा कृत्वा स्वकपोले स्थलददौ । अमरोनिर्मगोभू वा सतस्योऽशिवशेखरे
 तक्षिन शेखरे कृत्वा बभूव चन्द्रशेखर । नास्ति वनेषु लोकेषु शिवान् शरणपवण ॥
 दक्षकन्या पतिं मुक्तदृष्ट्वा च स्तुतु पुन । आत्मानु शरणं तात दत्त तेजस्विना वरम् ॥
 उच्चैश्च स्तुतुर्गत्या निहत्याऽपु पुन पुन । तमपुः कातर दीना दाननाथ विधे सुतम् ॥

दक्षकन्या उचु ।

स्वामिसौभाग्यलाभाय त्वमुक्तोऽस्मान्भिरैव च ।

सौभाग्यमस्तु नस्तान् । गत स्वामी गुणान्वित ॥ ६२ ॥

स्थिते चभुपिहेतात । दृष्ट्वाऽन्तमय जगत् । विगतमधुना स्त्रीणा पतिर्गैव हिलोचनम्
 पतिरेव गतिं स्त्रीणा पति प्राणाश्च सम्यद । धनार्थकाममोक्षाणा हेतु सेतुर्मार्गणे
 पतिर्नारायण स्त्रीणा व्रतधर्म सनातन । सत्कर्म वृथातासा स्वामिना विमुक्ताश्चया
 स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वत्रेषु दक्षिणा । सर्वदानानि पुण्यानि व्रतानि निग्रमानि च ॥
 देवाचनं चानशन सर्वाणिच तथा सिच । स्वामिन पादसेवाया कल्पानार्हन्ति दोडर्शाम्
 सर्वेषा वान्प्रधानाञ्च प्रियपुत्रश्च योषिताम् । सप्य स्वामिनोऽशश्च शतपुत्रान् परपति
 यसद्भ्रशप्रस्ता या सा द्वेष्टि स्वामिन सदा । यस्या मतश्चल दुष्टं सन्तत परपूरुषे ॥
 पतिरोगिण दुष्ट निर्धन गुणहीनकम् । युवानचैव वृद्ध वा भजेत् न त्यजेत् सती ॥

सगुणं निर्गुणं वापि या द्वेष्टि संन्यजेत् पतिम् । पच्यते कालसूत्रेसा यापद्यन्द्रदिवाकरी
 कीर्तिशकुनजुग्नेष भक्षिता सा दिवानिशम् । भुङ्क्ते मृतवसामांसं पिदेन्मूत्रञ्च तृप्स्यया
 गृधः को देवद्वेषाणि शतजन्मानि शूकरः । श्यापद्ः शतजन्मानिसा भवेद्बन्धुहा ततः ॥
 ततो मानवजन्मानेऽभेद्येत् पूर्वकर्मेणः । विषया धनहीना च रोगयुक्ता भवेत् ध्रुवम् ॥
 देहि नः कालदानञ्च कामपूरं विधेः सुत । विधात्रा सहस्रास्त्यञ्च पुनःरूपं क्षमो जगत्
 कन्याता धनं धृ वा दक्षः शङ्करस्तत्रिधिम् । जगाम शन्मुस्तं दृष्ट्वा समुत्थाय न्नान च
 दक्षस्तस्याक्षिप कृत्वा समुवाच कृपानिधिम् । तस्याज कोपं दुर्द्धं दृष्ट्वा च प्रपतं शिवम्
 दक्ष उवाच ।

देहि जामातरं शम्भो मदीयं प्रणवहभम् । मत्सुतनाञ्च प्राणानां परमेध प्रियं पतिम् ॥
 न चेद्दासि जामतर्मम जामातरं विधुन् । दास्यामि दारणं शापं तुभ्यं त्वं धेनमुच्यसे
 दक्षस्य पवनं ध्रुत्या तमुवाच कृपानिधिः । सुधाधिकञ्च घचनं दहनशरणापञ्चरः ॥८०॥
 शिव उवाच ।

फरोपि भस्त्रलाघेन्नां ददासि शापमेव च । नाई दातुं समर्थञ्च चन्द्रञ्च शरणागतम् ॥
 शिवस्य पत्रा ध्रु वा दक्षस्तं शन्मुयतः । शिवःसम्भार गोविन्दं विपन्नोक्षणकारकम्
 पतन्निप्रन्तरं कृप्यो वृद्धबाल्यरूपयुक् । समाययो तयोर्मूर्तें तीं तञ्च नमनु धमान् ॥
 दत्त्वा शुभा शिवं तीं स प्रयज्योक्तिः सनात्मनः । उवाच शङ्करं पूर्वं परिपूर्णो द्विज ॥
 धीमगवानुधाव ।

न चात्मनः प्रियकश्चिन् शर्व ! सर्वेषु यन्धुतु । आत्मानं रक्ष दक्षायदे हे कन्दसुरेश्वर !
 सपस्विनां पण्डितान्तरचमेर वैष्णवाप्रणीः । सनः सर्वेषु जीवेषु हिंसातोष विचर्जितः ॥
 दक्षः शोधी च दुर्द्धर्पस्तेजस्वी प्रह्वणः सुतः । इष्टो विमेति दुर्द्धर्पं न दुर्द्धर्पं कश्चन
 मरायण्यवः ध्रु वा दक्षस्य शङ्करः स्वयम् । उवाच नीतिसारञ्च नीतिर्यज्ञं पण्डित्यम् ॥
 शङ्कर उवाच ।

तपो दास्यामि तेऽद्य सर्वसिद्धिञ्च सन्पदम् । प्राणाञ्च न सनयोऽहं प्रदानं शक्त्यागतम्
 यो ददाति मयेनैव प्रपन्नं शरणागतम् । तच्च धर्मः परित्यज्य याति शक्त्या गुदाकणम्

सर्वं त्यक्तुं समर्थोऽहं न स्वधर्मं जगत्प्रभो ! । यःस्वधर्मविहीनश्च सच सर्वबहिष्कृतः ॥
 यश्च धर्मं सदा रक्षेत् धर्मस्तं परिरक्षति । धर्मं वेदेश्वर त्वञ्च किं मां ब्रूहि स्वमायया ॥
 त्वं सर्वपता स्रष्टाव हन्ताव परिणामतः । त्वयि भक्तिर्दृढा यस्यतस्य कस्माद्भयंभवेत्
 शङ्कस्यैव च शुभा भावान् सर्यमाययिन् । चन्द्रं चन्द्राद्विनिष्कृष्य दक्षायप्रददौहरिः
 प्रतस्थावर्द्धचन्द्रश्च निर्व्याधिः शिरशेखरे । निर्जग्राह परं चन्द्रं विष्णुदत्तं प्रजापतिः ॥
 यस्मिन्प्रस्तञ्च तं दृष्ट्वा दक्षस्तुष्टु च माधवम् । पश्ये पूर्णं क्षणं पश्ये तं चकार हरिःस्वयम् ॥
 कृष्णस्त्रैभ्योवरं दत्त्वा जगाम स्वालयं द्विज । दक्षश्चन्द्रं गृहीत्वा च कन्याभ्यः प्रददौपुनः
 चन्द्रस्तापप्रिप्रिप्य विजहार दिवानिशम् । समं ददर्शताः सर्वास्तत्रभृत्येव कम्पितः
 इत्येवं कथितं सर्वं किञ्चिद् सृष्टिकर्म मुने ! । श्रुत्वा गुस्वक्त्रेण पुष्करे मुनिसंसदि ॥
 इति श्रीमद्भगवत्पुत्रे महापुराणे सौत्तिसौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

धनेशजन्मकथनम् ।

सौत्तिसंवाच ।

भृगोः पुत्रश्च ऋषयः शुकश्च ज्ञानिनां वर । क्रतोरपि क्रियाभार्या बालखिल्यानसूयत ॥
 त्रयः पुत्राश्चाङ्गिस्तो वमूत्रुर्मुनेस्तमाः । बृहस्पतिस्तप्यश्च सन्वत्स्यापि शौनक ॥ २ ॥
 वशिष्ठस्तुतः शक्रः (किं) शक्रः पुत्रः पराशरः । पराशरस्तुतः श्रीमान् कृष्णद्वैपायनो हरिः
 व्यासपुत्रः शिवाशश्च शुकश्च ज्ञानिनां वरः । विश्वश्रवाः पुलस्त्यस्य यस्यपुत्रो धनेश्वरः

शौनक उवाच ।

बहो ! पुराणविदुषामतीवदुर्गमं धनं । न युद्धं धनं किञ्चिद्धनेशजन्मपूर्वकम् ॥ ५ ॥
 अधुना कथितं जन्म धनेशस्यैश्वरादिदम् । पुनर्मिल्नक्रमं जन्म ब्रवीषि कथमेव माम् ॥

सीतिरवाच ।

बभूवुरेते द्विपत्या पुरा च परमेश्वरान् । पुनश्च ब्रह्मशापेन स च विश्वध्रुव सुत ॥
 गुरवे दक्षिणा दातुमुत्थञ्च धनेश्वरम् । ययाचे कोटिस्वर्णञ्च यत्नतश्च प्रचेतसे ॥ ८ ॥
 धनेशो विरसो भृन्वा तस्मै तदातुमुग्रत । चकार भस्मसात् विप्र पुनर्जन्म ललाम स
 तेन विश्वध्रुवपुनः कुत्रेश्च धनाधिपः । रावणः कुम्भकर्णश्च धार्मिकश्च विमोषण ॥
 पुलहस्य सुतो धात्स्य शाण्डिल्यश्च रत्ने सुत । सार्गर्णिगौतमाज्ज्ञे मुनिप्रवर एवस
 काज्यय कश्यपाज्जातो भरद्वाजो बृहस्पते । स्वय चात्स्यश्चपुल्हात्सावर्णिगौतमात्तथा
 शाण्डिल्यश्च रत्ने पुत्रो मुनिस्तेजस्विना धर । बभूवु पञ्चगोत्राश्च पतेषा प्रवरा भवे ॥
 यभूवुरेत्स्यो यवत्रादन्या ब्राह्मणजातन । ता स्थिता देशभेदेषु गोत्रशून्याश्च शौनरु ॥
 चन्द्रादित्यमनूनाञ्च प्रवरा क्षत्रिया स्मृता । ब्रह्मणोवाहुदेशाच्चैवान्या क्षत्रियजातय
 उल्देशाच्च वैश्याश्च पादत शूद्रजातय । तासा सङ्करजातेन बभूवुरर्णसङ्करा ॥ १६ ॥
 गोपनापितभिलाश्च तथा मोदक कृपणैः । ताम्बूलिस्वर्णकारैः च तथा धणिकजातय ॥
 इत्येवमाद्या विप्रेन्द्र सन्शुद्राः परिकीर्त्तिता ।

शूद्राविशोस्तु करणोऽन्वष्टो वैश्याद्विजन्मनो ॥ १८ ॥

विश्वकर्मा च शूद्राया वीर्याधान चकारस । ततो बभूवु पुत्राश्चनर्वने शिल्पकारिण
 मागकारकर्मकारशङ्खकारकुविन्दका । कुम्भकारः कसवारः पडैते शिल्पिना वरा ॥
 सूत्रधारः प्रिकारः स्वर्णकारस्तथैव च । पतितान्ते ब्रह्मशापादयाज्या वर्णसङ्करा ॥

शौनक उवाच ।

कथ देवो विश्वकर्मा वीर्याधानश्चकार सः । शूद्रायामथमायाञ्च कथ तेषतितालय ॥
 कथ तेषु ब्रह्मणो बभूव वेन हेतुना । हे पुराणविदा श्रेष्ठ तन्न सशितुमर्हसि ॥ २३ ॥

सीतिरवाच ।

शूतार्या कामत काम धेशञ्चने मनोहरम् । ता दर्शो विश्वकर्मा गच्छन्ती पुष्करे पथि
 आगच्छप्रचिरोपाय प्रसादोत्पुद्गमानसः । ता ययाचे स शृङ्गार कामेन हतचेतन ॥
 रत्नालङ्कारभूषाद्या सर्वाविषयकोमगाम् । यथा पौडश्वरीया शश्वतसुस्थित्यायानाम्

वृहन्नितम्बमारुतां मुनिमानसमोहिनीम् । अतिवेगकटाक्षेणलोलांकामातिपीडिताम् ॥
 तत्प्रोर्णा कठिनां दृष्ट्वा घायूनां शुकसंहताम् । अतीवच्चैस्तनयुगं कठिनघर्तुलाहृत्म् ।
 सस्मितंचाख्यक्त्रञ्च शरच्चन्द्रविनिन्दकम् । एकविम्बफलारक्तमोष्ठाघरं मनोहरम् ॥२६॥

सिन्दूरविन्दुसंयुक्तं कस्तूरीविन्दुभिः सह ।

कपालमुज्ज्वलं शश्वत् फपोलं मणिकुण्डलम् ॥ ३० ॥

उमुवाचप्रियां शान्तां कामशास्त्रविशारदः । कामाग्निवर्द्धनौद्योगिबचनंश्रुतिसुन्दरम् ॥
 विश्वकर्मोपाच ।

अयि क यासि ललिते ममप्राणाधिके प्रिये । ममप्राणांश्चापहृत्य स्थितामव ह्यणशुभे ॥
 तपैधान्वेषणं हृत्वा ममामि जगतीतलम् । स्वप्राणांस्त्यक्तुमिष्टोऽहंतां न दृष्ट्वाहुताशने ॥
 त्वंयासीतिकामलाकंश्रुत्वारम्भामुखेऽधुना । आगच्छन्नहमेवाद्यचास्मिन्वर्त्मन्यथस्थितः
 अहो सरस्यतीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे । सुगन्धिमन्दशीतेन घायुना सुरमीहृते ॥३५॥
 रमकान्तेमयासाद्धंयूनाकान्तेन शोभने । विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमोगुणवान् भवेत् ॥
 स्थिरयौवनसंयुक्ता त्वमेव चिरजीविनी । कामुकी कोमलाङ्गी च सुन्दरीपु च सुन्दरी
 मृत्युञ्जयवरेणैव मृत्युकन्या जितयामया । कुचेरभवत् हृत्वा धनंलब्धं कुचेरतः ॥३८॥
 रत्नमाला च धरुणाद्वायोः स्त्रीरत्नभूषम् । घह्निशुद्धं घस्त्रयुगं वहेः प्रातश्चवेत्नात् ॥३९॥
 कामशास्त्रं कामदेवाद्योपिद्रञ्जनकारणम् । शृङ्गारशिल्पं यत्किञ्चिन् लब्धंचन्द्राद्यदुर्लभम्
 रत्नमालां घस्त्रयुगं सर्वाणिभूषणानि च । तुभ्यं दातुं हृदि हृतं प्रातन्तत्क्षण एव च ॥
 गृहेतान्येवसंस्थाप्यचागतोऽन्वेषणे भवे । विरामे सुखसम्भोगेतुभ्यंदास्यामिसाम्भ्रतम्
 कामुकस्यवचःश्रुत्वा घृताक्षी सस्मितामुने ! । ददौ प्रत्युत्तरेण्यीं नीतियुक्तं मनोहरम् ॥

घृताच्युवाच ।

त्वया यदुक्तं भद्रन्तन् स्वीकारोऽप्यधुनाऽपि च ।

किन्तुसामयिकं वाक्यं ग्रविष्यामि स्मरातुर ॥ ४४ ॥

कामदेवालयं यामि हृतं वेशञ्च तत्कृते । यदिने यत्कृते यामो घयतेपाञ्च योपितः ॥
 अद्याहं कामपत्नी च गुरुपत्नी तवाधुना । त्वयोक्तमधुनेदञ्च पठितं कामदेवतः ॥ ४६ ॥

विद्यादाता मन्त्रदाता गुरुरेकलक्षणैः पितु । मातुः सहस्रगुणतो नास्त्यन्यस्तत्समो गुरुरे
 गुरोः शतगुणैः पूज्या गुरुपत्नी श्रुती श्रुता । पितुः शतगुणे पूज्या यथा माता विचक्षण
 मात्रा सहित्पट्टङ्गारे यावान्दोषः श्रुती श्रुतः । ततो लक्षणगुणो दोषो गुरुपत्नीसमागमे ॥
 मातरित्येव शब्देन याञ्च सम्भाषते नरः । सा मातृनुत्या सत्येन धर्मसाक्षी सतामपि ॥
 त्वया सहित्पट्टङ्गारे कालसूत्र प्रयाति सः । तत्र घोरे घसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥
 मातासहित्पट्टङ्गारे ततो दोषश्चतुर्गुणः । सार्द्धञ्च गुरुपत्न्या च तल्लक्षणं एव च ॥
 कुम्भीपाके पतत्येव यावद्दु वै ब्रह्मणो धयः । प्रायश्चित्त पापिनश्चतस्यनेव श्रुती श्रुतम्
 चक्राकार कुलालस्य तीक्ष्णघाञ्च खड्गवत् ।

वसामूत्रपुरीषञ्च परिपूर्णं सुदुस्तरम् ॥ ५४ ॥

शूलपत्त्रमिसयुक्त तत्रमग्निसमद्रवम् । पापिनां तद्विहारञ्च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम् ॥
 यावान्दोषो हि पुत्राञ्च गुरुपत्नीसमागमे । सावाञ्च गुरुपत्न्याञ्च तत्रैव कामुकी यदि ॥
 अघयास्यामि धामस्य मन्दिरं तस्य कामिनी । वेशांश्च त्वागमिष्यामि तत्कृतेऽहं दिनान्तरे
 घृताचीं च न श्रुत्वा विश्वकर्मा रुरोपताम् । शशापशूद्रयोनिञ्च व्रजेति जगतीतले ॥ ५८ ॥
 घृताचीं तद्वच श्रुत्वा ते शशाप सुदारुणम् । लभ जन्म भवे त्वञ्च स्वर्गमप्योभवेति च
 घृताचीत्येवमुक्त्वा च जगाम काममन्दिरम् । कामेन सुरतं कृत्वा कथयामास तां कथाम्
 सा भारते च कामोक्तया गोपस्यमदनस्य च । पत्नीप्रयागे नगरे ललाभ जन्मशौनक !
 जातिभ्रमा सत्प्रसूता यभूव च तपस्विनी । परं न पत्रे धर्मिष्ठा तपस्यायां मनो दधौ ॥
 तपश्चकार तपसा तत्रकाञ्चनसन्निभा । दिव्यञ्च शतवर्षं सा गंगानीरे मनोरमे ॥ ६३ ॥

वीर्येण सुरवारोक्ष नय पुत्रान् प्रसूय सा ।

पुन स्थलैक गत्वा च सा घृताची यभूव ह ॥ ६४ ॥

शौनक उवाच ।

पथंवीर्यमादधारमुत्कारोस्त्वनपस्विनी । पुत्रान्नवप्रसूता च पुत्र धा धातिव्या दिनात् ॥
 सातिष्ठयाव ।

विश्वकर्मा नु तच्छार्प समाकर्ष्य रगान्वितः । जगाम ब्रह्मणः स्थानं शौकेन हस्तचेतनः

नत्वा स्तुत्वा च ब्रह्माणं कथयामास तां कथाम् ।

ललाभ जन्म ब्राह्मण्यां पृथिव्यामाज्ञया विधेः ॥ ६७ ॥

स एव ब्राह्मणो भूत्वा भुवि कार्त्तभूय ह । नृपाणाञ्च गृहस्यानां नानाशिल्पं चकार ह
शिल्पञ्च कारयामास सर्वांश्च सर्वतः सदा । विचित्रं विविधं शिल्पमाध्वयं सुमनोहरम्
एकदा तु प्रयागे च शिल्पं कृत्वा नृपस्य च । स्नातुं जगाम गङ्गाञ्च ददर्श तत्र कामिनीम्
घृताचीं नररूपाञ्च युवतिं तां तपस्विनीम् । जातिस्मरा तां युधुधे स च जातिस्मरो द्विज
दृष्ट्वा सक्राम सहसा बभूव हृत्चेतन । उवाच मधुरं शान्त. शान्तां ताञ्च तपस्विनीम्
ब्राह्मण उवाच ।

भद्रोऽधुना त्वमत्रैव घृताचि सुमनोहरे । मा मां स्मरसि रम्भोर विश्वकर्माऽहमेव च
शापमोक्षं करिष्यमि भज मां तत्र सुन्दरि । त्वत्कृतेऽतिदहत्येव मनो मे स च मन्मथः
द्विजस्य घचनं ध्रुत्वा घृताची नवरूपिणी । उवाच मधुरं शान्ता नीतियुक्तं परं धचः ॥

गोपिकोवाच ।

तद्दिने कामकान्ताहमधुना च तपस्विनी । कथं दास्यामि शृङ्गारं गङ्गातीरे च भारते ॥
विश्वकर्मन्निद्रं पुण्यं कर्मक्षेत्रञ्च भारतम् । अत्र यत् क्रियते कर्मभोगोऽन्यत्र शुभाशुभम्
धर्मो मोक्षकृते जन्म संलभ्य तपसः फलात् । निरद्धं कुरुते कर्म मोहितो विष्णुमायया
माया नारायणीशाना परितुष्टा च यं भवेत् ।

तस्मै ददाति श्रीगृण्णो भक्तिं तन्मन्त्रमीप्सितम् ॥ ७६ ॥

यो मूढो विषयासक्तो लब्धजन्मा च भारते । विहाय कृष्णं सर्वैरां समुग्धो विष्णुमायया
सर्वं स्मरामि देवाहमहो जातिस्मरा पुरा । घृताचीं सुरवेश्याहमधुना गोपकन्यका ॥
तपः करोमि मोक्षार्थं गङ्गातीरे सुपुण्यदे । नात्रस्थलञ्च क्रीडायाः स्थिरस्थं भव कामुक
बन्धनं कृतपापञ्च गङ्गायाञ्च विनश्यति । गङ्गातीरे कृतं पापं सद्यो लक्षगुणं भवेत् ॥
तत्तु नारायणक्षेत्रे तपसा च विनश्यति । यद्येव कामतः कृत्वा निवृत्तश्च भवेत् पुनः ॥
घृताचीवचनं ध्रुत्वा विश्वकर्मा निराकृतिः । जगाम तां गृहीत्वा च भलयं चन्दनालयम्
रम्यायां मन्मथोऽधुना पुष्पनन्धे मनोरमे । पुष्पचन्दनवातेन सन्ततं सुरमीकृते ॥ ८६ ॥

चकार सुखसम्मोगं तथा सह सुनिर्जने । पूर्णं द्वादशवर्षञ्च बुबुधे न दिवांनिशम् ॥
 बभूव गर्भं कामिन्या परिपूर्णः सुदुर्वहः । सा सुपाप च तत्रैव पुत्रान्नव मनोहरम् ॥
 वृत्तशिक्षितशिल्पाश्च ज्ञानयुक्तांश्च शौनक । पूर्वप्राक्तनतयुग्यान् बलयुक्तान् विचक्षणान्
 मालाकार्फर्मकसशङ्कुकारकुण्डिकान् । कुम्भकारसूत्रधारस्वर्णचित्रकरांस्तथा ॥ ६०

तौ च तैभ्यो धरं दत्त्वा तान् संस्थाप्य महोत्तले ।

मानवीं तनुमुत्सृज्य जग्मतुर्निजमन्दिरम् ॥ ६१ ॥

स्वर्णकार स्वर्णचौर्व्यात् ब्राह्मणानां द्विजोत्तम । यभूव पतित सद्यो ब्रह्मशापेन कर्मणा
 सूत्रधारो द्विजानान्तु शापेन पतितो भुवि । शीघ्रञ्च यज्ञकाष्ठानि न ददौ तेन हेतुना ॥
 व्यतिम्रेण वित्राणां सद्यश्चित्रकरस्तथा । पतितो ब्रह्मशापेन ब्राह्मणानाञ्च कोपतः ॥
 कश्चिद्भयनिग्विदोश्च संसर्गात्स्वर्णकारिणः । स्वर्णचौर्व्यादिदोषेण पतितो ब्रह्मशापतः
 कुलटायाञ्च शूद्रायां चित्रकारस्य धीर्व्यतः । यभूवट्टालिकाकारः पतितो जारदोपतः ॥
 मट्टालिकाकारर्षीजात् कुम्भकारस्य योपिति । यभूव कोटकः सद्यः पतितो गृहकारकः
 कुम्भकारस्य धीजेन सद्यः कोटकयोपिति । यभूव तैलकारश्च कुटिलः पतितो भुवि ॥
 सद्यः क्षत्रियवीजेन राजपुत्रस्य योपिति । यभूव तीवरेणैव पतितो जारदोपतः ॥ ६६
 तीवरेण तु धीजेन तैलकारस्य योपिति । यभूव पतितो दस्युर्लेटश्च परिकीर्तितः ॥
 लेटस्तीवरेकन्यायां जनयामास यत्ररान् । महिमन्त्रः मातायञ्चमङ्गं कौलं कलन्दरम् ॥
 ब्राह्मण्यां शूद्रवीर्व्येण पतितोजारदोपतः । सद्यो यभूव चण्डालः सर्वस्मादधमोऽशुचिः
 तीवरेण च चाण्डाल्यां चर्मकारो यभूव ह । चर्मकार्याञ्च चण्डालागमांसच्छेदो यभूव ह
 मांसच्छेदां तीवरेण फौ चध परिकीर्तितः ।

फौ चक्षियान्तु कषेर्तात् कर्तारः परिकीर्तितः ॥ १०४ ॥

सद्यश्चण्डालकन्यायां लेटवीर्व्येण शौनक । यभूवतुस्ती द्वौ पुत्रौ दुष्टौ हरिडमौ तथा
 धमेण हट्टिकन्यायां सद्यश्चण्डालवीर्व्यतः । यभूवुः पञ्चपुत्राश्च दुष्टा धनचराश्च ते ॥
 लेटार्त्वीत्यन्यायां गङ्गातीरे च शौनक । यभूव सद्यो यो बालो गङ्गापुत्रः प्रकीर्तितः
 गङ्गापुत्रस्य कन्यायां धीर्व्येण वेशधारिणः । यभूव वेशधारी च पुत्रो युद्धी प्रकीर्तितः

वैश्यातीवरकन्यायां सद्यः शुण्डी यभूव ह । शुण्डीयोपितिवैश्यानु पौण्ड्रकश्च यभूव ह
 क्षत्रात् करणकन्यायायां राजपुत्रोऽयभूव ह । राजपुत्र्यानु करणादागरीति प्रकीर्तितः
 क्षत्रवीर्येण वैश्यायां कौवर्त्तः परिकीर्तितः । कलौ तीवरसंसर्गात् धीवरः पतितोभुवि
 तीवर्यां धीवरात् पुत्रो यभूव रजकः स्मृतः । रजस्यां तीवराश्चैव कोयालीति यभूव ह
 नापितात् गोपकन्यायां सर्वस्वीतस्ययोपिति । क्षत्रादुयभूवव्याधश्च बलवान्मृगार्हिसकः
 तीवरात् शुण्डिकन्यायां यभूवःसनपुत्रकाः । तेकलौ हृदिसंसर्गात् यभूवुर्दस्यवःसदा
 ब्राह्मण्यामृषिवीर्येण ऋतोः प्रथमवासरे । कुत्सितश्चोदरे जातः कूदरस्तेन कीर्तितः ॥
 तद्दर्शाच्च विप्रतुल्यं पतितो ऋतुदोपतः । सद्यः कोटकसंसर्गादधमो जगतीतले ॥११६॥
 क्षत्रवीर्येण वैश्यायामृतोः प्रथमवासरे । जातः पुत्रो महादस्युर्बलवांश्च धनुर्द्धरः ॥
 चकार घागतीतश्च क्षत्रियेणापि धारितः । तेन जात्याः सपुत्रश्च घागतीतः प्रकीर्तितः
 क्षत्रवीर्येण शूद्रायामृतदोपेण पापतः । बलवन्तो दुग्न्ताश्च यभूवुर्मुच्छ्रजातयः ॥११६॥
 अविद्वकर्णाः क्रूराश्च निर्भया रणदुर्जयाः । शौचाचारविहीनाश्च दुर्दर्पा धर्मवर्जिताः
 मुच्छ्रात् कुविन्दकन्यायां जोलाजातिर्भूव ह ।

जोलात् कुविन्दकन्यायां शरकः परिकीर्तितः ॥ १२१ ॥

धर्गसङ्कन्दोपेण बहश्च धृतजातयः । तासां नामानि संख्याश्च को घा यक्तुंसमो द्विज
 वैद्योऽश्विनीकुमारेण जातश्च विप्रयोपिति । वैद्यवीर्येण शूद्रायां यभूवुर्हवो जनाः ॥
 तेव भ्रामन्यगुणज्ञान्च मन्त्रौपधिपरायणाः । तेभ्यश्चजाताःशूद्रायांवे व्यालप्राहिणोभुवि
 शौनक उवाच ।

कथं ब्राह्मणपत्न्यान्तु सूर्यपुत्रोऽश्विनीसुतः । ब्रह्मो केन विपाकेन वीर्याधानञ्चकार ह
 सौतिस्त्वाच ।

गच्छन्तीं तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः । ददर्श कामुकः शान्तः पुष्पोद्यानेच निर्जने
 तस्या निवारितो यत्नात् बलेन बलवान् सुरः । अतीवसुन्दरं दृष्ट्वा धीर्याधानञ्चकार स
 द्रुतं तस्याज गमं सा पुष्पोद्याने मनोहरे । सद्यो यभूव पुत्रश्च तत्तकाञ्जनसन्निभः ॥१२८
 सपुत्रा स्वामिनोगेहं जगाम व्रीडितासदा । स्वामिनं कथायामास यन्मार्गं दैवसङ्कटम्

विप्रो रोषेण तत्याज तञ्जपुत्रं स्वकामिनीम् । सरिद्वयभूय योगेनसाच गोदावरी स्मृता
पुत्रं चिन्तित्साशास्त्रश्च पाठयामास यत्नतः । नानाशिल्पञ्च मन्त्रञ्च स्वयंस रविनन्दनः
विप्रश्च ज्योतिर्गणनाद्वेत्नाञ्च निरुत्तरम् । वेदधर्मपरित्यक्तो यभूव गणको भुषि ॥१३२
लोमी विप्रश्च शूद्रगणामग्रे दानं गृहीतवान् । ब्रह्मणे मृतदानानामप्रदानीं यभूव सः ॥

कश्चिन् पुमान् ब्रह्मयज्ञेयहकुण्डात् समुत्थितः । ससूतोधर्मवक्ता च मत्पूर्वपुरुषःस्मृतः
पुराण पाठयामास तञ्जग्रहा रुषानिधिः । पुराणवक्ता सूत्रश्च यज्ञकुण्डसमुद्भवः ॥१३५
वैश्याया सूतवीर्येण पुमानेको यभूव ह । स भृष्टो चावदूकश्च सर्वेषां स्तुतिपाठकः ॥
एतत्तेकथितं किञ्चित् पृथिव्यांजातिनिर्णयम् । वर्णसङ्करदोषेण बहोऽन्याःसन्तिजातयः
सम्यन्धो येषु येषां यः सर्वजातिषु सर्वतः । तस्यं ब्रवीमि वेदोक्तं ब्रह्मणा कथितंपुरा॥

पिता तातस्तु जनको जन्मदातरि वर्त्तने । अस्या माता च जननी गर्भस्थदां प्रसूति॥
पितामहः पितृपिता तत्पिता प्रपितामहः । अत ऊर्ध्वं ज्ञातयश्च सगोत्राः परिकीर्त्तिताः
मातामहः पिता मातुः प्रमातामह एव च । मातामहस्य जनकस्तत्पिता वृद्धपूर्वकः ॥१४१
पितामही पितुर्माता तत्पृथूः प्रपितामही । तन्पृथूश्च परिक्षेया सा वृद्धप्रपितामही॥
मातामही मातृमाता मातुल्या च पूजिता । प्रमातामहीति ज्ञेया प्रमातामहकामिनी ॥

वृद्धमातामही ज्ञेया तत्पितुः कामिनी तथा । पितृभ्राता पितृव्यश्च मातृभ्राता च मातुल
पितृस्यसा पितृमग्नी मातृमग्नी च मातुरी । सृजुश्च तनय' पुत्रो दायादश्चात्मजस्तथा॥
धनमाधीर्ष्यजश्चैष पुंसिजन्ये च वर्त्तते । जन्यायां दुहिताफन्या चात्मजा परिकीर्त्तिता
पुत्रपत्नी यभूर्नेया जामाता दुहितुःपतिः । पतिः प्रियश्च भर्ताच स्वामी कान्तेव वर्त्तते
देवटःस्वामिनोन्नाताननन्दास्वामिनःस्वसा । श्वशुरःस्वामिनस्तातःश्वभूश्चस्वामिनःप्र
भाष्यां जायां प्रिया कान्ता स्त्रीश्च पत्न्याञ्च वर्त्तते ।

पत्नीभ्राता श्यालकञ्चपत्नीमग्नी च श्यालिका ॥ १४६ ॥

पत्नीमातातया श्वभूस्तत्पिता श्वशुरःस्मृतः । सगर्भः सांदरोभ्रातासगर्भभागिनीस्मृता
भागिनीपुत्रो भागिनेयो भ्रातृपुत्रश्चभ्रातृजः । श्यालन्तुभागिनीकान्तौ भागिनीपतिरेव च
श्यालीपतिस्तु भ्राता च श्वशुरैकश्च हेतुना । श्वशुरस्तु पितृभ्रयो जन्मदातुः समोमुं

अजदाता भद्रदाता पत्नीतातल्लयैव च । विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृपान् ॥
 अजदातुश्च मा पत्नी भगिनी गुरुकामिनी । मता च तत्सपत्नी च कन्या पुत्रप्रियातथा
 मातुर्नाता पितुर्नाता श्वश्रूःपित्रोः स्वप्ता तथा । पितृन्त्यानी मातुलानी मातरप्यचतुर्दश
 पौत्रस्तुपुत्रपुत्रेच प्रसौत्रस्तत्पुत्रेऽपि च । तत्पुत्रायाश्च ये वंशा कुलजाश्चप्रकीर्त्तिताः
 कन्यापुत्रश्चदीहिचन्तत्पुत्रायाश्चयान्प्रवाः । भागिनेरनुतायाश्चपुत्रपावान्प्रवाः स्मृताः
 भ्रातृपुत्रस्य पुत्रायास्तौ पुनर्मातरः स्मृताः । गुरुपुत्रस्तथा भ्राता पौष्यःपरमगन्धवः ॥
 गुरुकन्या च भगिनीपौत्र्या मन्मनानुने । पुत्रस्यच गुरुभ्रातापौष्यः मुक्तिगन्धवान्धवः
 पुत्रस्यश्वश्रुगोत्राताबन्धुर्वैवाहिकः स्मृतः । कन्यायाश्चश्वश्रुवैव तत्सन्ध्याप्रकीर्त्तितः
 गुरुश्च कन्यकायाश्च भ्राता मुक्तिगन्धवः । गुरुश्चश्वश्रुभ्रातृणां गुरुतुल्यः प्रकीर्त्तितः
 बन्धुता येन सार्द्धञ्च तन्निवृत्तं परिकीर्त्तितम् । निवृत्तं मुखप्रदं श्रेयं दुःखदो रिपुवध्यते ॥
 बन्धवोदुःखदोदैवात् नि सन्ध्यासुखप्रदः । सन्ध्यामिन्निविधा पुंसांविद्रेन्द्रजगर्तृलले
 विद्याजो योनिजश्चैवप्रीतिजश्च प्रकीर्त्तितः । निवृत्तं प्रीतिजं श्रेयं स सन्ध्या सुदुर्लभः
 निवृत्तता निवृत्तार्थानातृत्तुल्या न मंशयः । निवृत्तानिषपिता पितृभ्रातृसमोनृपान्
 चतुर्यं नान सन्ध्यामित्याह कनल्लोद्भवः । जारक्षोपपतिर्गन्धुर्दुष्टाससन्ध्यागकर्त्तरि ॥
 उददन्त्यां नरजा च द्वेनती चित्रहारिणी । स्वान्तितुल्यश्च जारक्ष नवशा गृहिर्पासना ॥
 सन्ध्यादेशनेदे च सर्वदेशे विगर्हित । अवैदिको निन्दितस्तु विश्वामित्रेण निर्मितः
 दुम्यञ्जन्तु नरद्विस्तु देशनेदे च सञ्चरेत् । अर्कात्तजनकपुंसां योपिताञ्च विशेषतः
 तेर्जायसां न दोषाय विद्यमाने युगे युगे ॥ १७७ ॥

इति श्रीमद्भारवर्षे महापुराणे सौत्ति शौनकसंवादे ब्रह्मण्डे जातिसन्ध्यानिर्णयो
 नान दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा ।

शौनक उवाच ।

द्विजः समार्यासंत्यज्य किञ्चकारावशेषतः । अश्विनोर्चामहाभाग किनामकस्यवंशजौ
सौतिकवाच ।

द्वजश्च सुतपा नाम भारद्वाजो महामुनिः । तपश्चकार कृष्णस्य लक्षवर्षं हिमालये ॥२॥
गहातपस्वी तेजस्वी प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । ज्योतिर्दर्शनं कृष्णस्य रागने सहसा क्षणम्
वरंसवमे निर्लिप्तमात्मानं प्रवृत्तेः परम् । मात्र मोक्षं ययाचे तं दास्यं भक्तिञ्च निश्चलाम्
कभूषाकाशवाणीति कुरु दारपयिहम् । पश्चाद्दास्यं प्रदास्यामि भक्तिं भोगहृये द्विज ॥
पितृणामानसीं कन्यां ददौ तस्मै विधिः स्वयम् । तस्यां कल्याणमिश्रश्च यभूष मुनिपुङ्गव
चस्य स्मरणमात्रेण न भवेत् कुलिशाद्भयम् । न द्रष्टव्यं यन्मुमात्रं नूनं तत्स्मरणाद्भवेत्
कल्याणमिश्रजननीं परित्यज्य महामुनिः । शशाप सूर्यपुत्रञ्च यज्ञमाग्वर्जितो भव ॥
ससौदरश्चैवापूज्यो भवेति च सुराधम । व्याधिप्रस्तोजडाङ्गश्च भवतेऽकीर्तिमानिति ॥
इत्युक्त्या सुतपागेहे प्रतस्थौ सूनूनासह । अश्विभ्यांसहितः सूर्यः प्रयतौ च तदन्तिकम्
पुत्राभ्यां व्याधियुक्ताभ्यां सूर्यस्त्रिजगताम्पतिः ।

मुनीन्द्रं च सुतपसं प्रतुष्टाथ च शौनक ॥ ११ ॥

सूर्य उवाच ।

सप्तस्य भगवन् विप्र विष्णुरूप युगे युगे । ममपुत्रापरार्थञ्च भारद्वाजमुनीश्वर ॥१२॥
पद्मविष्णुमदेशाद्याः सुराः सर्वे च सन्ततम् । भुञ्जते विप्रदत्तन्तु फलपुष्पजलादिकम् ॥
प्राज्ञपाथाहिता देवाः शश्वद्विश्वेषु पूजिताः । न च विप्रात् परो देवो विप्ररूपी स्वयंहृदिः
प्राज्ञणे परितुष्टे च तुष्टो मारायणः स्वयम् । नारायणे च सन्तुष्टे सन्तुष्टाः सर्वदेवताः

नास्ति गंगासमेतीर्यं न च कृष्णात् पटसुतः । न शङ्कुराद्रुवैष्णवञ्जनसहिष्णुर्धरापरा ॥

न च सत्यात् परोधर्मो न सार्ध्या पार्वती परा ।

न दैवात् बलवान् कश्चित् न च पुत्रात् पटः प्रियः ॥ १७ ॥

न च व्याधिसमःशत्रुर्न च पूज्योःगुरोःपटः । नास्तिमातृसमोबन्धुर्न च मित्रंपितुःपरम्

एकादशमिदमपरा तपो नानशनात्परम् । परं सर्वधनं रत्नं विचारत्नात्परा यथा ॥१६॥

सर्वाश्रमपरो विप्रो नास्ति विप्रसमोगुरुः । वेदवेदाङ्गसर्वार्यमित्याह कमलोद्भवः ॥

सूर्यस्य बचनंश्रुत्वा भारद्वाजो ननाम तम् । निरर्जोवापितपुत्रो चकार तपस फलात् ॥

पञ्चाशतत्र पुत्रो च यज्ञभाजो भविष्यतः । इत्युक्त्वातञ्जसुतपा प्रणम्यभास्करंमुनिः ॥

जगाम गङ्गां स त्रस्तोहरिसेवनतत्परः । पुत्राभ्यांसहितः सूर्यो जगामनिजमन्दिरम् ॥

बभूवस्तुस्तौ पूर्यो च यज्ञभाजो द्विजाह्वया । एतत्सूर्यैर्हृतविप्रस्तोत्रं योमानवः पठेत्

विप्रपादप्रसादेन सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ २४ ॥

ब्राह्मणेभ्यो नम इति प्रातस्तथाय यः पठेत् । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥

पृथिव्यां यानितीर्यानि तानितीर्यानिसागरे । सागरे यानितीर्यानि विप्रपादेयुतानि च ॥

विप्रपादोदकंर्षत्वा यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत्पुष्करपात्रेषु पिवन्ति पितरोजलम् ॥

विप्रपादोदकं पुष्यं भक्तियुक्तश्च यः पिबेत् । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥

महारोगी यदि पिबेत् विप्रपादोदकं द्विज । मुच्यते सर्वरोगाद्यमासमेकन्तु भक्तिः ॥

अवियो वा सवियो वा सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः ।

स एव विष्णुसदृशो न हरो विमुक्तो यदि ॥ ३० ॥

घ्नन्तं विप्रं शपन्तं वा न हन्यान्न च तं शपेत् । गोम्यः शतगुणं पूज्यो हरिमिच्छन्ब्राह्मणः

पादोदकञ्च नैवेद्यं मुङ्क्ते विप्रस्य यो द्विज । नित्यं नैवेद्यमोजी यो राजस्यफलं लभेत्

एकादश्यां न मुङ्क्ते यो नित्यं कृष्णं समर्चयेत् ।

तस्य पादोदकं प्राप्य स्थलं तीर्थं भवेत् ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

यो मुङ्क्ते भोजनोच्छिष्टं नित्यं नैवेद्यमोजनम् ।

कृष्णदेवस्य पूतोऽसौ जीवन्मुक्तो महातले ॥ ३४ ॥

अथं विष्ठा पयो मूनं यद्विष्णोरनिवेदितम् । द्विजानां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ।
ब्रह्मा च ब्रह्मपुत्राश्च सर्वे विष्णुपरायणाः । ब्राह्मणस्तत्कुले जातो विमुखश्च हरीकथम् ।
पित्रोर्मातामहादीनां संसर्गस्य गुरोश्चवा । दोषेण विमुक्त्वाः कृष्णे विप्राजीवन्मृताश्चतैः

स किं गुरुः स किं तातः स किं पुत्रः स किं सखा ।

स किं राजा स किं बन्धुर्न दद्याद् यो हरे मतिम् ॥ ३८ ॥

स वैष्णवाद्द्विजाद्विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः ।

सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ३९ ॥

सन्ध्यादीनींऽशुचिर्नित्यं कृष्णे वा विमुखो द्विज ।

स एव ब्राह्मणामायो विपहीनो यथौरगः ॥ ४० ॥

गुस्वक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णं प्रविश्यति । तं वैष्णवं महापूतं जीवन्मुक्तं चदेद्विधिः ॥

पुंसां मातामहादीनां शतैः सार्द्धं हरेः पदम् । प्रयाति वैष्णवः पुंसांमात्मनःकुलकोटिभिः

ब्रह्मक्षत्रियविदशूद्राश्चतस्रो जातयो यथा । स्थतन्त्राजातिरेका चविश्वेषु वैष्णवाभिधा

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद्गोविन्दपादपङ्कजम् ।

ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेपाञ्च सप्रिधी ॥ ४४ ॥

सुदर्शनं संनियोज्य भक्तानां रक्षणाय च । तथापि नहि निश्चिन्तोऽवतिष्ठेत्तत्प्रिथौ

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे सौत्थिशीतक-संवादे ब्रह्मखण्डे विष्णुवैष्णवब्राह्मण-

प्रशंसा नामैकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

गन्धर्वराजस्यप्रशंसा ।

शीतक उपाच ।

शृपिंशप्रसङ्गेन धर्मयुर्विधिधाः कथाः । उपालम्भेन प्रस्तावात् कौतुकेन श्रुता मया ॥

प्रजाया सरत्तुः केवा ऊर्ध्वरेताश्च बद्धवन । पित्रा सह विरोधेन नारदः किञ्चकार सः

पितुः शापेन पुत्रस्य किं बभूव विरोधतः । पितुर्वा पुत्रशापेन साँते तन् कथ्यतां शुभम्
साँतिरवाच ।

हंसीयतिश्चारणिश्च बोधुः पञ्चशिखस्तथा । अपान्तरतमाश्चैव सनकाद्याश्च शौनक ॥१॥
पतैर्विना च बहवो ब्रह्मपुत्राश्च सन्ततम् । सांसारिकाः प्रजावन्तो गुर्वाज्ञापारिपालकाः
अपूज्यः पुत्रशापेन स्वयं ब्रह्माप्रजापतिः । तेनैव ब्रह्मणो मन्त्रं नोपासन्ते विपश्चितः ॥
नारदो गुरुशापेन गन्धर्वश्च बभूव स । कथयामि सुविस्तीर्णं तद्वृत्तान्तं निशामय ॥
गन्धर्वराजः सर्वेषां गन्धर्वाणां वरोनहान् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तः पुत्रहीनो हि कर्मणा ॥
गुर्वाज्ञया पुष्करे स परमेण समाधिना । तपश्चकार शम्भोश्च कृपणो दीनमानसः ॥६॥
शिवस्य कथंचं स्तोत्रं मन्त्रञ्च द्वादशाक्षरम् । ददौ गन्धर्वराजाय वशिष्ठश्च कृपानिधिः ॥
जजाप परमं मन्त्रं दिव्यं वर्णशतं मुने ! । पुष्करे स निराहारः पुत्रदुःखेन तापितः ॥११॥
विरामे शतवर्षस्य ददर्श पुरतः शिवम् । भासयन्तं दशदिशो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥२॥
शश्वत्तेजः स्वरूपञ्च भगवन्त सनातनम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥
तनोरूपं तपोवीजं तपस्या फलदं फलम् । शरणागतभक्ताय दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
त्रिशूलपट्टिशधरं वृषभस्थं दिगम्बरम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥१५॥
ततस्वर्णप्रभामुष्टजटाजालधरं वरम् । नीलकण्ठञ्च सर्वत्रं नागयज्ञोपवीतकम् ॥१६॥
संहर्त्ताञ्च सर्वेषां कालं मृत्युञ्जयं परम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डकोदिसङ्काशमीश्वरम् ॥
तत्त्वज्ञानप्रदं शान्तं मुक्तिदं हरिभक्तिदम् । दृष्ट्वा ननाम सहसा गन्धर्वोदण्डवदु भुवि ॥
धविप्रदत्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । वरं वृणुष्वेति शिवस्तमुवाच कृपानिधि ॥

स ययाचे हरेर्मक्तिं पुत्रं परमवैष्णवम् ॥ १६ ॥

गन्धर्वस्य धवः श्रुत्वा जहास चन्द्रशेखरः । उवाच वीजं दीनेशो दीनबन्धुः सनातनम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

कृतार्थस्त्वं धरादेकादन्यश्चरितवर्षणम् । गन्धर्वराज वृणुये को वा तूतोऽतिमङ्गले ॥
शस्य भक्तिहरी धत्त सुदृढा सर्वमंगला । स समर्प्यः सर्वविररं कर्तुञ्च लीलया ॥२२॥
भात्मन कुलकोटिश्चरतं मातामहस्य च । पुराणाणां समुद्रघृत्यगोलोकंयातिनिश्चितम् ॥

त्रिचिधानि च पापानि फोटिजन्मार्जितानि च ।

निहत्य पुण्यमोगञ्ज हरिदास्यं लभेद्दु ध्रुवम् ॥ २४ ॥

तावत्पत्नी सुनस्तावत् तावदैश्वर्यामीप्सितम् ।

सुरं दुःखं नृणां तावत् यावत् कृष्णेन मानसम् ॥ २५ ॥

कृष्णेमनसितज्ञाते भक्तिखड्गोदुरत्ययः । नराणां कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोत्यहो ॥

भवशेषां सुकृतिनां पुत्राः परमवैष्णवाः । कुलफोटिञ्च तेषां ते उद्धरन्त्यवलीलया ॥

चरितार्थः पुमानेकाद्वरमिच्छुर्भवरादहो । किं घरेण द्वितीयेन पुंसां तृतिनं मङ्गले ॥

घनं सञ्चितमस्माकं वैष्णवानां सुदुर्लभम् । श्रीकृष्णे भक्तिदास्यञ्चनघयं दातुमुत्सुकाः

घरान्यं घरं घत्स यत्तेमनसिवाञ्छितम् । इन्द्रत्यममरत्वं वा ब्रह्मत्वं लभदुर्लभम् ॥

सर्वसिद्धिं महायोगं ज्ञानं मृत्युञ्जयादिकम् । सुखेन सर्वं दास्यामि हरिदास्यं त्यजक्षम ॥

शङ्करस्य ध्वजश्रुत्या शुष्ककण्ठोष्ठनालुकः । उवाच दीनोर्दीनेरां दातव्यं सर्वसम्पदाम्

गन्धर्व उवाच ।

यन्वक्षुः पतनेनेव ब्रह्मणः पतनं भवेत् । तद्ब्रह्मत्वं स्वप्रतुल्यं कृष्णभक्तो न चेच्छति ॥

इन्द्रत्यममरत्वं वा सिद्धियोगादिकं शिव । ज्ञानं मृत्युञ्जयाद्यं चानहि भक्तस्य वाञ्छितम्

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसायुज्यं श्रीहरेरपि । तत्रनिर्वाणमोक्षञ्च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः

शश्वत्तन्सुदृढमकिर्हृदिदास्यं सुदुर्लभम् । स्वप्ने जागरणे भक्ता वाञ्छन्त्येवं घरं घरम्

सदास्यं वैष्णवसुतं देहिफल्यतरोचयम् । त्वां प्राप्य लभतेतुष्टं घरमन्यं स पर्यटः ॥

न दास्यसीदं चेच्छमभौ परं दुष्कृतिनञ्च माम् ।

हत्वा हि स्वशिरच्छेदं प्रदास्यामि हुताशने ॥ ३८ ॥

गन्धर्वपचनंश्रुत्या तमुवाच कृपानिधिः । मर्कटं दीनञ्च भक्तेशो मक्तानुग्रहकारकः ॥

श्रीशङ्कर उवाच ।

हरिमक्तिः हरैर्दाम्यं पुत्रं परमवैष्णवम् । शिवयुपञ्जगुणिनं शश्वत्सुस्थिर्योषनम् ॥

ज्ञानिनं सुन्दरवरं गुरुमर्कटं जितेन्द्रियम् । गन्धर्वयजप्रवरं परमं लभ मा त्विदं ॥ ४१ ॥

इत्युक्त्वा शङ्करस्तस्माज्जगाम न्यालयं मुने । गन्धर्वराजः सन्तुष्ट आजगामस्वमन्दिरम्

शकुलमानसाः सर्वे मानवाः सिद्धकर्माः । नारदस्तस्य भार्यायांलभे जन्म च भारते ॥
 सुगव पुत्रं सा वृद्धा पर्वते गन्धमादते । गुरुवशिष्टो भगवान् नाम चक्रे यथोचितम् ॥
 बालकस्य च तन्मैव महूलं मंगले दिने । अप्प्राब्दोधिकार्यश्च पूज्ये च बर्हणः पुमान् ॥

पूज्यनामाधिको बालस्तेनोपवर्हणामिधः ॥ ४५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौति-शौनकमन्वादे ब्रह्मखण्डे नारदजन्मकथनं नाम
 द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः ।

उपवर्हणनार्याया मालावत्या विलापकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

पुत्रोत्सवे च खानि धनानि विविधानि च । गन्धर्वराजः प्रददौ ब्राह्मणेभ्यो मुदान्वितः
 उपवर्हणस्तु कालेन हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम् । वशिष्टद्वारा सम्प्राप्य चकार दुष्करं तपः । १॥
 एकदा गण्डकीतीरे तत्र सम्प्राप्तर्षीवनम् । गन्धर्वपत्न्यो ददृशुर्गुच्छान्नापुत्र तत्क्षणम् ॥
 ततन्तीक्ष्णं तपः कृत्वा प्राणान् संतप्य योगतः । पञ्चाशत्ता वनबुध कन्याश्चित्ररथस्य च
 उपवर्हणगन्धर्वं ताञ्च तं वत्रिरे पतिम् । मुदा माला ददुस्तस्मै कानुक्यः पितृपत्न्या ॥
 गृहीत्वा ताञ्च गन्धर्वो युवा मुस्थिरर्षीवनः । दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च रमे रहसि कानुकः
 ततोऽपि मुनिरंघ्र्यङ्कृत्वा तामिः सहानिराम् । जगाम ब्रह्मणः स्थानं हरिगायां जगौ मुने
 दृष्ट्वा स रम्मारम्नोत्तर्त्तने कठिनं स्तनम् । वनूव स्वलतं तस्य गन्धर्वस्य महात्मनः ॥
 द्रुतं तत्याज सद्भूतं मूच्छो प्राप समातले । उच्चैः प्रजहन्नुर्देवा ब्रह्माकोपात् शशापतन्
 मत्र त्वं शूद्रयोनियं गन्धर्वी तनुमुत्सृज । काले वैश्वसंसर्गात् मत्पुत्रन्त्वं मविष्यसि
 विना विपत्तेर्नहिना पुंसां नैव भवेत् सुत । सुखं दुःखञ्च सर्वेषां क्रमेण प्रभवेदिति । १॥

इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जंगाम पुष्करात् गृहम् । उपवर्हणगन्धर्वस्तत्याज तां तनुं तदा ॥
 मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् । विशुद्धमात्राख्यञ्चेति भित्त्वां पद्चक्रमेव च ॥
 इडां सुपुम्नां मेधाञ्च पिङ्गलां प्राणहारिणीम् । सर्वज्ञानप्रदाञ्चैव मनःसंयमनीं तथा ॥
 चिशुद्धाञ्च निम्ब्याञ्च वायुसञ्चारिणीन्तथा । तेजःशुष्ककरीञ्चैव बलपुष्टिकरीन्तथा ॥१५॥
 बुद्धिसञ्चारिणीञ्चैव ज्ञानजृम्भनकारिणीम् । सर्वप्राणहराञ्चैव पुनर्जीवनकारिणीम् ॥
 एताः षोडशधा नाडीभित्त्या च हंसमेव च । मनसा सहितं ब्रह्मरन्ध्रमानीय योगतः ॥
 स्थित्वा मुहूर्त्तमात्मात्तमात्मन्येव सुयोज ह । जातिस्मरञ्च योगीन्द्रः संप्राप ब्रह्म शौनक
 षीणां त्रितन्त्रीदुष्प्राप्यां चामस्कन्धे निधाय च । शुद्धस्फटिकमालाञ्च विधृत्यदक्षिणेकरे
 संजल्पन् परमं ब्रह्म वेदसागं परात्परम् । परं निस्तारवीजञ्च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ॥२०॥
 प्राच्यां कृत्वा शिरःस्थानं पश्चिमे चरणद्वयम् । निधाय दर्भशयने शयानः पुरुषो यथा ॥
 गन्धर्वराजस्तं दृष्ट्वा भार्गव्यासह तन्क्षणम् । योगेन ब्रह्म संप्राप श्रीकृष्णमनसाम्भरन्
 पत्न्यञ्च बान्धवाः सर्वे विलप्य रुद्धुर्भुशम् । जगुः क्रमेणशोकात्तामोहिताविष्णुमायया
 पञ्चागवोपितां मध्ये प्रधाना महिषी च या । साध्वी मालावती नाम्ना परमा प्रेयसीकरा
 उचैरुद सा तीव्रकान्तं कृत्वा च घक्षसि । इत्युवाच च शोकात्तां फाल्गुसंबोधयण्य च
 मालावत्युवाच ।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ विदग्धरसिकेश्वर । दर्शनं देहि मां यन्धो ! निमग्नं शोकसागरे ॥२६॥
 विभ्रममके सुवसने रम्ये चन्दनकानने । पुष्पमद्रानदीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे ॥ २७ ॥
 चन्दनाचलसान्निश्रे चारुचन्दनकानने । पुष्पचन्दनतल्पे च चन्दनानिलर्वासिते ॥ २८ ॥
 गन्धमादनरौलेकदेशे रम्ये नदीतटे । पुंस्कोकिलनिनादे च मालतीजलशालिनि ॥ २९ ॥
 श्रीरौले धीवने दिव्ये धीनिवासनिपेचिते । धीयुक्ते धीपदाम्भोजे पूतेऽच्युतरुते शुभे ॥
 पुरा या या कृता क्रीडा घसन्ते रक्षसि त्वया । मया च दुर्हंदासाद् तया च दूयतेमनः
 सुध्रानुल्येन वचसा सिक्ताहञ्च पुरा त्वया । दूयते सततं तेन परमात्मातिदारुणम् ॥३२॥
 साधुना सह संसर्गो वैकुण्ठादपि दुर्लभः । अहो ततोऽतिविच्छेदो मरणादपि दुष्करः
 तस्मात्तेनाञ्च विच्छेदः साधुशोककरः परः । ततोऽपि यन्धुविच्छेदः शोकः परमदारुणः

स्ततोऽपन्यवियोगो हि मरणादतिरिच्यते । सर्वस्मात् पतिभेदो हि तत्परं नास्ति सङ्कटम्
 शयने भोजने स्नाने स्वप्ने जागरणेऽपि च । स्वामिविच्छेददुःखञ्च नूतनं च दिने दिने
 सर्वशोकं विस्मरेत् स्त्री स्वामिसंयोगमात्रतः । वन्धुमन्यं न पश्यामितं दृष्ट्वा विस्मरेत् पतिम्
 नातो विशिष्टं पश्यामि चान्धवं स्वामिना चिन्ता ।

साध्वानां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ॥ ३८ ॥

हे दिगीशाश्च दिक्पाला हे धर्म हे प्रजापते । गिरिश कमलाकान्त पतिदानञ्च देहि मे
 इत्युक्त्वा विरहात्तां सा कन्या चित्ररथस्य च । मूर्च्छां संप्राप तत्रैव दुर्गमे गहने घने
 विचेतना तत्र तस्यां कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि । परिपूर्णं दिवानकं सर्वदेवैश्च रक्षिता ॥
 प्रभाते चेतनां प्राप्य विललाप भृशं मुहुः । इत्युवाच पुनस्तत्र हरिं संबोध्य सा सती
 मालावत्युवाच ।

हे कृष्ण जगतां नाथ नाथ नाहं जगद्बहिः । त्वमेव जगतां पाता मां न पाहि कथं प्रभो
 अयं भर्तास्य भार्याहं ममेति तव मायया । त्वमेव सम्भवो भर्ता सर्वेषां सर्वकारणः

गन्धर्वः कर्मणा कान्तः कान्ताहमस्य कर्मणा ।

क गतं कर्म भोगान्ते कुत्र संस्थाप्य मां प्रियाम् ॥ ४५ ॥

को वा कस्याः पतिः पुत्रः का वा कस्य प्रिया प्रभो ।

संयुनक्ति विधाता च वियुनक्ति च कर्मणा ॥ ४६ ॥

संयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसङ्कटम् । शश्वज्जगति भूर्बस्य नात्मारामस्य निश्चिनम्
 नश्वरो विषयः सत्यं भोगश्च यान्धवो भुवि ।

स्वयं त्यक्तः सुखायैव दुःखाय त्याजितः परैः ॥ ४८ ॥

तस्मात् सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्यमाप्सितम् ।

ध्यायन्ते सन्तनं कृष्णपादपद्मं निरापदम् ॥ ४९ ॥

सर्वत्र ज्ञानिनः सन्तः का स्त्री ज्ञानवती भुवि ।

ततो मह्यं विमूढायै दातुमर्हति चाञ्छितम् ॥ ५० ॥

न मे चाञ्छामरत्वे च शत्रुत्वे मोक्षवर्त्तनि । इमं कान्तं परं देहि चतुर्वर्गकरं परम् ॥

यावती कामिनी जालिर्जगत्यां जगदीश्वर । कस्यैचिन्नहि दत्तश्च तेन धाम्नेदृशः पतिः ॥
 तस्मै दत्तायुजाःसर्वरूपाणिविविधानि च । सुरालानिच सर्वाणि धामरत्वं विनाहरे ॥
 रूपेण च गुणेनैव तेजसा विक्रमेण च । ज्ञानेन शान्त्या सन्तुष्ट्या हरितुल्यः प्रभुर्मम ॥
 हरिभक्तो हरिसमो गार्म्मार्प्ये सागरो यथा । दीप्तिमान् सूर्यतुल्यश्चशुद्धोयद्विसमस्तथा
 चन्द्रतुल्यः सुदृग्यश्च कन्दर्पसमसुन्दरः । बुद्ध्या बृहस्पतिसमः काव्ये कविसमस्तथा
 वाणी च सर्वशास्त्रज्ञः प्रतिमायां भृगोरिव । कुबेरतुल्यो धनवान् महान् दाता मनोरिव
 धर्मं धर्मसमो धर्मो सत्ये सत्यव्रताधिकः । कुमारतुल्यस्तपसा स्याचारो ब्रह्मणा समः
 ऐश्वर्य्येश्चक्रतुल्यश्चसहिष्णुःपृथिवीसमः । एवमूतो मृतः कान्तः प्राणायान्तिनमेकधम्
 अरे सुरा यज्ञमाजो वृत्तं भोक्तुं क्षमा भुवि । क्षणेनायज्ञमाजश्च करिष्यामि च लीलया
 नारायण जगन्कान्त नाहमेव जगद्बहिः । शीघ्रं जीवय मत्कान्तमन्यथा त्वां शपाम्यहम्
 प्रजापते पुत्रशापात्त्वमपूज्यो महीतले । तत्रैवानधिकारित्वं करिष्याम्यधुना मवे ॥६२॥
 हे शम्भो ज्ञानलोपं ते करिष्यामि शपे न च । धर्मलोपञ्च धर्मस्य करिष्याम्यवलीलया ।
 यमाधिकारिदूरञ्चकरिष्यामि न संशयः । सत्यं कालं शपिष्यामि मृत्युकन्यांसुनिष्ठुराम्
 शपामि सर्वानत्रैव जरां व्याधिं विनाऽधुना । व्याधिना जरया मृत्युर्नहाम्भूश्च पतेर्मम ॥
 इत्युक्त्वा कौशिकीतीरं जगाम शनूमेव तान् । मालावतीमहासार्थ्या शवंदृष्ट्वास्वचक्षसि
 तां शनूमुद्यतां दृष्ट्वा ब्रह्मा देवपुरोगमः । जगाम शरणं विष्णुं क्षीरं क्षीरपयोनिधेः ॥६३॥
 तत्रन्नात्वा च तुष्टाचपत्मात्मानमदधम् । विष्णुं ब्रह्माजगन्कान्तमित्युवाच हर्षीतयस्

ब्रह्मोवाच ।

उपबर्हणपत्नी सा कन्या चित्ररथस्य च । कान्तहेतोश्च मां देषान् शपेत्स्यं रक्ष माधव ॥
 स्मरन्ति साधवः सन्तो जपन्तियोगिनो मुदा । स्वप्नेजानरणे चैव सर्वकार्य्येषुमाधवम्
 शरणागतदीनात्तपस्त्रिजपत्पायण । रक्ष रक्ष हृषीकेश ब्रजामः शरणं धयम् ॥ ७१ ॥
 पूजा मे पुत्रशापेन विहता साम्प्रतं प्रभो । अधिकारदत्तं माञ्च करोति मालती सती ॥
 सर्वाधिकारो ब्रह्मखण्डे त्वया दत्तः पुरा प्रभो । सम्पदेतादृशी नाथ यास्यत्येषाधुना मम

महादेव उवाच ।

त्वया दत्तं महाप्रानं गुणं सर्वेषु दुर्लभम् । शतमन्वन्तरतप फलेन पुष्करे पुरा ॥ ७५ ॥

ऐश्वर्यं वा धनं वापि विद्यां वा विप्रमोऽथवा ।

ज्ञानस्य परमैर्यस्य फलां नार्हति पौडरीम् ॥ ७५ ॥

सर्वागतं सर्वगुणमतीवदुर्लभं परम् । मम तत्त्वज्ञानरत्नं शापेन याति योषितः ॥ ७६ ॥

ब्रह्मो पतिप्रवातिजः सर्वेषां तेजसा परम् । तेजोऽनयेन दग्धं मां रक्ष रक्ष हरे हरे ॥ ७७ ॥

धर्म उवाच ।

सर्वगन्तान् परं रत्नं धर्मं एव सनातनं । यास्यन्त्येवमिप्रो धर्मस्त्वया दत्तः पुरा प्रभो ॥

शतमन्वन्तरतप फलेन परमेश्वर । प्रातो धर्मोऽपुना याति शापेन योषितः प्रभो ॥ ७८ ॥

देवा ऊचुः ।

यज्ञमाज्ञो धृतमुजो धयमेव त्वया कृताः । योषित्शापेन तन् सर्वमपुना याति माज्य

इत्युक्त्वा संयतासर्वैर्युस्तप्रभयादिता । एतस्मिन्नन्तरेऽकस्माद्वाग्बभूवापारीरिणी

युयं गच्छत तन्मूलं विप्ररूपा जनार्दन । पञ्चाशस्यति शान्त्यर्थमिति घो रक्षणाय च

श्रुत्वा तद्भवनं देवाः प्रहृष्टमानसोन्मुखाः । जग्मुर्मालावतीस्थानं कौशिकीतीर्त्तामीश्वराः

तामेव ददृशुर्देवा देवा मालावतीं सर्तम् । शतमन्तरेन्द्रमुरामिदःश्वलां कमलाकचाम् ॥

बद्धिशुद्धांशुकायानां सिन्दूरविन्दुभूषिताम् । शरच्चन्द्रप्रभा शान्तां द्योतयन्तीदिशस्त्रिया

पतिमेवानहृद्धमचिरसञ्चिततेजसा । प्रञ्चलन्ती सुप्रदीपशिखां बह्वेखित्तमान् ॥ ८६ ॥

योगासनं कुर्वतीञ्च शयवक्षस्यलस्थिताम् । सुरभ्यां स्वामिनो धीणांविभ्रतीदक्षिणेकरे

तर्जन्यद्भुश्रुकोटिभ्यां शुद्धस्फटिकमालिकाम् । मत्स्या म्नेदेनकान्तस्य विभ्रतीयोगमुद्रया

चास्त्रम्यरुपर्णामां विन्बोष्ठीरुननालिनीम् । यथासोडशशर्षीयाशश्वन्सुस्थिर्यौवनान्

बृहन्निलयभारात्तां फलश्रोणिपयोत्रपान् । पश्यन्ती शवर्माशम्य शुभदृष्ट्या पुन पुनः ॥

परन्मूलाञ्च तां दृष्ट्वा देवान्ने विस्मयं ययुः । स्पगिताञ्च क्षणं तत्र धार्मिका धर्मभीरवः

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौत्रिशानकर्मवादे ब्रह्मखण्डे मालावतीविलापो नाम

त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।
विष्णुमालावतीसंवादेवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

तत्र स्थित्वा क्षणं देवा ब्रह्मेशानपुरोगमाः । ययुर्मांलावतीमूलं परं मंगलदायकाः ॥ १॥
मालावती सुरान् दृष्ट्वा प्रणनाम पतिव्रता । खरोदकान्तं संस्थाप्यदेवानां सन्निधौमुने ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्रैकश्चिद्ब्राह्मणवालकः । आजगाम सुराणाञ्च सभामतिमनोहरः ॥३॥
दण्डी छत्री शुक्लवासा विभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् । दीर्घपुस्तकहस्तश्च सुप्रशान्तश्चसस्मितः
चन्दनोक्षितसर्वाङ्ग प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । सुरान्संभाष्यतत्रैव विन्मितान्बिष्णुमायया
तत्रोवाच सभामग्रे तारामग्रेयया शशी । उवाच देवान् सर्वांश्च मालतीञ्च विचक्षणः

ब्राह्मण उवाच ।

कथमत्र सुराः सर्वे ब्रह्मेशानपुरोगमाः । स्वयं विधाता जगतां स्रष्टाऽत्र केन कर्मणा ॥
सर्वब्रह्माण्डसंहर्ता शम्भुरत्र स्वयं विभु । बहो त्रिजगतां साक्षी धर्मश्च सर्वकर्मणाम्
कथं रविः कथं चन्द्रः कथमत्र हुताशनः । कथं कालो मृत्युकन्या कथंवाऽत्र यमादयः

हे मालावति त्वत्क्रोडे शयः कस्तेऽतिशुषिकतः ।

जीवितायाः कथं मूले धोपितश्च पुमान् शयः ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा तांश्च तां विप्रो विररामसभातटे । । मालावती तं प्रणम्य समुवाचविचक्षणम्
मालावत्युवाच ।

श्रीतन्द्रपूर्वकं घन्दे विप्ररुपं जनार्दनम् । तुष्टा देवा हरिस्तुष्टो यस्य पुष्पजलेन च ॥१२॥
अथघान्तु रुचिमो ! शोकात्तांयानिदेदने । समा दृष्ट्वासतांशरवत्यांग्यायोग्येष्टपावताम्
उपरर्हणमाख्यांऽहं फन्या चित्ररथस्य च । सर्वे मालावतीं दृष्ट्वा धदन्ति विप्रपुङ्गव ॥
दिव्यं लक्षयुगं रम्ये स्थाने स्थाने मनोहरे । शृता व्रीडा च स्वच्छन्दमनेन स्वामिना सद

प्रिये स्नेहो हि सार्ध्वीना योषान् विप्रेन्द्र योषिताम् ।

सर्वं शास्त्रानुसारेण जानांसि त्व चिचक्षण ॥ १६ ॥

अकस्मात् ब्रह्मण शापात् प्राणास्तत्याजमत्पति । देवानुद्दिश्यविलपे यथाजीवतिमत्पतिः
स्वकार्यसाधने सर्वे व्यग्राश्च जगतीतले । भावाभाव न जानन्ति केवलस्वार्थतत्परा ॥

सुख दुःख भय शोक सन्ताप कर्मणा नृणाम् ।

ऐश्वर्यं पद्मानन्दो जन्म मृत्युश्च मोक्षणम् ॥ १६ ॥

देवाश्च सर्वजनका दातार कर्मणा फलम् । कर्तार कर्मवृक्षाणा मूलच्छेदञ्चलीलया ॥
न हि देवात्परोबन्धुर्न हि देवात्परो धर्मा । दयावान्न हि देवाश्च न च दाता तत पर
सर्वान् देवानह याचे पतिदान ममेप्सितम् । धर्मार्थकाममोक्षाणा फलदाश्चसुखदुमान् ॥

यदि दास्यन्ति देवा मे कान्तदान यथेप्सितम् ।

भद्र तदान्यथा तेभ्यो दास्यामि स्त्रीरथ ध्रुवम् ।

शपिष्यामि च सर्वाश्च दारुण दुर्निवारकम् ।

दुर्निवार्यं सतीशापस्तपसा वेन धार्यते ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा मालतीसार्ध्वा शोकार्त्तासुरससदि । विरराम द्विजश्रेष्ठस्तामुवाच च शौनक ॥
ब्राह्मण उवाच ।

कर्मणा फलदातारो देवा सत्यञ्च मालति । न सद्य सुचिरेणैव धान्य वृषकवन्नृणाम्
गृही च वृषकद्वारा क्षेत्रेधान्य घपेत् सति । तद्द्रुतो भवेत्कालेकालेवृक्ष फलस्यपि ॥
काले सुषक भवति काले प्राप्नोति तद्गृही । एव सर्वं समुज्ये चिरेण कर्मण फलम् ॥
अष्टौ घपति ससारे गृहस्थो विष्णुनायया । काले तद्द्रुरोवृक्ष कालेप्राप्नोति तत्फलम्
पुण्यवान् पुण्यभूमौ च करोति सुचिरन्तप । तेषाञ्च फलदातारो देवा सत्येन सशय
ब्रह्मणानामुखे क्षेत्रे श्रेष्ठेऽनूपरप्ये च । यो यज्जुहोतिभक्त्या च स तत् प्राप्नोतिनिश्चितम्
न यत्न न च सौन्दर्यैर्नैश्वर्यं न धनसुत । नैवस्त्री नच सत्कान्तकिम्भवेत्तपसा चिना
सेवतेप्रहृतिर्योहि भक्त्या नन्मनिजन्मनि । सलभेत् सुन्दरीकान्ताचिनीताञ्जगुणान्विताम्
श्रियञ्च निश्चला पुत्र पात्र भूमि धन प्रज्ञाम् । प्रकृतेश्च घरेणैव लभेद्भक्तोऽचलीलया ॥

शिवं शिवस्वरूपञ्च शिवदं शिवंकारणम् । शोभानन्दं महोत्तमानं परं मृत्युञ्जयं परमम् ॥३५॥
 तमीशंसेषतेयोहिभूत्तथाजन्मनिजन्मनि । पुमान्प्रामोदिसत्कान्तांकामिनीचापिसत्पतिम्
 विद्यां ज्ञानं सुकवितां पुत्रं पौत्रं परां श्रियम् । बलं धनं विक्रमञ्च लभेद्दरवरेण सः ३७
 ब्रह्माणं भजतेयो हि लभेत् सोऽपिप्रजा श्रियम् । विद्यामैश्वर्य्यमानन्दं धरेणब्रह्मणोनरः
 यो नरो भजते भक्त्या दीनतायं दिनेश्वरम् । विद्यामारोग्यमानन्दं धनं पुत्रं लभेद्दुष्कृमम्
 गणेश्वरं यो भजते देवदेवं सनातनम् । सर्वाग्रपूज्यं सर्वेशं भक्त्या जन्मनिजन्मनि ॥४०॥
 विप्रनाशो भवेत्तस्य स्वप्ने जागरणेऽनिशम् । परमानन्दमैश्वर्यं पुत्रं पौत्रं धनं प्रजाः ॥
 ज्ञानं विद्यां सुकवितां लभते तद्वरेण च । भजते योहि विष्णुञ्च लक्ष्मीकान्तं सुरेश्वरम्
 धर्मो चेद्भवेत् सर्वनिर्वाणमन्यथा ध्रुवम् । शान्तंनिषेव्य पातारं सत्यंसत्यं लभेन्नरः
 सर्वं तपः सर्वधर्मं यशः कीर्त्तिमनुत्तमाम् । विष्णुं निषेव्य सर्वेशं यो मूढो लभतेवरम् ॥
 विडम्बितोविधाम्नाऽसौ मोहितोविष्णुमायया । मायानारायणीशाना सर्वप्रकृतिरीश्वरी
 सा कृपा कुरुते यञ्च विष्णुमन्त्रं ददाति तम् । धर्मयो भजते धर्मो सर्वधर्मं लभेद्दुष्कृमम्
 इहलोके सुखंभुक्त्वा यातिविष्णोःपरंपदम् । योयं देयं भजेद्भक्त्या स चादौ लभते च तम्
 काले पश्चात्तेनसाद्धं परं विष्णो पदं लभेत् । श्रीकृष्णं भजते योहि निगुणं प्रकृतेः परम्
 ब्रह्माविष्णुशिवादीनां सेव्यं धीजं परात्परम् । अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ४६
 साकारञ्च निराकारं ज्योतिः स्वेच्छामयं विभुम् । सर्वाध्याञ्च सर्वेशं परमानन्दमैश्वर्यम्
 निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । जीवन्मुक्तः स सत्यं हि न धरं लभते सुधीः ॥
 स सर्वं मन्यते तुच्छं सालोक्यादि चतुष्टयम् । ब्रह्मत्वममरत्यं चा मोक्षं यत्तुच्छयत्सति!
 ऐश्वर्य्यं लोप्सुतुन्यञ्च नश्वरं चैव मन्यते । इन्द्रत्वञ्च मनुष्यञ्च चिरजीवित्यमेव चा ॥५३॥
 जलमुद्गुदधदुग्धया चातितुच्छं न गण्यते । स्वप्नेजागरणेयापि शश्वत् सेयाञ्चवाञ्छति
 दास्यंविना न याचेत श्रीकृष्णस्य पदंपरम् । तत्पादाब्जे द्वुदां भक्तिः श्रेय्यापूर्णो निरुत्तरम्
 परिपूर्णतमं ब्रह्म निषेव्य सुस्थिरः सदा । आत्मनः कुलकोटिञ्च शतं मातामहस्य च ॥
 श्वशुरस्य शतं पूर्वमुद्गत्य चावलीलया । दासं दासीं प्रसूमाभ्यां पुत्रादपि परं शतम् ५७
 उद्धरेत् कृष्णभक्तश्च गोलोकं याति निश्चितम् । तावद्गमैयसेत् कामी तापतीयमयातना

पञ्चदशोऽध्यायः] * मालावतीकालपुरुषसंवादवर्णनम् *

५३

तावद् गृही च भोगार्थी यावत्कृष्णं न सेवते । मुख्यकर्त्राद्दिष्णुमन्त्रो यस्यकर्णं प्रविश्यति
 यमस्तद्विषयं दूरं करोति तत्क्षणं भिया । मधुपर्कादिकं ब्रह्मा पुरैव तन्नियोजयेत् ६०
 अहो बिलङ्घ्य मह्लोकं मार्गेणानेन यांस्यति । तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि
 दुरितानि च भीतानि कोटिजन्मदृशानि च । तं विहाय पलायन्ते ह्यनतेयं यथोरगाः ॥
 पुरातनं कृतं कर्म यद् यत्तस्य शुभांशुमम् । छिनत्ति कृष्णचक्रेण तीक्ष्णधारेण सन्ततम्
 तं विहाय जग मृत्युर्याति चक्रभिया सति । अन्यथा शतखण्डं तां कुस्ते च सुदर्शनः ॥
 निःशङ्को यातिगोलोकं विहाय मानधीतनुम् । गत्वादिव्यां तनुंधृत्वा श्रीकृष्णसेवतेसदा
 यावत् कृष्णोहिगोलोके तावद्भक्तो वसेत् सदा । निमेषमन्यते दासोऽनभ्वरं ब्रह्मणोऽप्यः
 इति श्रीप्रह्लादेवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे विष्णुमालतीसंवादो नाम
 चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

मालावतीकालपुरुषसंवादवर्णनम् ।

ब्राह्मण उवाच ।

केन रोगेण हि मृतोऽधुना साध्वि ! तव प्रियः ।

सर्वरोगचिकित्साञ्च जानामि च चिकित्सकः ॥ १ ॥

मृततुल्यं मृतं रोगात् सप्तहास्यन्तरे सति ! महाज्ञानेन तं जीवं जीवयाम्यवलीलया ॥
 जगामृत्युं यमं कालं व्याधिमानीय त्वत्पुरः । निबध्यदातुंशकोऽहं व्याधो घट्टध्यापशुंयथा
 यतो न सञ्चरेद् व्याधिर्देहेषु देहेधारिणाम् । व्याधीनां कारणं यद्दृश्यत् सर्वं जानामिसुन्दरि
 यतो न सञ्चरेद् व्याधिधीजं दुष्टममङ्गलम् । तदुपायं विजानामि शास्त्रतत्त्वानुसारतः ॥
 यो वा योगेन खेदेन देहत्यागं करोति च । तस्य तं जीवनोपायं जानामि योगधर्मतः ॥
 ब्राह्मणस्य पचः धृत्वा स्फीतामालावतीसती । सस्मिताग्निग्धचित्ता सा तमुवाचप्रहर्षिता

मालावत्युपाच । १

अहो धृतं किमाश्चर्यं घचनवालववत्रत । वयसाऽतिशिशुर्दृष्टो ज्ञानं योगविदां परम् ॥
 त्वयावृताप्रतिज्ञान्च कान्त जीवयितु मम । विपरीतं न सदुपाक्यं तत्क्षणंजीवितपतिः
 जीवयिष्यति मत्कान्त पश्चाद्देविदा घरः । यदुयत् पृच्छामि संदेहात्तद्भवान्वकुमर्हति
 सभायां जीविते कान्तेतस्य तीव्रस्य सन्निधौ । त्वांहि प्रष्टुं न शक्ताहं विचमाने मदीश्वरे
 पते ब्रह्मादयो देवा विद्यमानाश्च ससदि । त्वञ्च वेदविदां श्रेष्ठो न च कश्चिन्मदीश्वरः ॥
 नार्यैरक्षतिभर्त्ताचेत् न कोऽपिखण्डितुंक्षमं प्रार्थस्ति करेति यदि स न कोऽपिरक्षिताभुवि
 एवंदेवेपुनो शक्तिशक्तेवा ब्रह्मरुद्रयोः । स्त्रीपुम्मावश्च योद्भव्यः स्वामीकर्त्ताचयोपिताम्
 स्वामीकर्त्ता च हर्त्ता च शास्ता पौष्टाच रक्षिता । अभीष्टदेवः पूज्यश्चन गुरुस्वामिनपर
 कन्या सत्कुलजाता या सा कान्तवशवर्तिनी ।

या स्वतन्त्रा च सा दुष्टा स्वभावात् कुलटा धुवम् ॥ १६ ॥

दुष्टा परपुमासञ्च सेवते या नराधमा । सा निन्दति पतिं शब्ददसद्वंशप्रसूतिका ॥१७॥
 उपवर्हणभार्याह कन्या चित्ररथस्य च । यभूर्गन्धर्वराजस्य कान्तभक्ता सदा द्विज १८
 सर्वकालयितुंशक्तस्त्वञ्च वेदविदा घरः । कालंयमं मृत्युकन्यामदभ्यासं समानय ॥ १६
 मालावतीवच धृत्या विप्रो वेदविदां घटः । समामध्ये समाहूय तान् प्रत्यहं चकार ह
 ददर्श मृत्युकन्याञ्च प्रथमं मालती सती । कृष्णवर्णां घोररूपां रत्नाम्बरधरां घराम् ॥

सस्मितां पद्भुजा शान्तां दयायुक्तां महासतीम् ।

कालस्य स्वामिनो धामे चतुःपष्टिसुतान्विताम् ॥ २२ ॥

काल नारायणाशञ्च ददर्श सुरता सती । महोप्ररूपं विकटं प्रीप्सत्सर्वसमप्रभम् ॥ २३॥
 पद्मवत्रं पौंड्रशभुजं चतुर्विंशतिलोचनम् । पद्पादं कृष्णवर्णञ्च रत्नाम्बरधरं परम् ॥२५॥
 देवस्य देवं विरनं सर्वसहारूपिणम् । कालाधिदेवं सर्वेशं भगवन्तं सनातनम् ॥२५॥
 ईशदास्यप्रसन्नास्यमङ्गमालाकरं घरम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥२७॥

सती ददर्श पुरतो ध्याधिसंघान् सुदुर्जयान् ।

वयसाऽतिमहावृद्धान् स्तनन्यान् मातृसन्निधौ ॥ २७ ॥

स्यूलपादं कृष्णवर्णं घर्मिष्ठं रविन्दनम् । जपन्तं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २८ ॥
घर्माघर्मविचारं परं घर्मस्वरूपिणम् । पापिनामपि शास्तरं ददर्श पुरतो यमम् ॥ २९ ॥
तांश्च दृष्ट्वा च निःशङ्का पप्रच्छ प्रथमं यमम् । मालावती महासार्ध्या प्रहृष्टवदनेक्षणा ॥

मालावत्युवाच ।

हे घर्मराज घर्मिष्ठ घर्मशास्त्रविशाद् । कालव्यतिक्रमे कान्तं कथं हरसि मे विमो ३१
यम उवाच ।

अप्रातकालो प्रियते न कश्चिज्जगतीतले । ईश्वराणां विना साधिवि नामृतं चालयाम्यहम्
अहं कालो मृत्युकन्या व्याधयश्च मुदुर्जयाः । निषेकेन प्रातकालं कालयन्तीश्वराण्यया
मृत्युकन्या विचारज्ञा यं प्राप्नोति निषेकतः । तमहं कालयाम्येव पृच्छ तां केन हेतुना ३

मालावत्युवाच ।

त्वमपि स्त्री मृत्युकन्या जानासि स्वामिबेदनम् ।

कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रिये ॥ ३१ ॥

मृत्युकन्योवाच ।

पुरा विश्वसृजा सृष्टाऽप्यहमेवात्र कर्मणि । न च क्षणा परित्यक्तुं बहुना तपसा सति ॥
सती सतीनां मध्ये च काचित्तेजस्विनी बरा । मामेव भस्मसात् कर्तुं क्षणा यदि भवेद्भवे
सर्वापच्छन्तिरेवेह तदा भवति सुन्दरि । पुत्राणां स्वामिनः पश्चात् भविता यद्भविष्यति
कालेन प्रेरिताऽहञ्च मत्पुत्रा व्याधयश्च वै । न मत्सुतानां दोषश्च न च मे शत्रु निश्चितम्
पृच्छ कालं महात्मानं घर्मज्ञं घर्मसंसदि । तदा यदुचितं भद्रे त्वत्करिष्यसि निश्चितम्

मालावत्युवाच ।

हे काल कर्मणां साक्षिन् कर्मरूप सनातन । नाप्यपणांशो भगवन् नमस्तुभ्यं पराय च
कथं हरसि मत्कान्ते जीवितायां मयि प्रमो । जानासि सर्वदुःखञ्च सर्वज्ञस्त्वं कृपानिधे
कालपुरुर उवाच ।

को घाऽहंकोयमः का च मृत्युकन्या च व्याधयः । वयं नमाम सततमिच्छामापरिपालकाः
यस्य सृष्टा च प्रकृतिर्ह्यविष्णुशिवादयः । सुरा मुनिन्द्रा मनवो मानवाः सर्वजन्तवः ॥

ध्यायन्ते तनुपदामभोजं यो गिनश्च विचक्षणः । जपन्ति शश्वनामनिपुण्यानि परमात्मनः ॥
 यद्वाद् धाति धातोऽथ सूर्यस्तपति यद्वात् । स्रष्टा प्रह्लादायस्यपाताविष्णुर्यदाज्ञयाः
 संहतो शङ्कः सर्वजगता यस्य शासनान् । धर्मश्च कर्मणा साक्षी यस्याज्ञापरिपालक
 राशिव्रतं प्रहा सर्वेभ्रमन्तियस्यशासनान् । दिगीशाश्चैव दिक्पालायस्याज्ञापरिपालका
 यस्याज्ञया च तरव पुण्याणि च फलानि च । विभ्रत्यैव ददत्यैव कालेमालावतीसति ॥
 यस्याज्ञया जलाधारा सर्वाधारा घसुन्धरा । क्षमावती च पृथिवी कम्पिता च मयेन च
 सहसा मोहिता माया माययायस्य सन्ततम् । सर्वप्रसूर्या प्रहृति सा भीता यद्वादादहो
 यस्यान्त न विदुर्वेदा घस्तूताभावगा अपि । पुराणानि च सर्वाणि यस्यैव स्तुतिपाठका
 यस्य नाम विधिर्विष्णुः सेवते सुमहान् विराट् । षोडशशोभगवत सपवतेजसो विभो
 सर्वैश्वर्य कालकाली मृत्योर्मृत्यु परात्पर । सर्वविभ्रमिनाशाय त कृष्ण परिचिन्तय
 सर्वाभीष्टञ्च भर्त्तार प्रदास्यति कृपानिधि । इमे यत्प्रेरिता सर्वे स दाता सर्वसम्पदाम्
 इत्युक्त्या कालपुरुषो विरराम च शौनक । कथा कथितुमारंभे पुनरेव तु ब्राह्मण ॥५७
 इति ध्याप्रह्लादवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे मालावतीकालपुरुषसवादे पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः ।

विष्णुमालावतीसंवादेन्याधिप्रणयनम् ।

ब्राह्मण उवाच ।

दृष्ट्वा कालोयमोमृत्युकन्याव्याधिगणाग्रहो । फस्तेऽधुना च सन्देहस्तं पृच्छकन्यके शुभे ॥
 ब्राह्मणस्य घच धृत्या दृष्ट्वा मालावती सती । यन्मनोनिहितं प्रश्नं चकार जगदीश्वरम् ॥

मालावत उवाच ।

त्वया यन् प्रयितो ध्याधि प्राणिनाप्राणहारकः । तत्कारणञ्च विविधसर्ववेदेनिरूपितम् ।
 यतो न सञ्चरेद् ध्याधिर्दुर्निवारोऽशुभापहः । तदुपायञ्च साकल्यं भवान् वक्तुमिहाहंति ॥

यद् धनुः पृष्ठमपृष्टं वा धातमज्ञातमेव वा । सर्वं कथय तद्भद्रं त्वं शुद्धं न वृत्सल ॥ ५ ॥
मालावतीयवः धृत्या विप्रहृषी जनार्दन । संहितां वक्तुमारमे सहितार्थञ्च वैद्यकीम् ॥

ब्राह्मण उवाच ।

घन्दै तं सर्वतत्त्वज्ञं सर्वकारणकारणम् । वेदवेदाङ्गवीजस्य धीजं श्रीहृष्णमीश्वरम् ॥
स ईशश्चतुरो वेदान् ससृजे मङ्गलालयान् । सर्वमङ्गलमङ्गल्यवीजरूपं सनातन ॥ ८ ॥
ऋग्जयु सोमाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा-वेदान् प्रजापति । विचिन्त्यतेयामर्थञ्चैवायुर्वेदं चकार स-
ष्ट्या तु पञ्चमं वेदं मास्कराय ददौ विभु । स्वतन्त्रसंहिता तस्माद्मास्करश्चकार स-
मास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदस्यसंहिताम् । प्रददौ पाठयामास ते चन्द्रसंहितास्तत-
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणितन्त्रज्ञानि च । व्याधिप्रणाशर्वाजानिसाश्रियमत्तोनिशामय
घन्यन्तरिर्दिपोदास कार्शीराजोऽश्विनीसुतो । नकुलसहदेवोऽर्किश्च्यवनोजनकोयुध
जाबालो जाजलि पैलः करयोऽगस्त्य एव च । एतेवेदाङ्गवेदगाथोद्देश्याधिनाशकाः
चिकित्सातत्त्वविज्ञान नाम तन्त्रं मनोहरम् । घन्यन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति
चिकित्सादर्पणं नामदिपोदासश्चकार स । चिकित्साकोमुदीदिव्याकार्शीराजश्चकार स
चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमन्नं चाश्विनीसुतो । तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् । ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह ॥ १८
च्यवनो जीवदानश्च चकार भगवानृषि । चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम् ॥ १९
सर्वसारं चन्द्रसुतो जाबालस्तन्त्रसारकम् । वेदाङ्गसारं तन्त्रञ्च चकार जाजलिर्मुनिः ॥
पैलो निदानं फल्गुस्तन्त्रं सर्वघरं पत्म् । द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसम्मव ॥ २१
चिकित्साशास्त्रार्वाजानितन्त्राण्येतानियोद्देश । व्याधिप्रणाशर्वाजानिवलाधानकराणिव
मथित्या ज्ञानमन्त्रेणैवायुर्वेदपयोनिधिम् । ततस्तस्माद्बुदाङ्गहर्नवनीतानि कोविदा ॥
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां मास्करसंहिताम् । आयुर्वेदं सर्ववीजं सर्वजानामि मुन्दरि
व्यापेस्तत्र पश्चान्न वेदनापाश्च निग्रह । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रमुत्तयुपः ॥ २५
आयुर्वेदस्य विज्ञाताचिकित्सासु यथार्थविन् । धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यं प्रकीर्तितं
जनकः-सर्वरोगाणां दुर्घातोदाहणोज्वरः । शिवमक्तश्च योगी च निष्ठुरो विरत्राहृतिः

भीमस्त्रिपादस्त्रिशिरः पद्भुजो नयलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥
 मन्दाग्निस्तस्य जनकोमन्दानेर्जनकाख्यः । पित्तश्लेष्मसमीपश्च प्राणिनांदुःखदायकाः
 वायुजः पित्तजश्चैव श्लेष्मजश्च तथैव च । ज्वरभेदाश्च त्रिविधाश्चतुर्थश्च त्रिदोषजः ॥
 पाण्डुश्च कामल कुष्ठ शोथः प्लीहा च शूलकः । ज्वरातिसारग्रहणीकासप्रणहलीमकाः
 मूत्रकृच्छ्रश्च गुल्मश्च रक्तदोषविकारजः । विषमेहश्च कुब्जश्च गोदश्च गलगण्डकः ॥३२॥
 भ्रमरी सन्निपातश्च विसृची दारणी सति । एषां भेदप्रभेदेन चतुःपट्टी रजः स्मृताः ॥
 मृत्युकन्यासुताश्चैतेजरातस्याश्चकन्यका । जराचम्रातुभि साद्वंशाश्वदु भ्रमति भूतलम्
 एते चोपायवेत्तारं न गच्छन्ति च संयतम् । पलायन्ते च तं दृष्ट्वा चैनतेयमिषोरगाः ॥
 चक्षुर्जलश्च व्यायाम पादाघस्तैलमर्दनम् । कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलश्च जराव्याधिविनाशनम्
 वसन्ते भ्रमणं वह्निसेयां स्वप्नं करोति यः । बालाश्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति
 खातक्षीतोदकक्षायी सेवते चन्दनद्रवम् । नोपयाति जरा तश्च निदाग्नेऽनिलसेचकम् ॥
 प्राविप्युणोदकक्षायी घृततोयं च सेवते । समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥
 शार्दूलं न गृह्णाति भ्रमणं तत्र चर्जयेत् । खातक्षायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥
 खातक्षायी च हेमन्ते काले वह्नश्च सेवते । भुङ्क्ते नवान्नमुष्णश्च जरा तं नोपगच्छति
 शिशिरंऽशुकवह्नश्च नयोष्णान्नश्च सेवते । यत्र घोष्णोदकक्षायी जरा तं नोपगच्छति ॥
 सद्योमांसं नवान्नश्च बालाक्षीक्षीरभोजनम् । घृतश्च सेवते यो हि जरा तं नोपगच्छति
 भुङ्क्ते सदनं क्षुत्काले तृष्णायां पीयतेजलम् । नित्यं भुङ्क्ते च तामूलं जरा तं नोपगच्छति
 दधि ह्यैव ह्यनीनश्च नवनीतं तथागुडम् । नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति ॥
 शुष्कमांसं स्त्रियं घृदां बालाकं तरुणं दधि । संसेचन्तं जरा याति श्रद्धा भ्रातिभि सह
 रात्रौ ये दधि सेचन्ते पुंश्चलीश्च रजस्यलाः । तानुपैति जरा हृष्टा भ्रातृभिः सह सुन्दरि
 रजस्यला च कुलटा चावीरा जाटूतिका । शूद्रयाजकपत्नी या ऋतुहीना च या सति ॥
 यो हि तासामन्नभोजी ग्रहाहत्यां लभेत्तु सः । तेन पापेन सादं सा जरा तमुपगच्छति
 पापानां घ्याधिभिः सादं मिश्रता सन्तं धुयम् । पापं व्याधिजरावीजं विप्रवीजं च निश्चितम्
 पापेन जायते घ्याधिः पापेन जायते जरा । पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयङ्करः ॥

तस्मात् पापं महावैरं दोषर्वाजममङ्गलम् । भारते सन्ततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः ॥
 स्वधर्माचारयुक्तञ्च दीक्षितं हरिसेवकम् । गुण्देवातिथीनाञ्च भक्तं सक्तं तपःसु च ॥५३॥
 मतीपवासयुक्तञ्च सदा तीर्थनिषेवकम् । रोगा द्रवन्ति तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥ ५४॥
 एतान् जरा न सेवेत् व्याधिसंघञ्च दुर्जयः । सर्वं बोध्यमसमये काले सर्वं प्रसिष्यति
 ज्वरञ्च सर्वरोगाणां जनकः कथितः सति । पित्तश्लेष्मसमीराञ्च ज्वरस्य जनकाख्यः
 एते यथा सञ्चरन्ति स्वयं यान्ति च देहिषु । तमेव विविधोपायं साध्वि मत्तो निशामय
 क्षुधि जाज्वल्यमानायामाहारामाव एव च । प्राणिनां जायते पित्तं चक्रे च मणिपूरके
 तालविल्वफलं भुङ्क्ता जलपानञ्च तनूक्षणम् । तदेव तु भवेत् पित्तं सद्यःप्राणहरं परम्
 ततोदकञ्च शरदि मात्रे तिकं विशेषतः । द्रवप्रस्तञ्च यो भुङ्क्ते पित्तं तस्य प्रजायते ॥
 सशर्करञ्च घन्याकं पिष्टं शीतोदकान्वितम् । चनकं सर्वगव्यञ्च दधि तक्रविदर्जितम्
 विल्यतालफलं पकं सर्वमैश्वमेव च । आर्द्रकं मुद्गयूपञ्च तिलपिष्टं सशर्करम् ॥ ६२ ॥
 पित्तक्षयकरं सद्योयलपुष्टिप्रदं परम् । पित्तनाशञ्च तर्दीजमुक्तमन्यं निबोध मे ॥ ६३ ॥
 भोजनानन्तरं स्नानं जलपानं विना तृषा । तिलतैलं क्षिग्धतैलं क्षिग्धमामलकाद्रवम् ॥
 पर्युपितानं तक्रञ्च पकं रम्भाफलं दधि । मेघाश्वु शर्करातोयं सुक्षिग्धजलसेवनम् ॥
 नारिकेलोदकं रश्मिस्नानं पर्युपिते जले । तन्मुञ्जापकफलं सुपकं कर्कर्दीफलम् ॥ ६६॥
 खातस्नानञ्च घर्षासु मूलकं श्लेष्मकारकम् । ब्रह्मरन्ध्रे च तज्जन्म महद्वीर्यविनाशनम् ॥
 षड्विस्वेदं भ्रष्टमङ्गं पकृतैलविशेषकम् । भ्रमणं शुष्कभक्षञ्च शुष्कपक्वहरितकी ॥ ६८ ॥
 पिण्डारकमपकञ्च रम्भाफलमपककम् । वेसवारः सिन्धुवारः अनाहारमपानकम् ॥६९॥
 सघृतं रोचनाचूर्णं सघृतं शुष्कशर्करम् । मरीचं पिप्पलं शुष्कमार्द्रकं जीवकं मधु । ७०॥
 द्रव्याण्येतानि गान्धर्वि ! सद्यःश्लेष्महराणि च । यलपुष्टिकरण्येव घायुर्वीजं निशामय
 भोजनानन्तरं सद्योगमनं घावंतं तथा । छेदनं घृहितापञ्च शश्वद्भ्रमणमैथुनम् ॥७२॥
 वृद्धास्त्रीगमनञ्चैव मनःसन्ताप एव च । अतिरक्षमनाहारं युद्धं कल्हमेव च ॥ ७३ ॥
 फट्टुवाक्यं मयं शोकः फेवलं वायुकारणम् । आशाब्धचक्रे तज्जन्म निशामय तदौषधम्
 पक्यं रम्भाफलञ्चैव सर्वाजं शर्करोदकम् । नारिकेलोदकञ्चैव सद्यस्तक्रं सुपिष्टकम् ॥

माह्विपं दधि मिष्टञ्च फेचलं चा सशर्करम् । सद्यःपर्युषिताग्रञ्च सौवीरं शीतलोदकम् ॥
 पक्वतैलविशेषञ्च तिलतैलञ्च देवलम् । लाडूलीतालखजूंमुष्णमामलकीद्रवम् ॥ ७७ ॥
 शीतलोष्णोदकस्तानं सुस्निग्धचन्दनद्रवम् । स्निग्धपद्मप्रतल्यं सुस्निग्धव्यजनानि च
 पतत्ते कथित वत्से ! सद्योवायुप्रणाशनम् । घायवस्त्रिचिधाः पुंसां क्लेशसन्तापकामजाः
 व्याधिसंघश्च कथितस्तन्त्राणि विविधानि च । तानि व्याधिप्रणाशाय वृत्तानिसद्विरेष च
 तन्त्राण्येतानि सर्वाणि व्याधिक्षयकराणि च । रसायनादयो येषु शोषायाश्चसुदुर्लभाः
 न शक्तः कथितुं साध्वि ! याथाभ्यं वत्सरेण च । तेषाञ्चसर्वतन्त्राणावृत्तानाञ्चविचक्षणैः
 येन रोगेण त्यक्तान्तो मृत' कथय शोभने ! तदुपायं करिष्यामि येन जीवेदयं सति !

सौतिरवाच ।

ब्रह्मणस्य वच' श्रुत्वा कन्या चित्ररथस्य च । कथां कथितुमारभे सा गान्धर्वीप्रहर्षिता
 मालावत्युवाच ।

योगेन प्राणांस्तत्याज ब्रह्मणः शापहेतुना । समायां लज्जितः फान्तो मम विप्रनिशामय
 सर्वं धृतमपूर्वञ्च शुभाव्यानं मनोहरम् । भवेद्भवे वृतः केषां महद्भयं विपदुषिना ॥८६॥
 अधुना मत्प्राणकान्तं देहि देहि विचक्षण । नत्वा च स्वामिनासादयास्यामिस्वगृहंप्रति ।
 मालावतीवच श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । सभां जगामदेवानां शीघ्रं विप्रस्तदन्तिकारत्
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे मालावतीविष्णुसंवादे
 चिफित्साप्रणयने षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

देवानांसमीपेविष्णोर्गमनम् ।

सौतिरवाच ।

दृष्ट्वा द्विजं देयसंघः प्रत्युत्थानं चकार च । पत्स्परञ्च सम्भाषा यमुव तत्र संसदि ॥
 मा तं धुमुषिरे देवाः श्रीहरिं विप्ररूपिणम् । पौर्वापर्यं विस्तृताश्चमोहिताविष्णुमायया

सुप्तान् सम्बोध्य विप्रश्च घावा मधुरया द्विज । उवाच सत्यं परमं प्राणिनायतशुभावहम्
'ब्राह्मण उवाच ।

उपवर्हणमार्य्येयं कन्या चित्ररथस्य च । ययाचे जीवदानञ्च स्वामिनः शोककर्षिता ॥
अघुना किमनुष्ठानमस्यकार्य्यस्य निश्चितम् । तन्मात्रुहिसुरास्वर्गेनिर्व्ययत्समयोचितम्
शतुकामा सुप्तान् सर्वान्साध्वीतेजस्विनीवरा । अहं क्षेमाययुष्माकमागतो बोधितासती
स्तुतिः कृता च युष्मामिः श्वेतद्वीपेहरेरपि । युष्माकमीशो विष्णुश्च कथमेवात्र नागतः
यभूवाकाशवाणीति पश्चाद् यास्यति केशवः । विपरीतं कथम्भूतं वाणीवाक्यमचञ्चलम्
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा जगद्गुरुः । उवाच वचनं सत्यं हितं परममङ्गलम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

मत्पुत्रो नारदः शतो गन्धर्वश्चोपवर्हणः । योगेन प्राणास्तन्याज पुनः शापान्ममैव हि
कालं लक्ष्युगं ध्याप्य शितिरस्य महीतले । शूद्रयोर्नि ततः प्राप्य भवितामस्तुतः पुनः
अस्य कालावशेषस्य कञ्चिदस्ति द्विजोत्तम ! तत्तु वर्षसहस्रञ्चैवायुरस्यास्ति साम्प्रतम्
दास्यामि जीवदानञ्च स्वयं विष्णोऽप्रसादतः ।

यथैनं न स्पृशेन् शापस्तत् करिष्यामि निश्चितम् ॥ १३ ॥

नागतो हरिर्त्रेति स्वया यत् कथितं द्विज ! हरिः सर्वत्र सर्वात्मा विग्रहः कुत आत्मनः
स्वेच्छामयः परं ब्रह्म भकानुग्रहविग्रहः । सर्वं पश्यति सर्वज्ञः सर्वत्रास्ति सनातनः ॥
विः पञ्चत्र्यातिवचनोणुश्च सर्वत्रवाचकः । सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेन विष्णुः प्रकीर्तितः
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतः पुमान् ।

भक्त्या च यः स्मरेद्विष्णुं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥ १७ ॥

कर्मारम्भे च मध्ये वा शेपे विष्णुञ्च यः स्मरेत् । परिपूर्णतस्य कर्म वैदिकञ्चमवेदुद्विज
अहं स्रष्टा च जगतां विघाता संहरो हृदः । धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याज्ञापरिपालकः
कालः संहर्ते लोकान् यमः शास्ता च पापिनाम् ।

उपैति मृत्युः सर्वाश्च मिया यस्याज्ञया सदा ॥ २० ॥

सर्वेशा या च सर्वाद्यप्रकृतिः सर्वस्य पुत्रा । सा मीता यस्य पुत्रतो यस्याज्ञापरिपालिका

महेश्वर उवाच ।

पुत्राणां ब्रह्मणस्तेषां कस्य वंशोद्भवो भयान् । वेदानधीत्य भवता ज्ञातः कः सारण्य च

शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्य कस्त्वं नाम्ना च भो द्विज ! --

विभर्त्यर्कातिरिक्तञ्च शिशुरूपोऽसि साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

विडम्बयसि देवांश्च विष्णुमस्माकमीश्वरम् । हृदिष्यञ्च न जानासिपरमात्मानमीश्वरम्
यस्मिन् गते पतेद्देहो देहिनां परमात्मनि । प्रयान्ति सर्वे सत्यध्यात् नरदेवानुगा इव ॥

जीवस्तत्रप्रतिविम्बश्च मनो ह्यानञ्च चेतना । प्राणाध्वेन्द्रियवर्गाश्च बुद्धिर्मघाधृतिः स्मृति
निद्रादया च तन्द्रा च क्षुत्तृष्णापुष्टिरेव च । धृद्धासंतुष्टिरिच्छाचक्ष्मालज्जादिका स्मृता
प्रयाति यत्पुरः शक्तिशेखरे गमनोन्मुखे । एते सर्वे च शक्तिश्च यस्याह्वापरिपालका
ईश्वरे च स्थिते देही क्षमश्च सर्वकर्मसु । गतेऽस्पृश्यः श्वस्त्याज्यः कस्तं देहीन मन्यते

स्वये ब्रह्मा च जगतां विधाता सर्वकारकः । पदारविन्दमनिशं ध्यायते द्रष्टुमक्षमः ॥३०॥

युगलञ्च तपस्तत्रं श्रीकृष्णस्य च वेधसा । तदा वभूव ज्ञानी च जगत् स्रष्टुं क्षमस्तदा ॥

असंख्यकालं सुखिरं तपस्तत्रं हरेर्मया । तृप्तिं जगाम न मनस्तृप्यते केन मङ्गले ॥३२॥

अधुना पञ्चवक्त्रेण यन्नामगुणकीर्तनम् । गायन् भ्रमामि सर्वत्र निःस्पृहः सर्वकर्मसु ॥

मत्तो याति च मृत्युश्च यन्नामगुणकीर्तनात् । शश्वज्जपन्त तत्राम दृष्ट्वा मृत्युः पलायते

सर्वप्रज्ञाण्डसंहर्ताऽप्यहं मृत्युञ्जयामिधः । सुखिरं तपसा यस्य गुणनामानुकीर्तनम्

फाले तत्र घिलीनोऽहमाविर्भूतस्ततः पुनः । न कालो मम संद्वर्ता न मृत्युर्धत्प्रसादतः

गोलोके यः स वैकुण्ठे श्वेतद्वीपे स एव च । अंशाशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मण्यद्विस्फुलिङ्गवत्

मन्यन्तर्जन्तु दिव्यानां गुणानामेकसत्तति । अष्टाविंशतिमे शत्रे गते च ब्रह्मणो दिनम् ॥

एतन्संप्रियाविशिष्टस्य शतवर्षायुषो विधेः । पाते लोचनपातश्च यद्विष्णोः परमात्मनः

यहं फलानामृषयः कृष्णस्य परमात्मनः । परं महिम्नः को गच्छेन्न जानामि च किञ्चन

इत्युक्त्या शङ्करस्तय विरराम च शौनकः । धर्मश्च घक्तुमारोमे यः साक्षी सर्वकर्मणाम् ॥

धर्म उवाच ।

यन्प्राणिपादो सर्वत्र चक्षुश्च सर्वदर्शनम् । सर्वान्तरात्मा प्रन्वृत्तोऽप्रत्यक्षश्च दुरात्मनः

मन्वनाऽपिलनांविष्णुर्नायादिति यद्वक् । त्वयोक्तं तत्कया बुद्ध्या मुनीनाञ्जनतिप्रन-
महन्निन्दामवेदुःप्रनैवसाधुःशृणोतिताम् । निन्दकश्चात्रेति साधुःकुर्न्नापाकेऽज्जेदुयुगम्
श्रुत्वादेवान्महन्निन्दोर्ध्रविष्णोःस्मणादुत्रुयः । मुच्यतेसर्वपापेभ्य पुण्यप्राप्तौतिदुर्लभम्
कान्तोऽकान्तोवापि विष्णुनिन्दाकरोति यः । यःशृणोति हसति वा समानध्वेनरायम्
कुर्न्नापाके पचति स यावद्धि ब्रह्मणो वरः । स्थलंवेदपूतञ्च सुरापानं यथा द्विज ॥
प्रार्थत्यनरकंयाति श्रुतन्तत्रैववेदुःप्रुदम् । विष्णुनिन्दान्त्रिविधा ब्रह्मणा कथितापुरा ॥
अप्रत्यक्षञ्च कुर्वते किं वा तञ्च न मन्यते । देवान्यसान्यं कुरुते ज्ञानहीनो नरायम् ॥
तस्यात्रनिकृतिर्नास्तियावद्वैब्रह्मणशतम् । गुरोर्निन्दां यः करोतिपितुर्निन्दानरायम् ॥

स याति कालसूत्रञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥ ५० ॥

विष्णुर्गुरुश्च सर्वेषां जनको ज्ञानदायकः । पोष्टा पाता मयत्राता वरदाता जगत्त्रये ॥
एषाञ्च ध्वनयित्वा त्रयाणां विप्रपुंगवः । प्रहृत्योवाच तान् देवान् वाचान्पुराणुनः ॥

ब्राह्मण उवाच ।

का कृताविष्णुनिन्दाऽहो हे देवाऽर्नशात्तिलिनः । नगतो हरित्रेति व्यर्थाकारात्तरस्वती ॥
इति वोक्तंनयामद्रं श्रुत धर्मार्यनीश्वराः । सनायापाक्षिकाःसन्तोऽन्तिन्मशतपूरुपम् ॥
श्रुञ्च मावका श्रुत विष्णुः सर्वत्र सन्ततम् । इति चेत् तत्कथंयाताःश्वेतद्वीपं वराय च
अंशंशितोर्न भेदश्चेदालमनश्चेति निश्चितम् । कलाहित्यानिपेवन्तेसन्तः पूर्णतमं कथम्
कोटिजन्मदुरारायनस्तायनस्ततानपि । आशा बलवती पुंसां कृष्णं सैवितुनिच्छति ॥
किं शूद्राः किं महान्तश्च वाञ्छन्तिपरमंपदम् । लघुमिच्छतिचन्द्रञ्चवाहुभ्यांवाननोयथा
यो विष्णुर्विपरी विश्वे श्वेतद्वीपनिवास्तुत् । सूर्यं ब्रह्मेशमर्मादिक्पालाश्च महेश्वराः
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरलोकाश्चराचराः । एवं कतिविधाः सन्ति प्रतिविश्वेदुस्तन्तम्
विश्वानाञ्च सुराणाञ्च कः संख्यां कर्तुमीश्वरः । सर्वेषामीश्वरकृणो मकानुग्रहविग्रहः

— लङ्घ्यञ्च सर्वप्रह्लाप्येत् वैकुण्ठं सत्यनीश्वरम् ।

— तस्माद्गृहं च गोलोकः पञ्चायात् कोटिमोजनम् ॥ ६२ ॥

चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे लक्ष्मीकान्तः सनातनः । सुन्दरान्दकुन्दपार्यदादिनिरावृतः ॥ ६३ ॥

गोलोके द्विभुजः हृष्णो राधाफान्तः सनातनः । गोपाङ्गनादिभिर्युक्तो द्विभुजैर्गोपपार्श्वैः
 परिपूर्णतमं ब्रह्म स चात्मा सर्वदेहिनाम् । स्वेच्छामयश्च विहरेद्दासे वृन्दावने संदा ॥
 तज्ज्योतिर्मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । ध्यायन्ते योगिनः सन्त सन्ततञ्च निरामयम्
 नवीननिरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् । कौटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ॥ ६७ ॥
 किशोरवयसं शश्वत्शान्तं सस्मितमीश्वरम् । ध्यायन्ते वैष्णवाः सन्त सेवन्ते सत्यविप्रहम्
 यूयञ्च वैष्णवा ब्रूहि कस्य वंशोद्भवो भवान् । शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्येत्येवंमाञ्च पुनः पुनः
 यस्य वंशोद्भवोऽहञ्च यस्य शिष्यश्च बालकः । तस्येदं वचनं ह्यनं देवसंघा निबोधत ॥
 शीघ्रं जीवय गन्धर्वं देवेश्वर सुरेश्वर । व्यक्तो विचारैर् मूर्खः को चाग्युद्धे किप्रयोजनम्
 इत्युक्त्या बालकस्तत्र विप्ररूपी जनार्दनः । विरराम सभामध्ये प्रजहास च शौनक ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे विष्णु-सुरसंघसंवादे विष्णुप्रशंसाप्रणयने
 सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

गन्धर्वाय जीवदानम् ।

सौतिष्याच ।

देवा सार्द्धं ब्राह्मणेन मोहिता विष्णुमायया । प्रययुर्मां लतीमूलं ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥ १ ॥
 प्रश्ना कामण्डलुजलं ददौ गात्रे शवस्य च । सञ्चारं मनसस्तस्य चकार सुन्दरं वपुः ॥
 ज्ञानदानं ददौ तस्मै ज्ञानानन्दः शिष्यः स्वयम् । धर्मज्ञानं स्वयं धर्मो जीवदानञ्च ब्राह्मणः
 पद्भिर्दर्शनमात्रेण बभूव जट्टरानलः । कामदर्शनमात्रेण सर्वकामः सुनिश्चितम् ॥ ४ ॥
 तस्य पायो रधिष्ठानाङ्गान् प्राणस्वरूपिणः । निःस्वास्तस्य च सञ्चारः प्राणानाञ्च बभूव ह
 स्वर्पाधिष्ठानमात्रेण दृष्टिशक्तिर्बभूव ह । पाक्यं घाणीदर्शनेन शोभा धीर्दर्शनेन च ॥ ६ ॥

शबस्तयापिनोत्तस्यो यया शेते जडस्तया । विशिष्टयोधनं प्राप चाधिष्ठानं विनात्मनः ।
ब्रह्मणो धवनात् साध्वीतुष्टावपरमेश्वरम् । स्नात्वाशीतं सरित्तोयेधृत्वाधीते च वाससी ।

मालापत्युवाच ।

घन्दे तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम् । विना येन शया सर्वे प्राणितो जगतीतये ॥
निर्लितं साक्षिरूपञ्च सर्वेषां सर्वकर्मसु । विद्यामानं न दृष्टञ्च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा ॥१०॥
येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वाधारा परात्परा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रसू र्यां त्रिगुणात्मिका ।
जगत्स्रष्टा स्वयं ब्रह्मा त्रियतोयस्य सेवया । पाता विष्णुश्च जगतां संहर्ता शिङ्करः स्वयम् ।
ध्यायन्ते यं सुपाः सर्वे मुनयो मतवस्तथा । सिद्धाश्च योगिनः सन्तः सन्ततं प्रवृत्तेः परम् ।
साकारश्च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम् । धरं धरेण्यं धरदं धराहं धरकारणम् । ११॥
तपःफलं तपोबीजं तपसाञ्च फलप्रदम् । स्वयं तपःस्वरूपञ्च सर्वरूपञ्च सर्वतः ॥ १५ ॥
सर्वाधारं सर्वबीजं कर्म तन्कर्मणां फलम् । तेषाञ्च फलदातारं तद्वीजं क्षयकारणम् ॥
स्वयं तेजःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । सेवाध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना १७
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । अतीतरुमनीयञ्च रूपं तत्र मनोहरम् ॥१८॥
नरीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीपद्मास्यसमन्वितम् । १९
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥२०॥
द्विभुजं मुल्लोहस्तं पीतकौशेयवाससम् । किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम् । २१
गोपाङ्गनापरिचृत कुत्रचिन्निर्जने वने । कुत्रचिद्रासमध्यस्थं राधया परिप्रेषितम् ॥ २२॥
कुत्रचिद् गोपवेशञ्च वेष्टितं गोपालकैः । शतशृङ्गावलोत्कृष्टे रम्ये वृन्दावने वने ॥२३॥
निकरं कामधेनूतां रक्षन्तं शिशुरूपिणम् । गोलोके विज्जातीरे पारिजातवने वने ॥२४॥
वेपुं कण्ठं मयुरं गोपीसम्मोहकारणम् । निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम् ॥
लक्ष्मीकान्तं पार्यदैश्च सेवितञ्च चतुर्भुजैः । कुत्रचिन् स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च ॥
ऋतेर्दमे विष्णुरूपं यश्या परिप्रेषितम् । कुत्रचिन् स्वांशरूपेण ब्रह्माण्डे ब्रह्मरूपिणम् ।
शिवस्वरूपं शिवदं स्वांशेन शिवरूपिणम् । स्वात्मनोऽडशांशेन सर्वाधारं परान्परम् ॥
स्वयं महद्विरारूपं विश्वौघं यस्य लोमसु । लीलया स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च

नानावतारं विमुञ्चत वीजं तेषां सनातनम् । वसन्तं कुत्रचित् सन्तं योगिनां हृदये सताम् ।
 प्राणरूपं प्राणिनाञ्च परमात्मानमीश्वरम् । तञ्च स्तोतुमसक्ताहमबला निर्गुणं विभुम् ॥ ३१ ॥
 निर्लक्ष्यञ्च निरीहञ्च सारं वाङ्मनसोः परम् । यं स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ॥
 पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्रो गजवक्त्रः पङ्काननः । यं स्तोतुं न क्षमामाया मोहितायस्य मायया ।
 यं स्तोतुं न क्षमार्थाश्च जङ्घोभूता सरस्वती । वेदान शकार्यं स्तोतुं केवा विद्वांश्च वेदवित् ।

किं स्तोमि तमनीहञ्च शोकार्ता स्त्री परतत्परम् ।

इत्युक्त्वा सा च गान्धर्वो विरराम हृतेद च ॥ ३५ ॥

कृपानिधिं प्रणनाम भयार्ता च पुनः पुनः । कृष्णश्च शक्तिमिः सार्द्धमधिष्ठानं चकार ह ॥

भर्तुरभ्यन्तरे तस्याः परमात्मा निराकृतिः ।

उत्थाय शीघ्रं वीणाञ्च धृत्या स्नात्वा च वाससी ॥ ३७ ॥

प्रणनाम देवसङ्घं ब्राह्मणं पुरतः स्थितम् । नेदुर्दुन्दुभयो देवाः पुण्यवृष्टिञ्च चक्रिरे ॥ ३८ ॥
 दृष्ट्वा चोपरि दम्पत्योः प्रददुः परमाशियम् । गन्धर्वो देवपुरतो ननर्त्त च जगौ क्षणम् ॥
 जीवितपुरतः प्राप देवानाञ्च घरेण च ! जगाम पत्न्या सार्द्धञ्च पिता माता च हर्षितः ।
 उपग्रहणगन्धर्वो गन्धर्वनगरं पुनः । मालावतीं रत्नकोटिं धनानि विविधानि च ॥ ४१ ॥
 प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च भोजयामास तान् सती । वेदांश्च पाठयामास कारयामास मङ्गलम् ॥
 महोत्सवश्च विविधं हरेर्नामैकमङ्गलम् । जामुर्देवाश्च स्वस्थानं विप्ररूपी हरिः स्वयम् ॥
 एतत्ते कथितं सर्वं स्तपराजञ्च शौनक । इदं स्तोत्रं पुण्यरूपं पूजाकाले तु यः पठेत् ॥
 हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभते वैष्णवो जनः । धरार्थो यः पठेद्भक्त्या चास्तिकः परमास्थया ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां निश्चितं लभते कल्म ।

विद्यार्था लभते विद्यां धनार्थो लभते धनम् ॥ ४६ ॥

भाष्यार्थो लभते भाष्यं पुत्रार्थो लभते पुत्रम् । धर्मार्थो लभते धर्मं यशोऽर्थो लभते यशः ॥

भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं प्रजाभ्रष्टः प्रजां लभेत् ।

रोगातो मुच्यते रोगाद् यदो मुच्येत वन्धनात् ॥ ४८ ॥

सौतिस्वाच ।

तुष्टाय येन स्तोत्रेण मालती परमेश्वरम् । तदेव स्तोत्रं दत्तञ्च मन्त्रञ्च कवचं शृणु ॥११॥
 ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । इदं मन्त्रं कल्पतरुं प्रददी पौंड्रशाक्षरम् ॥
 पुरा दत्त कुमाराय ब्रह्मणा पुष्करे हरे । पुरा दत्तञ्च कृष्णेन गोलोके शङ्कराय च ॥१३॥
 ध्यानञ्च विष्णोर्वेदांक्तं शाश्वतं सर्वदुर्लभम् । मूलेन सर्वं देवञ्च नैवेद्यादिकमुत्तमम् ॥
 अतीवगुप्तकवचं पितुर्वचनान्मया श्रुतम् । पित्रे दत्तं पुरा विप्र गङ्गायां शूलिता ध्रुवम् ॥
 शूलिने ब्रह्मणे दत्त गोलोके रासमण्डले । धर्माय गोपीकान्तेन कृपया परमाद्भुतम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच ।

राधाकान्त महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम् । ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥
 मा महेशञ्च धर्मञ्च भक्तञ्च भक्तवत्सल । त्वत्प्रसादेनपुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश धर्मदं कवचं परम् । अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
 यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि । यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कवचेऽपि च ॥
 कुरु सृष्टिमिमधुन्या धाता त्रिजगतां भव । सिंहर्ता भव हे रामो मम तुल्यो भवे भव ॥
 हे धर्म ! त्वमिमधृत्वा भव साक्षी च कर्मणाम् । तपसां फलदाता च यूयं मथतमद्भरात् ॥
 ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कवचस्य हरिः स्वयम् । ऋषिगण्डश्चगायत्री देवीऽहजगदीश्वरः ॥
 धर्मार्यकाममोक्षेण विनियोगः प्रकीर्तितः । त्रिलक्षवारपठनात् सिद्धिदं कवचं विधे ॥
 यो भवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेत्तु सः । तेजसा सिद्धियोगेन ज्ञानेन विक्रमेण च ॥
 प्रणवो मे शिरः पातु नमो रासेश्वराय च । भालं पायान्नेत्रयुग्मं नमो रात्रेश्वराय च ॥
 कृष्णं पायान् श्रोत्रयुग्मं हे हरे ध्यानमेव च । त्रिह्रिक्वां वह्निजायातु कृष्णायैति च सर्वतः ॥
 श्रीकृष्णाय स्वाहेति च कण्ठपातुपङ्क्षरः । ह्रीं कृष्णाय नमो घनत्रयीं पूर्वश्च भुजह्वयम् ॥
 नमो गोपाङ्गनेशाय स्वन्धावष्टाक्षरोऽद्यतु । दन्तं किमोष्टयुग्मं नमो गोपीश्वराय च ॥
 ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । स्वयं वक्षन्ऽहं पातु मन्त्रोऽयं पौंड्रशाक्षरः ॥
 ऐं कृष्णाय स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽद्यतु । ओं विष्णवे स्वाहेति च कङ्कालं सर्वतोऽद्यतु ॥

ओं हरये नम इति पृष्ठं पादं सदाऽवतु । ओं गोवर्द्धनधारिणे स्वाहा सर्वशरीरकम् ॥

प्राच्यां मां पातु श्रीगृष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः ।

दक्षिणे पातु गोर्पाशो नैऋत्यां नन्दनन्दनः ॥ ३३ ॥

वात्परांपातुगोविन्दो वायव्यांराधिकेश्वरः । उत्तरेपातुरासेश ऐशान्यामच्युतस्वयम् ॥

सन्तनं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम् । इति ते कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम् ॥

मम जीवनतुल्यञ्च गुप्सभ्यं दत्तमेव च । अश्वमेधसहस्राणि वाजर्षेयशतानि च ॥

कलां नार्हन्ति तान्येव कवचस्यैव धारणात् ॥ ३६ ॥

गुप्सभ्यर्च्य पिथियद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । स्नान्वातञ्च नमस्कृत्यस्वचं धारयेन् सुधीः ॥

कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेद्द्विज ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे महापुरण-ब्रह्माण्डपावनं नाम श्रीगृष्णकवचं

समाप्तम् ।

सौतिख्याच ।

शिवस्य कवचं स्तोत्रं ध्रूयतामिति शौनरुः । वशिष्ठेन च यदुक्तं गन्धर्वाय च यो मनुः ।

ओं नमो भगवते शिवाय स्वाहेति च मनुः । दत्तो वशिष्ठेन पुरा पुष्करे रूपया विमो ॥

अयं मन्त्रो रायणाय प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा । स्वयं शम्भुश्च वाणाय तथा दुर्वाससेपुरा ॥

मूलेन सर्वं देयञ्च नैवेद्यादिकमुत्तमम् । ध्यायेन्नित्यादिकं ध्यानं वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ॥

ओं नमो महादेवाय ।

वाणेश्वर उवाच ।

महेश्वर महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम् । संसारपावनं नाम वृषया कथय प्रमो ॥४३॥

महेश्वर उवाच ।

शृणु वश्यामिहे वन्स ! कवचं परमाद्भुतम् । अहंतुभ्यं प्रदास्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥

पुरा दुर्वाससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च । मर्मवेदञ्च कवचं भक्त्या यो धारयेत् सुधीः ॥

जेतुं शक्नोति त्रैलोक्यं भगवन्नवलीलया ॥ ४६ ॥

संसारपावनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहञ्च महेश्वरः ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ४७ ॥

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धिर्दं कवचं भवेत् ।

यो भवेत् सिद्धिकवचो मम तुल्यो भवेद्भुवि । तेजसा सिद्धियोगेन तपसा विक्रमेण च ।

शम्भुर्मै मस्तरु पातु मुखं पातु महेश्वरः । दन्तपंक्तिं नीलकण्ठोऽप्यधरोष्ठं हरः स्वयम् ।

फण्ड पातु चन्द्रचूडः स्कन्धौ घृपमवाहनः । चक्षुःखलं नीलकण्ठः पातु पृष्ठं दिगम्बरः ।

सर्वाङ्गं पातु विश्वेश सर्वदिशु च सर्वदा । स्वप्ने जागरणे चैव स्थानुर्मै पातु सन्ततम् ।

इति ते कथितं वाण कवचं परमाद्भुतम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥

यत् फलं सर्वतीर्थानां स्नानेन लभते नरः । तत् फलं लभते नूनं कवचस्यैव धारणात् ॥

इदं कवचमज्ञात्या भजेन्मां यः सुमन्धीः । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते शङ्करकवचं समाप्तम् ।

सौतिरुवाच ।

इदञ्च कवचं प्रोक्तं स्तोत्रञ्च शृणु शौनक । मन्त्रराजः कल्पतरुर्वशिष्ठो दत्तवान् पुरा ॥

ओं नमः शिवाय ।

वाणेश्वर उवाच ।

घन्दे सुराणां सारञ्च सुरेशं नीललोहितम् । योगीश्वरं योगवीजं योगिनाञ्च गुरोर्गुह्यम् ।

ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानबीजं सनातनम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥ ५७ ॥

तपोरूपं तपोबीजं तपोधनधनं धरम् । धरं धरेण्यं धरद्मीड्यं सिद्धगणैर्वरैः ॥ ५८ ॥

कारणं भक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम् । आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम् ॥ ५९ ॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाग्भोजसन्निभम् । ब्रह्मज्योतिस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ६० ॥

विषयाणां विभेदेन विन्नन्तं बहुरूपकम् । जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम् ॥ ६१ ॥

पायुरूपं चन्द्ररूपं सूर्यरूपं महत्प्रभुम् । आत्मनः स्वपदं दान्तं समर्थमवलीलया ॥ ६२ ॥

भक्तजीवनमीशाञ्च भक्तानुग्रहकातरम् । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तोत्रितं प्रभुम् ॥

अपनिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसोः परम् ।

व्याघ्रचर्माम्बरं वृषभस्य दिग्बन्धम् । त्रिशूलपट्टिवाचं सन्मितं चन्द्रशेखरम् ॥ ६४

उत्पुत्र्या मन्वराजैर्नित्यं वाणः सुनयतः । प्रणमैतशङ्करं मन्त्र्यादुर्वासाश्चतुर्नाथवः ॥

उदं दत्तं वशिष्ठेन गन्धर्वाय पुग मुने । कथितञ्च महान्नात्रं शूलिनः परमाद्भुतम् ॥

उदंमत्रोत्रं महापुण्यं पद्मेन्या च यो नरः । स्नानस्यन्वर्त्तार्यानां फलमाप्नोतिनिश्चितम् ।

अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः ॥ ६६ ॥

संयतश्च हविःवाशी प्रणय शङ्करं गुणम् ।

गलत कुप्यो महाशूली वर्षमेकं शृणोति यः । अवश्यं नुच्यते गेगादव्यान्वात्मनितिष्ठुतम् ।

कागगाटेऽपिकद्दोयो नैव प्राप्नोति निर्वृतिम् । स्तोत्रं श्रुत्वा मानमेकं नुच्यते वचनाद्भुवम् ।

अष्टगज्या लनेटाज्यं मन्त्र्या मानं शृणोति यः । मानं श्रुत्वा नयतश्च लभेद्दुष्टप्रथनाघनम् ।

यद्वनप्रसन्नो वर्षमेकमात्मिको यः शृणोति चैत् । निश्चितं नुच्यते गेगातशङ्करस्य प्रसादतः ।

यः शृणोति मदानन्या मन्वराजमिदं द्विज । तस्यानाध्वं त्रिसुवनेनात्मिकिञ्चिच्चरानक ।

कटान्निद्वन्द्वुषिच्छेदो न भवेत्तस्य मार्गै । अचलं परमेश्वर्यं लभते नात्र संशयः ॥

सुनयतोऽतिनया च मानमेकं शृणोति यः । अनाव्योलभते नार्यां सुविर्नातां नतीवगम् ।

महामूर्खश्च दुर्मेयो मानमेकं शृणोति यः । बुद्धिं विद्याञ्च लभते गुणपदेशमायतः । ७१

कर्मदुःखी दण्डिश्च मानं मन्त्र्या शृणोति यः । ध्रुवं विच भवेत्तस्य शङ्करस्य प्रसादतः ।

इह लोके सुखं मुक्त्वा कृत्वा कीर्त्तिलुदुर्लभम् । नानाप्रकारं वनेज्यात्यन्नेशङ्करालयम् ।

पापद्वयगो भूत्वा सेवते तत्र शङ्करम् । यः शृणोति त्रिसन्ध्यञ्च नित्यं स्तोत्रमनुत्तमम् ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुण्ये ब्रह्मवर्षे स्तोत्र-शौनक-संवादे मन्वराजोऽथ-

ऊनविंशोऽध्यायः ।

त्रिंशोऽध्यायः ।

उपरहणजन्मकथनम् ।

सौतिरवाच ।

मुद्रा मालावतीसार्द्धं गन्धर्वश्चोपरहणः । रमेकालावशेषञ्च तामिश्च निर्जने वने ॥ १ ॥
गन्धर्वराजो मुमुद्रे पुत्रदारादिभिः सद् । नानाविधं कृत्यवरं महत् पुण्यं चकार ह ॥ २ ॥
राजत्वं बुभुजे राजा कुवैरभवनोपमे । रमे सुशीलया सार्द्धं स्थिर्यौचनयुक्तया ॥ ३ ॥
गन्धर्वराज काले च गङ्गातीरे मनोहरे । पन्था सार्द्धमसूंस्त्यक्त्वा वैकुण्ठञ्च ययौमुद्रा ।
शैव शिवप्रसादेन पुत्रस्य विष्णुसेवया । यभूव दासो वैकुण्ठे विष्णोःश्यामवतुर्भुजः ॥
कृत्या पित्रोश्च सत्कारं गन्धर्वश्चोपरहणः । ब्राह्मणेभ्यो ददौविप्रघनानिविधानि च ।
काले स्वयं ब्रह्मशापान् प्राणांस्त्यक्त्वा विचक्षणः । स यज्ञे वृषलीगर्भेऽब्रह्मवीजेन शौनक ।
मालावतीचह्विकुण्डे पुष्करे भारते भुवि । कृत्यानुघाच्छ्रितकामंप्राणांस्तत्याजसा सती ।
सृष्टयस्य तु पन्थाञ्च मनुवंशोद्भवस्य च । जज्ञे नृपस्य भ्वाधरीसापुण्याजातिस्मरावरा ।
उपरहणगन्धर्वं पतिर्मे भवितेति च । इतिकामा कामुकी सा सुन्दरी सुन्दरीवरा ॥

शौनक उवाच ।

ब्रह्मरीष्यान् शूद्रपत्न्यां गन्धर्वश्चोपरहणः । जातः केन प्रकाण तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ १ ॥

सौतिरवाच ।

कान्यकुब्जे च देशे च द्रुमिलो नाम राजकः । फलावती तस्यपत्नी धन्याचापिपतिव्रता ।
स्वामिदोषेण सा यन्ध्या काले च भर्तुराज्ञया । उपतस्थेवनेघोरै नारदं काश्यपं मुनिम् ।
ध्यायमानञ्च श्रीगुणं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । तप्तौ सुवेशं कृत्यासाध्यानान्तञ्च मुनेःपुरः ।
श्रीम्प्रध्याह्मार्त्तं षडप्रभानुल्येन तेजसा । तपन्तं दूरतोऽप्येवं सर्मापं गन्तुमक्षमा ॥
ध्यानान्ते च मुनिश्रेष्ठ परः कृष्णपरायणः । ददर्श पुरतो दूरे सुन्दरीं स्थिर्यौधनाम् ॥
चात्त्वम्पक्वर्णामां शरत्पद्मजलोचनाम् । शरत्पार्ष्णिणचन्द्राभ्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥

बृहन्नितम्बभारार्त्तां पीतश्रोणिपयोधराम् । शोभितां पीतवस्त्रेणसस्मितां रक्तलोचनाम् ।
मोहितां मुनिरूपेण कामयागप्रर्पीडिताम् । दर्शयन्तीं स्तनश्रोणीं मैथुनासक्तचेतसा ॥
सिन्दूरबिन्दुभूरादयानुचारकज्वलोज्ज्वलाम् । पदालककशोमादयानुपेणैवययोर्वशीम् ।
मुनिः पप्रच्छ दृष्ट्वा तां का त्वं कामिनि निर्जने । कस्य पत्नी कथंवात्रसत्यं ब्रूहि च पुंश्चलि ।
मुनेश्च वचनं श्रुत्वा कम्पिता च कलावती । उवाच विनयेनैव कृत्वा च श्रीहर्षि हृदि ॥

कलावत्युवाच ।

गोपिकाहं द्विजश्रेष्ठ द्रुमिनन्द्य च कामिनी । पुरार्थिनी चागताहं त्वन्मूलं भर्तुराजया ।
वीर्याधानं कुरु मयि स्त्रीनांपेक्षा ह्युपस्थिता । तैर्जायसां न दोषाय ध्वेःसर्वमुजोयया ।
वृन्दोवचन श्रुत्वा चुकोप मुनिसत्तमः । उवाच नीतं सत्यञ्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥

काश्यप उवाच ।

यः स्वलक्ष्मोञ्च भोगार्हां पपाय दानुमिच्छति । तं सा त्यजति मूढश्च वेदवादइति श्रुवम् ।
न त्वं द्रुमिन्भोगार्हां पुनरेव भविष्यसि । विरक्तेन स्वयं त्यक्त्वा न गृह्णाति च त्वां पुनः ।
यः शूद्रपत्नीं गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । स चण्डालो भवेत् सत्यं न कर्माहो द्विजातिषु ।
पितृश्राद्धे च यज्ञे च शिलास्पर्शे मुपावने । नाधिकारश्च तस्यैवमित्याह कमलोद्भवः ॥२६॥

कुर्म्भीपाकं स्वयं याति पातयित्वा च पूरयान् ।

मातामहान् स्वात्मनश्च दश पूर्वान् दशापरान् ॥ ३० ॥

तत्तर्पणं मूत्रमेव पिण्डं सद्यः पुरीषकम् । शालग्रामम्य तन्मूर्ध्नि चोपवास्तः त्रिरात्रकम् ॥
तदिष्टदेवो गृह्णाति न नैवेद्यं न तज्जलम् । सन्न्यासिनां ब्राह्मणानां तद्ब्रह्म पुरीषवत् ॥
कुर्म्भीपाके पच्यते स शक्रान्तं यावदेव हि । एकविंशतिपुर्यैः सार्द्धं सत्यञ्च पुंश्चलि ॥

परोच्छिष्टञ्च यो भुङ्क्ते शूद्राणां ब्राह्मणाद्यमः ।

तत्तुभ्योऽधरभोजी चैवेत्याद्भिरसमाहितम् ॥ ३४ ॥

शूद्रो वा यदि गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । स पच्यते कालमूत्रे यापदिन्द्राश्चतुर्दशाः ॥
अष्टादशेन्द्रान्छिन्नं कालञ्च कालमूत्रके । ब्राह्मणी पच्यते तत्र भक्षिता त्रिभिभिः ध्रुवम् ॥
उत्तञ्चण्डालयोर्नो च लभ्या जन्म च ब्राह्मणी । शूद्रश्च कुप्यो भवति जातिभिः परिवर्जितः ॥

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विपराम च शौनक । वृषली तत् पुरस्तस्थौ शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति च मेनका । तस्या उदं स्तनं दृष्ट्वा मुनेर्वीर्यं पपात ह ॥
 अतुल्लाता च वृषली पीत्वा तत्र क्षणं मुदा । मुनिं प्रणम्य प्रहृष्टा प्रययौ भर्तुरन्तिकम् ॥
 गत्वा प्रणम्य द्रुमिलं कान्ता कान्तं मनोहरम् । सर्वं निवेद्यामास वृत्तान्तं गर्भहेतुकम् ।
 फलावतीवच. श्रुत्वा प्रहृष्टवदनेक्षणः । उवाच कान्तां मधुरं परिणामसुखायहम् ॥४२॥

द्रुमिल उवाच ।

विप्रस्य वीर्यं तद्गर्भं वैष्णवस्य महात्मनः । वैष्णवो भविता बालः स्वञ्च भाग्यवती सती ॥

यद्गर्भं वैष्णवो जातो यस्य वीर्येण वा सति ।

तयोर्जाति च वैकुण्ठं पुण्याणां शतं शतम् ॥

तौ च विष्णुविमानेन सद्गन्निर्मितेन च । यातौ वैकुण्ठनगरं जन्ममृत्युजराहरम् ॥४५॥

कस्यचिन् ब्राह्मणस्यैव गेहं गच्छ शुभानने । पञ्चान्ममान्तिकं भद्रे यास्यसीति हरिः पुरम् ॥

इत्युक्त्वा गोपराजश्च स्नात्वा कृत्वा तु तर्पणम् ।

संपूज्यामीष्टदेवञ्च ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ ४७ ॥

अभ्यानाञ्च चतुर्लक्षं गजानां लक्षमेव च । शतं मत्तगजेन्द्राणां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥४८॥

उच्चै श्रव.पञ्चलक्षं रथानाञ्च सहस्रकम् । शकटानां त्रिलक्षञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

गवां द्वादशलक्षञ्च महिषाणां त्रिलक्षकम् । त्रिलक्षं राजहंसानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

पारायतानां लक्षञ्च शुकानाञ्च शतं मुने । लक्षञ्च दासदासीनां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ।

ग्रामाणाञ्च सहस्रञ्च नगराणां शतं शतम् । धान्यतण्डुलशैलञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

शतकोटिं सुवर्णानां रत्नानाञ्च सहस्रकम् । मुद्राणां कोटिकलसं ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

ददौ तैजसपत्राणां भूषणानामसंख्यकम् । तां स्त्रियं रत्नभूषाट्यां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

राज्यं दत्त्वा महाराजोऽप्यन्तर्याहो हरिं स्मरन् ।

जगाम वदसी गोपो मनोगामी मुदान्वितः ॥ ५५ ॥

तत्र म) तपः कृत्वा गद्गतीरं मनोहरे । प्राणांस्तन्याज योगेन सद्यो दृष्टो महर्षिभिः ॥

स च विष्णुविमानेन खेन्द्रनिर्मितेन च । संयुक्तो विष्णुदूतैश्च वैकुण्ठञ्च जगाम ह ॥५७॥

तत्र प्राय हरेर्दास्यं हरिदासो बभूव सः । वृत्तान्तञ्च कलावत्याः ध्रूयतामिति शौनक ॥
 गते कलावती नाथे उच्चैश्च प्रररोद् ह । चह्नौ प्राणांस्यक्तुकामा ब्राह्मणेनैव रक्षिता ॥
 ब्राह्मणोमातरित्युक्त्वा तां गृहीत्वा मुदान्वितः । जगाम रत्नपूर्णञ्च स्वगेहञ्च क्षणेन च ॥
 सा विप्रगेहे साध्वी च सुपाव तनयं वरम् । ततकाञ्चनवर्णाभं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥६१॥
 तत्रस्था योपितः सर्वा ददृशुर्बालकं शुभम् । ग्रीप्यमध्याह्नमार्सण्डजितं तं ब्रह्मतेजसा ॥
 कामदेवाधिकं रूपे बन्द्राधिकशुभाननम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥६३॥
 हस्तापादादिललितं सुकपोलं मनोहरम् । पद्मचक्राङ्कितं पादपद्मं वाऽतुलमुज्ज्वलम् ॥
 करयुग्मं वाऽतुलञ्च रुदन्तञ्च स्तनार्थिनम् । योपितो बालकं दृष्ट्वा प्रययुः स्वाश्रमं मुदा ।
 पुत्रदारयुतो विप्रः प्रहृष्टञ्च ननर्त्त ह । स बालो ववृधे तत्र शुकुपक्षे यथा शशी ॥६६॥

पुपोप ब्राह्मणन्ताञ्च सपुत्राञ्च यथा सुताम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे उपवर्हणजन्मकथनं
 नाम विंशोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः

उपवर्हणजन्मान्तरकथनम् ।

सौतिर्याच ।

बभूव काले बालश्च क्रमेण पञ्चहायनः । जातिस्मरो ज्ञानयुक्तः पूर्वमन्त्रः स्मृतः सदा ॥१॥
 गीयते सततं कृष्णयशोनामगुणादिकम् । क्षणं रोदिति नृत्येन पुलकाञ्चितविग्रहः ॥२॥

कृष्णसम्बन्धिनीं गाथां शृणोति यत्र तत्र वै ।

तत्सम्बन्धि पुराणञ्च तत्र तिष्ठति बालकः ॥ ३ ॥

धूलिधूसरसर्वाङ्गो धूलिनैवेद्यमीप्सितम् । धूलिपु प्रतिमां कृत्वा धूलिना पूजयेद्धरिम् ॥३॥

पुत्रमाह्वयते माता प्रातराशाय चेन्मुने । हरिं संपूजयामीति मातरं संवदेत् पुनः ॥ ५ ॥

शौनक उवाच ।

किन्नाम बालकस्यास्य जन्मन्यत्र बभूव ह ।

व्युत्पत्त्या सज्ञया वापि तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ ६ ॥

सौतिरुवाच ।

अतावृष्टप्रशेषे च काले बालो बभूव ह । नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः ॥७॥

ददाति नारं ज्ञानञ्च बालकेभ्यश्च बालक । जातिस्मरणे महाज्ञानो तेनायं नारदाभिधः ॥

चाट्येण नारदस्यैव बभूव बालको मुने । मुनोन्द्रस्यवरेणैव तेनायं नारदाभिधः ॥८॥

शौनक उवाच ।

शिशुनाम च विज्ञातं व्युत्पत्त्या च यथोचितम् ।

मुनीन्द्रस्य कथं नाम नारदश्चेति मङ्गलम् ॥ १० ॥

सौतिरुवाच ।

अपुत्रकाय विप्राय घर्मपुत्रो नरो मुनि । ददौ पुत्रं कश्यपाय तेनायं नारदाभिधः ॥११॥

शौनक उवाच ।

अधुना नामव्युत्पत्तिं श्रुता सौते शिशोरपि । शूद्रयोनीं ब्रह्मपुत्रे कथं स नारदाभिधः ॥

सौतिरुवाच ।

कल्पान्तरे ब्रह्मकण्ठान् बभूवुरहयो नराः । नरान् ददौ तत्कण्ठश्च तेन तद्वन्दं स्मृतम् ॥

ततो बभूव बालश्च नरदान् कण्ठदेशत । अतो ब्रह्मा नाम चक्रे नारदश्चेति मङ्गलम् ॥

सांप्रत शिशुवृत्तान्तं सावधानं निशामय । उपात्ममहत्त्वेन विशिष्टं किंप्रयोजनम् ।

यदृषे तस्मिन्कालो विप्रगेहे दिने दिने । सपुत्रां पालितां चक्रे ब्राह्मणः ससुतां यथा ।

एतस्मिन्नन्तरे विप्रा आशयुर्विप्रमन्दिरम् । शिशवः पञ्चस्रयो महातेजस्विनो यथा ॥

प्रच्छन्नं हृतपन्तश्च श्रीममथ्याहभास्करम् । मधुपर्कादिकं दत्त्वा तादनाम गृही द्विज ॥

फलमन्त्रादिकं चकारे चत्वारो मुनिपुङ्गवाः । विप्रदत्तं बुभुजिरे ततश्चैवं बुभुजे शिशुः ॥

चतुर्थयो मुनिस्तैर्वै दृष्ट्वाणमन्त्रं ददौ मुदा । तेषां दास स बभूव द्विजस्य मातुराजया ॥

एकदाशिशुमाता च गच्छन्तीनिशिवर्त्मनि । ममार सर्पदष्टा च तन्क्षणं स्मरतीहरिम् ॥
 सद्यो जगाम वैकुण्ठं विष्णुयानेन सा सती । विष्णुपार्षदसंयुक्ता सद्व्रतनिर्मितेन च ॥
 प्रातर्यालो द्विजैःसाद्धं प्रययौ विप्रमन्दिरात् । तत्त्वब्रानं ददुस्तस्मैब्राह्मणाश्च कृपालवः ॥
 ब्रह्मपुत्राःशिशुं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययुः किल । महाज्ञानी शिशुस्तस्यौगङ्गातीरे मनोहरे ॥
 तत्र स्नात्वा विप्रदत्तं विष्णुमन्त्रं जजाप सः । श्रुत्विपासारोगशोकहरं वेदेषुदुर्लभम् ॥
 महारण्ये च घोरे च अभ्यन्धमूलसन्निधौ । कृन्वायोगासनं तस्यौ सुचिरं तत्रवालकः ॥

शौनक उवाच ।

कं मन्त्रं वालकः प्राप कुमारेण च धीमता । दत्तं परं श्रीहरेश्च तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥
 सौति उवाच ।

कृष्णेन दत्तो गोलोके कृपया ब्रह्मणे पुरा । द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वेदेषु च सुदुर्लभः ॥
 तच्चब्रह्मा वर्दाभक्त्या कुमारेण च धीमते । कुमारेण स दत्तश्च मन्त्रश्च शिशवे द्विज ॥
 ओं श्रीं नमोभगवतेरासमण्डलेऽध्वराय । श्रीकृष्णाय स्वाहिति च मन्त्रोऽयंकल्पपादपः ॥
 महापुरपस्तोत्रञ्चपूर्वोक्तं कवचञ्चयत् । अस्यापयोगिकं ध्यानं सामवेदोक्तमेव च ॥३१॥
 तेजोमण्डलरूपे च सूर्यकोटिसमप्रभे । योगिभिर्वाञ्छितं ध्यानेयोगैःसिद्धगणैःसुरैः ॥
 ध्यायन्ते वैष्णवरूपं तद्रभ्यन्तरसन्निधौ । अतीवकमनीया निर्वचनीयं मनोहरम् ॥
 नवीनजलदश्यामं शरन्पङ्कजलोचनम् । शरन् पार्वणचन्द्रास्यं पक्वविभवाधिकाधरम् ॥

मुक्तापङ्क्तिविन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् ।

सस्मितं मुरलीन्यस्तहस्तावलम्बनेन च ॥ ३५ ॥

कोटि-कन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्द्रलक्षप्रभानुष्टं पुष्ट्रार्थयुक्ताविग्रहम् ॥
 १) त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं द्विभुजं पीतवात्सलम् । रत्नकैपूरवलयरत्ननूपुरभूषितम् ॥ ३७ ॥
 रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । मयूरपुच्छचूडञ्च रत्नमालाधिभूषितम् ॥३८॥
 शोभितं जानुपर्यन्तं मालतीवनमालया । चन्द्रनोक्षितसर्वाङ्गं भकानुहकारकम् ॥ ३९॥
 मणिनाकौस्तुभेन्द्रेणवक्षस्सलसमुद्भवत् । र्धाक्षितं गोपिकाभिश्चशम्भुद्विन्दुमलोचनैः ॥
 सिरस्यौचनयुक्ताभिर्वेष्टिताभिश्च सन्ततम् । भूयणैर्भूषिताभिश्च राधावक्षःस्थलक्षितम् ॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च पूजितं चन्दितं स्तुतम् ।

किशोरं राधिकाकान्तं शान्तरूपं परात्परम् ॥ ४२ ॥

निलिन साक्षिरूपञ्च निर्गुणं प्रकृतेः परम् ।

ध्यायेत्सर्वेश्वरं तच्च परमात्मानमीश्वरम् ॥ ४३ ॥

इदं ते कथितं ध्यानं स्तोत्रञ्च कवचं मुने । मन्त्रोपयोगिकं सत्यं मन्त्रश्च कल्पपादपः ॥

साम्प्रतं बालकस्तस्योऽध्यानस्य स्तत्र शौनक ! । दिव्यं वर्षसहस्रञ्च निराहारः कृशोदरः ॥

शक्तिमान् परिपुष्टश्च सिद्धमन्त्रप्रभावतः । ददर्श बालको ध्याने दिव्यं लोकञ्च बालकम् ॥

रत्नसिंहासनस्य च रत्नभूषणभूषितम् । किशोरवयसं श्यामं गोपवेशश्च सस्मितम् ॥

गोपैर्गोपाङ्गनामिश्च वेष्टितं पीतवाससम् । द्विभुजं मुग्धहस्तं चन्दनेन विचर्चितम् ॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तूयमानं परात्परम् । दृष्ट्वा च सुचिरं शान्तशान्तश्च गोपिकासुतः ॥

विरराम च शोकाक्तो यदा तद्द्रष्टुमक्षमः । रुरोद श्वत्थमूले च न दृष्ट्वा बालकं शिशुः ॥

यभूवाकाशचाणीति रदन्त बालकं प्रति । सत्यं प्रबोधयुक्तञ्च हितमेव मिताक्षरम् ॥

सहृद् यद्दुर्दर्शनं रूपं तदेव नाधुना पुनः । अचिपककषायाणां दुर्दर्शञ्च कुयोगिताम् ॥

एतस्मिन् विग्रहेऽतोति संग्रहते दिव्यविग्रहे । पुनर्द्रक्ष्यसि गोविन्दं जन्ममृत्युजराहरम् ॥

इति ध्रुत्वा बालकश्च विरराम मुदान्वितः । कालेत त्याज तीर्थं च तनुं कृष्णहृदि स्मरन् ॥

नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गं पुष्पवृष्टिर्भूवह । यभूव शापमुक्तश्च नारदश्च महामुनिः ॥ ५५ ॥

तनुंत्यक्त्वा स-जीवश्च बिलोनो ब्रह्मविग्रहे । यभूव प्राक्तनान्नित्यः कालमेदे तिरोहितः ॥

आविर्भावस्तिरोभावः स्येच्छया नित्यदेहिनाम् ।

जन्ममृत्युजराव्याधिर्भक्तानां नास्ति शौनक ! ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति-शौनक-संवादे नारदशापविमोचनं

नाम एकविंशोऽध्यायः ।

द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मपुत्रन्युत्पत्तिकथनम् ।

सीति उवाच ।

कतिकल्पान्तरेऽतोनेत्रपटुः सृष्टिविधौपुनः । मरीचिमिश्रैर्मुनिभिः साद्वं कण्ठात् यभूवसः ॥
विधेर्नरदनाम्नश्च कण्ठदेशात् यभूव सः । नारदश्चेति विख्यातो मुर्गान्द्रस्तेन हेतुना ॥
यः पुत्रश्चेतसोघानुर्धभूव मुनिपुङ्गवः । तेन प्रचेता इति च नामचक्रे पितामहः ॥ ३ ॥
यभूव धातुर्यः पुत्रः सहसा दक्षपाण्डवतः । सर्वकर्मणि दक्षश्च तेनदक्षः प्रकीर्तितः ॥
वेदेषु कर्दमः शब्दश्लाययां वर्तते स्फुटः । यभूव कर्दमात् बालकर्मस्तेनकीर्तितः ॥
तेजोभेदे मरीचिश्चवेदेषु वर्ततेस्फुटम् । जातः सद्योऽतितेजस्वीमरीचिस्तेनकीर्तितः ॥
ऋतुसंघश्च बालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना । ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम ऋतुरित्यभिधीयते ॥
प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्चबालकः । इस्तेजस्विबचनोऽप्यङ्गिरस्तेनकीर्तितः ॥

अतितेजस्विनि भृगुर्वर्तते नाम्नि शौनक ! ।

जातः सद्योऽतितेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्तितः ॥ ६ ॥

बालोऽप्यहणपर्णश्चजात सद्योऽतिनेजसा । प्रज्वलन्नूदूर्ध्वतपसाचारिस्तेनकीर्तितः ॥
हंसा आत्मपशायस्य योगेन योगिनीधुवम् । बालपरमयोगीन्द्रस्तेनहंसी प्रकीर्तितः ॥
पशोभूतश्चशिष्यश्च जातसद्यो हि बालकः । अतिप्रियश्चधातुश्च वशिष्टस्तेन कीर्तितः ॥
सन्तनं यस्य यज्ञश्च तप सु बालकस्य च । प्रकीर्तितो यतिस्तेन संयतः सर्वकर्मसु ॥
पुलस्तपःसु वेदेषु वर्तते हः स्फुटेऽपि च । स्फुटस्तपः समूहश्च पुलहस्तेन बालकः ॥
पुलस्तपः समूहश्च यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम् । तपःसंघस्वरूपश्च पुलस्त्यस्तेन बालकः ॥
त्रिगुणायांप्रकृत्यां त्रिर्विष्णावश्चप्रवर्तते । तयोर्मकिःसमायस्यतेनबालोऽत्रिरच्यते ॥
जटावह्निशिखारूपाः पञ्चसन्ति च मस्तके । तपस्तेजोभवायस्य सच पञ्चशिखःस्मृतः ॥
अपान्तरत्नमे देशे तपस्तेपेऽन्यजन्मनि । अपान्तरत्नमा नाम शिशोस्तेन प्रकीर्तितम् ॥

स्वयं तप समाप्नोति वाह्येत् प्राप्येत्परान् ।

ऊढुं समर्थस्तपसि षोडुस्तेन प्रकीर्तितः ॥ १८ ॥

तपसस्तेजसा बालो दीप्तिमान् सततं मुने । तपःसु रोचतेचित्तं हचिस्तेन प्रकीर्तितः ॥
कोपकाले बभूवुर्धे स्रष्टुरेकादश स्मृताः । रोदनादेव रुद्राश्च कोपितास्तेन हेतुना ॥

शौनक उवाच ।

रुद्रेणैकतमो बालो महेशदति मे भ्रमः । भवान् पुराणतत्त्वज्ञः सन्देहं छेत्तुमर्हति ॥२१॥

सौतिरवाच ।

विष्णु सत्वगुण पाताब्रह्मास्त्रष्टारजोगुणः । तमोगुणास्ते रुद्राश्च दुर्निबाराः भयङ्कराः ॥
कालाग्निरद्र सहर्ता तेष्वेकः शङ्करांशकः । शुद्धसत्वस्वस्य शिवश्च शिवद्रः सताम् ॥
अन्ये कृष्णस्य च कलास्तावंशौ विष्णुशङ्करौ । समौ सत्वस्वरूपौ द्वौ परिपूर्णतमस्य च ॥

उक्तद्रोद्धवेकाले कथं विस्मरसि द्विज । मायया मोहिता सर्वे मुनीनाञ्च मतिभ्रमः ॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः ॥२६॥

ब्रह्मान्मण्डं पूर्वपुरानुवाच ते न सेहिरे । तेन प्रकोपितो भ्राता रुद्राः कोपोद्भवा मुने ॥
सनकश्च सनन्दश्च तौ द्वावानन्दवाचकौ । धानन्दितो च बालौ द्वौ भक्तिपूर्णतमौ सदा ॥
सनातनश्च ध्रो कृष्णो नित्यः पूर्णतमः स्वयम् । तद्वक्तृस्तत्सम सत्यनेन बाल सनातनः ॥
सनत्सु नित्यवचनं कुमारः शिशुवाचकः । सनत्कुमारं तेनेमनुवाच कमलोद्भवः ॥ ३० ॥

ब्रह्मणो बालकानाञ्च ध्युत्पत्तिः कथिता मुने ।

साम्प्रतं नाग्दाप्यानं श्रूयताञ्च यथाऽनमम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौत्रिशौनकसंवादे ब्रह्मपुत्रत्र्युत्पत्तिकथनं
नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मनारदसंवादवर्णनम् ।

सौतिल्याच ।

स्रष्टा सृष्टिविधानेन नियोज्य सर्वधालकान् । नारदं प्रेरयामास सृष्टिं कर्तुञ्च शौनक ॥
हितं सत्यं वेदसारं परिणामसुखावहम् । उवाच नारदं ब्रह्मा वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एहि वत्स कुलश्रेष्ठ नारद प्राणबल्लभ । ज्ञानदीपशिखाज्ञानतिमिरक्षयकारक ॥ ३ ॥
सर्वेषामपि बन्धानां जनकः परमो गुरुः । विद्यादाता मन्त्रदाता द्वौ समौ च पितुःपरी
तवाहं जनकः पुत्रः विद्यादाता च पालकः । ममाज्ञया च मत्प्रीत्या कुरु दारपयिहम् ॥

स च शिष्यः सोऽपि पुत्रो यश्चाज्ञां पालयेद्गुरोः ।

न क्षेमं तस्य मूढस्य यो गुरोरवचस्करः ॥ ६ ॥

स पण्डितः स च ज्ञानी स क्षेमी स च पुण्यवान् ।

गुरोर्ध्वचस्करो यो हि क्षेमं तस्य पदे पदे ॥ ७ ॥

सर्वेषामाश्रमाणाञ्च प्रधानः पुण्यवान् गृही । स्त्रीपुत्रपौत्रयुक्तञ्च मन्दिरं तपसः फलम्
पितरः पूर्वकाले च तिथिकाले च देवताः । सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कुर्वन्ति गृहिणः सदा । इह एतत् सुखं पुण्यं स्वर्गभोगःपरत्रच
जीवन्मुक्तो गृहस्थश्च स्वधर्मपरिपालकः । यशस्वी पुण्यवांश्चैवकीर्त्तिमान्धनवान्सुखी
यशस्वी कीर्त्तिमान् यो हि मृतो जीवति सन्ततम् ।

यशः कीर्त्तिविहानो हि जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ १२ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः । उवाच विनयं भीतः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥

नारद उवाच ।

एवदा घाग्निरोधेन चोभयोस्तातपुत्रयोः । हानिर्नभूव दैवेन महती वायशस्करी ॥१४॥
मया प्रातञ्च त्वत्शापात्गान्धर्वशौद्रमेव च । जन्मकर्म च मत्शापात्त्वमपूज्योभवेभव

कमूय शापो मुक्तो मे काले ते भविता विधे । दोषाय कल्पते शश्वद्विरोधो न गुणाय च
 स पिता स गुणर्वन्धु स पुत्र स मदीश्वर । य श्रोतृष्णपादपद्मे दृढामक्तिञ्चकारयेत्
 असद्वर्त्मनि चात्तानाहु गच्छन्ति यदि बालका । निवर्त्तयतितानेव स पिताकरुणानिधि-
 काग्नित्वा कृष्णपादे भक्तित्यागञ्च य पिता ।

अन्यस्मिन् विषये पुत्र स किं हन्त प्रवर्त्तयेत् ॥ १६ ॥

दाग्ग्रहो हि दुःस्त्राय केवल न सुखाय च । तप स्वर्गभक्तिमुक्तिकर्मणा व्यवधायक ॥
 योपिनस्त्रिविधा ग्रहाम् गृहिणा मूढचेतसाम् ।
 साध्वी भोग्या च कुलगस्ता सर्वा स्वार्थतत्परा ॥ २१ ॥

पल्लोकभिया साध्वी तयेहयशसात्मन । कामस्नेहाच्च कुर्वते भर्तुं सेवाञ्च सन्ततम् ॥
 भोग्याभोगार्थिनीशश्वत् कामस्नेहेनयेत् ॥ कुर्वते कान्तसेवाञ्च नच भोगादृतेक्षणम्
 यस्त्रालङ्कारसभोग सुस्निग्धाहारमुत्तमम् । यावत्प्राप्नोति सा भोग्यातावच्चवशाप्रिया
 कुलाङ्गारसमानारी कुलग कुलनाशिना । कपटात् कुर्वते सेवा स्वामिनो न च भक्ति
 सदा पुयोगमाशुर्भनसा मदनानुरा । आहारादधिकं जार प्रार्थयन्ती नव नवम् ॥ २६ ॥
 जारार्थं स्वपतिं तादृहन्तुमिच्छति पुञ्जली । तस्यायोविश्वसेन्मूढोजीवनतल्पनिष्कलम्
 कश्चित्तयोपित सर्वा उक्तमाधमम-यमा । स्वात्मारामाविजानन्तिमनस्तास्तानपण्डिता
 हृदय श्रुत्वागम शरन्पद्मोत्सव मुत्तमम् । सुधासप्त सुमधुर धवन स्वार्थसिद्धये ॥ २६ ॥
 प्रकोपे विपतुन्यञ्च विश्वासे सर्वनाशनम् । दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं निगूढं कर्म वैचलम् ॥
 सदा तासामवितय प्रपन्न साहस परम् । दौषोत्कर्षो लगेत्कर्षं शश्वन्मायादुरत्यया
 पुसञ्चाष्टगुण काम शश्वत्कामोजगद्गुरो । आहारोद्विगुणो नित्यनेच्छृण्व्यञ्चतुर्गुणम्
 कोप पुस षड्गुणञ्च व्यवसायञ्च निश्चितम् । यत्रमे दौषनिवहा चास्या तत्र पितामह
 या द्राडा किं सुप पुस्तो विष्णुत्रयूयेशमनि । तेज प्रणव सम्भोगे श्वागपेयश क्षय
 धनक्षयोऽन्तिमप्रीती चात्यासर्तो यपु क्षय । साहित्ये पौण्यं नप कलहे मान्यनाशनम्
 सर्वनाशञ्च विद्यासे प्रदत्तनारीषु किंसुगम् । यावद्धनी चनेजस्योसथ्रीकोयोग्यतापर
 पुमान्नागं वशीकृतु समर्थस्तायदेव हि ॥ ३१ ॥

रोगिणं निर्द्धनं वृद्धं योषिदु वा प्रेक्षते प्रियम् । लोकाचारमपात्तस्मै ददात्याहात्मस्य कम्

इत्येवं कथितं सर्वं ब्रह्मन्तान्मागमो यथा ॥ ३८ ॥

सर्वं जानासि सर्वज्ञ स्वान्मारामेश्वरो भवान् ।

अनुग्रहं कुरु विमो ! विदायं देहि साम्प्रतम् ।

कृष्णमर्कं प्रार्थयामि त्वयि कल्पतरोः परे ॥ ३९ ॥

इत्युक्त्वा नारदस्तत्र धृत्वा तातपदाम्बुजम् । आज्ञां यथात्रे पितरं गन्तुं तपसि मङ्गले ॥

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिव्रान्मकन्धरः । कृत्वा प्रदक्षिणं नत्वा ब्रह्माणं गन्तुमुद्यतः

गच्छन्तं तनयं दृष्ट्वा विधाता जगतां मुने । स्तोदोच्चैर्मुसकण्ठं महासांसारिको यथा ॥

करे धृत्वा समालिङ्ग्य चुचुभ्य च पुन पुनः । चिरंदक्षसि कृत्वा च वास्तथामास जानुनि

स्वान्मारामेश्वरो ब्रह्मा योगिन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।

भेदं सोढुं न शक्ताक विच्छेदो दुःसहो नृणाम् ॥ ४० ॥

कातरः पुत्रभेदेन मोहिती विष्णुमायया । शोकात्तो वक्तुमारभे सुत सम्बोध्य शौनक

इति श्रीब्रह्मरैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

नारदं प्रति दारपरिग्रहार्थं ब्राह्मण उपदेशः ।

श्रीब्रह्मोवाच ।

त्वं गच्छ तरसेवन्स किमेतत्सारकर्मणि । अहं यास्यामि गोलोकं विजानुं कृष्णमर्कस्यम्

सनत्सु सनत्सु तृतीयसु सनातनः । सनत्कुमारो वैरागी चतुर्यपुत्र एव च ॥ १ ॥

यथा हंसी चारणिश्च घोदुः पञ्चशितस्तथा । पुत्रास्तपस्विनसर्वे किं मे सत्सारकर्मणि

चवस्करो मरीचिर्मे अङ्गिराश्च भृगुस्तथा । रचिरत्रिः कर्दमश्च प्रचेताश्च कर्तुर्मनुः ॥

पशिष्टो वशगं शश्वन् सर्वेषु च सुतेषु च । अन्देविवेकिनोऽसाध्यार्विमैससात्कर्मणि
निबोध वत्स वक्ष्यामि वेदोक्तं ध्वजं शुभम् । पारम्पर्यं नमपरं चतुर्गणफलप्रदम् ॥ ३॥
धर्मार्थकाममोक्षाश्च सर्वे वाञ्छन्तिपण्डिता । वेदप्रणिहिताभेतान्सभासुचप्रशसितान्
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्यय ॥ ७ ॥

आर्द्रो विप्रो यज्ञसूत्र परिधाय सुखं सुखे । समर्थात्य ततो वेदान् ददाति गुह्यदक्षिणाम्
ततः प्रहृष्टकुलजा मुनिनीता समुद्रहेत् ॥ ६ ॥
सा साध्वी कुलजाया च पतिसेवानु तपसा ।

सद्वरो दुर्बिनाता च प्रभवेन्न कदाचत । धारणे पद्मरागाणां जन्म काचमणे कुत ॥
असद्वशप्रसूता या पित्रोर्वेषिण नारद । दुर्बिनाता च सा दुष्ठा स्वतन्त्रा सर्वकर्मसु ॥
न वत्स दुष्ठा सर्वाश्च योषित कमलाकला । स(स्व)प्रेष्याशाश्च कुलया असद्वशसमुद्रवा
निगूण स्वामिन साध्या सेवते च प्रशसति । न सेवते च कुलया प्रियनिन्दितिसद्गुणम्
साधु सद्वशजा कन्या प्रयत्नेन परिग्रहेत् । तस्या पुत्रान् समुत्पाद्य वृद्धस्तुतपसे धजेत
परं हृतवहे वास सर्ववक्त्रे च कष्टने । पत्न्यो दुःखदो वास स्त्रिया दुर्मुखाया सह
त्वमर्थातो मयापेदो मयाश्च गुह्यदक्षिणाम् । पुत्रं देहीदमेपेह कुरु दारपरिग्रहम् ॥ १६ ॥
वत्स ! त्वं कुलजाताञ्च पूर्णपत्नीञ्च मालतीम् । विवाहं कुरु कथायां कन्याणेचदिनक्षणे
मनुशोद्धयस्येह सव्यम्य गृहे सती । त्वत्पुत्रे जन्म लभ्या च कुलने भाते तप ॥
ग्रहणं कुरुता रत्नमालाञ्च कमलाकलाम् । भारते न भवेद्दृश्यं जनानां तपसः फलम् ॥
आर्द्राभवेद् गृहीलोको घानप्रस्थस्ततः परम् । ततस्तपस्योमोक्षाय क्रमपय श्रुतौ श्रुत ॥
वैष्णवानां हरेर्यां तपस्या च श्रुतौ श्रुता ॥ २१ ॥

वैष्णव त्वं गृहे तिष्ठ कुरु वृष्णपदार्चनम् । बन्तर्वाहो हरिर्यस्य तस्य किं तपसा मुता ॥
नान्तर्वाहो हरिर्यस्य तस्य किं तपसा वृथा । तपसा हरिगणधरो नान्यं कश्चन विद्यते ॥
यत्र सत्रं ह्यनं वृष्णसेवनं परमं तपः । वत्स ! मद्रचनेनैव गृहे स्थित्वा हरिं मन ॥ २४ ॥
गृहीभव मुनिश्रेष्ठगृहीणा सर्वदासुखम् । कामिन्यास्तु सम्भोगं स्वर्गमोगान् सुदुर्लभं
तद्दर्शनमुपमप्यशं वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः । सर्वस्पर्शसुगान् स्त्रीणां दुःस्पर्शसुखं परम् ॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः] * नारदप्रतिदासपतिप्रहार्यब्रह्मणउपदेशः * ८५

ततः सुश्रुतमपुत्रं दर्शनं स्पर्शनं मुने । सर्वेभ्यः प्रेयसी कान्ता प्रिया त्वेन प्रकीर्तिता ॥
पुत्रप्रयोजनाकान्ता शनकान्ताप्रियःसुतः । नास्तिपुत्रान्परो बन्धुर्नास्तिपुत्रान्परःप्रियः
सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेन् पुत्रादेकात् पतजयम् ।

न चान्मनि प्रियोऽर्थश्च तस्मादपि प्रियः सुतः ॥ २६ ॥

अतः प्रियत्रने पुत्रे न्यसेदान्मपरं धनम् । इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा विरराम च शौनक ॥३०
नारद उवाच

उवाच चन्द्रं तानं नारदो ज्ञानिनां वरः । म्वयं विहाय सर्वार्थं स्वपुत्रं वेददर्शने ॥

प्रसूतयन्त्यसन्मार्गं स दयालुः कथं पिता ॥ ३१ ॥

जलबुद्बुदवन् स्रवं संसारमिति नगरम् । जलरेवायया मिथ्या तथा ब्रह्मजगत्त्रयम् ॥
विहाय हरिदाम्यञ्च विषये यन्मनश्चलन् । दुर्लभं मानवं जन्म बभूव तस्य निष्फलम् ॥

का वा कस्य प्रिया पुत्रो बन्धुः को वा भवार्णवे ।

कर्मोर्मिमियोजना च तदपारो वियोजना ॥ ३२ ॥

सुकर्मकारयेद् योहितमित्रं स पिता गुरुः । विबुद्धिःकारयेद् योहिसरिपुश्च कथं पिता ।
इत्येवं कथितं तान ! वेदार्जं यथागमन् । ध्रुवं तथापि कर्त्तव्यं तवाजापरिपालनम् ॥
आदौ याम्यामि भगवन्नरनारायणाश्रमम् । नारायणकथां श्रुत्वा करिष्ये दारसंग्रहम् ॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम पितुः पुत्रः । पुण्यवृष्टिस्तदुपरि तन्स्रजेन बभूव ह ॥ ३८ ॥
क्षणं पितुः पुत्रः स्थित्वा नारदो मुनिसत्तमः । उवाच च पुनर्वेदं वचनं मङ्गलप्रदम् ॥३६

श्रीनारद उवाच ।

देहिमे कृष्णमन्त्रञ्च यन्मनोवाञ्छि वं मम । तन्सम्बन्धिव यज्ञज्ञानं यत्र तदुगुणवर्गनम्
ततः प्रश्नात् करिष्यामि त्वन्प्रीत्या दारसंग्रहम् ।

मानसे परिपूर्णं च कार्यं कर्त्तुं पुमान् सुधी ॥ ४१ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः कमलोद्भवः । उवाच पुनर्वेदं पुत्रं ज्ञानविदां वरः ॥ ४२ ॥
ब्रह्मोवाच ।

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृहीयाद् विवस्मजः । विविक्ताश्रमिनाञ्चैव न पुत्र सुखदायकः ॥

निपेकाल्पयतेमन्त्रो गुरुर्भर्ता च कामिनी । विद्या सुखंभयं दुःखं पुरयैः स्वेच्छयानच ।
 महेश्वरस्तव गुरु प्राक्तनो नः पुरातन । गच्छ वत्सशिवं शान्त शिवदं ह्यानिनांगुस्म ।
 तत्रैव भगवन्मन्त्र ज्ञान लभ्या पुषातनात् । नारायणकथा श्रुत्वा शीघ्रमागच्छ महगृहम्
 इत्युक्तया जगताधाता विरराम च शौनक । प्रणम्यवितर् भक्त्या शिवलोकं यथोमुनिः॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति शौनकसंवादे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

नारदकृतशिवस्तुतिः शिवनारदमम्मिलनञ्च ।

सौतिरवाच ।

क्षणेन विप्रघरो मुदान्वितो जगाम शम्भोः सदनं मनोहरम् ।
 ऊर्ध्वं ध्रुवाद् योजनलक्षमाप्सितं रत्नेन निर्माणकृतञ्च शूलिना ॥ १ ॥
 निराश्रये योगबलेन शम्भुना धृतं विचित्रं विविधालयान्वितम् ।
 दृष्टं स्वपुण्याशयसाधकैर्वरैर्मुनीन्द्रसारैर्ज्वलितं दिवानिशम् ॥ २ ॥
 मयूखशून्यं रविचन्द्रयोर्मुने हुताशनैर्वेष्टितमेव धेवलम् ।
 प्राकाररूपैरतिरिक्तवर्द्धितै र्वोरस्तरयप्रमितैः शिखोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥
 पुरं घर योजनलक्षविस्तृतं त्रिकोटिरत्नेन्द्रगृहान्वितं सदा ।
 विराजितं हीरकसारनिर्मितैश्चित्रैर्विचित्रैर्विचित्रैर्मनोहरैः ॥ ४ ॥
 माणिक्वमुक्तामणिदर्पणैर्युतं न स्वप्नदृष्टं द्विज विश्वकर्मणः ।
 व्याकल्पमेकैः शिवसेवितैर्जनेर्निपेचितं सन्ततमेव शौनक ॥ ५ ॥
 सिद्धैर्नियुक्तं शतकोटिलक्षरैखिकोटिलक्षैश्च युतं ग्यपापदै ।
 युक्तं त्रिलक्षैर्विकटैश्च भैरवैः क्षेत्रैश्चतुर्लक्षशानैश्च वेष्टितम् ॥ ६ ॥
 सुष्टुर्मवेष्टितमेव सन्ततं मन्दारवृक्षप्रवरैः सुपुष्पिनै ।
 विराजितं सुन्दरकामधेनुभिर्यथा घटाकाशतस्त्रैर्नभस्तलम् ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा मुनिर्विस्मयमाप मानसे किमत्र चित्रं बुधिर्योगिनां गुरो ।
 लोकं त्रिलोकाच्च विलक्षणं परं र्मात्मन्युरोगार्त्तिजगहरं धरम् ॥ ८ ॥
 दूरे समामण्डलमध्यगं शिवं ददर्श शान्तं शिवदं मनोह्रम् ।
 पद्मत्रिनेत्रं विधुपञ्चवक्त्रकं गङ्गाधरं निर्मलचन्द्रशेखरम् ॥ ९ ॥
 प्रतप्तहेमामजटाधरं विभुं त्रिगन्धरं शुभ्रमनन्तमक्षरम् ।
 मन्दाकिर्नीपुष्करर्वाजनालया कृष्णेति नामैव मुदा जपन्तम् ॥ १० ॥
 सूनीलकण्ठं भुजगेन्द्रमण्डितं योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमुनीन्द्रवन्दितम् ।
 सिद्धेश्वरं सिद्धिविधानकारणं मृत्युञ्जयं कालयमान्तकारकम् ॥ ११ ॥
 प्रसन्नहास्याम्यमनोहरं परं विश्वोद्भृतीनां शिवदं वस्प्रदम् ।
 सदाशुतोप भवरोपवर्जितं भक्तप्रियं भक्तजनैरुच्यन्धुम् ॥ १२ ॥
 गत्वा समीपं मुनिरेव शूलिनं ननाम मुदा पुलकाङ्कविग्रहम् ।
 वीणां त्रिनन्त्रीं कणयन् पुनर्जगौ कृष्णं प्रनुष्टाय कलहंसरुष्टः ॥ १३ ॥
 दृष्ट्वा मुनीन्द्रप्रवरञ्च सस्मितं विधेः सुतं वेदविदां धरिष्टम् ।
 योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमहर्षिभिः सह जयेन पाठाद्भुदतिष्टरीज्वरः ॥ १४ ॥
 ददौ च तस्मै मुनये ससन्त्रमनालिङ्गनञ्चाशिग्मासनादिकम् ।
 पप्रच्छ भद्रं गमनप्रयोजनं तपोधनं तं तपसाञ्च शौनक ॥ १५ ॥
 सद्रत्नसिंहासनसुन्दरेव रे चोवास शम्भुर्वरपार्षदैः सह ।
 नोवास अग्रुस्तनयः पुदाञ्जलिस्तुष्टाव भक्त्या प्रपतः प्रभुं द्विज ॥ १६ ॥
 गन्धर्वराजेन कृतेन नागदो वेदोक्तस्तोत्रेण शुभप्रदेन च ।
 स्तुत्या प्रप्तानं पुनरेव कृत्वा भवाजयोवास भवस्य धाम्नतः ॥ १७ ॥
 चकार तत्रैव निवेदनं शिवे मनोऽभिल्लाषं भवकामपूरके ।
 श्रुत्या मुनेभ्यश्चननं कृपानिधिर्द्रुतं प्रतिज्ञां प्रवक्तार चोमिति ॥ १८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मवन्दे सान्निधानसम्वादे शिवनारदसम्मिलनं नाम
 पञ्चविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

पड्विंशतितमोऽध्यायः ।

शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम् ।

सौत्रियाच ।

हरेस्तोत्रञ्च कवच मन्त्रं पूजाविधि परम् । हरं ययाचे देवर्षिध्यानञ्च ज्ञानमेव च ॥
स्तोत्रञ्च कवच मन्त्र ध्यानंपूजाविधानरुम् । तन्प्राक्तनोपज्ञानञ्चददौतस्मी महेश्वरः ॥
सर्वं प्राप्य मुनिश्रेष्ठ परिपूर्णमनोरथः । उवाच प्रणतो भक्त्या गुह्यं प्रणतवत्सलम् ॥

नारद उवाच ।

आह्निकं ब्राह्मणानाञ्च यद् वेदविदां घर । स्वधर्मपालनं नित्यं यतो भवति नित्यशः ॥४॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

उत्थाप्य ब्राह्मणे मुहूर्त्तं ब्रह्मन्ध्वज्यङ्गुजे । सूक्ष्मे सहस्रपत्रे च निर्मले श्लानिबर्जिते ॥५॥
रात्रिवासं परित्यज्यगुरुनम्रेयचिन्तयेत् । व्याख्यामुद्राङ्कं प्रीतस्स्मितं शिष्यवत्सलम् ॥
प्रसन्नयदनं शान्तं परितुष्टं निरन्तरम् । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपञ्च शिष्याणाञ्चिन्तयेत्सदा ॥
ध्यात्वा त्वद्गुरुमादाय हृदुपत्रे निर्मले सिने । सहस्रपत्रे विस्तीर्णं देवमिष्टं विचिन्तयेत् ॥
यस्य देवस्य यद्गुह्यं यद्गुरुं तद्विचिन्तयेत् । गृहीत्वा तदनुष्ठाञ्चकर्त्तव्यं समयोचितम् ॥
आर्द्राध्यात्वागुरुनत्वासपूज्यविधिपूर्वकम् । पश्चान्तदाज्ञामादाय ध्यायेद्द्विष्टं प्रपूजयेत् ॥१०॥
गुह्यदर्शितो देवो मन्त्रपूजाविधिर्जपः । न देवेन गुरुर्द्रष्टस्तस्मात् देवात् गुरुः परः ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः प्रवृत्तिशाखा गुम्बन्धोऽनलो रविः ॥२२॥
गुरुर्वायुश्च चरणो गुरुर्माता पिता सुहृत् । गुरुरेव परं ब्रह्मन्नास्ति पूज्यो गुरोः परः ॥
अभीष्टदेवरूपे च समर्थो रक्षणे गुरुः । न समर्था गुर्गे कृते रक्षणे सर्वदेवताः ॥१५॥
यस्य तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे । यस्य कृष्टो गुरुस्तस्य सर्वनाशश्च सर्वदा
न संपूज्य गुरुं देवं यो मूढः पूजयेद्भ्रमान् । ब्रह्मदम्ब्याश्रयपापलभनेनात्र संशयः ॥१६॥
सामयेदे च भगवानित्युवाच हरिः स्वयम् । तस्माद्भीष्टदेवाच्च गुरुः पूज्यतमः परः ॥

गुहमिष्टस्वययात्वास्तुत्वाचसाधकोमुने । वेदोक्तस्थलमासाद्यविष्णुव्रमुत्सृजेन्मुद्रा ॥
जल जलसमीपञ्च सरन्ध्र प्राणिसन्निधिम् । देवालयसमीपञ्च वृक्षमूलञ्च वर्त्म च ॥२६
हलोत्कर्षस्थलञ्चैव शस्यक्षेत्रञ्च गोष्ठकम् । नदीकन्दरगर्भञ्च पुष्पोद्यानञ्चपङ्किलम् ॥२७
ग्रामाद्यभ्यन्तरञ्चैव नृणा गृहसमीपकम् । शङ्कु सेतु शरवण श्मशानवह्निसन्निधिम् ॥२१
क्रीडास्थल महारण्य मञ्चकाय स्थलतथा । वृक्षच्छाथानुत्स्थानमन्तःप्राण्यवपर्णकम् ॥
दूर्वास्थान कुशास्थान वर्ल्मीकस्थानमेव च । वृक्षारोपणभूमिञ्चकार्यार्थञ्चपरिष्कृतम् ॥
पतन् सप्तं परित्यज्य सूर्य्यतापविर्वर्जितम् । इत्वा गत्तं पुरीपञ्च मूत्रञ्च परिवर्त्येत् ॥
पुरीपमूत्रोत्सर्गञ्चदिवाकुर्व्यादुद्दङ्मुख । पश्चिमाभिमुखोरात्रौसन्त्यायादक्षिणामुख ॥
मौनी भूत्वा च नि श्वास यथा गन्धो न सञ्चरेत् ।

त्यन्त्वा मृदा समाच्छाद्य शौच कुर्याद्विचक्षण ॥ २६ ॥

इत्वा तु लोपूशौचञ्च जलशौच तत परम् । मृदयुक्त तज्जलञ्चैव तत्प्रमाणनिशामय ॥
एका लिङ्गे मृद दद्याद् वामहस्ते चतुष्टयम् । उभयोर्हस्तयोर्द्वैतमूत्रशौचप्रकीर्तितम् ॥२८
मूत्रशौचञ्च द्विगुण मैथुनानन्तर यदि । मैथुनानन्तरे शौच मूत्रशौच चतुर्गुणम् ॥ २९ ॥
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश । उभयोः सत दातव्या पाद पद्मेन शुष्यति ॥
पुरीयशौचविप्राणागृहिणामिदमेव च । विधयानाञ्च द्विगुण शौचमेव प्रकीर्तितम् ॥३०॥
यतीना वैष्णवानाञ्च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मचारिणाम् । चतुर्गुणञ्च गृहिणा तेषा शौचप्रकीर्तितम् ॥
नो यावदुपनीयेत द्विज शूद्रस्तथाङ्गना । गन्धलेपक्षयकर तेषा शौच प्रकीर्तितम् ॥३३
शौच क्षत्रविशोश्चैव द्विनानागृहिणासमम् । द्विगुणवैष्णवादीनामुनीनापरिकीर्तितम्
न्यूनाधिक न कर्त्तव्य शौच शुद्धिमर्माप्सता । प्रायश्चित्त प्रयुज्येन विहितातिक्रमेऋते ॥
शौच तन्नियम मत्त सावधान निशामय । मूत्रशौचेचशुचिर्विप्रोऽप्यशुचिञ्चन्यनिक्रमे ॥
वल्माकमृषिकोन्धाता मृदमन्तर्ला तथा । शौचापशिगगेहाच्चनदद्याल्लेपसम्भवाम् ॥
मन्तःप्राण्यवपर्णाञ्चहलोन्पाताप्रिशेखत । कुशमूलोन्थिताञ्चैर्दूर्वामूलोन्थितान्थया ॥

अश्वत्थमूलानीताञ्च तथैवशयनोत्थिताम् ।

चतुष्पथाच्च गोष्ठाना गौष्पदानातथैव च । शस्यस्थलाना क्षेत्रापामुद्यानानामृदत्यजेत्

स्नातो वाप्यथवास्नातोविप्र शौचेनशुध्यति । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्ह सर्वकर्मसु ।

ऋत्याशौचमिदं विप्रो मुख प्रक्षालयेत् सुधी ॥४१॥

आदौ षोडशगण्डुपैमवशुद्धिं विधाय च । दन्तकाष्ठेन दन्तञ्च तत्पश्चात् परिमार्जयेत् ॥

पुन षोडशगण्डुपैमवशुद्धिसमाचरेत् । दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद ॥४३॥

निरूपितं सामयेदे हरिणा चाह्निकक्रमे । अपामार्गं सिन्धुवारमात्रञ्च करवीरकम् ॥ ४४

गन्धिञ्च शिरीषञ्च जातिपुत्रागशालकम् । अशोकमर्जुनञ्चैव क्षीरीवृक्षकदम्बकम् ॥४५

जम्बूकं बसुलचौद्रं पलाशञ्च प्रशस्तकम् । घदरी पारिभद्रञ्चमन्दारशाल्मलितथा ॥४६॥

वृक्षकण्टकयुक्तञ्च लतादिपरिवर्जितम् ॥ ४७ ॥

पिप्पलञ्च पियालञ्च तिनित्डीकञ्च ताडकम् । खजूरं नारिकेलञ्च तालञ्च परिवर्जितम् ॥

दन्तशौचविहीनश्च सर्वशौचविहीनक । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्ह सर्वकर्मसु ॥ ४८

ऋत्या शौचं शुचिर्विप्रो धृत्या धौते च वाससी ।

प्रक्षाल्य पादमाचम्य प्रातः सन्ध्या समाचरेत् ॥ ५० ॥

पर्यासन् यः सन्ध्याञ्जमुत्थेऽनुलजो द्विज । सस्नाते सर्वार्थेषु त्रिसन्ध्याय समाचरेत् ।

त्रिसन्ध्याहानोऽप्यशुचिर्नर्ह सर्वकर्मसु । यदहा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत् ॥

नोपनिष्ठतिय पूर्वाणोपास्ते यस्तुपश्चिमाम् । स शूद्रवद्दहि कार्प्यं सर्वस्माद्द्विजकर्मणः

पूर्वासन्ध्या परित्यज्य मध्यमा पश्चिमा तथा । इहृहृत्यामारमहृत्याप्रत्यहं लभते द्विज ।

एकान्तशौचविहीनोय सन्ध्याहीनश्चयो द्विज । कल्पव्रजेत् कालसूत्रयथाहितृपत्नीपति ॥

विधायग्रान् सन्ध्याञ्चगुरमिपसुरं रविम् । ब्रह्माणामीशविष्णुश्चमायापद्मासरस्वतीम् ।

प्रणम्य गुरुमाज्यञ्च दर्पणं मधुवाञ्चनम् । स्पृष्ट्वा स्नानादिषु काले कुर्यात्साधकसत्तम ।

पुष्करिण्यान्तुवाप्यान्तु यदास्नानसमाचरेत् । समुद्रृत्य पञ्चपिण्डानादौधर्मो विचक्षणः

नद्यान्दे कन्दरवा तीर्थेधा स्नानमाचरेत् । कुर्यात् स्नात्वा तु सङ्कल्पे ततः स्नानं पुनमुने ।

ध्यात्वाऽपि तिसामश्च धीर्णवाना महानामनाम् । सङ्कल्पो गृहीणाञ्चैवृत्तपातकनाशनम् ॥

विप्रं कृत्वा तु सङ्कल्पं मृदं गात्रे प्रलेपयेत् । वेदोक्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धिं कृतेन च ॥५१

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्तेवसुधरे । मृचिके हरि मेपापयमया द्रुष्टव्यं कृतम् ॥

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतपाहुना । आस्था मम गात्राणि सर्वं पाप प्रमोचय ॥६३॥
 पुष्यदेहिमहाभागं स्नानानुत्तं कुरुय माम् । इत्युक्त्वाच जले नामिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम् ।
 चतुर्हस्तप्रमाणाञ्च कृत्या मण्डलिका शुभाम् । तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तदत्त्वा तपोधन
 यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयामि ते ॥ ६६ ॥

गङ्गे च यमुने चैव गोदापरि सख्यति । नर्मदे सिन्धु कापरे जलेऽस्मिन् सत्रिचिकुरु ॥
 नलिनीतन्दिना सातामालिना च महापरा । विष्णुपादाभ्यसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥
 पद्मावतीभोगवती स्वर्णरेखा च कीर्तिनी । दक्षापृथ्वीचमुभगा विश्वकाया शिवामृता ॥
 त्रिपार्वती सुप्रसन्ना तथा लोक्प्रसापिनी ।

धेमा च वैष्णवी शान्ता शान्तिदा गोमती सर्वा ॥ ७० ॥

सा त्रिपारुत्सा दुर्गा महालक्ष्मी सख्यता । कृष्णप्राणात्रिकारात्रा लोपामुटादितारति ।
 अहल्या चादिता सजास्वघास्वाहाल्यस्त्वती । शतरूपा देवहृतान्येऽरमाद्या स्मरेत्सुधी
 स्नान्वास्नान्वा महापूत कुर्यात्तु तिर्यक् पुत्र । बाजोमूले ललाटे च कण्ठदेशे च वक्षसि
 स्नानदान तपो होम देवञ्च पितृकर्मसु । तत्र सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिर्यक् पिना ॥
 ब्राह्मणमनिर्य रुधा कुर्यात्त सत्राञ्च तर्पणम् ।

नमस्कृत्य सुरान् भक्त्या गृहं गच्छेन्मुदान्वित ॥ ७० ॥

प्रथमं पाद यत्नेन धृत्वा धौते च वाससा । मन्दिरं प्रविशेत् प्रात इत्याहहरिरेव च ॥
 पिनापानीचप्रज्ञाय स्नात्वा त्रिशक्तिमन्दिरम् । तस्य स्नानादिकं नष्टं जपहोमञ्चपञ्चमम् ।
 पवित्रायस्त्रिप्रवक्त्रं गृहञ्चप्रविशेत् गृहा । रुपाश्क्ष्मागृह्णात्यति शापदत्त्वासुत्पानम् ।
 उदर्यन्तद्वैचयोत्रिप्र पादौ प्रक्षार्येत् यत्नि । तावद्भवतिचाण्डलौ यावद् गङ्गान पश्यति
 उपविश्यासनेऽहम्नाचम्य सारङ्गशुचि । पूजाकुर्यात्तु वेनेक भक्तियुक्तो हि सयत ॥
 शाग्रामे मर्णा मन्त्रे प्रतिमायाञ्जरे षष्ठे । गोपृष्ठे वा गुरो विप्र प्रशस्तमर्चन हरे ॥
 सर्वप्रशस्ता पूजा च शाग्रामे च नाष्ट । सुगणामेव सर्वेषा यत्रात्रिष्ठानमेव च । ८२
 स स्नान सर्वतीर्थेषु सर्वयोगेषु दीक्षित । शाग्रामोदकेनैव योऽभिषेक समाचरेत् ॥ ८३
 शाग्रामे च भक्त्या नित्यमन्नातियो नष्ट । र्जपन्मुन सच भवेत् याल्यन्ते कृष्णमन्दिरम्

शालग्रामशिलाञ्च यत्र तिष्ठति नारद । सचक्रो भगवास्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम् ॥
 तत्र यो हि मृतो दहा क्षानाज्ञानेन दैवत । रत्ननिर्माणयानेन स धाति श्रीहरे पद्म ॥८६॥
 शालग्राम विनात्यत्रक साधु पूजयेद्भक्तिम् । कृत्वा तत्र हरे पूजा परिपूर्णं फललभेत् ॥
 पूजाध्याय कश्चित् श्रूयता पूजनकर्म । हरे पूजा बहुमता कथयामि यथागमम् ॥ ८८

कश्चिद् ददाति हरये चोपचाराश्च षोडश ।

सुन्दराणि पवित्राणि नित्य भक्त्या च वैष्णव ॥ ८९ ॥

कश्चिद् द्वादश द्रव्याणि पञ्चगव्यं कश्चन । येषामेव यथाशक्तिर्भक्तिमूलञ्च पूजने ॥९०॥
 वासन वसन पायमर्षमाचमनीयकम् । पुष्प चन्दनमूषञ्च दीपनैत्रैश्चमुत्तमम् ॥ ९१ ॥

गन्ध माल्यञ्च शय्याञ्च ललिता सुविलक्षणम् ।

जलमन्त्रञ्च ताम्बू साधार देवमेव च ॥ ९२ ॥

गन्धान्तपताम्बू विनाद्रव्याणि द्वादश । पात्रार्थजल नैवेद्य पुष्पाण्येतानि पञ्च च
 सर्वाण्येतानि मूत्रेण दद्यात् साधकसत्तम । गुणपदिष्ट मूत्रञ्च प्रशस्त सर्वकर्मसु ॥९३॥
 आदौ कृत्वा भूतशुद्धिं प्राणयाम तत परम् । अङ्गप्रत्यङ्गन्यासञ्च मन्त्रन्यासतत परम् ॥
 घर्षणन्यास विनिर्यं चार्घ्यपात्र विनिर्दिशेत् । त्रिकोणमण्डलकृत्वा तत्रकर्मप्रपूजयेत् ।
 जत्रेतापूर्व शङ्खञ्च तत्रस्थापयेत् द्विज । जत्र सपूयविधिवनतीर्थान्यावाहयेत्तत ॥
 पूजापकरणेन जत्रेन क्षात्र्येन पुन । ततोग्रहीत्वा पुष्पञ्च कृत्वायोगासन शुचि ॥
 ध्यानेन गुह्यत्तेन ध्यायेत् कृष्णमनन्यधी ।

ध्यात्वा पाद्यादिक सर्वं दद्यान्मूत्रेण साधक ॥ ९६ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गदेवञ्च तत्रोक्त पूजयेद्भक्तिम् । मूत्रं जप्त्वा यथाशक्ति देवमन्त्रं विसर्जयेत् ॥
 दत्त्वापहार विविद्रस्तुत्या च कचचपठेत् । तत कृत्वापरीक्षारमृदा च प्रणमेद्भुवि ॥
 कृत्वा च देवपूजाक्षयज्ञानुर्वाहविशक्षण । ध्यात्वा मार्त्ताम्रियुक्तञ्च रत्नद्राक्तनो मुने ॥
 नित्यप्राद्व यथाशक्तिदानविज्ञानुरूपकम् । कृत्वा कृती च विहरेण प्रमपपश्रुतोश्चुत ॥
 इति ते कश्चित् सप्त वैदोक्तं मन्त्रमुत्तमम् ।

आद्विकस्य च विप्राणां किं भूय ध्योनुमिच्छामि ॥ १०० ॥

इति आब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मवैवर्ते शिवनागदस्वादि आद्विकप्रकरणे कथितं नाम
 पञ्चविंशतिप्रमाणम् ॥ १०१ ॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

नराणां भक्ष्याभक्ष्य-कर्तव्याकर्तव्यकथनम् ।

नारद उवाच ।

भक्ष्यं किं वाप्यभक्ष्यञ्च द्विजानां गृहिणां प्रभो ।

यतीनां वैष्णवानाञ्च विधवाब्रह्मचारिणाम् ॥ १ ॥

किं कर्तव्यमकर्तव्यमभोग्यं भोग्यमेव वा । सर्वं कथय सर्वज्ञ सर्वेश सर्वकारणम् ॥

महादेव उवाच ।

कश्चित्तपस्वी विप्रश्चनिराहारी चिरंमुनिः । कश्चिन् सर्माश्याहारीफलाहारी च कश्चन ॥

अन्नाहारी यथाकाले गृही च गृहिर्णायुतः ।

येषामिच्छा च या ब्रह्मन् हर्षानां विविधा गतिः ॥ ४ ॥

हविष्यान्नं ब्राह्मणानां प्रशस्तं गृहिणां सदा । नारायणोच्छिष्टमिष्टमनिवेद्यमभक्षकम् ॥

अन्नं विष्टाजलं मूत्रं यद्दुविष्णोरनिवेदितम् । विष्णूत्रं सर्वपापोक्तमन्नञ्च हरिवासरे ॥

ब्राह्मणः कामतोऽन्नञ्च यो भुङ्क्ते हरिवासरे ।

त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥ ७ ॥

न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यञ्च नारद । गृहिभिर्ब्राह्मणैरत्रं संप्राप्ते हरिवासरे । ८ ॥

गृही शैवश्च शाक्तश्च ब्राह्मणो ज्ञानदुर्लभ । प्रयातिकालसूत्रञ्च भुक्त्वा च हरिवासरे ॥

कृमिभिः शाल्मानैश्च भक्षितस्तत्र तिष्ठति । विष्णूत्रभोजनं कृत्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश

जन्माष्टमी दिने रामनरमी दिवसेहरेः । शिवरात्रौ च योभुङ्क्तेसोऽपिद्विगुणपातको ॥

उपवासासमर्थश्च फलमूलजलं पिबेत् । नष्टे शरीरे स भवेदन्यथा चात्मघातकः ॥ १२ ॥

सद्गृहभुङ्क्तेहविष्यान्नंविष्णोर्निवेद्यमेव । न भवेत्पत्न्यवार्थी स चोपवासफलंलभेत् ॥

एकादश्यामनाहारं गृही विप्रश्च भारते । स च तिष्ठति वैकुण्ठे यावद्दुर्वै ब्रह्मणो वयः ॥

गृहिणां शैवशाक्तानामिदमुक्तञ्च नारद । विशेषतो वैष्णवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ १ ॥

नित्यं नयेत्प्रभोजी यः श्रीरुष्णस्य च वैष्णवः ।

नित्यं गतोपवासानां जीवन्मुक्तः फलं लभेत् ॥ १६ ॥

चाञ्छन्ति तस्य रस्यश तीर्थानि सर्पदेवतां । आलापं दर्शनञ्चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥
द्विस्मिन्नमन्त्रं पृथुक्तं शुद्धं देशविशेषके । नात्यन्तशस्तं विप्राणां भक्षणे च निवेदने ॥
अमश्यञ्च यतीनाञ्च विधवा ब्रह्मचारिणाम् ।

ताम्बूलञ्च यथा ब्रह्मन् तथैते घस्तुनी ध्रुवम् ॥ १६ ॥

ताम्बूलविधवास्त्रीणांयतीनां ब्रह्मचारिणाम् । तपस्विनाञ्चविप्रेन्द्र गोमांससदृशंभुवम् ॥
सर्वेषां ब्राह्मणानाञ्च चामक्ष्यं शृणुनारद । यदुक्तं सामवेदे च हरिणाचाह्निकक्रमे ॥२१॥
ताम्रपात्रे पयं पानमुच्छिष्टे घृतभोजनम् । दुग्धं लग्नसार्द्धं च सयोगोमांसभक्षणम् ॥
नाग्निरेलोदककांश्वे ताम्रपात्रे स्थितंमधु । ऐक्ष्वं ताम्रपात्रस्थं सुरातुल्यं न संशयः ॥
उत्थाय वामहस्तेन यत्तोयं पितृति द्विजः । सुरापी च स विज्ञेयः सर्पधर्मवहिष्कृतः ॥
अतिवेद्य हरेरन् भुक्तशेषञ्च नित्यश । पीतशेषजलञ्चैव गोमांससदृशं मुने ॥ २५ ॥
वातिद्वेषणरुदश्चैव गोमांसं कार्तिकेस्मृतम् । माघे च मूलकञ्चैव कल्मषी शयनेतथा ॥
श्वेतपर्णञ्च तालञ्च मसूरं मन्थ्यमेव च । सर्वेषां ब्राह्मणानाञ्च त्याज्यञ्च सर्वदेशतः ॥२७॥
मत्स्यश्चकामनोभुक्तवासोपवासस्यर्द्धंघशेन् । प्रायश्चित्ततत रुन्धाशुद्धिमाप्नोतिब्राह्मणः
प्रतिपत्सु च कुम्भाण्डमभक्ष्यमर्थनाशनम् । द्वितीयाद्याञ्च वृहतीभोजने न स्मरेद्धरिम् ॥
अमश्यञ्च पटोलञ्च शत्रुवृद्धिकरं परम् । कृतीपायां चतुर्ष्याञ्च मूलकं घतनाशनम् ॥
कलङ्ककारणश्चैव पञ्चम्यां विलम्भक्षणम् । तिर्ष्यग्योति प्राप्येत्तु पञ्चराञ्च निष्वभक्षणम् ।
रोगवृद्धिकञ्चैव नराणां तालभक्षणम् । सन्तम्याञ्चैव तथातालं शरीरस्य च नाशकम् ॥
नारिकेलफलं भक्ष्यमष्टम्यां बुद्धिनाशनम् । तुम्बोतन्म्यांगोमांसदशम्याञ्चकलम्बिका ॥
एकादश्यांतथाशिमिरी द्वादश्यां पूतिकान्त्रा । त्रयोदश्यां (च) चार्ताकीभक्षणंपुत्रनाशनम् ।
चतुर्दश्यां मांसभक्ष्यं महापापकरं परम् । पञ्चदश्यां तथा मांसममश्यं गृहिणां मुने ॥
गृहिणां प्रोक्षितं मांसं भक्ष्यमन्यदिनेषु च । प्रातः स्नाने तथा ध्राद्धे पार्यणे घ्नतयासरे ॥
प्रशान्तं सारपं तैलं पक्वैलञ्च नाद । बुद्धपूर्णेन्दुसंत्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च ॥ ३७ ॥

रवां धाद्वे व्रताहे च दुष्टं स्त्री तिलतैलकम् ।

मांसञ्च रक्तशाकञ्च कांश्यपात्रे च भोजनम् ॥ ३८ ॥

निम्बिञ्च शयने चैव कृर्ममांसञ्च प्रोक्षितम् । निषिद्धं सर्ववर्णानां दिवा स्वस्त्रीनिषेधनम् ।

रात्रौ च दधिभक्ष्यञ्च शयनं सन्ध्ययोर्दिते । रजःखलास्त्रीगमननेतन्नरककारणम् ॥ ३९ ॥

रजःखलावीरान्त्रञ्च पुंश्चल्यन्नमभक्षकम् । शूद्राणां याजकान्त्रञ्च शूद्रादान्त्रमेव च ॥

अभक्ष्यान्त्रञ्च विप्रैः! यदन्नं वृथलापनैः । ब्रह्मन् वादुर्युषिकान्त्रञ्च गणकान्त्रमभक्षकम् ।

अप्रदानिद्विजान्त्रञ्च विकित्ताकारकम्य च । हस्ताचित्राहरीतैलमप्राद्यञ्चाप्यभक्षणम् ।

मूले मृगे भाद्रपदे मांसं गोमांसतुष्यकम् । अमायां कृत्तिकायाञ्चद्विजैः शौरिविबर्जितम् ।

कृत्वा तु मैयुनं शौरं यो देवांस्तर्पयेत् पितृन् । रथिरं तद्भवेत्तोयं दाता च नरकं व्रजेत् ।

यन् कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं यद्भोज्यं यदभोज्यकम् ।

सर्वं तुभ्यं निगदितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४६ ॥

इति श्रीप्रसन्नवैवर्ते महापुण्ये ब्रह्मवग्दे सौत्तराणकपत्रादे शिवनारदसंवादे कर्त्तव्या-

कर्त्तव्यकथनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मनिरूपणम् ।

नारद उवाच ।

* श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वन्प्रसादज्ञगद्गुरो । भवान् ब्रह्मस्वरूपश्च यद् ब्रह्मनिर्णयणम् ॥१॥

प्रभो किं ब्रह्म साकारं किं निराकारमाञ्चरम् । किं तद्विशेषणं किं वाप्यविशेषणमेव च ।

किं वा दृश्यमदृश्यं वा लिप्तं देहिषु किं न वा । किं वा तद्भक्षणशस्त्रवेदेवाकिंनिरूपणम् ।

ब्रह्मनिरुक्ता प्रकृतिः किं वा ब्रह्मस्वप्नपिर्णा । प्रकृतिर्लक्षणं किं वा सारभूतं श्रुतं श्रुतम् ।

कम्यं सृष्टौ च प्राधान्यं द्वयोर्मध्ये वरं परम् । विचार्य्य मनसा सर्वसर्वज्ञवद्गमांश्चुवम् ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा पञ्चवक्त्रः प्रहस्य च । भगवान् वक्तुमारंभे परं ब्रह्मनिरूपणम् ॥
महादेव उवाच ।

यद् यत् पृष्टं त्वया वत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम् । सुदुर्लभञ्च वेदेषु पुराणेषु च नारद ॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शेषो धर्मो महान् विराट् ।

सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्नस्माभिः श्रुतिभिर्न वा ॥ ८ ॥

यद्विशेषणयुक्तञ्च दृश्यं प्रत्यक्षमेव च । तन्निरूपितमस्माभिर्वेदे वेदविदां वर ॥ ९ ॥

वैकुण्ठे च पुरा पृष्टे धर्मेण ब्रह्मणा मया । यदुवाच हरिः किञ्चिन्निबोध कथयामिते

सारभूतञ्च तत्त्वानामज्ञानान्धकलोचनम् । द्वैधभ्रमतमोर्ध्वंससुप्रकृष्टप्रक्षीपकम् ॥ ११ ॥

परमात्मस्वरूपञ्च परं ब्रह्म सनातनम् । सर्वदेहस्थितं साक्षिस्वरूपं देहिकर्मणाम् ॥ १२ ॥

प्राणा पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्माप्रजापतिः । सर्वज्ञानस्वरूपोऽहंशक्तिप्रकृतिरीदृश्वरी ॥

आत्माधीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिंश्च संस्थिताः । गते गताश्च परमे नारदैवमिवानुगाः

जीवस्तत्प्रतिविम्बश्च स च भोगी च कर्मणाम् । यथार्कचन्द्रयोर्विम्बो जलपूर्णघटेषु च

विम्बो घटेषु भानेषु प्रलीनश्चन्द्रसूर्ययोः । तथा सृष्टौ च भगवांजीवो ब्रह्मणि लीयते

एकमेव परं ब्रह्म शेषे वत्स भवक्षये । वयं प्रलीनास्तत्रैव जगदेतच्चराचरम् ॥ १७ ॥

तच्च ज्योतिस्वरूपञ्च मण्डलाकारमेव च । श्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डकोटिकोटिसमप्रभम् ॥

आकाशमिव विस्तीर्णं सर्वव्यापकमव्ययम् । सुखदृश्यं यथा चन्द्रविम्बं योगिभिरेव च

वदन्ति योगिनस्तत् परं ब्रह्म सनातनम् । दिवानिशञ्च ध्यायन्ते सत्यं तन् सर्वमद्वैतम्

निर्गहञ्च निराकारं परमात्मनमीश्वरम् । स्वेच्छामयं स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम् ॥

परमानन्दरूपञ्च परमानन्दकारणम् । परं प्रधानं पुरुषं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ।

तत्रैव लीना प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी ॥ २२ ॥

यथाग्नी दाहिका शक्तिः प्रभा सूर्यो यथा मुने । यथा दुग्धे च धावत्यंजलेऽश्विन्यंयथैव च

यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षिती सदा । तथाहि निर्गुणं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिस्तथा

सृष्ट्युन्मुने न तद्ब्रह्मवांशेन पुरयः स्मृतः । स ण्यसगुणोवत्स ! प्राट्शौचिपथीस्मृतः ।

सा च तत्रैव त्रिगुणा परा छायागमयी स्मृता ॥ २६ ॥

यथा मृदा कुलालश्च घटं कर्तुं क्षमः सदा । तथा प्रकृत्या तद्ब्रह्म सृष्टिं कृष्टुं क्षमो मुने ।
स्वर्णेन कुण्डलं कर्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा । तथा ब्रह्म तया सार्द्धं सृष्टिं कर्तुमिहेश्वरः ।
कुलालसृष्टा न च मृन्नित्या एव सनातनी । न स्वर्णकारसृष्टं तन्स्वर्णञ्च नित्यमेव च ।

नित्यं तन् परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता ।

द्वयोः समञ्च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि ॥ ३० ॥

मृदं स्वर्णं समाहर्तुं कुलालस्वर्णकारकौ । न समर्थौ च मृत्स्वर्णं तयोराहरणे क्षमम् ॥
तस्मात्तद्ब्रह्म प्रकृतैः परमेव च नारद ! । इति केचिद्ब्रह्मन्त्येव द्वयोश्च निन्यता ध्रुवम् ॥
केचिद्वदन्ति तद्ब्रह्म स्वयञ्च प्रकृतिः पुमान् । ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिर्वदन्तीति च केचन ।
तद्ब्रह्म परमं धाम सर्वकारणकारणम् । तद्ब्रह्मलक्षणं ब्रह्मन्निद्रं किञ्चिन् ध्रुतौ ध्रुतम् ॥
ब्रह्मचात्मा च सर्वेषां निर्लितं साक्षिरपिणम् । सर्वव्यापी च सर्वादिलक्षणञ्च ध्रुतौ ध्रुतम् ।
तद्ब्रह्मशक्तिः प्रकृतिः सर्ववीजस्वरूपिणी । यतस्तच्छक्तिमद्ब्रह्म चेदं प्रकृतिलक्षणम् ॥

तेजोरूपञ्च तद्ब्रह्म ध्यायन्ते योगिनः सदा ।

वैष्णवास्तत्र मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मबुद्धयः । तत्तेजः कस्य वाश्चर्य्यं ध्यायन्ते पुरुषं विना ॥
कारणेन विना कार्यं कुतो वा प्रभवेद्भवे । ध्यायन्ते वैष्णवास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम् ॥
स्वेच्छामयस्य पुंसश्च साकारस्यात्मनः सदा । तत्तेजो मण्डलाकारे सूर्य्यकोटिसमप्रभे ॥
नित्यं स्थूलञ्च प्रच्छन्नंगोलोकाभिधमेव च । लक्षकोटियोजनञ्च चतुरस्रं मनोहरम् ॥

रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीनामावृतं सदा ।

सुदृश्यं चतुर्लाकारं यथैव चन्द्रमण्डलम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं निराघातञ्च स्वेच्छया ॥
ऊर्ध्वञ्च नित्यं वैकुण्ठान्पञ्चाशत्कोटियोजनम् । गोगोपगोपीसंयुक्तं कल्पवृक्षसमन्वितम्
कामधेनुभिराकीर्णं रासमण्डलमण्डितम् । वृन्दावनवनाच्छन्नं विरजावेष्टितं मुने ॥ ४३ ॥
शतशृङ्गं शतशृङ्गैः सुदीप्तं दीपतीप्तितम् । लक्षकोटिपरिमितैराश्रमैः सुमनोहरैः ॥ ४४ ॥

शतमन्दिरसंयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥

प्राकारपरिस्त्रायुक्तं पारिजातवनान्वितम् । कौस्तुभेन्द्रेण मणिना निर्माणकलसोज्ज्वलैः
हीरासारविनिर्माणसौपानमंघसुन्दरैः । मर्णान्द्रसारनिर्माणैः कपाटदर्शणान्वितैः ॥ ४६ ॥

नानाचित्रविचित्राख्ये राधामञ्च सुसंस्कृतम् । पौडशद्वारसंयुक्तं सुदीप्तं रत्नदीपकैः ॥४८॥
 रत्नसिंहासने गम्ये चाप्रत्यक्षनिर्मिते । नानाचित्रविचित्राख्ये घसन्तमीश्वरंवरम् ॥४९॥
 नवीननागदश्याम किशोरवयसं शिशुम् । शरन्मध्याह्नमार्त्तण्डप्रभामोचनलोचनम् ॥५०॥
 शरत्पार्वणपूर्णेन्दुशोभाच्छादनमाननम् । कोटिकन्दर्पलाघण्यलीलानिन्दितसुन्दरम् ॥
 कोटिचन्द्रप्रभायुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् । सस्मितं मुक्लीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम् ॥५२॥
 वेदिस्रस्कार्पीताशुयुगलेन समुज्ज्वलम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम् ॥
 आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् । त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं मणिमाणिक्यभूषितम् ॥
 मयूरपुच्छचूडञ्च सदन्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् ॥ ५५ ॥
 रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसुशोभितम् । मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदशनं सुमनोहरम् ॥५६॥
 पद्मविम्बाधर्गोष्ठञ्च नासिकोद्यतशोभनम् । वीक्षितंगोपिकाभिश्चवेष्टिताभिश्चसन्ततम् ॥
 श्रियर्यायनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम् । भूषिताभिश्च सदत्ननिर्माणभूषणेन च ॥
 मुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मानयेन्द्रकैः । ब्रह्माविष्णुशिवानन्तधर्माद्यैर्वन्दितं मुदा ॥५६॥
 भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकातरम् । रासेश्वरं सुरसिकं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥६०॥
 एवरूपमरूपं तं ध्यायन्ते वीष्णवा मुने । सततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम् ॥६१॥
 अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्त सनातनम् । स्पेच्छामयं निगुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥६२॥
 सर्वाधारं सर्वबीजं सर्वतं सर्वमेव च । सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकरप्रदम् ॥ ६३ ॥
 स एव भगवान्नादिर्गोलोकेऽभिभुजः स्वयम् । गोपवेशश्च गोपालः पार्यदैः परिवेष्टितः ॥
 परिपूर्णतमः श्रीमान् श्रीकृष्णोराधिकेश्वरः । सर्वान्तरात्मासर्वत्रप्रत्यक्षःसर्वगःस्मृतः ॥
 कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चात्मवाचकः । सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेनकृष्णः प्रकीर्तितः ॥६६॥
 कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चादिवाचकः । सर्वादिपुरुषो ध्यायी तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥
 स एवांशेन भगवान् वैकुण्ठे च चतुर्भुजः । चतुर्भुजैः पार्यदैस्नैरावृतः कमलापतिः ॥६८॥
 स एव कलयो विष्णुः पाता च उगतां प्रभुः । श्वेतद्वीपेसिन्धुकन्यापतिरेव चतुर्भुजः ॥
 एतन्ने कथितं सर्वं परं ब्रह्मनिर्हणम् । भस्मायं चिन्तनीयश्च सेव्यं वन्दितमीप्सितम् ॥
 इत्युक्त्वा शङ्करन्तत्र विरराम च शौनक । गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टाय तश्च नारदः ॥७१॥

मुनिस्त्वोत्रेण सन्तुष्टो भगवानादिरच्युतः । ज्ञानं मृत्युञ्जयस्तस्मै प्रददौवर्माप्सितम् ॥
 तं प्रणम्य मुनीन्द्रश्च प्रहृष्टवदनेक्षणः । तदाज्ञया पुण्यरूपं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ७३ ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारदप्रस्थानं नामाष्टा-
 विंशतितमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

नारायणं प्रति नारदप्रश्नः ।

सौतिस्त्वाव ।

वदशाश्रममाश्रम्य देवर्षिर्नारदस्तथा । ऋषिर्नारायणस्यैव चदरीवतसंयुतम् ॥ १ ॥
 नानावृक्षरुश्याकीर्णं पुंस्कोकिचरनभ्रुतम् । शोभेन्द्रैः केन्द्राण्डैर्व्याघ्रौघैः परिवेष्टितम् ॥
 ऋशेन्द्रस्य प्रभावेण हिंसाभयविवर्जितम् । महारण्यमगम्यञ्च स्वर्गाधिकमनोहरम् ॥ ३ ॥
 सिद्धेन्द्राणां मुनीन्द्राणामाश्रमाणां त्रिकोटिभिः । आवृतं चन्दनारण्यपारिजातवनान्वितम् ॥
 वदशं तमृषीन्द्रञ्च सभामध्ये मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्यञ्च वसन्तं योगिनां शुक्लम् ॥
 जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णान्मानमीश्वरम् । प्रणनाम च तं दृष्ट्वा ब्रह्मपुत्रश्च शौनक ॥ ६ ॥
 उवाच सहस्रालिङ्गं युयुजे परमाशिरम् । परन्तु कुरालं स्नेहाच्चकारातिथिपूजनम् ॥
 रत्नसिंहासने रम्ये चासयामास नारदम् । निरसजासने रम्ये धर्मधमविवर्जितः ॥ ८ ॥
 उवाच तमृषिध्रेष्ठं भगवन्तं सनातनम् । अर्घातवेदान् सर्वांश्च पितुःस्थाने सुदुर्गमान् ॥
 ज्ञानं सम्प्राप्य योगीन्द्रान्मन्त्रञ्च शङ्कपाद्विभो । मनो मेनहितृप्तोतिदुर्निवारञ्चञ्चलम् ॥
 दृष्टं प्रयातन्पदान्जंमनसप्रेरितेनच । किञ्चिज्ज्ञानविशेषञ्च लभ्युमिच्छामिसाम्प्रतम् ॥

यत्र कृष्णगुणारयानं जन्ममृत्युजराहरम् ॥ १२ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरेन्द्रश्च सुरा विभो । कं विन्तयन्ति मुनयोमनवश्चविवक्षणाः ॥
 चस्मान् सृष्टिश्च प्रमवेन् कुत्रवाविप्रलीयते । कोवासर्वेश्वरोविष्णु सर्वकारणकारकः ॥

तस्येश्वरस्य किं रूपं कर्म वा किं जगत्पते । विचार्य मनसा सर्वं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥

नारदस्य घञ् श्रुत्वा ब्रह्मस्य भगवानृषिः ।

कथा कथितुमारंभे पुण्या भुवनपावनीम् ॥ १६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौत्तिशौनकसवादे नागयण प्रति नारदप्रश्नो
नाम ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

श्रीनारायणकृतः स्तवः ।

श्रीनारायण उवाच ।

रुद्रोदरो हरिर्ब्रह्मापतिरीशशेषा ब्रह्माद्य सुरगणा मनवो मुनीन्द्रा ।
घाणी शिवा त्रिपथगा कमलादिका या सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ १ ॥
ससागरसागरमतीवगभीरघोर दावाग्नि सर्षपगिवैष्णितचेष्टिताङ्गम् ।
सलङ्घ्य गन्तुममिवाञ्छति यो हि दाम्य सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ २ ॥
गोवर्द्धनोद्धरणकर्त्तिरतीवग्निना भूर्धारिता च दशनाप्रचरेण ज्जिन्ता ।
विश्वानि लोमविचरेषु विमत्तुरादे सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ ३ ॥
गोपाङ्गनावदनपट्टजपट्टपदस्य रासेश्वरस्य रसिकारमणस्य पुत ।
वृन्दायने विहगतो व्रजपेशविष्णो सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ ४ ॥
चभुर्निमेषपतितो जगता विघ्राता न कर्मघस्त कथित भुवि क समर्थे ।
त्वञ्चापि नारदमुने परमादरेण सञ्चितन कुरहृश्चरणारविन्दम् ॥ ५ ॥
यूय घय तस्य कलाकणशा कलाकणशा मनवो मुनीन्द्रा ।
कणविशेषा भवपाङ्गमुण्या महान् विगडयस्य कणविशेष ॥ ६ ॥
सहस्रशीर्षा शिरस प्रदेशे निर्मन्ति सिद्धार्थसमञ्च विश्वम् ।

कूर्मे च शेषो मशको गजे यथा कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः ॥ ७ ॥

गोलोकनाथस्य विभोर्यशोऽमलं श्रुतो पुराणे न हि किञ्चन स्फुटम् ।

न पाद्ममुत्पायाः कथितुं समर्थाः सर्वेश्वरं तं भज पाद्ममुत्पयम् ॥ ८ ॥

विश्वेषु सर्वेषु च विश्वधाम्नः सन्त्येव शश्वद्विधिविष्णुस्त्र्याः ।

तेषाञ्च संत्प्याः श्रुतयश्च देवाः परं न जानन्ति तमीश्वरं भज ॥ ९ ॥

करोति सृष्टिं स विधेर्विधाता विधाय नित्यां प्रकृतिं जगत्प्रसम् ।

ब्रह्मादयः प्राकृतिकाश्च सर्वे भक्तिप्रदां श्रीं प्रकृतिं भजन्ति ॥ १० ॥

ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न भिन्ना यथा च सृष्टिं कुरुते सनातनः ।

श्रियश्च सर्वाः कलया जगत्सु माया च सर्वे च तथा विमोहिताः ॥ ११ ॥

नारायणी सा परमा सनातनी शक्तिश्च पुंसः परमात्मनश्च ।

आत्मेश्वरश्चापि यथा च शक्तिमास्तया विना क्लृप्तमशक्त एव ॥ १२ ॥

गत्वा विवाहं कुरु वत्स साम्प्रतं कर्तुं प्रयुक्तञ्च पितुर्निदेशम् ।

गुरोर्निदेशं प्रतिपालकोभयेत् सर्वत्रपूज्यो विजयी च सन्तनम् ॥ १३ ॥

स्वपत्नीं पूजयेद् यो हि ब्रह्मालङ्कारचन्दनैः । प्रकृतित्तस्यसन्तुष्टायथाकृष्णो द्विजाचने ॥

सा च योपितृस्वरूपा च प्रतिविश्वेषु मायया । योपितामपमानेन पराभूता च सा भवेत् ।

दिव्या ह्यीं पूजिता येन पतिपुत्रवती सती । प्रकृतिः पूजिता तेन सर्वमंगलदायिनी ॥

मूलप्रकृतिरेका सा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी । सृष्टौ पञ्चविधा सा च विष्णुमाया सनातनी ॥

प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमान्मनः ।

सर्वासां प्रेयसी कान्ता सा राधा परिकीर्तिता ॥ १८ ॥

नारायणप्रियालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी । रागाधिष्ठातृदेवी या साचपूज्या सरस्वती ॥

सावित्री वेदमाता च पूज्यरूपा विधेः प्रिया । शङ्करस्यप्रियादुर्गा यस्याः पुत्रो गणेश्वरः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौत्तिसौनरुसंवादे त्रिशक्तमोऽध्यायः ।

ब्रह्मखण्डं समाप्तम् ।

अथ द्वितीयं प्रकृतिखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः ।

प्रकृतिचरितसूत्रम् ।

नारायण उवाच ।

गणेशजननीदुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती । सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृताः ।
आविर्भूय साकेत कायासाक्षात्तानां चरा । क्रिया तद्गुणं च तस्य ! को वा वक्तुं क्षमो भवेत्
किञ्चित्तथापि वक्ष्यामि यत् श्रुतं रटवन्नतः ॥ ३ ॥

प्रकृष्टवाचकं प्रथमं कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टौ प्रकृष्टाया देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥
गुणे प्रकृष्टसन्धे च प्रशस्तौ वर्तन्ते ध्रुवौ । मध्यमे रजसि कृद्यं तिशब्दस्त्वमसि स्मृतः ॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसामन्विता । प्रधानगृष्टिकरणे प्रकृतिरनेन कथ्यते ॥
प्रथमे वर्तन्ते प्रथमं कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टेरगत्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥
योगेनात्मान्मृष्टिविधौ द्विधारूपो यभूव सः । पुमांश्च दक्षिणादाङ्गो यामाद्गु प्रकृति स्मृतः ।
सा च ब्रह्मस्वरूपा च माया नित्यसनातनी । यथात्मा च यथा शक्तिर्यथाशौ दाहिका स्मृता ।
अतएव हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यते । सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वन् पश्यति नारद ॥
स्वेच्छामयस्येच्छया च श्गेच्छाम्य सिग्मक्षया । साविर्भूय सहसा मूलप्रकृतिरिष्वरी ।
तदागत्या पञ्चविधा गृष्टिकर्मणि भेदतः । अथ भक्तानुगोधाद् वा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥
गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया । नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥
ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता सदा । सर्वाधिष्ठानदेवी सा ब्रह्मरूपसनातनी ॥१४॥
धर्मसन्धपुण्यकीर्तियशोमङ्गलदायिनी । सुगमोद्बर्हर्षदार्ढ्या शोकार्तिदुःखनाशिनी ॥१५॥
शाण्णागतदीनार्त्तपरिप्राणपरायणा । तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठानदेवता ॥ १६ ॥
सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरशास्य सन्ततम् । सिद्धेश्वरी सिद्धरूपा सिद्धिदा सिद्धिदेश्वरी ॥

बुद्धिर्निद्रा क्षत् पिपासा छाया तन्द्रा द्या स्मृतिः ।

जातिः क्षान्तिश्च शान्तिश्च कान्तिर्प्रान्तिश्च चेतना ॥ १८ ॥

तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीवृत्तिर्माता तथैव च । सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥

उक्तश्रुतीश्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम् । गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्तायाअपराञ्चनिशामय ।

शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा च परमात्मनः । सर्वसम्पत्स्वरूपा या सा तदधिष्ठातृदेवता ॥

कान्ता दान्तातिशान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला । लोभमोहकामरोषाहङ्कारपरिवर्जिता ॥

भक्तानुरक्तपायूश्च सर्वाद्या च पतिव्रता । प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपारी प्रियंवदा ॥२३॥

सर्वशस्यात्मिका सर्वजीवनोपायरूपिणी । महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेवावती सदा ॥

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु । गृहे च गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणांतया ॥

सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा । प्रीतिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च ॥२६॥

वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां फलहङ्करा । दयामयी भक्तमाता भक्तानुग्रहकातरा २७॥

चपले चपला भक्तसम्पदो रक्षणाय च । जगजीवन्मृतं सर्वं यया देव्या विना मुने ॥

शक्तिर्द्वितीया कथिता वेदोक्ता सर्वसम्मता । सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तोनिशामया ॥

वाग्वुद्धिविद्याज्ञानाधिदेवता परमात्मनः । सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥

सुबुद्धिकवितामेधाप्रतिभास्मृतिदा सताम् । नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकल्पनाप्रदा ॥

व्याप्यावोधस्वरूपा च सर्वसन्देहभञ्जिनी । विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी ॥

सर्वसङ्गीतसन्धानतालकारणरूपिणी । विषयज्ञानवाग्म्या प्रतिविश्वेषु जीविनाम् ॥३३॥

व्याप्यामुद्राकरा शान्ता वीणापुस्तकधारिणी ।

शुद्धसत्त्वस्वरूपा या सुशीला श्रीहरिप्रिया ॥ ३४ ॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा । जपन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया ॥३५॥

तपस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी । सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा ॥

देवीतृतीया गदिता श्रीयुक्ता जगदग्निका । यथागमं यथाकिञ्चिदपरं संनिरोधमे ॥३७॥

माता चतुर्णां वेदानां वेदाङ्गानाञ्च छन्दसाम् ।

सन्ध्याचन्दनमन्त्राणां तन्त्राणाञ्च विचक्षणा ॥ ३८ ॥

द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी । ब्राह्मणेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥ ३६ ॥
 यत्पादरजसा पून जगत् सर्वञ्च नारद । देवी चतुर्था कथिता पञ्चमी वर्णयामि ते ॥
 प्रेमप्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी । प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाद्यासुन्दरी धरा ॥४१॥
 सर्वसौभाग्ययुक्ता च मानिनी गौर्वचान्विता । वामार्द्धाङ्गस्वरूपा च गुणेन तेजसा मया ॥
 परायरा सर्वव्रता परमाद्या सनातनी । परनालदरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥४३॥
 रासक्रीडाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः । रासमण्डलसंभूता रासमण्डलमण्डिता ॥
 रासेश्वरीसुरसिका रासवासनिवासिनी । गौलोकयासिनी देवी गोपीवेशविधायिका
 परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी । निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी ॥४६॥
 निरीहा निरहङ्कारा भक्तानुग्रहविग्रहा । वेदानुसारध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ॥ ४७ ॥
 द्वष्टिद्वष्टा सदम्बेषु सुष्टेद्रैर्मनिपुङ्गवैः । वह्निशुद्धांशुकाध्याना रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ४८ ॥
 कोटिचन्द्रप्रभामुष्ट्रथ्रीयुक्तमकविग्रहा । श्रीकृष्णभक्तदास्यैकदात्रिका सर्वसम्पदाम् ॥४९॥
 धवतारे च वाराहे वृकभानुसुना च या । यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुन्धरा ॥ ५० ॥
 ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते । स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥

तथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने ॥ ५१ ॥

पष्टि वर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा । यत्पादपद्मनखरदृष्टये चान्मशुद्धये ॥
 नच दृष्टञ्च स्थप्रे ऽपि प्रन्यक्षस्यापि का कथा ॥ ५२ ॥

तेनैष तपसा दृष्टा भूरि वृन्दावने घने । कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्तिता ॥
 शंशरूपा कलास्या कलांशाशसमुद्भवा । प्ररुतेः प्रतिविश्वेषु देवी च सर्वयोपितः ॥५४॥
 परिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यश्च कीर्तिताः । याया प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय ॥
 प्रधानांशान्वरूपा च गङ्गा भुवनरावती । विष्णुविग्रहसंभूता द्रवरूपा सनातनी ॥५६॥
 पापिपापेन्द्रदाहाय ज्वलद्विन्दनरूपिणी । दर्शस्पर्शस्नातपाने निर्वाणपददायिनी ॥ ५७ ॥
 गौलोकध्यानप्रस्थानमुत्सोपानम्वरूपिणी । पवित्ररूपा तीर्थाना सरिताञ्च परायरा ॥

शम्भुर्मालिजटाभेमुक्तापङ्क्तिम्वरूपिणी ॥ ५८ ॥

तप सम्पादनी सद्यो भाग्ने च तपस्विनाम् । राष्ट्रपद्मशीरतिभा शुद्धसस्त्रम्वरूपिणी ॥

निर्मला निग्दङ्कारा सार्वी नारायणप्रिया ॥ ५६ ॥

प्रदानाशम्बररूपा च तुलसी विष्णुकामिनी । विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती ॥
तप सङ्कल्पपूजादिसत्र सखादनी मुने । सारभूता च पुष्पाणा पवित्रा पुण्यदा सदा ॥
दर्शनस्पर्शानाम्याञ्च सद्योनिर्वाणदाप्रिती । कलौ कलुषशुक्लेऽमात्राहनायाप्रिरूपिणी ॥२०
यत्पादपद्मस्पर्शान् सत्र पूताप्रमुन्दरा । यत्स्पर्शदर्शवाञ्छन्तिर्नार्थानि चान्मशुद्धये ॥

यया पिता च पित्रेषु सर्वं कर्मातिनिष्कलम् ।

मोक्षदा य मुमुक्षूणा कामिना सर्वकामदा ॥ ६४ ॥

कल्पवृक्षस्वरूपा च भारते विष्णुरूपिणी । राज्ञाय भारतानाञ्च पूजाना परदेवता ॥
प्रदानाशम्बररूपा च मनसा कश्यपात्मजा । शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा ॥
नागेन्द्रप्रम्यातन्तम्य भगिनी नागपूजिता । नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी ॥
नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता । नागेन्द्रवन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी ॥
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णुपूजापरायणा । तप स्वरूपा तरसा फलदारी तपस्विनी ।
द्विष्य त्रिलक्षणर्वञ्च तरमन्त्र यया हरे । तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते ॥
सर्वमन्त्राप्रिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मनेत्रसा । ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभारततत्परा ॥ ७१ ॥
जगत्साम्बुने पत्नी ज्ञानशम्भुपतिप्रता । श्राम्तास्म्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ।
प्रदानाशम्बररूपा या देवसेना च नारद । मानृसासु पूज्यतमा साच पृथी प्रकीर्त्तिता । ७३
शिष्टानाप्रतिविम्बेषु प्रतिपालनकारिणी । तपस्विना विष्णुभक्ताकार्त्तिकेयस्यकामिनी ।
पृथाररूपा प्रग्नेस्नेन पृथी प्रकीर्त्तिता । पुत्रपौत्राप्रदारी च धारी च जगता सदा । ७५
सुन्दरी युवती रम्या सतत भर्तुंगलिके । स्थाने शिष्टाना परमा बृद्धरूपा च योगिनी ॥
पूता द्वाश्रमासेषु यस्या पृथ्यास्तुसन्ततम् । पूजाच सूतिकागारे परपृष्टदिने शिषी ॥
एकविंशतिमे चैव पूता कत्यापहैतुसी । शश्वत्रियमिता चैवा नित्या काम्याप्यतपरा ।
मानृरूपा श्यारूपा शश्वदक्षकामिणी । जले स्थिते चान्तरात्रे शिष्टाना स्वप्नगोचरा ॥
प्रदानाशम्बररूपा या देवा मङ्गलचण्डिका । प्रग्नेर्मुंगमभूता सर्वमङ्गलदा सदा ॥८७ ॥
सृष्टी मङ्गलरूपा च महारे कौपरूपिणी । तेन मङ्गलवण्टी सा पण्डितैः परिकीर्त्तिता ॥

प्रतिमङ्गलवारेषु प्रतिविश्येषु पूजिता । पञ्चोपचारैर्भक्त्या च योषिद्धिं परिपूजिता ॥८२॥
 पुत्रपौत्रधनैश्चयशोमगलदायिनी । शोकसन्तापपापार्त्तिदुःखदाग्निनाशिनी ॥८३॥
 परितुण सखाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम् । रणाक्षणेन सहस्रं शक्ता विश्व महेश्वरी ॥
 प्रधानाशम्बरूपा च कालीकमललोचना । दुर्गाललाटसभूता रणे शुभनिशुभयो ॥८४॥
 दुर्गादाशम्बरूपा च गुणेन तेजसा समा । कोऽसूर्यप्रभामुष्णपुण्ड्राञ्जल्यविग्रहा ॥८५॥
 प्रधाना सवशक्तता वरा बलवती पग । सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा सिद्धियोगिनी ॥
 वृष्णभक्तान् वृष्णतु-या तेजसा चित्रमैगुणं । वृष्णभावमथाशशब्दं वृष्णवर्णासनातनी ॥
 सहस्रं सर्वब्रह्माण्डं शक्तानि स्वासमावृत । रणदैत्यै समतस्या व्रीड्यालौकरक्षया ॥
 धर्मार्थनाममोक्षाश्चदातुशक्ता च पूजिता । ब्रह्मादिभि स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ।
 प्रधानाशम्बरूपा च प्रवृत्तेश्च वसुन्धरा । आधारभूता सर्वेषा सर्वशस्यप्रसूतिका ॥८६॥
 रत्नाकारा रत्नगभा सर्वरत्नाकराधरा । प्रजादिभि प्रनैरैश्च पूजिता चन्दिता सदा ॥
 सर्वोपनीयारूपा च सर्वसम्पत्तिदायिनी । यया विना जगत सर्वं निराधारं चराचरम् ॥
 प्रवृत्तेश्च चरा या यास्ता निरोध मुनीश्वर ।

यस्य यस्य च या पत्न्यस्ता सर्वा वर्णयामि ते ॥ ६८ ॥

स्वाहादेवा वह्निपत्नी त्रिषु लोकेषु पूजिता । यया विना हविर्दत्तं न प्रहीतं सुराक्षमा ।
 दक्षिणा यज्ञपत्नी च दाक्षा सर्वत्र पूजिता । यया विना विश्वेषु सर्वं कर्मच निष्फलम् ॥
 म्यधा पितृणा पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः । पूजिता पितृदानञ्च निष्फलञ्च ययाविना ।
 स्वस्तिदेवा वायुपत्ना प्रतिविश्येषु पूजिता । आदानञ्च प्रदानञ्च निष्फलञ्च ययाविना ।
 पुष्टिर्गणपत पत्नी पूजिता जगतीतरे । यया विना परिक्षाणा पुमासो योषितोपि च
 अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजिता चन्दितासदा । यया विना न सन्तुण सर्वलोकाश्च सर्वत ।
 ईशानपत्ना सम्पत्ति पूजिता च सुरैर्नरैः । सर्वे लोकादग्निश्च विश्वेषु च यया विना ।
 धृति कपिपरनी च सर्वे सर्वत्रपूजिता । सर्वलोका अत्रैर्व्याश्च जगत्सु च ययाविना ।
 यमपत्नीक्षमा सार्ध्या सुशीला सर्वपूजिता । समुन्मत्ताश्चरुणाश्च सर्वलोका ययाविना ।
 व्रीडाधिष्ठातृदेव्या सा कामपत्नीरति सती । कैलिकौतुकहीनाश्च सर्वलोका ययाविना ।

सत्यपत्नी सती मुक्तिःपूजिता जगतांप्रिया । ययाविना भवेद्दोको बन्धुता रहितःसदा ।
मोहपत्नीदयासाध्वीपूजिता च जगत्प्रिया । सर्वलोकाश्च सर्वत्र निष्पुत्राश्च ययाविना ।
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पुण्यरूपा च पूजिता । यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतसमंमुने ।
सुकर्मपत्नी कीर्त्तिश्चधन्यामान्या च पूजिता । ययाविना जगत् सर्वं यशोहीनंमृतयथा ।
क्रिया उद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसद्गता । ययाविना जगत् सर्वमुच्छन्नमिव नारद ।
अधर्मपत्नी मिथ्यासा सर्वधृत्तैश्च पूजिता । ययाविनाजगत् सर्वमुच्छन्नंविधिनिर्मितम् ।
सन्ये अदर्शनाया च त्रेतायां सङ्गमरूपिणी । अर्द्धावयवरूपा च द्वापरे संबृता हि या ।
कलौमहाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिकारणान् । कपटेन समं भ्राता भ्रमत्येव गृहे गृहे ।

शान्तिर्लज्जा च भार्य्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते ।

याम्यां विना जगत् सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥ ११३ ॥

ज्ञानस्य तिस्रो भार्य्याश्च बुद्धिर्मैधा स्मृतिस्तथा ।

याभिर्विना जगत् सर्वं मृदं मृतसमं सदा ॥ ११४ ॥

मूर्त्तिश्चधर्मपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा । परमात्मा च विश्वौघानिराधाराययाविना ।
सर्वशोभास्वा च लक्ष्मीर्मूर्त्तिमतोसती । श्रीरूपामूर्त्तिरूपा च मान्या धन्या च पूजिता ।
कालाग्निद्वन्द्वपत्नीचन्द्रासासिद्धयोगिताम् । सर्वलोका समाच्छन्ना मायायोगेतरात्रिपु ।

कालस्य तिस्रो भार्य्याश्च सन्ध्या रात्रिर्दिनानि च ।

याभिर्विना विधात्रा च सत्यां कर्तुं न शक्नते ॥ ११८ ॥

धुत्पिपासेलोभभार्य्यधन्येमान्येचपूजिते । याम्यांव्यामंजगत्सोभयुक्तंचिन्तितमेव च ।
प्रभावदाहिकाचैव द्वे भार्य्येतेजसस्तथा । याम्यांविनाजगत्स्रष्टुविधाता च नर्हण्वरः ।
कालवन्द्येमृत्युजरैप्रज्वरस्य प्रिये प्रिये । याम्यांजगत् समुच्छन्नं विधात्रानिर्मितेविधौ ।

निद्रा कन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये ।

याम्यां प्यामं जगत् सर्वं विधिपुत्रविधेर्विधौ ॥ १२२ ॥

वैराग्यस्य च द्वे भार्य्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते ।

याम्यां शश्वन् जगत् सर्वं जीवन्मुक्तिमिदं मुने ॥ १२३ ॥

अदितिर्देवमाता च सुरमिश्च गवा प्रसू । द्वितिश्च दैत्यजननी कद्रुश्च विनता दनु ॥
 उपयुक्ता सृष्टिविधोपताश्च प्रवृत्ते कथा । कलाश्चान्याः सन्ति बहवस्तासु काश्चिन्नियोधमे ।
 रोहिणाच द्रपन्नाच सजा सूर्यस्य कामिनी । शतरूपा मनोर्भाष्या शचीन्द्रस्य च गेहिनी ॥
 तारा बृहस्पतेर्भाष्या वशिष्ठस्याप्यरुन्धती । अहल्या गौतमस्त्री साप्यनम्यात्रिकामिनी ॥
 देवहता वर्द्धमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी । पितृणां मातस्ता कन्या मेनका सास्त्रिकाप्रसू ॥
 लोपामुद्रा तथाहता कुपेरकामिनो तथा । वदणाना यमस्त्री चरलेर्विष्णु यावलाति च ॥
 कुन्ता च दमयन्ता च यशादा देवकीसता । गान्गारात्री पद्मीशैव्या सावित्री सत्यवत्प्रिया ॥
 वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कलावता । मन्दोदरी च कौशल्या सुभद्राकैटभी तथा ॥
 रैवता सत्यभामा च कालिन्दा लक्ष्मणा तथा । जाम्बता नाम्ना जितो मित्रविन्दा तथा परा ॥
 लक्ष्मणास्त्रिमणीसाता स्वपलदमी प्रकीर्त्ता । कलायोजनगन्धाचन्यासमाता महासती
 चाणपुरी तपोवाच चित्ररेखा च तन्सखी । प्रभावती भानुमता तथा मायावती सती ॥
 रेणुका च भृगोमाता हलिमाता च रोहिणी । एकानशा च दुर्गासा श्रावणभगिनी सती ॥
 बहव सन्ति कलाश्चैव प्रवृत्तेरेव भारते । यायाश्च प्राच देव्यस्ता सर्वाश्च प्रवृत्ते कला ॥
 षण्णशाशसमुद्भूता प्रतिविष्टेषु योपित । योपितामपमानेन प्रवृत्तेश्च पराभव ॥ १३७
 प्राहर्णा पूजिता येन पतिपुत्रवती सती । प्रवृत्ति पूजिता तेन च खालङ्कारचन्दने ॥
 कुमारी चाप्रवर्षीया च खालङ्कारचन्दने । पूजिता येन विप्रस्य प्रवृत्तिस्तेन पूजिता ॥
 सवा प्रवृत्तिसम्भूता उत्तमाधममध्यमा । सन्वाशाश्चोत्तमा ज्ञया सुशीलाश्च पतिप्रता
 मध्यमा रजसश्चाशास्ताश्च भोग्या प्रकीर्त्ता ।
 सुखसम्भोगवत्यश्च स्वकार्यैस्तपरा सदा ॥ १४१ ॥
 अधमास्तमसश्चाशा अनातकुलसम्भवा । दुमुपा कुल्गा धृता स्वतन्त्रा षण्णप्रिया
 पृथिव्या कुन्त्या च स्वर्गे चाप्सरसागणा । प्रवृत्तेस्तमसश्चाशा पृथ्वी य परिकीर्त्ता
 एव निगन्ति सर्वे प्रवृत्ते परिकीर्त्तनम् । ता सर्वा पूजिता पृथ्व्या पुण्यभेत्रे च भारते
 पूजिता सुरथेनादौ दुगा दुर्गतिनाशिनी । द्वितीये रामचन्द्रेण रावणस्य यथार्थिना ॥
 तन्पश्चान् जगता माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ।
 जातादौ दक्षपत्न्याश्च निहन्तु दैत्यदानवान् ॥ १४६ ॥

ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया । जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् ॥
 गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः । बभूवतुस्तौ तनयो पश्चात्तस्याश्चनारद ।
 लक्ष्मीर्मङ्गलभूषेन प्रथमे परिपूजिता । त्रिषु लोकेषु तत्पश्चात् देवतामुनिमानवैः । १२४ ॥
 सावित्री चापि प्रथमे भक्त्या च परिपूजिता । तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥
 आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता । तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥
 प्रथमे पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले । पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेनपरमात्मना
 गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः । गवां गणैः सुरगणैस्तत्पश्चात्माययाहरैः
 तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिर्मनुभिस्तथा । पुष्पधृपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा ॥
 पृथिव्यां प्रथमे देवी सद्यज्ञेन च पूजिता । शङ्करेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते । १२५ ॥
 त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमान्मनः । पुष्पधृपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः
 कला या याः सुसंभूता पूजितास्ताश्च भारते । पूजिताग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥
 एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् । यथागम लक्षणञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
 इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे प्रकृतिचरितसत्रं नाम
 प्रथमोऽध्यायः ।

—०—

द्वितीयोऽध्यायः ।

देवदेव्युत्पत्तिः ।

नारद उवाच ।

समासेन धृतं सर्वं देवीनां चरितं विभो ! । विरोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि
 सृष्टिराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्भूव ह । कथं वा पञ्चया भूता यत्र वेदविदांवर ॥२॥

भूता या याश्च कलया तथा त्रिगुणया भवे ।

व्यासेन तासो चरितं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ३ ॥

तासां जन्मानुकथनं ध्यानं पूजाविधिं परम् । स्तोत्रं कवचमैश्वर्य्यं शौर्य्यं वर्णय मङ्गलम्

श्रीनारायण उवाच ।

नित्यात्मा च नमो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा ।

विश्वेषां गोकुलं नित्यं नित्यो गोलोक एव च ॥ ५ ॥

तदेकदेशो वैकुण्ठो लम्बभागः स नित्यकः । तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीला सनातनी ॥
यथाशो दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभाप्रभारवौ । शश्वद्युक्ता नमिन्नासातथाप्रकृतिपटमनि
विना स्पृण स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः । विनामृदा कुलालो हि घटं कर्तुं न हाश्वर-
न हि क्षमस्तथा ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं तथा विना । सर्वशक्तिस्वरूपासातयाचशक्तिमानसदा
पेश्वर्णवचनशक् च ति' परान्नमवाचकः । तत्स्वरूपा तयोर्दार्ढ्यासाशक्ति प्रकीर्तिता
समृद्धिवुद्धिसम्पत्तिपशसा वचनो भागः । तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ११।

तया युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते ।

स च स्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः ॥ १२ ॥

तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा । वदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥
अदृष्टं सर्वपरकारं सर्वज्ञ सर्वकारणम् । सर्वदं सर्वरूपान्तमरूपं सर्वपौषकम् ॥ १४ ॥
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्ब्रह्माः सूक्ष्मदर्शिनः । वदन्तीति कस्य तेजस्तेचतेजस्विनंविना
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्मनेजस्वितं परम् । स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम् ॥
अतीवसुन्दरं रम्यं विभ्रतं सुमनोहरम् । किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परत्परम् ॥ १७ ॥
नवीनतीरदाभासं रालैकग्यामसुन्दरम् । शरत्तम्याहपत्रौघशोभामोचनलोचनम् ॥ १८ ॥
मुक्तासारविनिन्दैकदन्तवङ्किप्रनोहरम् । मयूरपुच्छचूडञ्च मालतीमाल्यमण्डितम् ॥
सुनलं सस्मितं शश्वद्भक्तानुप्रदकातरम् । ज्वलद्गनिविशुद्धैकपीतांशुकसुशोमितम् २० ॥
द्विभुजं मुर्लीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् । सर्वाधारश्च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं पिभुम् ॥ २१ ॥
सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वं स्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम् । परिपूर्णतमं सिद्ध सिद्धिदं सिद्धिकारणम् ॥
ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वदैवंरूपं सनातनम् । जन्ममृत्युजराग्याधिशोकमीतिहरं परम् ॥
ब्रह्मणो ययसा यस्य निमेष उपचर्यते । स चात्मा परम ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥
इप्सिस्तद्भक्तिवचनो मध्य तद्दास्यवाचकः । भक्तिदास्यप्रदाता यः स कृष्णः परिकीर्तितः ॥

कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजवाचकः । सर्वं बीजं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥२६॥
 असंख्यब्रह्मणां पातेकालेऽतीतेऽपिनारद । यद्गुणानानास्तिनाशस्तन्समानोगुणेन च ॥
 स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षुरेक एव च । सृष्ट्योन्मुखस्तदंशेन कालेनप्रेरितः प्रभुः ॥
 स्वेच्छामयःस्वेच्छयाचद्विधारूपोयभूवह । स्त्रीरूपावामभागांशादक्षिणांशपुमान्स्मृतः ॥
 तां ददर्श महाकामो कामाधारः सनातनः । अतीवकमनीयाञ्च चारुवम्पकसन्निभाम् ॥
 चन्द्रविभ्रविनिन्दैकनितम्भयुगलां पराम् । सुचाहकदलीत्तम्भनिन्दितश्रोणिसुन्दरीम् ॥
 श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम् । पुष्ट्या युक्तांसुललितांभयक्षीणांमनोहराम् ॥
 अतीवसुन्दरींशान्तांसस्मितांचक्रलोचनाम् । बह्विशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥
 शम्भुश्चक्षुश्चकोराभ्यांपिबन्तींसन्ततमुदा । कृष्णस्यमुखचन्द्रश्चचन्द्रकोटिविनिन्दितम् ॥
 कस्तूरीविन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्द्रविन्दुना । समं सिन्दूरविन्दुञ्च भालमध्येचविभ्रतीम् ॥
 घट्टिमं कवरीभारं मालतीमाल्यभूषिताम् । रत्नेन्द्रसारहारञ्च दधतीं कान्तकामुकीम् ॥
 कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टशोभासमन्विताम् । गमने च राजहंसगजखड्गनगजनीम् ॥ ३७ ॥
 दृष्टिमात्रं तथा सार्द्धं रासेशो रासमण्डले । रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीडां चकार ह ॥
 नानाप्रकारच्छृङ्गारं शृङ्गारो मूर्त्तिमानिव । चकार सुखसम्भोगं यावद्वै ब्रह्मणो धयः ॥
 ततः सचपरिध्रान्तस्तस्यायोर्नोजगत्पिता । चकार वीर्याधानञ्चनित्यानन्दःशुभक्षणे ॥
 गान्ततो योपितस्तस्याः सुरतान्ते च सुव्रत । निःसत्सारध्रमजलंध्रान्तायास्तेजसाहरेः ॥
 महारमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च बभूव ह । तदाधारध्रमजलं तन् सर्वं विश्वगोलकम् ॥
 स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह । निःश्वासवायुःसर्वेषांजीविनाञ्चभवेपुच ॥
 चभूरूर्त्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवह्नुभा । तत्पन्नीसाचतन्पुत्राः प्राणाःपञ्चचर्जायिताम् ॥
 प्राणोऽपानः समानश्चैवोदानो व्यान एव च । बभूवुरेवतन्पुत्राभ्यःप्राणाश्चपञ्च च ॥
 धर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान् । तद्भवामाङ्गाच्च तत्पन्नी वरुणानी बभूव सा ॥
 अथ सा कृष्णशक्तिश्च कृष्णाद्गर्भं दधार ह । शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मनेजसा ॥

कृष्णप्राणाधिदेयी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ।

कृष्णस्य सद्भिनी शश्वन् कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥४८॥

शतमन्वन्तरातीतकालेऽतीतेऽपि सुन्दरी । सुपाव डिम्बस्वर्णमिषिष्वाधारालयपरम् ॥
 दृष्ट्वा डिम्बञ्च सा देवी हृदयेन विभूषिता । उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डं गोलके जले ॥
 दृष्ट्वा वृष्णश्च तस्याग हाहाकार चकार ह । शशाप देवा देवेशस्तत्क्षणञ्चयथोचितम् ॥
 यतोऽपत्यं न्यया त्यक्त कोपशीले सुनिन्दुरे । भवत्वमनपत्यापिचाद्यप्रभृतिनिश्चितम् ॥
 या यास्तदशरूपा च भविष्यन्ति सुरस्त्रिय । अनपत्याश्चता सर्वास्तत्समानित्ययीवना ॥
 एतस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाप्रात् सहसा तत । आविर्भूय कन्यैका शुक्रवर्णा मनोहरा ॥
 पीतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी । रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥५५॥
 अथ कालान्तरे सा च द्विभारूपाय भूव ह । वामार्द्धाद्गङ्गा च कमलादक्षिणाद्दक्षिणाधिका ॥
 एतस्मिन्नन्तरे वृष्णो द्विभारूपो य भूव ह । दक्षिणाद्धैश्च द्विभुजो वामार्द्धश्च चतुर्भुज ॥
 उवाच वाणा श्रोतृष्णस्त्वमस्य कामिनी भव । अत्रैवमानिनीराधानैव भद्रं भविष्यति ॥
 एव लक्ष्मीञ्च प्रददौ तुणो नारायणाय च । स जगाम च वैकुण्ठताभ्यासाद्धैजगत्यति ॥
 अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधाशसम्भवा । भूता नारायणाद्गात्रं पार्षदाश्च चतुर्भुजा ॥
 तेजसा वयसा रूपगुणान्याश्च समा हरे । यभूतु कमलाद्गात्रदासीकोट्यश्च तत्समा ॥
 अथ गोलोकनाथस्य लोका विवरतोमुने । भूताश्चासुरयगोपाश्चैव यसातेजसा समा ॥
 रूपेण च गुणेनैव चैतेन विक्रमेण च । प्राणतुल्यप्रिया सर्वे यभूतु पार्षदा विभो ॥
 राधाङ्गलोकमरूपेभ्यो यभूतुर्गोपकन्यका । राधातुल्याश्च सर्वास्ता राधातुल्या प्रियवदा
 रत्नभूषणभूषाढ्या शश्वत्सुस्थिरयीवना । अनपत्याश्चता सर्वा पुसःशापेन सन्ततम्
 एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा वृष्णदेहत । आविर्भूय सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥
 देवी नारायणीशानी सर्वशक्तिस्वरूपिणी । ध्रुव्यधिष्ठातृदेवी सा वृष्णस्य परमात्मन
 देवीना धीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । परिपूर्णतमा तेजस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥
 तन्वाश्च नववर्णाभा सूर्यकोन्सिमप्रभा । ईषद्वास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसयुता ॥ ६६ ॥
 नानाशास्त्रास्त्रनिवर विघ्नती सा त्रिलोचना । षड्विंशद्गाशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥
 यस्याश्चाशाशकल्या यभूतु सर्वयोनि । सर्वविश्वस्थिता लोका मोहितामाययापया
 सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिना गृहवासिनाम् । वृष्णभक्तिप्रदात्री च वैष्णवानाञ्च वैष्णवी

मुमुक्षूणां मोक्षदार्त्रासुखिनांसुखदायिनी । स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीःसागृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ
तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपासा नृपेषु च । या चान्नोद्गाहिकारूपा प्रभात्पा च भास्करे
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुशोभना । सर्वशक्तिस्वरूपा या कृष्णे परमात्मनि ॥

यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमन्नगत् ।

यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम् ॥ ७६ ॥

या च संसारवृद्धस्य बीजरूपासनातनी । स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा च नारद ॥

क्षुत्पिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः ।

शान्तिर्लज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरुषिर्णा ॥ ७८ ॥

सा च संस्तूय सर्वेशं हरपुरः समुवास ह । रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सर्वाङ्गश्च चतुर्मुखः । पद्मनाभो नाभिपद्मान्निःसत्सार पुमान् मुने ॥

कमण्डलुधरः श्रीमालपस्वी ज्ञानिनां वरः । चतुर्मुखस्तं तुष्टाय प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥

सुन्दरी सुन्दरीश्रेष्ठा शतवन्द्यसमप्रभा । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥ ८२ ॥

रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम् । उवास स्वाभिना साङ्गं कृष्णस्य पुरतोमुदा

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः । वामार्द्धाङ्गीमहादेवोदक्षिणो गोपिकापतिः

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शतकोटिरविप्रभः । त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मधरो हरः ॥ ८५ ॥

तत्रकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः । भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥ ८६ ॥

दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्पभूषणभूषितः । विभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम् ॥

प्रजपन् पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्

कारणं कारणानाञ्च सर्वमद्गलमद्गलम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरंपरम् ॥ ८६ ॥

संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं जातोमृत्युञ्जयामिधः । रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेपुरः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे देवदेव्युत्पत्तिर्नाम

द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः

विश्वनिर्णयवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ डिम्बान्ते निष्ठुन् याचद्वै ब्रह्मणो वय । तत्र स्वकाण्डेसहस्राद्विप्रास्वपो वभूवस ॥
 नन्मये विशुम्भश्च शतकोटिरप्रिप्रभ । श्रण गेरुयमाणश्चस्तनान्च पीडित क्षुप्राणा ॥
 पितृमानृपगित्यक्तो चक्षुःश्रे निराश्रय । ब्रह्माण्डासप्यनाथो यो ददशोद्वि चमतायवत्
 स्यूतातस्यरुतम सोऽपितान्नादेवोमहाविराट् । परमाणुर्यथामृश्मान्पर स्यूतात्तथाप्यसौ
 ननसागोडशाशोऽयज्ञाणम्यपरमान्मन । आचारोऽमग्यविश्वानामहाविष्णुश्चप्राकृत ॥
 प्रत्येक रोमकृपेषु विश्वानि निमित्तानिच । अत्रापितेपासत्पाञ्चग्राणोचकुनहिक्षम ॥
 मग्या चेतनमामस्मि विश्वाना नन्दान्त । ब्रह्मविष्णुशिवादीनातथास्वयानविद्यने ॥
 प्रतिविद्येषुसन् येप्रहविष्णुशिवादय । पातालाद्ब्रह्म गेकन्तब्रह्माण्डपरिकीर्त्तितम् ॥
 तत्र उद्वेचै च त्रैकुण्डो ब्रह्माण्डाद्बहिरेव स । सचसत्यम्बम्पयशश्वन्तारायणोयथा
 तद्वेचै चैव गोकैक पञ्चागन् कोटियोजनान् ।

नित्य मयम्बम्पश्च यथा ज्ञापस्तथाप्ययम् ॥१०॥

मन्त्रापमिता पृथ्वी सप्तसागरस्युता । ऊनपञ्चाशदुपडोपासत्यसौ रचनान्विता ॥ ११॥
 उद्वेचै सत्र चम्बलंकारब्रह्म गेकमन्विता । पातालगिवसताथश्चैवब्रह्माण्डमेवच ॥
 उद्वेचै धरायामूर्त्तिकोमुवर्गस्मन्त पर । स्वर्गेकस्तुनतपञ्चान्महर्गैकस्तनोजन ॥
 तत्र परमगोलैक चतुरगेकस्तन पर । तत्र परोब्रह्मगेकस्तनकान्ननिर्मित ॥ १२॥
 एव मन्त्रे र्निमञ्च धराव्यन्तर एव च । तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव तादृ ॥ १३॥
 जश्रुत्तुद्वेचमवचि वमद्यमनि यकम् । निर्यागोलैकैत्रैकुण्डोस योशश्वदृचिमौ ॥
 लोकोपेचब्रह्माण्डप्र येरुमान्यनिधितम् । एवामग्यानज्ञानानिष्णोऽन्यम्यापिमाक्या ।
 प्रथे प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादय । नित्य कोट्य सुराणाञ्चमग्यामन्त्रपुरक ॥
 दिगीशाश्वेव दिग्पागा नदशानिब्रह्मादय । भुविचर्णाञ्चन्वारीऽथोनागाश्चगन्ना ॥
 अथ कायेन म विगद्वेचै दृष्टा पुन पुन । डिम्बान्तरश्च शृण्वश्च न द्वितीय कथञ्चन ॥

चिन्नामवाप श्रद्दयुक्तो स्रोतश्च पुनः पुनः । ज्ञानं प्राप्य तदादभ्योऽकृष्णः परमपूरुषम् ॥
ततो दृशं तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥२२॥
सम्मितं मुर्लाहम्नं मन्तानुग्रहकारकम् । जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमाश्वरम् ॥
वरं तस्मै दृशं तुष्टो वरेशः समयोचितम् । मन्समो ज्ञानयुक्तश्चतुर्पिपासाविवर्जितः ॥

ब्रह्माण्डानस्यनिलयो भव वन्त लयावधि ।

निष्कानो निर्मग्नश्चैव सर्वेषां वरदो वरः । जराभृन्युरोगशोकपीडादिपरिवर्जितः ॥२५॥
इत्युक्त्वा तदशकणं महामन्त्रं पठन्नस्म । विः कृत्वा प्रजज्ञापादौघेदाग्नवरं परम् ॥२६॥
प्रगवादिबनुष्टं कृष्ण इत्यक्षद्वयम् । वद्विज्यालान्तमिष्टञ्च सर्वविग्रहरं परम् ॥२७॥
मन्त्रं दत्त्वा तदाहारं कर्त्तव्यमास्त वै प्रभुः । श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निमोघकथयामि ते ॥
प्रतिविश्वे यन्नेत्रेण दृशानि वैष्णवो जनः । षोडशांशं विरयिषो विष्णोः पञ्चदशास्य वै ॥
निर्गुणम्यान्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च । नैवेद्येन च कृष्णस्य नहिकिञ्चित्प्रयोजनम् ॥
यद् दृशति च नैवेद्यं यस्मै देवाय यो जनः । सचखादितित्स्त्रैलक्ष्मीदृष्ट्वा पुनर्मवेत् ॥
तञ्च मन्त्रं वरं दत्त्वा तनुवाच पुनर्विभुः । वरमन्यं किमिच्छन्ते तन्मे ब्रूहि वदामि ते ॥२८॥
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तनुवाच महाविराट् । अदलो बालकस्तत्र वचनं समयोचितम् ॥

महाविराट् उवाच ।

वरं मे त्वत्पदाभोजे भक्तिर्मवतु निश्चला । सन्नतं यावदायुर्मै क्षणं वा सुचिरञ्च वा ॥
त्वद्भक्तियुक्तो मोक्षोक्तेर्जीवन्मुक्तस्तसन्नतम् । त्वद्भक्तिर्हीनोर्नृणश्च जीवन्निपिमृतो हि सः ॥
किं तत्रने तपसा यजेन पूजनेन च । व्रतेनैवोपवासेन पुण्येन तर्प्यसेवया ॥ ३६ ॥
कृष्णभक्तिविहासस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा । येनान्नना जीमिनश्च तमेव नहि मन्यते ॥३७॥
याप्रदानारागरेऽस्मिन्तावन्महाक्तिमंथतः । पश्चाद्दुयान्तिगतैरस्मिन्नस्य तन्नाश्चराक्षयः ॥
स च त्वञ्जनज्ञाभागनर्मान्नाप्रवृत्तेः परः । स्वेच्छामश्च तत्रां यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरामश्च नरत् । उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिमयुरां श्रुतिमुन्दरीम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

सुचिरं सुस्मिर्ं निष्टु यथाहं त्वं तथा भव । ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्तेन भविष्यति ॥

अशेन प्रतिब्रह्माण्डे त्वञ्च पुन विराट् भव । त्वनामिपञ्चोद्भवोऽस्य त्वस्य भविष्यति ॥
 लग्ने ब्रह्माण्डे चैव लक्ष्म्यैकादशैव तु । शिवाशेन भविष्यन्ति सृष्टिसञ्चरणाय वै ॥४३॥
 कालाग्निद्रुम्नायका विश्वसंहारकारक । पाताविष्णुश्च विषयीशुद्राशेन भविष्यति ॥
 मद्भक्तियुक्त सतत भविष्यसि वरण मे । यानेन कमनाय मानित्यद्रक्ष्यसि निश्चितम् ॥
 मातर कमनायाञ्चममवक्ष्य स्वलक्षिताम् । यामिलोकतिप्रवन्सेत्युत्तवासोऽन्तरधीयत ॥
 गत्वा स्वर्लोकं ब्रह्माण्डं शङ्कर स उवाच ह । स्वगत् स्रष्टुमशञ्च महत्तारञ्चतनुक्षणम् ॥

श्रावण उवाच ।

सृष्टिं स्रष्टु गच्छ वत्स नामिपञ्चोद्भवो भव । महाविराट्पदामृपे शुद्रस्य च विधे शृणु ॥
 गच्छ वत्स महादेव ब्रह्मभालोद्भवो भव । अशेन च महाभाग स्वयञ्च सुचिरं तप ॥
 इत्युत्तया जगता नाथा विरराम विधे सुत । जगामन्त्वात्तद्ब्रह्माशिवश्च शिवदायक ॥
 महाविराट्पदामृपे ब्रह्माण्डगोलके तत्रे । स बभूव विराट् शुद्रो विराट्शेनसाम्प्रतम् ॥
 शयामा युवा पातनासा शयानो जगत्पदे । इपद्वास्य प्रसनास्यो विध्वरूपाजनादन ॥
 तन्नामिकमत्र ब्रह्मा बभूव कमलोद्भव । सभूय पद्मदण्डञ्च वभ्राम शुगन्क्षक ॥ ५३ ॥
 नान्त जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मिन । नामिनस्य च पद्मस्य चिन्तामापिता मह ॥
 स्वस्थान पुनरागत्य दत्तौ कृष्णपदाम्बुजम् । ततो तद्दर्शं शुद्र त भ्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥
 श्यान जलतपे च ब्रह्माण्डगोलकावृत । यद्गोमकूपे ब्रह्माण्डं तञ्च तन परमीश्वरम् ॥ ५४ ॥
 श्रावणञ्चापि गालोकं गापगोपासमन्वितम् । तं सन्त्य वध्रापतत सृष्टिचकार स ॥
 बभूवुर्ब्रह्मण पुना मानसा सनकादय । तना रद्रा कपागच्च शिवाशैकात्शस्मृता ॥
 चभूव पाता विष्णुश्च शुद्रस्य वामपायत । चतुर्भुजश्च भगवान्प्रेतद्वापनिवासग्न ॥
 क्षुद्रस्य नामिनस्य च ब्रह्म विदर ससर्न स । स्वगमत्यञ्जपातात्त्रिगत्सचगचरम् ॥
 एतसर्नगोमृपे चिन्तयेकमेव च । प्रतिविश्य शुद्रविराट् ब्रह्मविष्णुशिवादय ॥ ५५ ॥
 इधेर कथित वत्स कृष्णसङ्घातन शुभम् । सुगन्दमोक्षदसारकिभूय श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रवृत्तिखण्डेनागायणतारदम्बवादेविष्णुनिर्णयवर्णननाम

तुर्तीयोऽध्याय ।

चतुर्थोऽध्यायः

सरस्वतीपूजाविधानं मन्त्रश्च ।

नारद उवाच ।

श्रुत सर्वमपूर्वञ्च त्वन्प्रसादान् सुधोषमम् । अधुना प्रवृत्तीनाञ्च व्यासं वर्णय पूजनम् ॥

कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रकाशिता ।

केन वा पूजिता काया केन का वा स्तुता मुने ॥ २ ॥

कप्रचन्तोऽमन्त्रश्च प्रभापंचरितंशुभम् । कामिःकामधोवरो दत्तस्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

गणेशजननीदुर्गाराधा लक्ष्मी सरस्वती । सावित्रीचसृष्टिविधौ प्रवृत्ति पञ्चयास्मृता ॥

आसीत् पूजा प्रसिद्धाच प्रभावः परमाद्भुतः । सुधोषमञ्च चरितं सर्वमद्गलकारणम् ॥

प्रकृत्यंशाकलायाञ्च तासाञ्च चरितशुभम् । सर्ववक्ष्यामिने ब्रह्मन् सावधानं निशामय ॥

वाणी वसुन्धरागङ्गा पद्मे मङ्गलचण्डिका । तुलसीमनसा निद्रास्वाहास्वधाच दक्षिणा ॥

तेजसा मत्समान्ताञ्च रूपेण च गुणेन च ॥ ८ ॥

संक्षेपमासाञ्चरितं पुण्यदं धृतिसुन्दरम् । जीवकर्मविपाकञ्च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥

दुर्गायाञ्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितमहन् । तच्च पश्चान् प्रवक्ष्यामि संक्षेपं न मन शृणु ॥

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता । यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः ॥

आविभूतायदा देवी चक्रतः कृष्णयोपितः । इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥

स च विजाय तद्भावंसर्वज्ञः सर्वमातरम् । तामुवाच हितंसन्यं परिणामसुखावहम् ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

भज नारायणं साध्वि ! मदंशञ्च चतुर्भुजम् । युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तञ्च मत्समम् ॥

कामदं कामिनीनाञ्च तासाञ्च कामपूरकम् । कौटिकन्दर्पलावण्यं लीलान्यकृतमीश्वरम् ॥

कान्तेकान्तञ्चमांरुन्वा यदि स्यानुमिहेच्छसि । त्वत्तोवलवतीराधानतेभद्रं भविष्यति ॥

योयस्माद्बलवान्प्राणि । ततोऽन्यंरक्षितुंक्षमः । कथंपरान्साधयतिथिदस्वयमनीश्वरः ॥
 सर्वेशः सर्वशास्ताहं राधा राधिनुमक्षमः । तेजसा मत्समा साच रूपेण च गुणेन च ॥
 प्राणाधिष्ठातृदेवीसाप्राणांस्त्यक्तुञ्चकःक्षमः । प्राणतोऽपिप्रियःकुत्रकेपांवास्तिकधन ॥
 त्वंभद्रेगच्छ वैकुण्ठ तवभद्रं भविष्यति । पतिन्तमीश्वरं कृत्वा मोदस्वसुचिरं सुखम् ॥
 लोभमोहकामकोपमानर्हिसाविर्जिता । तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेण च ।
 तथासाङ्गैभव प्रीत्याशश्वन् कालंप्रयास्यति । गौरवमद्वरात् तुल्यं करिष्यतिपतिर्द्वयोः ॥
 प्रतिविश्वेषु ते पूजा महतीते मुदान्विताः । माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि ॥
 मानवामनवोदेवा मुनीन्द्राश्च सुमुश्रवः । सन्तश्चयोगिनः सिद्धानामगन्धर्वकिन्नराः ॥
 महरेण करिष्यन्तिकल्पे कल्पे यथाविधि । भक्तियुक्ताश्च दत्त्वात्रौ चोपचारांश्चपोडश ॥
 काण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेनस्तवनेनच । जितेन्द्रियाःसंयताश्च घटैचपुस्तकैऽपिच ॥
 कृत्वासुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्चिताम् । कवचन्ते प्रहीष्यन्तिकण्ठे वा दक्षिणे भुजे ॥
 पठिष्यन्तिच विद्वांस पूजाकालेच पूजिते । इत्युत्तरा पूजयामास तां देवा सर्वपूजितः ।
 ततस्तन्पूजनंचमुद्गृह्यविष्णुमहेश्वराः । अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ॥२६॥
 सर्वे देवाश्च मनवो नृपाश्च मानवादयः । यभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती ॥
 नारद उवाच ।

पूजाविधानं स्तव्रतं ध्यानं कथंचमीप्सितम् । पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पञ्च चन्दनादिकम् ॥
 यद् वेदविदां श्रेष्ठं श्रोतुं कीर्तुहलं मम । यद्देते साम्प्रतं शश्वन् किमिदं धृतिसुन्दरम् ॥
 नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम् ।

जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥ ३३ ॥

माघस्यशुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च । पूर्वेऽह्नि संयमं कृत्वातत्राहि संयतःशुचिः ॥
 स्नात्वा नित्यनित्यां कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तिः । संपूज्य देवपद्कञ्च नैवेद्यादिभिरेवचा
 गणेशश्चदिनेषाञ्चह्नि विष्णुंशिवंशिवाम् । संपूज्य संयतोऽग्रेच ततोऽर्भीष्टं प्रपूजयेत् ॥
 ध्यानेनवश्यमाणेन ध्यात्वावाहाघटैर्युधः । ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारेण पूजयेद्भवती ॥

पूजोपयुक्तनैवेद्यं यद्युद्देदे निरूपितम् । वक्ष्यामिसाम्प्रतं किञ्चिदुपधार्यार्थतंयथागमम् ॥
 नवनीतं दधिक्षीरं लाजाश्च तिललड्डुकम् । इक्षुमिश्रुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ॥३६॥
 स्वस्तिकंशर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम् । अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमौदकम् ॥
 घृतसैन्धवसंस्कारैर्हविष्यान्नञ्च व्यञ्जनैः । यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम् ॥४१॥
 पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पक्वमभाफलस्यच । परमान्नञ्च सघृतमिष्टान्नञ्च सुधोपमम् ॥
 नारिकेलं तदुदकं केशरं मूलमार्द्रकम् । पक्वमभाफलं चारु श्रीफलं चदरीफलम् ॥
 कालदेशोद्भवं पक्वफलं शुक्लं सुसंस्कृतम् ॥ ४३ ॥

सुगन्धि शुक्लपुष्पञ्च सुगन्धि शुक्लचन्दनम् । नर्वीनशुक्लवल्खञ्च शङ्खञ्च सुमनोहरम् ॥
 माल्यञ्च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारञ्च भूषणम् ॥ ४४ ॥

यद् दृष्टञ्च श्रुतो ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम् । तन्नियोध महाभाग भ्रमभङ्गनकारणम् ॥
 सरस्वतींशुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम् । कोटिचन्द्रप्रभामुष्णपुष्पश्रीयुक्तविप्रहाम् ॥४६॥
 वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मिता सुमनोहराम् । रत्नसारैन्द्रनिर्माणवरभूषणभूषिताम् ॥४७॥
 सुपूजितां सुरगणैर्हविष्युशिवादिभिः । वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः ॥
 एवं ध्यात्वाचमूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः । संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवदभुवि ॥
 येषाञ्चेयमिष्टदेयी तेषां नित्यक्रिया मुने । विद्यारम्भेच सर्वेषां वर्षान्ते पञ्चमीदिने ॥५०॥
 सर्वोपयुक्तो मूलश्च वैदिकाष्टाक्षरःपरः । येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च ॥

सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च ॥ ५१ ॥

श्री हीं स्वरस्वत्यै स्वाहा । लक्ष्मीमायादिकञ्चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥ ५२ ॥
 पुरा नारायणश्चेमं चार्त्मीकाय कृपानिधिः । प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥
 भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि । चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ धाक्पतये मुदा ॥
 भृगवेच ददौ तुषो ब्रह्मा चदरिकाश्रमे । आस्तिकाय जरत्कार्ददौ क्षीरोदसन्निधौ ॥
 विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते ॥ ५५ ॥

शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुने । सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कान्यायनायच ॥
 शेषः पाणिनयेचैव भग्द्वजाय धीमते । ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥ ५७॥

चतुर्लक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । यदिस्यात् सिद्धमन्त्रोहि बृहस्पतिसमोभवेत् ॥
 कवचंशृणु विप्रेन्द्र यद् दत्तं विधिना पुरा । विश्वध्रेष्टं विश्वजयं भृगवे गन्धमादने ॥
 भृगुस्वाच ।

ब्रह्मन् ब्रह्मविद्या श्रेष्ठं ब्रह्मज्ञानविशाखम् । सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥ ६० ॥
 सत्स्वन्त्याश्च कवचं ब्रह्म विश्वजयं प्रभो । अजातमायमन्त्राणां समूहसंयुतं परम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु चत्स प्रवक्ष्यामिकवचं सर्वकामदम् । श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥
 उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने । रासेश्वरेण विभुना रासेन रासमण्डले ॥ ६३ ॥
 धर्तीवगोपनीयञ्च कल्पवृक्षसमं परम् । अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥ ६४ ॥
 यद्ब्रह्मापठनाद् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः । यद्ब्रह्मा भगवान् शुक सर्वदैत्येषु पूजितः ।

पठनाद्धारणाद् वाग्मी करीन्द्रो वाल्मिको मुनिः ।

न्यायम्भुवो मनुश्चैव यद् धृत्वा सर्वपूजितः ॥ ६६ ॥

कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः ।

ग्रन्थञ्चकार यद् धृत्वा दक्ष कात्यायन स्वयम् ॥ ६७ ॥

धृत्वा वेदविभागञ्च पुराणान्यखिलानि च । चकार लीलापारेण कृष्णद्वैपायनःस्वयम् ।
 शानातपश्च संवत्सो वशिष्ठश्च पराशरः । यद् धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥
 ऋष्यशृङ्गो भस्माज्जन्वास्तीको देवलस्तथा । जैर्गाण्ड्योऽथजाबालिर्षुधृत्वासर्वपूजितः ॥
 कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेवः प्रजापतिः । स्वयं बृहस्पतिश्छन्दो देवो रासेश्वरः प्रभुः ॥
 सर्वमत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च । कथितास्तु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
 ओं ह्रीं सगस्वत्यै स्वाहा शिरोमे पातुसर्वतः । श्रौं वाग्देवतायैस्वाहा भालं मे सर्वदावतु ॥

ओं सगस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रं पातु निरन्तरम् ।

ओं श्रौं ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु ॥ ७३ ॥

ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु ।

ह्रीं त्रिधाधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा ओष्ठं सदावतु ॥ ७५ ॥

ओं ध्रीं ह्रीं ग्राह्यै स्वाहेति दन्तरकी सदावतु । ऐमिन्येकाक्षरो मन्त्रो ममकण्ठसदावतु

ओं ह्रीं ह्रीं पातुमे ग्रीवास्कन्धमे ध्रींसदावतु । ध्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहावक्षसदावतु

ओं ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ।

ओं ह्रीं ह्रीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठ सदावतु ॥ ७८ ॥

ओं सर्ववर्णान्मिकायै पादपुग्म सदावतु । ओं रागाधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्ग मे सदावतु ॥

ओं सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्या सदावतु ।

ओं ह्रीं जिह्वाप्रवासिन्यै स्वाहानिदिशि रक्षतु ॥ ८० ॥

ओं ऐं ह्रीं ध्रीं सारम्बन्यै बुधजन्यै स्वाहा । सनन मन्त्रराजोऽय दक्षिणे मा सदावतु ॥

ओं ह्रीं ध्रीं चक्षुरो मन्त्रो नैर्ऋत्या मे सदावतु ।

कविसिद्धाप्रवासिन्यै स्वाहा मा धारणेऽवतु ॥ ८१ ॥

ओं सदाभिकायै स्वाहावायव्ये मा सदावतु । ओं गण्डप्रवासिन्यै स्वाहामानुसरेऽवतु

ओं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्या सदावतु । ओं शैलवंपूजितायै स्वाहाबोद्धवंसदावतु

ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मा सदावतु ।

ओं ग्रन्थरीजरूपायै स्वाहा मा सर्वतोऽवतु ॥ ८२ ॥

इति ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । इदं विग्रजय नाम कथंच प्रक्षन्पिणम् ॥

पुरा ध्रुत धर्मवक्त्रान् पर्वते गन्धमादने । तत्र स्नेहान्नयाख्यात प्रवक्तव्यं न कस्यचित्

गुरुम्यर्च्यं विधिगुह्यं वम्ब्रालङ्कारचन्दनैः । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कत्रच धारयेत्तुभ्रीं

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धन्तु कत्रच भवेत् । यदि म्यातस्तिद्वक्त्रवो बृहस्पतिसमो भवेत्

महावामी कर्वान्द्रश्च त्रैलोक्यविजया भवेत् । शक्नोति सर्वं जेतु स कत्रचस्य प्रसादनः

इदं ते काण्वशाखोक्तं कथितं कत्रच मुने । स्तोत्रं पूजाविधानञ्च ध्यानञ्च बन्दनं तथा

इति ध्यात्रक्षयवर्त्ते महापुराणे षट्तिक्षण्डे नारायण-नारदसंवादे सरस्वतीक्वच नाम

चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्योक्तगणीस्तवः ।

नारायण उवाच ।

घान्देवताया स्तवन श्रूयता सर्वकामदम् । महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव ता पुरा ॥
गुरुशापाद्य स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह । तदा जगाम दुःखार्त्तो रविस्थानञ्च पुण्यदम् ॥
सप्राप्य तपसा सूर्य्यं कोणार्कं दृष्टिगोचरे । तुष्टाव सूर्य्यं शोभेन ररोद च पुन पुन ॥
सूर्य्यस्त पाठयामास वेदवेदाङ्गमाश्वर । उवाच स्तुहि घान्देवा भक्त्या च स्मृतिहेतवे
तमित्युत्तवा दीननाथोऽन्तर्द्धानचकार स । मुनि स्नात्वा चतुष्टायभक्तिप्रदात्मबन्धर
याज्ञवल्क्य उवाच ।

दृष्ट्वा कुरु जगन्मातर्मांमेव हतचेतसम् । गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्ट विद्याहीनञ्च दुःखितम् ॥
ज्ञान देहि स्मृतिदेहि विद्या विद्याधिदेवते । प्रतिष्ठाकवितादेहि शक्तिशिष्यप्ररोधिकाम्
ग्रन्थकर्तृकशक्तिञ्च सत्शिष्य सुप्रतिष्ठितम् । प्रतिभासत्समायाञ्चविचारक्षमता शुभाम्
लप्त सर्वं दैवप्रशान्तर्वाभूत् पुन कुरु । यथाङ्कुर भस्मनि च करोति देवता पुन ॥ ६ ॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी । सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नम
यया विना जगत् सर्वं शश्वद्जीवन्मृत सदा । ज्ञानाधिदेवीयातस्यै सरस्वत्यै नमोनम
यया विना जगत्सर्वं मूकमुन्मत्तवत् सदा । वागधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनम
हिमचन्दनमुन्देन्दुबुमुद्राम्भोजसनिभा । वर्णाधिदेवी या तस्यै चाक्षरायै नमो नम ॥
विसर्गविन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च । तदधिष्ठात्री या देवी भात्यै ते नमो नम

यया विनात्र सरयाष्टन् सरया वक्तु न शक्यते ।

कालसप्त्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नम ॥ १५ ॥

व्याप्याम्बरूपा यादेवीव्याप्याधिष्ठातृदेवता । भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यैदेव्यै नमोनम
स्मृतिशक्तिप्रानशक्तिर्मुद्रिशक्तिस्वरूपिणी । प्रतिभा कल्पनाशक्तियां च तस्यै नमो नम
सतत्कुमारो ब्रह्माण ज्ञान पप्रच्छ यत्र वै । बभूव जटवन् सौऽपि सिद्धान्तवक्तुमक्षम

तदा जगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः । उवाच सततं स्तोत्रं वाणीमितिप्रजापतिम्
 स च तुष्टाव त्वां ब्रह्मा चाजया परमात्मनः । चकारत्वत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्
 यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा । यभूव मूकचन् सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः
 तदा त्वाञ्च स तुष्टाव सत्रस्तः कश्यपाजया । ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम्
 व्यासः पुराणसूत्रञ्च पप्रच्छ वाल्मिकं यदा । मौनीभूतः स सस्मारत्वामेवंजगदम्बिकाम्
 तदा चकार सिद्धान्तं महरेण मुनीश्वरः । सप्राप निर्मलं ज्ञानं प्रमादध्वंसकारणम् ॥
 पुराणमूर्तं श्रुत्वा स व्यासः कृष्णकुलोद्भवः । त्वां सिपेय दर्थ्या च शतवर्षञ्च पुष्करे ॥

तदा त्वत्तो वरः प्राप्य स कर्वान्द्रो यभूव ह ॥ २५ ॥

तदा वेदविभागञ्च पुराणानि चकार ह । यदा महेन्द्रे पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिवाशिवम् ॥
 क्षणं त्वामेव सचिन्त्य तस्यैज्ञानं ददौ विभुः । पप्रच्छशान्दशास्त्रञ्च महेन्द्रश्चतुहस्पतिम्
 दिव्यं वर्षसहस्रञ्च स त्वां दर्थ्या च पुष्करे । तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यं वर्षसहस्रकम्

उवाच शान्दशास्त्रञ्च तदर्थञ्च सुरेश्वरम् ॥ २८ ॥

अध्यापिताश्च ये शिष्या यैर्घानं मुनीश्वरैः ॥ २९ ॥

ते च त्वा परिसचिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरि ।

त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानयैः । दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवदिभिः
 जटीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्भुजः । या स्तोत्रं किमहं स्तोमितामेकास्येनमानयः
 इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मरन्धरः । प्रणनाम निराहारो रौद्र च मुहुर्मुहुः ॥
 तदा ज्योति स्वरूपासातेतादृष्टाप्युवाच तम् । सुकर्वान्द्रो भवेत्युक्तवार्तिकुण्डञ्चजगामह

मै गजवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रं यः संयत पठेत् । सुकर्वान्द्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत्
 शर्मन्श्च दुर्मन्धो चर्षमेकञ्च यः पठेत् । स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद्दुष्टुवम्
 इति श्रीप्रह्लादवर्ते महापुराणे प्रकृतिलखण्डे नारायणनारदसंवादे याज्ञवल्क्योक्तवाणी-

स्तमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः

मरस्वत्युपास्यान्तम् मर्वासां कलहृत्थ ।

नारद उवाच ।

सम्व्यती सा वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके । गङ्गाशापेन कलया कलहाद्भारतेसरिन् ॥
पुण्यदा पुण्यजन्ती पुण्यतीर्थस्वरूपिणी । पुण्यवद्विर्निवेश्या च स्थिति पुण्यवतां मुने ॥
तपस्विता तपोन्वा तपस्याकाङ्क्षिणी । मृतपापेधमटाहाय उबलदग्निस्वरूपिणी ॥३॥
ज्ञाने सम्व्यतीतोये मृत यैर्मानयैर्मुचि । तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे मुचिरं हरिसंसदि ॥४॥
भारतेऽनृत्पापी च म्नान्वा तत्रायलीलया । मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेशसेचिरम् ।
चतुर्विध्या पौर्णमास्यामश्रयाया दिनक्षये । व्यतीपानेचग्रहणेऽग्यस्मिन् पुण्यदिनेऽपिच ।
आनुपद्मेन यः स्नानि हेलयाश्रद्धयापिच । सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि ॥७॥
सम्व्यतीमन्त्रकञ्च मासमेकन्तु यो जपेत् । महामर्गः कर्वाण्डश्च सभवेन्नात्र संशयः ।
नित्यं सम्व्यतीतोये यः स्नानि मुण्डयेन्नरः । न गर्भघासं कुरुते पुनरेव स मानयः ॥
इत्येवं कथितं किञ्चिद्भारतीगुणकार्त्तनम् । सुखदं मोक्षदं सारं किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ।
नारायणवचं श्रुत्वा नारदो मुनिस्ततमः । पुनः पप्रच्च सन्देहच्छेदं शौनक सत्वरम् ।

नारद उवाच ।

कथं सम्व्यती देवी गङ्गाशापेन भारते । कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरिन् ॥१॥
श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्द्धने कौतुकं मम । कथामृतानां नो तृप्तिः केन ध्येयसि तृप्यते ॥

कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तं सम्व्यतीम् ।

शान्तसन्धस्वरूपा च पुण्यदा सर्वदा नृणाम् ॥ १२ ॥

तेजस्विन्योर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम् । सुदुर्लभं पुण्येषु तन्मेत्याग्यातुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

ऽशुनारद चक्ष्यामि कथामेतांपुरातनीम् । यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापान्प्रमुच्यते ।

ऽश्रुमी.सम्व्यतीगङ्गातिप्रोभाप्याहरेरपि । प्रेम्णासमाभ्नास्तिप्रुन्तितननंहरिसन्निधौ ।

चकारसैकदशान्निभ्योर्दुर्बनिर्गक्षणम् । सम्मितास्सिकामा च सकटाञ्च पुनपुन ॥

विमुर्द्धास तद्वक्त्र निर्गक्ष्य च क्षण मुदा । क्षमाञ्चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ।

गोत्रगानन ता पद्मा सत्यरूपा च सम्मिता ।

क्रीडाप्रिया च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह ॥ २० ॥

उवाच गङ्गा भर्तारं गन्ध्या गन्धलोचना । कम्पिता कोपरेणेशप्रत्यप्रस्तुगितापरा ॥

सम्बन्धुवच ।

सर्वत्र मनतदुद्धि सङ्गुं कान्तिर्न प्रति । र्भ्रमिष्टुभ्य वरिष्टुभ्य विपरीता खलम्यच ।

गत सौमानसिक गङ्गापान्ने गदापरा । कजलापञ्च तत्पुत्र न च किञ्चिन्मरिप्रभो ।

गङ्गापरा पद्मया सार्धं प्रीतिश्चपि मुमन्न्ता । क्षमाञ्चकार तेनेद विवर्गित हरिप्रिया ॥

किं जीवनेन मेऽत्रैवतुर्भगवत्क्षलाग्रतम् । निष्फलैर्जवनस्य्या मा पत्तु प्रेनवञ्जिता ।

त्वा सर्वेश सत्यरूप ये वदन्ति मनापिभ । ते च मूर्खा न वैदजा न जानन्तिनतितय ।

सम्बन्धुवच श्रुत्वा दृष्ट्वा ता कोपमयुताम् ।

मनसा स समलोक्य प्रजगाम वहि समाम् ॥ २१ ॥

गते नागरणे गगातुवाच निर्भय ररा । गगाप्रियातुदेरी सा वाक्य श्रवणतु सहम् ॥

हे निर्लज्जे सफाने त्व म्यानिगर्भं करोषि किम् ।

अत्रिक म्यानिर्मानाग्य पित्रापवितुमिच्छसि ॥ २२ ॥

मानयूषां कगिप्रान्तिताग्रहग्निभिर्गै । किं कगिप्रयति ते कान्तो मनैवकान्तप्रलभे ।

इत्येवमुक्त्वा गगापरा केश प्रदीनुमुयता । वरगनास ता पद्मा मयदेशमिता सती ॥

शशाप वार्धा ता पद्मा महाकोपवर्त सती । वृसन्पदा सगिदृषा भविष्यसि न शशाप ॥

विवर्गित यती दृष्ट्वा किञ्चिन्न वक्तुमर्हसि । सन्निष्टसि सनान येमयावृजो यथासग्नि ॥

शाप श्रुत्वा न सा देवी न शशापवृकोपत । तत्रैवतुभ्विनातस्य्योवाणीवृवाकर्षेच ॥

वत्पुदताञ्च ता दृष्ट्वा कोपमस्तुगितान्ता । उवाच गङ्गा ता देवी पद्माञ्चपद्मलोचना ॥

गङ्गावाच ।

त्वमुत्सृज महोप्राञ्च पद्मे किं मे करिष्यति । वत्पुदतापराप्रिया र्दिशयिक्लहप्रिया ॥

यावती योग्यतास्याश्च यावती शक्तिरेव वा । तथा करोतु वादञ्चमयासाडंसुदुर्मुखा ॥
 स्वयलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमर्हंतु । जानन्तु सर्वेद्बुभयोः प्रभावं यिन्नमं सति ॥३८॥
 शन्येवमुक्त्वा सा देवी घाण्यै शापददाविति । सखिस्वस्वस्वपाभवतुसायात्याश्चशाशापह ॥
 अधोमत्स्य सा प्रयातु सन्ति यत्रैव पापिनः । कलौ तेषां च पापांशंलभिव्यतिन संशयः
 इत्येव वचन श्रुत्वा तां शशाप सरस्यती । त्यमेव यास्यसिमहींपापिपापं लभिव्यसि ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवान्नाजगाम ह । चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्श्वैश्च चतुर्भुजैः ॥ ४२ ॥
 सत्स्वती करे धृत्वा वासयामास वक्षसि । धौधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम् ॥
 श्रुत्वा रहस्यंतासाञ्चशापम्यकलहस्यच । उवाचदुःखितान्ताश्चवाचयंसामपिकंविभुः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

लभिम त्व कलयामच्छर्मध्वजगृहंशुभे । अयोनिसम्भवाभूमौतम्यकन्याभविष्यसि ॥
 तत्रैव वैवदोषेण वृक्षन्वञ्च लभिव्यसि । मदंशम्यासुरस्पर्षैश्च शङ्खचूडस्य कामिनी ॥४६॥
 भूत्वा पश्चाच्च मन्पत्नी भविष्यसिनसंशयः । त्रैलोक्यपात्रनीनाम्नातुलसीतिच भारते ॥
 कलया च सखि भूत्वा शांत्त गच्छ वरानने । भाग्नं भारतीशापाज्ञाप्रापञ्चावतीभव ॥
 गङ्गे याम्यसि पश्चान् त्वमंशेनविध्वपावनी । भाग्नंभार्गीशापान्पापदाहायदेहिनाम् ॥
 भर्गीयस्य तपसा तेन नीता सुदुष्करान् । नाम्ना भार्गीरथी पूताभविष्यसिमहींतले ॥
 मदंशम्य समुद्रस्य जायाजाये ममात्रया । मन्कलांशम्य भूपम्य शान्तनोश्च सुरैश्वरि ॥
 गङ्गाशापेनकलया भाग्नं गच्छ भारति । कलहस्य फलंमुद्ग्व्यसपत्नीम्यांसराच्युते ॥
 स्वयञ्च ब्रह्मसदनं ब्रह्मणः कामिनी भव । गङ्गा यातु शिवम्यानमत्र पद्मैवतिष्ठतु ॥५३॥
 शान्ता च क्रोधरहितामद्भक्तासन्धरुपिणी । महासाध्वीमहाभागामुशीलाधर्मचारिणी ॥
 यदंशम्यलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतित्रयाः । शान्तस्थाः सुशीलाश्च प्रतिविद्येपुयांपितः ॥
 तिस्रोभाष्यास्त्रयः शालास्त्रयो भृत्याश्चरान्धवाः । धुरंधेदचिरञ्जिध्वनरोतेमद्गलप्रदाः ॥
 स्त्रीपुंसच गृहे येषां गृहिणा स्त्रीवशा पुमान् । तिष्कलञ्च जन्म तेषामशुभञ्च पदेपदे ॥
 सुगदुष्ठा योनिदुष्ठा यम्य स्त्री कलहप्रिया । अगण्यं तेन गन्तव्य महारण्यं गृहाह्वगम् ॥
 जलानाञ्च म्यलानाञ्च फलानां प्राप्तिरेव च । सततं मुग्धा तत्र न तेषांतद्गृहेऽपिच ॥

चरमग्नौस्थितिर्हिंस्रजन्तूनांसन्निधौसुखम् । ततोऽपिदुःखंपुंसाञ्चदुष्टास्त्रीसन्निधौध्रुवम् ॥
 व्याधिज्वाला विपज्वाला धरंपुंसांवरानने । दुष्टास्त्रीणांमुखज्वालामरणादतिरिच्यते ॥
 पुंसश्च स्त्रीजितस्यैव जीवनं निष्फलं ध्रुवम् । यद्गहा कुस्ते कर्मनतस्यफलभाग्भवेत् ॥
 स निन्दितोऽत्र सर्वत्र परत्र नरकं व्रजेत् । यशःकीर्त्तिविहीनोयोजीवन्नपिमृतोहिसः ॥
 यद्दीनाञ्च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसि स्थितिः । एकभार्य्यः सुखीनैववहुभार्य्यःकदाचन ॥
 गच्छ गङ्गे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वती । अत्र तिष्ठतु मद्देहे सुशीला कमलालया ॥
 सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता । इह स्वर्गसुखंतस्य धर्ममौश्रे परत्रच ॥
 पतिव्रता यस्य पत्नी सचमुक्तःशुचिःसुखी । जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखीदुःशीलापतिरेवयः ॥
 इत्युक्त्वा जगतांनाथो विरराम च नारद । अत्युच्चैरुदुर्देव्यः समालिङ्ग्य परस्परम् ॥
 ताञ्चसर्वाः समालोच्य क्रमेणोचुःसर्दीश्वरम् । कम्पितांसाधुनेत्राश्चशोकेनचमयेनच ॥

सरस्वत्युवाच ।

विदायं देहि भो नाथ! दुष्टां मां जन्मशोधनम् ।

सन्स्वामिना परित्यक्ताः कुत्र जीवन्ति काः स्त्रियः ॥ ७० ॥

देहत्यागं करिष्यामि योगेन भारते ध्रुवम् । अत्युच्चतो निपतनं प्रातुमर्हति निश्चितम् ॥

गङ्गोवाच ।

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते । देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ ॥

निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो जनो भवे । स याति नरकं कल्पंकिं तेसर्वेश्वरस्यवा

लक्ष्मीरवाच ।

नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव । प्रसादं कुरु भार्य्याभ्योमदीशस्य क्षमावरा

भारतं भारतीशापान् यास्यामिकलयायदि । कतिकालंस्थितिस्तत्रकदाद्रक्ष्यामितेपदम्

दास्यन्ति पापिनः पापं मह्यं स्नानावगाहनान् । केन तेन विमुक्ताहमागमिष्यामि तेपदम्

कलया तुलसीरूपा धर्मध्वजसुता सती । भक्त्या कदा लभिष्यामि त्वत्पादाम्बुजमच्युत

वृक्षरूपा भविष्यामि तदधिष्ठातृदेवता । मामुद्धरिष्यसि कदा तन्मे गूहि रूपानिधे ॥७८

गङ्गा सरस्वतीशापाद् यदि यास्यतिभारतम् । शपेत्तमुक्तापापाच्चकदात्वांबालभिष्यति

गङ्गाशापेन सा घाणी यटि यास्यति भारतम् ।

कदा शापाट्टिनिर्मुच्य लभियसि पदं तव ॥ ८० ॥

ता घाणी ब्रह्मसदन गङ्गा वा शिवमन्दिरम् । गन्तुं वदसि हे नाथ ! तत्क्षमस्वचते घच-
इत्युनवा कमलाफान्तपद् धृत्वा ननाम च । स्वपेशैर्वैष्टयित्वा च खरोद च पुनः पुनः ॥
उवाच पद्मनाभस्ता पद्मा धृत्वा स्ववक्षसि । ईपद्मास्य प्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकासक ॥

नारायण उवाच ।

त्वद्वाक्प्रभाचरिष्यमि स्ववाक्प्रज्ञ सुरेश्वरि । समताञ्च करिष्यामि शृणु तत्फलमेवच ॥
भारती यातु कलया सगिद्रूपा च भारतम् । अर्द्धांशा ब्रह्मसदन स्वयं तिष्ठतु मदुग्रहे ॥
भगीश्वरेण नीता सा गङ्गा यास्यति भारतम् । पूत कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मदुग्रहे ॥
तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिप्राप्यतिदुर्लभम् । तत स्वभायतः पूताप्यतिपूता भविष्यति ॥
कलाशाणेन त्व गच्छ भारते कमलोद्भवे । पद्मावती सरिद्रूपा तुलसीवृक्षरूपिणी । ८१ ॥
पले पञ्चसहस्रे च गतेवर्षे चमोक्षणम् । युष्मारुंसरिताभूयोमदुग्रहेचागमिष्यथ ॥ ८२ ॥
सम्पदा हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् । विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मे भवेद्भवे ॥
मन्मनोपासमानाञ्चसताक्षानावगाहनान । युष्मारुमोक्षणापापान्पापिदत्ताच्चस्पर्शनात्
पृथिव्यायानितीर्थानिसन्त्यसत्प्यानि सुन्दरि । भविष्यन्तिचपूतानिमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
मन्मनोपासका भक्ता भ्रमन्ति भारतेसति । पूत कर्तुं भागवञ्चसुपवित्रां चसुन्धराम् ॥
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पाद प्रक्षालयन्ति च । तन्स्थानञ्चमहातीर्थसुपवित्रभवेद्बुधुचम् ॥
स्त्रीप्रो गोप्र एतन्नञ्च ब्रह्मज्ञोऽगुस्तल्पगः । जीवन्मुक्तोभवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहीनोऽप्यनास्तिरुः । नरघातीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ८५ ॥
असिर्जायी मसिर्जायी घायकः शूद्रयाजकः । वृष्याहोभवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
विध्यासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाश्यप्रदायकः । स्याप्यहारीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
ऋणप्रप्तो घातुंशिको जारजः पुंश्चलीपतिः । पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः । अर्द्धाक्षिनो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
अभ्यत्यघातपक्षीश्च मद्भक्तनिन्दकस्तथा । अनिर्देयमोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात् ॥

मातरं पितरं भाव्यां भ्रातरं तनयं सुताम् । गुरोः कुलञ्चभगिनीवंशहीनञ्चग्रान्धवम् ॥
 श्वधूञ्च श्वशुरञ्चैव यो न पुष्पाति नारद । स महापातकी पूता मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
 देवद्रव्यापहारीचविप्रद्रव्यापहारकः । लाक्षालौहरसानाञ्च विक्रोता दुहितुस्तथा ॥१०४॥
 महापातकिनश्चैतै शूद्राणां शवदाहकः । भवेयुरैते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१०५॥

लक्ष्मीख्याव ।

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकारक । येषां सन्दर्शनस्पर्शात् सद्यःपूता नराधमाः ॥
 हरिभक्तिविहीनाश्च महाहङ्कारसंयुताः । स्वप्रशंसारता धूर्ताः शठाश्चसाधुनिन्दकाः ॥
 पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् । येषाञ्च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥
 येषां सन्दर्शनं स्पर्शं देवा वाञ्छन्ति भारते । सर्वेषां परमोलाभोवैष्णवानां समागमः ॥
 न ह्यम्मयानि तीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः । तेपुनन्त्युरुकालेनविष्णुभक्ताःक्षणादहो ॥

सांतिरवाच ।

महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः । निगूढतरुचंकथितुमृषिग्रेष्टोपचक्रमे ॥

श्रीनारायण उवाच ।

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः । पुण्यस्वरूपपापघ्नंसुखदं भक्तिमुक्तिदम् ॥
 सारभूतं गोपनीयं न घक्तव्यं खलेषु च । त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥
 मुख्यत्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णं प्रविश्यति । वदन्ति वेदवेदाङ्गास्तं पवित्रंनरोत्तमम् ।
 पुराणां शतं पूर्वं पूतं तज्जन्ममात्रतः । स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिप्राप्तोतितन्क्षणम् ॥
 यैः कश्चिद् यत्र वाजन्मलत्रयेपुचजन्मसु । जीवन्मुक्तास्तेचपूतायान्तिकालेहरेःपदम् ॥
 मद्भक्तियुक्तो मत्पूजानियुक्तो मद्गुणान्वितः । मद्गुणभूताधर्माद्यश्चमन्निविष्टश्चसन्ततम्
 मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः । सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥
 न वाञ्छन्ति सुखं मुक्तिसालोत्पादिवनुष्टयम् । ब्रह्मन्वममरत्नं वा तद्वाञ्छाममसेवने ॥
 इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्च देवत्वञ्च सुदुर्लभम् । स्वर्गवाहादिभोगञ्च रूपेचनहिवाञ्छति ॥
 ब्रह्माण्डानि विनश्यन्ति देवा ब्रह्मादयस्तथा । कल्याणभक्तियुक्तश्च मद्भक्तो न प्रणश्यति ॥

भ्रमन्ति भारतेभक्ताः कञ्चन जन्मसु दुर्लभम् । तेषु पियान्तिमहोपूत्वानरास्तीर्थममालयम् ॥
इत्येतन् कश्चिन्न सर कुट पद्मे यथोचितम् । तदाज्ञाताश्च ताश्च कुरुर्हस्तिथौ सुवासने ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिकण्डे नारायण-नारदसवादे सरस्वत्युपाख्यान नाम
पष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

कालकालेश्वरगुणनिरूपणम् ।

नारायण उवाच ।

सरस्वता पुण्यक्षेत्रे धाजगाम च भारतम् । गङ्गाशापेन कल्या स्यय तस्थौ हरे पदम् ॥
भारती भारत गत्या गङ्गा च ब्रह्मण प्रिया । वागधिष्ठातृदेवीसातेनवाणीचकीर्तिता ॥
सर्वविघ्न परित्याप्य स्रोतस्येव हि दृश्यते । हरि सर सु तस्येय तेन नाम्ना सरस्वती ॥
सरस्वती नदी साच तीर्थरूपातिपावना । पापिपापेध्मदाहाय जलदग्निस्वरूपिणी ॥ ४॥
पश्चाद्गङ्गाख्यानीता मही भार्गीरथी शुभा । समाजगाम कल्या वाणीशापेन नारद ॥ ५॥
तत्रैव समये ताश्च दधार शिरसा शिव । वेग सोढुमशक्ताया भुव प्रार्थनया विभु ॥ ६॥
पश्चात्तगाम कल्या साच पश्चावती नदी । भारत भारतीशापान् स्वयतस्थौ हरे पदम् ॥
ततोऽन्यथासा कल्या ललाभजन्मभारते । धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्वाख्यातातुलसीनिच ॥
पुरा सरस्वतीशापात्तत्पश्चाद्दत्तिशापत । रभूर वृक्षरूपा सा कल्या विघ्नपावनी ॥ ६॥
कत्रे पञ्चसहस्रत्रयं स्थित्वाच भारते । जग्मुस्तत्र सरिद्रूप विहाय श्रीहरे पदम् ॥
यानिसर्वाणि तीर्थानि शशाङ्कान्दान विना । याम्यन्तिसार्द्धतामिश्च वैकुण्ठमानयाहरे ।
शाश्वत्प्रामो हरेर्मुक्तिर्नगत्रायश्च भाग्यम् । कत्रेर्दशसहस्रान्ते यथो त्यक्त्वा हरे पदम् ॥
वैष्णवाश्च पुगणानि शङ्काश्च श्राद्धनर्षणम् । वेदोक्तानिच कर्माणि यगुस्ते सार्द्धमेव ।
हरिपूजा हरेर्नाम ननुर्वाक्तिगुणवात्तनम् । वेदाङ्गानिच शास्त्राणि यगुस्ते सार्द्धमेवच ॥

सन्वञ्च सन्ध धर्मश्च वेदाश्च ग्रामप्रदेवता । प्रत तपस्थानशन ययुस्तै सार्द्धमेव च ॥
 वामाचारस्ता सर्वे मिथ्याकापट्यसयुता । तुलसीवर्जिता पूजा भविष्यति तत परम् ।
 एकादशाविहीनाश्च सर्वे धर्मविवर्जिता । हस्त्रिसङ्गविमुखा भविष्यन्ति तत परम् ॥
 शठा क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहङ्कारसयुता । चौराश्च हिंसका सर्वे भविष्यन्ति तत परम्
 पुसा भेदश्च खामिदो विवाहो वापि निर्णय ।

स्वन्वामिभेदो वस्तुना न भविष्यति तत्परम् ॥ १६ ॥

सर्वेजना स्त्रीपशाश्च पुश्चल्यश्चगृहेगृहे । तर्जनेर्भर्त्सनै शश्वत् स्वामिन ताडयन्ति च ॥
 गृहेश्वरचगृहिणी गृही भृत्याधिकोऽपि । चेटीभृत्यसमो यथा शशूश्चश्वशुरस्तथा ॥
 कर्तारो बलिनो गेहे योनि तम्प्रन्धिवान्प्रवा ।

विद्यासम्प्रन्धिभि सार्द्धं सम्भासोऽपि न विद्यते ॥ २२ ॥

यथापरिचितालोकास्तथा पुसश्चप्रान्धरा । सर्वकर्माक्षमा पुसो योपितामाज्ञयाविना ॥
 मृच्छाशास्त्रपठिष्यन्तिस्वशास्त्राणिविहाय च । प्रहसन्प्रविशावशा शूद्राणासेवका कलौ
 स्वकारा भवन्ति धावका वृशवाहका । सन्वहीना जना सर्वे शस्यहीना च मेदिनी ॥
 फलहीनाश्चतस्वोऽपत्यहीनाश्च योपित । क्षारहीनास्तथागाय क्षीर सर्पिर्विवर्जितम् ॥
 दम्पतीप्रतिहीनो च गृहिण सुखवर्जिता । प्रतापहना भूताश्च प्रजाश्च करपीडिता ॥
 जलहीना नदा नद्यो दार्धिका कन्दरादय । धर्महीना पुण्यहाना वर्णाश्चत्वार एव च ॥
 लभेषुपुण्यवान् कौऽपिनितिष्ठति न परम् । कुत्सिनापिङ्गताकारानरा नार्यश्चरालका ॥
 कुमार्त्ता कुत्सितशब्दा भविष्यन्ति तत परम् । केचिद्गामाश्च नगरा नर्यूत्याभयानका ।
 केचिन् स्वयंकुम्भरेण नरेण च सम्प्रियता । अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च ॥
 अरण्यवासिन सर्वे जनाश्च करपीडिता । शस्यानि च भविष्यन्ति तडागेषु नदीषु च ॥
 प्रम्पानि च क्षेत्राणि शस्यहानान्यत परम् । हना प्रम्प्रा धनिनो रत्नदर्पसमन्विता ॥
 प्रम्प्राशनाहीना भविष्यन्ति कलौ युगे । अर्कवादिनो धूर्ता शठाश्च सत्यवादिन ॥
 पापिन पुण्यवन्तश्चाप्यशिष्टा शिष्टा एव च । नितेन्द्रिया लम्पटाश्च पुश्चल्यश्च पतिव्रता
 तपस्विन पातकिनो विष्णुभक्ता अत्रैष्णवा । अहिंसका दयायुक्ताश्चौराश्च नद्यातिन

भिक्षुवेशधरा धृतां निन्दन्त्युपहसन्ति च । भूतादिसैवानिपुणा जनानां मन्दकारिणः ॥
 पूजितास्नेभविष्यन्ति वञ्चकाज्ञानिदुर्गलाः । वामना व्याधियुक्ताश्चनरानाप्यैधसर्वतः ॥
 अल्पायुषां जरायुक्ता यौवनेषु कलौ युगे । पलिताः षोडशे वर्षे महावृद्धास्तुविशर्ता ।
 अष्टवर्षाश्च युवता रजोयुक्ताश्च गर्भिणी । वन्सरान्ते प्रसृता स्त्री षोडशेन जरान्विता ॥
 एता काश्चिन् सहस्रेषुवन्ध्याश्चापिकलयुगे । कन्याविक्रयिणः सर्वैष्वर्णाश्चत्वारस्पवत् ॥
 मानृजायावपूनाश्च जारोपार्जनभक्षकाः । कन्यानां भगिर्नाशाश्च जारोपार्जनजीविनः ॥
 हरेर्नामविक्रयिणो भविष्यन्ति कलयुगे । स्वयमुत्सृज्य दानञ्च कीर्तिवर्द्धनहेतवे ॥
 तन्पश्चान्मनसालोच्य स्वयमुल्लङ्घयिष्यति । देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च ॥
 स्वदत्तापरदत्ता वा सर्वमुल्लङ्घयिष्यति । कन्याकागामिनःकेचिन् केचिच्च श्वभ्रूगामिनः ॥
 केचिद्दु यधूमामिनश्च केचिच्च सर्वगामिनः । भगिर्नागामिनःकेचिन् सपत्नीमातृगामिनः ।
 भ्रातृजायगामिनश्च भविष्यन्ति कलयुगे । अगम्यागमनञ्चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे ॥५७॥
 आत्मयोनिपरित्यज्य विहरिष्यन्तिसर्वतः । पत्नीनांनिर्णयोनास्ति भर्तृणाञ्चकलयुगे ॥
 प्रजानाञ्चैव प्रामाणां पस्तूनाश्च विशेषतः । अलीकवादिनः सर्वैसर्वे चौराश्च लम्पटा ॥
 परस्परं हिंसकाश्च सर्वैश्च नरघातिनः । ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यन्तिच पापिनः ॥५८॥
 लक्षाहोहरसनाश्च व्यापारं लवणस्पृश । वृषचाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः ॥
 शूद्रानमोजितः सर्वैश्चैव वृषलीरताः । पञ्चवर्षपरित्यक्ताः कुहूराचीव भोजिनः ॥५९॥

यज्ञसूत्रविहीनाश्च सन्ध्याशौचविहीनकाः ॥ ५२ ॥

पुंश्रलीचावीर वृद्धा कुट्टर्नात्वरजस्यला । विप्राणां रन्धनागारे भविष्यन्तिचपाचिक ॥
 अन्नानांनिर्णयो नास्ति योनोनाञ्चविशेषतः । आश्रमाणांजनानाञ्चसर्वे मृच्छाकलयुगे ॥
 एवं कलौसंप्रवृत्ते सर्वे मृच्छमया भवे । हस्तप्रमाणे वृक्षे चाद्गुह्यमाने च मानवे ॥५६॥
 विप्रस्पविष्णुयशसः पुत्रः कल्कीभविष्यति । नारायणकलांशश्च भगवान् बलिनांघली ।
 दीर्घेण कर्त्वालेन दीर्घघोटकवाहनः । म्लेच्छशून्याश्च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ॥
 निर्मृच्छांसमुधां वृत्त्याभन्तर्द्धानंकरिष्यति । अराजकाश्चमुधा दस्युग्रस्ताभविष्यति ।
 स्थूलप्रमाणं पद्भ्यां वर्षाधाराप्लुता मही । लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भविष्यति ॥

ततश्चद्वादशादिव्याः करिष्यन्त्युदयंमुने । प्राप्नोतिशुक्तां पृथ्वी समातेषाञ्च तेजसा ॥

कलौ गते च तुर्द्धये संप्रवृत्ते कृते युगे ।

तपःसन्धसमायुक्तो धर्मपूर्णो भविष्यति ॥ ६२ ॥

तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदाज्ञा ब्राह्मणा भुवि । पतिप्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे ॥

राज्ञानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ताःस्वधर्मिनः । प्रतापवन्तोधर्मिष्ठाःपुण्यकर्मरताःसदा ॥

वैश्या वागिज्यनिगता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः । दूद्राश्चपुण्यशालाश्चधर्मिष्ठाविप्रसेविनः ॥

विप्रक्षत्रविशां वंशा विष्णुयज्ञररायणाः । विष्णुमन्त्ररताःसर्वेविष्णुभक्ताश्चवैष्णवाः ॥

धृतिस्मृतिपुराणज्ञा धर्मज्ञा ऋतुगामिनः । लेशो नास्ति ह्यधर्माणां धर्मपूर्णं कृते युगे ॥

धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे स्मृतः । कलौ प्रवृत्ते चैकपात्सर्वलुप्तस्ततः परम् ॥

वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः । यथा द्वादशमासाश्चभूतपञ्चपडेवच ॥

द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम् । चतुर्भिः प्रहरैरात्रिमासत्रिंशद्दिनैस्तथा ॥

शतत्रये षष्ट्यधिके नराणाञ्च युगे गते । देवानाञ्च युगो ज्ञेयः कालसंख्याविदां मतः ॥

मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसततिः । मन्वन्तरसमं ज्ञेयञ्चेन्द्रायुः परिकीर्तितम् ॥

अष्टाविंशतिमे चन्द्रे गते ब्रह्मदिवानिशम् । अष्टोत्तरे वर्षशते गते पातश्च ब्रह्मणः ॥७३॥

प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तप्रादृष्टाःचमुन्वरा । जलप्लुतानि विभवानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥

ऋषयो जीविनः सर्वे लीनाः कृष्णे परान्तरे । तत्रैव प्रकृतिर्लीनो तेन प्राकृतिको लयः ॥

लयं प्राकृतिकेऽतीते पाते च ब्रह्मणो मुने । निमेषमात्रः कालश्च कृष्णस्य परमान्तः ॥

एवंतद्वन्तिसर्वाणिब्रह्माण्डान्यखिलानि च । स्थितौगोलोकधैकुण्ठौश्रीकृष्णश्चसपार्षदः

निमेषमात्रः प्रलयो यत्र विश्वं जलप्लुतम् । निमेषानन्तरे काले पुनः सृष्टिः क्रमेणच ॥

एवंकतिविधामृष्टिलयःकतिविधोऽपिवा । कतिहृतवोगतायातःसंख्यांजानातिकःपुमान् ।

सृष्टीनाञ्चरुद्रानाञ्चब्रह्माण्डानाञ्चनारद । ब्रह्मादीनाञ्चब्रह्माण्डेसंख्यांजानातिकःपुमान् ॥

ब्रह्माण्डानाञ्च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः । सर्वेषां परमान्मा च श्रीकृष्णःप्रकृतैः परः ॥

ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशाश्च महाधिराद् ।

तस्यांशाश्च विराद् भुद्रस्तस्यांशा प्रकृतिःस्मृता ॥८२॥

स च कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्चैकृण्डेगोलोकेद्विभुजःस्वयम् ॥
 ब्रह्मादितृणपर्यन्त सर्वं प्राकृतिकं भवेत् । यद् यत् प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च ॥
 एवं विद्धि गृष्टिहेतु सन्धं नित्यं सनातनम् । स्येच्छामयं परं ब्रह्म निर्लितं निर्गुणंपरम् ॥
 निरुपाधि निराकार भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीवकमनीयञ्च नवीननीरदप्रभम् ॥८६॥
 द्विभुज मुरलीहस्त गोपवेशं किशोरकम् । सर्वज्ञं सर्वसैव्यक्षपरमात्मनमीश्वरम् ॥८७॥
 कर्गाति ब्रह्मा ब्रह्माण्डं ज्ञानात्माकमलोद्भवः । शिषोमृत्युञ्जयश्चैवसंहर्तासर्वतत्त्वचित् ॥
 यस्य ज्ञानाद् यत्तपसास्वैशस्तनूत्समोमहान् । महाविभूतियुक्तश्चसर्वज्ञःसर्वदास्वयम् ॥
 सर्वव्याप्यासर्वपाताप्रदातासर्वसम्पदाम् । विष्णुःसर्वेश्वरःश्रीमान्यम्यज्ञानाजगत्पति ॥
 महामाया च प्रकृति सर्वशक्तिमतीश्वरी । यज्ञज्ञानाद् यस्यतपसायद्भक्त्यायस्यसेवया ॥
 सावित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता । सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसम्पत्प्रदायिनी ॥
 सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेशं प्राप या पतिम् । सर्वस्तुता च सर्वज्ञादुर्गादुर्गतिनाशिनी ॥
 कृष्णवामाशसम्भूताकृष्णप्रेमाधिदेवता । कृष्णप्राणाधिकाप्रेम्णाराधिकाकृष्णसेवया ॥
 सर्वाधिकञ्च रूपञ्च सौभाग्यमानगौरवम् । कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वंपापसेवया ॥
 तपश्चकार सा पूयं शतशृङ्गे च पर्यते । दिव्यं युगसहस्रञ्च निराहारा च क्लिश्यति ॥६६॥
 कृशां नि श्यासरहितां दृष्ट्वा चन्द्रकलोपमाम् । कृष्णोवक्षःस्थलेकृत्वाहरोदृष्टपयाविभुः ॥
 धरं तस्यैदर्शो सारं सर्वेषामपि दुर्लभम् । मम वक्षःस्थले तिष्ठ मयितैभक्तिरन्विति ॥
 सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णा च गौत्रेण च । त्वं मेध्रेष्ठाचप्रेत्येष्टाचसर्वष्टायोपिताम् ॥
 गरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया । सन्ततं तपसाध्योऽहंवाध्यश्चप्राणचक्षुभे ॥
 श्लथुतवा जगतां नाथश्चकार चेतनां ततः । सपत्नारहितां ताञ्च धकार प्राणचक्षुभाम् ॥
 येषां या याश्च देव्यश्च पूजितास्तन्मयसेवया । तपस्यायाद्विशीयासांतासांतादृक्कलंमुनेः ॥
 दिव्यं धर्षसहस्रञ्च तपस्तप्त्वा हिमालये । दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपुण्यावभूव ह ॥
 सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्यते गन्धमादने । लक्षवर्षञ्च दिव्यञ्च सर्ववन्द्या वभूव सा ॥१०४॥
 लक्ष्मीर्युगयातं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे । सर्वसम्पत्प्रदात्री च वभूव तस्य सेवया ॥
 सावित्री मलये तप्त्वा द्विजपूज्या वभूवसा । षष्टिवर्षसहस्रञ्चदिव्यं ध्यात्वाचतत्पदम् ॥

शतमन्वन्तरं ततं शङ्करेण पुरा विभो ।

शतमन्वन्तरञ्चैव ब्रह्मणा तस्य भक्तिः । शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह ॥

शतमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा पूज्यो बभूव ह । मन्वन्तरस्तपस्तेपे शेषो भक्त्या च नारद ॥

मन्वन्तरञ्च सूर्यश्च शक्रश्चन्द्रस्तथैव च ॥ १०६ ॥

दिव्यं सतयुगञ्चैव वायुस्तप्त्वा च भक्तिः । सर्वप्राणःसर्वपूज्यःसर्वाधारोबभूवसः ॥

एवं कृष्णस्य तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः । मुनयो मानवा भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः

एवं ते कथितं सर्वं पुराणञ्चतथागमम् । गुह्यब्रह्मद्वयथाज्ञातंकिभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारद-संवादे कालकालेज्वरगुण-

निरूपणं नाम सतमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

पृथिव्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

हरेर्निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च । तस्य पाते प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः ॥१॥

प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्रादृष्टा वसुन्धरा । जलप्लुतानि विज्वानि सर्वे लीनाहराविति ॥

वसुन्धरा तिरोभूता कुत्र वा तत्र तिष्ठति । सृष्टेर्विधानसमये साविर्भूता कथं पुनः ॥३॥

कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रयाजया । तस्याश्च जन्मकथनं वदमद्ग्लकारणम् ॥

श्रीनारायण उवाच ।

सर्वादिस्मृष्टौ सर्वेषा जन्म कृष्णादिति श्रुतिः ।

आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥१॥

धूयतां वसुधाजन्म सर्वमद्ग्लमद्ग्लम् । विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्द्धनम् ॥ ६ ॥

अहो केचिद्बन्तीति मधुकैटभमेदसा । बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमनं शृणु ॥ ७ ॥

उच्यतुस्नौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा । आवां जहि न यत्रोर्धोपयसासंबृतेतिव ॥
 तयोर्जोवनकालेन प्रत्यक्षा च भवेन् स्फुटम् । ततो यभूय मेदश्च मरणानन्तरंतयोः ॥६॥
 मेदिनीति च विख्यातित्युक्त्वा यैस्तन्मतं शृणु । जलधौता कृशा पूर्ववर्द्धितामेदसायतः
 कथयामि च तज्जन्म सार्यकं सर्वसम्मतम् । पुराश्रुतञ्च श्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राञ्च पुष्करे ॥
 महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् । मलोपभूवकालेनसर्वाङ्गव्यापकोधुवम् ॥
 स च प्रविष्टः सर्वेषां तल्लोम्नां विचरेषु च । कालेन महता तस्माद् यभूव वसुधा मुने ॥
 प्रत्येकं प्रतिलोम्नाञ्च रूपेषु सा ग्मितास्थिरा । आविर्भूता तिरोभूता सचलाचपुन पुनः
 आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलान् पदरूपस्थिता । प्रलयेचतिरोभूताजलाभ्यन्तरवस्थिता ॥

प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता ।

सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपमिता सती ॥ १६ ॥

हिमाद्रिमैरुसयुक्ता प्रहचन्द्रार्कसंयुता । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तथानया ॥१७॥
 पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता । काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सर्वदुर्गसमन्विता ॥१८॥
 पातालाः सप्त तदधस्तद्दुर्ध्वे ब्रह्मलोककः । ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वविश्वञ्च तत्र वै ॥१९

एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि वै ।

ऊर्ध्वं गोलोकवैकुण्ठी नित्यां विश्वपरौ च तौ ॥ २० ॥

नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि च ।

प्रलये प्राकृते ब्रह्मन् ब्रह्मणश्च निपातने ॥ २१ ॥

महाविराडादिसृष्टौ भृष्टः कृष्णेन चात्मना । नित्ये स्थित स प्रलये काष्ठाकाशेश्वरैः सह
 क्षित्यधिष्ठातृदेव्या सा धाराहे पूजितासुरैः । मनुभिर्मुनिभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च ॥२३॥
 विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसम्प्रता । तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मजः

नारद उवाच ।

पूजिता केन रूपेण धाराहे च सुरैर्मही । धाराहेण च धाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ॥
 तस्याः पूजाविधानञ्चाप्यथञ्चोद्धरणत्रयम् । मङ्गलं मङ्गलस्यापि जन्म व्यासं चद प्रमो

नारायण उवाच ।

वागहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा । उद्धार महां हत्वा हिरण्याक्षं रसातलान् ॥
जले तां स्थापयानास पद्मपत्रं यथार्णवे । तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वविश्वं मनोहरम् ॥२८॥
दृष्ट्वा तदधिदेवीञ्च सकामां कानुको हरिः । वराहन्तपी भगवान् कोटिसूर्यसमप्रभः ॥
कृत्वा गनिकरो शय्यां मूर्त्तिञ्च सुमनोहराम् । क्रीडाञ्चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ।
सुखसम्मोगसम्पर्शान् मूर्च्छां सन्ध्याय सुन्दरी । विदग्धयाविदग्धेनसङ्गमोऽपिसुखप्रदः
विष्णुन्तदङ्गसंश्लेषाद् बुध्ने न दिवानिशम् । वर्षान्नेचेतनांप्राप्यकार्मातल्याजकामुर्काम्
पूर्वन्पञ्च वाराहं दधार चावलीलया । पूजाञ्चकार भक्त्या च ध्यात्वाच घरणीं सर्ताम्
धूपैर्दोषैश्च नैवेद्यैः सिन्दूरैरनुलेपनैः । वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥

महावराह उवाच ।

सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता शुभम् । मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च मानवादिभिः
अम्बुवाचित्यागदिने गृहारम्भप्रवेशने । वार्षातडागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥३६॥
तव पूजां करिष्यन्ति मङ्गरेण सुगदयः । मूढा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकञ्च ते ॥

वसुधोवाच ।

वहामि सर्वं वागहनूपेणाहं तवाज्ञया । लीलामात्रेण भगवन् विश्वञ्च सचराचरम् ॥
मुक्तां शुक्तिं हरेरर्च्यां शिवलिङ्गं शिलान्तया । शङ्खं प्रदीपं रत्नञ्च माणिक्यंहीरकंमणिम्
यजन्ञ्च पुष्पञ्च पुष्पकं तुलसीदलम् । जपनालां पुष्पनालां कार्पूरञ्च सुवर्गकम् ॥४०॥
गौगोचनां चन्दनञ्च शालग्रामजलन्तया । पतान् वोढुमशक्ताहं क्लिष्टा च भगवन् शृणु

श्रीभगवानुवाच ।

द्रव्याप्येनानि ये मूढा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि । ते याम्यन्तिकालसूर्यदिव्यवर्षशनं त्वयि
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरगन् च नागद् । बभूव तेन गर्भेण तेजस्र्या मङ्गलग्रहः ॥४३॥
पूजाञ्चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाज्ञया हरिः । काण्वशात्रोक्तव्यानेन तुष्टुवुः स्वनेन च
दधुर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिस्मैव च । संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥४५॥

नारद उवाच ।

किं ध्यान स्तवन किं वा तस्य मूलञ्च किं वद । गूढ सर्गपुराणेषु श्रोतु कौतूहल मम
नारायण उवाच ।

आदीं च प्रविर्वा देवा वराहेण च पूजिता । ततो हि ब्रह्मणा पश्चात् ततश्च पृथुना पुरा
तत सर्वमूर्तान्दृष्ट्व मनुभिर्नारदादिभि । ध्यानञ्च स्तवन मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद ॥
ओं हा प्र वा वसुधायै स्वाहा । इत्यनेन मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा ॥ ४६ ॥
श्रेतन्नगपञ्चणाभा शतचन्द्रसमप्रभाम् । चन्द्रनोक्षिप्तसर्वाङ्गा सर्वभूषणभूयिताम् ॥
रत्नापारा रत्नगभा रत्नाकरसमन्विताम् । बह्विशुद्धाशुक्लाधना सम्मिता चन्द्रिता भजे
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वेश्व पूजिता भजेत । स्तवन शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमेव च
विष्णुस्वाच ।

यज्ञशृङ्गजाया च जय देहि जयावहे । जये जये जयाधारे जयशाले जयप्रदे ॥ ५३ ॥
सर्वाधारे सर्वर्षाजे सर्वशक्तिसमन्विते । सर्ववामप्रदे देवि सर्वेष्ट देहि मे भवे ॥ ५४ ॥
सर्वशस्यालये सर्वशस्याद्रे सर्वशस्यदे । सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यातिमने भजे ॥
मङ्गले मङ्गलाधारे मङ्गलयमङ्गलप्रदे । मङ्गलायै मङ्गलाशे मङ्गल देहि मे भवे ॥ ५६ ॥
भूमे भूमिपसर्वत्रे भूमिपालपरायण । भूमिपाहङ्काररूपे भूमि देहि च भूमिदे ॥ ५७ ॥
इदं स्तोत्रमहापुण्यं ता सपूज्य च य पठेत् । कोटि कोटि जन्मजन्मसभयेद्भूमिपैण्यर
भूमिदानरत्न पुण्य लभते पठनाज्जन । भूमिदानहरात् पापात् मुन्यते नात्र सशय ॥
भूमौ चार्प्येत्यागपापाद् भूमौ देवादिव्यापनात् । पापेनमुच्यते प्राज्ञ स्तोत्रस्य पठनान्मुने
अश्वमेधशत पुण्य लभते नात्र सशय ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रवृत्तिखण्डे पृथिव्युपाख्याने पृथिव्यास्तोत्र नाम
अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः

भूमिदानफलतद्दरणेपापञ्च ।

नागद उवाच ।

भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्दरणेन यत् । परभूमौ श्राद्धरूपं कृपे कृपद्वजं तथा ॥ १ ॥
अभ्युवाचीभूषततर्जाजन्त्यागजमेव च । दद्यात्प्राप्त्यापनात् पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥
अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत् प्रभतः परम् । यदस्ति तत्प्रतःकारं घट वेदघिदांवर ॥३॥

नागयण उवाच ।

वितस्तिमात्रं भूमिञ्च योददाति च भारते । सन्ध्यापूतायधिप्राय सयातिविष्णुमन्दिरम्
भूमिञ्च सर्वशम्याह्यां ब्राह्मणाय ददाति यः । भूमिरेणुप्रमाणञ्च वर्षे विष्णुपदे म्यितिः
ग्रामं भूमिञ्च धान्यञ्च यो ददान्याददति यः । सर्वपापाद्भिर्मुक्तौचोभौवैकुण्ठवासिनौ
भूमि दातुञ्च यत्काले यः साधुश्चानुमोदने । स प्रयातिचैवैकुण्ठं मित्रगोत्रसमन्वितः ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत् यः । स तिष्ठति कालसूत्रं यावच्चन्द्रदियाकरौ ॥८॥
तत्पुत्रर्षीप्रभृतिर्मिर्मिहीनः श्रिया हतः । पुत्रहीनो ऋग्दिश्च अन्ते याति च रौरवम् ॥९॥
गर्वामाणं चिनिष्कृत्य यश्च शम्यं ददाति सः । दिव्यं वर्षशतंचैवकुम्भीपाकेच तिष्ठति ॥
गोष्ठं तडागं निष्कृत्य मार्गं शम्यं ददाति यः । सचनिष्ठस्यसोपत्रे यावदिन्द्राधनुर्दश ॥
परकीयतडागे च पट्टमुदधृत्य स्रोतमृजेत् । रेणुप्रमाणवर्षञ्च ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥१२॥
पिण्डं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः । श्राद्धं करोतियोमृद्गोनरकंयातिनिश्चितम् ॥
भूमौ प्रदीपं योऽर्पयतिसोऽन्धःसतजन्मसु । भूमौशङ्खञ्चसंस्थाप्यकुपुंजन्मान्तरेलमेत् ॥
सुकामाणिक्यहीरञ्च सुवर्णञ्च मणिन्तथा । यश्च संस्थापयेद् भूमौ दरिद्रःसतजन्मसु ॥
शिवलिङ्गं शिलामर्त्यां यश्चाप्यति भूतले । शतमन्वन्तरं यावन् कृमिमक्षे स तिष्ठति ॥
सूक्तं मन्त्रं शिलातोयं पुष्पञ्च तुलसीदलम् । यश्चाप्यनि भूमौ च स तिष्ठेन्नरकं युगम् ॥
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं गैचनान्तथा । योमृद्वाप्ययेद् भूमौ स याति नरकं ध्रुवम् ॥

मुने चन्दनकाण्डे च कुशमूलकम् । सस्थाप्य भूमौ नरके चसेग्नन्वन्तरावधि ॥
 पुस्तकं यजस्रश्च भूमौ सस्थापयेत्तु यः । न भवेद्धिप्रयोनी च तस्य जन्मान्तरे जनिः ॥
 ब्रह्महत्यासप्त पापमिह वै लभते ध्रुवम् । अग्निमुक्तं यजमूरं पूज्यञ्च सर्ववर्णकैः ॥२१॥
 यद्ब्रह्महत्यानुपाभूमिर्क्षारेणतहि सिञ्चति । स याति तप्तमग्निञ्च संततः सर्वजन्मसु ॥२२॥
 भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति भयतभुव । जन्मान्तरेमहापापीसोऽङ्गहीनोभवेद् ध्रुवम् ॥
 भयत यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्त्तिता । वसुधेन यो ददाति वसुधा च वसुधरा ॥
 हरेर्गो च या ज्ञाना सा चोर्वी परिकीर्त्तिता । धरा धरित्रीधरणीसर्वेषांधरणात्तुया ॥
 इत्या चयागधरणात्क्षीणीक्षीणालयेचया । महालयेश्वर्ययातिश्चित्स्तेनप्रकीर्त्तिता ॥
 काण्यपी कथ्यपस्येयमचला स्थितिरूपतः । विश्वम्भरा तद्धरणाच्चानन्तानन्तरूपतः ॥

पृथ्वी पृथुककन्धात्वादृ चिस्तृत्त्वान्महामुने ॥ २८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारद-संवादे पृथिव्युपाख्यानं नाम
 नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

गङ्गोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानं धनीवसुमनोहरम् । गङ्गोपाख्यानमधुना घद वेदविदां वर ॥१॥
 भारतं भारतोशापादाज्ञातम् सुरेश्वरी । विष्णुश्चरुषा पत्मा स्वयं विष्णुश्चीमनी ॥२॥
 कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा । तत्कर्मधोतुमिच्छामिपापघ्नं पुण्यदंशुभम् ॥
 नागयण उवाच ।

राजराज्ञेभ्यः श्रीमान् सगरः सूर्यवंशजः । तस्य भाष्यां च वेदमौनैव्याचष्टेमनोहरैः ॥
 सत्यम्बुध्नः सत्येष्टः सत्यवान् सत्यभावनः । सत्यधर्मविचारणः परं सत्ययुगोद्भवः ॥

एकन्या चैकपुत्रो बभूव सुमनोहरः । असमञ्जा इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्द्धनः ॥६॥
 अन्या चाराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी । बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य च वरेण च ॥
 गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुपावसा । तद्द्रष्ट्वाचशिवंध्यात्वाररोदोच्चैःपुनःपुनः ॥
 शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण तन्सर्मापं जगाम ह । चकार संविभज्यैतन् पिण्डं पष्टिसहस्रधा ॥६॥
 सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महायलपराक्रमाः । श्रीपमध्याह्नमार्त्तण्डप्रभायुष्टकलेवराः ॥ १० ॥
 कपिलस्य कोपदृष्ट्या बभूवुर्मस्मसाच्च ते । राजा हरोद् तच्छ्रुत्वा जगाम मरणं शुचा ॥
 तपश्चकारासमञ्जा गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥
 दिल्लीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥
 अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१४॥
 भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधोः । वैष्णवो विष्णुमत्तश्च गुणवानजरामरः ॥
 तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणम् । ददर्श कृष्णं हृष्टस्यं सूर्यकोटिसमप्रमम् ॥१६॥
 द्विभुजं मुस्लीहस्तं किशोरंगोपवेशकम् । परमात्मानर्माशञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१७॥
 स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं विभुम् । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्युतम् ॥
 निर्द्वितं साक्षिरूपञ्च निर्गुणं प्रकृतैः वरम् । ईयद्भास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१९॥
 वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥

तुष्टाय दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः । लीलया च चरं प्राप्यवाञ्छितं चंशतारणम् ॥
 तत्राजगाम गङ्गा सा स्मरणात् परमात्मनः । तं प्रणम्यप्रतर्ष्योचतन्पुनःसंपुटाञ्जलिः ॥
 उवाच भगवांस्तत्र तां दृष्ट्वा सुमनोहराम् । कुर्वती स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

भारतं भारतीशापान् गच्छ शीघ्रं सुरेवरि । सगरस्यसुतान्सर्वान्पूतान्कुरुममाज्ञया ॥
 तन्स्पर्शायुना पूता यास्यन्तिमममन्दिरम् । विन्नतोदिव्यमूर्त्तिग्नेदिव्यस्यन्दनगामिनः
 मत्पार्शदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः । समुच्छिद्यकर्मभोगं कृतं जन्मनि जन्मनि ॥
 कौटिन्मार्जितं पापं भारते यत् कृतं नृणाम् । गङ्गायाःस्पर्शवातेनतत्रश्रुतिधूर्तोऽधुतम् ॥

स्पर्शनादर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः ।

मौपलक्षानमाने । सामान्यदिवसे नृणाम् । शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुती श्रुतम् ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

जन्मासः राजिन्नान्येवकामतोऽपि कृतानि च । तानिसर्वाणि नश्यन्ति मौपलक्षानतो नृणाम्

पुण्याहस्नातज पुण्य वेदा नैव वदन्ति च । केचिद्ब्रह्मन्ति ते देवि । फलमेव यथागमम् ॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदन्ति च । सामान्यदिवसस्नानसङ्कल्पं ध्रुगु सुन्दरि ॥

पुण्य दशगुणञ्चैव मौपलक्षानत परम् । तत्स्त्रिशन्गुण पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥३२॥

अमायाञ्चापि तन्तुल्यं द्विगुण दक्षिणायने । ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे ।

चातुर्मास्या पौर्णमास्यामन्तं पुण्यमेव च । अक्षयाद्याश्च तन्तुल्यं नैतद्वेदे निरूपितम् ॥

असंख्यपुण्यफलमेतैषु स्नानदानकम् । सामान्यदिवसस्नानात् ज्ञानाच्छतगुणं फलम् ॥

मन्वन्तराया देवेशि युगाद्यायां तथैव च । तथाप्यशोकाष्टम्याश्च नवम्याश्च तथा हरे ॥

ततोऽपि द्विगुण पुण्य नन्दाया तत्र दुर्लभे । दशहरादशम्याश्च युगयादिसमं फलम् ॥

नन्दासमञ्च वारण्या महत्पूर्व चतुर्गुणम् । ततश्चतुर्गुणं पुण्य द्विमहत्पूर्वके सति ॥३८॥

पुण्यकोटिगुण चैव सामान्यस्नानतो हि यत् । चन्द्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं तत्र ॥

पुण्योऽप्यर्द्धाद्ये काले तत्र शतगुणं फलम् । सर्वेषामेव सङ्करपो वैष्णवानां विपर्ययः ॥

फलसन्धानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः । मन्मोतिभक्तिकामास्ते सर्वदा सर्वकर्मसु ॥

गुरुत्रयत्रिष्णुमन्त्रो यस्य कर्णं प्रविश्यति । जीवन्मुक्तं वैष्णवन्तं वेदा सर्ववदन्ति च

पुराणाः शत पूर्यं पैतृरुश्च परं शतम् । मातामहस्य च शतं मातरं मातृमातरम् ॥५३॥

भगिनी भ्रातरश्चैव भागिनेयश्च मातुलम् । श्वशुरश्च श्वशुरश्चैव गुरुपत्नी गुरो सुतम् ॥

गुरुश्च ज्ञानदातारं मित्रश्च सहचारिणम् । भृत्यं शिष्यतयाचेटीप्रजा स्वाश्रमसन्निधौ ॥

उद्धरेदात्मना साङ्गं मन्त्रग्रहणमात्रत । मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥५६॥

तस्य स्वस्पर्शान् पूतं तीर्थञ्च भुवि भागतम् । तल्पेव पादरजसा सद्य पूतावसुन्धरा ॥

पादोदकपतनस्थानं तीर्थमेव भवेद् ध्रुवम् ॥ ४७ ॥

अयं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोर्गनित्रेदिनम् । वैष्णवाश्च न ग्राहन्ति त्रैपेयभोजिन सदा ॥

विष्णोर्विद्वेदिताश्च नित्यं ये भुञ्जन्ते तदा । पूतानि सर्वतीर्थानि तेषाश्च स्पर्शनादहो ॥

विष्णोः पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः । तेषां सन्दर्शनमात्रेण पूतञ्च भुवनत्रयम्
विष्णोः सुदर्शनं चक्रं शततं तांश्च रक्षति ॥ ५१ ॥

मद्गुणध्रुवणाद् ये च पुलकाङ्कितविग्रहाः । गद्गदाः साधुनेत्रास्तेनराश्च वैष्णवोत्तमाः ॥
पुत्रादपि पर स्नेहो मयि येषां निरन्तरम् । गृहाद्याश्चमयिष्यस्तास्तेनराश्च वैष्णवोत्तमाः ॥
आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं मत्तः सर्वं चराचरम् । सर्वेषामहमात्मेश इतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥
असंख्यकोटिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रलये मयिलीयन्तेचेतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥
तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम् । स्वेच्छामयं निर्गुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥५३॥
सर्वे प्राकृतिकामत्तःआविर्भूतास्तिरोहिताः । इतिज्ञानन्तियेदेवि ! तेनराश्च वैष्णवोत्तमाः ॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः । उवाच तं त्रिपथगा भक्तिमन्नात्मकन्धरा ॥

गङ्गोवाच ।

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीश्रापतः पुरा । तवाङ्गया च राजेन्द्र तपसा चैव साम्प्रतम् ॥
दास्यन्ति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च । तानिमैकेनजग्यन्तिदुपायंयदप्रभो ॥
कतिकाल परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते । कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णोः परमंपदम् ॥
ममन्यद्वाङ्मिठनं यद् यन् सर्वंजानासिसर्वंविन् । सर्वान्तरात्मनसर्वंजतदुपायंयदप्रभो ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तत्र सर्वं सुरेश्वरि । पतिस्ते द्दरूपोऽयं लवणोद्गीभविष्यति ॥
ममैवांशसमुद्रश्च त्वञ्च लक्ष्मीस्वरूपिणी । विदग्धायाविदग्धेनसङ्गमो गुणवान् भुवि ॥
यावत्स्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते । सौभाग्यं तव तास्येव लवणोदस्य सौरते
अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम् । वपं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥
नित्यं वार्षिधिना सार्द्धं करिष्यसिरहोरतिम् । त्वमेवरसिकादेवीरसिनेन्द्रेणसंयुता ॥
त्वां स्तोप्यन्ति च स्तोत्रेणभगीरथकृतेनच । भारतस्थानाःसर्वेपूजयिष्यन्तिभक्तिः ॥
कौधुमोक्तेनध्यानेनध्यात्यात्वात्वांपूजयिष्यति । यःस्तौ तिरणमेत्रिन्यंसोऽश्वमेधफलंलभेन्
गंगागंगेति यो द्रूयान् योजनानांशतैरपि । मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकांसगच्छति ॥
सहस्रपापिनां स्नाताद् यत्पापं ते भविष्यति । मद्भक्तैकदर्शनेन तदेव हि विनश्यति ॥७१

पापिनान्तु सहस्राणां शयस्पर्शेन यत्तव । मन्मन्त्रोपासककानात्तद्वच्च विलङ्घति ॥७२
 यत्र यत्र भवेत् गंगे मध्यामगुणकीर्त्तनम् । तत्रैव त्वमधिष्ठातं करिष्यस्यघमोचनात् ॥
 साह्य मरिद्धि ध्रष्टामि सम्यक्त्यादिभि शुभे । तत्तुनीर्धमवेत्सद्योयत्रमद्गुणकीर्त्तनम् ॥
 तत्रेणुस्यर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी । रेणुप्रमाणवर्षञ्च स वैकुण्ठे वसेद् ध्रुवम् ॥७५
 ज्ञानेन त्वयियेभक्तयामन्नामस्मृतिपूर्वकम् । समुत्सृजन्तिप्राणांश्चतेगच्छन्तिहरे पदम् ॥
 पार्श्वप्रवगास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम् । लयं प्राकृतिकंतेचद्रश्यन्तिचाप्यसंख्यकम् ॥
 मृतस्य बहुपुण्येन तत्रशब्दत्वयिविन्यसेत् । प्रयातिसचवैकुण्ठंयावदश्नास्थितिस्त्वयि ।
 कायन्वृह तत कृत्वाभोजयित्वास्वकर्मकम् । तस्मैद्दामिसारूप्यं करोमि तञ्चपार्थदम् ॥

अत्रानन्वाजलस्पर्शाद् यदि प्राणान् समुत्सृजेत् ।

तस्मै द्दामि सारूप्यं करोमि तञ्च पार्थदम् ॥ ८० ॥

अन्यत्रवासृजेत् प्राणास्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मैद्दामि सारूप्यमसख्यप्रलयंलयम् ।
 अन्यत्रयात्यजेत्प्राणानमन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मैद्दामिसारलोक्यंयावद्वैत्रह्यणी वयः ।
 तीर्थेऽप्यतीर्थमरणेविशेषो नास्तिरुद्धन । मन्मन्त्रोपासकानाञ्च नित्यंनैवेद्यमोजिनाम् ।
 पूत कर्त्तुं स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् । रत्नेन्द्रसारयानेन गोलोकं स प्रयाति च ॥
 मद्भक्तवान्प्रधा ये ये ते ते-पुण्यधियः शुभे । ते यांति रत्नयानेन गोलोकञ्च सुदुर्लभम् ॥
 यत्र तत्र मृता ये च ज्ञानाज्ञानेन वा सति ! । जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तसन्निधानत ।
 इत्युक्तवार्थाहर्मिन्नाञ्चतमुवाचभर्गीरथम् । स्तीर्हिगङ्गाभिर्मांभक्त्यापूजातुषितिसाम्प्रतम्
 भर्गीरथन्ता तुष्टाव पूजयामास भक्ति । कौशुमोक्तेन ध्यानेन स्तोत्रेण च पुन पुन ॥
 प्रणनाम च श्रीऋष्ण परमात्मानमीश्वरम् । भर्गीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्धानं चकार ॥

नागद उवाच ।

केन ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च । पूजाञ्जकार नृपतिर्बद चेद्विदां वर ॥ ६० ॥

श्रीनागायण उवाच ।

स्नात्वानिन्यत्रियाहृत्वाधृत्वार्षोतेचवाससी । सम्पूज्यदेवपद्वक्षश्चसंयतोभक्तिपूर्वकम् ।
 गणेशञ्चदिशश्च षड्विधेषुं शिवांशिराम । सम्पूज्य देवपद्वक्ष सोऽधिकारीचपूजने ।

गणेश विघ्ननाशाय निष्पापाय दिवाकरम् । वह्निं स्वशुद्धये विष्णुं मुक्तये पूजयेत्तरः ॥
 शिवज्ञानायज्ञानेन शिवाञ्च बुद्धिबुद्धये । सम्पूज्यैतद्भूमेन् प्राप्नो विपरीतमतोऽन्यथा ॥
 दयावनेन तद्धानेन शृणु नारद तत्पत । ध्यातञ्च कौथुमोक्तञ्च सर्वपापप्रणाशनम् ॥
 श्वेतवम्पकवर्णाभिः गङ्गां पापप्रणाशिताम् । वृष्णविग्रहसम्भूता कृष्णतुल्यापरांसतीम् ।
 घह्निगुह्यांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् । शरत्पूर्णेन्दुशतक्रभायुष्टकलेवराम् ॥ ६७ ॥

ईषदास्यप्रसन्नास्यां शश्वन्सुस्थिरयौवनाम् ।

नारायणप्रियां शान्तां सन्सौभाग्यसमन्विताम् ॥ ६८ ॥

विभ्रतौ कत्ररीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् । सिन्दूरविन्दुललितां सार्द्रं चन्दनविन्दुमिः ।
 कस्तूरीपत्रक गण्डे नाताच्चित्रसमन्विताम् । पञ्चविग्र्यदिनिन्दैकचार्वोष्टपुष्टमुत्तमम् ॥
 मुक्तापंक्तिप्रभायुष्टदन्तपंक्तिमनोहराम् । सुचारवक्रनयनां सकटाक्षमनोरमाम् ॥ १०१ ॥
 कठिनंश्रीफलाकारंस्तनयुग्मंसपत्रकम् । बृहच्छोणोसुकठितारंभ्मास्तम्भविनिन्दिताम् ।
 स्थलपद्मप्रभायुष्टपादपद्मयुगं वरम् । रत्नपाशकसंयुक्तं कुङ्कुमाक्षं सपावकम् ॥ १०३ ॥
 देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणाहणम् । सुरसिद्धमुनीन्द्रैश्च दत्ताभ्यसंयुतं सदा ॥ १०४ ॥
 तपस्विमौलिनिकरन्मरश्चेणीसंयुताम् । मुक्तिप्रदं मुमुक्षुणां कामिना स्वर्गभोगदम् ॥ १०५ ॥
 घरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकातराम् । श्रीविष्णोःपददात्रीञ्च भजे विष्णुपदींसतीम् ।
 इत्यनेनच ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम् । दत्त्वा संपूजयेद् ग्रहन्नुपहारांश्चपोडश
 आसनंपाशमर्ष्यञ्च स्नानायज्ञानुलेपनम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥
 चसत्तं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम् । मनोहरं सुतल्पञ्च देयान्येतानियोडश ॥ १०६ ॥
 दत्त्वाभक्त्याच प्रणमेत् संसृत्यसंपुटाञ्जलिः । संपूज्यैवं प्रकारेण सोऽश्वमेधफलंलभेत् ।
 स्तोत्रञ्चकौथुमोक्तञ्च संवादंविष्णुग्रहणोः । शृणुनारद घक्ष्यामि पापघ्नञ्चसुपुण्यदम् ॥

श्रीग्रहोवाच ।

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीवान्त जगत्प्रभो ।

विष्णोः विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥ ११२ ॥

ध्रीनारायण उवाच ।

शिवसंगितसंमुग्धशोठ्ठणाङ्गद्रोद्भवाम् । राधाङ्गद्रवसम्भूतां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥
 यज्ञन्मत्प्रेरादौच गोलोके रासमण्डले । सन्निधाने शङ्करस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥
 गोपगोपीभिराकीर्णेशुभे राधामहोत्सवे । कार्तिकीपूर्णिमाज्ञातां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः । समावृता या गोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 पष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्यं चतुर्गुणा । आवृता या वैकुण्ठं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥
 विशालक्षयोजना या ततो दैर्घ्यं चतुर्गुणा । आवृता ब्रह्मलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥
 विशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः । आवृता शिवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 पद्मयोजनविस्तीर्णा या दैर्घ्ये दशगुणा ततः । मन्दकिनी येन्द्रलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृता ध्रुवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये चपद्मगुणा ततः । आवृता चन्द्रलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 पष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः । आवृता सूर्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये चपद्मगुणा ततः । आवृता सत्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ।
 आवृता या तपोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ १२५ ॥
 सहस्रयोजना या च दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृता जनलोकं या तां गङ्गां प्र
 सहस्रयोजना यास्तु दैर्घ्ये सप्तगुणाततः । आवृतायाच कैलासं तां गङ्गां प्र
 पातालै यामो गवतीविस्तीर्णादशयोजना । ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रण पुनः पुनः ।
 कोशेरुमात्रविस्तीर्णा तत क्षीणानकुत्रचित् । क्षितौ चालकन्दोपातांगंगांप्रणमाम्यहम् ।
 सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रैतायाभिन्दुसन्निभा । ह्यपरे चन्द्रनाभा च तांगंगांप्रणमाम्यहम् ।
 जलप्रमा कर्मा या च नान्यत्रपृथिवीतले । स्वर्गे च निर्यक्षीरामा तां गंगांप्रणमाम्यहम् ।
 यस्याः प्रभायध्वानुलः पुराणे च श्रुती धृतः । या पुण्यदापापहर्त्रीतांगङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 यत्तोयकणिकास्पर्शः पापिनाञ्च पिनामह । ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जिनं इहेत् ।
 इत्येवं कथितं ब्रह्मन् गङ्गापदैकविंशतिम् । स्तोत्ररूपञ्च परमं पापघ्नं पुण्यवीजकम् ॥

नित्यं यो हि पठेद् भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम् ।

अश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥ १३५ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं भाष्यार्हाहीनोलभेत्प्रियाम् । रोगान्मुच्येत रोगी च यद्भो मुच्येत बन्धनात्
अस्पृष्टकीर्त्तिः सुशाम्खी भवति रण्डितः । यः पठेत् प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम्

शुभं भवेत्तु दुःस्वप्नं गङ्गालानफलं लभेत् ॥ १३८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

नारायण उवाच ।

भगीरथोऽनयास्तुत्या स्तुत्या गङ्गाञ्च नाद । जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाञ्च सागराः ॥

त्रैकुण्डं ते ययुस्सूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना । भगीरथेन सा नीता तेन भगीरथी स्मृता ॥

इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्याननमुत्तमम् । पुण्यदंमोक्षदं सारं किं भूयश्चोतुमिच्छसि ।

नारद उवाच ।

शिवसद्गीतमंगुधे श्रीकृष्णे द्रवतां गते । द्रवताञ्च गतायाञ्च राधायां किं बभूव ह ॥

स्थम्भाञ्च जना ये ये ते च किं चक्रुरत्तमम् । एतन् सर्वं सुविस्तीर्णं कृत्यावकुमिहार्हसि ।

देवेन्द्रः नारायण उवाच ।

तरस्त्रिमूर्तिपुर्णिमायाञ्च राधायाः सुमहोत्सवे । कृष्णः संपूज्यतां राधामुवासरासमण्डले ।

घरां घरेण्यादीनां तान्तु संपूज्य हृष्टमानसाः । ऊचुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः सनकादयः ॥

इत्यनेन च ध्य कृष्णसंगीतञ्च सरस्वती । जगौ सुन्दरतानेन घीणया च मनोहरम् ॥ १४६ ॥

आसनं पादादी तस्यै रत्नेन्द्रसारहारकम् । शिरोमणीन्द्रसारञ्च सर्वैर्ब्रह्माण्डदुर्लभम् ॥

वसनं भूषणस्तुभरत्नञ्च सर्वैरत्नान् परं धरम् । धर्मव्यरत्नानिर्माणहारसारञ्च राधिका ॥

नारायणञ्च भगवान् वनमालां मनोहरम् । अमूल्यरत्नानिर्माणं लक्ष्मीर्मकरकुण्डलम् ॥

विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी । दुर्गा नारायणीशानी विष्णुमर्त्ति सुदुर्लभा ॥

धर्मवृद्धिञ्च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे । वह्निरुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च मणिनूपुरम् ॥ १५१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः । जगौ श्रीकृष्णसंगीतं रासौह्याससमन्वितम् ॥

मूर्च्छां प्रापुः सुराः सर्वे चिरपुच्छिका यथा । क्षणेन चेतनां प्राप्य ददृशू रासमण्डलम्

खलंसं जलाकीर्णं राधाकृष्णविहीनरुम् । अत्युच्चैररुदुः सर्वे गोपगोप्यः सुराद्विजाः ॥

ध्यानेन ब्रह्मा दुग्ध सर्पमेवममीप्सितम् । गतश्च राघया सार्द्धं धीर्गृष्णोद्भवतामिति ॥
 ततो ब्रह्माद्य सव तुष्टु पस्मेश्वरम् । स्वमूर्त्तिर्दशय विभो घाञ्छित वस्मेव न १७५
 एतस्मिन्नन्तरतत्र याग बभूवाशरीरिणा । तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्ता मधुरान्विताम् ॥
 सयात्माहमिय शक्तिर्मत्तानुग्रहविप्रहा । ममाप्यस्याश्च ते द्वा द्वेहेन च किमावयो ॥
 मनवा मानवा सव मुनयश्चैव वैष्णवा । मन्मन्त्रपूता मा द्रुपुमागमिष्यन्ति मत्पदम् ॥
 मूर्त्ति द्रष्टुं सुव्यग्रा यूय यदि सुरेण्वरा । करोति शम्भुस्तत्रैव मदीय वान्स्पालनम् ।
 स्वय विधाता त्व ब्रह्मजाज्ञा कुर जग्द्गुरो । यत्तुं शास्त्रविशेषञ्च वेदाङ्ग सुमनोहरम् ।
 अपूर्वमन्त्रानिक्वै सधाभीष्टफलप्रदै । स्तोत्रैश्च ऋचैः शानैर्युत पूजाविधिभ्रमै ॥१६२
 मन्मन्त्रकवचस्तोत्र वृत्वा यत्नेन गोपय । भवन्तिचिमुखा येन जनाना तन् करिष्यति ।
 सहस्रेषुशतेष्वेकोमन्मन्त्रोपासको भवेत् । ते ते जना मन्त्रपूताध्यागमिष्यन्ति मत्पदम् ॥
 अन्यथाचमविष्यन्ति सर्वे गोलोकवासिन । निष्फलमविता सर्पं ब्रह्माण्डञ्चैवद्रक्षण ॥
 जनापञ्चप्रकाराश्चयुक्ताः ऋणुंवेभवे । पृथिवावासिन केचिन् केचिन्स्यर्गनिवासिन ॥
 अधोनिवासिन केचिन्ऋद्धलोकनिवासिन । केचिद्वावैष्णवा केचिन्ममलोकनिवासिन ।
 इद वक्तु महादेव करोतु देवससदि । प्रतिज्ञा सुदृढा सद्यस्ततो मूर्त्तिञ्च द्रश्यसि ॥
 इत्येषमुक्त्वा गगते विहराम सनातन । तद् दृष्ट्वा च जगन्नाथस्तमुवाच शिर मुदा १६६
 ब्रह्मणोवचनश्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिना चर । गङ्गातोष करे धृत्या स्वोक्ताञ्च चकारस ॥
 सयुक्तविष्णुमायायैर्मन्त्रायै शास्त्रमुत्तमम् । वेदसा करिष्यामि वृष्णाज्ञापालनायच ॥
 गङ्गातोषमुपस्पृश्य मिथ्या यदि घट्टंजन । सयाति कालसूत्रञ्च यावद्द्वै ब्रह्मणो वय ॥
 इत्युक्ते शङ्करे ब्रह्मन् गोलोके चरससदि । आचिरंभूव धीर्गृष्णो राघया सह तन्पत् ॥१७
 तेत दृष्ट्वा च सहस्रासस्तय पुरपोत्तमम् । परमानन्दपूर्णांश्च चन्द्रो पुनस्तसयम् ॥
 कालेन शम्भुर्भवान् शास्त्रदीप चकारस । इत्येव कथित सर्पं सुगोप्यञ्च सुदुर्लभम् ।
 सा एव द्रवरुपाया गङ्गा गोलोकसम्भवा । राधावृष्णाङ्गसम्भूता भक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥
 स्थानेस्थानेस्थापितासा वृष्णेन परमात्मना । वृष्णस्वरूपा परमा सर्पब्रह्माण्डपूजिता ॥
 इति धीर्ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिकण्डे नारायणनारदसवादे गङ्गोपाख्यान
 नाम दशमोऽध्याय ।

एकादशोऽध्यायः

गङ्गाव्यमोहितं कृष्ण प्रति गवाया उपालम्भः ।

नारद उवाच ।

कलेः पञ्चमहत्त्वे ना सन्तीति सुरेश्वरी । क्व गता सा महामाया तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।

नारायण उवाच ।

भारत भारतीशापान् समागत्येश्वरैश्चया । जगाम तच्च वैकुण्ठं शापाले पुनरेव सा ॥

भारत भारती त्यक्त्वा जगाम त हरेः पदम् । पद्मावती चशारन्ते गंगायज्ञैव नारद ॥

गगा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतामिन्द्रा प्रिया हरेः ।

तुलसीचहिता प्रह्लादश्चैव कीर्तिता श्रुतौ ॥ ४ ॥

नारद उवाच ।

यस्य ना मुनिभ्रेष्ट गगा नारायणप्रिया । अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

पुण्यसूच गोलोके सा गगा इवन्पिपी । गवायां गान्धर्वसन्भूता तदशा तस्वरूपिणी ।

द्रवाग्निप्रवृत्तया या स्वेनाप्रतिता भुवि । त्वयैवतस्तन्पशा खामरपामूषिता ॥ ७ ॥

शङ्ख गण्डद्वयसन्निता मुनतोहरा । तत्काञ्चनपर्णामा शतचन्द्रस्तमप्रभा ॥ ८ ॥

स्निग्धप्रभातिमुक्त्विथा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी । सुर्षनकटिनशोर्णा मुनितन्मयुगं धरम् ॥

पिनोन्नत मुकटितं स्तनयुग्मं मुवर्तुलम् । सुचारुनेत्रयुगलं सकटाञ्जं सुसङ्घिम् ॥१०॥

बद्धिर्गं करीनारं मालर्तमान्धनंयुतम् । सिन्धूरविन्दुललितं सार्द्धं चन्द्रनविन्दुभिः ॥

कम्पूरीपत्रिकायुलं गण्डयुग्मं मनोहरम् । बद्धककुमुभाकारमपरोष्ठञ्च सुन्दरम् ॥१२॥

पङ्कडाडिन्वरीजामरन्वयंकिस्तमुज्ज्वलम् । वासुती बद्धियुद्धे च नीरीयुक्तेवमिन्वरी ॥

सा सकामा कृष्णपार्श्वे सनुवास्त सन्निता ।

वासुता मुदभाष्याद्य सोवनाभ्या विभोर्भुवम् ।

निनेरहिताभ्याञ्च पिप्लीा सततं मुदा ॥ १४ ॥

प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसङ्गमलालसा । मूर्च्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा ॥ १५ ॥
 एतस्मिन्नन्तरं तत्र विद्यमाना च राधिका । गोपीत्रिशत्कोटियुक्ता कोटिचन्द्रसमप्रभा
 कोपेन रक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना । श्वेतचम्पकवर्णाभा गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥१७॥

अमूल्यरत्ननिर्माणनानामरणभूषिता ॥ १८ ॥

अमूल्यखचितं हारममूल्यं बहिर्शौचकम् । पीतामवस्त्रयुगलं नीचीयुक्तञ्च विभ्रती ॥१९॥
 स्थलपद्मप्रभायुष्टकोमलञ्च सुरञ्जितम् । कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यस्यन्ती पदाम्बुजम् ॥
 रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानाद्वरुहा च । सेव्यमाना च सर्वाभि श्वेतचामरवायुना ॥२१॥
 फस्तूरोविन्दुभिर्पुक्तं चन्दनेन्दुसमन्वितम् । दीप्तदीपप्रभाकारं सिन्दूरविन्दुसुन्दरम् ॥
 दधती भालमध्ये च सीमन्ताधस्तथोज्ज्वले । पारिजातप्रसूनानां मणियुक्तं सुवङ्कितम्
 सुचारकवरीभारं कम्पयन्ती च कम्पिता । सुचारतासासंयुक्तमोष्टं कम्पयती रुपा ॥
 गत्वोवाप्त कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने वरे । सखीनाञ्च सप्रहृद्य परिपूर्णा विभोः सभा
 ताञ्च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ कृष्णः सादरपूर्वकम् । संभाष्य मधुरभाषैः सस्मितध्वससंभ्रमः
 प्रणेशुरभिसन्नस्ता गोपा नम्रात्मकन्धरा । तुष्ट्युक्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेश्वरः ॥
 उत्थाय गङ्गा सहसा सम्भाषाञ्च चकार सा । कुशलं परिच्छिन्नं भीतातिविनयेन च ॥
 नम्रभावस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठीष्ठनालुका । ध्यानेन शरणापन्तार्थीकृष्णचरणाभ्युजे
 तदधुदुपप्रेरितः कृष्णो भीतायै चामयंददौ । वभूवस्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च
 ऊर्ध्वसिंहासनम्याञ्चराधां गङ्गाददर्श सा । सुस्निग्धां सुपद्म्याञ्च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा
 असांग्यब्रह्मणामाद्यां चादिसृष्टिं सनातनीम् । यथा द्वादशवर्षीयां कन्याञ्च नवयौवनाम्
 विश्ववृन्दे निरुपमा रूपेण च गुणेन च । शान्ताकान्तामनन्तान्तामाद्यन्तरहितां सतीम्

शुभां शुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम् ।

सौन्दर्यं सुन्दरीश्रेष्ठां सर्वासु सुन्दरीषु च ॥ ३४ ॥

कृष्णाद्वाङ्गां कृष्णसमातिजसावयसात्विषा । पूजिताञ्चमहालक्ष्मी महालक्ष्मीश्वरेण च
 प्रच्छाद्यमानां प्रभया सभार्मीशास्य सुप्रभाम् । सर्षीदत्तं भुक्तवतीं ताम्बूलमन्यदुर्लभम्
 अजन्यां सर्वजननीधन्यांमान्याञ्च मानिनीम् । कृष्णप्राणाधिदेवीञ्च प्राणप्रियतमाम्

दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी । निमेपरहिताभ्याञ्च लोचनाभ्यां पपीच ताम्
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा । वाचा मधुरस्याशान्ता विनीता सस्मिता मुने
राधिकोवाच ।

केयं प्राणेशकल्याणीसस्मितात्वन्मुपाम्युजम् । पश्यन्ती सतनंपार्श्वे सकामारक्तलोचना
मूच्छां प्राप्नोतिरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा । वख्रेण मुग्धमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः
त्वञ्चापि मां सन्निरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा ।

मयि जीयति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ॥ ४२ ॥

त्वमेव चैवं दुर्वृत्तं च वांधारं करोषि च । क्षमां करोमिप्रेम्णा च स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा
संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लम्पट । अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति प्रजेश्वर
दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चन्दनकानने । क्षमा कृता मया पूर्वं सपीनां वचनादहो ॥
त्वया मच्छन्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा । देहं सन्त्यज्य विरजा नदीरूपा बभूव सा
कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । अद्यापि विद्यमानासातव सत्कीर्तिरूपिणी
गृहं मयि गतायाञ्च पुनर्गत्वा तदन्तिकम् । उच्चैर्रोसीर्विरजे विरजेति च संस्मरन् ॥

तदा तोयान् समुत्थाय सा योगान् सिद्धयोगिनी ।

सालङ्कारा मूर्त्तिमती ददां तुभ्यश्च दर्शनम् ॥ ४६ ॥

ततस्ताञ्च समाश्लिष्य वीर्याधानं कृतं त्वया । तनो बभूवुस्तस्याञ्च समुद्राः सप्तपथ च
दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने । सद्यो मच्छन्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया
शोभादेहं परित्यज्य जगाम चन्द्रमण्डलम् । ततस्तस्याः शरीरञ्च स्निग्धं तेजो बभूव ह
संविमज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता । रत्नाय किञ्चिन् स्वर्णाय किञ्चिन्मणिवराय च
किञ्चिन् स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किञ्चिद्रात्रे च किञ्चन ।

किञ्चिन् प्रहृष्टवस्त्रेभ्यो रौप्येभ्यश्चापि किञ्चन ॥ ५३ ॥

किञ्चिच्चन्दनपङ्केभ्यस्तोयेभ्यश्चापि किञ्चन । किञ्चिन्किशालयेभ्यश्चपुष्पेभ्यश्चापि किञ्चन
किञ्चिन् फलेभ्यः शस्येभ्यः सुपुष्केभ्यश्च किञ्चन । नृपदैवगृहेभ्यश्च संसृतेभ्यश्च किञ्चन
दृष्टस्त्वं प्रमया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने । सद्यो मच्छन्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया

प्रभादेह परित्यज्य नगाम् स्रग्भ्रमण्डलम् । ततस्तस्या शरीरञ्च तीक्ष्ण तेजो बभूव ह्यं
 सविभय त्वया न्त प्रेम्णा च रदता पुग । विमृज्य चक्षुषोर्दत्त लज्जया सद्भयेन च
 हुताशनाय किञ्चिन्नपेभ्यश्चापि किञ्चन । किञ्चिन्पुण्यसप्रेभ्यो देवेभ्यश्चापि किञ्चन
 किञ्चिद्दम्युगणभ्यश्च नागेभ्यश्चापि किञ्चन । ब्राह्मणभ्यो मुनिभ्यश्चतपसिभ्यश्चकिञ्चन
 स्त्राभ्यर्त्ताभाष्ययुक्तस्योयशस्त्रिभ्यश्चकिञ्चन । तच्चत्त्वावसर्गेभ्य पूर्वं रोदितुमुद्यत
 शान्त्या गोप्या युतस्त्वञ्च दृणोऽत्र रासमण्डले ।

वसन्ते पुष्पशायाया माययाञ्चन्दनोहित ॥ ६३ ॥

गन्धप्रदायैतन्त्र रत्ननिमाणमन्दिरे । रत्नभूषणभूषाद्वयो रत्नभूषितया सह ॥ ६२ ॥
 त्वया न्तञ्च नाम्भूत् भुक्तवत्यामुगम्य च । तथा न्तञ्चताम्भूत्भुक्तवान् बपुरा विभो ॥
 सया मन्त्र स्मारेण निरोघातस्त चया । शान्तिर्देहपरित्यज्यमियालीनात्त्वयिप्रभो ॥
 ततस्तस्या शरीरञ्च गुणश्रेष्ठ बभूव ह । सविभय त्वया दत्त प्रम्णा च स्मृता पुग ॥
 विप्रेत्रिपयिणेकिञ्चिन्नसत्त्वरूपायत्रिणवे । शुद्धसत्त्वरूपपैकिञ्चिद्दम्यैपुराविभो ॥
 त्वन्मन्त्रापासकेभ्यश्च वैणवेभ्यश्च किञ्चन । तपस्त्रिभ्योऽपिदेवेभ्य पण्डितभ्यश्चकिञ्चन ॥
 मया पूजञ्च त्व दृणा गोप्या च क्षमयासह । सुवेशयुक्तोमाययाञ्चन्दनमयुत ॥
 रत्नभूषितया गन्धप्रन्दनोहितया तथा । सुखेन मन्त्रितस्तपे पुष्पचन्दनयुते ॥७१॥
 त्रिणोऽभृतिश्रया सय सुखेन नवनगमान् । मया प्रोत्थितसाचमयाश्चस्मरणपुर ॥
 गृहात् पातस्त्र ते सुरा च मनोहरा । वनमाया फीम्तुभञ्चाप्यस्य रत्नकुण्डलम् ॥
 पश्चान् प्रदत्तप्रेम्णात्रसत्यानात्र जलदहे । त्वज्यात्तण्डण इभूद्दयाविप्रमरान् प्रभो ॥
 श्रमा देह परित्यज्य त्वज्या पृथिवीं गता । ततस्तस्या शरीरञ्च गुणश्रेष्ठ बभूव ह ॥७०॥
 सविभय त्वया न्त प्रम्णा चरदतापुरा । किञ्चिदन्त्रिणवेवैणवेभ्यश्च किञ्चन ॥
 धर्मिष्ठभ्यश्च धमाय दुर्गेभ्यश्चकिञ्चन । तपस्त्रिभ्योऽपिदेवेभ्य पण्डितभ्यश्चकिञ्चन ॥
 एतन्न वयित सय किं भूय श्रौतुमिच्छसि । त्वत्गुणञ्च स्तुतं जानामिचापप्रभो ॥
 इयेवमुक्त्या सा गद्या रत्नपट्टनगेरता । गगा वक्तुसमारभेत्प्रस्थात्तज्जितासनीम् ॥
 गगा र्हम्य विनाय योगेन सिद्धयोगिनी ।

तिरोभूय समामध्यान् स्वजलंप्रविवेश सा ॥ ८० ॥

राधायोगेनविज्ञायसर्वत्रावस्थिताञ्चताम् । पानं कर्तुं समारेभेगण्ड्यात्सिद्धयोगिनी ॥
 गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी । श्रीकृष्णचरणाम्भोजे विवेश शरणं ययौ ॥
 गोलोकञ्चैव वैकुण्ठं ब्रह्मलोकैकैकं तथा । ददर्श राधासर्वत्रनैवगङ्गां ददर्श सा ॥८३॥
 सर्वतो जलसून्यञ्च शुकपङ्कजगोलरुम् । जलजन्तुसमूहैश्चैवमृतदेहैः समन्वितम् ॥८४॥
 ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मैन्देन्दुदियाकराः । मनवो मानवाः सर्वे देवाःसिद्धास्तपस्विनः ॥
 गोलोकञ्चसमाजगमु शुककण्ठीष्टनालुकाः । सर्वे प्रणेतुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेःपरम् ॥
 वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम् । वरेशञ्च वरार्हञ्च सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥ ८७ ॥
 निरीहञ्च निराकारं निर्लितञ्च निराश्रयम् । निर्गुणञ्च निरुत्साहं निर्युहञ्च निरञ्जनम् ॥
 स्वेच्छामयञ्च साकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यसन्धं सन्देशं साक्षिण्यं सनातनम् ॥
 परं परेशं परमं परमान्ननमीश्वरम् । प्रणम्य तुष्टुः सर्वे भक्तिनघ्नान्मकन्धराः ॥९०॥
 सगङ्गादाः साधुनेत्राः पुलकाञ्जितविग्रहाः । सर्वे मंस्त्य सर्वेशं भगवन्तं परं हरिम् ॥
 ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् । अमल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासतस्थितम् ॥९२॥
 मेय्यमानञ्च गोपालैः श्वेतचामरवायुना । गोपालिकान्त्यगीतं पश्यन्तं सस्मितंमुदा ॥
 परिणो व्यावृत्तं शश्वद्वोपैश्च शतकोटिभिः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥९४॥
 रत्नाननीरदृश्यामं किशोरं पीतवाससम् । यथाडादशरथीयपालं गोपालरूपिणम् ॥९५॥
 कोटिचन्द्रप्रभायुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् । स्वतेजसा परिवृत्त मुसादृश्यं मनोहरम् ॥९६॥
 कोटिकन्दर्पसौन्दर्य्यर्लालालापण्यधामरुम् । दृश्यमानञ्चगोर्षाभिःसम्मिताभिश्चसन्तनम्
 भूरणैर्भूषिताभिश्च रत्नेन्द्रसारनिर्मितैः । पियन्तीभिर्लाञ्छिताभ्यां मुखचन्द्रं प्रभोर्मुदा ॥
 राणाधिकप्रियतमाराधायक्ष्म्यलम्पितम् । तथा प्रदत्तं ताम्बूलंभुक्तजन्तुमुद्यासितम् ॥

परिपूर्णतमं रासे दृष्टुः सर्वतः सुराः ॥९६॥

मुनयो मानवाः सिद्धास्तपसा च तपस्विनः । प्रहृष्टमानसाः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम्
 परम्परं समालोच्य ते समृधुश्चतुर्मुखम् । निवेदितुं जगन्नाथं स्वामिप्रायमभीप्सितम् ॥
 ब्रह्मा तद्वचनं ध्रुव्या विष्णुं कृष्णस्यदक्षिणे । वामतोयामदेवञ्चजगामकृष्णसन्निधिम् ॥

परमानन्दपुच्छं परानन्दरूपकम् । सर्वं कृष्णमयं घाता ददर्श रत्नमण्डले ॥१०२॥

सर्वं सनातवेशं सनातात्मसंस्थितम् ॥१०३॥

द्विभुजं मुक्तोदन्त्यममालाविभूषितम् । नमूःपुच्छचूडं कौस्तुभेन विराजितम् ॥१०४॥

अर्धवक्रमर्धवक्षं सुन्दरं शान्तविप्रदम् । गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विवा ॥१०५॥

घासता यस्ताइत्या मूर्ध्यां मद्भिन्ना सनम् । परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैर्ध्वज्यतमन्वितम् ॥

क नेत्र्य संशक क वा दृष्ट्वा निर्दुःखज्ञानः । क्षयतेजस्वम्पञ्च रूपराशियुतं क्षणम् ॥

एकमेव क्षणं कृष्णं राधया सहितं परम् । प्रत्येकालनतंस्यञ्च तदा च सहितं क्षणम् ॥

राधावपधरं कृष्णं कृष्णरूपकलत्रकम् । किं ह्यस्मिन्पञ्च पुंरुपं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥

हतवक्षस्यञ्च धीकृष्णं घाता ध्यातेन चेतता । अकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा ॥

तत स चञ्चुरभ्यां पुनश्च तदनुदया । ददर्श कृष्णमेकञ्च राधावसंस्थितस्थितम् ॥

स्यराशौ परित्वेन गोपीमण्डलमण्डितम् । पुनः प्रणेमुत्तं दृष्ट्वा तुष्टुपुष्टं पुनश्च ते ॥

विनाय नदनिन्नाय तानुवाच सुरेश्वरः । सर्वान्मा सर्वयज्ञेशः सर्वेशः सर्वभावनः ॥११४॥

धीमगवानुवाच ।

आगच्छ कुमाल ब्रह्मज्ञागच्छ कमलापते । इहागच्छ महादेव शश्वन् कुमोत्सस्तुवः ॥

आगताः स्यमदानागागान्दानवनकारणात् । गङ्गामिन्दरणात्मोडे भयेन शरपंगला ॥११६॥

राधेनां पानुमिच्छन्तां दृष्ट्वा भवसन्निधानतः । दाह्यमानांवाहिकृत्वापूर्यं कुस्तेनिर्नयाम् ॥

धोहृष्णस्यवधुन्वातस्मितः कमलोद्भवः । तुष्टावसरायध्यान्ताराधाधोहृष्णपूजितम् ॥

वक्रवैद्यतुर्निः संसृज् मन्दिनप्रान्नकन्धः । घाता चतूर्णां वेदानानुवाचचतुरानन ॥

ब्रह्मोवाच ।

गंगा त्वद्भुक्तमूना प्रमोक्ष शसमण्डले । श्वरूपा च साजातिमुग्धयाशुस्वरात् ॥

कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वद्वक्त्र्यासदृशाप्रिया । तन्मन्त्रप्रमद्वत्वाकरोतुतदपूजनम् ॥

मन्दिप्यति पतिम्कल्पवैकुण्ठेच चतुर्भुजः । भूमीपाः कटोपाधे हरजोदक्षवार्पिणः ॥

गोलोकम्यावयासयासर्वत्रस्थानघातिने । तदाभिकान्त्रदेपेशिसर्वदावतशान्तता ॥

ब्रह्मो एवमं धुन्वा स्वीकार च सम्भिता । घहिरंभूव साह्यन्पादागुष्टनसाधनः ॥

तत्रैव संवृता शान्ता तस्थौ तेषाञ्च मध्यतः । उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥
 तत्तोयं ब्रह्मणाकिञ्चिन्स्थापितञ्चकमण्डलौ । किञ्चिद्धारशिरसिचन्द्रार्द्धचन्द्रशेखरः ॥
 गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः । तत्स्तोत्रं कवचंपूजाविधानं ध्यानमेव च ॥
 सर्वं तन् सामवेदोक्तं पुरश्चर्य्याक्रमं तथा । गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सती ॥
 लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तुलसी विश्वपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रोऽप्यपितोमुने ॥
 अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणंसमुवाचह । सर्वकालस्यवृत्तान्तं दुर्बोध्यमविपश्चिताम्
 श्रीकृष्ण उवाच ।

गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर । शृणुकालस्यवृत्तान्तं यदतीतं निशामय ॥
 यूयञ्च येऽन्यदेवाश्च मुनयो मनवस्तथा । सिद्धास्तपस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः ॥
 ते ते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविर्जिते । जलप्लुतं सर्वविश्वमागतं प्राकृते लये ॥
 ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते लीना अधुना मयि । वैकुण्ठञ्चविनासर्वसजलंपश्यपद्मज ॥
 गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम् । सप्रह्लाण्डं विरचय पश्चाद्गङ्गां च यास्यति ॥
 एवमन्येषु विश्वेषु सृष्ट्वा ब्रह्मादिकं पुनः । करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रंसुरैःसह ॥
 मच्चक्षुषोर्निर्मेपेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्तिचत्रेधसः ॥
 इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरं मुने । देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चकुरेव प्रयत्नतः ॥
 गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके । ब्रह्मलोकेतथान्यत्रयत्रतत्रपुरा स्थिता ॥
 तत्रैव सा गता गङ्गा चाज्ञयापरमात्मनः । निर्गताविष्णुपादाब्जान्तेनविष्णुपदीस्मृता ॥

इत्येवं कथितं सर्वं गंगोपाख्यानमुत्तमम् ।

सुरार्द्रं मोक्षार्द्रं सारं किंभूय.श्रोतुमिच्छसि ॥ १४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद संवादे गंगोपाख्याने

एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः

गङ्गाया विवाहः ।

नारद उवाच ।

लक्ष्मीं सम्पत्तौ गंगा तुन्दरी लोकपावनी । एता नारायणस्यैव चतन्त्रश्चप्रियाइति ।
गंगा जगाम वैकुण्ठमिदमेव ध्रुवं भया । कथं सा तस्य पत्नी च बभूवेति न च ध्रुवम्

नारायण उवाच ।

गंगा जगाम वैकुण्ठं तत्रपश्चाज्जगताविधिः । गत्वोवाचतयासाङ्गप्रणम्यजगदीश्वरम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

राधाहृणांगसम्भूता या देवी त्र्यम्बपिणी । तदधिष्ठातृदेवोयं रूपेणा प्रतिमा भुवि ॥४॥
नपर्यायनसम्पन्ना मुशीला मुन्दरी घरा । शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहृद्कारवर्जिता ॥५॥
यदगसम्भवा नान्य वृणोतीयञ्च तं चिता । तत्रापि मानिनीराधा महानेजस्विनी घरा ।
समुपता पातुमिमा भीतैश्च बुद्धिपूर्वकम् । विवेश चरणाम्मोजे कृष्णस्य परमात्मनः ॥
सर्वं विशुष्क गोलोकं दृशहमगमन्तदा । गोलोकं यत्र कृष्णश्च सर्वव्रतान्तप्राप्तये ॥

सर्वान्तगन्ता सर्वं नो ज्ञान्वामिप्राप्तमेव च ।

बहिश्चकार गङ्गाञ्च पादांगुष्ठनग्राग्रतः ॥ ६ ॥

दत्त्वाप्तै राधिकामन्त्र पूषयित्वा च गोलकरूप । संप्रणम्य च रावेशगृह्णात्वानागमंविभो
गान्धर्वेण विवाहेन गृह्णाणैमांसुरेश्वरीम् । सुरेश्वरस्त्वं रसिक रसिकां स्वभावन ॥

पुं रत्नं पुंसु देवेषु स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियंस्तती ।

विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ १० ॥

उपस्थिताञ्च यः कन्यां न गृह्णातिमदेन च । तं निहायमहालक्ष्मींश्लेषाति न संशयः ।

यो भवेत् पण्डितः सोऽपि प्रकृतिं नाचमन्यते ।

सर्वं प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः ॥ १४ ॥

स्वमेव भगवानायो निर्गुणः प्रकृते परः । अर्द्धाङ्गो द्विभुजः शृणोऽप्यर्द्धांगेन चतुर्भुज

कृष्णवामांशसम्भृता बभूवराधिका पुरा । दक्षिणांशास्वर्यंसाच वामांशा कमला यथा
तेन त्वां सा वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसम्भवा । एकांगञ्चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरुषः ।

इत्येवमुक्त्वा धाता च तां समर्प्य जगाम सः ।

गान्धर्वेण विवाहेन ता जग्राह हरिः स्वयम् ॥ १८ ॥

शय्यां रतिकरुं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । रमे रमापतिस्तत्र गंगया सहितोमुद्रा ।

गां पृथ्वीञ्च गता यस्मान् स्वस्थानं पुनरागता ।

निर्गता विष्णुपादाञ्च गङ्गा विष्णुपत्नी स्मृता ॥ २० ॥

मूर्च्छां सम्प्राप सा देवी नवलगममात्रतः । गसिका मुखसम्भोगाद्रसिकेऽवसरसंयुता
तद्दृष्ट्वा दुःखिता चार्णा सा पद्मेर्षाविर्वर्जिता । नित्यमीर्ष्यतितांवाष्णीनचगङ्गानरस्वती

गङ्गया सहितस्यैव तिम्रो भार्या रमापतेः । सार्द्धं तुलस्या पश्चाच्च चतकस्तां बभूविरं

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदपंचादे गङ्गोपाख्यानं नाम

द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः

तुलस्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायणप्रिया सार्द्धा कथं सा च बभूव ह । तुलसी कुत्रसम्भृताकावासापूर्वजन्मनि ॥

कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्यातपस्विना । वेनवातपसासाचसंप्रापप्रकृतेः परम् ।

निर्विकल्पं निरीहञ्च सर्वसाक्षिन्ब्रह्मरूपम् । नारायणं परं ब्रह्म परमात्मनमीश्वरम् ॥३॥

सर्वाराध्यञ्च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम् । सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम् ॥४॥

कथमेतादृशी देवी वृक्षन्धं समवाप ह । कथं साप्यसुरग्रन्ता संबभूव तपस्विनी ॥ ५ ॥

सन्दिग्धं मे मनो लोलं प्रेरयेन्मां मुहुर्महुः । छेत्तुमर्हसि सन्देहं सर्वसन्देहमञ्जन ॥ ६ ॥

नारायण उवाच ।

मनुश्चदशसावर्णि पुण्यवान्वैष्णवःशुचिः । यशस्वी कीर्त्तिमांश्चैवविष्णोरंशसमुद्भवः ॥
 तत्पुत्रोधर्मसावर्णिर्धर्मिष्ठोवैष्णवःशुचिः । तन्पुत्रोविष्णुसावर्णिर्वैष्णवश्चजितेन्द्रियः ।
 तन्पुत्रो देवसावर्णिः विष्णुव्रतपरायणः । तन्पुत्रोराजसावर्णिः महाविष्णुपरायणः ॥
 वृषध्वश्च तन्पुत्रो वृषध्वजपरायणः । यस्याथमे स्वयं शम्भुरासीद्द्वैवयुगत्रयम् ॥१०॥
 पुत्रादपि परस्नेहो नृपे तस्मिन् शिवस्य च । न च नारायणंनेनेनवलक्ष्मींसरस्वतीम् ॥
 पूजाश्च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः । भद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तोवभञ्ज ह ॥
 माये सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः । यत्रश्च विष्णुपूजाश्चनिनिन्द न चकार सः ॥
 न कोऽपि देवो भूपेन्द्रं शशाप शिवकारणात् । भ्रष्टधर्मैव भूपेति शशाप तं दिवाकरः ॥
 शूलं गृहीत्वा त सूर्यं दधार शङ्करः स्वयम् । पित्रा साद्धं दिनेशश्चब्रह्माणंशरण्ययी ॥
 शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययी क्रुधा । ब्रह्मा सूर्यं पुरस्सृत्य वैकुण्ठञ्चययीभिया ॥
 शूलं गृहीत्वा त सूर्यं दधारशङ्करःस्वयम् । ब्रह्मकथ्यपमार्त्तण्डाःसंत्रस्ताःशुष्कतालुकाः ।
 नारायणश्च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया । मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवश्च पुनः पुनः ॥
 सर्वे निवेदनञ्चकुर्भयस्य कारणं हरेः ॥१६॥

नारायणश्च कृपया तेभ्यो हि अभयं ददौ । स्थिरा भवतहेभीताभयंकिंवोमयि स्थिते ॥
 स्मरन्ति येयत्रतत्रमांशिपतीं भयान्विताः । तांस्तत्रगत्वाग्क्षामिचक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥
 पाताहं जगतां देवाः कर्त्ताहं सततं सदा । अष्टाच ब्रह्मरूपेण संहर्त्ता शिवरूपतः ॥२२॥
 शिवोऽहंत्वमहश्चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः । विधायनानारूपश्च करोमि सृष्टिपालनम्
 यूयं गच्छत भद्रं धौ भविष्यति भयं कुतः ।

अद्यप्रभृति यो नास्ति महारान् शङ्कराद्भयम् ॥ २५ ॥

आशुतोषः स भगवान् शङ्करश्च सतां गतिः । भक्तार्थानश्चभक्तेशोभक्तात्माभक्तवत्सलः ।
 सुदर्शनं शिवश्चैव मम प्राणाधिकप्रियौ । ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी द्वे ब्रह्मन्ननयोः परः ।
 शक्तः अष्टुं महादेवः सूर्यकोटिञ्चलीलया । कोटिञ्च ब्रह्मणामेयं किमसाध्यं च शूलितः ।
 साहायानंतन्नकिञ्चिद्दुष्यायतोमांदिवानिशम् । मन्नाममद्गुणंमत्तयापंचवक्त्रेणगीयते ।

बहमेरं चिन्तयामि तत्कल्याणं दिवानिशम् । ये यथामां प्रपद्यन्ते तांस्तथैवमजान्यहम्
 शिरस्वरूपो भगवान् शिवाधिष्ठातृदेवकः । शिवी भवतितस्माच्चशिवतेन विदुर्बुधाः ।
 एतस्मिन्नन्तरे तत्राजगाम शङ्करः स्वयम् । शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपंकजलोचनः ॥३१॥
 अवह्य वृषात्पूर्णं भक्तिनत्रात्मकन्धरः । ननामभक्त्या तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्परम् ।
 रत्नसिंहासनस्यञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् । किरीटिनं कुण्डलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥

नवीननीरुदश्यामं सुन्दरञ्च चतुर्भुजम् ।

चतुर्भुजैः सेवितञ्च ज्वेतवामरवायुना ॥ ३४ ॥

चन्दनोक्षितमराङ्गं भूषितं पीतवाससा । लक्ष्मीप्रदत्तान्मूलं भुक्तवन्तञ्च नारद ॥ ३५॥
 विप्राधरीनृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा । ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥३६॥
 तं ननाम महादेवो ब्रह्माणञ्च ननाम सः । ननाम सूर्यो भक्त्याच संद्रस्तञ्चन्द्रशेखरम् ॥
 कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम च । शिवः संस्तूय सर्वेशं समुदास मुखासने ॥
 मुखासने सुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम् । ज्वेतवामरवातेन सेवितं विष्णुपार्यदैः ॥
 अक्रोधसत्त्वसंसर्गात् प्रसन्नं सस्मितंमुदा । स्तूयमानं पञ्चवक्त्रैः परं नारायणं विभुम्
 तमुवाच प्रसन्नान्मा प्रसन्नं सुरसंसदि । पीयूषतुल्यं मधुरं वचनं सुमनोहरम् ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अन्यन्तमुपहास्यञ्चशिवप्रश्नं शिवेशिवम् । लौकिकं वैदिकं प्रश्नं त्वांपृच्छामितथापिशम् ॥
 तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । सम्पत्प्रश्नं तप-प्रश्नमयोग्यं त्वाञ्च साम्प्रतम् ।
 ज्ञानाधिदेवे सर्वज्ञे ज्ञानं पृच्छामि किं वृथा । निरापदि विपत्प्रश्नमलं मृत्युञ्जये हरे ॥
 त्वामेव वाग्धनं प्रश्नमलं स्वाधयमाणमे । आगतोऽसिकथं व्रस्त इत्येवं वद कारणम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

वृषभजञ्च मद्भक्तं मम प्राणाधिकप्रियम् । सूर्यः शशाप इतिमे कारणं त्रासकोपयोः ॥
 पुत्रवान्सन्धशोकेन सूर्यं हन्तुं समुद्यतः । स ब्रह्माणं प्रपन्नञ्च ससूर्यश्च विधिस्त्वयि ।
 त्वयि ये शरणापन्ना ध्यानेन वचसापि वा । निरापदस्ते निःशङ्काजरामृत्युश्च तैर्जितः ।
 साक्षाद्देवे शरणापन्नास्तन्फलं किं वदामि भोः । हरिस्मृतिश्चामयदा सर्वमद्भुक्तदासदा ॥

कि मे भक्तस्य भविता तन्मे धूहि नगत्प्रभो । ध्राहृतस्थास्य मृदस्य सूर्यशापेनहेतुना ॥
श्राभनवानुवाच ।

कान्येऽतिशान्ता दैवेन युगानामैकविशति । वैकुण्ठे घटिकाङ्गेन शश्वय्यो नृपालयम् ॥

वृषधतो मृत कालाद् दुर्निवार्यात् सुदारुणात् ।

हस्तध्वजश्च तन्पुत्रो मृत सोऽपि धिया हत ॥ ५२ ॥

तन्पुत्रा च महाभागो धर्म जनकुश जनो । हतधियो सूर्यशापात्तो च परमवैष्णवो ।

राज्यभ्रष्टाधियाभ्रष्टो कमलातापसाजुषी । तयोश्चभार्ययोर्लक्ष्मी फलयाचननिष्यति ।

सम्पद्युक्तौ तदा ता च नृपश्रष्टो भविष्यत । मृतस्ते सैवकशम्भो गच्छयूयञ्च गच्छत ।

स्त्युक्तवाच सलक्ष्माक समाताऽत्यन्तर गत । देवानग्मुञ्च सहृण स्वात्म परममुदा

शिवश्च तपसे शंघ परिपूर्णतम ययौ ॥ ५७ ॥

इति ध्यात्स्वरैवर्त्ते महापुराणे प्रवृत्तिखण्डे नारायणतारुत्सवादे तुलस्युपाख्याने
त्रयोदशोऽध्याय ।

चतुर्दशोऽध्याय

वदन्त्याश्रितम् ।

नारायण उवाच ।

लक्ष्मीं तौ च समागत्य चोभ्रण तपसा मुन । धरमिष्टञ्च प्रत्येक समापतुरभाषितम् ॥

महालक्ष्म्या वरेण्य तौ पृथ्याशौ बभूवतु । धनवती पुत्रवती धर्मध्वजकुशवर्जौ च ।

कुशध्वजस्यपत्न्या च देवी मालावतासती । सामुपावच कान्तेन कमलाशामुतासतीम् ॥

साच भूमिष्टमाश्रण धानयुक्ता बभूव ह । वृत्त्या वेदध्वनि स्पष्टमुत्तस्यां सूतिकागृहे ॥

वेदध्वनि सा चकार जातमात्रेण वन्यका । तस्मान्नाञ्च वेदवती प्रवदन्ति मनीषिण ॥

जातमात्रेण सुक्लाता जगाम तपसे घनम् । सर्वैर्निपिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥ ६ ॥
 एकमन्वन्तरञ्चैव पुष्करेच तपस्विनी । अत्युप्राञ्च तपस्याञ्च लीलया च वकार सा ॥ ७ ॥
 तथापि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता । शुश्राव खे च सहसा सा वाचमशरीरिणीम् ॥
 जन्मान्तरेतेमर्त्ता व भविष्यतिहरिःस्वयम् । ब्रह्मादिभिर्दुःखराध्यं पतिं लप्स्यसिसुन्दरि
 इति श्रुत्वा तु सा रुष्टा चकार च पुनस्तपः । अतीवनिर्जनस्थाने पर्वते गन्धमादने ॥ १० ॥
 तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वास्य समुवाससा । ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥
 दृष्ट्वा सातिथिमक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौकिल । मुखादुफलमूलञ्च जलञ्चापि सुशीतलम्
 तच्च भुक्त्वासपापिप्रश्नोवास तन्समीपतः । चकारप्रभ्रमितितांकात्वं कल्याणि चेति च
 ताञ्चदृष्ट्वा वरारोहा पीनोन्नतपयोधराम् । शरत्पद्मोत्सवास्याञ्च सस्मितांसुदतीसतीम् ॥
 मूर्च्छामवाप कृपणः कामवाणप्रपीडितः । तां करेण समाकृष्य भृङ्गारं कर्तुमुद्यतः ॥
 सा सती कोपदृष्ट्याच स्तम्भितं तञ्चकार ह । शशाप च मर्दर्थं त्वं विलङ्घ्यसि सवान्धवः
 स्पृष्टाहञ्च त्वया कामाद्विस्मजाम्यवलोकय । स जडो हस्तपादैश्च किञ्चिद्रक्तुं न च क्षमः ॥
 तुष्टाव मनसा देवीं पद्माशां पद्मलोचनाम् । सा तन्स्तवेन सन्तुष्टा प्रहृतं तञ्चकार ह ॥
 इत्युक्त्वा साच योगेन देहत्यागं चकार ह । गङ्गायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणोययौ
 अहो किमद्भुतं दृष्टं किं हृतं वा मयाधुना । इति संविन्य संस्मृत्य विललाप पुनः पुनः
 सा च कालान्तरे साध्वी बभूवजनकात्मजा । सीतादेवीति विख्याता यदर्थं रावणोहतः
 महातपस्विनी साच तपसा पूर्वजन्मनः । लेभे रामञ्च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥ २३ ॥
 संप्राप्य तपसाराध्य स्वामिनञ्च जगत्पतिम् । सा रमा सुचिरं रमे रामेण सह सुन्दरी ।
 जातिस्मरणं च स्मरति तपसश्च क्रमं पुरा । सुवेन तन्नहौ सर्वं दुःखञ्चापि सुखं लभेत्
 नानाप्रकारविभवञ्चकार सुचिरं सती । सम्प्राप्य सुकुमारान्तमतीवनयौवनम् ॥ २५ ॥
 गुणिनं रसिकं शान्तं कान्तवेशमनुत्तमम् । स्त्रीणां मनोज्ञं सुचिरं तथा लेभेयथेप्सितम्
 पितृसत्यपालनार्थं सत्यसन्धो रघूत्तमः । जगाम काननं पश्चात् कालेन च बलीयताम्
 तस्यौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च । ददर्श तत्र बद्धिञ्च विप्ररूपधरं हरिः ॥ २८ ॥
 तरामं दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह । उवाच किञ्चिन् सत्येष्टं सत्यं सत्यपारायणः

वह्निरवाच ।

भगवन् ध्रुवता वाक्य फालेन यदुपस्थितम् । सीताहरणकालोऽयंतवैव समुपस्थितः ॥
 दैवञ्च दुर्निवार्यञ्च न च दैवान्परं बलम् । मत्प्रसूं मयि संन्यस्य छायांरक्षान्तिकेऽधुना
 दास्यामि सीतां नुष्यञ्च परीक्षासमये पुनः । देवैःप्रस्थापितोऽहञ्च नच विप्रो हुताशनः
 रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाण्य च लक्ष्मणम् । स्वीचकार च स्वच्छन्दं हृदयेन विदूयता
 वह्निर्योगिन सीताया मायासीताञ्चकार ह । तत्तुल्यगुणरूपां तां ददौ रामाय नारद ॥

सीता गृहीन्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निवेद्य च ।

लक्ष्मणो नैव युयुधे गोप्यमन्यस्य का कथा ॥ ३५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कनकं मृगम् । सीता तं प्रेरयामास तदर्थं यत्नपूर्वकम् ॥३६॥
 सन्यस्य लक्ष्मण रामो जानत्या रक्षणे वने । स्वयं जगामहन्तुं तं विव्याधसायकेन च
 लक्ष्मणेति च शब्दञ्च कृत्वा च माययामृगः । प्राणांस्तत्याज सहसापुरोदृष्टाहरिस्मरन्
 मृगरूपं पत्न्यज्य दिव्यरूपं विधाय च । रत्ननिर्माणयानेन वैकुण्ठं स जगाम ह ॥३६॥
 वैकुण्ठद्वारे द्वाप्यासीत् किङ्करो द्वारपालयोः । जयाविजययोश्चैव बलवांश्चजिताभिधः
 शापेन सनकादीनां सम्प्राप्य राक्षसी तनुम् । पुनर्जगाम तद्द्वारगमादौ स द्वारपालयोः
 अथ शब्दञ्चसा श्रुत्वालक्ष्मणेति च विद्म्यम् । सीता तं प्रेरयामास लक्ष्मणंरामसन्निधौ
 गते च लक्ष्मणे रामं रायणो दुर्निवारणः । सीतां गृहोत्था प्रययौ लङ्कामेव स्थलीलया
 विषसाद् च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् । तूर्णञ्च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्शसः
 मूर्च्छां सम्प्राप्य सुचिरं विललाप भृशं पुनः । पुनर्नम्राम गहने तदन्वेषणपूर्वकम् ॥४५॥
 काले संप्राप्य तद्वातां पश्चिद्द्वारा नदीतटे । सहायं वानरं कृत्वा वरग्य सागरं हरिः ॥
 लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च । सथान्धवं रायणञ्च सीतां सम्प्रापदुःखिताम्
 ताञ्च वह्निरपरीक्षाञ्च कारयामास सन्ध्वम् । हुताशनस्तत्रकाले वास्तथा जानकीं ददौ ॥
 उवाच छाया वह्निञ्च रामञ्च विनयान्विता । करिष्यामीति किमहं तदुपायं घदस्य मे ॥

वह्निरवाच ।

त्वं गच्छ तपसे देवि ! पुष्करञ्च सुपुण्यदम् । कृत्वान्तपस्यांतत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यति

सा च तद्रचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः । दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च स्वर्गं लक्ष्मार्चमूव ह ॥
 सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्रया । कामिनी पाण्डवानाञ्च द्रौपदी द्रुपदात्मजा ॥
 कृते युगे वैदवती कुशाञ्जमुता शुभा । त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा ॥
 तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा । त्रिहायर्णाति सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये
 नारद उवाच ।

प्रियाः पञ्च कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुङ्गव । इति मे चित्तसन्देहं मञ्च सन्देहभञ्जन ॥ ५७ ॥
 नारायण उवाच ।

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद । स्पर्शौवनसम्पन्ना छाया च बहुचिन्तिता ॥
 रामान्यौराजया तत्त्वा ययाचे शङ्करं वरम् । कामानुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनःपुनः
 पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन । पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारञ्चकार सा ॥
 शिवस्तत्प्रार्थनं श्रुत्वा सस्मितो रसिकेश्वरः । प्रिये तव प्रियाः पञ्च भवन्तीति वरं ददौ
 तेन सा पाण्डवानाञ्च बभूव कामिनी प्रिया । इत्येवं कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवंगृणु
 अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम् ।

विभीषणाय ता लङ्कां दत्त्वाऽयोध्या ययौ पुनः ॥ ६१ ॥

एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यञ्च भारते । जगाम सर्वलोकैश्च सार्द्धं वैकुण्ठमेव च ॥
 कमलाराा घेदवती कमलायां विवेश सा । कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यद पापनाशनम् ॥
 सतनं मूर्त्तिमन्तश्च घेदाश्चत्वार एव च । सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वैदवती स्मृता
 कुशाञ्जमुतारयातमुकं सक्षेत्रन्तर । घर्मध्वजमुतारयातं निबोध कथयामि ते ॥

इति श्रोत्रह्रवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतित्रपडे नारायणनारदभवादे तुलस्युपाख्याने
 वेदवतीप्रस्तौ चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः

धर्मध्वजपत्न्यां माधव्यां तुलस्या जन्म ।

नारायण उवाच ।

धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता । नृपेण साङ्गं सा रामा रौमे च गन्धमादने
शय्या रतिकरी वृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गी पुष्पचन्दनवायुना ॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी रत्नभूषणभूषिता । कामुकी रसिकश्रेष्ठा रसिनेशेन संयुता ॥ ३ ॥
सुरतिर्विरतिर्नास्ति तयोः सुरतविज्ञयोः । गतं चर्यं शतं दैवं तौ न क्षातौ दिवानिशम् ।
ततो रजोमतिं प्राप्य सुरताद्विरराम सः ।

कामुकी सुन्दरी किञ्चित् न च तृप्तिं जगाम सा ॥ ५ ॥

दधार गर्भं सा सद्यो देवाञ्छतकं सती । धीगर्भा श्रीयुता सा च संयभूय दिने दिने ।
शुभक्षणे शुभदिने शुभयोगेन संयुते । शुभलन्ने शुभांशे च शुभस्वामिगृहान्विते ॥ ७ ॥
कार्तिकीपूर्णिमायाञ्च सितवारिच पद्मजे । सुपाव सा च पद्माशां पद्मिनी सुमनोहराम् ॥
पादपद्मयुगे चैव पद्मरागविराजिताम् । राजराजेश्वरीलक्ष्मीं सर्वाङ्गभंगिमायुताम् ॥
राजलक्ष्मीलक्ष्मयुक्काराजलक्ष्म्यधिदेवताम् । शरत्पार्षणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्
पद्मिन्नाश्ररोष्ट्राञ्च पश्यन्ती सस्मितां गृहम् । हस्तपादतलारतां निम्ननाभिमनोरमाम्
तदधस्त्रियलीयुक्तां नितम्बयुग्मधस्तुलाम् । शीतेसुखोष्णसर्वाङ्गीं श्रीभ्ये च सुलशीतलाम्
श्यामा सुश्रेणी रचिरान्यप्रोधपरिमण्डलाम् । श्वेतचम्पकवर्णां भासुन्दरीप्वेकसुन्दरीम्
नरानार्य्यश्च ता इष्ट्वा तुलनांदातुमक्षमाः । तेन नाम्ना च तुलसीं ता घटगन्तिपुराविद्ः ।
सा च भूमिष्ठमानेण योग्यास्त्रीप्रकृतिर्यथा । सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम घटरीचनम् ॥ १५ ॥
तत्र देवाद्दलक्षश्च चकार परमन्तपः । मम नारायणस्यामी भवितेति च निश्चिता ॥ १६ ॥

श्रीभ्ये पञ्चतपाः शीते लोयावस्था च प्रावृषि ।

श्मशानस्था वृष्टिधारां सहन्तीति दिवानिशम् ॥ १७ ॥

विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा । त्रिंशत्शतसहस्राब्दं पत्राहारा तपस्विनी ॥
चत्वारिंशत्सहस्राब्दं वायुहारा कृशोदरी । ततो दशसहस्राब्दं निराहारा यभूव सा ॥
निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः । समाययौ वरं दातुं परं घट्टिकाश्रमम् ॥
चतुर्मुखञ्च सा दृष्ट्वा ननाम हंसधाहनम् । तामुवाच जगत्कर्त्ता विधाता जगतामपि ॥
ब्रह्मोवाच ।

वरं वृणुष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम् । हरिभक्तिञ्च मुक्तिं चाप्यजरामरतामपि ॥
तुलस्युवाच ।

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम् ।

सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

अहं च तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ।

कृष्णप्रिया किङ्करी च तदंशा तत्सखी प्रिया ॥ २४ ॥

गोविन्देन सहासकामवृक्षां भाञ्च मूर्च्छिताम् । रासेश्वरीसमागत्य ददर्श रासमण्डले ।
गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप ख्यान्विता । याहित्वं मानवीयोनिमित्येवञ्चपितामह
मामुवाच स गोविन्दो मदंशं त्वं चतुर्भुजम् । लभिष्यसितपस्तपचाभारतेब्रह्मणोवरात्
इत्येवमुक्त्वादेवेशोऽप्यन्तर्धानंचकारसः । देव्या भियातनुंत्यक्त्यालब्धंजन्ममयाभुवि ॥
अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् । साम्प्रतं लब्धुमिच्छामि वरमेवञ्च देहि मे ॥
ब्रह्मोवाच ।

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः । तदंशाश्चातितेऽस्वी ललाभ जन्म भारते ॥
साम्प्रतं राधिकाशापहनुवंशसमुद्भवः । शङ्खचूड इति ख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्परः ॥
गोलोकेत्यां पुरादृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः । विलङ्घितुं न शशाकराधिकायाः प्रभावनः ।
सचजातिस्मरस्तप्त्वा त्वांललाभवरेणच । जातिस्मरापित्वमपिसर्वं जानासिसुन्दरी ॥
अधुनातस्यपत्नी च भव भादिनिशोभने । पश्चान्नारायणं कान्तं शान्तमेव लभिष्यसि ।
शापान्नारायणस्यैव कल्या दैवयोगतः । भविष्यसि वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपावनी ॥
प्रधानासर्वपुष्पाणांविष्णुप्राणाधिकामवेत् । त्वयाविनाचसर्वेषांपूजाचविफलाभवेत् ॥

वृन्दावनेवृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीतिव । तन्पत्रैर्गोपिकागोपाः पूजयिष्यन्तिमाधवम् ॥
 वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्द्धं कृष्णेन सन्ततम् । विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छन्दं महरेण च ॥
 इत्येव वचनं ध्रुव्या सन्मिता हृष्टमानसा । प्रणनाम च ब्रह्माणं तञ्च किञ्चिदुवाच ह ॥

तुलस्युवाच ।

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे । सन्यंत्रयामि हे तात न तथा च चतुर्भुजे
 अतुमाहञ्च गोविन्दे दैवात् शृङ्गारमङ्गतः । गोविन्दस्यैव वचनात् प्रार्थयामिचतुर्भुजम् ।
 ततप्रसादेन गोविन्द पुनरैव सुदुर्लभम् । ध्रुवमेवं लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय ॥

ब्रह्मोवाच ।

गृह्णान् राधिकामन्त्रं ददामि षोडशाक्षरम् । तस्याश्च प्राणतुल्यात्वं महरेणभविष्यसि ।
 शृङ्गारंयुचयोगोप्यमात्रास्यतिचराधिका । राधासमात्वं शुभगागोविन्दस्यभविष्यसि ।
 इत्येवमुक्तवादन्यान् देव्याश्च षोडशाक्षरम् । मन्त्रं तस्यै जगद्धाता स्तोत्रशुकवचं परम् ॥
 सर्वं पूजाविधानञ्च पुरश्चर्याविधिऋमम् । परं शुभाशिवं वृत्वा सोऽन्तर्दानञ्चकार ह ॥
 साच ब्रह्मोपदेशेन पुण्ये चर्करिकाश्रमे । जज्ञाप परमं मन्त्रं यदिष्टं पूर्यजन्मनः ॥ ४७ ॥
 दिव्यं द्वादशपर्यञ्च पूजाञ्चैव चकार सा । बभूव सिद्धा सा देवी तन्प्रत्यादेशमाप च ॥
 सिद्धे तपसि मन्त्रेच वरं प्राप्य यथेप्सितम् । युभुजे च महाभागं यद्विश्येपु सुदुर्लभम् ।
 प्रसन्नमानसादेवी तत्याज तपस क्लमम् । सिद्धे फले नराणाञ्च दु पञ्च सुप्रसुत्तमम् ॥
 भुक्त्वा पीत्वा च सन्तुष्टा शयनञ्च चकार सा । तल्पे मनोरमे तत्र पुण्यचन्दनचर्चिते ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिलखण्डे नारायण नारदसंवादे तुलस्युपाख्याने

तुलसीविरच्यद्वानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः

तुलस्या सह शङ्खचूडस्य मेलनं कथोपकथनञ्च ।

नारायण उवाच ।

तुलसी परितुष्टा च सुखापहृष्टमानसा । नवयौवनसम्पन्ना प्रशंसन्ती वराङ्गना ॥ १ ॥
 चिक्षेप पञ्चवाणञ्च पञ्चवाणञ्च तां प्रति । पुण्यायुधेन सा दग्ध्रा पुष्पचन्दनचर्चिता ॥
 पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी कम्पितारक्तलोचना । क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छामवाप ह ।
 क्षणमुद्धिगतां प्राप क्षणं तन्त्रां सुखावहाम् । क्षणं सा दाहनं प्राप क्षणं प्राप प्रमत्तताम्
 क्षणंसाचेतनांप्रापक्षणं प्रापविषण्णताम् । उत्तिष्ठन्तीक्षणंतल्पाद् गच्छन्तीनिकटंक्षणम्
 भ्रमन्ती क्षणमुद्देगाद्विवसन्ती क्षणं पुनः । क्षणमेव समुद्देगान् सुप्वाप पुनरेव सा ॥
 पुष्पचन्दनतल्पञ्च तद् बभूवातिकण्ठकम् । विषमाहारसुस्वादु दिव्यरूपं फलंजलम् ॥
 निलयश्च निराकारः सूक्ष्मबस्त्रं हुताशनः । सिन्दूरपत्रकञ्चैव ध्रुणतुल्यञ्च दुःखदम् ८॥
 क्षणं ददर्श तन्त्रायां सुवेशं पुरुषं सती । सुन्दरञ्च युवानञ्च सस्मितं रसिकेश्वरम् ॥ ६॥
 चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् । आगच्छन्त माल्यवन्तं पश्यन्तं तन्मुखाम्बुजम् ॥
 कथयन्तं रतिकथां चुम्बन्तमधरं मुहुः । शयानवन्तं तल्पे च समाश्लिष्यन्तमीलितम् ॥
 पुनरेव तु गच्छन्तमागच्छन्तं वसन्तरुम् । कान्त क यासि प्राणेश तिष्ठेत्यैवमुवाचसा ॥
 पुनः स्वचेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः । एवं तपोवने सा च तस्थौ तत्रैव नारद ॥

शङ्खचूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोरमम् ।

कृष्णस्य मन्त्रं सम्प्राप्य कृत्वा सिद्धिन्तु पुष्करे ॥ १४ ॥

कवचञ्च गले वद्ध्या सर्वमङ्गलमङ्गलम् । ब्रह्मेशाच्च धरं प्राप्य यत्तन्मनसि घाञ्छितम् ॥

आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि घदरीञ्च समाययौ ॥ १६ ॥

आगच्छन्तं शङ्खचूडं ददर्श तुलसी मुने । नवयौवनसम्पन्नं कामदेवसमप्रमम् ॥ १७ ॥

श्वेतवम्पकवर्णाभिं रत्नभूषणभूषितम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥ १८ ॥

रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥१९॥
 पारिजातकुमुमाना माल्यवन्तश्च सस्मितम् । कस्तूरीकुङ्कुमयुतं सुगन्धिचन्दनान्वितम् ।
 सा दृष्ट्वासन्निधाने त मुखमाच्छाद्य वाससा । सस्मितातं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुन पुन-
 यभूवातिनम्रमुर्गा नयसङ्गमलज्जिता । कामुकी कामयाणेन पीडिता पुलकान्विता ॥२२॥
 विवन्ती तन्मुद्राम्भोजं लोचनाभ्याश्च सन्ततम् । ददर्श शङ्खचूडश्च कन्यामेकांतपोधने ॥

पुष्पचन्दनतल्पस्थां धसन्ती वाससावृताम् ।

पश्यन्ती तन्मुखं शश्वत् सस्मितां सुमनोहराम् ॥ २४ ॥

सुर्यानकठिनश्रोणीं पीनोन्नतपयोधराम् । मुक्तापङ्क्तिप्रभायुष्टदन्तपङ्क्तिमुबिभ्रतीम् ॥
 पक्वविम्बाधरोष्ठीञ्च सुनासा सुन्दरी धराम् । ततकाञ्चनवर्णाभां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥
 स्वनेत्रसा परिवृता सुखदृश्यां मनोरमाम् । कस्तूरीचिन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनचिन्दुना
 सिन्दूरचिन्दुना शश्वत् सीमन्ताध स्थलोज्ज्वलाम् ।

निम्ननाभिगमीराञ्च तदधस्त्रिघलीयुताम् ॥ २८ ॥

करपद्मतलारक्ता नखचन्द्रैर्विभूषिताम् । स्थलपद्मप्रभायुक्तं पादपद्मञ्च विभ्रतीम् ॥ २९ ॥
 वारक्तवर्णं ललितमलक्तकसमप्रभम् । ऊर्ध्वपद्मस्थलपद्मप्रभराजविराजिताम् ॥ ३० ॥
 शरदिन्दुचिनिन्दैकनयेन्दुराजिराजिताम् । अमृत्यरत्ननिर्माणपावकावलिसंयुताम् ॥३१॥

मणीन्द्रसारनिर्माणकणन्मञ्जीरजिताम् ॥ ३२ ॥

दधती कचरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् । अमृत्यरत्ननिर्माणमकराकृतिरूपिणा ॥३३॥
 चित्रकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् । रत्नेन्द्रसारहारेण स्तनमध्यस्थलोज्ज्वलाम्
 रत्नवङ्कणकेयूशङ्खभूषणभूषिताम् । रत्नाङ्गुरीयकैर्दिव्यैरङ्गुल्यावलिराजिताम् ॥ ३५ ॥
 दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलाम् सुदतीसतीम् । उवास तन्समीपे च मधुरंतामुवाचतः

शङ्खचूड उवाच ।

का त्वमत्र कस्य कन्या धन्ये मान्ये सुयोपिताम् ।

का त्वं मानिति वटशणि सर्भकल्याणदायिनि ॥ ३७ ॥

स्वर्गभोगादिसारेति विहारे हाररूपिणि । संसारदारसारे च मायाघारे मनोहरे ॥३८॥

जगद्विलक्षणे क्षामे मुनीन्द्रमोहकारिणि । मौनीभूने किङ्करं मां सम्मायां कुरु सुन्दरि ॥
इत्येवं घचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना । सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा ॥

तुलस्युवाच ।

धर्मध्वजसुतऽहञ्च तपस्यायां तपोवने । तपस्विनीह तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम्
कामिनीकुलजाताञ्च रहस्ये कामिनीं सर्ताम् । न पृच्छतिकुले जात एवमेव श्रुतां श्रुतम्
लम्पटोऽसन्कुन्ने जातो धर्मशास्त्रार्थविर्वाजितः । येनाश्रुतश्रुतेर्यसकामीच्छतिकामिनीम्
आपातमधुरामन्ते अन्तकां पुष्टस्य ताम् । विप्रकुम्भाकाररूपाममृतास्याञ्च सन्ततम् ॥
हृदये श्रुरधारामां शश्वन्मधुरभाषिणीम् । स्वकार्यपरिनिष्पन्नतन्परां सततं सदा ॥
कार्यार्थं स्वामिवशागमन्ययैवाचशां सदा । स्वान्तर्मलिनरूपाञ्च प्रसन्नवदनेक्षणाम् ॥
श्रुतां पुराणे यासाञ्च चरित्रमनिरूपितम् । तासु को विश्वसेत् प्राबो ह्यप्राह इवसर्वदा
तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयन्तीं नवं नवम् । दृष्ट्वा सुवेशं पुष्टमिच्छन्तीं हृदये सदा ॥
वाह्ये स्वात्मसतीचञ्च ज्ञापयन्तीं प्रयत्नतः । शश्वत्कामाञ्चरामाञ्चकामाधारामनोहराम्
वाह्ये छलाच्छादयन्तीं स्वान्तर्मैथुनलालसाम् ।

कान्तं प्रसन्तीं रहसि वाह्येऽतीवसुलज्जिताम् ॥ ५० ॥

मानिनीमैथुनाभापेकोपिनीकलहाङ्कुनाम् । संभ्रान्तांभूरिसम्मोगात् स्वल्पमैथुनदुःखिताम्
सुमिष्टाघ्नान् शीतदोयाश्चाकांक्षन्तीचमानसे । सुन्दरं रसिकं कान्तं युवानं गुणिनं सदा
मुनान् परप्रतिकेहं कुर्वन्ती रतिकर्त्तरि । प्राणाधिकप्रियतमं सम्भोगकुशलं प्रियम् ॥
पश्यन्तीं रिपुतुल्यञ्च वृद्धं वा मैथुनाश्रमम् । कलहं कुर्वती शश्वन् येन सार्द्धसुकोपनाम्
चर्चया भक्षयन्तीं तं कीलाश इव गोरजः । दुःसाहसस्वरूपाञ्च सर्वदोयाध्रयां सदा ॥
शश्वत्कपटरूपाञ्चसर्वदोयाध्रयांसदा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुःस्वयाज्यांमोहरुपिणीम् ।

तपोमार्गार्गलां शश्वन्मुक्तिद्वारकवाटिकाम् ॥ ५१ ॥

हरेर्मक्तिव्यवहितं सर्वमायाकरुण्डिकाम् । संसारकारागारं च शश्वन्निगडरूपिणीम् ॥
इन्द्रजालस्वरूपाञ्चमिर्यादादिस्वरूपिणीम् । विद्वन्तीं साहासैन्दुर्यमश्याङ्गमतिकुण्डिसतम्
नानाविष्णुत्रपूयानामाधारं मलयंयुतम् । दुर्गन्धिदोषसंयुक्तं रक्ताककमसंस्कृतम् ॥ ६० ॥

मायारूपं मायिनाञ्च चिधिना निर्मितं पुरा । विपरुपां मुमुक्षुणामदृश्याञ्चैव सर्वदा ॥
इत्युक्त्वा तुलसी तञ्च विरराम च नारद । सस्मितः शङ्खचूडञ्च प्रयत्नुमुपचक्रमे ॥६२॥

शङ्खचूड उवाच ।

त्वयायतकथितं देविनच सर्वमलीककम् । किञ्चित्सत्यमलीकञ्चकिञ्चिन्मत्तोनिशामय
निर्मितं द्विविधं धात्रा स्त्रीरूपं सर्वमोहनम् । कृत्यारूपं वास्तवञ्च प्रशंस्यञ्चाप्रशंसितम्

लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिकम् ।

सृष्टिसूत्रस्वरूपञ्चाप्याद्यं स्रष्टा तन् तु विनिर्मितम् ॥ ६५ ॥

पतासामंशरूपं यत् स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम् । तन् प्रशंस्यं यशोरूपं सर्वमङ्गलकारणम्
शतरूपा देवहती स्वधा स्वाहा च दक्षिणा । छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा

कुबेरप्रायुपत्नी साप्यदिनिश्च दितिस्तथा । लोपामुद्रानसूया च कौटुमी तुलसी तथा ॥
अहल्यारुधती मेना तारा मन्दोदरी परा । दमयन्ती घेदवती गङ्गा च मनसा तथा ॥

पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मैधा कालिका च वसुन्धरा । पथीमङ्गलचण्डीचमूर्त्तिश्चधर्मकामिनी
स्वस्तिः श्रद्धा च कान्तिश्च तुष्टिः कान्तिस्तथापरा ।

निद्रा तन्द्रा क्षुत् पिपासा सन्ध्या रात्रिर्दिनानि च ॥ ७१ ॥

सम्पत्तिवृत्तिर्कार्यश्च क्रियाशोभाप्रभांशिकम् । यत् स्त्रीरूपञ्च सम्भूतमुत्तमं तद्रूपेणयुगे
कृत्यास्वरूपं तद् यत्तु स्ववैश्यादिकमेव च । तदप्रशंस्यं विश्वेषु पुञ्जलीरूपमेव च ७३।

सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तच्च शुद्धं स्वभावतः । तदुत्तमञ्च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम् ७४।
नद् वास्तुचञ्च विज्ञेयं प्रचदन्ति मनीषिणः । रजोरूपं तमोरूपं कृत्यास्तु द्विविधं स्मृतम्

स्थानाभावात् क्षणाभावात्मध्यवृत्तेरभावतः । देहहेशेन रोगेण सत्संसर्गेण सुन्दरि ॥
यद्गुणोष्ठावृत्तेनैव रिपुराजभयेन च । रजोरूपस्य साध्वीत्वमेतेनैवोपजायते ॥ ७७ ॥

इदं मध्यमरूपञ्च प्रचदन्ति मनीषिणः । तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद् विदुर्वुधाः ॥७८ ॥
न पृच्छति कुले जातः पण्डितश्च परङ्गित्रयम् ॥ ७९ ॥

धागच्छामि त्वत्सर्मापमानया ब्रह्मणोऽयुना । गान्धर्वेणविवाहेनत्वांप्रहीप्यामिशोभने
अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः । दनुवंशोद्भवो विश्वे सुदामाहं हरः पुरे ॥ ८१ ॥

अहमश्नु गोपेषु गोगोपीपार्यदैषु च । अधुना दानवेन्द्रोऽहंराधिकायाश्चशापतः ॥८२॥
जातिस्मरोऽहं जानामिऋष्मन्त्रप्रभावतः । जातिस्मरात्वं तुलसी संसक्ता हरिणापुरा

त्वमेव राधिकाकोपात् जातासि भारते भुवि ।

त्वां सम्मोक्षुमिच्छुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः ॥ ८४ ॥

इत्येवमुक्त्वा स पुमान् विरराम महामुने । सस्मिता तुलसी हृष्टा प्रबल्मुपचक्रमे ॥८५॥

तुलस्युवाच ।

एवंविधो बुधो विग्ने बुधेषु च प्रशंसितः । कान्तमेवंविधंकान्ताशदवदिच्छति कामतः ।
त्वयाहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता । स निन्दितश्चाप्यशुचिर्यःपुमांश्च स्त्रिया जितः
निन्दन्ति पितरोदेवान्श्रवास्त्रीजितंजनम् । स्त्रीजितंमनसावाचापिताभ्राताच निन्दति
शुद्धेऽ विप्रो दशाहेन जातके मृतके तथा । भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः ८६॥
शूद्रो मासेन वैदेषु मानृवद्वर्णशङ्करः । अशुचिः स्त्रीजितः शुद्धेचितादाहनकालतः ६०॥
न गृह्णन्तीच्छयातस्य पितरःपिण्डतर्पणम् । न गृह्णन्तीच्छया देवास्तस्य पुष्पजलादिकम्
किं तस्य ज्ञानतपसा जपहोमप्रयुज्जतैः । किं विद्यया वा यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम् ।
वियत्प्रभावज्ञानार्थं मया त्वञ्चपरीक्षितः । कृत्वा परीक्षां कान्तम्य वृणोति कामिर्नावरम् ।
वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा । दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च ॥
अत्यन्तकोपयुक्ताय चात्यन्तदुर्मन्त्राय च । पङ्कलायाद्गहीनाय चान्धाय चधिराय च ॥
जडायचैव मूकाय क्लृप्ततुल्याय पापिने । ब्रह्महत्यांलभेन् सोऽपियः स्वकन्यांद्दातिच ॥
शान्ताय गुणिने चैव यूने च विदुरेऽपिच । वैष्णवायमुतां दत्त्वा दशवाजिफलंलभेन् ।
यः कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयंयदि । विपदा धनलोभेन कुर्मापाकं स गच्छति ।
कन्यामूत्रपुरीषञ्च तत्र भक्षति पातकी । कृमिभिर्दंशितः काकैर्याचदिन्द्राश्चतुर्दश ॥६६॥
तदन्ते व्याघ्रयोनीं च लभते जन्मनिश्चितम् । विक्रीणाति मांसभारं वहत्येवदिवानिशम् ।
इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोवने । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तयोरन्तिकमाययौ ॥१०२॥
मूर्धा ननाम तुलसी शङ्खचूडश्च नारद । उवाच तत्र देवेशश्चोवाच च तयोर्हितम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

किं करोषि शङ्खचूड सवादमनया सह । गान्धर्वेण विवाहेन त्वमिमां प्रहण कुर ॥१०३॥
 त्वञ्च पुत्ररत्नञ्च स्त्रीरत्नं त्वाप्स्यसती । विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥
 निर्विरोधसुखराजन् को वात्यजति दुर्लभम् । योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र सशय ॥
 किमुपेक्षसि त्व कान्तमीदृशं गुणिनं सती । देवानामसुराणाञ्च दानवानां विमर्दकम् ॥
 यथालम्बाश्च लक्ष्माशे यथाकृष्णे च राधिका । यथामयि च सावित्री भवानी च भवेयथा ।
 यथा धरा वराहे च यथा मेना हिमालये । यथात्रावनसूया च दमयन्ती नले यथा ॥
 रोहिणा च यथा चन्द्रे यथा कामेरति सती । यथादिति कश्यपे च वशिष्ठेऽरुन्धती यथा ।
 यथाहल्या गौतमे च देवहूता च कर्दमे । यथावृहस्पतौ तारा शतरूपा मनी यथा ॥११०॥
 यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने । यथा शची महन्द्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे ॥
 देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्पथा सती । सौभाग्या सुप्रिया त्वञ्च शङ्खचूडे तथा भव ।
 अनेन साह सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि । स्थाने स्थाने विहारञ्च यथेच्छं कुरसन्ततम् ।
 पञ्चान् प्राप्स्यसि गोविन्दं गोलोके पुनरेव च । चतुर्भुजञ्च वैकुण्ठे शङ्खचूडे मृते सति ॥
 इत्येवमाशिरं वृत्वा स्वाल्पं प्रययौ विधिः । गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे ताञ्च दानव ॥
 स्वर्गं दुःसुभिवाद्यञ्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह । स रमे रमया साङ्गं वास्तगेहे मनोहरे ॥११६॥
 मूर्च्छां सम्प्राप तुलसी नवसङ्गमसगता । निमग्रा निर्जने साध्वी सम्भोगसुखसागरे ॥
 चतुःपट्टिकलामानं चतुःपट्टिविधं सुखम् । कामशास्त्रे यन्निरक्तं रसिकानां यथेप्सितम् ।
 भगवत्पथगतसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम् । तत्सर्वं सुखं गारं चकार रसिकेश्वरः ॥११६॥
 अतीव रम्ये देशे च सर्वजन्तुविवर्जिते । पुष्पचन्दनतपे च पुष्पचन्दनवायुना ॥१२०॥
 पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दनचर्चिते । गृहीत्वा रसिका रामा पुष्पचन्दनचर्चिताम् ॥
 भूषिता भूषणैः सर्वैस्तीवसुमनोहरम् । सुखेर्विरतिर्नास्ति तयोः सुरतविहयो ॥१२२॥
 जहार मानसं भक्तुर्लोलया तुलसी सती । चेतना रसिकायाश्च जहार रसभावयिन् ॥
 यक्षसङ्घचन्दनं बाह्योऽस्ति लकं विजहार सा । स च जग्राह तस्याश्च सिन्दूरविन्दुपत्रकम् ॥
 स तद्वक्षसि तस्याश्च नखरेण्या ददौ मुदा । सा ददौ तद्गामपार्श्वे करभूषणलक्षणम् ॥

राजा दन्तौष्ठपुटके ददौ दशनदंशनम् । तद्गण्डयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम् ॥ १२६ ॥
 सुरतेर्विरतौ तौ च समुत्थाय परस्परम् । सुवेशञ्जनतुस्तत्र यत्तन्मनसि वाञ्छितम् ॥
 कुङ्कुमाकचन्दनेन सा तस्मै तिलकं ददौ । सर्वाङ्गे सुन्दरे रम्ये चकार वानुलेपनम् १२८
 सुवासितञ्च ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी । पारिजातस्य कुसुमं माल्यञ्चैव सुशोभनम् ।
 अमूल्यरत्ननिर्माणमङ्गुरीयकमुत्तमम् । सुन्दरञ्च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ १३० ॥
 दासी तवाहमिन्धेवं समुच्चार्य्य पुन पुन । ननाम परया भक्तया स्वामिनं गुणशालिनम्
 सस्मितातनुखाम्मोजं लोचनाभ्यांपर्षोपुन । निमेषरहिताभ्याञ्च सकटाक्षञ्चसुन्दरम् ॥
 स च ताञ्च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम् । सस्मितं वाससाच्छन्नं ददर्श मुखपङ्कजम् ।
 चुचुम् कठिने गण्डे विम्बोष्ठे पुनरेव च । ददौ तस्यै वल्लयुग्मं वरणादाहृतञ्च यत् ॥
 तदाहता रत्नमाला त्रिषु लोकेषु विश्रुताम् ॥ १३३ ॥

ददौ मञ्जीरयुग्मञ्च स्वाहापाञ्च हतञ्च यत् । केयूरयुग्म छायाया रोहिण्याञ्चैवकुडलम् ।
 अङ्गुरीयकरत्नानि रत्याञ्च वरभूषणम् । शङ्ख सुरचिरं चित्रं यहत्तं विश्वकर्मणा ॥ १३६ ॥
 विचित्रपीठकश्रेणीं शय्याञ्चापि सुदुर्लभाम् । भूषणानि च दत्त्वा च परीहारञ्चकार ह ॥
 निर्माय कवरीभारं तस्याञ्च माल्यसंयुतम् । सुचित्रं पत्रकं गण्डे जयलेखसमं तथा ॥
 चन्द्रलेखात्रिभिर्धुकं चन्दनेन सुगन्धिना । परितः परितश्चित्रै सार्द्धं कुङ्कुमविन्दुभिः ॥
 ज्वलत्प्रदीपाकारञ्च सिन्दूरतिलकं ददौ । तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिन्दने ॥ १४० ॥
 चित्रालककरागञ्च नखरेषु ददौ मुदा । स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्तं सरागञ्चरणाम्बुजम् ॥
 हे देवि ! तव दासोऽहमिन्धुच्चार्य्य पुन पुन । रत्ननिर्माणयानेन ताञ्च कृत्वा स्ववक्षसि ॥

तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानान्तर ययौ ॥ १४२ ॥

मलये देवनिलये शैले शैले वने वने । स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्यानेऽतिनिर्जने ॥
 कन्दरे कन्दरे सिन्धुतीरे च सुन्दरे वने । पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे ॥ १४४ ॥
 पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे । मयीं मगुकराणाञ्च मधुरध्वनिनादिते ॥ १४५ ॥
 विनिस्पन्दे सुपवने नन्दने गन्धमादने । देवोद्याने देववने चित्रे चन्दनकानने ॥ १४६ ॥
 चम्पकानां केतकीनां माधवीनाञ्च माधवे । कुन्दाना मालतीनाञ्च कुमुदाम्मोजकानने ।

कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने । निर्जने काञ्चनीस्थाने घन्ये काञ्चनपर्वते ॥१४८॥
 काञ्चीवने किञ्चनके कञ्चके काञ्चनाकरे । पुष्पवन्दनतत्प्रेव पुंस्कोकिलस्तोद्युते ॥१४९॥
 पुष्पवन्दनमयुक्तं पुष्पवन्दनवायुना । कामुक्सा कामुकः कामात् स रमे रामया सह ।
 न तत्रा दानवेन्द्रश्च कृतिर्नैव जगाम सा । हविषा कृष्णवर्त्सेव षड्विधे मदनस्तयोः ॥
 तथा सह समागत्य स्वाधमं दानवस्तनः । रम्यक्रीडालयं कृत्वा विजहार पुनस्ततः ॥
 एव नवमुजे राज्यं शङ्खचूडः प्रतापवान् । एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो बली ॥१५३॥
 देवानामसुराणाञ्च दानवानाञ्चसन्ततम् । गन्धर्वाणां किन्नराणांराक्षसानाञ्चशास्त्रिणः ।
 हताधिकारा देवाश्च चरन्ति मिथुका यथा ॥ १५५ ॥

पूजाहोमादिकर्तेषां जहार विषयं बलात् । आश्रयं चाधिकारञ्च शस्त्रास्त्रभूषणादिकम् ॥
 निरयमाः सुराः सर्वे विप्रपुत्रलिका यथा । तेव सर्वे विरयणाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम्
 वृत्तान्तं कथयामाम् रुद्रदुश्च भृशं मुहुः । तदा ब्रह्मा सुरैः साङ्गे जगाम शङ्करालयम् ॥
 सर्वं मं कथयामास विधाता चन्द्रशेखरम् । ब्रह्मा शिवश्च तैः साङ्गे वैकुण्ठञ्च जगाम ह
 सुदुर्लभं परं धाम जगामृत्युहरं परम् । सभ्रापच वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो ॥ १६० ॥
 ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् । शोभितान् पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥
 वनमालान्वितान् सर्वान् श्यामसुन्दरविग्रहान् । शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान् ॥
 सस्मितान्पद्मवक्त्रांश्चपद्मेवान्मतोहरान् । ब्रह्मातान्कथयामासवृत्तान्तं गमनार्थकम् ॥

तेऽनुब्राञ्च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया ॥ १६४ ॥

एवञ्च षोडशद्वाराद्विरीक्ष्य कमलोद्भवः । देवैः साङ्गे तानतीत्य प्रविवेश हटेः सभाम् ॥
 देवर्षिभिः परिहृतां पार्यदैश्च चतुर्भुजैः । नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः ॥१६६॥
 पूर्णैन्दुमण्डलाकारं चतुरस्रां मनोहराम् । मर्षान्द्रसारनिर्माणां हीरासारसुशोभिताम् ॥
 अमूल्यरत्नखचितारचिताम्बेच्छ्याहरेः । माणिस्यमालाजालाद्वरामुक्तायंकिविभूषिताम् ॥
 मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः ।

विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिणाम् । पद्मरागेन्द्रचिनैरचितांपद्मचित्रिभिः ॥१६६॥
 सोपावशतकेयुंकां स्यमन्तकविनिर्मितैः । पट्टमृत्रप्रन्थियुतैश्चारुचन्दनपाशुवैः ॥१७०॥

इन्द्रनीलग्निस्तम्भैर्वेष्टितां सुमनोरमाम् । सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम् ॥
 पारिजातप्रसूनाना मालाजालैर्विराजिताम् । कस्तूरीकुङ्कुमाकैश्च सुगन्धचन्दनद्रवैः ॥
 सुसंस्कृतान्तु सर्वत्र घासितां गन्धवायुना । विद्याधरीसमूहानां सङ्गीतैश्च मनोहराम् ॥
 सहस्रयोजनायामा परिपूर्णाञ्च किङ्करैः । ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शङ्करैश्च सुरैः सह ॥१७४
 वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुतारकावृतम् । अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥१७५
 किराटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् । शङ्खचक्रगदापद्धारिणं च चतुर्भुजम् ॥१७६
 नवीननीरदश्यामं सुन्दरं सुमनोहरम् । अमूल्यरत्ननिर्माणसर्वभूषणभूषितम् ॥१७७॥
 चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं विभ्रन्तं केलिपङ्कजम् । पुरतो नृत्यगीतश्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥
 शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपद्मबुजम् । भक्तप्रदत्तामूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥
 गङ्गाया परया भक्त्या सेवित्रं श्वेतचामरैः । सर्वैश्च स्तूयमानञ्च भक्तिनम्रात्मकन्धरैः ॥
 एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं विभुम् । ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टबुस्तदा ॥
 पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साधुनेत्राः सगद्गदाः । भक्त्यापरमयामकामीतानम्रात्मकन्धराः ॥
 पुटाञ्जलियुतो भूत्वा विघाता जगतामपि । वृत्तान्तं कथयामास वितयेन हरैः पुरः ॥
 हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभावविन् । प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यञ्च मनोहरम् ॥

श्रीभागवानुवाच ।

शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज । मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥
 सुराः शृणुन् तत्सर्वमितिहासं पुरातनम् । गोलोकस्यैवचरितं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥
 सुदामा नाम गोपश्च पार्यदप्रवरो मम । स प्राप दानवीर्योर्तिराधाशापात् सुदारपान् ॥
 तत्रैकदाहमगमं स्वालयाद्रासमण्डलम् । विहाय मानिनां राधांममप्राणाधिकांपराम् ॥
 सा मां विरजया साहै वित्राय किङ्करीमुद्रान् । पश्चान्कृधासाजगाममाददर्शंचतत्रच ॥
 विरजाञ्च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम् । पुनर्जगामसारप्रास्वालयंसर्षाभिः सह ।
 मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदामसहितं पुरा । भृशं मां भर्त्सयामासमौनीभूतञ्च मुषिणम् ॥
 तच्छ्रुत्वा च सुमहांश्च सुदामातांशुकोप ह । सचनामन्त्संयामासकोपेनममसन्निर्धो ॥
 तच्छ्रुत्वा सा कोपयुक्ता रक्तपङ्कजलोचना । घहिल्कर्तुंश्चकाराज्ञां संनस्ताममसंसदि ॥

सखीलक्षं समुत्तम्यौ दुर्वारं तेजसोऽज्वलम् । बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तञ्चपुनःपुनः ॥
 सा च तद्बन्धनं ध्रुत्वा समासृष्टा शशापतम् । याहि रे दानवीयोनिमित्येवंदास्यं ध्रुवः ॥
 तं गच्छन्त शपन्तश्च ह्यन्तं मां प्रणम्य च । धारयामास सा तुष्टा ह्यन्ती कृपया पुनः ॥
 हेवत्स ' तिष्ठमागच्छकयासीतिपुन पुनः । समुच्चार्य्यचतनृपश्चात्जगामसाचविस्मिताः ॥
 गोप्यध्वरदु सर्वागोपाश्चेतिसुदुःखिताः । तेसर्वैराधिकाचापितनृपश्चादुयोधितामया ॥
 आयास्यतिक्षणार्द्धेनकृत्वाशापस्यपालनम् । सुदामन्त्वमिहागच्छेत्युवाचसा निवारिता ॥
 गोलोकस्य क्षणार्द्धेन चैकमन्वन्तरं भवेत् । पृथिव्यां जगतां धातरित्येवं ध्रुवन्धुवम् ॥
 स एव शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रैव यास्यति । महाबलिष्ठो योगीशः सर्वमायाविशारदः ॥
 मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छथ भारतम् । शिवः करोतु संहारं मम शूलेनदानवम् ॥
 भ्रमेव कथंच कण्ठे सर्वमङ्गलमङ्गलम् । विभर्त्तिदानवः शश्वन्संसारविजयीततः ॥२०३
 तत्र ब्रह्मन् स्थिते कण्ठे न कोऽपिर्हिसितुंक्षमः । तत्राञ्जांहिकरिप्यामिबिप्ररूपोऽहमेवच ॥
 सर्वात्त्वमङ्गस्तनृपन्त्या यत्र काले भविष्यति । तत्रैवकालेतन्मृत्युरितिदत्तोचरस्त्वया ॥
 तन्पन्त्याश्चोदरे धीर्यसर्पयिष्यामि निश्चितम् । तन्क्षणेनैवतन्मृत्युर्भविष्यतिनसंशयः ॥
 पश्चान् सा देहमुन्मृज्य भविष्यतिप्रियामम । इत्युक्त्वाजगतांनाथोदशूलंहरायच ॥
 शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिर्भन्तरं मुदा । भारतश्च ययुर्वेदा ब्रह्मरूपुरोगमाः ॥२०८।
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

शिवेन सह शङ्खचूडस्य मुद्गार्थं पुष्पदन्तप्रेरणम् ।

नारायण उवाच ।

ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च । जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानंमहामुने ॥
 चन्द्रमागानदीर्गरे घटमूले मनोहरे । तत्र तस्यो महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥२१॥

दूतं कृत्वा पुण्यदन्तं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम् । शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिकमुदा ॥
स चैश्वरान्या शीघ्रं ययौ तन्नगरं वरम् । महेंद्रनगरोत्कृष्टं कुबेरमवनाविकम् ॥२॥
पद्मयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्यं तद्द्विगुणमुने । स्फाटिकाकारमणिभिर्निर्माणमणिवेष्टितम् ।

सप्तभिः परिष्वाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥५॥

ज्वलदग्निनिभैः शश्वज्ज्वलितं रत्नकोटिभिः । युक्तञ्च धीयिशतकर्मणिवेदिसमन्वितैः ॥
परितो यणिजां संघैर्नानावस्तुविराजितैः । सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितैश्चविचित्रितैः ॥
भूपितं भूपितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः । गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं वरम् ॥८॥
अर्तावबलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमण्डलम् । ज्वलदग्निशिखामिश्च परिष्वाभिश्चतसृभिः ॥
सुदुर्गमञ्च शम्भूनामन्येयां सुगमं सुखम् । अन्युच्चैर्गगनस्पर्शमणिप्रार्चीखेष्टितम् ॥१०॥
राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितैः । रत्नकृत्रिमपद्मालयै रत्नदर्पणभूपितैः ।

मर्षान्तरनिर्माणैः शोभितं लक्ष्मन्दिरैः ॥११॥

शोभितं रत्नसोपातैः रत्नस्तम्भविराजितैः ।

रत्नविभ्रकवाटयैः सटलकलसान्वितैः । रत्नेन्द्रविभ्रराजिभिः सुदीप्ताभिर्विराजितैः ॥

परितो रक्षितं शश्वदालयैः शतकोटिभिः ।

दिव्यान्त्रवारिभिः शूरैर्महाबलपरामैः । सुन्दरैश्च सुपेशैश्च नानालङ्कारभूपितैः ॥१३॥

तान् दृष्ट्वा पुण्यदन्तोऽपि चग्द्वारं ददर्श सः । द्वारे नियुक्तं पुरयं शूलहस्तञ्च सस्मितम् ॥

निश्रुत्वा पिद्मलाक्षञ्च तात्रवर्णं भयङ्करम् । कथयामास वृत्तान्तं जगाम तदनुजया ॥१५॥

अत्रिप्रस्य नगद्वारं जगामाभ्यन्तरं पुग्म् । न कैश्च रक्षितं श्रुत्वा दूतरूपं रणस्य च ॥१६॥

गत्वा सोऽभ्यन्तरं द्वारं द्वारपालमुवाच ह । रणस्य सर्ववृत्तान्तं विजापयितुर्नाश्वरम् ॥

स च तं कथयित्वा च दूतं गन्तुमुवाच ह । स गत्वा शङ्खचूडान्तं ददर्श सुमनोहरम् ॥

सनामग्द्वारस्य स्वर्णसिंहासनम्वितम् । मर्षान्तरनिर्विनंवित्रंरत्नदण्डसमन्वितम् ॥

रत्नकृत्रिमपुण्यैश्च प्रशन्नं शोभितं सदा ।

भूत्येन मन्मथन्यस्तं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम् ॥ २० ॥

सेनितं पारंगणैर्व्यज्जितैः श्वेतचामरैः । सुवेशं सुन्दरं रण्यं रत्नभूषणभूपितम् ॥ २१ ॥

माल्यानुलेपन मृदानमस्त्रञ्च दधनं मुने । दानवेन्द्रैः परिकृतं सुपेशैश्च त्रिकोटिमिः ॥
 गतकोटिमिगन्धैश्च व्रमद्भिस्त्रधारिभिः । एवंमूतञ्च तं दृष्ट्वा पुण्यदन्तः सविस्मयः ॥२३॥

उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च ॥ २४ ॥

पुण्यदन्त उवाच ।

राजैश्च शिरद्वयोऽह पुण्यदन्तानिचः प्रभो । यदुक्तं शङ्करेणैव तद् ब्रवीमि निशामय ॥
 राज्यदेहि च देवातामिषारञ्च साम्प्रतम् । देवाश्च शरणापन्ना देवेशे श्रीहर्षे परे ॥६॥
 वन्द्या त्रिशूल हरिणा तर प्रस्थापितः शिवः । चन्द्रमागानर्दीर्तारे चटमूले प्रिलोचनः ॥
 विषयं देहि तेषाञ्च युद्धवाकुरुनिश्चिन्म् । गन्वानध्यामिर्किशम्भुं तद्मगान् वक्तुमर्हसि ॥
 दूतस्य वचन ध्रुत्वा शङ्खचूटः प्रहस्य च । प्रमानेऽहं गमिष्यामि त्वञ्च गच्छेयुवाच ह
 स गन्वांवाच तूर्णं तं चटमूलधर्माङ्गरम् । शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं यत् परिलुटदम् ॥
 प्तस्मिन्नन्तरेऽस्मिन् आगतगाम शिवान्तिरुम् । यीत्सेद्रश्च नन्दी च महाकालःसुमद्रश्च
 विशालाक्षश्च बाणश्च पिङ्गलाक्षो विकल्पनः ।

विष्णो विहृतिस्त्रैव मणिमद्रश्च चाम्बल ॥ ३२ ॥

कपिलाक्षो ईर्षदष्टो विकटन्ताप्रलोचनः ॥ ३३ ॥

कालिङ्को यलोमठः कालजिह्वः कुटीचरः । यद्योन्मत्तो रणरुद्रयो दुर्जयो दुर्गमन्तथा
 भद्रो च भौषा गीद्रालाञ्चैसादशम्भुनाः । वसधोवासवाशाश्चआदिन्याद्वादशम्भुताः
 हुताशनश्च चन्द्रश्च विव्यक्त्रांष्ट्रिभो च तौ । कुपेश्च यमस्त्रैव जयन्तो नश्रु ॥६॥
 वानुश्च वरुनश्चैव बुधश्च मङ्गलम्वया । धर्मश्च शनिर्षहानः कामदेवश्च वीर्यवान्
 उपरंष्ट्रा सोमश्चन्द्रा कौटुर्ग कौटुर्नी तथा । स्वयं शतनुजा देवी मद्रकाली भयदुर्वा
 रक्षेत्रमारनिर्जाजपिनातोपणि मण्डिता । मन्त्रयस्त्रपरीयाना रत्नमान्यानुपेता ॥३३॥
 नृत्पन्तो च हसन्तो च गायन्तो मुन्वरं मुद्रा । जनयं ददतो भक्तमया सा भयं गिपुम्
 निम्नती विकटां जिहां सुदोलां योजनायतान् । स्पर्शं वक्तुं क्वारं गर्भारं योजनायतम्
 विदुलं गगतम्यर्शि शक्तिञ्च योजनायतान् । शङ्खं चक्रः गदा पद्म शार्ङ्गश्चापं भयदुर्तम् ॥
 मुदरं मुण्डं चक्रं मङ्गं फलकमुच्चयम् । वैष्णवाञ्च वाहनान्श्च चक्रिञ्च नागपौरुषम् ॥

नारायणस्त्रं ब्रह्मास्त्रं गान्धर्वं गारुडं तथा । पार्जन्यञ्च पारुपतं जृन्मपास्त्रञ्च पार्वतम्
माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं सम्मोहनन्तथा । अन्न्यर्ममस्त्रशतकं दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥

आगत्य तत्र तप्स्यी सा योगिनीनां त्रिकोटिमिः ।

साहं वै डाकिनीनाञ्च विकटानां त्रिकोटिमिः ॥ ४६ ॥

भूताःप्रेताः पिशाचाश्च कुम्भाण्डाग्रहाराक्षसाः । वेतालाश्चैव यक्षाश्चराक्षसाश्चैरकिन्नराः
तामिश्चैव सह स्कन्दः प्रणम्य चन्द्रशेखरम् । पितुः पार्श्वे समायाञ्चसमुवासभवान्जया
अथ दूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान् । उवाच तुलसीं वार्त्तां गन्वान्म्यन्तरेणैव च ॥
रपवार्त्ताञ्च सा ध्रुवा शुक्ककण्ठीष्टनालुका । उवाच मयुरं साध्वी हृदयेन विदूयता
तुलस्युवाच ।

हे प्राणनाथ हे बन्धो तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम् । हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवनक्षणम्
भुङ्क्ष्व जन्मसमाधानं यद्वै मनसि वाञ्छितम् ।

पश्यामि त्वां क्षणं किञ्चिद्भोचनाभ्यां पिपासिता ॥ ५२ ॥

थान्दोलयन्ति प्राणा मे मनोदग्धञ्च सन्ततम् । दुःस्वप्नञ्च मया दृष्टञ्चायैव चरमे निशि
तुलसीवचन ध्रुवा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः । उवाच वचनं प्राज्ञोहितं सत्यंयथोचितम्
शङ्खचूड उवाच ।

कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनियन्त्रेण । शुभं हर्षं सुखं दुःखं भयं शोकममङ्गलम् । ५५
काले भवन्ति वृष्टश्च स्कन्धवन्तश्च कालतः । क्रमेण पुत्रवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः
ते सर्वे फलिनः काले काले कालं प्रयान्ति च ।

भवन्ति काष्ठे भूतानि काले काष्ठं प्रयान्ति च ॥ ५७ ॥

काष्ठे भवन्ति विज्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि ॥ ५८ ॥

काले मृज्जते स्रष्टा च पाता पाति च कालतः । संहर्त्ता संहरेन् कालेसञ्चरन्तिमेणते
ब्रह्मविष्णुशिवार्दीनामीश्वरः प्रकृतेः परः । स्रष्टा पाता च संहर्त्ता स कृत्वाशेन सर्वदा
काले स एव प्रकृतेर्निर्मायस्येच्छयाप्रभुः । निर्मायप्रकृतान्त्वान्निविज्वस्यांश्चराचरान्
आप्रहन्तम्भस्पर्शनं सर्वं कृत्रिममेव च । प्रयदन्ति च काष्ठेन नश्यत्यपि हि नश्यन् ॥

भज सत्य पर ब्रह्म राधेश त्रिगुणात्परम् । सर्वेश सर्वरूपश्च सर्वात्मानन्तमीश्वरम् ॥
 जल जलेन सृजति जलं पाति जलेन य । हरेज्जल जलेनैव त वृष्ण भज सन्ततम् ॥
 यस्याज्ञया वाति वात शीघ्रगामीवसन्ततम् । यस्याज्ञया च तपनस्तपयेव यथाक्षणम्
 यथाक्षणं वर्धतेन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु । यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति भीतवत् ॥
 मृत्यामूलं कालमूलं यमस्य च यम परम् । विभु स्रष्टुश्च स्रष्टारं पातुश्च पालकं भवे ॥
 सहस्रारश्च सहस्रं स्त वृष्ण शरणं व्रज । कौ बन्धुश्चैव केषां वा सर्वबन्धु भज प्रिये ॥
 अहं कौ वा च त्वं कवा विधिनायोजितं पुरा । त्वयासाद्धर्ममणाचपुनस्तेननियोजितं
 भङ्गानी कातरं शोभे विपत्तौ च न पण्डित । सुखं दुःखं भ्रमत्येव चरुनेमिक्रमेण च
 नारायणं त सर्वेशं कान्तं प्राप्स्यसि निश्चितम् । तपं वृतं यदर्थं च पुरा यदरिक्वाश्रमे
 मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणश्च घरेण हि । हरेरर्थं तत्र तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि
 वृन्दावने च गोविन्दगोलनेत्वलभिष्यसि । अहं यास्यामितल्लोकतनुत्पनवाचदानधीम्
 तत्र द्रक्ष्यसि मां त्यज्य त्वां च द्रक्ष्यामिसन्ततम् ।

आगमं राधिकाशापात् भारतञ्च सुदुर्लभम् ॥ ७४ ॥

पुनर्यास्यामि तत्रैव क शंको मे शृणु प्रिये । त्वं हि देहं परित्यज्य दिव्यरूपविधायकं
 तन्कालं प्राप्स्यसि हरिं मां कान्ते कातराभव । इत्युक्तवान्दिनान्तेचतयासाद्धर्ममनोहरं
 सुष्याप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते । नानाप्रकाराविभये चचार रत्नमन्दिरे ॥ ७७ ॥
 रत्नप्रदीपसयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दराम् । निनाय रजनीं राजा क्राटाकोत्तुकमङ्गलं ।
 वृत्वा वक्षसि कान्तां तां रदन्तामतिदुःखिताम् ।
 शशोदरीं निराहारां निमग्रां शोकसागरं ॥ ७९ ॥

पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानवित् । पुरा वृष्णेन यद्वत्तं भाण्डीरं तत्त्वमुत्तमम्
 स च तस्यै देवी तच्च सर्वशोकहरं परम् । ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नयदनेक्षणाम्
 कीडाञ्ज्वार हर्षेण सत्रं मत्वातिनश्वरम् । तौ दम्पती च क्राडासीं निमग्रां सुखसागरे
 पुत्रकाङ्क्षितसवाद्गौ मूर्च्छितौ तिर्जनं मुने । अद्भुतप्रवृत्तयुक्तौ सुप्रार्तौ सुगतात्सुक्तौ ॥
 एकाद्गौ च तथा तौ हौ चार्द्धनारीचरौ यथा । प्राणेश्वरश्च तुलसीमनेप्राणाधिकपरम्

प्राणाधिकाञ्च तां मेते राजा प्राणाधिकेऽश्वरीम् ।

तौ स्थितौ मुखसुप्तौ च तन्त्रितौ सुन्दरौ समौ ॥ ८५ ॥

सुवेशौ मुखसम्भोगादचेष्टौ सुमनोहरौ । क्षणं सचेतनौ तौ च कथयन्तौ रसाश्रयाम्

कथां मनोहरां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः ॥ ८६ ॥

उक्तवन्तौ च ताम्बूलं प्रदत्तं च परस्परम् ॥ ८७ ॥

परस्परं सेवितौ च सुप्रीत्या ज्वेतचामरैः । क्षणं शयानौ सानन्दौ वसन्तौ च क्षणंपुनः

क्षणं केलिनियुक्तौ च रसभावसमन्वितौ । मुरतेर्विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपण्डितौ ॥

सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ ॥ ९० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने

तुलसीशङ्खचूडसम्भोगो नाम सतदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः

शिवेन सह युद्धार्थं शङ्खचूडस्य कथोपकथनम् ।

नारायण उवाच ।

रीरुष्णमनसाश्रयात्वा राजा रुष्णपरायणः । ब्राह्मेमुहूर्त्तं उत्थाय पुष्पतल्यान्मनोहरान्

पत्रिवास परित्यज्यह्लात्त्वामङ्गलवारिणः । धौतेचवाससीधृत्वाहृत्वातिलकमुञ्ज्वलम् ।

वक्राराहिकमावश्यमभीष्टदेववन्दनम् । दध्याञ्जं मधु लाजञ्च ददर्श वस्तु मङ्गलम् ॥ ३॥

एतश्चेष्टं मणिश्चेष्टं वस्त्रश्चेष्टञ्च काञ्चनम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यञ्च नारद ॥

अमृत्यरत्नं यन्किञ्चित् मुक्तामणिस्पर्शरकम् । ददौ विप्राय गुरवे यात्रामङ्गलहेतवे ॥ ५॥

गजजलमश्वरत्नं धेनुरत्नं मनोहरम् । इदौ सर्वं ददित्वाय विप्राय मङ्गलाय च ॥ ६ ॥

भाण्डारानां सहस्रञ्च नगराणां त्रिलक्षकम् । ग्रामाणां शतकोटिञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा

पुरं शृत्वाच राजेन्द्रं सुवन्दं दानवेषु च । पुत्रे समर्प्य भार्याञ्च राज्यञ्च सर्वसम्पदम् ॥

प्रजानुचरसंघञ्च भाण्डारवाहनादिकम् । स्वयं सत्राहयुक्तश्च धनुष्याणिर्वभूव ह ॥ ६॥
 भृत्यद्वारा क्रमेणैव चकार सैन्यसञ्चयम् । अश्वानाञ्च त्रिलक्षेण पञ्चलक्षेण हस्तिनाम् ॥
 रथानामयुनेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिमिः । त्रिकोटिभिश्चर्मिणाञ्च शूलिनाञ्च त्रिकोटिमिः ।
 कृता सेनापरिमिता दानवेन्द्रेण नारद । तस्यां सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः ॥ ११॥
 महारथ सविज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे । त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः ॥
 त्रिशदक्षौहिणीं वाद्यभाण्डांश्च चकार ह । बहिर्वभूव शिविरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥
 रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानमहाहोह सः । गुरुरगान् पुरस्कृत्य प्रथमो शङ्करान्तिकम् ॥
 पुष्पमद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः । सिद्धाश्रमञ्च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रञ्च नामत ॥
 कपिलस्य तपस्थानं पुण्यक्षेत्रञ्च भारते । पश्चिमोदधि पूर्वं च मलयस्य च पश्चिमे ॥
 श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे । पञ्चयोजनविस्तीर्णां दैर्घ्यं शतगुणा तथा ॥
 शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा ॥ १८ ॥

लयणोदप्रियाभाष्यां शश्वत्सौभाग्यसंयुता । शुद्धस्फटिकसङ्काशा भारते च सुपुण्यदा ।
 शारणतीमिथिता च निर्गतासा हिमालयात् । गोमन्तं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ
 तत्र गत्वा शङ्खचूडो ददर्श चन्द्रदीपकम् । घटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ २१ ॥
 कृत्वा योगासनं स्थित्वा मुद्रायुक्तञ्च सस्मितम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं ज्वलन्तं ब्रह्मैतजसा
 निशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं धरम् । ततकाञ्चनवर्णामं जटाजालञ्च विभ्रतम् ॥ २३ ॥
 त्रिनेत्रं पञ्चदन्त्रञ्च नागयज्ञोपवीतितम् । मृत्युञ्जयं मृत्युमृत्युं विश्वमृत्युकरं परम् ॥
 भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोरमम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
 आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तनुग्रहकारणम् । विश्वनाथं विश्वरूपं विश्वधीजञ्च विश्वजम् ॥
 विश्वम्भरं विश्वधरं विश्वसंहारकारणम् । कारणं कारणानाञ्च नरकार्णवतारणम् ॥ २७ ॥
 ज्ञानप्रदं ज्ञानवीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् । अचरहा विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानेश्वरः ॥ २८ ॥
 सर्वैः सादंमक्तियुक्तः शिरसाग्रणनामसः । वामतो मद्रकालीञ्च स्कन्दञ्च तन् पुरःस्थितम्
 आशिषञ्च ददौ तस्मै फाली स्वन्दश्च शङ्करः । उन्नम्युदानं तं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः ॥
 परम्परञ्च सम्भाषते च नुस्तत्र सांप्रतम् । राजारण्याच्च सम्भाषामुवाच शिवसन्निधौ ॥

प्रसन्नाहना महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥ ३२ ॥

श्रीनहादेव उवाच ।

विधाताजगतां ब्रह्मा पिताधर्मस्य धर्मविन् । मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापि धार्मिकः ।
कम्यपश्चापितनुपुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापति । दक्षप्रीत्याददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश
तास्वेका च दनु साञ्ची तन् सीमाग्येन च वर्द्धिता ।

चत्वारिंशद्दशोः पुत्राः दानवास्तेजसोऽञ्जलाः ॥ ३५ ॥

तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबन्धुराक्रमः । तत्पुत्रो धार्मिको दंभो विष्णुभक्तोजिनेन्द्रिय ।
जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम् । शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
तदात्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम् । पुरा त्वं पार्यदो गोपो गोरेष्वष्टसु धार्मिकः ॥
अधुना रात्रिकाशापात् भारते दानवेश्वरः । आग्रहस्तम्भस्पर्शन्तं भ्रमं मेनेव वैष्णवः ॥
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसार्मीर्षैक्यं हरेरपि । दीयमानं न गृह्णन्ति वैष्णवाः सेवनं विना ॥
ब्रह्मन्वमनन्त्रं वा तुच्छं मेने च वैष्णव । इन्द्रत्वं वा कुबेरत्वं न मेने गणनासु च ॥
कृष्णमक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे । देहि राज्यञ्च देवानां मन्प्रीतिं कुरु भूमिप ।
सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठन्तु स्वपदे । अलं भ्रातृविरोधेन सर्वे कश्यपं शजा ।
यानिकानि वपापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । ज्ञातिद्रोहम्यपापत्यकलां नार्हन्ति रोडृशीम्
स्वसम्पदाञ्च हानिञ्च यदि राजेन्द्र मन्यसे ।

सर्वावस्थानु समता केगं याति च सर्वदा ॥ ४५ ॥

ब्रह्मन्वश्च निरोभावो लये प्राकृतिके सति । आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभवेदीश्वरेच्छया ॥
ज्ञानं बुद्धिश्च तपसा स्मृतिर्ज्ञानस्य निश्चितम् । करोति सृष्टिज्ञानेन नृशशासोऽपि क्रमेण च
परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रयः सदा । त्रिभागः सोऽपि त्रैतायां द्विभागो द्वापरैस्सृष्टः
एकभागः कालेः पूर्वं तद्ग्रासश्च क्रमेण च । कलामात्रं कालेः शेषे कुङ्गाचन्द्रकला यथा
यादृक्तेजोर्वेग्रीष्मे न तादृक्शिशिरे पुनः । दिने च यादृक्कृष्णध्याङ्गसायं प्रातर्न तत्समम्
उद्यं यातिकालेन बाल्यताञ्च क्रमेण च । प्रकाण्डताञ्च तन्पश्चात् कालेऽस्लं पुनरेव सः
दिने प्रच्छन्नता याति काले च दुर्दिने धने । राहुप्रस्ने कम्पितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् ॥

परिपूर्णतमश्चन्द्र पूर्णिमायाश्च यादृश । तादृशो न भवेन्नित्यं क्षयं याति दिने दिने ॥
 पुनः स पुष्टिता याति परकुह्ला दिने दिने । सम्पद्भ्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्चयश्मणा
 राहुप्रस्ते दिने म्लानोऽदुर्दिने निविडे घने । काले चन्द्रो भवेत् शुद्धोऽभ्रएथीः कालभेदके
 भविष्यति बलिग्नेन्द्रोऽभ्रएथीःसुतलेऽधुना । कालेनपृथ्वीशस्याढ्यासर्वाधारावसुन्धरा
 काले जने निमग्रा सा तिरोभूता विपद्गता । काले नश्यन्ति विश्वानिप्रभवत्येवकालतः
 चराचराश्च कालेन नश्यन्ति प्रभवन्ति च । ईश्वरस्यैव समता कृष्णस्य परमात्मनः ॥
 अह मृत्युञ्जयो यस्मादसंशयं प्राकृतं लयम् । अदर्शाञ्चापि द्रक्ष्यामि धारं धारं पुनः पुनः
 स च प्रकृतिरुपश्च स एव पुरुष स्मृतः । स पात्मा सर्वजीवश्च नानारूपधरः परः ॥६०॥
 करोति सततं योहि तन्नाम गुणकीर्तनम् । कालं मृत्युं स जयतिजन्मरोगं जरामयम्
 नष्टा कृतौ विधिस्तेन पाताविष्णुर्नोभवे । अहं कृतश्च संहर्ता वयं विषयिणः यतः ॥

कालाग्नि रद्रं संहारे नियुज्य विषये नृप ॥ ६२ ॥

अहङ्करोमि सततं तन्नाम गुणकीर्तनम् । तेन मृत्युञ्जयोऽहश्च हारनेनानेन निर्मयः ॥६३॥
 मृत्युर्मत्तो भयाद् याति घनतेयादियोरगः । श्लथुन्वा स च सर्वेशः सर्वज्ञः सर्वभावनः
 विग्राम च शर्वश्च समाभ्ये च नास्ति । राजा तद्बचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः ॥

उवाच मधुरं देवं पद्मं विनयपूर्वकम् ॥ ६६ ॥

शङ्खचूड उवाच ।

त्वयायत्कथितं नाथ सर्वसत्यं च नानृतम् । तथापिकिञ्चिदाथार्थ्यं श्रूयतां मग्निघेदनम्
 शान्तिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुनात्र यत् । गृहीत्वा तस्यसर्वस्वंकुलप्रस्थापितोऽनी
 मया समुद्रधृतं सर्वमैश्वर्यं विक्रमेण च । सुतलाद्य समुद्रर्तुं नालं सोऽपि गदाधरः
 सप्रानृको हिरण्याक्षः कथं दैवैश्चाहंसितः । शुम्भादयश्चासुराश्च कथं देवैर्निपातिताः
 पुरा समुद्रमथनेऽपीयूषं भक्षितं सुरैः । ज्ञेशभाजो वयं तत्र तैः सर्वफलभाजनैः ॥ ७१ ॥
 कीडामाण्डमिदं विश्वं कृष्णम्यपरमात्मनः । यस्मै तत्र स ददाति तस्यैश्वर्यं मयेत्तदा
 देवदानवयोर्बाहूः शश्वधैर्मित्तिकः सदा । पराजयो जयन्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च
 तत्राद्ययोर्विरोधे च गमनं निःफलं तव । समसम्यग्निर्नोर्नधोरीश्वरस्य महात्मनः ॥

इयं ते महती लज्जा स्पर्द्धास्माभिः सहाधुना । ततोऽधिकावसनरे कीर्त्तिहानिपराजये
शङ्खचूडवचः श्रुत्वा प्रहस्य च निलोचनः । यथोचितं सुमधुरमुवाच दानवेश्वरम् ॥

श्री महादेव उवाच ।

युष्माभिः सह युद्धं मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः । का लज्जा महती राजन्नकीर्त्तिर्वा पराजये
युद्धमार्तो हरैरेव मधुना कैटभेन च । हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप ॥७८॥
हिरण्याक्षस्य युद्धञ्च पुनस्तेन गदाभृता । त्रिपुरैः सह युद्धञ्च मया चापि पुराहृतम् ॥
सर्वेऽप्यर्थाः सर्वमानुः प्रकृत्याश्च बभूव ह । सह शुम्भादिभिः पूर्वं समरं परमाद्भुतम्
पार्षदप्रवरस्त्वञ्च कृष्णस्य परमात्मनः । ये ये हताश्च ते दैत्या नहि कैऽपिन्वया समाः
का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वयासह । सुराणां शरणस्यैव प्रेषितस्य हरैरहो ॥
देहि राज्यञ्च देवानां धाग्व्यथेर्किप्रयोजनम् । युद्धं त्वं कुस्मन्सार्द्धमितिमेनिश्चिन्तवचः
इत्युक्त्वा शङ्खस्तत्र विरराम च नारद । उत्तमौ शङ्खचूडश्च स्वामान्यैः सह सत्वर ॥
इति श्रीप्रह्लादोत्तं महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
शिवशङ्खचूडसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ।

ऊनविंशोऽध्यायः

देवानां सह शङ्खचूडस्य युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

‘द्वारं प्रजग्य शिरसा दानवेन्द्रं प्रतापवान् । समाररोह यानञ्च स्वामान्यैः सह सत्वर-
बभूवुस्ते च संसृग्वाः स्कन्दस्य शक्तिपीडया । नेदुर्दुन्दुभयं स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥
स्कन्दस्योपरि तत्रैव समरे च मयङ्कुरे । स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महद्द्रुतमुत्त्वजम् ॥ ३ ॥
दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिर्कलयम् । राजा विमानमाख्या शरवर्षञ्चकारह ॥ ४ ॥
नृपस्य शरवृष्टिश्च धनस्य वर्षणं यथा । महान् घोरान्धकारश्च चह्युत्थानं बभूव ह ॥

देवा प्रदुदुबुध्नान्ये सर्वे नन्दीश्वरादय । एक एव कार्तिकेयस्तस्यै समरमूर्द्धनि ॥
 पर्वतानाञ्च सपाणा शिलाना शाखिनान्तथा । शश्वचकार वृष्टिञ्च दुर्वाद्याञ्च भयङ्करीम्
 नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रच्छन्न शिवनन्दन । नीरदेन च सान्द्रेण सछन्नोभास्करोयथा
 धनुश्चिच्छेद स्फन्दस्य दुर्वहञ्च भयङ्करम् । वभञ्च च रथ दिव्य चिच्छेद रथघोटकान्
 मयूर जज्जरीभूत दिव्यास्त्रेण चकारस । शक्ति चिक्षेप सूर्याभातस्यवक्षसि घातिनीम्
 क्षण मूर्च्छा च सप्राप्य सलभ्य चेतनापुन । गृही चान्यदनुर्दिद्य यदस्य विष्णुना पुरा
 रत्नन्दसारनिमाण यानमारहा कार्तिक । शस्त्रमख गृहीत्वा च चकार रणमुल्लवणम् ॥
 सपाञ्च पर्वताश्चैव वृक्षाश्च प्रस्तारास्तथा । सर्वाश्चिच्छेदकोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मज
 वह्नि निर्वापयामास पार्जन्येन प्रतापवान् । रथ धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया ॥
 सन्नाह साग्निश्चैव किरिटी मुकुटोड्यलम् । चिक्षेप शक्तिमुक्ताभादानेन्द्रस्यवक्षसि
 मूर्च्छा सप्राप्य राजा च सलभ्य चेतनां पुन । आरहा वै यानमन्य धनुर्जग्राह सत्वर
 चकार शरजालञ्च मायया मायिनाम्बर । गुह्यञ्चाच्छाद्य समरे शरजालेन नारद ॥१७॥
 जग्राह शक्तिमन्यार्था शतसूर्यसमप्रभाम् । प्रलयान्निशिरारूपाविष्णोश्च तेजसावृताम्
 चिक्षेप ताञ्च कोपेन महावेगेन कार्तिके । पपात शक्तिस्तद्रात्रे वह्निराशिरिवोड्यलम् ॥

मूर्च्छा सप्राप शतया च कार्तिकेयो महावल ।

काली गृहीत्वा त क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ ॥ २० ॥

शिवस्तञ्चापि ज्ञानेन जीघयामास लीलया । ददौ बलमनन्तञ्च सचोत्तस्यै प्रतापवान् ॥
 शिव स्वसैन्य देवाश्च प्रेरयामास सत्वर । दानेन्द्रे ससैन्यैश्च युद्धारम्भो बभूव ह ॥
 स्वय महेन्द्रो युयुधे सार्द्धञ्च वृषपर्षणा । भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वर
 दग्धेन सह चन्द्रश्च चकार समर परम् । कालेश्वरेण कालश्च गोवर्णेन हुताशन ॥
 कुत्रे कालनेयेन विषयकर्मा मयेन च । भयङ्करेण मृत्युश्च सहारेण यमस्तथा ॥२५॥
 कलघिट्टेन घरणश्चञ्चलेन समीरण । युधश्च घृनपुष्टेन रत्नाक्षेण शनैश्चर ॥ २६ ॥
 जयन्तो रत्नसारेण वसधोवर्चसागणै । अश्विनी च दीप्तिमता धृत्रेण नलकृषट् ॥
 धनुर्दरेण धर्मश्च मण्डूकाक्षेण मगल । शोभाकरेणैशान पीठरेण च मन्मथ ॥२८ ॥

उत्कामुखेन धूम्रेण खड्गेनापि ध्वजेन च । कार्त्तिकमुखेन पिण्डेन धूम्रेण सह नन्दिना ।
 विश्वेन च पलाशेन चादित्या युयुधुः परम् । एकादश महास्त्राश्चैकादशभयङ्करैः ॥
 महामारी च युयुधे चोग्रदण्डादिभिः सह । नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह ॥
 युयुधुश्च महद् युद्धे प्रलये च भयङ्करे । घटमूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च ॥
 सर्वे च युयुधुः सैन्यासमूहाः सतनं मुने । रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह ॥
 उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः । शङ्करस्य च योधाश्च युद्धे सर्वे पराजिताः ॥
 देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविक्षताः । चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं दर्शौ ॥
 बलञ्च स्वगणानां चै वर्द्धयामास तेजसा । स्वयमेवन्तु युयुधे दानवानां गणैः सह ।
 अक्षौहिणीनां शतकं समरेस जघान ह । खर्परं पातयामास काली कमललोचना ॥ २५ ॥
 पर्षो रक्तं दानवानां क्रुद्धा सा शतखर्परम् । दशलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षं च घोटकम् ॥
 समादायैकहस्तेन मुखे विश्लेष लीलया । कबन्धानां सहस्रञ्च ननर्त्त समरे मुने ॥ २६ ॥
 स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविक्षताः । भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महायलपराक्रमाः ॥
 वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दम्भश्चापि विकङ्कनः । स्कन्दे न सार्द्धं युयुधुस्ते च सर्वे क्रमेण च
 काली जगाह समरं ररक्ष कार्तिकेशिवः । धीरास्तामनुजगमुश्च ते च नन्दीश्वरादयः ॥
 सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः । राज्यभाण्डाश्च बहुशः शतकोटिर्दलाहकाः ॥
 सा च गत्वा च संप्रामं सिंहनादं चकार ह । देव्याश्च सिंहनादेन प्राप्तमूर्च्छाञ्च दानवाः ॥
 अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः । हृष्टा पर्षो च माध्वीकं ननर्त्त रणमूर्द्धनि ॥
 उग्रदंष्ट्रा चोग्रचण्डा कौट्टरी च पर्षोमवु । योगिनीनां डाकिनीनां गणाः मुरगणादयः ।
 दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूडः शीघ्रमार्जिं समाययी । दानवाश्च भयंप्रापू राजातेभ्योऽभयंदर्शौ ॥

काली विश्लेष बहिञ्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।

राजा निर्वापयामास पार्जन्येनावलीलया ॥ ४८ ॥

विश्लेष घारणं सा च तर्त्तीत्रं महद्भुतम् । गान्धर्वेण च चिच्छेद् दानवेन्द्रश्च लीलया ।
 माहेश्वरं प्रविश्लेष कालीरहिशिखोपमम् । राजा जघानतच्छीत्रं वैष्णवेनावलीलया ॥
 नारायणास्त्रं सा देवी विश्लेष मन्त्रपूर्वकम् । राजा ननाम तं दृष्ट्वा चावह्य रथाद्दहो ॥

ऊर्ध्वं नगाम तच्छास्त्रप्रलयाग्निशिखोपमम् । पपात शङ्खचूडश्च भक्त्या च दण्डवद्भुवि
ब्रह्मास्त्र सा च विश्वेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम् ॥ ५२ ॥

ब्रह्मास्त्रणमहागना निर्वाणञ्च चकार ह । विश्वेपातीव दिव्यास्त्र सा देवी मन्त्रपूर्वकम्
राजा दिव्यास्त्रनागेन निर्वाणञ्च चकार ह । देवीविश्वेपशक्तिञ्च यत्नतो योजनायताम् ॥
राजा नागास्त्रनालेन शतखण्ड चकार ह । जग्राह मन्त्रपूर्वञ्च देवी पाशुपत रया ॥
निभ्रतसा निषिद्धाच चागमभूपाशारिणी । मृत्यु पाशुपतेनास्ति नृपस्यच महात्मनः ॥
यावत्स्येव कण्ठेऽस्य कवचञ्च हरेरिति । यावत्सतात्वमस्तीति सन्याश्च नृपयोपित
तावदस्य जगामृत्यु नास्तातिब्रह्मणो वर । इत्याकर्ष्यभद्रकाली न तच्चिक्षेप सा सती ।
शतस्य दानवाना जग्राहलालया क्रुधा । ग्रस्तु जगाम वेगेन शङ्खचूड भयङ्करा ॥ ५६ ॥

दिव्यास्त्रणसुनाक्षणेन वारयामास दानव । खड्ग विश्वेपसा देवी श्रीम्सूर्य्योपमपरम् ॥
दिव्यास्त्रण दानत्रेद्र शतखण्ड चकार स । पुनर्ग्रस्तु महादेवी वेगेनच जगाम तम् ॥
निवारयामासच ता सर्वसिद्धेश्वरो वर । वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ताभयङ्करी ॥ ६२
यमवाथ रथ तस्य जघान सारथिं सती । सा च शूलञ्च विश्वेप प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥
घामहस्तेन जग्राह शङ्खचूडश्च लालया । मुष्ट्या जघान त देवी महाकोपेन वेगत ॥ ६४
यन्नामत्रयथा दैत्य क्षण मूर्च्छामवाप ह । क्षणेनचेतना प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान् ।
न चकार बाहुयुद्ध देव्या सह ननाम ताम् । देव्याश्चास्त्रञ्च विच्छेदजग्राहच स्यतेजसा
नास्त्र विश्वेप ता भक्त्या मातृयुद्धघातवैष्णव ॥ ६७ ॥

गृहीत्वा दानव देवी भ्रामयिष्या पुन पुन । ऊर्ध्वं च प्रेरयामास महावेगेन कोपत ॥
ऊर्ध्वपात पपात वेगेन शङ्खचूड प्रतापवान् ॥ ६८ ॥

निषेधचसमुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् । रत्नेद्रसारनिमाण विमानान्य मनोहरम् ।
धाररोह हर्षयुक्तो न विभ्रान्तो महारणे ॥ ६९ ॥

दानवान् च क्षतन मासञ्च विपुल श्रुधा ॥ ७० ॥
पीत्याभुक्त्यामद्रकाली नगामशङ्करान्तिरम् । उवाचरणवृत्तान्त पीर्वापश्यं यथाक्रमम् ।
श्रुत्वा जहास शम्भुश्च दानवाना विनाशनम् । शस्त्रदानत्रेद्रागामरशिष्ट रणेऽधुना ॥

उद्भूतं भूमता सादं तदन्यं भुक्तर्माश्वर । संग्रामे दानवेन्द्रञ्च हन्तुं पाशुपतेन वै ॥७३॥

श्वश्वस्तव राजेति वाग् यभूवाशरीरिणा ।

राजेन्द्रञ्च महाजानी महाबलपराक्रमः ॥७४॥

न च विक्षेप मय्यस्त्रं विच्छेद मम सायकम् ॥७५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने

कार्लशङ्खचूडयुद्धे उलविंशोऽध्यायः ।

विंशतितमोऽध्यायः

शिवशङ्खचूडयुद्धम् ।

नारायण उवाच ।

शिवमन्त्रं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः । ययौ स्वयञ्च समरं सगणैः सहनारद ॥१॥

शङ्खचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवस्था च । ननाम परया भक्त्या दण्डवत् पतितो भुवि ॥

तं प्रणम्य च घेनेन विमानमारुहो ह सः । नृपं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्बहम् ॥३॥

शिवदानवयोगुल्लं पूर्णमष्टं यभूय ह । न यभूयतुर्ब्रह्मन्नतयोज्यपराजयौ ॥४॥

न्यस्तप्राञ्च भगवान् न्यस्तप्राञ्चश्च दानवः । स्थस्थः शंखचूडश्चवृषस्थोवृषभमध्यजः ॥

दानवानाञ्च शतकमुद्भूतञ्च यभूय ह । रणे ये ये मृताः जम्भुर्जावियामास तान्विभुः ॥

ननो विष्णुर्महामायावृद्धप्राज्ञरूपधृक् । आगन्ध च रणस्थानमुवाच दानवेश्वरम् ॥७॥

वृद्धप्राज्ञ उवाच ।

देहि भिक्षाञ्च राजेन्द्रमहाविप्रायसाम्प्रतम् । त्वंसर्वसम्पदांदातायभैमनसिवाच्छितम् ॥

निराहाराय वृद्धाय तृपितादानुराग्य च । पश्चान् त्वारुययिष्यामिपुनःसन्त्यञ्चकुर्विति ॥

शोमिन्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनैक्षणः । क्वचार्थो जनश्चाहमिन्युवाचेति मायया ॥

तत् श्रुत्वा दानवश्रेष्ठो ददौ क्वचमुत्तमम् । गृहीत्वा क्वचं दिव्यं जगाम हरिरेव च ॥

शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति । गत्वा तस्या माययाच धीर्याधानञ्चकार ह ॥
 अथ शम्भुर्ऋ शूत्रं जग्राह दानत्र प्रति । श्रीभूमध्याह्नमार्त्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वलम् ॥१३॥
 नागयणाधिष्ठिताप्रब्रह्माधिष्ठितमभ्यगम् । शिवाधिष्ठितमूलञ्चकालाधिष्ठितधारकम् ॥
 किष्णावलिमयुक्तं प्रलयाग्निशिखोपमम् । दुर्निवार्यञ्च दुर्द्धर्मव्यथं वैरिघातकम् ॥
 तेनसा चमत्तुल्यञ्च सर्पशस्त्रविघातकम् । शिवकेशवयोरन्य दुर्वहञ्च भयङ्करम् ॥१६॥
 धनुः सहस्र दार्षेण प्रस्थेन शतहस्तरुम् । सजीवि ब्रह्मरूपञ्च नित्यरूपमनिर्मितम् ॥१७॥
 सहस्रं सप्तब्रह्माण्डमलञ्च ह्यवलीलया । चिक्षेप घूर्णनं कृत्वा शङ्खचूडे च नारद ॥१८॥
 राजा चापं परित्यज्यर्ध्राकृष्णचरणाभ्युजम् । ध्यानञ्चकारभक्त्याचरत्त्वायोगासनधिया
 शूलञ्च भ्रमणं कृत्वा पपातदानयोपरि । चकार भस्मसात्तञ्च सरथञ्चावलीलया ॥२०॥
 राजा धृत्वा दिव्यरूपं किशोरगोपपेशकम् । द्विभुजं मुर्लीहस्तं रत्नमूषणमूषितम् ॥२१॥
 रत्नन्द्रसारं नेमाणं वेष्टितं गोपकौटिभिः । गोलोकादागतं ध्यानमास्थ्य तत्र पुरं ययी ॥
 गत्वा ननाम शिरसा राघामाधवयोमुने । भक्त्या तच्चरणाभ्युजं रासे चन्द्रावने वने ॥

सुदामानं तो च दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ ॥२३॥

तदा च चक्रतु क्रौंढे क्नेहेन परिसप्लुतो । अथ शूलञ्च वेगेन प्रययी शूलिनं धरम् ।
 शङ्करस्तेन शूत्रेण शूलपाणिर्बभूव स । स शिरस्तेन शूत्रेण दानत्रस्यास्थिजालकम् ।
 प्रणया च घेररामास तत्रगोदे च सागरे । अस्थिभिः शङ्खचूडस्य शङ्खजातिर्बभूव ह ।
 नानाप्रकाररूपा च शश्वत् पूता सुराचने । प्रशस्तशङ्खतोवञ्चदेयानां प्रातिदं परम् ॥२५॥
 तीर्थतोयस्वरूपाञ्च पवित्रं शम्भुना यिना । शङ्खशब्दो भवेद् यत्रत्रलक्ष्मीञ्च सुस्थिरौ ।
 सुस्नातं सर्पतीर्थेषु यं स्नातं शङ्खधारिणा । शङ्खे हरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खन्तो हरिः ।

तत्रैव सततं लदर्मादूर्वीभूतममङ्गलम् ।

स्त्रीणाञ्चशङ्खं त्रिभिः शूद्राणाञ्च चित्तैस्त । भानादग्रायातिर्दमा स्थलमन्यस्थलात्तं
 शिवञ्च दानत्रं हत्वा शिवत्रेकं जगाम स ॥३१॥

प्रहृष्टो कृपमाकृष्टं सगणैश्च समावृतः । सुरा स्वयिष्यं प्रापुः परमामन्दमयुता ॥३२॥
 नेदुर्दुर्दुर्भयं स्वर्गं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः । बभूव पुण्यवृष्टिश्च शिवस्योपरि सन्ततम् ॥३३॥

प्रशंसन्तुः सुरास्तञ्च मुनीन्द्रप्रचरादयः ॥३४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
शङ्खचूडस्य प्रस्तावो नाम विंशतितमोऽध्यायः ।

एकविंशतितमोऽध्यायः

तुलसीवृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम् ।

नारद उवाच ।

नारायणश्च भगवन् वीर्याधानञ्चकार ह । तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥
नारायणश्च भगवान् देवानां साधनेन च । शङ्खचूडस्य रूपेण स्मि तद्रमया सह ॥२॥
शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्या विष्णुमायया । पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तुलसीगृहम् ॥३॥
दुन्दुभि वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ । जयशब्दस्वहाराद्यौघयामास सुन्दरीम् ॥४॥
तन्भुन्वा सा च सार्धं च परमानन्दसंयुता । राजमार्गं गवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥
ब्राह्मणेभ्योऽधनंदत्वाकारयामासमङ्गलम् । वन्दिभ्योऽभिभुक्तेभ्यश्चवानिकेभ्योऽधनंदशौ ॥
अवस्था रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ । अभूत्स्वर्गनिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥५॥
दृष्ट्वा च पुनः कन्तं शान्तं कन्ता मुदाश्रिता । तत्राद्यं क्षालयामास ननामचरुोद्व ॥
रत्नसिंहासने रथे वासयामास कामुकी । ताम्बूलञ्च ददौ तस्मै कपूरादि सुवासितम् ॥
अथ मे सफलं जन्म अथ मे सरुचा क्रिया । शरणागतञ्चरणेशं पश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे ॥
सस्मिन्ना सकशाक्षश्च सकामा पुत्रकाञ्चिता । पश्यच्छ रणवृत्तान्तं कान्तं मधुरया गिरा ॥

तुलस्युवाच ।

अपंतरिभ्वचंद्रार्त्ता सार्द्धनाजी तत्र प्रभो । कथं यभूव विजयस्तन्ने ब्रूहि कृपानिधे ॥
तुलसीवचं भुञ्जा प्रहस्य कतशयति । शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाचानृतं वचः ॥२३॥

श्रीहरिख्याच ।

आचयो समर कान्ते पूर्णमद्र बभूव ह । नाशो बभूव सर्वेषा दानवानाञ्च कामिनी ॥
 प्रीतिञ्च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयो । देवानामधिकारञ्च प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा ॥
 मया गत म्वभवन शिवलोक शिवो गत । इत्युक्त्वा जगता नाथ शयनञ्च चकार ह ॥
 रमे गमापतिस्तत्र रामया सह नारद । सा साभ्यी सुखसम्भोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥
 सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच ह ॥१८॥

दर्शं पुरतो देवीं देवदेव सनातनम् । नवीनतीरदृश्याम शरत्पङ्कजलोचनम् ॥१९॥
 कोटिवन्द्यर्पलीलां रत्नभूषणभूषितम् । ईषद्धास्य प्रसन्नास्य शोभितपीतवाससा ॥२०॥
 न दृष्ट्वा कामिनी कामान्मूर्च्छां सप्रापलीलया । पुनश्च चेतना प्राप्यपुन सातिमुवाच ह ॥
 तुलस्युवाच ।

हे नाथ ! ते दया नास्ति पापाणसदृशस्य च । छत्रेन धर्मभङ्गेन ममस्वामीत्वयाहत ॥
 पापाणसदृशस्त्वञ्च दयाहीनो यन भ्रमो । तस्मान्पापाणरूपस्त्वभुविदेवमवाधुना ॥
 ये वदन्ति दयासिन्धु त्वान्ते भ्रान्ता न सशय । भक्तो विनापराज्जेनपरार्थेच कथहत ॥
 दुर्धृत्त त्वञ्च सर्वज्ञो न जानासि परव्यथाम् ।
 अतस्त्वमेकननुपि स्वमेव विस्मरिष्यति ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा च महासाभ्यी तिपत्य चरणे हरे । भृशाररोद शोकार्त्ता विललापमुष्टुर्मुहु ॥
 तन्याश्च करुणा दृष्ट्वा करुणामयसागर । नारायणस्ता बोधयितुमुवाचक्वमलापति ।
 श्रीभगवानुवाच ।

तपस्त्यया वृत्त साधि मर्द्ये भारते चिरम् । त्वर्द्ये शङ्खचूलश्च चकार सुचिर तप ॥
 कृत्वा त्वा कामिनी कामी विजहार च तत् फलात् ।
 अधुना दातुमुचिन् तवैव तपस फलम् ॥ २६ ॥

इदं शतारत्यन्त्वा च दिव्यदेह विधाय च । रासे मे रमया साहं त्व ग्मा सदृशीभव ।
 इय तनुर्नदीत्या गण्डकीति च विधुता । पूता सुपुण्यदा नृणा पुण्या भवतु भारते ॥
 तत्र पेशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्त्विति । तुलसीपेशसम्भृता तुलसीतिच विधुता ॥

त्रिलोकेषु च पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने । प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति धरानने ॥
 स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम सन्निर्यो । भवन्तु तुलसीवृक्षा वराःपुष्पेषुसुन्दरि ।
 गोलोके विरजा तीरे रासे वृन्दावने भुवि । माण्डोरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने ॥
 माथवी केतकी कुन्दमल्लिका मालतीवने । भवन्तु तरवस्तत्र पुण्यस्थानेषु पुण्यदाः ॥
 तुलसीतस्मूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे । अधिष्ठानन्तु तीर्थानां सर्वेषाञ्च भविष्यति ॥
 तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च । तुलसीपत्रपतनप्राप्तो यश्च धरानने ॥ ३८ ॥
 स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । तुलसीपत्रतोयेन योऽभियेकं समाचरेत् ॥
 सुधाग्रदसहस्रेण सा तुष्टिर्नभवेद्भरेः । या च तुष्टिर्भवेन्नृणां तुलसीपत्रदानतः ॥ ४० ॥
 गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः । तुलसीपत्रदानेन तत्फलं लभते सति ॥ ४१ ॥

तुलसीपत्रतोयञ्च मृत्युकाले च यो लभेत् ।

स मुच्यतेसर्वपापात् विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ४२ ॥

नित्यंयस्तुलसीतीर्थमुद्धत्तेभतया च यो नरः । स एव जीवन्मुक्तश्चगङ्गास्नानफलंलभेत्
 नित्यं यस्तुलसीं दत्त्वा पूजयेन्माञ्चमानवः । लक्षाश्वमेधजं पुण्यं लभतेनात्र संशयः ॥

तुलसीं स्वकरे धृत्वा देहे धृत्वा च मानवः ।

प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ४५ ॥

तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां शृङ्गाति यो नरः । पदे पदेऽप्यश्वमेधस्य लभतेनिश्चितफलम् ॥
 तुलसीं स्वकरे धृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति । स याति कालसूत्रञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
 करोतिमिध्याशपथंतुलस्याप्तो हि मानवः । स यातिकुम्भीपाकञ्चयावदिन्द्राध्वतुर्दश ।
 तुलसीतोयकणिकां मृत्युकालेच यो लभेत् । रत्नयानं समाह्वय वैकुण्ठं स प्रयाति च
 पूर्णिमायाममायाञ्चद्वादश्यांरविसंक्रमे । तैलाम्यङ्गेचास्नातेवमध्याह्ने निशिसन्ध्ययोः ॥
 अशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिवासान्वितेतराः । तुलसीयेचछिन्नन्तिनेछिन्नन्तिहरैःशिरः ।
 निरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं फर्पुण्डितं सति । श्राद्धे व्रते वा दाने वा प्रतिष्ठायां सुरार्चने ॥
 भूगतं तोयपतिनं यद्दत्तं विष्णवे सति । शुद्धन्तु तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि ॥ ५३ ॥
 वृक्षाधिष्ठात्रीदेवी या गोलोकेच निरामये । कृष्णेनसादेरहसि नित्यक्रोडां करिष्यति ।

नवधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा । लवणोदस्य पत्नी च मद्रंशस्य भविष्यति ॥५५
 त्वञ्चस्य महासाग्नी वैकुण्ठे मम सन्निधौ । रमास्यमाच रासेचभविष्यसि न संशयः ।
 अहञ्च शैलरूपी च गण्डकी तीरसन्निधौ । अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापत ॥
 वज्रकीटाश्च मया वज्रद्रुणाश्च तत्र वै । तच्छिलासुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम् ॥
 एकद्वारे चतुश्चक्रं घनमालाविभूषितम् । नवीननीरदश्यामं लक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥ ५६
 एकद्वारे चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम् । लक्ष्मीजनार्दनं ज्ञेयं रहितं घनमालया ॥ ६० ॥
 द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोप्यदेन समन्वितम् । रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं घनमालया ॥ ६१ ॥
 अतिभुद्र द्विचक्रञ्च तपोनजलदप्रभम् । दधिवामनाभिधं ज्ञेयं गृहीणाञ्च सुखप्रदम् ॥
 अतिभुद्र द्विचक्रञ्च घनमालाविभूषितम् । विज्ञेयं श्रीधरं देवं श्रीप्रदं गृहिणां सदा ॥६३॥
 स्थूलञ्च घर्तुलाकारं रहितं घनमालया । द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥६४
 मन्मथं घर्तुलाकारं द्विचक्रं वाणविश्वतम् । रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम् ॥६५॥
 मन्मथं सतचक्रञ्च छत्रनृणसमन्वितम् । राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसम्पन्नप्रदं नृणाम् ॥६६
 द्विसप्तचक्रं स्थूलञ्च नवीनजलदप्रभम् । अतन्तास्यञ्च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ६७॥
 चक्राकारं द्विचक्रञ्च सश्रीकं जलदप्रभम् । सगोप्यदं मध्यमञ्च विज्ञेयं मधुसूदनम् ॥
 सुदर्शनञ्चैकचक्रं गुणवक्रं गदाधरम् । द्विचक्रं हयवक्रात्मं हयश्रीयं प्रकीर्तितम् ॥ ६९॥
 अनीपविस्तृतास्यञ्च द्विचक्रं विकटं सति । नरसिंहाभिधं ज्ञेयं सद्यो घैराग्यदं नृणाम्
 द्विचक्रं विस्तृतास्यञ्च घनमालासमन्वितम् । लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां सुखदं सदा
 द्वारदेशे द्विचक्रञ्च सश्रीकञ्च समं स्फुटम् । वासुदेवञ्च विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम् ॥
 प्रद्युम्नं सक्षमचक्रञ्च नवीननीरदप्रभम् । शुपिरच्छिद्रबहुलं गृहिणाञ्च सुखप्रदम् ॥७३॥
 द्वे चक्रे चैकलने च पृष्ठे यत्र तु पुष्पलम् । सङ्कर्षणन्तु विज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा ।
 अनिच्छन्तु पीताभं घर्तुलञ्चातिशोभनम् । सुखप्रदं गृहस्थानां प्रददन्ति मनीषिणः ॥७५॥
 शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः । तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता ।

यानि कानि च पाषाणि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

तानि सर्वाणि नश्यन्ति शालग्रामशिलार्चनात् ॥ ७७ ॥

छत्राकारे भवेद्राज्यं चतुर्ले च महाश्रियः । दुःखञ्च शरुटाकारे शालाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥
विज्ञानस्ये च दारिद्र्यं पिङ्गले हानिरिव च । लग्नचक्रे भवेद्दुःखाधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम् ॥
घ्नं दानं प्रतिष्ठा च ध्रादञ्च देवपूजनम् । शालग्रामशिलायाश्चैवाधिष्ठानान् प्रशस्तकम् ।
सः स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामशिलातोयैर्योऽभियेकं समाचरेत् ।
सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रादक्षिण्ये भुवो यथा । सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु घनेष्वनशनेषु च ॥८२॥

तस्य स्पर्शञ्च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च ।

जीवन्मुक्तो महापूतो भवेदेव न संशयः ॥ ८३ ॥

पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति । तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ।
शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः । सुरोप्सितं प्रसादञ्च जन्ममृत्युजराहरम् ।

तस्य स्पर्शञ्च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च ।

जीवन्मुक्तो महापूतोऽत्यन्ते याति हरैः पदम् ॥ ८६ ॥

तत्रैव हृत्पिणासाद्वंमसंत्प्रप्राकृतं लयम् । पश्यत्येव हि दास्ये च निर्मुक्तोदास्यकर्मणि ।
यानिकानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । तच्च दृष्ट्वा भियायान्ति यैर्न तेयमिवोरगाः ।
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा । पुंसां लग्नं तत्पितृणां निस्तारतस्थ जन्मनः ।
शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च योलभेत् । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकंसगच्छति
निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगाद्विमुच्यते । विष्णुपादे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः ॥
शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यापाद्वं देसु यः । स याति कुर्मदंश्च यावद्ब्रह्मणो वयः ।
शालग्रामशिलां स्पृश्यास्वीकारं यो न पालयेत् । स प्रयात्यसिपत्रञ्च लक्ष्मन्वन्तराधिकम्
तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः । तस्य जन्मान्तरे काले स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्गे यो हिकरोति च । भाष्यार्हीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सततजन्मसु ।
शालग्रामञ्च तुलसीं शङ्गे मेकत्र एव च । यो रक्षति महाजानी स भवेत् श्रीहरिप्रियः ॥

सद्देव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति च ।

तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम् ॥ ९१ ॥

त्वं प्रिया शङ्खबुडस्य चैकमन्वन्तराविधि । शङ्गेन सार्द्धं त्वद्देवः केवलं दुःखदस्तव ॥

इत्युक्त्वाश्रीहरिस्ताञ्चविरराम स सादरम् । सा च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं दधारह ।
 यथाश्रीश्च तथा सा चाप्युवासहस्त्रिंशसि । प्रजगाम तथा साङ्गवैकुण्ठं कमलापतिः ।
 लक्ष्मी सरस्यती गङ्गा तुलसी चापि नारद । हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीस्वरस्य च ॥
 सद्यःस्तदेहजाता च बभूव गण्डकी नदी । हरेशेन शैलश्च तर्तीरे पुण्यदो नृणाम् ॥
 कुर्वन्तितत्रकीटाश्च शिलां बह्विधां मुने । जले पतन्ति यायाश्चजलदाभाश्चनिश्चितम् ।
 स्थलस्था. फिगला ह्येषाश्चोपतात्पादरेरिति । इत्येवंकथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्यानं
 एकविंशतितमोऽध्यायः ।

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

तुलसी पूजा विधानम् ।

नारद उवाच ।

तुलसी च जगत्पूज्या पूता नारायणप्रिया । तस्याः पूजाविधानञ्चस्तोत्रं किञ्चिन्धृतं मया
 केन पूज्या स्तुता केन पुरा प्रथमतो मुने । तथ पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो ॥
 सुत उवाच ।

नारदस्य वचं श्रुत्वा ब्रह्मस्य गरुडध्वजः । कथां कथितुमारंभे पुण्यरूपां पुरातनीम् ॥
 नारायण उवाच ।

हरिः संग्राह्य तुलसीं रमे च रमया सह । रमासमान्तां सौभाग्यां चकार गौरवेण च
 सेहे लक्ष्मीश्च गङ्गा च तस्याश्च नवसङ्गमम् । सौभाग्यं गौरवं कोपाशसेहे च सरस्यती
 सा तां जवान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ । व्रीडया स्वापमानाश्च सान्तर्दानचकारह
 सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनी सिद्धयोगिनी । बभूवादर्शन कोपात् सर्वत्र च हरेरहो ॥१॥
 हरिं दृष्ट्वा तुलसी योधयित्वा सरस्यतीम् । तदनुष्ठानं गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम्

तत्र गत्वा च स्नात्वा च तुलस्या तुलसीं सतीम् ॥ ६ ॥

पूजयामास यात्वातांस्तोत्रंभक्त्याचकारह । लक्ष्मीर्मायाकामवाणीर्वाजपूर्वं दशाक्षरम् ॥

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा ।

वृन्दावनीति डेन्तञ्च वह्निजायान्तमेव च । अनेन कल्पतरुणा मन्त्रराजेन नारद ॥११॥

पूजयेच्च विधानेन सर्वसिद्धि लभेन्नरः । घृनदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च ॥१२॥

नैवेद्येन च पुष्पेण चोपहारेण नारद । हरिस्तोत्रेण तुष्टा सा चाविर्भूय महीरहात् ॥१३॥

प्रपन्ना चरणाम्भोजे जगाम शरणं शुभम् । वरं तस्यै ददौ विष्णुर्जगत्पूज्याभवेति च ॥

अहं त्वाञ्चधरिप्यामिस्वमूर्ध्निवक्षसीति च । सर्वेत्वाधारयिष्यन्तिस्वयंमूर्ध्नि सुरादयः ॥

इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः ॥१६॥

नारद उवाच ।

किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधिक्रमम् ।

तुलस्याञ्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

नारायण उवाच ।

यन्तर्हितायां तस्याञ्च गत्वा च तुलसीवनम् । हरिःसंपूज्यतुष्टावतुलसींविरहातुरः ॥८॥

श्रीभगवानुवाच ।

वृन्दास्पाञ्च वृक्षाञ्च यदेकत्र भवन्तिव । विदुर्बुधास्तेनवृन्दामन्प्रियांतांभजाम्यहम् ॥

पुरा यभूव या देवी द्यादौ वृन्दावनेवने । तेनवृन्दावनीरयातातांसीभाग्यांभजाम्यहम् ॥

असंख्येषु चविश्वेषुपूजितायानिरन्तरम् । तेनविश्वपूजितारयांजगत्पूज्यांभजाम्यहम् ॥

असंख्यानि च विश्वानि पविप्राणिययासदा । तांविश्वपावनीदेवींविरहेणस्मराम्यहम् ॥

देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेनययाविना । तांपुष्पसारांशुद्धाञ्चद्रष्टुमिच्छामिशोकतः ॥

विश्वेयत्प्रातिमानेणभक्त्यानन्दोभवेद्ब्रुवाम् । नन्दिर्नतेनविख्यातासाप्रीताभविताहिमे ॥

यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च ।

तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रिये ॥ २५ ॥

कृष्णजीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती । तेन कृष्णजीवनीति मम रक्षतु जीवनम् ॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा तत्र तथो रमापतिः । दर्शं तुलसीं साक्षात्पादपद्मेनतांसतीम् ॥
 रुदन्तिमभिमानेन मानिनीं मानपूजिताम् । प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रंवासयामास वक्षसि ॥
 भारत्याशां गृहीत्वा च स्वालयञ्जययौहरिः । भारत्यासहतनूप्रीतिकार्यामाससत्वरम् ॥
 धरं विष्णुर्ददौ तस्यै विश्वपूज्याभवेतिच । शिरोधाप्यां च सर्वेषां चन्द्रामान्याममेतिच ॥
 विष्णोर्वरेण सा देवी परितृष्टा बभूवह । सरम्भतीतामाश्लिष्यवासयामाससन्निधौ ॥
 लक्ष्मोर्गङ्गा सस्मिता तां समाश्लिष्य च नारद । गृहं प्रवेशयामास विनयेनसतीं तदा ॥
 वृत्तां वृन्दारवनीं विश्वपावनीं विश्वपूजिताम् । पुष्पसारां नन्दिनीं च तुलसीं कृष्णजीवनीम् ॥
 पतत्रामाष्टकञ्चैतन् स्तोत्रं नामार्थसयुतम् । य पठेताञ्चसंपूज्यसोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
 कार्तिकीपूर्णिमायाञ्च तुलस्याजन्ममङ्गलम् । तत्र तस्याश्च पूजा च विहिताहरिणा पुरा ॥
 तस्याय. पूजयेत्ताञ्च भक्त्या च विश्वपावनीम् । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं सगच्छति ॥
 कार्तिके तुलसीपत्रं विष्णवे यो ददाति च । गधामयुतदानस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥

धपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत् प्रियाम् ।

यन्गुहीनो लभेन् वन्दुं स्तोत्रस्मरणमात्रतः ॥ ३८ ॥

रोगी प्रमुच्यते रोगात्पद्मो मुच्येत यन्धनात् । भयान्मुच्येत भीतस्तु पापात् मुच्येत पातकी ॥
 इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं च ॥ त्वमेव वेदज्ञानासिकाश्वशास्त्रोक्तमेव च ॥
 यद्वक्ष्ये पूजयेत्ताञ्च भक्त्या चावाहनं विना । ध्यात्वापोऽशोपचारैः ध्यानं घातकनाशनम् ॥
 तुलसीपुष्पसाराञ्च सतीं पूज्यां मनोहराम् । कृत्स्नपापेन्द्रहात्य ज्वलद्गनिशिखोपमाम् ॥
 पुष्पेषु तुलनाप्यस्या नासीद्देवीमु वा मुने । पवित्ररूपा सर्वासु तुलसीसाचकीर्तिता ॥

शिरोधाप्यां च सर्वेषामाप्सितां विश्वपावनीम् ।

जीवन्मुक्ता मुक्तिदाञ्च भजे तां हरिभक्तिदाम् ॥ ४४ ॥

इति ध्यात्वा च संपूज्यस्तुत्वा च प्रणमेद्बुधः । उक्तं तुलस्युपाख्यानं किंभूय श्रोतुमिच्छसि
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्यानं नाम

द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतमीश सुधीपमम् । यत्तुसावित्र्युपाख्यानंतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥
पुरा येन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतिप्रसः । केन वा पूजिता देवी प्रथमे कैश्च वा परे ।

नारायण उवाच ।

ब्रह्मणा वेदजननी पूजिता प्रथमे मुने । द्वितीये च देवगणैस्तत्पश्चाद्द्विदुषां गणैः ॥३॥
तथा चाश्वपतिः पूर्वं पूजयामास भारते । तत्पश्चात् पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वारण्य च ॥

नारद उवाच ।

कोवासोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केनवातेनपूजिता । सर्वपूज्याचसावित्रीतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥
नारायण उवाच ।

मद्रदेशे महाराजा बभूवाश्वपतिर्मुने । वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः ॥६॥
आसीत्तस्य महाराज्ञी महिषीधर्मचारिणी । मालतीतिचसाख्यातायथालक्ष्मीर्गदाभृतः ॥
सा च राजीमहासाध्वीवशिष्टस्योपदेशतः । चकाराराधनंभक्त्यासावित्र्याश्चैव नारद ॥
प्रत्यादेशं न सा प्राप महिषी न ददर्श ताम् । गृहं जगाम सा दुःखाद्बुद्धयेनविदूयता ॥
राजा तां दुःखितां दृष्ट्वाबोधयित्वानयेतवै । सावित्र्यास्तपसेभक्त्याजगामपुष्करंतदा ॥
तपश्चचार तत्रैव संयतः शतवत्सरम् । न ददर्श च सावित्री प्रत्यादेशो बभूव ह ॥१॥
शुभ्रावाकाशवाणीञ्च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम् । गायत्री दशलक्षञ्च जपं कुर्विति नारद ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्रजगाम पराशरः । प्रणनाम नृपस्तञ्च मुनिर्नृपमुवाच ह ॥ १३ ॥

पराशर उवाच ।

सकृजपश्च गायत्र्याः पापं दिनहृतं हरेत् । दशधा प्रजपान्नुणां द्विवाराज्यधमेव च ॥
शतधा च जपाच्चैवं पापं मासार्जितं परम् । सहस्रधा जपाच्चैवं कल्मषंयत्सरार्जितम् ॥
लक्षजन्महृतं पापं दशलक्षं त्रिजन्मनः । सर्वजन्महृतं पापं शतलक्षो विनश्यति ॥ १६ ॥

करोति मुक्तिं विप्राणां जपोद्दशगुणस्ततः । करं सर्पफणाकारं कृत्वा तु ऊर्ध्वमुद्रितम् ॥
 आतत्रमूर्ध्वमचलं प्रजपेत् प्राङ्मुखो द्विजः । अनामिकामध्यदेशाद्धो वामकमेणच ॥
 तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्यैवः क्रमः करे । श्वेतपङ्कजवीजानां स्फाटिकानाञ्च संस्कृतम् ॥

कृत्वा वा मालिकां राजन् जपेतीर्यं सुरालये ।

संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रसप्तसु संयतः ॥ २० ॥

कृत्वा गौरीचनफाञ्च गायत्र्या स्नापयेन् सुधीः ।

गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

अथवा पञ्चगव्येन स्नाता माला च संस्कृता । अथ गङ्गोदकेनैव स्नाता वा तिसु संस्कृता ॥
 पद्यं क्रमेण राजर्षे दशालक्षं जपं कुरु । साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात् ॥
 नित्यं नित्यं त्रिसन्ध्यञ्चरुष्यसि दिनेदिने । मध्याह्ने चापिसायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा ॥
 सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यद्वा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत् ॥
 नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्तेयश्च पश्चिमाम् । स गूढगृहहिष्कार्यं सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ।
 यावज्जीवनपर्यन्तं यस्त्रिसन्ध्यां करोति च । स चमूर्प्यसमो विप्रस्तेजसातपसासा ॥ २७ ॥
 तस्यादपचरजसा सद्यः पूतावसुन्धरा । जीवन्मुक्तः स तेजस्यो सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः ।
 तीर्थानि च पवित्राणि तस्य स्पर्शनमात्रतः । तत्र पापानि यान्येव चैनतेयादिवोरगाः ।
 न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरः पिण्डतर्पणम् । स्वैच्छया च द्विजातेश्च त्रिसन्ध्यरहितस्य च ॥
 विष्णुमन्त्रविहीनश्च त्रिसन्ध्यरहितो द्विजः । एकादशीविहीनश्च विपहीनो यथोरगः ॥
 नित्यं नैवेद्यभोजी च भ्रातृको वृन्धाहक । शूद्रान्नभोजी विप्रश्च विपहीनो यथोरगः ॥
 शवदाही च शूद्राणां यो विप्रो वृषलीपतिः । शूद्राणां सूपकारश्च विपहीनो यथोरगः ॥
 शूद्राणाञ्च प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः । असि जीवीमसि जीवी विपहीनो यथोरगः ।
 यो विप्रोऽवीरान्नभोजी मनुस्नानान्नभोजकः । भगजीवी चाद्दुषिको विपहीनो यथोरगः ।
 यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी । यो विद्याविक्रयी भूप विपहीनो यथोरगः ।
 सूर्योदये च द्विर्भोजी मत्स्यभोजी च यो द्विजः । शिलापूजादिरहितो विपहीनो यथोरगः ॥
 इत्युक्तवाचमुनिश्रेष्ठः सर्वपूजाविधिप्रमम् । तामुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम्

दत्त्वा सर्वे नृपेन्द्राय प्रययौ स्वालयं मुनीः । राजा सम्पूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च
नारद उवाच ।

किं वा ध्यानञ्च सावित्र्याः किं वा पूजाविधानकम् ।

स्तोत्रमन्त्रञ्च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः ॥ ४० ॥

नृपः केन विधानेन संपूज्यः श्रुतिमातरम् । वरञ्च किं वा संप्राप वद सोऽश्वपतिर्नृपः ॥
नारायण उवाच ।

ज्यैष्ठे कृष्णत्रयोदश्यां शुद्धे काले च संयतः । व्रतमेव चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समावरेत् ।
व्रतं चतुर्दशान्दञ्च द्विसप्तफलसंयुतम् । दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं तथा ॥ ४३ ॥
चस्त्रं यज्ञोपवीतञ्च भोज्यञ्च विधिपूर्वकम् । संस्थाप्य मङ्गलगटं फलशाखासमन्वितम् ।
गणेशञ्च दिनेशञ्च बहिर्हि विष्णुं शिवं शिवाम् । संपूज्य पूजयेदिष्टं घटे आवाहिते मुने ॥
शृणु ध्यानञ्च सावित्र्याश्चोक्तं प्राञ्च्यन्दिने च यत् । स्तोत्रं पूजाविधानञ्च मन्त्रञ्च सर्वकामदम् ।
सप्तकाञ्चनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा । श्रीपद्मध्याह्नमार्त्तण्डसहस्रसमसुप्रभाम् ॥ ४७
ईपद्मास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । बहिर्द्विद्वान्शुकाधानां भक्तानुग्रहकातराम् ॥ ४८
सुखदां मुक्तिदां शान्तां कान्ताञ्च जगतां विधेः । सर्वसम्पत् स्वरूपाञ्च प्रदार्त्री सर्वसम्पदाम् ।
वेदाधिष्ठातृदेवीञ्च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम् । वेदवीजस्वरूपाञ्च भजे त्वां वेदमातरम् ॥ ५० ॥
ध्यात्वा ध्यानेन चानेन दत्त्वा पुष्पं स्वमूर्द्धनि । पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावहयेद्गुप्तरि ।
दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तमन्त्रपूर्वकम् । सम्पूज्य स्तुत्वा प्रणमेद्देवं देवीं विधानतः ॥
आसनं पाद्यमर्घ्यञ्च स्नानीयञ्चानुलेपनम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥
घसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम् । मनोहरं सुतल्पञ्च देयान्येतानि षोडशः ॥ ५१ ॥
दारुसारविकारञ्च हेमादिनिर्मितञ्च यथा । देवाधारं पुण्यद्वञ्च मया नित्यं निवेदितम् ।
तीर्थोदकञ्च पाद्यञ्च पुण्यदं प्रीतिर्दमहन् । पूजाद्गभृत् शुद्धञ्च मया भक्त्या निवेदितम् ॥
पवित्ररूपमर्घ्यञ्च दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम् । पुण्यदं शङ्खतोयाकं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥
सुगन्धिघात्रीतैलञ्च देहसौन्दर्यकारणम् । मयानिवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥
मलयार्चलसम्भूतं देहशोभाविबर्द्धनम् । सुगन्धिमुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥

गन्धद्रव्योद्भव-पुण्यः प्रीतिदोदिव्यगन्धदः । मयानिवेदितो भक्त्याधूपीऽयं प्रतिगृह्यताम्
जगतां दर्शनीयञ्च दर्शनं दीप्तिकारणम् । धन्धकारध्वंसधीजं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥
तुष्टिदं पुष्टिदञ्चैव प्रीतिदं क्षुद्धिनाशनम् । पुण्यदं स्वादुरूपञ्च नैवेद्यं प्रति गृह्यताम् ॥
तामूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरसुवासितम् । तुष्टिदं पुष्टिदञ्चैव मया भक्त्या निवेदितम् ।
सुशीतलं वासितञ्च पिपासानाशकारणम् । जगतां जीवरूपञ्च जीवनं प्रतिगृह्यताम् ॥
देहशोभास्वरूपञ्च सभाशोभाविवर्द्धनम् । कार्पासजञ्च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम् ॥
फाञ्चनान्निविनिर्माणं श्रीयुक्तं श्रीकरं सदा । सुखदं पुण्यदं चैव भूपणं प्रतिगृह्यताम् ॥
नानापुष्पविनिर्माणं बहुभाससमन्वितम् । प्रीतिदं पुण्यदञ्चैव माल्यञ्च प्रतिगृह्यताम् ।
सर्वमङ्गलरूपञ्च सर्वमङ्गलदो वरः । पुण्यप्रदञ्च गन्धाढ्यो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम् ॥६८॥
शुद्धं शुद्धिप्रदञ्चैव शुद्धानां प्रीतिदं महत् । रम्यमाचमनीयञ्च मया दत्तं प्रगृह्यताम् ॥
रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम् । सुखदं पुण्यदञ्चैव सुतरपं प्रतिगृह्यताम् ॥७०॥
नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम् । फलस्वरूपं फलदं फलञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥७१॥
सिन्दूरञ्च वरं रम्यं भालशोभाविवर्द्धनम् । पूरणं भूषणानाञ्च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥
विशुद्धिप्रन्धिसंयुक्तं पुण्यमूत्रविनिर्मितम् । पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रञ्च गृह्यताम् ॥७३॥
द्रव्याण्येतानिमलेनदत्त्वास्तोत्रंपठेत् सुधीः । ततः प्रणम्य विप्रायव्रतीदद्याच्चदक्षिणाम् ॥
सावित्रीति चतुर्थ्यन्त वद्विजायान्तमेव च । लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः ॥
मध्यन्दिनोक्तं स्तोत्रञ्च सर्ववाञ्छाफलप्रदम् । विप्रजीवनरूपञ्च निबोध कथयामि ते ॥
कृष्णेन दत्ता सावित्री गोलोके ब्रह्मणे पुरा । नयाति सा तेन साङ्गं ब्रह्मलोकञ्च नारद ॥
ब्रह्मा ह्यणानया भक्त्या तुष्टाव वेदमातरम् । तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणञ्चकामे सती ॥

ब्रह्मोवाच ।

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनि । नारायणान् समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥
तेज स्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि । द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ ८०॥
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि । सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ ८१॥
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे । सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ ८२॥

विप्र पापेभ्य दाहाय ज्वलद्ग्निशिखोपमे । ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि । ८३।
 कायेन मनसायाचा यत्पापं कुरुतेद्विजः । तत्ते स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति ॥
 इत्युक्त्वाजगतां धातातत्र तस्थौ च संसदि । सावित्रीब्रह्मणासाद्धं ब्रह्मलोकंजगामसा ।
 अनेन स्तवराजेन संस्तूयाध्वपतिर्नृपः । ददर्श ताञ्च सावित्री वरं प्राप मनोगतम् ॥ ८६।
 स्तवराजमिदंपुण्यं त्रिस्त्रिंशत्यायाञ्चयः पठेत् । पाठेचतुर्णांवेदानां यत्फलंतद्ब्रह्मेदुधुधम् ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिलण्डे नारायण-नारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने
 सावित्रीस्तोत्रप्रकरणं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

द्वितीयसावित्र्या जन्मविवाहाद्युपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

स्तुत्याऽनेन सोऽध्वपतिः संपूज्य विधिपूर्वकम् । ददर्शतत्रतां देवी सहस्रार्कसमप्रभाम् ।
 उवाचसातंराजानंप्रसन्ना सस्मितासती । यथामातास्वपुत्रञ्च धोतयन्ती दिशस्त्वपाम् ॥

सावित्र्युवाच ।

जानामिते महाराज यत्तेमनसि वर्त्तते । चाञ्छितं तव पत्न्याश्च सयं दास्यामितिश्चितम् ।
 साध्वी कन्याभिलाषञ्च करोति तव कामिनो । त्वंप्रार्थयसि पुत्रञ्च भविष्यतिक्रमेणते ।
 इत्युक्त्वा सा महादेवी ब्रह्मलोकं जगाम ह । राजा जगामस्वगृहंतत्कन्याऽऽदौ यभूवह ।
 धाराधनाच्च सावित्र्यायभूय कमलाकला । सावित्रीति च तन्नाम चकाराध्वपतिर्नृपः ।
 कालेन सा वर्द्धमाना यभूय च दिने दिने । रूपयोवनसम्पन्ना शुक्ले चन्द्रफला यथा ॥
 सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा । सावित्री च सत्ययन्तं नानागुणसमन्वितम् ।
 राजा तस्मै ददौ ताञ्च रत्नभूषणभूषिताम् । स च साद्धं यौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ ।
 स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान् सत्यविक्रमः । जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहपं पितुराज्ञया ॥
 जगाम तत्र सावित्री तत्पश्चाद्देवयोगतः । निपत्यवृक्षाद्देवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान् ॥

यमस्तजीवपुरं वृद्धाङ्गुष्ठसमं मुने । गृहीत्वा गमनञ्चक्रे तन्पथान् प्रययौ सती ॥
पश्चात्तां सुन्दरी दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः । उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान् ।

यम उवाच ।

अहोक्रयासिसावित्रि गृहीत्वा मानुषीतनुम् । यदियास्यासिफान्तेन साद्रे देहंतदात्यज
गन्तुं मर्योऽन शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम् । देहञ्च यमलोकञ्च नश्वरंनश्वरः सदा ।
भर्तुंस्ते कालपूर्णञ्च बभूव भारते सति । सकर्मफलभोगार्थं सत्यवान् याति मद्गृहम् ।
कर्मणाजायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते । सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रपद्यते ॥१७॥
कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा । स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादि रहितोभवेत् ।
स्वकर्मणासर्वसिद्धिममरत्वंलभेद्ब्रह्मपुत्रम् । लभेन्स्वकर्मणाविष्णो सालोक्यगद्विचतुष्टयम् ।
कर्मणा ब्राह्मणत्वञ्च मुक्तित्वञ्च स्वकर्मणा । सुरत्वञ्च मनुत्वञ्च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः ॥
कर्मणाच मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वञ्च कर्मणा । कर्मणा क्षत्रियत्वञ्च वैश्यत्वञ्च स्वकर्मणा ।

कर्मणा चैव शूद्रत्वमन्त्यजत्वं स्वकर्मणा ॥ २२ ॥

स्वकर्मणाचमृच्छत्वं लभते नात्रसंशयः । स्वकर्मणाजङ्गमत्वं स्थावरत्वं स्वकर्मणा ॥
स्वकर्मणाच शैलत्वं वृक्षत्वञ्च स्वकर्मणा । स्वकर्मणा पशुत्वञ्चपक्षित्वञ्च स्वकर्मणा ।
स्वकर्मणाभुद्जन्तु कृमित्वञ्चस्वकर्मणा । स्वकर्मणा च सर्पत्वं गन्धर्वत्वं स्वकर्मणा ।
स्वकर्मणाराक्षसत्वं किन्नरत्वंस्वकर्मणा । स्वकर्मणाचयक्षत्वं कुप्पाण्डित्वंस्वकर्मणा ।
स्वकर्मणाच प्रेतत्वं चैतालत्वं स्वकर्मणा । भूतत्वञ्चपिशाचत्वं डाकिनीत्वं स्वकर्मणा ।
दैत्यत्वंदानवत्वञ्च असुरत्वंस्वकर्मणा । कर्मणापुण्यवान् जीवो महापापीस्वकर्मणा ॥
कर्मणासुन्दरोऽरोगीमहा रोगीचकर्मणा । कर्मणाचान्ध'काणश्च कुन्सितश्चस्वकर्मणा ।
कर्मणानरकंप्रान्ति जीवा स्तृगंस्वकर्मणा । कर्मणाराकलोकश्च सूर्पलोकं स्वकर्मणा ॥
कर्मणा चन्द्रलोकश्च वह्निलोकं स्वकर्मणा । कर्मणा वायुलोकश्च कर्मणा वरुणालयम् ।
तथाचै बुधेरलोकश्च नरोयाति स्वकर्मणा । कर्मणा ध्रुवलोकश्च शिबलोकं स्वकर्मणा ।
याति नक्षत्रलोकश्च सत्यलोकं स्वकर्मणा । जनलोकं तपोलोकं महर्लोकं स्वकर्मणा ॥
स्वकर्मणाच पानालं ब्रह्मलोकं स्वकर्मणा । कर्मणा भारतं पुण्यं सर्वेदिसतवरं परम् ॥

कर्मपायाति वैकुण्ठंगोलोकञ्च निरामयम् । कर्मणा चिरजीवी च क्षणायुश्चस्वकर्मणा
 कर्मणाकोटिकल्यायुः क्षीणायुश्चस्वकर्मणा । जीवसञ्चारमात्रायुर्गर्भे मृत्युःस्वकर्मणा ॥
 इत्येवं कथितं सर्वं मया तत्त्वञ्च सुन्दरि । कर्मणाते मृतो भर्ता गच्छ वत्से यथास्तुखम् ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे कर्मविपाके कर्मणः
 सर्वहेतुप्रदर्शनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

कर्मविपाके सावित्री प्रश्नः ।

श्रीनारायण उवाच ।

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता । तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥
 सावित्र्युवाच ।

किं कर्म वा शुभं धर्मराज किं वाऽशुभं नृणाम् । कर्म निर्मुल्यन्त्येव केन वा साधवो जनाः ।
 कर्मणां बीजरूपकः को वा कर्मफलप्रदः । किं कर्म उद्भवेत् केन को वा तद्वेतुरेव च ॥
 को वा कर्मफलं भुङ्क्ते को वा निर्लिप्त एव च । को वा देही कश्चिद्देहः को वात्र कर्मकारक ॥

किं विज्ञानं मनीषुद्धिः के वा प्राणाः शरीरिणाम् ।

कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥ ५ ॥

भोक्ता भोजयिता को वा भोगः काच निष्कृतिः ।

को जीवः परमात्मा कः तन्मे व्याख्यातु मर्हसि ॥ ६ ॥

यम उवाच ।

वेदप्रविहितं कर्म तन्मन्ये मङ्गलं परम् । अत्रैदिरुन्तु यन् कर्म तदेवाशुभमेव च ॥ ७ ॥
 अहेतुकी विष्णुसेवा सङ्कल्परहिता सनाम् । कर्मनिम्मूलरूपा च सा एव हरिभक्तिः ॥
 हरिभक्तो नरो यश्च सच मुक्तः श्रुतौ श्रुतम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविचित्रैः

मुक्तिश्च द्विविधा साधि ! श्रुत्युक्ता सर्वसम्मता ।

निर्वाणपददात्री च हरिमक्तिप्रदा नृणाम् ॥ १० ॥

हरिमक्तिस्वरूपाञ्चमुक्तिवाञ्छन्निवैष्णवाः । अन्ये निर्वाणरूपाञ्चमुक्तिमिच्छन्तिसाधवः ।
कर्मणोवीजरूपश्च सन्ततं तन् फलप्रदः । कर्मरूपश्च भगवान् श्रीकृष्णः प्रकृतैः परः ॥
सोऽपि तद्धेतुरूपश्च कर्म तेन भवेत्सति । जीवः कर्मफलं भुङ्क्ते आत्मा निर्लिप्त एवच
आत्मन प्रतिविम्बश्च देही जीवः स एवच । पाञ्चभौतिकरूपश्च देहो नश्वरएव च ॥
पृथिवीवायुराकाशो जलं तेजस्तथैवच । एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिः सृष्टिविधौ हरैः ॥

कर्ता भोक्ता च देही च स्यात्मा भोजयिता सदा ।

भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिमुक्तिरेव च ॥ १६ ॥

सदसद्देवोऽजश्च ज्ञानं नानाविधं भवेत् । विषयाणां विभागानां भेदवीजश्च कीर्त्तिदम् ।
बुद्धिर्विवेचनारूपा सा ज्ञानदीपनी श्रुतौ । वायुभेदाश्च प्राणाश्च बलरूपाश्च देहिनाम् ॥
इन्द्रियाणाञ्च प्रवरम् ईश्वराणां समूहकम् । प्रेरकं कर्मणाञ्चैव दुर्निवार्यश्च देहिनाम् ॥

अनिरूप्यमद्भुतञ्च ज्ञानभेदं मतं स्मृतम् ॥ २० ॥

ल्योचनं श्रवणं घ्राणं त्वग्जिह्वादिकमिन्द्रियम् । अह्निनामङ्गरूपश्च प्रेरकं सर्वकर्मणाम् ॥
रिपुरुषं मित्ररूपं सुखदं दुःखदं सदा । सूर्यो वायुश्च पृथिवी घण्ट्याद्या देवताः स्मृताः
प्राण देहादिभृन् यो हि स जीवः परिकीर्त्तितः । परमात्मा परंब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः
कारणं कारणानाञ्च श्रीकृष्णो भगवान् स्वयम् । इत्येवं कथितं सर्वमथापृष्टं यथागमम्

ज्ञानिनां ज्ञानरूपश्च गच्छ वत्से यथा सुखम् ॥ २५ ॥

सावित्र्युवाच ।

त्यस्या ह्म यामि कान्तं वा त्वं वा ज्ञानार्णवं बुधम् ।

यद् यत् करोमि प्रथञ्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥ २६ ॥

कां कां योर्नियति जीवःकर्मणा केन वा यम । केन वा कर्मणा स्वयं केन वा तत्कंपितः
केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भेदेदरे । केन वा कर्मणा गौरी चारोगी केन कर्मणा
केन वा दीर्घजीवी च केनाऽवायुश्च कर्मणः । केन वा कर्मणा दुःखी केनवाकर्मणा सुखी

अङ्गहानश्च काणश्च वधिरः केन कर्मणा । अन्धो वा कृपणो वापि प्रमत्तः केन कर्मणा
क्षितोऽतिलुब्धकश्चैव केन वा नरघातकः । केन सिद्धिमवाप्नोति सालोत्पादित्वनुष्टयम्
केन वा ब्राह्मणत्वञ्च तपस्विन्वञ्च केन वा । स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं केन कर्मणा
गोलोकं केन वा ब्रह्मन् सर्वोत्कृष्टं निरामयम् । नरकं वा कतिविधं किंसंरथनामकिञ्चवा
को वा कं नरकं याति कियन्तंतेषु तिष्ठति । पापिनां कर्मणा केनकोवाव्याधिः प्रजायते

यद्यद्यस्ति मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्यान
यमसावित्रीसंवादे कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नो नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः

कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम् ।

नारायण उवाच ।

सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः । प्रहस्य वक्तुमारंभे कर्मपाकञ्च जीविनाम्
यम उवाच ।

कन्या द्वादशपर्याया वत्से त्वं वयसाधुता । ज्ञानन्ते पूर्वविदुषां योगितां ज्ञानितां परम्
सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्रीकला सती । प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तन्समा शुभे
यथा श्रीः श्रीपते कोडे भवानी च भयोरसि । ययारात्राचक्राङ्गणैसावित्री ब्रह्मवक्षसि
धर्मोरसि यथा मूर्त्तिः शतरूपा मनी यथा । कर्दमे देवहृती च वशिष्ठेऽरुन्धती यथा ॥
अदितीकश्यपे चापि यथाहल्या च गीतमे । यथा शर्वा महेंद्रे च यथा चन्द्रेचरोहिणी
यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताराने । यथा स्वधा च पितृषु यथा संनादिवाकरे
चरुणानी च चरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा । यथा घरा वराहे च देवसेना च कार्तिके ॥

सौभाग्या सुप्रिया त्वञ्च भव सत्यवति प्रिये । इति तुभ्यं वरं दत्तमपरञ्च यदीप्सितम्
वृणु देवि महाभागे सर्वं दास्यामि निश्चितम् ।

साविश्रुवाच ।

सत्यवदोरसेनैव पुत्राणां शतकं मम । भविष्यति महाभाग वरमेतद् मदीप्सितम् ॥१०॥
मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुर्पा । राज्यलाभो भवत्वैव वरमेवं मदीप्सितम् ॥
अन्ते सत्यवता साहं यास्यामि हरिमन्दिरम् । समतीते लक्ष्यं देहीमं मे जगत्प्रभो ॥
जीवकर्मविपाकञ्च श्रोतुं कौतूहलञ्च मे । विश्वविस्तारवीजञ्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥
यम उवाच ।

भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव । जीवकर्मविपाकञ्च कथयामि निशामय ॥
शुभानामशुभानाञ्च कर्मणां जन्म भारते । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सर्वत्र नान्यत्र भुञ्जते जनाः ॥
सुरादैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । नरश्च कर्मजनको न सर्वेसमजीविनः ॥
विशिष्टजीविनः कर्म भुञ्जते सर्वयोनिषु । विशेषतो मानवाश्च भ्रमन्ति सर्वयोनिषु ॥
शुभाशुभं भुञ्जतेच कर्म पूर्वार्जितं परम् । शुभेन कर्मणा यान्ति ते स्वर्गादिकमेव च ॥
कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषुच । कर्म निर्मूलने मुक्ति सा चोक्ता द्विविधामना ॥
निर्याणरूपासेवाच कृष्णस्य परमात्मनः । रोगी अकर्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्मणा ॥
दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुपी दुःपी च निश्चितम् ।

अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा ॥ २१ ॥

सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा । सामान्यंकथितं सर्वं विशेषं शृणुसुन्दरि ॥

सुदुर्लभं सुभोग्यञ्च पुराणे च श्रुतिष्वपि ॥ २२ ॥

दुर्लभा मानवीजातिः सर्वजातिषु भारते । सर्वाभ्योब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्त सर्वकर्मसु ।
विष्णुभक्तोद्विजश्चैवगरीयान् भारतेततः । निष्कामश्च सकामश्च वैष्णवोद्विविधःसति ।
सकामश्च प्रधानश्च निष्कामो भक्तप्यवच । कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरपद्वचः ।

स याति देहं त्यक्त्वा च पदं विष्णोर्निगमयम् ।

पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिना सति ॥ २७ ॥

येसेवन्तेचद्विभुजं कृष्णमात्मानर्माश्वरम् । गोलोकंयान्तिते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः ।
 ये च नारायणं भक्ताः सेवन्ते च चतुर्भुजम् । वैकुण्ठं यान्तिते सर्वे दिव्यरूपविधारिणः ।
 सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च । भारतं पुनरायान्ति तेषां जन्म द्विजातिषु ।
 कालेनतेचनिष्कामाभविष्यन्तिक्रमेण च । भक्तिञ्चनिर्ममलांयुद्धितेभ्योदास्यतिनिश्चितम् ।
 ब्राह्मणाद्वैष्णवादन्ये सकामाः सर्वजन्मसु । नतेषां निर्ममला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिता ।
 तीर्थाश्रिता द्विजायेच तपस्यानिरताः सति । येयान्ति ब्रह्मलोकञ्च पुनरायान्तिभारतम् ।
 स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्य्यभक्ताश्च भारते । व्रजन्ति सूर्य्यलोकंते पुनरायान्ति भारतम् ।
 स्वधर्मनिरताविप्राःशैवाःशाक्ताश्चगणपाः । तेयान्तिशिवलोकञ्चपुनरायान्तिभारतम् ॥
 येविप्रा अन्यदेवेषुः स्वधर्मनिरताः सति । तेगत्वा शकलोकञ्च पुनरायान्ति भारतम् ।
 हरिभक्ताश्चनिष्कामाः स्वधर्मरहिताद्विजाः । तेऽपियान्ति हरेर्लोकंमाद्भक्तियलादहो ।
 स्वधर्मरहिताविप्रा देवान्यसेविनः सदा । भ्रष्टाचाराश्चबालाश्चते यान्ति नरकंध्रुवम् ॥
 स्वधर्मनिरताश्चैवं वर्णाश्चत्वार एव च । भवन्त्येव शुभस्येव कर्मणःफलभागिनः ॥
 स्वधर्मरहितास्ते च नरकं यान्तिहि ध्रुवम् । भारतेचभवन्त्येव कर्मणः फलभागिनः ॥
 स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च । कत्यांददाति विप्राय चन्द्रलोकं व्रजन्तिते ।
 घसन्ति तत्र ते साधिव यावदिन्द्राश्चतुर्दश । सालङ्कृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते ।

सकामा यान्ति तल्लोकं न निष्कामाश्च वैष्णवाः ।

ते प्रयान्ति विष्णुलोकं फलसन्धानवर्जिताः ॥ ४३ ॥

गव्यञ्चरजतं भाष्यंवास्त्रं शस्यंफलं जलम् । ये ददत्येव विप्रेभ्यस्तल्लोकं हि व्रजन्ति च ॥
 घसन्ति ते च तल्लोकं यावन्मन्वन्तरं सति । कालञ्च सुचिरं वासं कुर्वन्ति तत्रतेजनाः ।
 यो ददाति सुवर्णञ्च गाञ्च ताम्रादिकंसति । ते यान्ति सूर्य्यलोकञ्च शुचये ब्राह्मणाय च ॥
 घसन्ति तत्रते लोके वर्णानमयुतं सति । विपुले च विरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः ॥
 ददाति भूमिविप्रेभ्योधान्यानि विपुलानि च । सयाति विष्णुलोकञ्च श्वेतद्वीपमनोहरम् ॥
 तत्रैव निवसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ । विपुलं विपुले वासं करोति पुण्यवान्सति ॥ ४६ ॥
 गृहं ददाति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम् । ते यान्ति सुरलोकञ्च चिरंतनभवन्तिते ॥

गृहरेणुप्रमाणाद् दान पुण्यदिने यदि । विपुल विपुले चास कुर्वन्ति मानवा सति ॥५१
 यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृह नर । स याति तस्य लोकश्च रेणुमानाद्मेवच ॥
 सौमि चतुर्गुण पुण्य पूर्त्ते शतगुण फलम् । प्रवृष्टेऽष्टगुण तस्मादित्याह कमलोद्भव ॥
 यो ददाति तडागश्च सर्वभूताय भारते । स याति जनलोकश्च वर्षाणामयुत सति ॥५४
 चाप्या फल शतगुण प्राप्नोति मानवस्तन । तथा सेतुप्रदानेन तडागस्य फल लभेत् ॥
 धनुश्चतु सहस्रेण दैर्घ्ये मानेन निश्चितम् । न्यूनाघातायतीप्रस्थेसायापापरिर्क्षिता ॥
 दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते । फल ददाति द्विगुणयदिसाल्द्रुताभवेत् ॥
 तन्फलञ्च तडागे च पट्टोद्दारेणतन् फलम् । चाप्याश्चपट्टोद्दारेणयापीतुल्यफललभेत् ॥
 अश्वत्थनृक्षमारोप्य प्रतिष्ठाञ्च करोति य । स याति तपसोलोकवर्षाणामयुत परम् ॥
 पुष्पाद्यान यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये । स वसेत् ध्रुवलोकेचवर्षाणामयुत ध्रुवम् ॥
 यो ददातिविमानञ्चविष्णवेभारतेसति । विष्णुर्गर्भेयसेत्सोऽपियावन्मन्वन्तर परम् ॥
 चित्रयुक्ते च विपुले फल तस्य चतुर्गुणम् । रथाद्द्रु शिविकादाने फलमेवलभेद्द्रुध्रुवम् ॥
 यो ददातिभक्तियुक्तोहरयेदालमन्दिरम् । विष्णुर्गर्भेयसेत्सोऽपियावन्मन्वन्तर परम् ॥
 रात्रमागं सौम्ययुक्त य करोति पतिव्रते । वर्षाणामयुतसोऽपि शत्रुर्गर्भेहदीयते ॥६४
 ब्राह्मणेभ्योऽपि देवेभ्यो दाने समफल लभेत् । यच्चदत्तहितद्वोक्तुर्नदत्त नोपतिष्ठते ॥६५
 भुञ्जन्वा स्वगादिर सौम्य पुरायान्तिच भारते । लभेद्विप्रकुलेष्वेवमरेणैवोत्तमादिषु ॥
 भारते पुण्यवान् विप्रोभुञ्जन्वान्स्वगादिर परम् । पुन सोऽपिभवेद्विप्र नपुन क्षत्रियादय ॥
 क्षत्रियो चापि वैश्यो वा कर्षकोऽतिशान्तच । तपसाब्राह्मणत्वञ्चनप्राप्नोतिधुर्ताश्रुतम् ॥
 म्यधर्मरहिता विप्रानालार्योर्निप्रजन्तिच । भुञ्जन्वाचर्मभोगश्च विप्रयोर्नि लभेत् पुन ॥
 माभुक्त क्षायते कर्म कर्षकोऽतिशान्तरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यकर्षकोऽतिशान्तरपि ॥७०
 अवश्यमेव भोक्तव्य वृत्त कर्म शुभाशुभम् । देवतीर्षे सहायेनवायव्यूहेन शुभ्यति ॥७१

एतत्ते कथितं सर्वं किं भूय ध्यातुमिच्छामि ॥ ७२ ॥

इति ब्रह्मरैवर्त महापुराणे प्रवृत्तिखण्डे नागयननादमघादे सावित्र्युपाख्याने
 कर्मविषाये कर्मानुपपत्त्यात्मगतं नाम पञ्चविंशतिनामाऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः

शुभरुर्मविपाकप्रकथनम् ।

सावित्र्युवाच ।

प्रयान्ति स्वर्गमन्यञ्च येन येनेव कर्मणा । मानवा पुण्यवन्तश्चतन्मेव्याप्यातुमर्हसि ॥

यम उवाच ।

अन्नदानञ्च विप्राय य करोति च भारते । अन्नप्रमाणवर्षञ्च शत्रुलोके महीयते ॥२॥

अन्नदानात् परं दानं न भूत न भविष्यति ।

नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥३॥

देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चासनं यदि ।

महीयते बहिलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम् । तल्लोममानवर्षञ्च वैकुण्ठे च महीयते ॥५॥

चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुण फलम् । दानं नारायणक्षेत्रेफलंकोटिगुणं भवेत् ॥६॥

गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम् । वर्षाणामयुतञ्चैव चन्द्रलोके महीयते ॥७॥

यश्च पयस्विनीदानं करोति ब्राह्मणाय च । तल्लोममावर्षञ्च वैकुण्ठे च महीयते ॥ ८ ॥

यो ददाति ब्राह्मणाय शालग्रामं सवस्त्रकम् । महीयते स वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

यो ददाति ब्राह्मणाय छत्रञ्च सुमनोहरम् । वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते बरुणालये ॥

विप्राय पादुकायुग्मं यो ददाति च भारते । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतंसति ॥२१॥

यो ददाति ब्राह्मणाय शय्यां दिव्यां मनोहराम् । महीयतेचन्द्रलोकेयावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

यो ददाति प्रदीपञ्च देवाय ब्राह्मणाय च । यावन्मन्वन्तरं सोऽपि ब्रह्मलोके महीयते ॥

सम्प्राप्य मानवीं योनिं चक्षुष्माञ्च भवेद्भुवम् । नयातिपमलोकञ्चतेनपुण्येन सुन्दरि ॥

करोति गजदानञ्च यो हि विप्राय भारते । यावदिन्द्रादिदेवस्यलोकेचाद्वासने घसेत् ॥

भारते योऽभ्वदानञ्च करोति ब्राह्मणाय च । मोदते वारुणे लोकेयावदिन्द्राश्चतुर्दशः ॥

प्रदृष्टं शिविरा यो हि ददाति ब्राह्मणाय च । महीयतेविष्णुलोकेयावन्मन्वन्तरंसति ॥

यो ददाति च विप्राय व्यजन श्वेतचामरम् । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुत ध्रुवम् ॥
 धान्याचल यो ददाति ब्राह्मणाय च भारते । स च ग्रान्यप्रमाणाद् विष्णुलोके महीयते ॥
 तत स्वयोर्नि सप्राप्य चिरजीवा भवेत्सुखी । दाता गृहाता तौर्द्वौ च ध्रुववैकुण्ठगामिनौ ॥
 सतत श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेत्तर । स एव चिरजीवी च ततो मृत्यु पलायते ॥२१॥
 यो नरो भारते वर्षे दोलन कारयेद्धरे । पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेत्तर ॥२२॥
 इहलोके सुख भुक्त्वा यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम् । निश्चित निवसेत्तत्र शतमन्वन्तरावधि ॥
 फलमुत्तरफल्गुन्या ततोऽपि द्विगुण भवेत् । कल्पान्तजावास भवेदित्याह कर्मलोद्भव ॥
 तिलदान ब्राह्मणाय य करोति च भारते । तिलप्रमाणवर्षञ्च मोदते विष्णुमन्दिरे ॥२५॥
 तत स्वयोर्नि सप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी । ताप्रपात्रस्थदानेन द्विगुणञ्च फल लभेत् ॥
 सालहृताञ्च भोग्याञ्च सवस्त्रासुन्दराप्रियाम् । यो ददानि ब्राह्मणाय भारते च पतिप्रताम् ॥
 महीयते चन्द्रलोके यावद्दिन्द्राश्चतुर्दश । तत्र स्वर्षेण्यया सार्द्धं मोदते च दिवानिशम् ॥
 ततो गन्धर्वलोके च वर्षाणामयुत सति । दिवानिश कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते ॥

ततो जन्मसहस्रञ्च प्राप्नोति सुन्दरा प्रियाम् ।

सती सौभाग्ययुक्ताञ्च कोमला प्रियवादिनीम् ॥३०॥

ददाति सफल वृक्ष ब्राह्मणाय च यो नर । फलप्रमाणवर्षञ्च शत्रुलोके महायते ॥३१॥
 पुन स्वयोर्नि सप्राप्य लभते सुतमुत्तमम् । सफलानाञ्च वृक्षाणासहस्रञ्च प्रशसितम् ॥
 केवल फलदानञ्च ब्राह्मणाय ददाति य । सुचिर स्वर्गवासञ्च हृत्वायाति च भारतम् ।
 नानाद्रव्यसमायुक्त नानाशस्यसमवितम् । ददाति यश्च विप्राय भारते विपुत्र गृहम् ॥३४॥
 कुवेरलोके वसति स च मन्वन्तरावधि । तत स्वयोर्नि सप्राप्य महाधनवान् भवेत् ॥
 यो जन शम्पसयुक्ता भूमिश्चर विरासति । ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्र च वा सति ॥
 महीयते सर्वैरुण्डे मन्वन्तरात् ध्रुवम् । पुन स्वयोर्नि सप्राप्य महाधूमिवात् भवेत् ॥
 त न त्यजति भूमिञ्च जन्मना शतक परम् । धीमाश्च धनवाश्चैव पुत्रवाश्च प्रजेश्वर ॥
 सप्रजञ्च प्रष्टञ्च प्राप्नोति दद्याद् द्विजातये । लक्षमन्वन्तर चैव वैरुण्डे स महीयते ॥३६॥
 पुन स्वयोर्नि सप्राप्य प्रामलक्ष लभेत् ध्रुवम् । नजहाति चतपृथ्व्या नन्मना लक्षमेव च ।

सप्रजं सुप्रकृष्टञ्च पञ्चशतवत्समन्वितम् । नानापुष्करिणीवृक्षं फलभोगसमन्वितम् ॥
 नगरं यच्च विप्राय ददाति भारते भुवि । महीयते स वैकुण्ठे दशलक्षेन्द्रकालकम् ॥४२॥
 पुनः स्वयोनिं संप्राप्य राजेन्द्रोभारतेभवेत् । नगराणाञ्च नियुतं लभते नात्र संशयः ॥
 धरा तं न जहात्येव जन्मनां नियुतं ध्रुवम् । परमैश्वर्यसंयुक्तो भवेदेवमहीतले ॥४३॥
 नगराणाञ्च शतकं देशं यो हि द्विजायते । सुप्रकृष्टप्रजायुक्तं ददाति भक्तिपूर्वकम् ॥४५॥
 वार्पातङ्गासंयुक्तं नातावृक्षसमन्वितम् । महीयते स वैकुण्ठे कौटिमन्वन्तरावधि ॥
 पुनः स्वयोनिं संप्राप्य जन्मुद्धीपपतिर्भवेत् । परमैश्वर्यसंयुक्तो यथाशक्स्तथा भुवि ॥
 मही तं न जहात्येव जन्मनां कौटिमेवच । कल्पान्तजीवी स भवेद्राजराजेश्वरोमहान् ॥
 स्वाधिकारं समप्रञ्च यो ददाति द्विजातये । चतुर्गुणं फलं चातो भवेत्तस्थन संशयः ॥
 जम्बूदीपं यो ददाति ब्राह्मणायपतिप्रते । फलं शतपुणञ्चातो भवेत्तस्य न संशयः ॥५०॥
 सतद्दीपमहीदातुः सर्वतीर्थानुमेविनः । सर्वेषां तपसां कर्तुः सर्वोपवासकारिणः ॥५१॥
 सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च । अस्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य हरेरहो ॥५२॥

असंख्यग्रहणां पातं पश्यन्ति वैष्णवाः सति ।

निवसन्ति हि गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे ॥५३॥

विष्णुमन्त्रोपासकश्च विहाय मानवीं तनुम् । विभक्तिदिश्वरूपञ्च जन्ममृत्युजरापहम् ॥
 लब्ध्वाविष्णोश्चसारूप्यंविष्णुसेवांकरोतिच । सचपश्यतिगोलोत्रेशसंप्रप्राप्तं लयम्
 नश्यन्तिदेवाःसिद्धाश्चविभवानिनिखिलानिव । कृष्णभक्ताननश्यन्तिजन्ममृत्युजराहराः ॥
 कार्तिके तुलसीदातं करोतिहरये च यः । युगं पत्रप्रमाणञ्च मोदते हरिमन्दिरे ॥५७॥
 पुनः स्वयोनिंसंप्राप्य हरिभक्तिं लभेत् ध्रुवम् । सुखीच चिरजीवीच स भवेद्भारते भुवि
 पुनः स्वयोनिंसंप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेत् ध्रुवम् । जितेन्द्रियाणांप्रवरःसभवेद्भारतेभुवि ॥ ५६ ॥

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेत् ध्रुवम् ।

महाधनाढ्यः स भवेच्चक्षुष्मांश्चैव दीप्तिवान् ॥ ६० ॥

माघे यः स्नाति गङ्गायात्परणोदयकालतः । गुणयष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे ॥६१॥
 पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेत् ध्रुवम् । जितेन्द्रियाणांप्रवरःसभवेद्भारतेभुवि ॥

माघे य स्नाति गङ्गाया प्रयागे चारुणोदये । वैकुण्ठेमोदतेसोऽपिलक्ष्मन्वन्तरावधि ॥
 पुन स्वयोर्नि सप्राप्य विष्णुमन्त्र लभेत् ध्रुवम् । त्यक्त्वाचमानुपदेहपुनर्यातिहरे पदम् ।
 नास्ति तत् पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महींतले । करोति हरिदास्यञ्जलध्यासारूप्यमेवच ॥
 नित्यस्नायी च गङ्गाया स पूत स्रप्यंवद् भुवि ।

पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चिन फलम् ॥ ६६ ॥

तस्यैव पादरजसा सद्य पूता वसुन्धरा । मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥
 पुन स्वयोर्नि सप्राप्य तपस्वीप्रवरोभवेत् । स्वधर्मनिरत शुद्धोविद्वाश्चसुजितेन्द्रिय ॥
 मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढतपति भास्करे । भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम् ॥ ६६ ॥
 मोदते स च वैकुण्ठेयावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुन स्वयोर्निसप्राप्यसुखीनिष्वपटोभवेत् ॥
 वीशाखे हरये भक्त्या यो ददाति च चन्दनम् । युगपष्मिहस्त्राणिमोदते विष्णुमन्दिरे ॥

पुन स्वयोर्नि सप्राप्य रूपवाश्च सुखी भवेत् ॥ ७१ ॥

वीशाखे शक्तुदानञ्च य करोति द्विजातये । शकुरेणुप्रमाणाद् मोदतेविष्णुमन्दिरे ॥ ७२ ॥
 करोति भारते यो हि वृष्णजन्माष्माम्रतम् । शनजन्मवृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसशय ।
 वैकुण्ठेमोदतेसोऽपियाथदिन्द्राश्चतुर्दश । पुन स्वयोर्निसप्राप्यवृष्णभक्तिर्लभेत्ध्रुवम् ॥
 इहैव भारते वर्षे शिवरात्रि करोति य । मोदते शिवलोके च सप्तमन्वन्तरावधि ॥ ७५ ॥
 शिवाय शिवरात्रौ च विद्यपत्र ददाति य । पत्रप्रमाणञ्च युग मोदते शिवमन्दिरे ॥

पुन स्वयोर्नि सप्राप्य शिवभक्ति लभेद् ध्रुवम् ।

विद्यावान् पुत्रवान् श्रीमान् प्रजावान् भूमिवान् भवेत् ॥ ७७ ॥

चैत्रमासेऽथवा माघे शङ्करयोऽर्चयेद्भक्त्या । करोतिनर्त्तनभक्त्या वैश्रवाणिर्द्विधानिशम् ॥
 मास षाऽप्यर्द्धमास षा दशसप्तदिनानि वा । दिनमान युग सोऽपि शिवलोकेमर्हायते ।
 श्राराम्नवर्मा यो हि करोति भारते नर । सप्तमन्वन्तर याधनमोदतेविष्णुमन्दिरे ॥ ८० ॥
 पुन स्वयोर्निसप्राप्यरामभक्तिर्लभेद्भ्रुवम् । जितेन्द्रियाणाप्रवरोमहाश्रधार्मिकोभवेत् ॥
 शास्त्रीया महापूजा प्रवृत्तेर्ह करोतिय । महिषैष्ट्यागलैर्मैषैरिभुमुष्मापटकेस्तथा ॥ ८२ ॥
 मैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा । नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गले ॥ ८३ ॥

शिवलोके वसेत्सोऽपिसप्तमन्वन्तरावधि । पुनःस्वयोर्निसंप्राप्यबुद्धिञ्च निर्मलांलभेत् ॥
अचलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रादिवर्द्धिनीम् । महाप्रभावयुक्तञ्च गजवाजिसमन्वितः ॥

राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः ॥८५॥

भाद्रशुक्लाष्टमी प्राप्य महालक्ष्मीञ्च योऽर्चयेत् ॥ ८६ ॥

नित्यं भक्त्या पशुमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते । दत्त्वातस्यैप्रकृष्टानिचोपचाराणि षोडशः ॥
वैकुण्ठे मोदतेसोऽपियावचन्द्रदिवाकरौ । पुनःस्वयोर्निसंप्राप्यराजराजेश्वरो भवेत् ॥
कार्तिकीपूर्णिमायाञ्चदत्त्वातुरासमण्डलम् । गोपानांशतकं दत्त्वागोपीनाशतकंततया ॥
शिलायां प्रतिमायां वा श्रीकृष्णं राधया सह । भारते पूजयेद्दत्त्वाचोपचाराणि षोडशः ॥
गोलोके च वसेत् सोऽपियावद्दुवैब्रह्मणो वयः । भारतं पुनरागत्य हरिभक्तिं लभेद्भुवम् ॥
क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरपि । देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयातिसः ॥
तत्र कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदो भवेत् । पुनस्तन्यतनंनास्तिजरा मृत्युहरो महान् ॥
शुक्लां वाऽप्यथवा कृष्णां करोत्येकादशाञ्चयः । वैकुण्ठे मोदतेसोऽपियावद्दुवैब्रह्मणो वयः ॥
भारतं पुनरागत्य हरिभक्तिं लभेद्भुवम् । पुनर्याति च वैकुण्ठं न तस्य पतनं भवेत् ॥ १५ ॥
भाद्रे शुक्ले च द्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः । पशुवर्षसहस्राणि शकलोकं महीयते ॥ १६ ॥
रविवारेऽर्कसंक्रान्त्यां सप्तम्या शुक्लपक्षतः । सम्पूज्यार्कं हविष्यान्नयः करोति च भारते ॥
महीयते सोऽर्कलोके यावचन्द्रदिवाकरौ । भारतं पुनरागत्य चारोगार्थायुतो भवेत् ॥
ज्यैष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्री यो हि पूजयेत् । महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि ॥ १६ ॥
पुनर्मही समागत्य श्रीमानतुलचिन्मः । चिरजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्सम्पदायुतः ॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां पूजयेद्दृयः सरस्वतीम् । संयतो भक्तितो दत्त्वावोपचाराणि षोडशः ॥
महीयते स वैकुण्ठे यावद् ब्रह्म दिवानिशम् । संप्राप्य च पुनर्जन्मसंभवेत् क्विपिण्डितः ॥
गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च । नित्यं जीवन्पर्यन्तं भक्तियुक्तञ्च भारते ॥
गवां लोमप्रमाणाद् द्विगुणं विष्णुमन्दिरे । मोदते हरिणा सार्द्धं क्रीडाकौतुकमद्गलैः ॥

ततः पुनरिहागत्य विष्णुभक्तिं लभेद्भुवम् ।

ततः पुनरिहागत्य राजराजेश्वरो भवेत् । गोमांश्च पुत्रवान् विद्वान् ज्ञानवान् संयतः सुखी ॥

भोजयेद् यो हि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते । विप्रलोमप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे ॥
 ततः पुनरिहागत्य समुखीयनवान् भवेत् । विद्वान् सुचिरजीवी च धीमान्तुल्यविक्रमः ॥
 यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते । युगनामप्रमाणञ्च विष्णुलोके महीयते ॥
 ततः पुनरिहागत्य विष्णुभक्तिलभेद् ध्रुवम् । यदि नारायणक्षेत्रे फलं कौटिगुणं लभेत् ॥
 नाम्नां कौटिहरैर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥
 लभते न पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते । लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत् ॥
 यः शिवं पूजयेन्नित्यं कृत्याल्लिङ्गश्च पार्थिवम् । यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम् ॥
 मृदां रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते । ततः पुनरिहागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥
 शिलाञ्च योऽर्चयेन्नित्यं शिलातां यञ्च भक्षति । महीयते सर्वैकुण्ठे यावद्दुर्गब्रह्मणः शतम् ॥
 सतो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं सुदुर्लभम् । महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत् ॥
 तपांसि चैव सर्वाणि यतानि निखिलानि च । कृत्यातिष्ठति वैकुण्ठे यावदिन्द्राश्चतुर्दशः ॥
 ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेन्द्रो भारते भवेत् । ततो मुक्तो भवेत् पश्चात् पुनर्जन्मन विद्यते ॥
 यः स्नाति सर्वतीर्थेषु भुवि कृत्या प्रदक्षिणम् । स च निर्वाणतां याति न तज्जन्म भवेद् भुवि ।
 पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च । अश्वलोमप्रमाणाब्दं शक्रस्यार्जासने वसेत् ॥
 चतुर्गुणं राजसूये फलमाप्नोति मानवः । नरमेधेऽश्वमेधाद् गोमेधे च तदेव च ॥१२०॥
 पुत्रेष्टौ च तदर्द्धं सुपुत्रं च लभेद् ध्रुवम् । लभते लाङ्गलेष्टौ च गोमेधसदृशं फलम् ॥१२१॥
 तत्समानञ्च विप्रेष्टौ वृद्धियागे च तत्फलम् । पद्मयज्ञे तदर्द्धं च फलमाप्नोति मानवः ॥
 विशोके च विशोकञ्च पद्माद् स्वर्गमश्नुते । विजये विजयी राजा स्वर्गपद्मसमं लभेत् ॥
 प्राजापत्ये प्रजालाभो भूतृदिभूभृतां भवेत् । इह राजधियं लब्ध्वा पद्माद् स्वर्गमश्नुते ॥
 ऋद्धियागे महैश्वर्यं स्वर्गं पद्मसमं भवेत् ।

विष्णुयज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि । ब्रह्मणा च कृतः पूर्वं महासम्भारत्संयुतः ॥
 कभूव कल्हो यत्र दक्षराट्कस्योः सति । शैषुश्च नन्दिनं चित्राः नन्दी चित्रांश्चकोपतः ॥
 यतो हेतोर्दक्षयज्ञं यमश्च चन्द्रशेखरः । चकार विष्णुयज्ञञ्च पुरा दक्षप्रजापतिः ॥१२७॥
 धर्मश्च फश्यपञ्चैव शेषश्चापि च कर्दमः । स्वायम्भुवो मनुश्चैव तन्पुत्रश्च प्रियव्रतः ॥

शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा । राजसूयसहस्राणां समृद्ध्या च क्रतुर्भवेत् ॥
 राजसूयसहस्राणां फलमामाप्नोति निश्चितम् । विष्णुयज्ञान्परोयज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः ॥
 बहुफलपान्तर्जीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्द्रुवम् । ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेद्दिह ।
 देवानाञ्च यथा विष्णुवैष्णवानां यथा शिवः । शास्त्राणाञ्च यथा वेदा आश्रमाणाञ्च ब्राह्मणाः ।
 तीर्थानाञ्च यथा गङ्गा पवित्राणाञ्च वैष्णवाः । एकादशी व्रतानाञ्च पुष्पाणां तु लक्ष्मीयथा ॥
 नक्षत्राणां यथा चन्द्रः पक्षिणां गरुडो यथा । यथा स्त्रीणाञ्च प्रकृतिः आधाराणां च सुन्धरा ॥
 शीघ्रगानाञ्चेन्द्रियाणां च जलानां यथा मनः । प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजेशानां प्रजापतिः ॥
 घृन्दावनं वनानाञ्च वर्षाणां भारतं यथा । श्रीमताञ्च यथा श्रीश्च विदुषाञ्च सरस्वती ॥
 पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यनाञ्च राधिका । विष्णुयज्ञस्तथा घत्सेयज्ञेषु च महानिति ॥
 अश्वमेधशतैरेव शक्यं लभते ध्रुवम् । सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप्य पृथुरेव च ॥१३८॥
 स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । सर्वेषाञ्च व्रतानाञ्च तपसां फलमेव च ॥१३९॥
 पाठश्चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा । फलं बीजमिदं सर्वं मुक्तिदं कृष्णसेवनम् ॥
 पुराणेषु च वेदेषु चैतिहासेषु सर्वतः । निरूपितं सारभूतं कृष्णपादाद्भुजार्चनम् ॥१४०॥
 तद्दर्शनञ्च तद्भयानं तन्नामगुणकीर्तनम् । तन्स्तोत्रं स्मरणञ्चैव यन्दनं जप एव च १४१॥
 तन्पादोदकनैवेद्यभक्षणं नित्यमेव च । सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेऽपि सति ॥१४२॥
 भज कृष्णं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् । गृहाण म्यामिनं वत्से सुखं गच्छ स्वमन्दिरम् ॥
 एतत्ते कथितं सर्वं विपाकं कर्मणा नृणाम् । सर्वेऽपि सन् सर्वमतं परं तत्त्वप्रदं नृणाम् ॥
 इति श्रीब्रह्मरैवते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणतारदसवादे सावित्री यमसंवादे
 सावित्र्युपाख्ये शुभकर्मविपाकप्रकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

सावित्रीकृत यमस्तोत्रम् ।

श्रीनारायण उवाच

हरेरन्कीर्त्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः । साश्रुनेत्रा सपुलकायमं पुनरुवाच सा ॥१॥

सावित्र्युवाच ।

हरेरन्कीर्त्तनं धर्मः स्वकुलोद्धारकारणम् । श्रोतृणाञ्चैव षट्कृणां जन्ममृत्युजराहरम् ॥
दानानाञ्च व्रतानाञ्च सिद्धिनां तपसां परम् । योगानाञ्चैव वेदानां सेवनं कीर्त्तनं हरेः ॥
मुक्तिवममर्त्तव्यं वा सर्वसिद्धित्वमेव वा । श्रीकृष्णसेवनम्यैव कलां नार्हन्तिपोटशीम् ।
भजामि केन विधिना श्रीकृष्णं प्ररुने परम् । मृदां मामथलां तात वद वेदविदां चर ॥५॥
शुभकर्मविपाकञ्च श्रुतं नृणां मनोहरम् । कर्मांशुभविपाकञ्च तन्मे ध्याय्यातुमर्हसि ॥
इत्युत्तवा सा सती ब्रह्मन् भक्तिघ्नान्मकन्धरा । तुष्टाव धर्मराजञ्च वेदोक्तेनस्तवेनच ॥

सावित्र्युवाच ।

तपसा धर्ममाराध्य पुष्करं भास्करः पुरा । धर्माशंयं मुनं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम् ॥
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः । अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम् ॥
येनान्तश्च वृत्तो विश्वे सर्वेषा जीविनां परम् । कर्मानुरूपकालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम् ।
विभर्त्तिदण्डं दण्ड्यायपापिनाशुद्धिहेतवे । नमामि तं दण्डधरं यःशास्तासर्वकर्मणाम् ।
विश्वेचकलयत्येव य सर्वायुश्चापिसन्ततम् । अतीवदुर्निवार्यश्च तं कालं प्रणमाम्यहम् ।
तपस्वी घैष्णघोषमर्षो सयमीविजितेन्द्रियः । जीवितां कर्मफलदं तं यमं प्रणमाम्यहम् ॥
स्यात्मारामश्चसर्वशोमित्रं पुण्यवृत्तांभवेत् । पापिनां क्लेशदोषश्चपुण्यमित्रं नमाम्यहम् ॥
यजन्म ब्रह्मणां वशे ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । यो ध्यायति परं ब्रह्म ब्रह्मंशं नमाम्यहम् ॥
इत्युत्तवा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने । यमस्तां विष्णुभजनं कर्मपाकमुवाचह
इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातस्त्रयाय यः पठेत् । यमात्तन्मभयं नास्ति सर्वपापात् प्रमुच्यते ॥
महापापीयदि पठेत् नित्यं भक्त्याच नारद । यमः करोति तं शुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम् ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नागदम्भादे सावित्रीरतयमस्तोत्रं
नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।

अनत्रिंशोऽध्यायः

यमसावित्रीमंवादे नरककुण्डवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

यमस्तस्यैविष्णुमन्त्रं दत्त्वाव विधिपूर्वकम् । कर्माशुभविपाकञ्च तामुवाचरवेःसुतः ॥

यम उवाच ।

शुभकर्म्मविपाकञ्च धृतं नानाविधं सति । कर्माशुभविपाकञ्च कथयामि निशामय ॥२॥
नानाप्रकारं स्वर्गञ्च याति जीवः स्वकर्मणा । कुकर्मणाच नरकं याति नानाविधंनरः ।
नरकाणाञ्च कुण्डानि सन्ति नानाविधानि च । नानापुराणभेदेन नामभेदानि तानि च ।
विम्बुतानिगर्भाराणि क्लेशदानिचजीविताम् । भयङ्कराणिघोराणि हे वन्सेकुप्तिनानिव ।
पङ्कशातिचकुण्डानि संयमन्याञ्चसन्ति च । त्रियोधतेषां नामानि प्रसिद्धानिधूर्तासति ॥
वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डंभयानकम् । विदुकुण्डंमूत्रकुण्डञ्च श्लेष्मकुण्डञ्चदुःसहम् ।
गरकुण्डं दूषिकाकुण्डं वसाकुण्डं तथैव च । शुक्रकुण्डमसृकुण्डमधुकुण्डञ्च कुप्सितम् ।
कुण्डं गात्रमलानाञ्च कर्पाविदुकुण्डमेव च । मज्जाकुण्डं मांसकुण्डं नक्तकुण्डञ्च दुस्तरम् ।

लोम्बां कुण्डं केराकुण्डं अम्बिकुण्डञ्च दुःखदम् ।

ताम्रकुण्डं लौहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत् ॥ १० ॥

तीक्ष्णकण्टककुण्डञ्च विषकुण्डञ्चविघ्नदम् । धर्मकुण्डंतप्तमुराकुण्डं चापिप्रकीर्तितम् ।
प्रतप्तनैलकुण्डञ्च दग्धकुण्डञ्च दुर्बहम् । कृमिकुण्डं पूषकुण्डं सर्पकुण्डं दुर्गतरम् ॥ ११ ॥
मशकुण्डं शंशुकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम् । कुण्डञ्च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानाञ्च मुघ्नते ॥
शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डञ्च भीषणम् । गोलकुण्डं नक्रकुण्डंकाककुण्डं शुचास्पदम् ।
सञ्जालकुण्डंवाजकुण्डंश्वशुकुण्डंमुदुस्तरम् । तनपाषाणकुण्डञ्च तीक्ष्णपाषाणकुण्डकम् ।
लालाकुण्डमस्तिकुण्डं चूर्णकुण्डंमुदारणम् । चक्रकुण्डंघञ्जकुण्डंकृष्णकुण्डंमहोत्खणम् ॥
ज्वालकुण्डं भस्मकुण्डं पूतिकुण्डञ्च सुन्दरि । तत्रशक्यप्यर्त्सीपात्रं धुरधारं मूर्त्सामुखम् ।
गोधामुखं नक्रमुखं गजदंशञ्च गोमुखम् । कुर्म्मापाकं कालसूत्रमवदोदमरुतुदम् ॥१८॥

पाशुभोज पाशुप्रे शत्रुप्रोत प्रकम्पनम् । उक्तामुत्तमन्धकूप वेधन दण्डताडनम् ॥१९॥
 जालबन्ध देहचूण दलन शोषणङ्काम् । सर्वज्वालामुख जिम्भ धूमान्ध नागवेष्टनम् ॥
 कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिना ह्मशदानिव । नियुक्तं किङ्कराणैरक्षितानिव सन्ततम् ।
 दण्डहस्तै शूलहस्तै पाशहस्तैर्भयङ्करै । शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैर्मदमत्तैश्च दारणै ॥ २२ ॥
 तमोयुक्तै दयाहानैर्दुर्निवार्यैश्च सर्वत । नेत्रस्विमिश्च नि शङ्कैस्ताप्रविङ्गल्लोचनै ॥२३॥
 योगयुक्तं सिद्धयोगैतानारूप प्ररैवरी । आसन्नमृत्युभिर्दृष्टै पापिभि सर्वनाविभि ॥
 स्वप्नानितै शैत्रै शक्तै सौरैश्च गाणवै । अदृष्टै पुण्यदृष्टिश्च सिद्धियोगाभिरेवच ॥
 स्वप्नानितैवापि विरतैवा स्वतत्रकै । यत्रदृष्टिश्च नि शङ्कै स्वप्नदृष्टैश्च वीष्णवै ॥
 एतत्तकथितसावित्रि कुण्डसंघानिरूपणम् । येषानिवासायन् कुण्डतिरोधकथयामिने ।
 इति धाराब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रवृत्तिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्रियुपाख्याने
 यमसावित्रीसंवादे नरककुण्डसंघान नामौनत्रिशोऽध्याय ।

त्रिशोऽध्याय

पापिना नरकनिरूपणम् ।

यम उवाच ।

हरिसेवार्त शुद्धो योगा सिद्धो व्रतो सति । तदस्त्वा ब्रह्मवाराचनयाति नरकं यति ।
 कण्ठवाचा बान्धवाश्च गलत्रेनचयोत्तर । दग्धान् करोतित्रलवान् वह्नि कुण्डप्रयातिस ।
 गात्रलीमप्रमाणाद् तत्र स्थित्वा हुताशने । पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रे दग्धखिनमनि ॥
 ब्राह्मण तृपितभुञ्ज प्रतत गृहमागतम् । न भोजयति यो मूढस्ततमुण्ड प्रयातिस ॥४॥
 तत्र लीमप्रमाणाद् स्थित्वा तत्रच द्रु गित । तत्रस्थे वह्नि कुण्डे पश्चाच्च सप्तनमसु ।
 रविचारार्कमत्रान्त्याममाया धाद्ववासरै । वस्त्राणा क्षांसयोक्त कराति योहि मानव
 स याति क्षारकुण्डश्च सूत्रमानादमेवच । स व्रजेद्रजको योनि सप्तनमसु भारते ॥ ७ ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः । पष्टिवर्षसहस्राणि विष्कुण्डञ्च प्रयाति सः ॥
 पष्टिवर्षसहस्राणि विद्भोजी तत्र तिष्ठति । पष्टिवर्षसहस्राणि विद्भूमिश्च पुनर्भुवि ॥६॥
 परकीयतटणे च तड्डाणं यः करोति च । उन्मृजेद्देवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः १०॥
 तद्रेणुमानवर्षञ्च तद्भोजी तत्र तिष्ठति । भारते गोधिका चैव स भवेत् सतजन्मसु ॥११॥
 एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयातिसः । पूर्णमद्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥
 पूर्णमद्दशतञ्चैव सः प्रेतो भारते भवेत् । श्लेष्ममूत्रगरञ्चैव पूयं भुङ्क्ते ततःशुचिः ॥
 पितरं मानरञ्चैव गुरुं भार्यां सुतं मृताम् । यो न पुष्पात्यनाथश्च गरकुण्डं प्रयाति सः
 पूर्णमद्दसहस्रञ्च तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो ब्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥१५॥
 दृष्ट्वाऽतिरिधिं बरुचक्षुः करोति योहि मानवः । पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः
 यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । इहैव लभतेचान्तेदूपिकाकुण्डमावजेत् ॥
 पूर्णमद्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो नरो भवेद् भूमौ दृष्टिःसतजन्मसु ॥१८॥
 दत्त्वा द्रव्यञ्च विप्रायचान्यस्मिंदायतेयदि । सतिष्ठतिवसाकुण्डे तद्भोजीशतवत्सरम् ॥
 ततोभवेत् सचाण्डालस्त्रिजन्मनितनःशुचिः । कृकलासोभवेत्सोऽपिभारतेसतजन्मसु ॥

ततो भवेन्मानवश्च दृष्टिरोऽल्पायुरैव च ॥२०॥

पुमांसं कामिनी वापि कामिनीं वापुमानथ । यः शुक्रपाययत्येवशुक्रकुण्डं प्रयातिसः ॥
 पूर्णमद्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति । योनिर्कामिः शताद्दशभवेद् भुवि ततः शुचिः ॥
 सन्ताप्य च गुरुं विप्रं रक्तपातञ्चकारयेत् । सचतिष्ठत्यसूक्कुण्डे तद्भोजीशतवत्सरम् ॥
 ततो भवेद् व्याधजन्म सनजन्मसु भारते । ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण च ॥
 अश्रुच्रवन्तं गायन्तं भक्तं दृष्ट्वा च गद्गदम् । श्रीकृष्णगुणसंगीते हसत्येवहियोनरः ॥
 स वसेद्भ्रुकुण्डे चतद्भोजीशतवत्सरम् । ततो भवेत् सचाण्डालोत्रिजन्मनितनःशुचिः ॥
 करोति सलतां शय्यदशुद्ध्यहृदयो नरः । कुण्डं गात्रमलानाञ्च स च यातिदशाब्दकम् ॥
 ततः स गर्भभायांनिमवाप्नोतित्रिजन्मनि । त्रिजन्मनिच शार्गालीततःशुद्धोभवेद्भ्रुवम्
 यत्रिं यो हसत्येवनिन्दत्येव हि मानवः । स वसेत्कर्णविद्कुण्डेतद्भोजीशतवत्सरम् ॥
 ततो भवेत् स यधिरो दरिद्रः सतजन्मसु । सनजन्मस्यद्गहीनस्ततः शुद्धिलभेद्भ्रुवम् ॥

लोभात् स्वपालनार्थाय जीविनं हन्ति यो नरः ।

मञ्जाकुण्डे घसेत् सोऽपि तद्गौजी लक्षवर्षकम् ॥ ३१ ॥

ततो भवेत् स शत्रुकोमीनश्चसतजन्मसु । एणाद्रपश्चकर्मन्यस्ततःशुद्धिं लभेद्भुधुम् ॥
 स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रोणानि द्वियो नरः । अर्थलोभान्महामूढो मांसकुण्डं प्रयातिसः ॥
 कन्यालोमप्रमाणान् तद्गौजी तत्र तिष्ठति । तच्च कुण्डे प्रहारश्च करोति यमकिङ्करः ॥ ३४ ॥
 मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तप्रारालिहेत्सुभ्रा । ततो हि भारते पापी कन्यापिदसुभ्रमिर्भवेत्
 पण्डितवर्षसहस्राणि व्याघ्रश्च सतजन्मसु । त्रिजन्मनि घराहश्च कृष्कुरः सतजन्मसु ॥ ३६ ॥
 सतजन्मसु मण्डको जलोका सतजन्मसु । सतजन्मसु काकश्च ततः शुद्धिं लभेद्भुधुम् ॥
 व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनाञ्च संयमे । न करोति शौल्कर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ॥
 स च तिष्ठति कुण्डेषु नपादीनाञ्च सुन्दरि । तद्देव दिनमानान्द्रं तद्गौजीदण्डताडितः ॥
 सनेशं पार्थिवं लिङ्गं यो वाऽर्चयति भारते । स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम् ॥
 तदन्ते यावन्तौ योनिप्रयातिहरकोपतः । शताब्दात् शुद्धिमान्नोतिस्वकुण्डं लभते भुधुम् ॥
 पितृणां यो विष्णुपदे पिण्डं नैव ददाति च । स तिष्ठत्यब्धिकुण्डे च स्वलोमाद्द्रमहौत्वणे ॥
 सतः स्वयोनिं संप्राप्य यज्ञसतसुजन्मसु । भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धो हि दण्डतः ॥
 यः सेवते महामूढो गुर्विणीञ्च स्वकामिनीम् । प्रतस्तस्मात्प्रकुण्डे च शतवर्षसतिष्ठति ॥ ४५ ॥
 अवीराश्च यो भुङ्क्ते ऋतुस्नातान्ममेव च । लोहकुण्डे शताब्दञ्च स च तिष्ठति ततके ॥
 स धनेद्राजको योनिं कर्मकारी च सतसु । महाघ्नी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 यो हि घर्मात्सहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत् । शतवर्षप्रमाणञ्च घर्मकुण्डे च तिष्ठति ॥ ४७ ॥
 यः शूत्रेणान्यनुजातो भुङ्क्ते शूद्रान्ममेव च । स च तमसुराकुण्डे शताब्दं तिष्ठति द्विजः ॥
 ततो भवेच्छूद्रराजो ब्राह्मणः सतजन्मसु । शूद्राद्ब्रह्मणो जी च ततः शुद्धो भवेद्भुधुम् ॥
 घाग्दुष्कटुवाचापाताडयेत्स्वामिनंसदा । तीक्ष्णकण्ठकुण्डे सान्द्रगौजीतः तिष्ठति ॥
 ताडिता यमदूतेन दण्डेन च चतुर्भुगम् । ततः उच्चैः श्रवा सतजन्मस्येव ततः शुचिः ॥ ५१ ॥
 विषेण जीविनं हन्ति निर्दयो यो हि पामरः । विरकुण्डे च तद्गौजी सहस्राब्दञ्च तिष्ठति ॥
 स्तोभवेन्नृषाती च घ्नी च सतजन्मसु । सतजन्मसु बुध्नी च ततः शुद्धो भवेद्भुधुम् ॥

दण्डेन ताडयेद् यो हि वृषञ्च वृषवाहकः । भृत्यद्वारा स्वतन्त्रो धापुण्यक्षेत्रेचमारते ॥
 प्रतनतैलकुण्डे च स तिष्ठति चतुर्युगम् । गवां लोमप्रमाणाद् वृषो भवति तत्परम् ॥
 दण्डेन हन्ति जीवं योऽर्धहोषवडिषेण वा । दन्तकुण्डेवसेत्सोऽपिवर्षाणामयुतंसति ॥
 ततः स्वयोनिं संग्राह्य चोदरव्याधिसंयुतः । जन्मवैचेन क्लेशेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 यो भुङ्क्ते च वृषामांसंमन्त्यभोजीचब्राह्मणः । हरेर्नैवेयभोजीचकृमिकुण्डंप्रयातिसः ॥
 स्वन्नोममानवर्षचतुर्भोजी तत्रतिष्ठति । ततो भवेत् म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनिततोद्विजः ॥
 ब्राह्मणः शूद्रयाजी यः शूद्रादान्नभोजकः । शूद्राणांशवशाहोचपूयकुण्डं वजेद्भुवम् ॥
 यावहोमप्रमाणाद् यजमानस्य सुव्रते । ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥६१॥
 ततो मारतमागत्य स शूद्रः सनजन्मसु । महाशूली दग्धिश्च ततः शुद्धः पुनर्द्विजः ॥६२॥
 कृष्णपादमन्तकस्यं सरं हन्ति च यो नरः । स्वात्मलोमप्रमाणाद् सर्पकुण्डंप्रयातिलः ॥
 सर्पेण भक्षितः सोऽपि यमदूतेन ताडितः ।

वसेच्च सर्पविद्भोजी ततः सर्पो भवेद्भुवम् ॥ ६४ ॥

ततो भवेत् मानसश्चात्पायुर्दंष्टुसंयुतः । महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षितोऽभुवम् ॥
 विधिं प्रदत्तार्जावांश्चभुद्रजन्तूंचहन्ति यः । स दंशनशयोः कुण्डेजन्ममानान्दकं वसेत् ॥
 दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शत्रुवत् । हस्तपादादिवद्धश्च यमदूतेन ताडितः ॥६७॥
 ततो भवेत् क्षुद्रजन्तुजातिश्च यावतीस्मृता । ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः
 यो मूढोमधुगृह्णाति हत्या च मधुमक्षिकाः । स एवगर्लेकुण्डे जीविमानाद्दकं वसेत्
 भक्षितो गर्लेर्दग्धो यमदूतेन ताडितः । ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 दण्डं करोत्यदण्डं च विप्रदण्डं करोति च । स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीदृशान्प्रयातिच
 तलोममानवर्षञ्च तत्र तिष्ठत्यहर्निशम् । शत्रुवत् भक्षितस्तैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥७२॥
 अर्थलोभेन यो भूयः प्रजादण्डं करोति च । वृश्चिकानाञ्चकुण्डेषु तलोमान्दं वसेद्भुवम्
 ततो वृश्चिकजातिश्च सनजन्मसु भारते । ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधियुक्तो भवेद्भुवम्
 ब्राह्मणः शत्रुवारी यो हान्येयांथावकोभवेत् । सन्ध्याहीनश्च मूढश्च हरिभक्तिविहीनकः
 स तिष्ठति स्वन्नोमान्दं कण्डादिषु शरादिषु । विद्धः शरादिभिः शत्रुत्तशुद्धो भवेन्नरः

कारागारं सान्धकारं निश्च्यति प्रजाश्च य । प्रमत्त स्वल्पदोषेण गोलकुण्डप्रयातिस
 तत्कुण्ड पद्मतोयाक्त सान्धकार भयङ्करम् । तीक्ष्णदर्पुंश्च कीटैश्च सयुक्तगोलकुण्डकम्
 कीटैर्विद्धो घसेत्त्र प्रजालोमाद्मेव च । ततो भवेत् प्रजाभृत्यस्तत शुद्धो नरो भुवि
 सरोवरादुत्थिताश्च नन्वादीन् हन्ति य सति । मन्त्रकण्टकमानान्द्रनक्रकुण्डप्रयाति स
 ततो नन्नादिजातिश्च भवेत्त्रयादिषु ध्रुवम् । तत सद्योऽपि शुद्धो हि दण्डेनैव नर पुन
 वक्ष श्रांणीस्तनास्यञ्च य पश्यति परस्त्रिया । कामेनकामुकोयो हि पुण्यक्षेत्रेच भारते
 स घसेत्तकाक्कुण्डेच काकैश्च क्षुण्णलोचन । तत स्वलोममानाद् ततश्चान्धखिजन्मनि
 सप्तजन्मद्रिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी । भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक् तत ॥
 यो भारते ताम्रचोरो लोहचोश्च सुन्दरि । स च लोमप्रमाणाद् वाजकुण्ड प्रयातिस
 तत्रैव वाजचिद्भोजी वाजैश्च क्षुण्णलोचन । ताडितो यमदूतेन तत शुद्धो भवेन्नर ।
 भारते देवचोरश्च देवद्रव्यादिहारक । सुदुष्करे चक्रकुण्डे स्वलोमाद् घसेद् ध्रुव
 देहद्रव्यो हि तद्द्वैरनाहारश्च शब्दरत् । ताडितो यमदूतेन तत शुद्धो भवेन्नर ॥ १॥
 सौम्यगध्याशुकानाञ्च यश्चौर सुरविप्रयो । तमपापाणकुण्डेचस्वलोमाद् घसेद् ध्रुव
 त्रिजन्मनिवक सोऽपि श्वेतहसस्त्रिजन्मनि । जन्मैकशङ्खचिह्नश्चततोऽन्ये श्वेत
 ततो रक्तधिकारी च शूली च मानवो भवेत् । सतजन्मसु चात्पायुस्तत शुद्धो ॥ १४४ ॥

रैत्यकास्यादिपात्रञ्च यो हरंत् सुरविप्रयो ।

तीक्ष्णपापाणकुण्डे च स्वलोमाद् घसेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

स भवेद्दशजातिश्च भारते सप्तजन्मसु । ततोऽधिकाङ्गयुक्तश्च पादरोगी तत शुचि ॥
 पुश्चान्नञ्च यो भुङ्क्ते पुश्चलीजीव्यजीवन । स्वलोममानवर्षञ्चलालकुण्डे घसेद् ध्रुवम्
 ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततश्चशु शूलरोगी तत शुद्ध क्रमेण स ॥ ६५ ॥
 म्नेच्छसेवी मर्सीजीवी योविप्रोभारते भुवि । सचतप्तमर्सीकुण्डेस्वलोमाद् घसेद् ध्रुवम्
 ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततस्त्रिजन्मनि भवेद् दृष्णचर्ण पशु सति
 त्रिजन्मनि भवेच्छाग दृष्णसर्पस्त्रिजन्मनि । ततश्च तालवृक्षश्च तत शुद्धो भवेन्नर ॥
 धान्यादिशस्यताम्रूलयोहरंत् सुरविप्रयो । आसनन्च तत्र तल्प चूर्णकुण्डप्रयातिस

शताब्दं तत्रनिवसेत् यमदूतेन ताडितः । ततो भवेन्नेयजाति कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि १००
 ततो भवेद् मानवश्च काशव्याधियुतो भुवि । वशहीनो दरिद्रश्चैवाल्पायुश्च ततः शुचिः
 चक्र करोति विप्राणा हत्वा द्रव्यञ्च यो नरः । स वसेच्चक्रकुण्डे शताब्दं तदाडितः
 ततो भवेन्मानवश्च तैलकारम्त्रिजन्मनि । व्याधियुक्तो भवेद्गोर्गा वशहीनस्ततः शुचिः
 बान्धवेषु च विप्रेषु करोति वक्रता नरः । प्रयाति वज्रकुण्डञ्च वसेत्तत्र युगं सति ॥
 ततो भवेत् स वक्राद्गो हीनागः सप्तजन्मसु । दरिद्रो वशहीनश्चभार्याहीनस्ततः शुचिः
 शयने कूर्ममासञ्च ब्राह्मणो यो हि भक्षति । कूर्मकुण्डेवसेत् सोऽपिशताब्दं कूर्मभक्षितः
 ततो भवेत् कूर्मजन्म त्रिजन्मनि च शूकरः । त्रिजन्मनिविडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि ॥
 घृतेनैलादिकञ्चैव यो हरेत् सुरविप्रयोः । स यातिज्वालाकुण्डञ्चभस्मकुण्डञ्चपातकी
 तत्र स्थिन्या शताब्दञ्च स भवेत्तैलपायिका । सतजन्ममन्स्यरंगो मूर्षिकश्चतनःशुचिः
 सुगन्धितैलं धारीञ्च गन्धद्रव्यं तथैव वा । भारते पुण्यपर्ये च यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥
 वसेद् दुर्गन्धकुण्डे च दुर्गन्धञ्च लभेत् सदा । खलोममानवर्षञ्चततोदुर्गन्धिकाभवेत्
 दुर्गन्धिका सतजन्म मृगनामिस्त्रिजन्मनि । सतजन्मसुगन्धिश्च ततो हि मानवोभवेत्
 यत्नेनैव खलत्वेन हिंसारूपेण वा सति । यत्ना च यो हरेद्भूमिं भारते परपैतृकाम् ॥
 स वसेत्ततशकौ च भवेत्ततो दिवानिशम् । ततैतले यथाजीवो दग्धो भ्रमति सन्ततम्
 भस्मसात्र भयत्येव मोगदेहो न नश्यति । सनमन्वन्तरं पापी सन्ततस्तत्र तिष्ठति ॥
 शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः । पष्टिवर्षसहस्राणि विद्वृमिभारते ततः ॥१६॥
 ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः । ततःस्ययोर्नि संप्राप्य शुभकर्मा भवेत्पुनः
 'जिनत्ति जीविन' खड्गैर्दयाहानं सुदारणः । नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते ॥१८॥
 असिपत्रे स वसेच्च यावदिन्द्राञ्चतुर्दशः । तेषु चेद्ब्राह्मणान् हन्ति शतमन्वन्तरं तदा ॥
 जिन्नांगश्च भवेत्पापी खड्गधारणं सन्तनम् । अनाहारः शब्दश्च यमदूतेन ताडितः ॥

सञ्चासः शतजन्मानि भारते शूकरो भवेत् ।

कुक्कुरः शतजन्मानि शृगालः सतजन्मसु ॥ १२१ ॥

व्याघ्रश्च सतजन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मनि । जन्मसत गण्डकश्च महिषश्च त्रिजन्मनि

ग्रामं वा नगरं चापि दाहृत्य करोति च । भुरधारे वसेत् सोऽपि छिन्नागस्त्रियुगं सति
 ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवध्नो भ्रमेन्महीम् । सप्तजन्ममेभ्यमोजी खद्योतः सप्तजन्मसु
 नतो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मसु । सप्तजन्मं गलत्कुप्टी ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिन्द्रां करोति यः । परदोषे महाशुद्धाद्यौ देवब्राह्मणनिन्दकः ॥
 सूचीमुखे स च वसेत्सूचीविद्धो युगत्रयम् । ततो भवेद्बृश्रिकश्च सर्पश्च सप्तजन्मसु ॥१२७॥
 वज्रकीर्णः सप्तजन्मं भस्मकीर्णस्ततः परम् । ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः
 गृहिणाञ्च गृहं भित्वा वस्तुस्तैव करोति यः ।

गाश्च छागाश्च मैपाश्च याति गोधामुखश्च स ॥ १२६ ॥

ततो भवेत् सप्तजन्मं गोजातिं याधिसयुतः । त्रिजन्ममेपजातिश्च छागजातिः त्रिजन्मनि
 ततो भवेन्मानवश्च निन्द्यरोगा दरिद्रकः । भार्याहीनो यन्पुहीनः सन्तापी च तत्र शुचिः
 सामान्यद्रव्यचोरश्च याति नरमुखं युगम् । ततो भवेन्मानवश्च महारोगी तत्र शुचिः
 हन्ति गाश्च गजाश्चैव तुरगाश्च नरास्तथा । स याति गजदशञ्च महापापी युगत्रयम् ॥
 ताडितो यमदृतेन गजदृतेन सन्ततम् । स भवेद्गजातिश्च तुरगाश्च त्रिजन्मनि ॥
 गोजातिं स्त्वेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ १३४ ॥

जलं पिश्र्वात्पिता गां वाप्यति यो नरः । तच्छुश्रूषाविहीनश्च गोमुखं याति मानवः ॥
 नरकं गोमुखाकारं दृमिततोदकान्वितम् । तत्र तिष्ठति सन्ततो यावन्मन्त्राद्यधि ॥
 नतो नरोऽपि गान्धानो महारोगी दरिद्रकः । सप्तजन्मान्त्यजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥

गोहत्या ब्रह्महत्याञ्च यः करोत्यातिदेशिकीम् ।

यो हि गच्छेद्गम्याश्च सन्त्याहीनोऽप्यदीक्षितः ॥१३८॥

प्रतिग्रही च तीर्थेषु ग्रामयाजी च दैवतः । शूद्राणां मृषकारश्च प्रमत्तो वृषणीपतिः ॥
 गोहत्या ब्रह्महत्याञ्च स्त्रीहत्याञ्च करोति यः । मित्रहत्या ध्रूणहत्या महापापाच्च भावते ॥
 कुम्भापाके स च वसेत् यावदिन्द्राश्चतुर्दशः । ताडितो यमदृतेन चूणमानश्च सन्ततम् ॥
 क्षणं पतति चर्द्धो च क्षणं पतति कण्टके । क्षणञ्च तननेलेषु तननोदेषु च क्षणम् ॥१४२॥
 क्षणञ्च तनपानाणे तननेहे क्षणं ततः । गृध्रकोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः ॥

काकश्च सप्तजन्मानि सर्पश्च सतजन्मसु । पष्टिचर्षसहस्राणि ततश्च विद्वृमिर्भवेत् ॥
ततो भवेत् सवृग्णो गलत्कुण्ठी दग्दिकः ।

यश्माग्रस्तो वंशहीनो भाव्याहीनस्ततः शुचिः ॥ ४५ ॥

सावित्र्युवाच ।

ब्रह्महत्याचगोहत्यार्किविधावातिदेशिका । कावानृणामगभ्यावाकोवा सन्ध्याविहीनकः
अर्धाक्षिनःपुमान् कोवा कोवा तीर्थप्रतिग्रही । द्विजःकोवाप्रामयाजी कोवाविप्रध्वदेवलः
शूद्राणां सूपकारः कः प्रमत्तो वृषलीपतिः । एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदांवरः ॥

यम उवाच ।

श्रीकृष्णेच तदर्चायां मृण्मय्यां प्रकृता तथा । शिवेच शिवलिङ्गेवा सूर्ये सूर्यमर्णोतथा
गणेशे वा तदर्चायामेवं सर्वत्र सुन्दरि । यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
स्वगुरो स्वेष्टदेवे वा जन्मदातरि मातरि । करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
वैष्णवेष्वन्यमकेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च । करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यांलभेत्तु सः ॥
यो मूढो विष्णुनैवेद्ये चान्यनैवेद्यके तथा । हरेः पादोदकेष्वन्यदेवेपादोदके तथा ॥
करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ १५३ ॥

सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे । सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि ॥
माययाऽनेकरूपे धाप्येक एव हि निर्गुणे । करोत्यन्येन समतां ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
पितृदेवार्चनां पौर्वापरं वेदविनिर्मिताम् ॥ यः करोति निषेधञ्च ब्रह्महत्यां लभेत्तुसः ॥
ये निन्दन्ति हृषीकेशं तन्मन्त्रोपासकन्तथा । पवित्राणां पवित्रञ्च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥
शिवं शिवस्वरूपञ्च कृष्णप्राणाधिकं प्रियम् । पवित्राणां पवित्रञ्च ज्ञानानन्दं सनातनम् ।
प्रधानं वैष्णवानाञ्चदेवानां सेव्यमीश्वरम् । ये नार्चयन्ति निन्दन्ति ब्रह्महत्यांलभन्ति ते ।
ये निन्दन्ति विष्णुमायां विष्णुभक्तिप्रदां सतीम् ।

सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च प्रकृतिं सर्वमातरम् ॥ १६० ॥

सर्वदेवीस्वरूपाञ्च सर्वायां सर्ववन्दिताम् । सर्वकारणरूपाञ्च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥
कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं पुण्यदां पराम् । शिवरात्रिं तथाचैकादशीं चारं रवेस्तथा ॥

पञ्चपर्वाणिपुण्यानि ये न कुर्वन्ति मानवाः । लभन्तेब्रह्महत्यांते चाण्डालाधिकपापिनः ॥
अश्रुवाच्या भूखनन जले शौचादिकञ्च ये । कुर्वन्ति भारते पत्से ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ।

गुरुञ्च मातरं तारुं सार्धं भार्यां सुतं सुताम् ।

अनाथान् यो न पुष्पाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ १६५ ॥

विवाहो यस्य न भवेत् न पण्यति सुतश्च यः । हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तुसः
गामाहारश्च कुर्यन्तपिबन्तयो निवारयेत् । याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्याञ्च लभेत्तुसः
दण्डैर्गांस्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहकः । दिनेदिने गवां हत्यां लभते नात्र संशयः ।
पादं ददातिपह्नीचगाश्च पादेनताडयेत् । गृहंविशेदधोताड्यिः स्नात्वा गोवधमालभेत् ॥

यो भुङ्क्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धाद्घिरैव च ।

सूर्योदये च द्विभोजी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १७० ॥

अर्वागान्नञ्चयोर्भुङ्क्तेयोनिजीवीचब्राह्मणः । यस्त्रिसन्ध्याविहीनश्चसगोहत्यांलभेद् ध्रुवम्
पितृ ऋषर्वकालेच तिथिफालेचदेवताम् । न सेवते तिथियोहि गोहत्यां सलभेद्भ्रुवम् ।
स्वभर्तृरिचकृष्णेच भेददुद्धिकरोतिया । कट्टनयाताडयेत् कान्तंसागोहत्यांलभेद्भ्रुवम् ।
गोमार्गखनन कृत्वा घपते शस्यमेवच । तद्गामे वा नद्दुर्ध्वं वा सगोहत्यां लभेद् ध्रुवम्
प्रायश्चित्तगां वधस्ययः करोतिश्रुतिक्रमम् । अर्थलोभादधाजानात्सगोहत्यां लभेद्भ्रुवम्
राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गान पाययेत् । दुःखं ददाति योमूढोगोहत्यांस लभेद्भ्रुवम्
प्राणिनं नद्दुग्धेद् योहिदेवार्चायारतं जलम् । नैवेद्यं पुष्पमन्नञ्च सगोहत्यां लभेद्भ्रुवम् ॥
शश्वन्नास्तीतिवादीयांमिथ्यावादीप्रतारकः । देवद्वेषीगुरुद्वेषीस गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥
देवनाप्रतिमांद्दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणंसति । सम्भ्रमास नमेद्भयो हि स गोहत्यांलभेद्भ्रुवम् ।

न ददात्याशिपं कौपात् प्रणताय च यो द्विजः ।

विद्यार्थिने च विद्याञ्च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १८० ॥

गोहत्याप्रहत्याचक्रथितावातिदेशिकी । यथाधृतसूर्यवक्रनात्विभूय ध्रोनुमिच्छसि ।

साविश्रुवाच

पास्तधेचातिदेशोचसम्बधेपापपुण्ययोः । न्यूनरधिदेचकोभेदस्तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥

यम उवाच

कुत्रापि वास्तवः श्रेष्ठोऽन्यनातिदेशिकः सति । कुत्रातिदेशिकः श्रेष्ठो वास्तवोऽन्यनपवच ॥
 कुत्र वा समता साधिव तयोर्वेदप्रमाणत । करोतितत्रनास्थां यो गुरुहत्यांलभेत्सुतः ॥
 पुरा परिचिते विप्रे विद्यामन्त्रप्रदातरि । गुरोः पितृत्वमारोपो वास्तवान् श्रेष्ठ उच्यते ।
 पितुः शतगुणे माता मातुः शतगुणे तथा । विद्यामन्त्रप्रदाता च गुरुः पूज्यः धुतं र्मत ॥
 गुह्यो गुह्यपत्नी च गौरवेण गरीयसी । यथेष्टं देवपत्नी च पूज्या चार्भाष्टदेवता ॥१८७॥
 विप्रः शिवसमोयश्च विष्णुतुल्यपराक्रमः । राजातिदेशिकान् श्रेष्ठो वास्तवो गुणलक्षतः ॥
 सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वं व्याससमा द्विजाः । ग्रहणे सूर्यशशिनोश्चात्रैव समता तयोः ॥
 आतिदेशिकहत्याया वास्तवश्च चतुर्गुणः । सम्मतः सर्वदेवानामिन्द्राह कमलोद्भवः ॥
 आतिदेशिकहत्याया भेदश्च कथितः सति । या या गम्यानृणामेव निबोध कथयामिते
 स्वस्त्रीगम्या च सर्वयामिति वेदेनिरूपिता । अगम्या च तदन्या या इति वेदविदो विदुः ॥
 सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणुसुन्दरि । अत्यगम्याश्च या याश्च निबोध कथयामिते
 शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी । अन्यगम्या च निन्दा बलोके वेदेषतिप्रते ॥
 शूद्रश्चेद् ब्राह्मणीं गच्छेद् ब्रह्महत्याशनं लभेत् ।

तन्सम ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं ब्रजेद् ध्रुवम् ॥१८८॥

यदि शूद्रा ब्रजेद् विप्रो वृषलीपतिरेवसः । सन्नप्तो विप्रजातिश्च चाण्डालात्सोऽधमः स्मृतः ॥
 विष्टासमञ्च तन्पिण्डो मूर्त्रतुल्यश्चतर्षणम् । तत्पितृणां सुराणाञ्च पूजने तन्समं सति ॥
 कोटिजन्मार्जितं पुण्यसन्ध्याऽर्चातपसार्जितम् । द्विजस्य वृषलीभोगान् श्यत्येव न संशयः
 ब्राह्मणश्च सुरापोति विद्भोजी वृषलीपतिः । हरिवा सभोजी च कुम्भीपाक ब्रजेद् ध्रुवम् ॥
 गुरुपत्नी राजपत्नी सपत्नीमातरं प्रसूत् । सुता पुत्रवधूं श्वश्रू सगर्भा भगिनी सति ॥
 सोऽद्वैतवृत्तायाश्च मातुलानां पितुप्रसूत् । मातु प्रसूतस्त्वसारं भगिनीन्नातृकन्यकाम् ॥

शिष्याञ्च शिष्यपत्नीञ्च भागिनेयस्य कामिनीम् ।

भ्रातुः पुत्रप्रियाञ्चैवान्यगम्यामाह यज्ञजः ॥ २०२ ॥

एतास्वेकामनेका वा यो ब्रजेन्मानवोऽधमः । स्वमातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशनं लभेत् ॥

अकम्पार्हाऽपि सोऽस्पृश्यां लोकेवेदेऽतिनिन्दितः ।

स याति कुम्भीपाकञ्च महापापी सुदुस्तरम् ॥ २०४ ॥

करोत्यशुद्धासन्ध्याञ्चसन्ध्यांवातकरोतियः । त्रिसन्ध्यांवर्जयेद्योवासन्ध्याहीनश्चसद्विजः ।

वैष्णवञ्च तथा शैवं शाक्तं सौरञ्च गाणपम् ।

योऽहङ्कारान्न गृह्णाति मन्त्रं सोऽद्वीक्षितः स्मृतः ॥२०६॥

प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्वस्तचतुष्टयम् । तत्र नारायणः स्वामी गङ्गागर्भान्तरे घरे २०७ ।

तत्र नारायणक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे हरिः पदे । चाराणस्यां वदर्याञ्च गङ्गासागरसङ्गमे ॥२०८॥

पुण्डरीके भास्करक्षेत्रे प्रभासे रासमण्डले । हरिद्वारे च वेदारौ सोमे वदर्यावने ॥२०९॥

सरस्वती नर्दतीरे पुण्ये गृन्दावने घने ।

गोदघर्याञ्च कौशिक्यां त्रिवेण्याञ्च हिमालये ॥२१०॥

एष्वन्यत्र यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः । स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाकं प्रयाति च ॥

शूद्रातिरिक्त्याजी यो ग्रामयाजी च कीर्तितः । तथादेवोपर्जावी चदेवल् परिकीर्तितः ॥

शूद्रपाकोपर्जावी यः मूपकार इति स्मृतः । सन्ध्यापूजाविहीनश्च प्रमत्तः पतितःस्मृतः ॥

उक्तं पूर्वप्रकरणे लक्षणं वृषलीपतेः । पतेमहापातकिनः कुम्भीपाकं प्रयान्ति ते ॥२१४॥

कुण्डान्यन्यानि ते यान्ति निबोध कथयामि ते ॥२१५॥

इति ध्रुवब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे सावित्र्युपाख्याने

यमसावित्रीसंवादे पापीनरकरूपणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयः ।

यम उवाच ।

हरिसेवां विना साध्वि न लभेत् कर्म खण्डनम् ।

शुभकर्म स्वर्गर्षीजं नरकञ्च कुकर्मणाम् ॥ १ ॥

पुंश्चन्यन्नञ्च यो भुङ्क्ते वैश्यान्नञ्च प्रतिव्रते । तां प्रजेत्तु द्विजो यो हि कालसूत्रं प्रयाति सः ॥
 शतवर्षं कालसूत्रे स्थित्वा शूद्रो भवेद्द्रुवम् । तत्र जन्मनि रोगी च ततः शुद्धो भवेद्द्विजः ॥
 पतिव्रता चैरुपनी द्वितीये कुलटा स्मृता । तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली स्मृता ॥४॥
 वैश्या च पञ्चमे पृष्ठे युग्मी च सप्तमेऽष्टमे । अत ऊर्ध्वं महावैश्यासाऽस्पृश्या सर्पजातिषु
 यो द्विजः कुलटां गच्छेद्द्विर्षिणीं पुंश्चलीं मपि । युग्मीं वैश्यां महावैश्यामवटोदं प्रयाति सः ।
 शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम् । पद्गुणं पुंश्चलीगामी वैश्यागामी गुणाष्टकम्
 युग्मीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः । महावैश्यागामुक्त्वा ततः शतगुणं वसेत् ॥८॥
 तदा हि सर्पगामी चेत्येवमाह पितामहः । तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यमदूतेन ताडितः ॥६॥
 तित्तिगः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः । कोकिलः पुंश्चलीगामी वैश्यागामी वृकस्तथा ॥
 युग्मीगामी शूकरश्च सतजन्मसु भारते । महावैश्यागामुक्त्वा शम्भानि शात्मलिस्ततः ॥
 यो भुङ्क्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रमूर्ययोः । अन्तुदं स यात्येव चन्द्रमानाब्दमेव च ॥
 ततो भवेन्मानसश्च उदरव्याधिसंयुतः । गुल्मयुक्तश्च काणश्च दन्तहीनस्ततः शुचिः ॥

वाक्प्रदत्तां हि कल्याञ्च यश्चान्यस्मै ददाति च ।

स वसेत् पांशुभोजे च तद्गोर्जा च शताब्दकम् ॥१२॥

दत्तापहारी यः साध्वि पाशवेष्टं शताब्दकम् । निवसेत् शय्याभ्यायां यमदूतेन ताडितः ॥
 न पूजयेद्यो हि मक्त्या शिवलिङ्गार्पणार्थवम् । स याति शूलिनः कोपात् शूलप्रोतं सुदारुणम् ॥
 म्रित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सतजन्मसु । ततो भवेत्तद्वैलश्च सप्तजन्मततः शुचिः ॥
 करोति दण्डं यो विप्रं यद्वा त्कम्यते द्विजः । प्रकम्पने वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च ॥
 प्रकोपवदना कोपात् स्वामिनं या च पश्यति । कटूक्तिश्च वदति याति चोल्कामुखञ्च सा
 उल्कां ददाति घक्त्रे च सन्तनं यमकिङ्कुरः । दण्डेन ताडयेन्मूर्ध्नि तस्योमाब्दप्रमाणकम् ॥
 ततो भवेन्मानसी च विघवासप्तजन्मसु । भुक्त्वा दुःखञ्च त्रैघर्ष्यं व्याधियुक्ता ततः शुचिः ॥
 या ब्राह्मणी शूद्रमौग्यासान्धकृपं प्रयाति च । तप्त्वा चोदके ध्यान्ते तदा हारादिवानिशाम् ।
 निवसेदतिसन्तप्ता यमदूतेन ताडिता । शौचोदके निमग्ना च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
 कार्कीजन्म सहस्राणि शतजन्मानि शूकरी । कुक्कुरीशतजन्मानि शृगाली सप्तजन्मसु ॥

यारवती सप्तजन्म धारणे सप्तजन्मसु । ततोभवेत्साचण्डालीसर्वभोग्यावभारते ॥
 ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मप्रस्ता च पृथ्वली । ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धामयेत्ततः ॥
 वैश्या वसेद्वेधने च युग्मी च दण्डताडने । जालगन्धे महावे श्याकुलटा देहचूर्णके ॥२७॥
 स्वैरिणो दलने चैव धृष्टाचशोपणे तथा । निवसेद्यातनायुका यमदूतेन ताडिता ॥२८॥
 विष्मृत्रभक्षणं तत्र यायन्मन्वन्तरं सति । ततो भवेत् विरू.मिश्च चर्पलश्रंततः शुचिः ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणी गच्छेत् क्षत्रियामपि क्षत्रियः ।

वैश्यो वैश्याश्च शूद्राश्च शूद्रो चापि व्रजेद्यपि ॥२९॥

स्ववर्ण परदारी च कर्षं याति तथा सह । मुसवाकापायतप्तोदंनिवसेत् द्वादशाब्दकम् ॥
 ततो विप्रो भवेच्छुद्धश्चैवश्च क्षत्रियाद्ययः । योपितश्चापि शुष्यन्तीत्येवमाह पितामहः ॥

क्षत्रियो ब्राह्मणी गच्छेत् वैश्यो चापि पतिप्रते ।

मातृगामी भवेत् सोऽपि सूर्यश्च नरकं व्रजेत् ॥३३॥

सूर्याकारिश्च कृमिभिर्ग्राह्यया सह भक्षितः । प्रतप्तमृत्रभोजी च यमदूतेनताडितः ॥३५॥
 तत्रैव यातनां मुंके यावदिन्द्राध्वनुर्दशाः । जन्मसप्तवराहश्च छागलश्च ततः शुचिः ॥
 करेधृन्वाचतुलसीप्रतिज्ञायोनपालयेत् । मिथ्यावाशापथंकुर्व्यात्सवज्वालामुखं व्रजेत् ॥
 गंगानोयं करे धृत्या प्रतिज्ञां योनपालयेत् । शिलावादैवप्रतिमांसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
 दत्त्वा च दक्षिणहस्तप्रतिज्ञायोनपालयेत् । स्थित्वादैवगृहेवापिसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
 स्पृष्ट्वा च ब्राह्मणं गाञ्च घृष्टिविष्णुसंपंसति । नपालयेत्प्रतिज्ञाञ्चसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
 मित्रद्रोहीवृत्तप्रश्नयोहि विश्वासघातकः । मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैवसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
 एते तत्र वसन्त्येव यावदिन्द्राध्वनुर्दशाः । यथाङ्गात्प्रदग्धाश्च यमदूतैश्च ताडितः ॥४१॥
 चण्डालस्तुलसीस्पर्शी सप्तजन्मतत शुचिः । ग्लेच्छोगांगजलस्पर्शीपञ्चजन्मतत शुचिः ॥
 शिलास्पर्शी विरू.मिश्च सप्तजन्मसुसुन्दरि । अर्थास्पर्शीव्रणकृमिर्जन्मसप्ततत शुचिः ॥
 दक्षहस्तप्रदाता च सर्पश्च सप्तजन्मसु । ततो भवेद्दस्तहीनो मानवश्च तत शुचिः ॥४४॥
 मिथ्यावादी देवगृहे देवतः सप्तजन्मसु । विप्रादिस्पर्शकारीचसोऽप्रदानीभवेद्भु घम् ॥
 ततो भवन्ति मूकास्तेवपिराश्चत्रिजन्मनि । भाष्यहीनायंशहीनावुद्धिहीनास्ततःशुचिः ॥

निन्दोद्गी च नकुलःकृतप्रश्नापिगण्टकः । विश्वामघार्ताव्याप्रश्चसप्तजन्मसुभारते ४९।
 निन्द्यानाश्यप्रदश्चैवमल्लूकःसप्तजन्मसु । पूर्वान्सप्तपगनिमत्पुनपान्हन्तिचात्मनः ॥
 निन्दक्रियाधिर्दानश्च तद्व्येन युनोद्विजः । यस्यानाम्यावेदवाक्येमन्दंहेसतिमन्तम् ॥
 देतोपवान्हीनश्चमहाक्यपरनिन्दकः । जिहो जिहो वमेन् सोऽपि शतादञ्च हिमोदके
 जलजन्मुमेवेन् सोऽपि शतजन्म वमेणच । ततोनानाप्रकारश्चमन्स्यजातिस्ततः शुचिः ॥
 यः कगेत्यपहारञ्च देवप्रात्मणयोर्जनम् । पातयित्वा स्वपुनपान् दशापूर्वान् दशापगन् ॥
 स्वयं याति च धूमान् धूमवान्मन्मन्वितम् । धूमक्षिप्रोधूमभोर्जीवमेत्तत्रतुर्गम् ॥
 ततो मृषिकजातिश्च शतजन्मानि भारते । ततो नानाविधाः पक्षिजातःकृमिजातयः ॥
 ततो नानाविधा वृक्षजातयश्च ततो नरः । माय्यार्हीनो वंशहीनोशवगेव्याधिमंयुतः ॥
 ततो भवेन् स्वर्णकागः सुवर्णस्य वषिक् तथा । ततोयवनमेवांचप्राह्मणोगणकस्ततः ॥
 विप्रोदेवजोपत्नीर्वैप्रर्षीर्विकित्मरुः । लाशालीहादिव्यापारींसादिविकर्याच यः ॥

स याति नागवेषञ्च नागवेषित एव च ।

वमेन् म्यलोमनानादं तत्रैव नागदंशित ॥ ५८ ॥

ततो भवेन् स गणको वैश्वस्यमजन्मसु । गोपश्च कर्मकागश्च शङ्कागस्ततः शुचिः ॥
 प्रमिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिप्रने । अन्यानिचाप्रमिद्धानिक्षुद्राणितप्रमन्तिवै
 सन्ति पातकितस्तेषु स्वकर्मफलमोगिनः । प्रमन्तितावत्संभारं न च ते स्वर्गमागिनः

यान्ययान्ति च स्वर्गञ्च मर्त्यञ्च न हि निवृत्ताः ।

निवृत्ति न हि लिप्स्यन्ति कृष्णमेवाविना नराः । स्वधर्मनिरताश्चापिस्वधर्मविरतामन्था
 गन्धर्वो मर्त्यलोकरुञ्च दुर्दर्शंयमक्षिङ्क्यः । माता कृष्णोपासकाश्चैतन्पादिवोरगाः
 स्वदूतं पाशहन्तञ्च गन्धर्वं तं वदान्यहम् । याम्यस्माति च सर्वत्र हरिमन्ताश्रमं विना
 कृष्णमन्त्रोपासकानां नामानि च निवृत्तनम् । कगेति नगराञ्चन्याचिप्रगुनश्चभोतवन्

मधुपर्कादिकं ब्रह्मा तेषाञ्च कुर्वते पुनः ॥ ६६ ॥

मिलद्वय ब्रह्मलोकञ्च गोलोकं गन्धर्वां सताम् । दुर्गिताचिनयन्तिनेषांसंस्पर्शानात्रतः

यथा सुप्रज्वलद्दहौ काष्ठानि च तृणानि च ॥ ६७ ॥

प्राप्नोति मोहः संमोहं तांश्च दृष्ट्वा च भीतवत् ।

कामश्च कामिन याति लोभक्रोधौतत.सति । मृत्युः पलायतैरोगांजराशोकोभयन्तथा

कालः शुभाशुभं कर्म हृषो भोगस्तथैव च ॥ ६६ ॥

ये ये न यान्तियामीञ्च कथितास्ते मया सति । शृणुदेहविवरणं कथयामि यथागमम्

पृथिव्यावायुराकाशं नेजन्तोयमितिस्फुटम् । देहिनां देहवोजञ्च खण्डः सृष्टिधिर्धौ परम्

पृथिव्यादि पञ्चभूतैर्यो देहोनिर्मितोभवेत् । सः कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाञ्च भवेदिह

वृक्षाद्गुष्ठप्रमाणेन यो जीवः पुरुषाकृतिः । विभक्तिं सृष्टमदेहञ्च तद्रूपं भोगहेतवे ॥ ७३ ॥

स देहो न भवेद्भस्म ज्वलद्द्रो ममालये । जले न नष्टो देहो वा प्रहारे सुचिरे कृते ॥

न शस्त्रे च न चास्त्रे च सुतीक्ष्णे कण्टके तथा । तस्मिन्ने तसलोहे तसपापाण एव च ॥

प्रतनप्रतिमाश्लेषेऽप्यत्यूद्ध्वैपतनेऽपि च । कथितं देवि वृत्तान्तं कारणञ्च यथागमम् ।

कुण्डाना लक्षणं सर्वं निबोध कथयामिते । अधुनादेशिकल्याणिकिभूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिलखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने

पापिकुण्डनिर्णयो नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

यमसावित्रीसंवादवर्णनम् ।

सावित्र्युवाच ।

धर्मराज महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । नानापुराणेतिहास पञ्चरात्र-प्रदर्शक ॥ १ ॥

सर्वेषु साम्भूतं यत् सर्वेषु सर्वसम्मतम् । कर्मन्डेदवीजरूपं प्रशंस्यं सुखदं नृणाम् ॥

यश प्रदं धर्मदञ्च सर्वमंगलमंगलम् । येन यामी न ते यान्ति यातना भयदुःखदाम् ॥

कुण्डानि च न पश्यन्ति तत्र नैव पतन्ति च । न भवेद्येनजन्मादि तत्कर्म षट् सुवत ॥

विमाकाराणि कुण्डानि कति तेषां मितानि च । केनरूपेण तत्रैव तिष्ठन्ति पापिनःसदा

स्वदेहे भस्मसाद्भूते यान्तिलोकान्तरं नरा । केन देहेन वा भोगंभुञ्जते वा शुभाशुभम्
सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति । देहो वा किञ्चिद्विधोऽहम् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि
सावित्रीचचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् । कथां कथितुमारंभे गुरुं नत्वा च नारद

यम उवाच ।

वत्से चतुर्युं वेदेषु धर्मेषु संहितासु च । पुराणेष्वितिहासेषु पञ्चरात्रविक्रमेषु च ॥ ६ ॥
अन्येषु सर्वशास्त्रेषु वेदान्तेषु च सुव्रते । सर्वेष्टसारभूतञ्च मङ्गलं कृष्णसेवनम् ॥१०॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकसन्तापतारणम् । सर्वमङ्गलरूपञ्च परमानन्दकारणम् ॥ ११ ॥
कारणं सर्वसिद्धिनां नरकारणवतारणम् । भक्तिवृक्षाङ्कुरकरं कर्मवृक्षनिवृन्तनम् ॥१२ ॥
गोलोकमार्गसोपानमविनाशिपदप्रदम् । सालोम्बसारिष्टसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभे ॥
कुण्डानि यमदूतञ्च यमञ्च यमकिङ्करान् । न हिपश्यन्तिस्वप्नेन श्रीकृष्णकिङ्कराःसति
हरिचरितं ये कुर्वन्ति गृहिणः कर्मभोगिनः । ये स्नान्ति हरितीर्थं च नाश्नन्ति हरिवासरे ।
प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां पूजयन्ति च । न यान्तितेचघोराञ्च मम संयमनी पुरीम्
त्रिसन्ध्यपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः । स्वधर्मनिरताःशान्ता नयान्तियममन्दिरम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे यमसावित्रीसंवादे

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

कुण्डानां मानलक्षणवर्णनम् ।

यम उवाच ।

न्दुमण्डलाकारं सर्वकुण्डञ्च चतुर्लम् । अतीवनिम्नं पापाणभेदैश्च खचितं सति ॥
अथर्वज्ञापलयं निर्मितञ्चेन्वरेच्छया । क्लेशदं पातकिनाश्च नानारूपं तदालयम् ॥२ ॥
अलङ्काररूपञ्च शतहस्ताशिखान्वितम् । परितः क्रोशमानञ्च घट्टिकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥

महच्छद प्रमुग्धि पापिभि परिपूरितम् । रक्षित ममदूतैश्चताडितैश्चापि सन्ततम् ॥
 प्रतप्तोदकपूर्णञ्च हिमजन्तुसमन्वितम् । महाघोरान्धकारञ्च पापिसङ्घेन सङ्कुलम् ॥
 प्रकुर्वता कानुशद प्रहारैर्घणितेन च । क्रोशाद्धमान मददूतैस्ताडितेन च रक्षितम् ॥६॥
 तप्तक्षारोदके पूण नक्रैश्च परिवेष्टितम् । सङ्कुल पापिभिश्चैव क्रोशमान भयानकम् ॥
 ग्राहीति शद कुर्वद्विर्ममदूतैश्च नाडिते । प्रचलद्विरनाहारै शुष्ककण्ठीप्यतालुके ॥
 विष्णुत्रैरेव पूर्णञ्च क्रोशमानञ्चतुत्सितम् । अतिदुर्गन्धिसयुक्त व्याप्त पापिमिरेव च
 ताडितैर्ममदूतैश्च अनाहारैरुपद्रवै । रक्षेति शद कुर्वद्विस्तर्काटैरेव भक्षितम् ॥ १० ॥
 तप्तमूत्रद्रव्यं पूण मूत्रकाटैश्च सकुलम् । युक्त महापापिभिश्च तत्कीटैर्दंशित सदा ॥
 गच्युतिमान ध्वान्तात् शद्वद्विश्च सन्ततम् ।

मददूतैस्ताडितैर्घोरै शुष्ककण्ठीप्यतालुके ॥ १२ ॥

श्लष्मपूर्णं क्रोशमिन वेष्टित चेष्टिते सदा । तद्भोजिभि पापिमिश्चतत्कीटैर्भक्षितै सदा
 क्रोशाद्धं गरपूर्णञ्च गरभोजिमिगन्वितम् । गरकाटैर्भक्षितैश्च पापिभि पूर्णमेव च ॥
 ताडितैर्ममदूतैश्च शद्वद्विश्च कम्पिते । सर्पाकारैर्घञ्जद्रुं शुष्ककण्ठे सुदारुणै ॥
 नेत्रयोर्मलपूर्णञ्च क्रोशाद्धं कीटसयुतम् । पापिभि सजुलशश्वत् रवद्वि कीटभक्षिते
 वसारमेन पूर्णञ्च क्रोशतुष्यं सुदु सहम् । तद्भोजिभि पातकिभिर्न्यात दूतैश्चताडितै
 शुक्लपूर्ण क्रोशतुष्यं शुक्लकीटैश्चभक्षितै । वन्दद्वि पापिभि शश्वन्सजुलव्याकुलैर्भिया ॥
 दुर्गन्धिरक्तपूर्णञ्च घार्पामान गभीरकम् । तद्भोजिभि पापिमिश्च सकुलकीटभक्षितै ॥
 पूर्णनेत्राद्युभितृणा वाप्यद्धं पापिभिर्युतम् । ताडितैर्ममदूतेन तद्दृश्यै कीटभक्षितै ॥२०
 नृणा गात्रमलै पूर्णं तद्दृश्यै पापिभिर्युतम् । ताडितैर्ममदूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितै ॥

घर्षेदित्परिपूर्णञ्च तद्दृश्यै पापिभिर्युतम् ।

घार्पातुष्यप्रमाणञ्च रुद्वि कीटभक्षितै ॥ २० ॥

मज्जापूर्णं नरागाञ्च महादुर्गन्धि सयुतम् । महापातकिभिर्युत घार्पातुष्यप्रमाणकम् ।
 परिपूर्णं स्तिग्धमास्त्रेर्मम दूतैश्च ताडितै । पापिभि सङ्कुलञ्चैव घार्पामान भयानकम्
 घर्षयित्परिपूर्णञ्च तद्दृश्यैकाटभक्षिते । प्रहति श द कुर्वद्विस्त्रासिचैश्चमपानके

घर्षानुर्घ्यप्रमाणञ्च नषादिकचतुष्टयम् । पापिभिः संकुलं शश्वन्ममदूतैश्च ताडितैः ॥
प्रतप्रताप्रकुण्डञ्च ताम्रपय्युंमुखान्वितम् । ताम्राणां प्रतिमालशैः प्रततैरावृतंसदा ॥

प्रत्येकं प्रतिमाणिलष्टैः रद्विः पापिभिर्युतम् ।

गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ २८ ॥

प्रततलौहधारञ्च ज्वलद्द्वारसंयुतम् । लौहानां प्रतिमालशैः प्रततैरावृतं सदा ॥ २९ ॥
प्रत्येकं सर्वाश्लिष्टैश्च शश्वत् विचलितैर्भिया । रक्षरक्षेतिशब्दञ्च कुर्वद्भिर्दूतताडितैः ॥
महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् । भयानकं ध्वान्तयुक्तं लोहकुण्डंप्रकीर्तितम्
घर्मकुण्डं ततसुराकुण्डं वाप्यर्द्धमेव च । तद्गोत्रिभिः पापिभिश्च व्यातमद्दूतताडितैः ॥

अथः शाल्मलिबृक्षस्य तीक्ष्णकण्टककुण्डकम् ।

लक्षपोर्यमानञ्च क्रोशमानञ्च दुःखदम् ॥ ३३ ॥

घनुर्मानैः कण्टकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम् ॥ ३४ ॥

प्रत्येकं कण्टकैर्विद्धं महापातकिभिर्युतम् । वृक्षाप्रान्निपतद्विश्च ममदूतैश्च ताडितैः ॥
जलं देहीति शब्दञ्च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः । महाभयातिव्यग्रैश्च दण्डेन भद्रमस्तकैः ।

प्रचलद्विर्यथा तप्तनैले र्जाविभिरेवच ॥ ३६ ॥

विषोद्यैस्तक्षकादीनां पूर्वञ्च क्रोशमानकम् । तद्दृश्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥
प्रतप्ततैलजपूर्णञ्च कीटादि परिवर्तितम् । तद्दृश्यैः पापिभिर्युक्तं स्निग्धगात्रैश्च वेष्टितैः ॥

काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतताडितैः । महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥
शस्त्रकुण्डं ध्वान्तयुक्तं क्रोशमानं भयानकम् ।

शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रै लोहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥ ४० ॥

शस्त्रतल्पस्वरूपञ्च क्रोशतुर्घ्यप्रमाणकम् । पातकिभिर्वेष्टितञ्च कुन्तविद्धैश्च वेष्टितम् ॥
ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककण्डोपतालुकैः । कीटैः संकुलमानैश्च सर्पयानैर्भयङ्करैः ॥

तीक्ष्णदन्तैश्च घिरुतैर्व्याप्तं ध्वान्तयुतं सति । महापातकिभिर्युक्तं भीतैश्च कीटभक्षितैः
रद्विः क्रोशमानञ्च ममदूतेन ताडितैः ॥ ४३ ॥

अतिदुर्गन्धि संयुक्तं क्रोशाद्दं पूयसंयुतम् । तद्दृश्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतेन ताडितैः ॥

द्विगन्धुतिप्रमाणञ्च हिमतोयप्रपूरितम् । तालवृक्षप्रमाणेश्च सर्वकोटिमिरावृतम् ॥
 सर्ववेष्टितगान्धेश्च पापिभिः सर्वमक्षितैः । सङ्कुलं शब्दरुद्धिश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥४६॥
 कुण्डत्रय मशार्दना पूर्णञ्च मशकादिभिः । सर्वं क्रोशाडमानञ्च महापातकिभिर्युतम् ॥
 हस्तपादादिभिर्यद्वै क्षनैः क्षनजलोहितैः । हाहेति शब्दं कुर्वद्भिः प्रचलद्भिश्च सन्ततम् ॥
 वज्रवृक्षिक्रयो कुण्डं ताभ्याञ्च परिपूरितम् । वाप्यद्वै पापिभिर्युक्तं वज्रवृक्षिक्रवदंशिनैः ।
 कुण्डत्रय शरार्दना तैरेव परिपूरितम् । तैर्विद्वैः पापिभिर्युक्तं घाप्यद्वै रत्नलोहितैः ॥
 तमपट्टोदके पूर्णं सध्वान्तं गोलकुण्डकम् । काटैः सङ्कुलमानैश्च भक्षिनैः पापिभिर्युतम् ।
 वाप्यद्वै परिपूर्णञ्च जलस्थैः नक्रकोटिभिः । दारुणैर्विद्वृताकारैर्भक्षिनैः पापिभिर्युतम् ॥

विष्णुवृक्षेष्मभक्ष्यैश्च संयुक्तं शतकोटिभिः ॥ ५३ ॥

काकैश्च विद्वृताकारैर्धनुर्लक्षञ्च पापिभिः ॥ ५४ ॥

सञ्जालयात्रयो कुण्डं ताभ्याञ्च परिपूरितम् । भक्षिनैः पापिभिर्युक्तं शब्दरुद्धिश्च सन्ततम् ॥
 धनु शनं वज्रयुक्तं पापिभिः सङ्कुलं सदा । शब्दरुद्धिर्वज्रदग्धैरन्तर्ध्वान्तमयं सदा ॥५६॥
 वार्पाङ्घ्रिगुणमानञ्च तमप्रस्तरनिर्मितम् । ज्वलद्दृशागसदृशं चलद्भिः पापिभिर्युतम् ॥५७॥
 ध्रुवधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम् । महापातकिभिर्युक्तं क्षतं क्षतजलोहितैः ॥

दुर्गन्धि लालपूर्णञ्च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् ।

क्रोशमानं गर्भारञ्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ ५६ ॥

तप्ततोयाङ्गनाकारैः परिपूर्णं धनु-शतम् । चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतेन ताडितैः ॥
 पूर्णं चूर्णद्वैः क्रोशमानं पापिभिरन्यतम् । तद्दोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः

कुण्डं कुलालचक्रामं धूर्ण्यमानञ्च सन्ततम् ॥ ६१ ॥

सुतीक्ष्णयोडशारञ्च घृणितैः पापिभिर्युतम् । अतीव चक्रं निम्नञ्च द्विगन्धुनिप्रमाणकम्
 कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदकसमन्वितम् । महापातकिभिर्युक्तं भक्षिनैर्जलजन्तुभिः ॥
 प्रचलद्भिः शब्दरुद्धिर्ध्वान्तयुक्तं भयानकम् । कोटिमिर्विद्वृताकारैः कच्छपैश्चमुद्राङ्गीः
 जलस्थैः संयुतं नैश्चमक्षिनैः पापिभिर्युतम् । ज्वालाकलापैस्त्रैजोभिर्निर्माणं क्रोशमानकम्
 - - - पापिभिश्च चलद्भिः संयुतं सदा । क्रोशमानं गर्भारञ्च 'तममम्भभिरन्यतम् ॥

शश्वचलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्मस्ममक्षितैः ॥ ६७ ॥

तत्रपायाणलोग्राणां समूहैः परिपूरितम् । पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तञ्च शुष्कतालुकैः ॥
 क्रोशमानं ध्वान्तमथं गर्भारमतिदारुणैः । ताडितैर्मम दूतैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥
 अत्यूर्मियुक्ततोयञ्च प्रततक्षारसंयुतम् । नानाप्रकारविहृतं जलजन्तुसमन्वितम् ॥ ७० ॥
 द्विगञ्चूतिप्रमाणञ्च गर्भारं ध्वान्तसंयुतम् । तद्दृश्यैः पापिभिर्युक्तं शिनैर्जलजन्तुभिः ॥
 चलद्भिः क्रन्दमानैश्च न पश्यद्भिः परस्परम् । उत्ततशूर्मिकुण्डञ्च कीर्तितञ्च भयानकम् ॥
 असीवधारपत्रस्याप्युच्चैस्तालतपोरधः । क्रोशार्द्रमानकुण्डञ्च पतन्पत्रसमन्वितम् ॥
 पापिनां रक्तपूर्णञ्च वृक्षाप्रान् पततां परम् । परित्राहोति शब्दञ्च कुर्वतामसतामपि ॥७३॥
 गर्भारं ध्वान्तसंयुक्तं रक्तकीटसमन्वितम् । तदसीपत्ररुण्डञ्च कीर्तितञ्च भयानकम् ॥
 धनुःशतप्रमाणञ्च क्षुराकाराखसङ्कुलम् । पापिनां रक्तपूर्णञ्च क्षुरधारं भयानकम् ॥७६॥
 सूर्वावास्याखसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम् । पञ्चाशद्दनुरायामं ह्येशदञ्च सर्वामुपम् ॥७७॥
 कस्यचिज्जन्तुभेदस्य गोधेत्यस्य मुष्ठाट्टम् । कृपरूपगर्भारञ्च धनुर्विशन्प्रमाणकम् ॥
 महापातकिनाञ्चैव महाह्येशकरं परम् । तत्कीटमक्षितानाञ्च नम्रास्यानाञ्च सन्तम् ॥
 कुण्डं नखमुखाकारं धनुःपोडशमानकम् । गर्भारं कृपरूपञ्च पापिष्ठैः संकुलं सदा ॥८०॥
 गजेन्द्राणां समूहेन व्यातं कुण्डाट्टं सलम् । गजदन्तहतानाञ्च पापिनां रक्तपूरितम् ॥
 सत्कीटमक्षितानाञ्च काकुशब्दरुतां सदा । धनुःशतप्रमाणञ्च कीर्तितं गजदंशनम् ॥
 धनुर्विशन्प्रमाणञ्च कुण्डञ्च गोमुष्ठाट्टम् । पापिनां दुःखदञ्चैव गोमुखं परिकीर्तितम्
 भ्रमितं कालचक्रं न सन्ततञ्च भयानकम् । कुम्भाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगञ्चूतिप्रमाणकम्
 शश्वचलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्मस्ममक्षितैः ॥ ८५ ॥
 कुत्रचित्तत्तल्लोहादि ताम्रादि कुण्डमेवच । कुत्रचित् तत्पत्रपायाणकुण्डाभ्यन्तरमन्तिके ॥
 पापिनाञ्च प्रधानैश्च महापातकिभिर्युतम् ॥ ८६ ॥
 परस्परं न पश्यद्भिः शब्दरुद्भिश्च सन्तनम् । ताडितैर्मम दूतैश्च दण्डैश्च मुपलैस्तथा ॥८७॥
 घूर्णमानं पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च मुहुर्मूहुः । पातितैर्मम दूतैश्च चात्यूर्ध्व्वात् पतिनैःक्षणम्
 यावन्तः पापिनः सन्ति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि । तत्र चतुर्गुणाः सन्ति कुम्भीपाकेच दुस्तरे

सुचिर पतिताश्चैव भोगदेहविवर्तिता । सर्वकण्डप्रधानञ्च कुर्मापाक प्रकीर्तितम् ॥
 कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिन । उत्थापिताश्च मद्दूतैः क्षणमेव निमज्जिता ॥
 तिष्वात्स्रद्धा सुचिर कण्डानामन्तरं तथा । अतीवद्वेषयुक्ताश्च भोगदेहा न नश्यन् ॥
 दण्डेन मुपलेनैव मम दूतैश्च ताडिता । प्रतप्ततौययुक्तञ्च कालसूत्र प्रकीर्तितम् ॥६३॥
 अवन कृपमेदश्च यत्रोदञ्च तदागति । प्रतप्ततौयपूर्णञ्च धनुर्विशत्प्रमाणकम् ॥६४॥
 व्याप्तमहापापिमिश्च दग्धगात्रैश्च सन्ततम् । मद्दूतैस्ताडितैः शब्दयदोद् प्रकीर्तितम् ।
 यत्तौयस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम् । भवेदकस्मान् पततायत्र कण्डे धनुःशते ।
 सर्वेच्छ्वा पापिनश्च तुदन्ति यत्र सन्ततम् । हाहेति शब्द कुर्वन्तस्तदेवाल्लतुद विदुः ॥
 तप्तपाशुभिराकीर्णं ज्वलद्भिस्तु सदग्धकैः । तद्द्रष्टव्यं पापिमियुक्तं पाशुभोज धनुःशतम् ॥
 पतता पापिना यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् । पत्नमात्रेण पार्थिव पाशेन वेष्टितो भवेत् ॥

क्रोशमानेच कण्डे च तन् पाशवेष्टन विदुः ॥ ६६ ॥

धनुर्विशत्प्रमाणञ्च शूलप्रोत प्रकीर्तितम् । पतनमात्रेण पार्थिव शूलेन ग्रथितो भवेत् ।

पतता पापिना यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् ॥ ६०६ ॥

अतापहिमतोयेच क्रोशाडञ्च प्रकम्पनम् । ददत्येवहि मद्दूता यत्रोल्का पापिनामुने ॥
 धनुर्विशत्प्रमाणञ्च तदुल्काभिश्च सङ्कलम् । लक्ष्मणोत्पमानञ्च गर्भारञ्च धनुःशतम् ॥
 नानाप्रकारकमिभिः सयुक्तञ्च भयानकैः । अत्यन्धकारव्याप्त यन् कृपाकारच घत्तुलम्
 तद्द्रष्टव्यं पापिमियुक्तं न पश्यद्भिः परस्परम् । तप्ततौयप्रदग्धैश्च चलद्भिः कटभक्षिणैः ॥

ध्वान्तेन वधुषा चान्धैरन्धकूप प्रकीर्तितम् ॥ ६०७ ॥

नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिन । धनुर्विशत्प्रमाणञ्च वेधन तन् प्रकीर्तितम् ॥

दण्डेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिन । धनुःषोडशमानञ्च तन् कण्ड दण्डताडनम् ॥
 निरद्धाश्च महाबालैर्यथा मीनाश्च पापिन । धनुर्विशत्प्रमाणञ्च जालरुद्ध प्रकीर्तितम् ॥
 पतता पापिना कण्डे देहाक्षूणोभवन्तिच । लोहवेदानियद्धान्त फोष्टिषोत्पमानकम् ॥
 गर्भार ध्वान्तयुक्तञ्च धनुर्विशत्प्रमाणकम् । मूर्च्छिताना नडानाच देहचूर्णं प्रकीर्तितम् ।
 दलिता पापिनो यत्र मद्दूतैमुपलेः सदा । धनुःषोडशमानञ्च तन् कण्ड दलनस्मृतम् ॥

पतन्मात्रे यत्र पापी शुष्ककण्ठीष्टतालुकः । घालुकासुच तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ।
शतपौरुषमानंच गभीरं ध्वान्तसंयुतम् । जलाहारविरहितंशोषणं तन् प्रकीर्तितम् ॥११३॥
नानाचर्मकषागोदं परिपूर्णं धनुःशतम् । दुर्गन्धियुक्तं तद्वक्ष्यैः पापिभिः सङ्कुलंकपम् ॥
सूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वंद्वरामानकम् । तप्तशैहवालुकाभिः पूर्णं पातकिभिर्युतम् ॥

अन्तराग्निशिखानाञ्च ज्वालावशात्प्रमुखं सदा ।

धनुर्विशन्प्रमाणञ्च यस्य कुण्डस्य सुन्दरि ॥ ११६ ॥

ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्ध्याप्तमेव यत् ।

तन्महत्देशदं शश्वत्कुण्डंज्वालामुखं स्मृतम् ॥ ११७ ॥

पतन्मात्राद्यत्रपापीमूर्च्छितोव्यथितो भवेत् । तत्रेष्टकाम्यन्तरितंवाप्यद्भ्रंजिह्वकुण्डकम् ॥
धूमान्धकारयुक्तञ्च धूमान्धैः पापिभिर्युतम् । धनु शनंश्वासव द्वैर्धूमान्धंपरिकीर्तितम् ॥
पतन्मात्राद्यत्र पापी नागैश्च वेष्टितो भवेत् । धनु शतं नागपूर्णं तन्नागघेष्टकुण्डकम् ॥
पडशीति च कुण्डानिमयोक्तानिनिशामय । लक्षणञ्चापितेषाञ्चकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे यमसावित्रीसंवादे
कुण्डलक्षणप्रकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ।

सावित्र्युवाच

हरिभक्तिं देहि मह्यं साम्भूतां सुदुर्लभाम् । त्वत्तः सर्वं श्रुतं देव नावशिष्टोऽधुना मम ।
किञ्चित् कथयमेधमं श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् । पुंसां लक्षौद्धारवीजं नरकार्णवतारणम् ॥
कारणं मुक्तिसाराणां सर्वाशुभनिवारणम् । पापवन्कर्मवृक्षाणां वृत्तपापीघहारणम् ॥३॥

मुक्तयः कतिधा सन्ति किं वा तासाञ्च लक्षणम् ।

हरिभक्तैर्मूर्तिभेदं निपेकस्यापि लक्षणम् ॥ ४ ॥

तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिविधिनिर्मिता । किं तज्ज्ञानं सारभूतं यद् वेदविदांवर ॥
सर्वदानमनशनं तीर्थस्नानं व्रतं तपः । अज्ञानत्रानदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥६॥
पितुः शतगुणा माता गौरवेणातिनिश्चिता । मातुः शतगुणैः पूज्यो ज्ञानदातागुरुः प्रभो ॥

यम उवाच

पूयं सर्ववरो दत्तो यत्ते मनसि वाञ्छितः । अधुना हरिभक्तिस्ते घत्सेभवतु महारात् ॥

श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ।

वक्तृणां प्रश्नकर्तृणां श्रोतृणां कुलतारणम् ॥ ६ ॥

शैषो वयत्रसहस्रेण न हि यद्वक्तृमीश्वरः । मृत्युञ्जयो न क्षमश्च वक्तुं पञ्चमुखेन च ॥
धाना चतुर्णां वेदानां विभ्राताजगतामसि । ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालं विष्णुश्चसर्ववित् ॥
कार्तिकेयः पञ्चमुखेन नापिवक्तुमलं ध्रुवम् । न गणेशः समर्थश्चयोगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥
सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वारण्य च । कलामात्रं यद्गुणानां न विदन्ति त्रिधाश्वये ॥
सरस्यती च यत्नेन नालं यद्गुणवर्णने । सतगुणमारो धर्मश्च सतकश्च सनातनः ॥१४॥
सतन्दः कपिलः सूर्येयिऽन्ये च ब्रह्मणः सुताः । विचक्षणो न यद्वक्तुं केवान्ये जडबुद्धयः ॥
न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धामुनीन्द्रायो गिनस्तथा । के वान्ये च वर्यं केवा भगवद्गुणवर्णने ॥
ध्यायन्ते यत्पदाम्मोजं ब्रह्मविष्णुशिवोदयः । अतिसाध्यं स्वमकानां तदन्येषां सुदुर्लभम् ॥

कश्चित् किञ्चिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं महत् ।

अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मसुतादयः ॥ १८ ॥

ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः । सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वतः शम्भुरेव च ॥
तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृद्गणेन परमात्मना । अतीव निर्जने रस्ये गोलोके रासमण्डले ॥
तत्रैव कथितं किञ्चित् यद्गुणोत्कीर्तनं पुनः । धर्माय कथयामास शिवलोकेशिवः स्वयम् ॥
धर्मस्तत्कथयामास पुनरुक्ते भगवता च । यमाराध्य मम पिता मा प्राय तरसासति ॥
पूये न्यविश्यञ्चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः । वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते ॥२३॥

तदा मां कथयामास पितायद्गुणकीर्तनम् । यथागमं तद्ददामि निबोधार्थात् दुर्गमम् ॥
 तद्गुणं स न जानाति तदन्यस्यचकाकथा । यथाकाशो नजानाति स्वान्तमेववरानने ॥
 सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वकारणकारणम् । सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्सर्वरूपधृक् ॥
 नित्यस्पर्षा नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः । निरङ्कुशश्च निःशङ्कोनिर्गुणश्च निराश्रयः ॥
 निर्दलितः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः । तद्विकाराश्चप्रकृतिस्तद्विकाराश्चप्राकृताः ॥
 म्ययं पुमांश्च प्रकृतिः स्वयं च प्रकृतेः परः । रूपं विधत्तेऽरूपश्च भक्तानुग्रहहेतवे ॥२६॥
 अतीव कमनीयञ्च सुन्दरं सुमनोहरम् । नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपयेशकम् ॥३०॥
 कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभाप्रोचनलोचनम् ॥
 शरत्पार्वणकीर्तान्दुशोभाप्रच्छादनाननम् । श्रमूल्यरत्ननिर्माणरत्नाभरणभूपितम् ॥३२॥
 सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा । परं ब्रह्मस्वरूपञ्च ज्वलन्तं ब्रह्मनेजसा ॥३३॥
 सुखदृश्यञ्चरान्तञ्चराद्याकान्तमनन्तकम् । गोर्षाभिर्वीक्ष्यमाणञ्चसस्मिताभिःसमन्ततः ॥
 रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् । वंशीं कण्ठन्तं द्विभुजं वनमालाविभूपितम् ॥
 कौस्तुभेनमणीन्ट्रेणशश्वदक्षस्थलोञ्ज्वलम् । कङ्कुभावारकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम् ॥
 चारुचम्पकमालाञ्जमालतीमाल्यमण्डितम् । चारुवम्पकशोभाढ्यचूडावङ्किमराजितम् ॥
 एवम्भूतञ्च ध्यायन्ते भक्ताभक्तिपरिप्लुताः । यद्गयाञ्जगतां घाता विधत्तेऽष्टिमेवच ॥
 कर्मानुरूपलिखन करोति सर्वकर्मणाम् । तपसां फलदाता च कर्मणाञ्च यदात्रया ॥

विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्गयात् पाति सन्ततम् ।

कालाग्निस्त्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्गयात् ॥ ४० ॥

शिवो मृत्युञ्जयश्चैव ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ।

यद्गजानदानात् सिद्धेशो योगीशः सर्वविन् स्वयम् ॥ ४१ ॥

परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः । यत्प्रसादाद्वाति वातः प्रवरःशीघ्रगामिनाम् ॥४२॥
 तपनश्च प्रतपति यद्गयात् सन्ततं सति । यदाज्ञया धर्यर्तन्दो मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥४३॥
 यदाज्ञया दहेद्द्विर्जलमेव सुशोतलम् । दिशो रक्षति दिक्पाला महार्मिता यदाज्ञया ॥
 भ्रमन्ति राशिवक्राणि ग्रहाश्च यद्गयेन च । मयाफलन्तिवृक्षाश्चपुष्पन्त्यपिचयद्गयात् ॥

भयात् फलानि पशानि निष्फलास्तरघोभयात् । यदाहयासलसाधनजीवन्ति जलेषु च
 तथा स्यले जलव्याध्व न जीवन्ति यदाहया । अहं नियमकर्ता च धर्माधर्मं च यद्भयात्
 कालश्च कल्पयेत्सर्वं भ्रमत्येव यदाहया । अकाले न हरेत्कालो मृत्युश्च यद्भयेन च ॥
 ज्वलद्ग्नौ पतन्तश्च गभीरे च जलार्णवे । वृक्षाप्रात् तीक्ष्णखड्गे च सर्पादीना मुखेषु च
 नानाशस्त्रास्त्रविद्वद्भ्य रणेषु विपन्नेषु च । पुष्पचन्दनतले च बन्धुवर्गैश्च रक्षितम् ।

शयान तन्त्रमन्त्रैश्च काले कालो हरंद्भयात् ॥ ५० ॥

यत्ते वायुस्तोयराशि तोयं कर्म यदाहया ॥ ५१ ॥

कूर्मोऽनन्त स च क्षीणो समुद्रान् सतपर्वतान् । सर्वांश्चैवक्षमारूपानानारूपंविमर्त्सिस्त्र-
 यत सर्वाणि भूतानि लीयन्नेऽन्ते च तत्र च । इन्द्रायुश्चैवदिश्याना युगानामेकसप्तति
 अष्टाविंशच्छक्रपाते ब्रह्मणश्चेत्यहर्निशम् । अष्टाधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ ॥५४॥
 युगे नराणां शत्रायुरेवंसंख्याविदोविदुः । एवंत्रिंशद्दिनैर्मासोद्वाभ्यान्तःस्थ्यामृतुःस्मृत-
 ऋतुभिः पद्भिरेवाष्टं शताष्टं ब्रह्मणो धयः । ब्रह्मणश्च निपाते च चतुर्लक्षमीलनं हरेः ॥
 चतुर्भिर्मीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः । प्रलये प्रावृताः सर्वे देवाद्याश्च चराचराः ॥
 लीनाघातरि घाता च श्रीकृष्णनाभिपङ्कजे । विष्णुक्षोरोदशार्थो च वैकुण्ठेयश्चतुर्भुजः
 विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः । रूद्राद्यभैरवाद्याश्च यावन्तश्च शिवानुगाः
 शिवाद्यारं शिवेलीना ज्ञानानन्देसनातने । ज्ञानाधिदेवः कृष्णस्य महादेवस्य चात्मनः ॥
 तस्य ज्ञानविलीनश्च यभूव च क्षणं हरेः । दुर्गायां विष्णुमायाया विलीनाः सर्वशक्तयः
 सा च कृष्णस्य बुद्धी च बुद्धयधिष्ठातृदेवता । नारायणाशस्कन्दश्चलीनोवक्ष्ये सितस्यच
 श्रीकृष्णांशश्च सद्गर्ही देवाधीशो गणेश्वरः । पद्माशान्वापिपद्मायां सा राधायाञ्च सुप्रते
 गोप्यध्यापिच तस्यां च सर्वाश्चदेवयोपितः । कृष्णप्राणाधिदेयोसात्म्यप्राणेषुसांखिता
 सावित्री च सरस्वत्यांवेदशास्त्राणियानि च । स्मितावाणीचजिह्वायातस्यैवपरमानन्द-
 गोलोचस्य च भोषाश्च विलीनास्तस्मलोमसु । तन्प्राणेषुच सर्वेप्राणा घाता हुताशनः
 जडराज्ञौ विलीनश्च जलं तद्रसनाप्रत । वैष्णवाश्चरणाम्भोजे परम्पानन्दसंयुताः ॥६३॥
 साधारसारतरा भक्तिरसपीयूषपादिनः । विराटभुद्रश्च महं त लीनः कृष्णे महान् विराट्

यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च । यस्य चक्षुर्निमेषेण महान्श्च प्रलयो भवेत्
चक्षुर्नर्मालने सृष्टिर्नस्यैव पुनरेव च । यावत्कालो निमेषेण तावदुन्मालने व्ययः ॥७०॥
ब्रह्मणश्च शताब्देन सृष्टिस्तत्र लयः पुन । ब्रह्मसृष्टिलयानाञ्च सरया नास्त्येव सुनते ॥

यथा भूरजसाञ्चैवा संख्यानाञ्च निशामय ॥ ७१ ॥

चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वान्तरात्मन । उन्मालने पुन सृष्टिर्भवेदेवेऽवरेच्छया ॥७२॥

तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च क क्षमः ॥ ७३ ॥

यथा श्रुतं तावत्त्रात् तथोक्तञ्च यथागमम् । मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरक्ताश्च चतुर्विधाः ॥
तत्प्रधाना हरेर्भक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी । सालोक्यदा हरेरेका चान्या सारूप्यदा परा ॥
सामीप्यदाचनिर्वाणदात्रीचैवमितिस्मृति । भक्तास्तानहिवाञ्छन्तिविनातन्सेवनादिकम्
सिद्धित्वममरत्वञ्च ब्रह्मत्वञ्चावहेलया । जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिखण्डनम् ॥
दिव्यरूपधारणञ्च निर्वाणं मोक्षदं विदुः । मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविबर्द्धिनी
भक्तिमुक्तयोरेयं भेदो निपेकलक्षणं शृणु । विदुर्बुधा निपेकञ्च भोगञ्च कृतकर्मणाम् ॥
तन् खण्डनञ्च शुभदं श्रीकृष्णसेवनं परम् । तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि सारञ्च लोकवेदयोः
विघ्नञ्च शुभदं चौकं गच्छवत्सेयथासुखम् । इत्युक्त्वासर्व्यपुत्रश्चजीवयित्वाचतन्पतिम्
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः । दृष्ट्वा यमञ्चगच्छन्त सावित्री तं प्रणम्य च
ररोद् चरणेषुत्वा सद्बुचिन्द्रेदोऽतिदुःखदः । सावित्रीरोदनं दृष्ट्वा यम एव ऋपानिधिः
तामित्युवाच सन्तुष्टो ररोद् चापि नारद ॥ ८५ ॥

यम उवाच ।

लक्षवपं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते । श्रन्ते यास्यसि गोलोके श्रीकृष्णभवन शुभे
गत्या च सगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतंकुरु । द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम् ॥
ज्यैष्ठे कृष्णचतुर्दश्यां सावित्र्याश्चव्रतंशुभम् । शुक्लाष्टम्या भाद्रपदे महालक्ष्म्याव्रतशुभम्
द्वयष्टवर्षव्रतं चेदं प्रत्यद्दं पक्षमेव च । करोति परया भक्त्या सा याति च हरेः पदम् ॥
प्रतिमङ्गलवारै च देवीं मङ्गलचण्डिकाम् । प्रतिमासं शुक्लपञ्चम्यां पश्या मङ्गलदायिकाम्

तथा चापाहंसक्रान्त्यां मनसां सर्वसिद्धिदाम् ।

राधा रासे च कार्त्तिक्या कृष्णप्राणाधिकां प्रियाम् ॥ ६० ॥

उपोष्य शुद्धाष्टम्याञ्च प्रतिमासे चत्प्रदाम् । त्रिष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ।
प्रकृतिं जगदम्बा च पतिपुत्रवतीं सतीम् । पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु च ॥
या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसन्तानहेतवे । इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरैः पदम् ।
इत्युक्त्वा ता भ्रमराजोजगामनिजमन्दिरम् । गृहीत्वा स्वामिनं साचसावित्रीचनिजालयम् ।
सावित्री सत्यवन्तञ्च वृत्तान्तञ्च यथाक्रमम् । अन्याञ्चकथयामासबन्धवाश्चैव नारद ।
सावित्रीजनक पुत्रान् संप्राप वै क्रमेण च । श्वशुरश्चशुपी राज्यं साचपुत्रान्परैणच ।
लक्ष्मणं सुख भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते । जगाम स्वामिना सादङ्गोलोकं सा पतिव्रता ।
सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता । सावित्रीचापिवेदानां सावित्री तेन कीर्तिता ।
इत्येव कथितवत्ससावित्र्याख्यातमुत्तमम् । जीवकर्मविपाकञ्च किं पुन भ्रोतुमिच्छसि ।
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्यानं
नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

लक्ष्म्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

श्रीकृष्णस्यात्मनश्चैव निर्गुणस्य निराकृतेः । सावित्री यमसंवादे श्रुत मुनिर्मलं यथा ।
तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मङ्गलानाञ्चमङ्गलम् । अधुना भ्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर ।
केनादौ पूजिता सापि किम्भूता केन वा पुरा । तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं यद् वेदविदां च ।
नारायण उवाच ।

खट्वेरादौ पुरा ब्रह्मन् कृष्णस्य परमात्मन । देवीं चामाशस्तभूता चभूव रासमण्डले ॥४॥
अतीथ सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । यथा ढादशविर्षीया शश्वत्सुखिरयीवना ।
श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाप्रच्छादनातना ॥६॥

शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना । साच देवी द्विधाभूता सहस्रैश्वरैच्छया ॥
समा रूपेण वर्णेन तेजसा घयसा त्विषा । यशसा घाससा मूर्त्या भूयणेन गुणेन च ॥
स्मितेन धीक्ष्णैर्नैव घचसा गमनेन च । मधुरेण स्वरेणैव नयेनानुनयेन च ॥ ६ ॥
तद्दामांशा महालक्ष्मीर्दक्षिणांशाचराधिका । राधादौ वर्यामासद्विभुजञ्च परान्परम् ॥
महालक्ष्मीश्च तत्पश्चात् चकाम कमनीयकम् । कृष्णस्तद्वीरवेणैव द्विधास्पो बभूव ह
दक्षिणांशाश्च द्विभुजो घामांशाश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौपुरा ॥
लक्ष्यतेदृश्यतेविभ्वंक्षिप्रदृष्ट्या ययानिशम् । देवीपुयाचमहती महालक्ष्मीश्चसास्मृता ॥
द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः ।

गोलोके द्विभुजस्तस्यौ गोपैर्गोपीभिरावृतः ॥ १४ ॥

चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह । सर्वांशेन समौ तौद्वौ कृष्णनारायणौ परौ ॥
महालक्ष्मीश्च योगेन नातारूपा बभूव सा । वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमा परा ॥
शुद्धसन्धस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता । प्रेम्णा साच प्रधानाच सर्वासु रमणीषु च ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसम्पत्स्वरूपिणी । पातालेषुचमर्त्येषुराजलक्ष्मीश्चराजसु ॥
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहणी च कलांशया । सम्पत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला ॥
गवां प्रसूः सा सुरभीर्दक्षिणायज्ञकामिनी । क्षीरोदसिन्धुकन्यासा श्रीरूपापद्मिनीषु च ॥
शोभारूपा च चन्द्रे च सूर्यमण्डलमण्डिता । विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च ॥
नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च । सर्वशस्येषु वस्त्रेषु स्थानेषु संस्त्रुतेषु च ॥२२॥
प्रतिमासु च देवानां मङ्गलेषु घटेषु च । माणिक्येषु च मुकासु माल्येषु च मनोहरा ॥
मणीन्द्रेषु च हारेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च । वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु घस्तुषु ॥२५॥
वैकुण्ठे पूजिता सादौ देवी नारायणेन च । द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीयेशङ्करेण च ॥
विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोद्रे भारते मुने । स्वाम्भुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥
ऋषीन्द्रैश्चमुनीन्द्रैश्चसद्विश्वेभिरभिर्भवेत् । गन्धर्वाद्यैश्चनगाद्यैःपातालेषुचपूजिता ॥
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजाच ब्रह्मजा । भक्त्या च पद्मरयन्तं त्रिषु लोकेषुनारद ॥
चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मङ्गलघासरे । विष्णुनानिमिता पूजात्रिषुलोकेषुभक्तिः ॥
धर्मान्ते पौषसंक्रान्त्या मेध्यामावाह्य प्राङ्गणे । मनुस्तां पूजयामास साभूता भुवनत्रये

राजेन्द्रेण पूजिता सा मङ्गलेनैव मङ्गला । केदारैणैव नीलेन नलेन सुवलेन च ॥३१॥
 ध्रुवेषोत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा । कश्यपेन च दक्षेण मनुना च विवस्वता ॥
 प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरैणैव वायुना । यमेन बह्विना चैष वरुणेनैष पूजिता ॥ ३२ ॥
 एवं सर्वत्र सर्वैश्च वन्दितापूजितासदा । सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी
 इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्म्युपाख्याने
 पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

पट्त्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रं प्रति दुर्वासमःशापः ।

नारद उवाच

नारायणप्रिया सा च चरा वैकुण्ठवासिनी । वैकुण्ठाधिष्ठात्रीदेवी महालक्ष्मी.सनातनी
 कथं बभूवसादेवोपृथिव्यांसिन्धुकन्यका । किंतद्द्रव्यातंचकषचं सर्वंपूजापिधिक्रमम् ॥
 पुरा केन स्तुतादौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

नारायण उवाच

पुत्र दुर्वासमः शापात् भ्रष्टश्रीकः पुरन्दरः । बभूव दैवसंघश्च मर्त्यलोकश्चनारद ॥४॥
 लक्ष्मीः स्वर्गादिकंत्यक्त्वाष्टप्रापरमदुःखिता । गत्वालीनाचवैकुण्ठेमहालक्ष्म्याञ्जनारद ॥
 सदा शोकाययुर्देवा दुःखिता ब्रह्मण सभाम् । ब्रह्माणञ्च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥
 वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे । धर्ताचदैत्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥
 सदा लक्ष्मीश्चकलयुपुरानानारायणाज्ञया । बभूवसिन्धुकन्यासा शत्रुसम्पत्स्वरूपिणी ॥
 सदा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह । संप्रापुञ्चपरंलक्ष्म्या ददृशुस्ताञ्जतत्र हि ॥
 सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वरमालाञ्च विष्णवे । ददौ प्रसन्नचक्षुना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥
 देवाश्चाप्यसुरप्रस्त राज्यं प्रापुञ्च तद्वरात् । तां सम्पूज्यचसस्तुपसर्वत्रच निरापदः ॥

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः पुरन्दरम् । केन दोषेण धारहान् ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मचित्पुरा ॥
ममन्ये केन रूपेण जलधितैः सुरादिभिः । केन स्तोत्रेण सादेवी शक्रसाक्षाद्बभूवह ॥
को वा तयोश्च संवादो बभूव तद्वद प्रभो ॥ १४ ॥

नारायण उवाच

मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा । क्रीडां चकार रहसि रम्भया सह कामुकः
कृत्वा क्रीडां तथा सार्द्धकामुस्याहृतचेतनः । तस्योत्तमहारण्ये कामोन्मथितचेतनः ॥
कैलासशिखरं यान्तं चैकुण्ठादृषिपुङ्गवम् । दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥
श्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डसहस्रप्रममीश्वरम् । प्रततकाञ्चनाकारं जटाभारं महोज्ज्वलम् ॥
शुक्लयज्ञोपवीतञ्च चीरदण्डं कमण्डलुम् । महोज्ज्वलञ्च तिलकं विभ्रतंचन्द्रसन्निभम् ॥
समन्वितं शिष्यवर्गैर्वेद्वेदाङ्गपारगैः । दृष्ट्वा ननाम शिरसा सम्भ्रमात्तं पुरन्दरः ॥२०॥
शिष्यवर्गञ्च भक्त्या च तुष्टावबमुदान्वितः । मुनिनाचसशिष्येण तस्मै दत्तं शुभाशिष्यम्
विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पञ्च सुमनोहaram् । जरामृत्युरोगशोकहरं मोक्षकरं परम् ॥२२॥
शक्रः पुष्यं गृहीत्वा च प्रमत्तोरजसम्पदा । भ्रमेण स्थापयामास तदेवहस्तिमस्तके ॥
हस्ती तत्स्पर्शमात्रेणरूपेणच गुणेनच । तेजसा वयसा कान्त्या विष्णुतुल्यो बभूवसः ॥
त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्च जगाम घोरकाननम् । न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितं तेजसामुने ॥
तत्पुण्यं त्यक्तवन्तञ्च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः । तमुवाच महारष्ट्रः शशाप स स्थापितः ॥

मुनिव्वाच

अरे धिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे । मद्दत्तपुष्यं दत्तञ्च गर्वेण हस्तिमस्तके ॥२७॥
विष्णोर्निवेदिनं पुष्यं नैवेद्यं चाफलं जलम् । प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महाजनः ॥
भ्रष्टधीर्भ्रष्टबुद्धिश्च भ्रष्टज्ञानो भवेन्नरः । यस्त्यजेद्विष्णुर्नैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम् ॥
प्राप्तिमात्रेणयोभुङ्क्तेभक्त्याविष्णुर्नैवेदितम् । पुंसां शान्तं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तं स्वयं भवेत् ॥
विष्णुर्नैवेद्यमोर्जायोनित्यन्तुप्रणमैर्दारिम् । पूजयेत्स्तौतिवाभक्त्यासविष्णुसदृशो भवेत् ॥
तत्स्पर्शायुना सद्यः नीर्याधश्च विशुध्यति । तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुधरा ॥

पुञ्जल्यन्तमवीरान् शूद्राद्यादानमेव च । यद्भरैरनिवेद्यञ्च वृथाभासममक्षकम् ॥ ३३ ॥
 शिवलिङ्गप्रदानान् यदन्न शूद्रयाजिनाम् । विकित्सकद्विजानाञ्च दैवलाज तथैव च ॥
 कन्याविक्रयिणामन्नयदन्नयोनिजीयिनाम् । अनुष्णान्नपर्युषितसर्वमक्ष्यावशेषितम् ॥
 शूद्रापति द्विजान् चवृषवाहद्विजान्कम् । अदीक्षितद्विजानाञ्च यदन्न शयदाहिनाम् ॥
 अगम्यागाभिनाञ्चैव द्विजानामन्नमेव च । मित्रदुहा वृत्तानामन्नविश्वासघातिनाम् ॥
 मिथ्यासाक्षिप्रदानाञ्च ब्राह्मणाना तथैव च । एतन्सर्वं विशुद्धेत् विष्णुनैवेद्यमक्षणात् ॥
 विष्णुसेवी च श्वपचो वशाना कोटिमुद्धरेत् ।

हरैरभक्तौ विप्रश्च स्वञ्च रक्षितुमक्षम ॥ ३६ ॥

अध्वानाद्यदिगृह्णातिविष्णोर्निर्माल्यमेव च । सतजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसशय ॥
 आत्वाभक्त्याचगृह्णातिविष्णोर्नैवेद्यमेव च । कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसशय ॥
 यस्मात् सस्यापित पुष्प गर्वेण हस्तिमस्तके ।

तस्मात् युष्मान् परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरे पद्म् ॥ ४२ ॥

नारायणस्यभक्तोऽहं विभेमीश्वरविधिम् । कालमृत्युजराञ्चैव कानन्यान्गणयामि च ।
 किं करिष्यति ते तात कश्यपश्च प्रजापति । बृहस्पतिर्गुरुञ्चैव नि शङ्कस्य च मे हरे ॥४४
 इदं पुष्प यस्य मूर्ध्नितस्यैवपूजनपुर । मूर्ध्निलिङ्गते शिवशिशोश्छित्त्वेदयोजयिष्यति ।
 इति श्रुत्वा महेन्द्रश्च धृत्वा तच्चरणद्वयम् । उच्चैररोद् शोकार्त्तं तमुवाच भयाकुल ॥
 इन्द्र उवाच ।

दत्त समुचित शपो महामत्तय हेप्रभो । हृताल्पयन्त्वेत् सम्पत्तिं कियत्तद्भानञ्चदेहिमे ॥
 ऐश्वर्यं विपदावीजं प्रच्छन्नज्ञानकारणम् । मुक्तिमार्गार्गलं दाढ्यं हरिभक्तिव्याथकम् ॥
 जन्ममृत्युजरा रोगशोकदुःखाङ्कुराङ्कुर परम् । सम्पत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति ॥
 सम्पन्नस्तं सुमदश्च सुरामस्तं सप्रेतन । बान्धवैर्वैषितं सांऽपि वन्धुद्वेषकरो मुने ॥
 सम्पन्नदे प्रमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वल । महाकामी रात्रसिक् सत्यमार्गं न पश्यति ।
 द्विविधो विषयान्धश्च राजसस्तामस स्मृत । अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजस स्मृत
 शास्त्रे च द्विविधं मार्गं निर्दिष्टं मुनिपुङ्गव । प्रवृत्तिं धीजमेव च निवृत्ते कारण परम् ५३

चरन्ति जीवितश्चादौ प्रवृत्तौ दुःखवर्त्मनि । स्वच्छन्दे च प्रसन्नेचनिर्विरोधेच सन्ततम्
 आपातमधुरे लोभात् क्लेशेच सुखमानिनः । परिणामनाशवीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥५५॥
 अनेकजन्मपर्यन्तं कृत्वाच भ्रमणं मुदा । स्वकर्मविहितायाञ्च नानायोन्यां क्रमेण च ॥
 ततः कृष्णानुग्रहाच्च सत्सङ्गं लभते जनः । सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धिपारकारणम् ॥
 साधुः सत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेयत् । तदा करोति यत्नञ्च जीवी बन्धनखण्डने ॥
 अनेकजन्मयोगेन तपसानशनेन च । तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम् ॥ ५६॥
 इदं श्रुतं गुरोर्वचसात् प्रसङ्गावसरेण च । न हि पृष्टमतोऽन्यच्च भवज्जालवेष्टितः ॥६०॥
 अधुना विधिना दत्तो विपत्तौ ज्ञानसागरः । सम्पद्रूपा विपदियं मम निस्तारकारिणी ।
 ज्ञानसिन्धोदीनबन्धो मह्यं दीनायसाम्प्रतम् । देहि किञ्चित् ज्ञानसारं भवपारंश्यानिधे
 इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानिनां गुरुः । ज्ञानं कथितुमारेमे ह्यतितुष्टः सनातनः ॥

मुनिरवाच ।

अहो महेन्द्रमाङ्गल्यं मार्गेष्टं द्रष्टुमिच्छसि । आपातदुःखवीजञ्च परिणामसुखावहम् ॥
 स्वगर्भयातनानाशपीडाखण्डनकारणम् । दुष्पारासारदुर्वार-संसारार्णवतारणम् ॥६५॥
 कर्मवृक्षाङ्कुरच्छेदकारणं सर्वतारणम् । सन्तोषसन्ततिकरं प्रवरं सर्ववर्त्मनाम् ॥ ६६ ॥
 दानेन तपसा वापि व्रतेनानशनादिना । कर्मणा स्वर्गभोगादिसुखं भवति जीविनाम् ॥
 पूर्वकाम्यकर्मणाश्च मूलं संछिद्य यत्नतः । अधुनेदं मोक्षवीजं संकल्पाभाव एव च ॥६८॥
 यत्कर्म सात्त्विकं कुर्यादसंकल्पितमेव च । सर्वं कृष्णार्पणं कृत्वा परै ब्रह्मणि लीयते ॥
 संसारिकाणामेतच्च निर्वाणमोक्षणं विदुः । नैच्छन्ति वैष्णवास्तत्तु सेवाविरहकारणः
 सेवां कुर्वन्ति ते नित्यं विधाय देहमुत्तमम् । गोलोके वापिवैकुण्ठेतस्यैवपरमात्मनः ॥
 हरिसेवादिरूपाञ्च मुक्तिमिच्छन्तिवैष्णवाः । जीवन्मुक्ताश्चतेशक्रस्वकुलोद्धारकारिणः ॥
 स्मरणं कीर्तनं विष्णोरर्चनं पादसेवनम् । ध्यानं स्तवनं नित्यं भक्त्या नैवेद्यभक्षणम् ॥
 चरणोदकपानञ्च तन्मन्त्रजपनं परम् । इदं निस्तारवीजञ्च सर्वेषामीप्सितं भवेत् ॥७४॥
 इदं मृत्युञ्जयं ज्ञानं दत्तं मृत्युञ्जयेन मे । तच्छिष्योऽहञ्च निःशङ्कः तत्प्रसादाच्चसर्वतः ॥
 स जन्मदाता स गुरुः स चबन्धुःसतांपरः । योददातिहरेर्भक्तिर्ब्रह्मलोकेच सुदुर्लभाम् ॥

दर्शयेदन्यमार्गञ्च श्रीकृष्णसेवनं धिता । स च तं नाशायत्येव ध्रुवं तद्वधभाग् भवेत् ॥
 सन्ततं जगता कृष्णनाम मङ्गलकारणम् । मङ्गलं वर्द्धते नित्यं न भवेदायुषो व्ययः ॥
 तेभ्योऽप्यपैति कालश्चमृत्युश्चरोगपथच । सन्तापश्चैवशोकरश्च वैततेयादियोगाः ॥
 कृष्णमन्त्रोपासकरश्चग्राहण.श्वपचोऽपिवा । ब्रह्मलोकंसमुल्लङ्घययाति गोलोकमुत्तम ॥
 ब्रह्मणा पूजित सोऽपि मधुपर्कादिना च वै । स्तुतःसुरैश्चसिद्धैश्चपरमानन्दभावनः ॥
 ज्ञानसारं तप सारं ब्रह्मसारं परं शिवम् । शिवेनोक्तं योगसारं श्रीकृष्णपादसेवनम् ॥
 ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथयैव स्वप्नवत् । भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं प्रकृतेः परम् ॥
 अतीव सुखदं सारं भक्तिदं मुक्तिदं परम् । सिद्धियोगप्रदञ्चैव दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
 योगिनामपिसिद्धानांयतीनाञ्चतपस्विताम् । सर्वपांकर्मभोगोऽस्तिनारायणसेधिनाम्
 भस्मसाच्च भवेत् पापं यदुपस्पर्शमात्रत' ।

ज्वलद्ग्नौ पातितञ्च यथा शुष्केन्धनं तथा ॥८६॥

तवो रोगाहि वैपन्ने पापानि च भयानि च । दूरतश्च पलायन्ते यमदृता यतो भयात् ॥
 तावन्नियद्वः संसारं कारागारं विवेर्जन' । न यावत् कृष्णमन्त्रञ्चप्राप्नोति गुह्यचक्रतः ॥
 कृतकर्मभोगरूपं निगडुच्छेदकारणम् । मायाजालोच्छेदकरं मायापाशनिहन्तनम् ॥८६॥
 गोलोकमार्गसोपानं निस्तारधीजकारणम् । भक्तप्रदुरस्वरूपश्च नित्यं वृद्धमनश्चरम् ॥८७॥
 सारञ्च सर्वतपसां योगानाञ्च तथैव च । सिद्धीनां वेदपाठानां व्रतादीनाञ्च निश्चितम् ॥
 दानानां तीर्थस्नानानां यज्ञादीनां पुरन्दर । पूजानामुपवासनामित्याह कमलोद्भवः ॥८८॥
 पुंसां लक्षपितृणाञ्च शनं मातामहस्य च । पूर्वं परञ्च तन् संख्यं पितरं मातरं गुह्यम् ॥
 सहोदरं कलयञ्च धनुं शिष्यञ्च किङ्करम् । समुदरेच भ्यशुरं भ्यधुं कन्याञ्चतनुसुतम् ॥
 स्वात्मानञ्च सतीर्थञ्च गुरुपत्नो गुरोः सुतम् । उदरेद् यत्नान्मन्त्रोमन्त्रप्रहणमात्रत. ॥ ८९ ॥
 मन्त्रप्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । तत्स्पर्शपूतस्तोर्धीषः सद्य पूतावसुन्धरा ॥९०॥
 अनेकजन्मपर्यन्तं दीन्नाहीनो भवेन्नरः । तदन्पदेवमन्त्रञ्च लभते पुण्यलेशतः ॥९१॥
 सतजन्मोपदेवानां कृत्वा सेवांसकर्मत' । लभते च रमेर्मन्त्रसाक्षिणः सर्वकर्मणाम् ।
 जन्मप्रथं मास्करञ्च निमेष्य मानत्र. शुचि. । लभेद्गोशयत्रञ्च सर्ववित्तहरं परम् ॥९२॥

जन्मत्रयं तं निसेव्य निर्विग्रह भवेन्नरः । विघ्नेशस्य प्रसादेन दिव्यज्ञानं लभेन्नरः ॥१००॥
 तदा ज्ञानप्रदापेन समालोच्यमहामतिः । अज्ञानान्धतमश्छित्त्वा महामायां भजेन्नरः ॥
 विष्णुनायाञ्चरुर्तिदुर्गां दुर्गतितानिनीम् । सिद्धिदांसिद्धिरूपाञ्चपरमांसिद्धियोगिनीम्
 वार्णारूपाञ्च पद्माञ्च भद्राकृष्णप्रियात्मिकाम् । नानारूपांतानिसेव्यजन्मनांशतकं नरः ॥
 तत्प्रसादाद्भवेज्ज्ञानां ज्ञानानन्दं तदा भजेत् । कृष्णज्ञानाधिदेवञ्च महादेवं सनातनम् ॥
 शिवं शिवस्वरूपञ्च शिवदं शिवकारणम् । परमानन्दरूपञ्च परमानन्ददायिनम् ॥१०५॥
 सुखदं मोक्षदं चैव दातारं सर्वसम्पदाम् । भगवत्त्वप्रदञ्चैव दीर्घमायुष्टदं परम् ॥१०६॥
 इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्च दातुं शकञ्च लीलया । राजेन्द्रत्वप्रदञ्चैव ज्ञानदं हरिभक्तिदम् ॥१०७॥
 जन्मत्रयं तनाराध्य चायुनोपप्रसादतः । सर्वदस्यप्रसादेन शङ्करस्य महात्मनः ॥१०८॥
 वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम् । तदा तद्भक्तसंसात् कृष्णमन्त्रं लभेद्भ्रुवम् ॥
 निर्मलज्ञानदीपेन प्रदीपेन च तत्त्वविन् । ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वमिष्ट्यैवपश्यति ॥११०॥
 दयानिन्द्रेः प्रसादेन निर्मलज्ञानमालभेत् । वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥

तदा निवृत्तिमाप्नोति सारात्सारां परात्पराम् ।

यत्र देहे लभेग्मन्त्रं तद्देहावधि भारते ॥ ११२ ॥

तथाश्चर्मौतिकं त्यक्त्वा विभर्त्ति दिव्यरूपकम् ।

करोति दास्यं गोलौके वैकुण्ठे वा हरेः पदेः ॥ ११३ ॥

परमानन्दमगुको मोहादियु विवर्जितः । न विद्यते पुनर्जन्म पुनरगमनं हरे ॥११४॥
 पुनश्च न पिरेर्त्सीरंधृत्वामातृस्तं परम् । विष्णुमन्त्रोपासकाना गङ्गादितीर्थसेविनाम् ॥
 स्वधर्मिणाञ्च भिक्षुणा पुनर्जन्म न विद्यते । तीर्थपतित्यजेत्पापंक्रियांकृत्वाहरिं भजेत् ॥
 अयं निरूपेतो धात्रा स्वधर्मस्तीर्थसेविनाम् । तन्नाममन्त्रं प्रजपेत्तत्स्वेवादिपुतत्परः ॥
 तद्भक्तोपवासात् इत्युक्तो विष्णुसेविनाम् । सद्गुणे वाकदन्नेवालोष्ट्रवाकाञ्चने तथा ॥
 समबुद्धिर्दस्य शब्दससन्न्यासीतिकीर्त्तितः । दण्डकमण्डलुंरक्तवस्त्रमात्रञ्च धारयेत् ॥
 नित्यं प्रवासी नैकत्र स सन्न्यासीतिकीर्त्तितः । शुद्धाचारद्विजाञ्चमुट्केलोभादिवर्जितः
 किन्तु किञ्चिन्नराचैतससन्न्यासीतिकीर्त्तितः । नव्यापारिनाश्रमाच्चसर्वकर्मविवर्जितः ॥

ध्यायेन्नारायणशश्वन्ससन्न्यासीतिकीर्त्तित' । शश्वन्मौनीप्रह्वचारीसंभापापरिवर्जित' ॥
 सर्वं ब्रह्ममप पश्येन् ससन्न्यासीतिकीर्त्तित । सर्वत्रसमुद्दिश्चहिंसामायादिवर्जित' ॥
 क्रोधाहङ्कारहित ससन्न्यासीतिकीर्त्तित । अयाचितोपस्थितश्चमिष्टामिष्टश्चभुक्तवान् ॥
 न याचनेभक्षगार्थीससन्न्यासीतिकीर्त्तित' । नवपश्येन्मुखंस्त्रीणांन तिष्ठेत्तत्समोपतः ॥
 दारपीमपि योपाश्च न स्पृशेन् य समिश्रुक' । अयंसन्न्यासिनांधर्मदत्याहकमलोद्भवः ॥
 विपर्यये विनाशश्च जन्म चाम्यं भयं भवेत् । जन्मदु खं याम्यदु खंजीविनामतिदारुणम्
 सुरशूकल्योनीं वा गर्भे दु खं सम सुर । योनीं वा क्षुद्रजन्तुनां पश्वादीनां तथैव च ॥
 गर्भे स्मरन्ति सर्वे ते कर्म जन्मशतोद्भवम् । विस्मरेन्निर्गतो जीवोगर्भाच्चविष्णुमायया ।

स्वदेहं पाति यत्नेन सुरो वा कीट एव वा ॥१२६॥

योनेऽप्यन्तरे शुक्रे पतिते पुरुषस्य च । शुक्रः शोणितयुक्तश्च सहस्रा तत्क्षणं भवेन् ॥
 रक्षाधिके मातृसमश्चेतरे पितुरारुति । युग्माहे च भवेत् पुत्रः कन्यकातद्विपर्यये ॥
 रविमौमगुरूणाञ्च धारे चेत्तद्ववेत् सुतः । अयुग्माहे तदितरे वारे च कन्यका भवेत् ॥
 प्रथमप्रहरे जन्म यस्य सोऽल्पायुरेव च । द्वितीये मध्यमश्चैव तृतीये तत्परो भवेत् ॥
 चतुर्थे चिरजीवी च क्षणानुरूपको भवेत् । दु खी वाथ सुखी वापि पूर्वकर्मानुरूपतः ॥
 यादृशो च क्षणे जन्म प्रसवस्तादृशे भवेत् । प्रसूतिक्षणचर्वाञ्च कुर्वन्त्येव विचक्षणः ॥
 कललन्त्येकपात्रेण चर्द्धयेच्च दिने दिने । सप्तमे घट्टराकारे मासे गण्डुसमो भवेत् ॥
 मासत्रये मासपिण्डो हस्तपादादिवर्जित' । सर्वावयवसम्पन्नो देही मासे च पञ्चमे ॥
 भवेत्तु जीवसञ्चारः षण्मासे सर्वतरविन् । दुःखी स्वल्पस्पलस्थापीशकुन्तश्च पित्रे ॥
 मातृजग्धानपानश्च भुङ्क्तेमैत्र्यस्थलेस्थित' । हाहेतिशब्दं कृत्वाचचिन्तयेदीश्वरं परम् ॥
 एवञ्च चतुर्णे मासान्मुक्त्वापरमयातनाम् । प्रेरितोवायुनाकालेगर्भाच्चर्त्तितो भवेत् ॥
 दिग्देशकालाव्युत्पन्नोविस्मृतोविष्णुमायया । शश्वद्विष्णुसंयुक्त शिशुश्च शशवाचधि
 परायत्तोऽप्यक्षमश्च मशकादिनिवारणे । कीटादिभुक्तो दुःखी च गौति तत्र पुन पुन' ॥

स्तनान्धोऽप्यसमर्थश्च याचन्नां फर्त्तुममीप्सिताम् ।

न घर्णी नि सरैत्तस्य पौगण्डाचधि प्रस्फुटा ॥१४३॥

पौगण्डे यातनां भुक्त्वा प्राप्नोति र्यौवनं पुनः । नस्मरेन्माययादेर्हीगर्मादियातनांपुनः ॥
 ब्राह्मणैश्चनार्त्तञ्च नानामोहादिवेष्टितः । पुत्रं कल्मषमनुगं यत्नेन परिपालयेत् ॥१५५॥
 एवं यावन् समर्थञ्च तावदेव हि पूजितः । असमर्थञ्च मन्यन्ते बान्धवा गोजरं यथा ॥
 यदाऽनीच जरायुक्तोजडोऽतिवधिरोभवेत् । काशब्वासादियुक्तश्चपरायत्तोऽतिपूढवत्
 तदन्तरेऽनुतापञ्च करोति सन्तनं पुनः । न सेवितो हरेस्तोर्यं सन्सद्गुणापि कामतः ॥
 पुनर्यव मानवा योर्नि लभामि भारतेयदि । तदातीयंमिथ्यामिमजामि कृष्णमित्यहो ॥
 इत्येवमादि मनसि कुर्वन्तं तं जडं सुर । गृह्णाति यमदूतश्च काले प्राप्तेऽतिदारुणः ॥
 स पश्येद्यमदूतञ्च पाशहस्तञ्च दण्डितम् । अतीवकौपरक्ताक्षं विवृताकारमुल्बणम् ॥
 दुर्निवार्यमुपायैश्च बलिष्टञ्च भयङ्करम् । दुर्दृष्टं सर्वसिद्धिजं सर्वादृष्टंपुणःस्थितम् ॥१५२
 दृष्टिमात्रान्महामातो विष्णुञ्च समुत्सृजेत् ।

तदा प्राणांस्त्यजेत् सयो देहञ्च पाञ्चभौतिकम् ॥ १५३॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरं गृहीत्वा यमकिङ्करः । विन्यस्य भोगदेहे च स्वस्थानंप्रापयेत् द्रुतम् ॥
 जीवो गन्वा यमं पश्येत् सर्वधर्मजमेव च । रत्नसिंहासनस्थञ्च सस्मिन्नंसुस्थिरंपरम् ॥
 धर्माधर्मविचारजं सर्वजं सर्वतोमुखम् । विश्वेभ्येकाधिकारञ्च विधात्रा निर्मितं पुरा ॥
 षड्विंशद्विंशतुकाग्रानं रत्नभूषणभूषितम् । वेष्टितं पार्यदाणैर्दूतैश्चापि त्रिकोटिभिः ॥१५७
 जपन्तं श्रीकृष्णनाम शुद्धस्फाटिकमालया । ध्यायमानंतत्पद्मजं पुलकाङ्कितविग्रहम् ॥
 सगद्गदं साधुनेत्रं सर्वत्र समदर्शिनम् । अतीव कमनीयञ्च शश्वत्सुस्थिरर्यौवनम् ॥१५६॥
 स्वनेजसा प्रञ्चलन्तं सुगदृश्यं विचक्षणम् । शरत्पार्वणचन्द्रामं चित्रगुतपुणःस्थितम् ॥
 पुण्यान्ननां शान्तरूपं पापिनाञ्च भयङ्करम् । तं दृष्ट्वा प्रमणेदेहो महामातश्च तिष्ठति ॥
 चित्रगुतविचारेण येषांयदुचिन्तं फल्गम् । गुभाशुभञ्च कुरुते तदेव रविनन्दनः ॥१६२॥
 एवं तेषां गतायाने निवृत्तिर्नास्तित्रीविनाम् । निवृत्तिहेतुरूपञ्च श्रीकृष्णपादसेवनम् ॥
 इत्येन्द्रकथितं सर्वं धर्माध्ययवाञ्छितम् । सर्वं दास्यामि तेवत्सनेऽसाध्यञ्चकिञ्चन ॥

महेन्द्र उवाच

इन्द्रत्वं च गतं भद्रं किनैरुपर्यै प्रयोजनम् । कल्पवृक्ष मुनिप्रेष्ठ देहि मे परमं पदम् ॥

महेन्द्रस्य च च धृत्वा ब्रह्मस्य मुनिपुङ्गवः । तमुवाच वचः सत्यं वेदोक्तं सारमेयच ॥

मुनिरुवाच

परं पदं विपयिणां महेन्द्रातिसुदुर्लभम् । मुक्तिर्गुप्साद्रिधानाञ्च न लये प्राकृतेऽपि च ॥

आविर्भाव सृष्टिविधौ तिरोभावोऽलयेऽपि च । यथा जागरणं सुप्तिर्भवत्येव क्रमेण च ॥

यथा भ्रमति कालश्च तथा विपयिणो ध्रुवः । चक्रेनेत्रिक्रमेणैव नित्यमेवैश्वर्येच्छया ॥

पलमेक भवेदेव यथा विपलपट्टिमिः । पट्टिमिश्च पलैर्दण्डो मुहूर्त्तो द्विगुणात्ततः ॥

त्रिंशद्विंश मुहूर्त्तश्च भवेदेव दिवातिशाम् । दशःञ्चद्विचारात्रिः पक्षमेकं । चतुर्बुधाः ॥

पञ्चाभ्यां शुक्लहृष्णाभ्या मास एव विधीयते ।

ऋतुर्द्वाभ्याञ्च मासाभ्यां संवत्सविद्भिः प्रकीर्तितः ॥ १७२ ॥

ऋतुत्रयेणायनञ्च ताभ्यां द्वाभ्याञ्च वत्सरः । विंशतहस्याधिकैव त्रिचत्वारिंशलक्षकैः ॥

वत्सरैर्नरमानैश्च युगाश्चत्वार एव च । पष्टयधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशती ॥

युगे नराणां शक्रायुर्मनोरायुः प्रकीर्तितम् ॥ १७३ ॥

दिग्लक्षेन्द्रनिपातेऽष्टसहस्राधिक एव च ॥ १७५ ॥

निपातो ब्रह्मणस्तत्र भवेत्प्राकृतिको लयः । लये प्राकृतिके वत्स कृष्णस्य परमात्मनः ॥

चञ्चुर्निमेषः सृष्टिश्च पुनरन्मीलने तथा । ब्रह्मसृष्टिलयानाञ्च संख्या नास्ति धृताश्रुतम् ॥

यथा पृथिव्यारैणुनामित्याह चन्द्रशेखरः । एतेषां मोक्षणां नास्ति कथिता निचयानि च ॥

सृष्टिसूत्रस्वरूपं हि चान्यद् वृणुष्वरंसुर । मुनीन्द्रस्य वचः धृत्वा देवेन्द्रो विस्मृतो मुने ॥

आत्मनः पूर्वमैश्वर्य्यं वरयामास तत्र वै । तत्प्राप्त्यस्य विरेणैवेत्युक्त्वा स प्रययौ गृहम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे प्रकृतिखण्डे मुनीन्द्रसुरेन्द्रसंवादे लक्ष्म्युपाख्याने

पद्त्रिंशोऽध्यायः ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

हरिगुणश्रवणादिन्द्रस्य ज्ञानप्राप्तिः ।

नारद उवाच ।

हरेर्गुणं समाकर्ष्य ज्ञानं प्राप्य पुरन्दरः । किञ्चकार गृहं गत्वा तन्मेव्याप पातुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

श्रीहृष्णस्यगुणं श्रुत्वा घीतरागो बभूव सः । वैराग्यं वर्द्धयामास तदाब्रह्मन् दिनेदिने ॥
मुनिस्थानाद्गृहं गत्वासद्दर्शामरावतीम् । दैत्यैरसुरसङ्घैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम् ॥
विषण्णवान्धवां कुत्र बन्धुहीनाञ्चकुत्रचिन् । पितृमातृकलत्रादि विहीनामतिचञ्चलाम् ॥
शत्रुप्रस्ताञ्च तां दृष्ट्वा जगामवाक्पतिं प्रति । शक्रो मन्दाकिनी तीरे ददर्शगुहमीश्वरम् ॥
ध्यायमानं परंब्रह्म गङ्गातोये स्थितं परम् । सूर्याभिसंमुखं पूर्वमुखञ्चविश्वतोमुखम् ॥
साश्रुनेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम् । वरिष्ठञ्च गरिष्ठञ्च धर्मिष्ठमिष्टसेविनम् ॥७॥
श्रेष्ठञ्च बन्धुवर्गाणामतिश्रेष्ठञ्च ज्ञानिनाम् । ज्येष्ठञ्च बन्धुवर्गाणां नेष्टञ्च सुरवैरिणाम्
दृष्ट्वा गुहं जगन्तञ्च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः । प्रहरन्ते गुहं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥
प्रणम्य चरणाभ्योजे ररोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा ॥
पुनर्वरो मया लब्धो ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम् । वैरप्रस्ताञ्च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥
शिष्यस्य घचनं श्रुत्वा सतां बुद्धिमता वरः । बृहस्पतिरवाचेदं कोपरक्ताकलोचनः ॥

गुहस्वाच ।

श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मारोदीर्घचनं शृणु । न कातरौ हि नीतिज्ञौ विपत्तौ च कदाचन ॥
सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरास्वप्नरूपिणी । पूर्वस्वकर्मायत्ता च स्वयंकर्तातयोरपि ॥
सर्वपाञ्च भ्रमत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि । चक्रनेमिजनेणैव तत्र का परिदेवना ॥१५॥
भुङ्क्ते हि स्वकृतं कर्म सर्वत्रचापिभारते । शुभाशुभञ्च यत्किञ्चिन् स्वकर्मफलमुक्त्वा पुमान्
मामुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना । सासि कौधुमशाखायां संबोध्य स्वकुलोद्भवम्
 जन्मभोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम् । अनुरूपञ्च तेषाञ्च भारतेऽन्यत्र चैव हि ॥
 कर्मणा ब्रह्मशापञ्च कर्मणा च शुभाशियम् । कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यञ्च कर्मणा
 कोटिजर्माजिनं कर्म जीविनामनुगच्छति । न हि त्यजेद्विना भोगात् संछायेव पुरन्दर ॥
 कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् । न्यूनताधिकता वापि भवेद्देव हि कर्मणाम् ॥
 वस्तुदाने च वस्तूनां समं पुण्यं समे दिने । दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाधिकं ततः ॥
 समे देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर । देशभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाधिकं ततः ॥२४॥
 समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च । पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥
 यथा फलन्ति शस्यन्ति न्यूनानि वाधिकानि च । कृपकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदेफलं तथा
 सामान्यदिवसे विप्रे दानं समफलं भवेत् । अमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणं भवेत्

चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तफलमेव च ॥ २७ ॥

ब्रह्मणे शशित कोटिगुणञ्च फलमेव च । सूर्यस्य ब्रह्मणे चापि ततो दशगुणं फलम् ॥
 अक्षयायामक्षयञ्चैवासंख्यं फलमुच्यते । एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेद्विद्वि ॥२६॥
 यथा दाने तथा स्नाने जपेऽन्य पुण्यकर्मसु । एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणांफलम्
 सामान्यदेशे दानञ्च विप्रे समफलं भवेत् । तीर्थे देवगृहे चैव फलं शतगुणं स्मृतम् ॥
 गङ्गायाञ्च कोटिगुणं क्षेत्रे नारायणेऽप्ययम् । कुक्षेत्रे च दर्प्याञ्च काश्यांकोटिगुणंतथा
 यथा चैव कोटिगुणं तथा च विष्णुमन्दिरैः । केदारै च लक्षगुणं हरिद्वारे तथा फलम् ॥
 पुष्करे भास्करक्षेत्रे दशलक्षगुणं फलम् । एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यं ब्रह्मणे च ॥
 सामान्यग्राहणे दानं सममेव फलं लभेत् । लक्षं त्रिसन्ध्यपूते च पण्डिते च जितेन्द्रिये
 विष्णुमन्त्रोपासके च बुधेकोटिगुणं फलम् । एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यगुणाधिक्ये
 यथा दण्डेन सूत्रेण शरापेण जलेन च । कुम्भं निर्माति चक्रेण कुम्भकारो मृदाभुवि ॥
 तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च । यस्याज्ञया सृष्टिविधौ पञ्च नारायणं भज ॥
 स विधाता विधातुश्चापातुः पाताजगत्त्रये । स्रष्टु स्रष्टा च संहर्तुः, संहर्ताकालकालकः
 महाविपत्तीं संसारे यः स्मरेन्मधुसदनम् । विपत्तीं तस्य सम्पत्तिर्मवेदित्याह शङ्कर ॥

इत्येवमुक्त्वा जीवश्च समालिङ्ग्य सुरेश्वरम् ।

दत्त्वा शुभाशिरं चेषुं बोधयामास नारद ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदीये बृहस्पतिमहेन्द्रसंवादे
महालक्ष्म्युपाख्याने सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

महालक्ष्म्युपाख्याने विष्णुभक्तस्य शुभकथनम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं ध्यात्वा हृत्प्रिहन् जगाम ब्रह्मणः समान् । बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैःसुरगणैःसह ।

शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वाच कमलोद्भवम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वाः गुरुरासह नारद ॥२॥

वृत्तान्तकथयामास सुराचार्य्योर्विधिंविभुम् । प्रहस्योवाचतन् श्रुत्वामहेन्द्रंकमलोद्भवः ।

ब्रह्मोवाच ।

चन्समद्रंशजातोऽसिप्रर्षोत्रोमेविचक्षणः । बृहस्पतेश्चशिष्यस्त्वंसुराणामधिपःस्वयम् ॥

मातामहस्ते दक्षश्च विष्णुभक्तःप्रतापवान् । कुलत्रयं यच्छुद्धञ्चकथं सोऽहदृष्टोभवेन् ।

मातापतिप्रता यस्य पिताशुद्धोजितेन्द्रियः । मातामहोभानुलश्च कथंसोऽहदृष्टोभवेन् ।

जनः पैतृकदोषेण दोगन्मातामहस्य च । गुणोद्गोपनीतिदोषैर्हृष्टिर्गो भवेदुध्रुवम् ॥३॥

उत्त्रान्तगतमामगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः । यस्य देहान्तसप्रयातिस शवस्तन्क्षणंभवेन् ॥

मनोऽहमिन्द्रिेशश्च ज्ञानरूपो हि शङ्करः । विष्णुः प्राणाश्च प्रकृतिर्बुद्धिर्मगवनी सती ॥

निद्राद्यः शक्तयश्चताःसर्वाःप्रकृतेःकलाः । आत्मनः प्रतिविम्बश्चजावो भोगीशरीरभृत् ।

आत्मर्नाशेगते देहान् सर्वेयान्तिःसपन्नमात् । यथा वर्त्मनिगच्छन्तं नग्देवमिवानुगाः ।

अहं शिवश्चशेषश्चविष्णुर्धर्मो महान् पिरात् । वषयंयदंशा भक्ताश्च तन्पुम्भं न्यक्कृतंन्वमा

शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेन येन च । तच्च दुर्वाससा दत्तं देवेन न्यक्कृतं सुर ॥१॥

तत्पुष्पमस्तने यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम् । सर्वेषाञ्च सुराणाञ्च तत्पूजापुरतोभवेत् ।
 देवेन वञ्चितस्त्वञ्च वैघञ्च बलवत्तरम् । भाग्यहीनं जतं मूढं कोचा रक्षितुमीश्वर ॥१५॥
 कृष्णान मन्यतेयो हि धीनाथ सर्ववन्दितम् । प्रयातिरष्टा तद्दासी महालक्ष्मीविहायताम् ।
 शतयज्ञेनयाल धा दीक्षिनेन त्ययापुरा । साध्रीर्गताभुना कोपात् कृष्णनिर्मात्यवर्जनात् ।
 अधुनागच्छ वैकुण्ठ मयाच गुरणा सह । निषेध्यतत्रश्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि तद्वरात् ।
 इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा सर्वे सुरगणैःसह । शीघ्र जगाम वैकुण्ठंयत्र श्रीशस्तया सह ॥
 तत्र गत्वा पर ब्रह्म भगवन्त सनातनम् । दृष्ट्वा तेजस्वरूपञ्च प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥२०॥
 श्रीम्भमभ्याहमार्त्तण्डशतकोटिसमप्रभम् ।

शान्तञ्जानादिमन्यान्त लक्ष्मीकान्तमनन्तरुम् ॥ २१ ॥

चतुर्भुजं पापंदेश्च सरस्वत्या स्तुन नतम् । भक्त्या चतुर्भिवेदैश्च गङ्गाया परिसेवितम् ॥
 त प्रणमु सुरा सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमा । भक्तिन्ना साधुनेत्रास्तुष्टु पुष्पोत्तमम् ॥
 घृत्नान्त कथयामास स्वयंब्रह्मा वृताञ्जलि । स्तुद्वैधता सर्वा स्वाधिकारच्युताश्चता ।
 स ददर्श सुरगण विपद्प्रस्तं भयाकुलम् । घल्लभूपणशून्यञ्च घाहनादिविर्जितम् ॥२५॥
 शोभाशून्यं हतश्रीकमतिनिप्रतिभं परम् । उवाच कातरं द्रष्टा विपन्नभयभङ्गन ॥२६॥
 नारायण उवाच ।

मार्त्तंरहन् हे सुराश्चभयंकिचो मयिस्थिते । दास्यामि लक्ष्मीमचला परमैश्वर्यवर्द्धिनीम् ।
 किञ्च मद्भवन् किञ्चित् धूयतां समयोचितम् । हितं सत्य सारभृतं परिणामसुखावहम् ।
 जनाश्चासिंप्यविश्वस्यो मदर्धनाश्चसन्ततम् । यथातथाहं मद्भक्तैः परार्धीन स्वतन्त्रक ।
 यां यो हृष्टो हि मद्भक्ते मत्परं हि निरङ्कुश ।

तद्दृष्ट्वाहं न तिर्यामि पद्मया सह निश्चितम् ॥ ३० ॥

दुर्वासा शङ्कराशञ्च वैष्णवोमपरायणः । तत् शापादागतोऽहञ्च सध्रीकावोगृहादपि ।
 यत्र शङ्खचर्तितान्ति तुलसीच शिलार्चनम् । न भोजनञ्च विप्राणा न पद्मा तत्र तिष्ठति ।
 मद्भक्तानाञ्च मन्दिना यत्र यत्र भवेत् सुराः । महाकृष्टा महालक्ष्मीस्ततोयाति पराभवात् ।
 मद्भक्तिहीनोयो मूढोयो । ममजन्मदिने चापियाति श्री स्तदुगृहादापि ।

मन्नामधिक्रयो यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम् ।

यत्रातिथिर्न भुंक्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात् ॥३५॥

पापिनांयोगृहंयाति शूद्रश्राद्धाग्नभोजनाम् । महारष्ट्राततोयाति मन्दिरान्कमलालया ॥

शूद्राणां शवदाही च भाग्यहानश्च ब्राह्मणः । यातिरुष्टा तद्गृहाच्च देवी कमलवासिनी ॥

शूद्राणां सूपकारोयो ब्राह्मणो वृषवाहकः । ततोयपानभीताच कमलायातिनद्गृहात् ॥

विप्रो यवनसेवी च देवलः शूद्रयाजकः । ततोयपानभीता च वैष्णवीयाति तद्गृहात् ॥

विश्वासघाती मित्रघ्नो नरघाती कृतघ्नकः ।

योऽगन्यागामुको विप्रो मद्रार्प्या याति तद्गृहात् ॥३७॥

अशुद्धहृदयःक्रूरो हिंसको निन्दकोद्विजः । ब्राह्मण्यां शूद्रजातश्च यातिदेवीचतद्गृहात् ।

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तन्पतिः ।

अवीरानञ्च यो भुङ्क्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥३९॥

तृपं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो हि लिखेन्महीम् ।

जिह्वो वा मलवासाश्च सा प्रयाति च तद्गृहान् ॥४३॥

सूर्योदये चद्विभोर्जादिवाशार्थीचब्राह्मणः । दिवामैथुनकारीचनस्माद्याति हरिप्रिया ॥

आचारहीनो यो विप्रः यश्च शूद्रप्रतिग्रही ।

अर्दाक्षिनो हि यो मूढस्तस्मान् लोला प्रयाति च ॥४५॥

स्निग्धपादश्चनग्नोवायःशेतेजानदुर्वलः । शश्वद्धर्मातिवाचालो यात्येव तद्गृहान् सती ॥

शिरः स्नातश्चनैलेनयोऽन्यद्गुणमुपस्पृशेत् । स्वाङ्गे च वादयेद्वाद्यं रमा यातिच तद्गृहान् ॥

घृतोपवासहीनोयःसन्ध्याहीनोऽसुचिर्द्विजः । विष्णुभक्तिविहीनोयस्तस्माद्यातिहरिप्रिया

ब्राह्मणं निन्दयेद् यो हि तांश्च द्वेषि च सन्तनम् ।

र्जावर्हिंसी द्याहीनो याति सर्वप्रसूततः ॥ ४६ ॥

यत्र तत्र हरेरेर्वा हरेरुक्तीर्त्तनं शुभम् । तत्र तिष्ठति सा देवी कमला सर्वमङ्गला ॥५०॥

यत्र प्रशांसा कृष्णस्य तद्गुणस्य पितामह । सा च कृष्णप्रिया देवी तत्रतिष्ठतिसन्ततम् ॥

यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिलाचतुलसीदलम् । तन्सेवा वन्दनं ध्यानं तत्रसापरितिष्ठति ॥

शिवलिङ्गाचनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम् । दुर्गाचनं तद्गुणाश्चतस्रपद्मनिवासिनी ॥
 विप्राणां सेवनं यत्र तेषाञ्च भोजनं शुभम् । अर्चनं सर्वदेवानां तत्रपद्ममुखी सती ॥५४॥
 इत्युत्त्वा च सुरान् सर्वान् रमा माह रमापति । क्षीरोदसागरे जन्मकल्याचलमेति च ॥
 इत्युत्त्वा तान् जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च । मथिन्यासागरलक्ष्मीदेवेभ्यो देहि पद्मज ॥
 इत्युत्त्वा कमलाकान्तो जगामाभ्यन्तरं मुने । देवाधिरणकालेन ययुः क्षीरोदसागरम् ॥
 मन्थानं मन्दरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम् । कृत्वा शेषमन्यपाशासुराश्च नुञ्च चर्षणम् ॥
 धन्वन्तरिञ्च पीयूषमुञ्चैश्रवसर्माप्सिनम् । नानारत्न हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्म्याश्च दर्शनम् ॥
 धनमाला ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने । सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैष्णवी सती ॥
 देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शङ्करेण च । ददौ द्रष्टुं सुगृहे ब्रह्मशापविमोचने ॥६१॥
 प्रापुर्देवा स्वधिपयं दैत्यैर्ग्रस्तं भयङ्करं । महालक्ष्मीप्रसादेन धरद्दानेन नारद ॥ ६२ ॥
 इत्येव कथितं सर्वलक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम् । सुखदसारभूतश्च किंभूय श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण नारद सवादे

लक्ष्म्युपाख्यानेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

लक्ष्मीनाशात्पुनस्तत्प्राप्तये इन्द्रेण लक्ष्म्याः पूजनम् ।

नारद उवाच ।

हरैस्त्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तन्मन्त्रमुत्तमम् । इप्सितलक्ष्म्युपाख्यानध्यानस्तोत्रादिक्वचः ॥
 हविषा पूजिता पूर्वं ततो ब्रह्मादिभिस्तथा । शत्रेण भ्रष्टराज्येन साद्धं सुरगणेन च ॥२॥
 पूजिता येन ध्यानेन विधिना येन वापुरा । स्तुता वा येन स्तोत्रेण तन्मेव्यारयातुमर्हसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

क्यात्वा तीर्थं पुरा शत्रो धृत्वा धीते च वाससी ।

घटं सम्थाप्य क्षीरोदे देवप्रकञ्चं पूजितं ॥ ४ ॥

गणेशञ्चदिनेशञ्च बर्हिषिष्णुंशिवंशिवाम् । एतान्भक्त्यासमभ्यर्च्यपुष्पगन्धादिभिस्तथा
तत्रावाह्यमहालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम् । पूजाञ्चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥
पुर-स्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ तथा । देवादिषु च देवेशे ज्ञानानन्दे शिवे मुने ॥७॥
पारिजातस्य पुष्पञ्चगृहीत्वाचन्दनोक्षितम् । ध्यात्वादेवीमहालक्ष्मीपूजयामास नारद ॥

ध्यानञ्च सामवेदोक्तं यदुक्तं ब्रह्मणे पुरा । हरिणा तेन ध्यानेन तन्नियोध चदामि ते ॥
सहस्रदलपद्मस्य कर्णिकावासिनीं पराम् । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाजुष्टकरांबराम् ॥१०॥
स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम् ।

प्रततकाञ्चननिभां शोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥ ११ ॥

रत्नभूषणभूषाढ्यांशोमितापीतवाससा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयावताम् ॥
सर्वसम्पन्नदात्रीञ्च महालक्ष्मीं भजेशुभाम् । ध्यानेनानेनतां ध्यात्वा नानोपहारसंयुतः ॥
सम्पूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपहाराणि षोडशः । ददौ भक्त्याविधानेनप्रत्येकमन्त्रपूर्वकम् ॥
प्रशंसयानि प्रहृष्टानि दुर्लभानि वराणि च । अमूल्यरत्नसारञ्च निर्मितं विश्वकर्मणा ।

आसनञ्च विचित्रञ्च महालक्ष्मिं प्रगृह्यताम् ॥ १५ ॥

शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम् । पापैश्चयहिरूपञ्च गृह्यतां कमलालये ॥१६॥
पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम् । शङ्खगर्भस्थितं शुद्धं गृह्यतां पद्मवासिनि ॥१७॥
सुगन्धि विष्णुतैलञ्च सुगन्धामलकीजलम् । देहसौन्दर्य्यर्घ्याजञ्च गृह्यतां श्रीहरिप्रिये ॥
वृक्षनिर्यासरूपञ्च गन्धद्रव्यादिसंयुतम् । कृष्णकान्ते पवित्रञ्च धूपञ्चप्रतिगृह्यताम् ॥१६॥

मलयाचलसम्भूतं वृक्षसारं मनोहरम् । सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देविगृह्यताम् ॥२०॥
जगच्चक्षुः स्वरूपञ्च ध्वान्तप्रध्वंसकारणम् । प्रदीपं शुद्धरूपञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥२१॥
नानोपहाररूपञ्च नानारससमन्वितम् । नानास्वादुकरञ्चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥
अन्नब्रह्मस्वरूपञ्च प्राणरक्षणकारणम् । तुष्टिदं पुष्टिदञ्चैवमन्नञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥२३॥

शाल्यक्षतसुपक्वञ्च शर्करागव्यसंयुतम् । सुस्वादुयुक्तं पत्रै च परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥२४॥
शर्करा गव्यपक्वञ्च सुस्वादु सुमनोहरम् । मयानिवेदितंलक्ष्मिस्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम् ॥
नानाविधानि रम्याणि पद्मानि च फलानि च ।

स्वादु युक्तानि कमले गृह्यतां फलदानि च ॥ २६ ॥

सुरभीस्तनसम्भूतं सुस्वादु सुमनोहरम् । मर्यामृतञ्च गन्धञ्च गृह्यतामच्युतप्रिये ॥२७॥
 सुस्वादु रससंयुक्तमिष्टुवृक्षप्सोद्भन्म् । अग्निपक्वमपक्वं वा गुडञ्चदेविगृह्यताम् ॥२८॥
 यवगोधूमशस्यानां चूर्णैरेणसमुद्भवम् । सुपक्वगुडगन्धार्कं मिष्टान्नं देविगृह्यताम् ॥२९॥
 शस्यचूर्णोद्भव पक्वं स्वस्तिकादं समन्वितम् । मयानिवेदितदेविपिष्टकं प्रतिगृह्यताम् ॥
 पार्थिव वृक्षभेदञ्च विविधं द्रव्यकारणम् । सुस्वादुरससंयुक्तमिष्टुञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥
 शीतवायुप्रदञ्चैव दाहे च सुखदं परम् । कमले गृह्यताञ्जवेदं व्यजनंश्वेतवामरम् ॥३२॥
 ताम्बूलञ्च वरं रभ्यं कर्पूरादिसुवासितम् । जिह्वाजाड्यच्छेदकरंताम्बूलदेवि गृह्यताम् ॥
 सुवासितं शीतलञ्च पिपासानाशकारणम् । जगजीवनरूपञ्च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥
 देहसौन्दर्यवीजञ्च सदा शोभाविबर्द्धनम् । कार्यासजञ्च कृमिजं वसनंदेविगृह्यताम् ॥
 रत्नस्वर्णविकारञ्च देहभूयाविबर्द्धनम् । शोभाधानं धीकरञ्च भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥
 नानाकुसुमनिर्माणं यदुशोभाप्रदं परम् । सुरभूप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् ॥३७॥
 पुण्यतार्थोद्दकञ्चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा । गृह्यतां कृष्णकान्तौ च रम्यमाचमनीयकम् ॥
 रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम् । रत्नभूषणभूयाढ्यं सुतत्पं प्रतिगृह्यताम् ॥३९॥
 यद्यद् द्रव्यमपूर्वञ्च पृथिव्यामतिदुर्लभम् । देवभूयार्हभोग्यञ्च तद् द्रव्यदेविगृह्यताम् ॥
 द्रव्याण्येतानि दत्त्वा च मूलेन देवपुङ्गव । मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः ॥
 जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह । मन्त्रश्च प्रक्षणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वदं ॥ ४० ॥
 लक्ष्मीर्मायाकामवाणीतः कमलवासिनी । स्वाहान्तोचैदिकोमन्त्रराजोऽयं द्वादशाक्षरः
 कुबेरोऽनेन मन्त्रेण सर्वैश्वर्यमवाप्तवान् । राजराजेश्वरो दक्षः सार्वर्णिर्मन्त्रुरेव च ॥४१॥

मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपधर्तापति ।

प्रियव्रतोत्तानपादौ बेंदारो नृप एव च ॥४५॥

एते च सिद्धा राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद । सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीः शक्राय दर्शनदशै ।
 रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानस्था वरप्रदा । सप्तद्वीपवती पृथ्वीं छादयन्ती तिघया च सा ॥
 श्वेतैश्चम्पकपर्णाभा रत्नभूषणभूषिता । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा ॥ ४८ ॥
 विघ्नती रत्नमालाञ्च फोडिञ्चन्द्रसमप्रभा । दृष्ट्वा जगत्पत्नं शान्तां तुष्टाय तां पुरन्दरः ॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साधुनेत्रः कृताञ्जलिः । ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयतः ॥
सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥ ५० ॥

इन्द्र उवाच ।

ओं नमो महालक्ष्म्यै ।

ओं नमः कमलबासिन्यै नारायण्यै नमो नमः । कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमोनमः ॥
पद्मपत्रेक्ष्णायै च पद्मास्यायै नमोनमः । पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः ॥५१॥
सर्वसम्पत्स्वरूपायै सर्वदायै नमो नमः । सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः ॥
हरिभक्तिप्रदायै च हर्षदायै नमो नमः । कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमोनमः ॥
कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने । सम्पत्सन्धिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः ॥
शस्याधिष्ठातृदेव्यै च शस्यायै च नमो नमः । नमो बुद्धिस्वरूपायै बुद्धिदायै नमो नमः ॥
वैकुण्ठे या महालक्ष्मीः लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे । स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये
गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता । सुरभी सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी ।
अद्वितीयेयमाता त्वं कमलाकमलालये । स्वाहात्वञ्च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता
त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा । शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा
क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा च शुभानना । परमार्थप्रदा त्वञ्च हरिदास्यप्रदा परा ॥६१॥
यया विना जगत् सर्वं भस्मीभूतमसारकम् । जीवन्मृतञ्च विष्वञ्च शबतुल्यं ययाविना
सर्वेषाञ्च परात्वं हि सर्वयान्धवरूपिणी । यया विना नसम्भाष्यो बान्धवैर्बान्धवः सदा
त्वया हीनो बन्धुर्हीन त्वयायुक्तः सवान्धवः । धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वञ्चकारणरूपिणी
यथामातास्तनान्धानां शिशूनां शैशवे यथा । तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वविष्वतः
शतुर्हीनस्तनयकः सचेर्जावति दैवतः । त्वया हीनोजनकोऽपि न जीवन्धेव निश्चिन्तम्
उपसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके । वैष्णवस्तञ्च विषयं देहि मह्यं सनातनि ॥
ययं यावत्त्वया हीना बन्धुर्हीनाश्च भिक्षुकाः । सर्वसम्पद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये ॥
राज्यं देहि धियं देहि वलं देहि सुरेष्वरि । कर्त्ति देहि धनं देहि यशोमह्यं च देहि वै
कामं देहि मर्ति देहिभोगान् देहिहरिप्रिये । ज्ञानं देहि च धर्मञ्च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्

प्रभावञ्च प्रतापञ्च सर्वाधिकारमेव च । जय पराक्रम युद्धे परमैश्वर्यमेव च ॥७१॥
 इत्युक्त्वा च महेन्द्रश्च सर्वे सुराणै सह । प्रणनाम साधुनेत्रौ मूर्ध्नाचैवपुन पुन ॥
 ब्रह्मा च शङ्करश्चैव शेषो धर्मश्च केशव । सर्वे चक्रुः परिहारसुरार्थे चपुन पुन ॥७२॥
 देवेभ्यश्च वर दत्त्वा पुष्पमाला मनोहराम् । केशवाय ददौ लक्ष्मीं सन्तुष्टासुरससदि ॥
 ययुर्देवाश्च सन्तुष्टा स्व स्व स्थानञ्च नारद । देवी ययौ हरे क्रोड हृष्टाक्षीरोदशायिन
 गयतुश्चैव स्वगृह ब्रह्मेशानो च नारद । दत्त्वाशुभाशिय तां च देवेभ्य प्रीतिपूर्वकम् ॥
 इद स्तोत्र महापुण्य त्रिसन्ध्य य पठेत्तर । कुत्रैतुल्य स भवेत् राजराजेश्वरोमहान्
 सिद्धस्तोत्र यदि पठेत् सोऽपि कल्पतरुर्नर । पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥
 सिद्धिस्तोत्र यदि पठेत् मासमेकञ्चसयत । महासुखा च राजेन्द्रोभविष्यतिनसशय
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे महालक्ष्मास्तोत्र
 समाप्तम् ।

नारद उवाच ।

पुण्य दुवासासा दत्तमस्त्येव यस्य मस्तके । तस्य सर्वपुर पूजेत्युक्त पूव त्वया प्रभां
 तदेव स्थापित पुण्य गजेन्द्रस्यैव मस्तके । कुतो जन्म गणेशस्य सच मत्तो घन गत ॥
 मूर्ध्नि छिन्ने गणपते शनेर्द्रव्यापुरामुने । तत् स्वन त्रेयोजयामास हस्तिमस्तहरि स्वयम्
 अधुनोक्त देवपत्न्यैक सपूज्य च पुरन्दर । पूजयामास लक्ष्मीञ्च क्षारोदे च सुरै सह ॥
 अहो पुराणवक्तृणा दुर्वोध व्रचन नृणाम् । सुव्यक्तमस्य सिद्धान्त वद वेदविदावर ॥
 श्रीनारायण उवाच ।

यदा शशाप शक्रञ्च दुवासा मुनिपुङ्गव । तदा नास्त्येव तज्जन्म पूजाकाले यभूव स
 सुप्रि दु खिता देवा वभ्रमुर्गहाशापत । पश्चात् प्रापुश्च ता लक्ष्मा घरेण च हरेमुने ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्मुपाख्यान नाम
 उत्तमचत्वारिंशत्तमोऽध्याय ।

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

स्वाहोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग् नारायणसमः प्रभो । स्पेण च गुणेनैव यशसातेजसा दिवपा ॥१॥

त्यमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां तथा । तपस्विनां मुनीनाञ्चपरोवेदविदां तथा

महालक्ष्या उपाख्यानं विज्ञातं महद्बहुतम् ॥ २ ॥

अन्यत् किञ्चिदुपाख्यानं निगूढं वद साम्प्रतन् । अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तञ्च सर्वतः ।

अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥ ३ ॥

श्री नारायण उवाच ।

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः । श्रुती कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन् सुदुर्लभम् ॥

तेषु यत्सारभूतञ्च श्रोतुं किंवात्समिच्छसि । तन्मे ब्रूहि महाभाग पञ्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः

नारद उवाच ।

स्वाहादेवहविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु । पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा ।

एतासां चरितं जन्म फलं प्राधान्यमेव च । श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्रात्त्वदवेदविदां वर ।

सौतिरुवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः । कथां कथितुमारंभे पुराणोक्तं पुरातनीम् ॥

नारायण उवाच ।

सृष्टेः प्रथमतो देवाश्चाहारार्थं ययुः पुरा । ब्रह्मलोके ब्रह्मसभामगम्यां सुमतोहराम् ॥

गत्वा निवेदनञ्चक्रुराहारहेतुकं मुने । ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय सिपेत्रे श्रीहरेः पदम् ॥२०॥

यज्ञरूपो हि भगवान् कलया च वभूव सः । यत्रे यद्यद्विद्वानं दत्तं तेभ्यश्च ब्रह्मणा ॥

हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः । सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुङ्गव ॥

देवाः विषण्णास्ते सर्वे तन्सभाञ्च पुनर्ययुः । गत्वा निवेदनञ्चक्रुराहारभाव हेतुकम्

ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ । पूजयामास प्रकृतिं ध्यानेनैव तदाज्ञया ।

प्रकृति कल्या चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी । वभूव दाहिकाशक्तिरग्ने स्वाहास्वरूपिणी ।
 श्रीपद्मयाह्नमार्त्तण्डप्रभाच्छादनकारिणी । अतीव सुन्दरी रामा रमणीया मनोहरा ॥
 ईषद्भास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा । उवाचेति विधेरेषे पद्मयोने वर वृणु ॥१७॥
 विधिस्तद्वचन श्रुत्वा सम्भ्रमात् समुवाच ताम् ॥१८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

त्वमग्नेदाहिका शक्तिर्भवपत्नी च सुन्दरी । दग्धु न शक्तस्त्वष्टृती हुताशश्च त्वयाधिना
 त्वजामोवाचर्य मन्त्रान्ते यद्दाम्प्यति हविर्नर ।

सुरेभ्यस्तन् प्राप्नुवन्ति सुरा सानन्दपूर्वकम् ॥२०॥

अग्ने सम्पत् स्वरूपा च श्रीरूपा च गृहेश्वर । देवाना पूजिता शश्वधरादीना भवाग्निरे
 ब्रह्मणश्च य च श्रुत्वासाविषण्णा वभूवह । तमुवाच स्वय देवी स्वामिप्राय स्वयम्भुवम्
 स्वाहोवाच ।

अहृत्पणभजिष्यामि तपसासुचिरेण च । ब्रह्मन् तदन्यन्यत्किञ्चिन् स्पृशयत्स्रममेव च ।
 विभ्राताजगतात्वञ्जशम्भुर्मुन्युञ्जय प्रभु । विभर्त्तिशेषो विश्वञ्चधर्मसाश्रोचदेहिनाम् ।
 सर्वाद्यपूज्यो देवाना गणेषु च गणेश्वर । प्रकृति सर्वसू सर्वपूजिता यत्प्रसादित ॥
 ऋषयोमुनयश्चैव पूजिता य निषेद्य च । तत्पादपद्म एतैक भावेन चिन्तयाम्यहम् ॥
 पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्या पद्मलाभानुसारत । जगाम तपसा पादो पद्मादीशस्य पद्मजा ।
 तपस्तेपे लक्षवर्षमेकपादेन पादजा । तदा दर्शो श्रीष्टृष्ण निर्गुणं प्रकृते परम् ॥ २८ ॥
 अतीव कमनीयञ्च रूप दृष्ट्वा च सुन्दरी । मूर्च्छां सम्प्राप कामेन कामेशस्य च कामुकी ॥
 विज्ञया तदभिप्राय सर्वज्ञलामुवाच स । समुत्थाप्य च स्वमोडेशीणाङ्गी तपसाचिग्म् ।
 श्रीष्टृष्ण उवाच ।

वराहे च त्वमरोनमम पत्नी भविष्यति । नाम्ना नाह्नजिती कन्याकान्ते नश्रजितस्य च ॥
 अधुनाग्नेर्दाहिका त्व भवपत्नी च भाचिनी । मन्त्राङ्गरूपा पूता च मतप्रसादात् भविष्यति ।
 चह्निस्त्याभक्तिभावेन सम्पूज्य च गृहेश्वरीम् । वमिष्यते त्वया साहं रामयारमणीयया ।
 इत्युनवान्तर्दधे देवो देवीमाश्रयास्य नारद । तत्राजगाम सत्रस्तो चह्निर्ब्रह्मनिदेशत ॥

ध्यानैश्च सामवेदोक्तैर्भ्यात्वा ता जगद्भिरिकाम् ।

सम्पूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रत ॥३५॥

तदा दिव्य वर्षशत स रेमे रामया सह । अताव निर्जने रम्ये सम्भोगसुखदे सदा ॥३६॥
 यभूव गर्भं तम्याश्च हुताशस्य च तेजसा । तद्धारच सा देवी दिव्य द्वादशवत्सरम् ॥
 तत सुपाव पुत्राश्च रमर्णायान्मनोहरान् । दक्षिणातिगार्हपत्यहवनीयान् क्रमेण च ॥
 ऋषयोमुनयश्चैव ब्राह्मणा क्षत्रियादय । स्वाहान्त मन्त्रमुच्चार्य हविर्ददति नित्यश ।
 स्वाहायुक्तञ्च मन्त्रञ्चयो गृह्णाति प्रशस्तकम् । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य ब्रह्मन् ग्रहणमात्रत ।
 विपहोनो यथा सर्पो वेदर्हानो यथा द्विज । पतिसेवाविहाना स्त्री विद्याहीनो यथानर-
 फलशाखाधिहीनश्च यथावृक्षो हि निन्दित । स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो नद्रुत फलदायक ।
 परितुष्टा द्विजा सर्वे देवा सप्रापुराहुतिम् । स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफल सर्वकर्म च ।
 इत्येववर्णितसर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम् । सुखद मोक्षदसार किं भूय श्रोतुमिच्छसि ।

नारद उवाच ।

स्वाहापूजाविधानञ्च भ्यान स्तोत्र मुनीश्वर । सपूज्य वह्निस्तुष्टाव येन ता चद्रमेप्रभो ॥
 नारायण उवाच ।

भ्यानञ्चसामवेदोक्त स्तोत्रपूजाविधानकम् । वदामि धूयतात्रज्ञन् सावधाननिशामय ॥
 सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा । स्वाहा सपूज्य यत्नेन यज्ञ कुर्व्यात् फलात्पथे ।

स्वाहा मन्त्राङ्गपूताञ्च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम् ।

सिद्धाञ्च सिद्धिदा नृणा कर्मणा फलदा भजे ॥ ४८ ॥

इति ध्यात्वाचमूलेन दत्त्वापाद्यादिकनर । सर्वसिद्धिं लभेत् स्तुत्वामूलस्तोत्रमुनेश्रणु ।
 ओं ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेनच । य पूजयेच्चता देवोसर्वेष्ट लभतेध्रुवम् ॥

वह्निरवाच ।

स्वाहाद्या प्रकृतेःशा मन्त्रतन्त्राङ्गरूपिणी । मन्त्राणा फलदात्राच धारीच जगता सर्ता
 सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम् ।
 हुताश दाहिकाशक्तिन्तत्प्राणाधिकरूपिणी ॥ ५२ ॥

ससारसाररूपा च घोरससारहारिणी । देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥ ५३ ॥
 पौडशैतानि नामानि य पठेत् भक्तिसयुत । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य वैहल्लोके परत्र च ॥
 नाङ्गहीना भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम् । अपुत्रो लभते पुत्रमभाष्यो लभते प्रियाम् ।
 इति श्राव्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद सवादे स्वाहोपाख्यान
 नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्याय ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

स्वधोपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

ऋणुनारदवक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् । पितृणाञ्चतृत्तिकर श्राद्धाना फलवर्द्धनम् ।
 सृष्टेरादौ पितृगणान् ससर्जजगताविधि । चतुरश्र मूर्त्तिमतस्त्रीश्च नेत्रस्वरूपिण ॥१॥
 दृष्ट्वा सतपितृगणान् सिद्धिरूपान्मनोहरम् । आहार ससृजे तेषां श्राद्धतर्पणपूर्वकम् । ३॥
 स्नानतर्पणपर्यन्तश्राद्धान्त देवपूजतम् । आह्निकञ्चत्रिस्र पान्त चिप्राणाञ्चधृतीधृतम्
 नित्यनकुट्याहुयोविप्रस्त्रिस्रश्चश्राद्धतर्पणम् । त्रिंशद्द्विचर्त्तिसोऽपिविपहीनोयथोरग ।
 हरिसेवा विहीनश्च आहारेरनिषेद्यभुक् । भस्मान्त स्रक् तस्य न कर्माहं स नारद ॥६॥
 ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृद्वैतवे । न प्राप्नुवन्ति पितरो ददतिब्राह्मणादय ॥७॥
 सर्वे प्रजामु भुञ्जिता विवर्णा ब्रह्मण सभाम् । सर्वेनिषेदनञ्चकुस्तमेवजगता विधिम् ॥
 ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे तां मनोहराम् । रूपयौवनसम्पन्ना शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥
 विद्यावता गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम् । श्रेतचम्पकवर्णांभा रत्नभूषणभूषिताम् ॥१०॥
 विशुद्धा प्रत्येकशास्त्रस्मितावरदाशुभाम् । स्वधाभिधानाःसुदतीलक्ष्मीं लक्षणसयुताम् ॥
 शतपद्मपद्मस्तपादपद्मञ्च विन्नतीम् । पत्नीं पितृणां पद्मास्या पद्मजापद्मलोचनाम् ॥१२॥
 पितृभ्यस्तां दर्शयन्त्यानुष्टेभ्यस्तुष्टिरुपिणीम् । ब्राह्मणाश्चोपदेशञ्चकारगोपनीयकम् ॥

स्वयान्नं मन्त्रनुच्चार्य पितृभ्यो देहि चेति च । क्रमेण तेन विप्राश्चपित्रेदानंददु.पुरा ॥
 स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा वरा । सर्वत्रदक्षिणाशस्ताहतयज्ञस्त्वदक्षिणः ॥
 पितरो देवता विप्रा मुनयोमानवास्तथा । पूजाञ्चक्रुःस्वधाशान्तांतुष्टावपरमादरम् ॥
 देवादयश्च सन्तुष्टा परिपूर्णमनोरथाः । विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च ॥ १७ ॥
 इत्येवं कथितं सर्वस्वधोपाल्यानमुत्तमम् । सर्वेषाञ्चतुष्टिकरं किभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

नारद उवाच ।

स्वधापूजा विद्यान्वय ध्यानं स्तोत्र महामुने श्रोतुमिच्छामियत्नेनवद्वेदविदा वर ॥
 नारायण उवाच ।

तद्व्यानं स्तवनं ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वसम्मतम् । सर्वजानासिचकथंज्ञानुमिच्छसि वृद्धये ॥
 शरन्कानत्रयोद्भ्यां मथायां श्राद्धवासरे । स्वधांसंपूज्ययत्नेनतत.श्राद्धंसमाचरेत् ॥२१॥

स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहं मतिः ।

न भवेत् फलभाक् सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च ॥ २२ ॥

ब्रह्मणोमानसोकन्याशश्वत्सुस्थिरयोवनाम् । पूज्यांपितृणां देवानां श्राद्धानां फलदांभजे
 इति ध्यान्वा शालग्रामेऽप्यथवा शोभने घटे ।

दयात् पायादिकं तस्यै म्रलेनेति ध्रुर्ना श्रुतम् ॥२४॥

ओं ह्रीं श्रीं क्रौं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामनुम् ।

सनुच्चार्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेत् द्विजः ॥२५॥

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद । सर्ववाञ्छाप्रदं नृणां ब्रह्मणायन्कूर्तपुरा ॥२६॥

ब्रह्मोवाच ।

स्वधोन्वारणमात्रेण तीर्थस्नानायां भवेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो धाजपेयफलं लभेत् ॥

स्वधा स्वधा स्वधेन्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत् ।

श्राद्धस्य फलमाप्नोति कालस्य तर्पणस्य च ॥२८॥

श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । लभेन्श्राद्धशतानाञ्च पुण्यमेव न संशयः

स्वधा स्वधा स्वधेन्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।

प्रिया विनीतां स लभेत् साध्वी पुत्रं गुणान्वितम् ॥३०॥

पितृणां प्राणतुल्या त्व द्विजजीवनरूपिणी । श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा
वह्निर्गच्छ मन्मनसः पितृणां तुष्टिहेतवे । संप्रीयते द्विजातीनां गृहिणां वृद्धिहेतवे ॥
नित्या त्व नित्यरूपासि गुणरूपासि सुव्रते । आविर्भावस्तिरोभाय सृष्टी च प्रलयेतव
ओम्यस्तित्यनम स्वाहास्वधात्वन्दक्षिणातथा । निरूपिताश्चतुर्वेदयद्रास्ताश्चकर्मिणाम्
पुरासात्त्वंस्वधागोपीगोलोकेराधिकासखी । धृतेरसिस्वधात्मानं कृतं तेन स्वध्रास्मृता
ध्वस्ता त्वं राधिकाशापात् गोलोकाद्विश्वमागता ।

कृष्णालिङ्गना तथा दृष्ट्वा पुरा वृन्दावने वने ॥ ३६ ॥

कृष्णालिङ्गनपुण्येन भूता मे मानसी सुता । अतुमा सुरती तेन चतुर्णां स्वामिनांप्रिया
स्वाहा सा सुन्दरीगोपीपुरासीद्राधिकासखी । स्वयं कृष्णमाहरती तेन स्वाहाप्रकीर्त्तिता
कृष्णेन साहं सुखिरं वसन्ते रासमण्डले । प्रमत्ता सुरते श्लिष्टा दृष्ट्वा सा राधया पुरा
तस्या शापेन प्रध्वस्ता गोलोकाद्विश्वमागता । कृष्णालिङ्गनपुण्येन यभूयवद्विकामिनी
पवित्ररूपा परमा देवानां वन्दिता नृणाम् । यन्नामोच्चारणेनैव नरो मुच्येत पातकात्
यासुशीलाभिधागोपीपुगसीत्त्राधिकासखी । उवासदक्षिणेक्रोडे कृष्णस्यराधिकाप्रतः
प्रध्वस्ता सा च तच्छापात् गोलोकाद्विश्वमागता ।

कृष्णालिङ्गन पुण्येन सा यभूय च दक्षिणा ॥ ४३ ॥

सुप्रेयसी रती दक्षा प्रशस्ता सर्वकर्मसु । उवास दक्षिणे भर्तुर्दक्षिणा तेन कीर्त्तिता ॥
यभूवृन्तिद्यो गोप्यश्च स्वधा स्वहा चदक्षिणा । कर्मिणांकर्मपूर्णार्थं पुराचैवेश्वरैश्च यथा
इत्येयमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके च संसदि । तस्यो च सहसा सद्य स्वधासाविर्यभूयह
तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम् । तां संप्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः ।
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं य शृणोतिसमाहित । सस्नातः सर्वतीर्थेषु वेदपाठफलं लभेत्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे प्रहृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे स्वधोपाख्यानं नाम
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षिणोपाख्यानवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

उक्तं स्वाहा स्वधाऽपानं प्रशस्तं मधुरं परम् । वक्ष्यामि दक्षिणाऽपानं सावधानं निशामय
गोपी सुशीलागोलोके मुगसी त्रेपसाहरेः । राधाप्रधाना सध्रीवी धन्यामान्यामनोहरा
श्रीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती ॥ २ ॥

विद्यावती गुणवती सती रूपवती तथा । कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना ।
सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूषिता ।
श्वेतवम्पकवर्णाभाविन्योष्ठी मृगलोचना । कामशास्त्रसुनिष्णाता कामिनीहंसगामिनी
भावानुरक्ताभावज्ञा कृष्णस्य प्रियभाविनी । रसज्ञा रसिकारासे रासेशस्य रसोत्सुका
उवास दक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा । संवभूवानम्रमुखो भयेन मधुसूदनः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा राधाञ्च पुरतो गोपीनां प्रवरं वराम् । मानिनो रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम् ॥ ८ ॥
कोपेन कम्पिताङ्गीञ्च कोपनां कोपदर्शनाम् । कोपेन निष्ठुरं वक्त्रमुद्यतां स्फुरिताधराम् ।
आगच्छन्तीञ्च वेगेन विज्ञाय तदनन्तरम् ।

विरोधभीतो भगवानन्तर्द्धानं चकार सः ॥ १० ॥

पलायन्तश्चतशान्तंसस्वाधारंसुविग्रहम् । विलोक्य रुम्पितागोपीसुशीलान्तर्दधौ भिया ।
विलोक्य सङ्कुटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः । पुटाञ्जलियुता भोता भक्तिनम्रात्मकन्धराः
रक्ष रक्षेत्युक्तवत्यो हे देवीति पुनःपुनः । ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपङ्कजे ॥ १३ ॥
त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च । ययुर्भयेन शरणं तन् पादाब्जे च नारद ॥ १४ ॥
पलायन्तश्च कान्तश्च विज्ञाय परमेस्वरी । पलायन्ती सहचरिं सुशीलाञ्च शशाप सा ॥
अद्य प्रभृति गोलोकं साचेदायाति गोपिका । सशो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति
इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवीश्वरी रूपा । रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव ह ॥ १७ ॥

नालोक्य पुरतः कृष्ण राधा विरहकातरा । युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता ॥१८।
हेरुष्णहेप्राणनाथागच्छ प्राणाधिकप्रिय । प्राणाधिष्ठातृदेवेह प्राणायान्तिव्याविना ।
धीर्गर्वः पतिसौभाग्याद्धर्तेच दिने दिने । सुखीचेद्विभवो यस्मात् तंभजेद्धर्मतःसदा ॥
पतिर्वन्धु कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः । परं सम्पत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्त्तिमान् ॥
धर्मद सुखद, शश्वत् प्रीतिदः शान्तिदः सदा ।

सम्मानदो मानदश्च मान्यश्च मान्यपण्डनः ॥ २२ ॥

सारात्सारतम स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्द्धनः । नव भर्तुः समो बन्धु, सर्वबन्धुषु दृश्यते
भरणादेवभर्ताऽयं पालनात् परिरुच्यते । शरीरेशाश्च स स्वामी कामदात् कान्तपवचां
बन्धुश्चमुखबन्धाच्च प्रीतिदानात् प्रियःपरः । ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात् प्राणनाथकः
रतिदानाद्यम्पण' प्रियोनास्तिप्रियात्परः । पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्लाज्जायते तेन स प्रियः
शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानाप्रियःसदा । असत्कुलप्रस्ताया कान्तं विज्ञातुमक्षमा ।
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दाक्षिणम् । प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणिच तपसिच ॥
सर्वाण्येवम्रतादीनि महादानानि यानिच । उपोषणानि पुण्यानि यान्यन्यानिचविश्वतः
गृहसेवाविप्रसेवा देवसेवादिकञ्चनत् । स्वामिन' पादसेवाया कलां नार्हन्तिपोडशीम् ।
गृहविप्रेष्टेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः । विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथाप्रियः ॥३१॥
गोपी त्रिलक्षकोटीनां गोपानाञ्च तथैवव । ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैवव ।
ग्मादि गोलकान्तानामीश्वरीयत् प्रसादतः । अर्हन्तजानेतं कान्तं स्त्रीस्वभावोदुरत्यय
इत्युक्त्वा राधिकाकृष्णं तत्र दध्यौ सुभक्तितः । आरात्संप्राप तं तेन विजहारच तत्रै
अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम् । न लभन्ते फलं तेषां विपण्णा प्रथयुर्विधिम्
विधिर्निरेदन्ध्रुत्वादेवादीना जगत्पति' । दध्यौ सुचिन्तितोभनयातत्प्रत्यादेशमापसः
नारायणश्च भगवान् महालक्ष्म्याश्चदेहतः । चिन्तिष्ठत्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणेदक्षिणांददौ
ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूर्णां च कर्मणां सताम् । यज्ञः संपूज्य विधियत्तां तुष्टाचरमांमुदा
न्तकाञ्चनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम् । अतीवकर्मनीयाञ्च सुन्दरीं सुमनोहराम् ॥

कमलास्यां कोमलाङ्गी कमलायतलोचनाम् । कमलासनपूज्याञ्च कमलाङ्गसमुद्भवाम् ।
बह्विगुद्धांगुकाघाता विम्बोष्ठौ सुदतासनीम् । विन्नतीकररीभारं मालतीमाल्यभूषितम्
ईशदास्यप्रसन्नाभ्यां रत्नभूषणभूषिताम् । सुवेशाल्याञ्च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम्
कम्पूर्यविन्दुमि सार्द्धं सुगन्धिवन्दनादिभिः ।

सिन्दूरविन्दुनात्यन्तमलकाय स्थलोच्चलाम् ॥ ४४ ॥

सुप्रशस्तनितम्बाद्या बृहच्छोषिपयोधराम् । कामदेवाधाररूपां कामराजप्रपीडिताम् ॥
तां दृष्ट्वा रमणीयाञ्च यजो मूर्च्छामवाप ह । पत्नी तामेव जग्राह विधिवोधितपूर्वकम् ॥
दिव्यं वर्षशतञ्चैव ता गृहीत्वा सुनिर्जने । यजो रमे मुदायुक्तो गमया रमया सह ॥
गमं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशरत्नसम् । ततः सुभाव पुत्रञ्च फलञ्च सर्वकर्मणाम् ।
कर्मणा फलदाताय दक्षिणा कर्मिणां सताम् । पणिपूर्णे कर्मणिच तत्पुत्रः फलदायकः ।
यजोदक्षिणया सार्द्धं पुत्रेण च फलेन च । कर्मणां फलदाता चैत्येयं वेदविदो विदुः ॥
यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रञ्च फलदायकम् । फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मेभ्य इति नारदा ॥
तदा देवाद्यस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । स्वभ्यातं प्ररयुः सर्वे धर्मवक्रवादिदं धृतम् ॥
कृत्वा कर्म च कर्त्तव्यं तूष्णं दद्याच्च दक्षिणाम् । तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदंमुने ।

कर्मां कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणात् यद्वि दक्षिणाम् ।

न दद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥ ५४ ॥

मुञ्चे समतीते च द्विगुणा सा भवेत् ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

एकरात्र व्यतीते तु भवेत् रसगुणा च सा । निरात्रेच दशगुणं सताहे द्विगुणा ततः ॥
मानेनक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानाञ्च वर्द्धते । संवत्सरेव्यतीते तुसात्रिकोद्विगुणामभवेत् ॥
कर्म्म तद् यजमानानां सर्वञ्च निःफलं भवेत् । सच ब्रह्मस्यापहारी न कर्माहोऽशुचिर्नरः ॥
दरिद्रोऽध्याधियुक्तश्च तेन पापेन रातको । तद्गृहाद् यातिलक्ष्मीश्च शायं दत्त्वा सुदारणम्
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्वत्तं श्राद्धतर्पणम् । परं सुराश्च तत्पूजां तद्वत्तामग्निगद्दुनिम् ॥ ६०

दाता न शीरते दानं गृहीता तन्न याचने । उर्मा तौ नरकं यातश्चिन्नरञ्जुर्यथा घटः ६१

नार्पयेद् यजमानश्चेद् याचितारञ्च दक्षिणाम् ।

भवेद् ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं वजेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

धर्मलक्षं घसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः । ततो भवेत् स चण्डालो व्याधियुक्तो दक्षिकः ॥
पातयेन् पुराणं सप्त पूर्वांश्चपूर्वजन्मनः । इत्येवंकथितं विप्र किंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
नारद उवाच ।

यत्कर्म दक्षिणाहीनं कोभुङ्क्ते तत्फलं मुने । पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यद्ब्रह्मवैवर्तम् ॥
नारायण उवाच ।

कर्मणोऽदक्षिणाम्यैव कृत एव फलं मुने । सदक्षिणे कर्मणिच फलमेव प्रवर्त्तते ॥६६॥
याया कर्मणि सामग्री धलिर्भुङ्क्ते च तां मुने । घलये तन् प्रदत्तञ्च धामनेन पुरा मुने ॥
अश्रोत्रिय ध्नाद्ब्रह्ममश्राद्धं दानमेव च । वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिभ्यश्चयत् ६८॥
ऋत्विजा न कृतं यज्ञमशुचेः पूजतश्च यत् ।

गुराचभक्तस्य कर्म धलिर्भुङ्क्तेन संग्रहः ॥६९॥

दक्षिणायाश्च यद्दद्यात् स्तोत्रं पूजाविधिप्रमम् ।

तत्सर्वं क्वाप्यशास्त्रोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय ॥७०॥

पुरा नप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षाञ्च दक्षिणाम् । मुमोह तस्यारूपेणतुष्टाच कामकातरः ॥
यज्ञ उवाच ।

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरापरा । राधासमातत्सखीचश्रीकृष्णप्रेयसीप्रिये ॥
कार्तिकीपूर्णमायान्तुरासेराधामहोत्सवे । आधिभूतादक्षिणांशात्कृष्णस्यतेनदक्षिणा ॥
पुरा त्वञ्च सुशीलाख्याशीलेनशोभनेनच । कृष्णदक्षांशघासाश्च राधाशापाश्चदक्षिणा ॥
गोलोकान् त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता ।

कृपां कुरु त्वमेवाद्य स्वामिनं कुरु मा प्रिये ॥७५॥

कर्मिणा कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा । त्वयाधिनाचसर्वेवासर्वकर्मच निष्फलम् ॥
फलशाप्याविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले । त्वया दिना तथा कर्मकर्मिणाञ्चनशोभते ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशश्च दिक्पालादय एव च । कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्चरयया दिना ॥
कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः । यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेपां साररूपिणी ॥७६॥

फलदाता पर ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः । स्वयं कृष्णश्च भगवान्तचक्षुःचयाविना ॥
 त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि । सर्वकर्मणिशकोऽहंत्वयासहवरानने ॥
 श्युत्त्वा तन्पुरस्तस्यो यज्ञाधिष्ठातृदेवकः । तुष्टा यभूव सा देवी भैजे त कमलाकला ॥
 इदञ्च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च य पठेत् । फलञ्च सर्वयज्ञाना लभते नात्र संशयः ॥
 राजसूये धाजपेये गोमेधे नग्मेधके । अश्वमेधे लाङ्गणे च विष्णुयज्ञे यशस्करे ॥ ८४ ॥
 घनदे भूमिदे फलां पुत्रेष्टौ गजमेधके । लौहयज्ञे स्वर्णयज्ञे पटले व्याधिस्रण्डने ॥ ८५ ॥
 शिपयज्ञे स्टयज्ञे शत्रुयज्ञे च वन्धके । इष्टौ धरुणयागे च कन्दुके वैरिमर्दने ॥ ८६ ॥
 शुचियागे धर्मयागे रत्नने पापमोचने । वन्धने कर्मयागे च मणियागे सुभद्रके ॥ ८७ ॥

एतेषाञ्च समारम्भे इदं स्तोत्रञ्च यः पठेत् ।

निर्विघ्ने न च तन् कर्म साद्वं भवति निश्चितम् ॥ ८८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसवादे प्रकृतिल्लण्डे दक्षिणास्तोत्रं

समाप्तम् ।

इदं स्तोत्रञ्च कथितं ध्यानपूजाविधानकम् । शालग्रामैवद्येवापिदक्षिणापूजयेत्सुर्धाः ॥
 लक्ष्मीदक्षाशसम्भूता दक्षिणा कमलाकलाम् । सर्वकर्मसुदक्षाञ्च फलदां सर्वकर्मणाम् ॥
 विष्णोः शक्तिस्वरूपाञ्च सुरालाशुमद्राभजे । ध्यान्वाऽनेनैववरदामूलेनपूजयेत्सुर्धाः ॥
 दत्त्वा पात्रादिकं देव्यै वैशोकेन च नारद । ओंकारैः त्रिदक्षिणायैस्वाहेतिव विचक्षणः ॥
 पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणा सर्वपूजिताम् । इत्येव कथितं सर्वदक्षिणाध्यानमुत्तमम् ॥
 सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् । इदञ्च दक्षिणाध्यानं यः शृणोति समाहितः ॥
 अद्भूतानञ्च तन् कर्म न भवेद्द्वारते भुवि । अपुत्रो लभतेपुननिश्चितञ्चगुणान्वितम् ॥ ९५ ॥

भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुराला सुन्दरीं पराम् ।

वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् ॥ ९६ ॥

पतिव्रतां सुव्रताञ्च शुद्धाञ्च कुलजां वराम् । विद्याहीनो लभेद्विद्याधनहीनो धनं लभेत् ॥

भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम् ।

सङ्कटे वन्धुविच्छेदे विपत्त्यां वन्धने तथा ॥ ९८ ॥

मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र सशय ॥६६॥

रतिश्चात्र ब्रह्मवैवर्ते महापुत्रगे प्रकृतिस्रष्टे नारायणनारदसवादे दक्षिणोपारयान नाम
द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

पृच्छुत्पत्तिर्णनम् ।

नारद उवाच ।

यनेकासाञ्च देवीनां श्रुतमाख्यानामुत्तमम् । अन्यासां चरितं ब्रह्मन् वद वेदविदावर ॥१॥

नारायण उवाच ।

सद्यासां चरितं विप्र । वेदेष्यन्ति पृथक् पृथक् ।

पूर्वोक्तानाञ्च देवीनां त्वं वासां श्रोतुमिच्छसि ॥२॥

नारद उवाच ।

पृष्ठी मङ्गलचण्डा च मनसाप्रवृत्ते कला । व्युत्पत्तिमासाचरितश्रोतुमिच्छामितत्त्वत ॥

नारायण उवाच ।

पद्माशां प्रवृत्तेषां च सा च पद्मा प्रकीर्तिता । बालकाधिष्ठातृदेवीषिष्णुमायाचञ्चालदा ॥

मत्पुत्रासु च विख्याता देवसेनाभिधाचसा । प्राणाधिकप्रियासां ध्वीस्वन्धमाप्यां च सुव्रता

आयुप्रदा च बालानां धात्रा रक्षणकारिणी ।

सन्ततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिना ॥६॥

तस्यां पूजाविधौ ब्रह्मनितिहासविधिं शृणु ।

यत् श्रुतं धर्मवक्त्रेण सुप्रदं पुनरपि परम् ॥७॥

राजा प्रियव्रतश्चासीन् स्वयम्भुवमनो सुत ।

योगीन्द्रो नो ह्येद्द्वार्या तपस्यासु रत सदा ॥८॥

ब्रह्माज्या च यत्नेन हृतदारो यभूय सः । सुचिरं हृतदारश्च न लभेत्तनयं मुने ॥९॥

पुत्रेष्टियज्ञं तच्चापि कारयामास कश्यपः । मालिन्ग्यै तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचन्द्रदौ ॥
 भुक्त्या चरुञ्च तस्याश्च सद्यो गर्भो बभूव ह । दधार तच्च सा देवी दैवंद्वादशवत्सरम् ॥
 ततः सुधाव सा ब्रह्मन् कुमारं कनकप्रभम् । सर्वाविववसम्पन्नं मृतमुत्तारलोचनम् ॥१२
 तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नाट्यंश्च बान्धवस्त्रियः । मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेनसुघता ॥
 ज्मशानञ्च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने । रुणेद् तत्रकान्तारेपुत्रंमृत्वास्वयक्षसि ॥
 नोत्सृज्यवान्कंराजाप्राणास्त्यक्तुंसमुग्रतः । ज्ञानयोगं विसस्मारपुत्रशोकात्सुदारणान् ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमलञ्च ददर्श ह । शुद्धस्फटिकसङ्घरां मणिराजविराजितम् ॥१६॥
 तेजसाञ्ज्वलितंशश्वत्शोभितंक्षीमवाससा । नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम्
 ददर्श तत्र देवीञ्च कमनीयां मनोहराम् । श्वेतवभ्रकपर्णामां शश्वन्सुस्थिरस्थीयनाम् ॥
 ईषद्वात्प्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकातराम् ॥१६
 दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरम् । चकार पूजनं तस्या विहाय बालकं भुवि ॥

पप्रच्छ राजा तां दृष्ट्वा ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ।

तेजसा ज्वलितां शान्तां कान्तां स्कन्दस्य नारद ॥२१॥

प्रियव्रत उवाच ।

कथं सुशोभने कान्ते कस्य कान्तासि सुव्रते ।

कस्य कन्या धरारोहे धन्या मान्या च योषिताम् ॥२२॥

नृपेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मङ्गलदायिनी । उवाच देवसेना सा देवरक्षणकारिणी ॥२३
 देवानां दैत्यप्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा । जयं ददौ च तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥
 देवसेनोवाच ।

ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाहमीश्वरी । सृष्ट्वा मां मनसो घाताद्दौस्कन्दाय भूमिप
 मानृकामु च विद्यातास्कन्दसेनाचनुग्रहा । विरयेगद्योतिविद्यातापष्टांशाप्रकृतैर्यतः ॥
 अपुत्राय पुत्रदाऽहं प्रियदाता प्रियाय च । धनदा च द्दिष्टेभ्यो कर्मिणेशुभकर्मदा ॥२७
 सुखं दुःखं भयं शोकं हर्षं मंगलमेव च । सम्पत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥
 कर्मणा बहुपुत्री च वंशहीनश्च कर्मणा । कर्मणा रूपयांश्चैव रोगी शश्वत् स्वकर्मणा ॥

कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीविन । कर्मणा गुणवन्तश्च कर्मणाचाङ्गहीनक ॥३०॥
 तस्मात् कर्मपर राजन् सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम् । कर्मरूपीव्रभगवान्तराफलद्वोहरि ॥
 इत्येवमुक्त्वा सा देवा गृहीत्वा बालकं मुने । महाज्ञानेन सहसा जीवयामास लीलया ॥
 राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् । देवसेना च पश्यन्त नृपमम्बरमेव च ॥३३॥
 गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुग्रता । पुनस्तुण्वा च ता राजा शुष्ककण्ठीष्ठतालुक ॥
 नृपस्तोत्रेण सा देवी पत्तिुणं बभूव ह । उवाच तं नृप ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्मनिर्मितम् ॥
 देवसेनोवाच ।

निष्पु लोकेषु राजा त्वं स्वायम्भुवमतो सुत । मम पूजाश्च सर्वत्र कारयित्वास्वयंकुरु
 तदा दास्यामि पुत्रान्ते कुलपन्नं मनोहरम् । सुव्रतं नामविख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम्
 जातिस्मरञ्च योगीन्द्रं नारायणपरायणम् । शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणाञ्च धन्दितम् ॥
 मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतवन्तं बलं शुभम् । धन्वित्रं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च ॥
 योगिनं ज्ञानितश्चैव सिद्धरूपं तपस्विनम् । यशस्विनञ्च लीकेषु दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
 इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ । राजा चकार स्वीकारं तत्पूजार्थं सुव्रतं
 जगाम देवी स्वर्गञ्च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम् । आजगाम महाराजा स्वगृहदृष्टमानसः ॥

आगन्त्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम् ॥ ४२ ॥

तुणं बभूवुः सन्तुणं नरनार्यश्च नारदः । मङ्गलं कार्यामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम् ॥

देवीञ्च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ ४३ ॥

राजा च प्रतिमासेषु शुद्धं नष्टया महोत्सवम् । पष्ट्यादेव्याश्च यत्नेन कार्यामाससर्वत
 बालानां सूक्तिकागारे पष्ट्याहे यत्नपूर्थकम् । तत्पूजा कार्यामास चैकविंशतियासरे ॥४६॥
 बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा । सर्वत्र घर्द्धयामास स्वयमेव चकार ह ॥४६॥
 ध्यानं पूजाविधानञ्च स्तोत्रं मत्तो निशामय । यत्थुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तञ्च सुव्रतं ।
 शालग्रामे घटेचाऽथ घटमूलेऽथवा मुने । भित्त्या पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्गृहा विचक्षण
 पष्ट्याशां प्रवृत्ते शुद्धा सुप्रतिष्ठाञ्च सुव्रताम् । सुपुत्रदाञ्च शुभदा दयारूपा जगत्प्रसूम् ॥
 श्वेतचम्पकचर्णाभा रत्नभूषणभूषिताम् । पवित्ररूपा पद्मा देवसेना परा भजे ॥ ५० ॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुण्यदत्त्वाविवक्षण । पुनर्यात्वा चमूलेन पूजयेत्सुनतासतीम्
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धधूपप्रदीपकैः । नेत्रेद्यैर्विधैश्चापि फलेन शोभनेन च ॥५७॥
मूलं श्रीं हीं पष्ठादेर्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम् । अष्टाक्षर महामन्त्र यथाशक्ति जपेन्नरः ।
तत्र स्तुत्वा च प्रणमेन् भक्तियुक्त समाहितः । स्तोत्रञ्च सामवेदोक्त धनपुत्रफलप्रदम्
अष्टाक्षर महामन्त्र लक्ष्म्या यो जपेन्मुनेः । स पुत्र लभते नूनमित्याह कमलोद्भवः ॥५८॥
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वपाञ्च शुभावहम् । वाञ्छाप्रदञ्च सर्वेषां गृहं वेदे च नारदः ॥

प्रियव्रत उवाच ।

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्धयै शान्त्यै नमो नमः । शुभायै देवसेनायै पष्ठीदेव्यै नमो नमः
वत्सायै पुत्रदायै धनदायै नमोनमः । सुखदायै मोक्षदायै पष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥
शक्ये शष्ठाशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः । मायायै सिद्धयोगिन्यै पष्ठीदेव्यै नमो नमः
पारायै पारदायै च पष्ठीदेव्यै नमो नमः । सारायै सारदायै च पारायै सर्वकर्मणाम् ॥
बालाश्रितानृदेव्यै च पष्ठीदेव्यै नमो नमः । कल्याणदायै कन्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्
प्रत्यक्षायै च भक्तानां पष्ठादेव्यै नमो नमः । पून्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु ।
देवशक्तगणैः पष्ठादेव्यै नमो नमः । शुद्धसन्वत्स्वरूपायै चन्द्रितायै नृणां सदा ॥६३॥
हिंसाक्रोशपरिनितायै पष्ठादेव्यै नमो नमः । धनं देहि प्रिया देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥
धर्मं देहि यशो देहि पष्ठादेव्यै नमो नमः । भूमिं देहि प्रजा देहि देहि विद्यां सुपूजिते ॥
कल्याणञ्च नर देहि पष्ठादेव्यै नमो नमः । इति देवाञ्च सस्यू लोमे पुत्र प्रियव्रत ॥
यशस्विनञ्च राजेन्द्र पष्ठादेवाप्रसादतः । पष्ठीस्तोत्रमिदं प्रह्वय यः शृणोति च वत्सरम्
अपुत्रो लभते पुत्रं वा सुविराजितम् । वर्षमेकञ्च या भवया सयतेद् शृणोति च ॥
सर्वपापादिनिर्मुक्तो महामन्त्र्या प्रसूयते । वीरपुत्रञ्च गुणितं विद्यावन्तं यशस्विनम् ॥ ६६ ॥
सुचिरायुष्मन्त्रेण पष्ठाभ्यामृप्रसादतः । काकवन्त्र्या च या नारी मृतापन्या च या भवेत्
चरणं ध्रुत्वा लभेत्पुत्रं पष्ठीदेव्याप्रसादतः । रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति च ॥
मासञ्च पूजते बालः पष्ठादेव्याप्रसादतः ॥ ७२ ॥

इति ध्यात्रह्यर्चनैर्वर्त्तं महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे पठ्युपात्त्याने
पष्ठीस्तोत्रं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

मङ्गलचण्ड्युपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

कर्धन पष्टुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । देवी मङ्गलचण्डी च तदाख्यानं निशामय
तस्या पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्राच्च यच्छ्रुत्म् । श्रुतिसम्मतमेष्टं सर्वपां विदुषामपि ॥
दक्षाया वर्तते चण्डी कल्याणेषु जन्मङ्गलम् । मङ्गलेषु च या दक्षा साचमङ्गलचण्डिका
दुर्गाया विद्यते चण्डी मङ्गलोऽपिमहीतुते । मङ्गलाभीष्टदेवी या सा वा मङ्गलचण्डिका
मङ्गलो मनुब्रह्म सतद्रीपावतीपतिः । तस्य पूज्याभीष्टदेवी तेन मङ्गलचण्डिका ॥५॥
मृत्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रवृत्तिर्धरि । वृषारूपातिप्रियक्षा योपिताभिष्टदेवता ॥ ६ ॥
प्रथमे पूजिता सा च शङ्करेण पुरा पता । त्रिपुरस्य बधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च ॥७॥
ब्रह्म ब्रह्मोपदेशे च दुर्गप्रस्थे च सङ्कटे । आकाशात् पतिने याने दैत्येन पातिने रया ॥
ब्रह्मविष्णुपादिष्टश्च दुर्गा तुष्टाव शङ्करः । सा च मङ्गलचण्डी च बभूव रूपभेदतः ॥८॥
उवाच पुरतः शम्भोर्भयं नास्तीति ते प्रभो । भगवान् वृषरूपश्च सर्वेशश्च बभूव ह ॥९॥
शुद्धशक्तिम्यरूपाहं भविष्यामि तदाज्ञया । मयात्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज ॥११॥
जहि दैत्यश्च देवेश सुराणां पदघातकम् । इत्युत्त्वान्तर्हिता देवी शम्भोः शक्तिर्बभूवसा
पिशुदत्तेन शस्त्रेण जघान तनुनापतिः । मुनीन्द्र पतिने दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः ॥१३॥
तुष्टुः शङ्करं देवा भक्तिव्रतान्नकल्पराः । सद्यः शिरसि शम्भोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च सन्तुष्टो दर्श तस्मै शुभाशिरम् । ब्रह्माविष्णुपादिष्टश्चमुक्त्वात शङ्करःशुचिः
पूजयानास तां शक्तिं देवीं मङ्गलचण्डिकाम् । पायाध्यायननीयैश्च यत्किमिर्विचित्रैरपि ।
पुष्पचन्दनैरेयैर्मत्स्या नानाविधैर्मुने । छागैर्मैषैश्च महिर्षैः षण्डैर्मांयातिभिर्बरे ॥ १७ ॥
वन्मालङ्कारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि । मधुमिश्च सुधानिश्च पक्वैर्नानाविधैः फलैः
सर्पैर्नैर्नर्तनैर्वाद्यैस्त्वयैः कृष्णकौर्त्तने । ध्यान्वा माव्यन्दिनोक्तेन ध्यानेनभक्तिपूर्वकम्

ददी द्रयाणि घृतं मन्त्रणीच च तारु । नीं हीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि महालक्षणात्
 ॥ २० ॥

पूज्य कर्पनश्चैव भक्तानां सर्वं कामद । दशरूपमप्येव मन्त्रसिद्धिर्नमृणाम् ॥
 मन्त्रसिद्धिर्नमृणाम् स विष्णु सर्वकामद । ५ पातत्र भूयतां प्रपन्नं चैवं सर्वसामानम्
 देवीं पञ्चशतर्षायां शश्वत्सुखिस्थीचताम् । सर्वरूपगुणाख्यां च फीमडाङ्गीमतीहराम् ।
 प्रेतचण्डकघर्णांतां चन्द्रकोटिसमप्रताम् । घट्टिशुद्धाशुक्लाघातां रक्तभूयणभूषिताम् ॥
 विघ्नतां कघरींतां मन्त्रिकामाभूषिताम् ।

धिरोष्ठसुदतीं शुद्धां शाल्यमनिनातनाम् ॥ २५ ॥

इन्द्राण्यप्रसजात्यां सुनीं गेत्पात्रोचताम् । जगद्रानीं प्रथमीं सर्वस्य सर्वसामानम् ।
 संसारसागरघोरं पान्तर्पां घरां भवे ॥ २७ ॥

दयाध ध्यानमिदं च स्तत्रं भूयतां मुने । प्रयत्नं सङ्कल्पस्तो येन तृष्टान् शङ्कर ॥ २८ ॥
 शङ्कर उवाच ।

रक्ष रक्ष जगन्मातर्द्वि महालक्षणात् । हारिके त्रिपदीं राजिं सर्वमङ्गलकारिके ॥ २९ ॥
 सर्वमङ्गलदत्ते च सर्वमङ्गलचण्डिके । शुभे महालक्षणात् शुभमङ्गलचण्डिके ॥ ३० ॥

मंगलमंगलार्हे च सर्वमंगलार्हम् । सर्वो मंगलार्हो देवि सर्वथा मंगलार्हम् ॥ ३१ ॥
 पूजा मंगलार्हं च मंगलाभीष्टदेवे । पूजे मंगलभूषणस्य मनुष्याण्य सन्ततम् ॥ ३२ ॥

मंगलाभिष्टदेवी मंगलातां महती । संसारमङ्गलार्हं माक्षामङ्गलार्हायति ॥ ३३ ॥
 सारं च महालक्षणात् पारं च सर्वकर्मणाम् । प्रति महालक्षणात् च पूजे च महालक्षणात् ॥ ३४ ॥

स्तोत्रनामैतन्मनुष्यं स्तुत्यामङ्गलचण्डिकात् । प्रतिमङ्गलार्हं च पूजां कृत्वा गतं शिव ॥
 देयाध महालक्षणात् यं शृणोति समाहित । तामङ्गलं नमस्तुभ्यं नमस्तद्मङ्गलम् ॥

प्रथमं पूजिता देवी शिषेत् सर्वमङ्गला । द्वितीये पूजिता देवी महालक्षणात् गणेशे च ॥ ३५ ॥
 तृतीये पूजिता भद्रा महालक्षणात् पूजिता च । चतुर्थं महालक्षणात् सुन्दरीं च पूजिता ।

पञ्चमे महालक्षणात् सर्वे महालक्षणात् ॥ ३६ ॥

पूजिता प्रतिविष्टेषु विष्टेषु पूजिता सदा । तत्र सर्वत्र सर्वपूज्या सा वसुव सुरेश्वरी ।

देवादिभिश्च मुनिभिर्मनुभिर्मानवैर्मुने । देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ॥
 तन्मङ्गलं भवेच्छुभ्यन्तभवेत्तदमङ्गलम् । वर्द्धन्ते तत् पुत्रपौत्रा मङ्गलञ्च दिने दिने ॥४१
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे मङ्गलोपाख्यानं तत्
 स्तोत्रकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

मनसादेव्युपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

उक्त द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मभुव यथागमम् । श्रूयतां मनसाख्यानं यत्श्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥१
 कन्या सा च भगवती कश्यपस्य च मानसी । तेनेयं मनसादेवी मनसा या च दीव्यति ॥
 मनसा ध्यायते या वा परमात्मानमीश्वरम् । तेन सा मनसादेवी योगेन तेन दीव्यति ॥
 आत्मारामा च सा देवी वैश्वरी सिद्धयोगिनी ।

नियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ४ ॥

जरत्कारु शरीरञ्च दृष्ट्वा यां क्षीणमीश्वरः । गोपीपतिर्नामचक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः ॥
 घाञ्छितश्चन्द्रौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः । पूजाञ्च कारयामास चकार च पुनःस्वयम्
 स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः । भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा
 जगद्गौरीतिविख्याता तेन सा पूजितासती । शिवशिष्या च सा देवी तेन शैलीतिर्कारिता,
 विष्णुभक्तानीय शरद्वैष्णवी तेन नारद । नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे जग्मेजयस्य च ॥
 नागेश्वरीतिविख्याता सा नागभगिनीतिथा । विषं संहर्तुर्माशासा तेन विषहरीतिसा ।
 सिद्धयोगे हरत् प्राप तेनातिसिद्धयोगिनी । महाज्ञानञ्च गोप्यञ्चमृतसञ्जीविनीं पराम् ॥

महाज्ञानयुतां साञ्च प्रवदन्ति मनोपिणः ।

आस्तीकम्य मुनीन्द्रम्य माता सा च तपस्विन ॥ १२ ॥

आस्तिकमाताविल्याता जगत्सुसुप्रतिष्ठिता । प्रियामुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्यमहात्मनः ।

योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारोः प्रियाः ततः ॥ १४ ॥

ओं नमो मनसायै ।

जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धियोगिनी । वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरीतथा

जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विपहरति च । महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता

द्वादशैतानिनामानि पूजाकाले च यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्तितस्य वंशोद्भवस्य च

नागर्भाते च शयने नागद्रस्ने च मन्दिरे । नागक्षने महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥ १८ ॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्रसंशयः । नि यं पठेत् यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ।

दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । स्तोत्रसिद्धो भवेत्तु यम्यसविषंभो कुर्माश्वरः ।

नागौघं भूपपं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः । नागासनो नागतलो महासिद्धो भवेन्नरः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिलखण्डे नारायणनारदसम्वादे मनसोपाख्यानं

मनसास्तोत्रं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

मनसापूजाविधानम् ।

नारायण उवाच ।

पूजाविधानं स्तोत्रञ्च श्रूयतां मुनिपुङ्गव । ध्यानञ्च सामवेदोक्तं देवीपूजाविधानकम् ॥

श्वेतचम्पकवर्णामां रत्नभूषणभूषिताम् । बद्धिशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपर्यातिनाम् ॥२॥

महाज्ञानयुताञ्चैव प्रवरां ज्ञानिनां सताम् । सिद्धाधिष्ठानुद्देशोच्चसिद्धांसिद्धिप्रदाम्भजे ॥

इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत् । नैवेद्यैर्विधिर्द्वैर्द्वैः पुष्पैर्धूपानुलेपनैः ॥३॥

मूलमन्त्रश्च वेदोक्तो भक्तानां चाञ्छितप्रदः । मूलकल्पनस्वाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यैस्वाहेतिर्कांसितः । पञ्चलक्षजपेनैवमन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥

मन्त्रसिद्धिर्भवेद् यस्य स सिद्धोजगतीतले । सुधासर्मविपतस्वधन्वन्तरिसमोभवेत् ॥

ब्रह्मवापादसंक्रान्त्यां गुडाशाखासु यत्नतः ।

धायाद्य देवी मासान्तं पूजयेद् यो हि भक्तितः ॥८॥

पञ्चम्यां मनसाख्यायां देव्यै दद्याच्च यो बलिम् ।

धनवान् पुत्रवाध्वैव कीर्त्तिमान् स भवेत् ध्रुवम् ॥९॥

पूजाधिधान कथितं तदाख्यानं निशामय ।

कथयामि महाभाग यत् धृतं धर्मचक्रतः ॥१०॥

पुरा नागमयाक्रान्ता बभूवुर्मानवा भुवि ।

यान् यान् पादन्ति नागाश्च न ने जीवन्ति नारद ॥११॥

मन्त्राश्च ससृजे भीत कश्यपो ब्रह्मणार्थितः । वेद्वीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः ॥

मन्त्राधिष्ठान्देवीं तां मनसां ससृजे ततः । तत्रसा मनसा तैर्न बभूव मनसा च सा ॥

कुमारो सा च संभूय जगाम शङ्करालयम् । भक्त्यासम्पूज्यकैलासेतुप्रायचन्द्रोत्प्रेरम् ॥

दिव्यं वर्षसहस्रञ्च तं सिपेधे मुनेः सुता । आशुतोषो महेशश्च ताञ्च तुष्टो बभूवह ॥१५॥

महाज्ञान ददौ तस्मै पाठयामास साम च । कृष्णमन्त्रं कल्पतरुं ददावप्राक्षरं मुने ॥१६॥

लक्ष्मीर्मायाकामवीजं देन्त कृष्णपदं तथा । त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं पूजनक्रमम् ॥

सर्वपूज्यञ्च स्तवनं ध्यानं भुवनपावनम् । पुरश्चर्याक्रमञ्चापि वेदोक्त सर्वसम्मतम् ॥१८॥

प्राप्य मृत्युञ्जयान् ज्ञानं परं मृत्युञ्जयं सती । जगाम तपसे साध्वीपुष्करंशङ्कराज्ञया ॥

त्रियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः । सिद्धा बभूव सा देवी दृशंशुस्त प्रभुम् ॥

दृष्ट्वा वृथाह्नीं बालाञ्च कृपया च कृपानिधिः । पूजाञ्चकारयामासचकारचरि स्वयम् ॥१९॥

वरञ्च प्रददौ तस्मै पूजिता त्वं भवे भव । वरं दत्त्वा च कल्याणे सत्रध्वान्तर्धेविभुः ॥

प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना । द्वितीये शङ्करेणैव कश्यपेन सुरेण च ॥२३॥

मनुना मुनिना चैव नागेन मानवादिना । त्रिभूय पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु सुमता ॥

जरत्कारमुनीन्द्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा । अराचिनांमुनिश्रेष्ठोजप्राहब्रह्मणाज्ञया ॥

रुच्योद्वाहं महायोगी विश्रान्तस्तपसा चिमम् । सुष्याप देव्या जघने षट्मूलेचपुष्करे ॥

निद्रां जगाम समुनिःस्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् । जगामास्तं दिनकरः सायंकाल उपस्थितः ॥
 संचिन्त्य मनसा तत्र मनसा च पतिव्रता । धर्मलोपभयेनैव चकारालोचनं सती ॥२८॥
 भ्रष्ट्या पश्चिमां सन्ध्यां नित्याञ्चैव द्विजन्मनाम् । ब्रह्महत्यादिकंपापं लभिश्रुतिपतिर्मम ॥
 नोपतिप्रति यः पूर्वां नोपास्तेयस्तु पश्चिमाम् । सचश्वाशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत् ॥
 वेदोक्तमिति सचिन्त्यबोधयामास तं मुनिम् । सचमुध्वामुनिश्रेष्ठश्चुकोपतांभृशं मुनिः ॥

जरत्कारुत्या च ।

कथं मे मुनतेसाध्विनिद्राभङ्गः कृतस्त्वया । व्ययं व्रतादिकं तस्याया भर्तुं ध्यापकारिणी ॥
 तपश्चानशनञ्चैव व्रतं दानादिकञ्च यत् । भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् ३३
 यया पतिः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया । पतिव्रताव्रतार्थं च पतिरुपाहृरिः स्वयम् ॥
 सर्वदानं सर्वयज्ञं सर्वतीर्थनिषेवणम् । सर्वं तपो व्रतं सर्वमुपवासादिकञ्च यत् ॥३५॥
 सर्वधर्मञ्च सत्यञ्च सर्वदेवप्रपूजनम् । तस्मै स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति रोडृश्याम्
 सुपुण्ये भारते वरं पतिसेवां करोति या । वैकुण्ठं स्वामिनासाद्धं सायाति ब्रह्मणः शतम्
 विप्रियं कुर्वते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् । असत्कुलप्रजाता या तत्फलं श्रूयतां सति ॥
 कुम्भीपाकं व्रजेन् सा च यावच्चन्द्रदियाकरा । ततो भवति चाण्डालीपतिपुत्रविवर्जिता
 इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः । चरुम्पे मनसा साध्वीभयेनोचावतं पतिम्

मनसोवाच ।

सन्ध्यालोपभयेनैव निद्राभङ्गः कृतस्त्वय । कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत ॥३६॥
 शृङ्गाराहारनिद्राणां यच्च भङ्गं करोति च । स व्रजेन् कालसूत्रञ्च स्वामिनश्च विशेवतः ।
 इत्युक्त्वा मनसा देवां स्वामिनश्चरणाभ्युजे । पपात भक्त्या भीता च हरोद च पुनः पुनः
 कुपितञ्च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्य्यं शपनुमुद्यतम् । तत्राजगाम भगवान् सन्ध्याया सह नारद ।
 तत्रागत्य मुनिश्रेष्ठमुवाच भास्करः स्वयम् । धिनयेन च भीतश्च तथा सह ययोचितम्
 श्रीसूर्य्य उवाच ।

सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा धर्मलोपभयेन च । बोधयामास त्वां विप्र नाहमस्तं गतस्तदा ॥३६॥
 क्षमस्व भगवन् ब्रह्मन् मां शत्रुं नोचितं मुने । ब्राह्मणानाञ्च हृदयं नवनीतसमं सदा ॥

तेषा क्षणार्द्धं क्रोधश्चततोभस्मभवेज्जगत् । पुनः स्रष्टुं द्विजः शक्तो नतैजस्वीद्विजात्परः
 ब्रह्मणो वशसम्भूत प्रज्ज्वलन् ब्रह्मतेजसा । श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योति सनातनम्
 सूर्यस्य वचनश्रुत्याद्विजस्तुष्टोयभूव ह । सूर्यो जगामस्वस्थानं गृहीत्यात्राहणाशिषम्
 तत्याज मनसा विप्र प्रतिज्ञापालनाय च । रुदन्तीं शोकयुक्ताञ्च हृदयेन विद्रुयता ॥५१॥
 सा सस्मार गुरु शम्भुमिष्टदेव हरिं विधिम् । कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकापिता
 तत्राजगाम भगवान् गोपीश शम्भुरेव च । विधिञ्च कश्यपश्चैव मनसा परिविन्तित,
 स च दृष्ट्वाऽर्माष्टदेव निर्गुणं प्रकृते परम् । तुष्टाव परया शक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ५४
 नमश्कार शम्भुञ्च ब्रह्माणं कश्यपं तथा । कथमागमनन्तत्र इति प्रश्न चकार सः ॥५५॥
 ब्रह्मा तद्वचन श्रुत्वा सहसा समयोचितम् । तमुवाच नमस्त्वय्य हृषीकेशपदाम्बुजम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

यदित्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती । कुरुष्व्यास्यां सुतोत्पत्तिं स्वधर्मपालनाय वै
 यति र्वा ब्रह्मचारी वा भिक्षुर्वनचरौऽपि वा ।

जायायाञ्च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चाद् भवेन्मुनि ॥ ५८ ॥

श्रुत्वा तु सुतोत्पत्तिं वैरागी यस्त्यजेत् प्रियाम् ।

स्रवेत्तपस्तत् पुण्यञ्च चालन्याञ्च यथा जलम् ॥ ५९ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारमुनीश्वरः । चकार तन्नाभिस्पर्शं योगेन मन्त्रपूर्वकम् ॥
 तस्मै शुभाशिपं दत्त्वा ययुर्देवामुदन्यिता । मुटान्विताच मनसा जरत्कारस्मुदान्वितः ।
 मुने करस्पर्शमात्रात् सद्यो गर्भो बभूव ह । मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम् ॥

जरत्कारवाच ।

गर्भेणानेन मनसै तव पुत्रो भविष्यति । जितेन्द्रियाणा प्रथरो धर्मिष्ठो वैष्णवाप्रणी ॥
 तेजस्वी च तपस्वीच यशस्वीच गुणान्वितः । धरोवेदविदाञ्चैव योगिना क्षानिना तथा
 स च पुत्रोधिगुभक्तो धार्मिक कुलमुद्धरेत् । नृत्वन्तिपितरः सर्वे यज्जन्मानतोमुदा ॥
 पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी । धर्मिष्ठपुत्रमाताच कुलजा कुलपालिका ।
 धर्मिन्तिष्ठदो यन्धुस्तदिष्ट यत् सुखप्रदम् । योषन्धच्छिन् सच पिता हरेर्वैतर्मप्रदर्शकः ॥

सा गर्मधारिणीयाश्च गर्मव स वेमोचनी । विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिः ॥
 गुरुश्चज्ञानदाताच तज्ज्ञान कृष्णभावनम् । आग्नेस्तन्मपर्यन्त यतो विद्व चराचरम् ॥
 भाविभूय तिगेभूय किंवा ज्ञान तदन्यत । वेदज योगन यद्व्यक्तत्सार हरिसेवनम् ॥
 तत्त्वाना सारभूतश्च हरेरन्यद्विद्वन्वनम् । दत्त ज्ञान मया तुभ्य सस्वामी ज्ञानदो हि य
 ज्ञानात् प्रमुच्यतेऽन्यात् स रेपुर्णोऽहियश्चद । विष्णुभ केयुत ज्ञान नो ददातिहियोगुरु
 स रिपु शिष्यघाती च यतो वन्यान् मोचयेत् ॥ ७२ ॥

जननीगर्मजान् क्लेशान् यमताडनजातया । न मोचयेत्य सकथ गुरुस्तातोहियान्धव ।
 परमानन्दरूपञ्च कृष्णं गर्मनश्चरम् । न दर्शयेत्य सकथ क दृशो वान्धवो नृणाम् ।
 मज साध्वि पर ब्रह्माच्युत कृष्णञ्च निर्गुणम् ॥ ७३ ॥

निमूलञ्चपुराकर्म भवेद् यत्सेवयाध्रुवम् । मया छत्रेण त्व त्यक्ता क्षम दोष ममप्रिये ॥
 क्षमायुत नासाध्वीनास वात् क्रोधो न विद्यते । पुं करेतऽसेयामि गच्छेद्वियथासुखम् ।
 श्रीकृष्णवराणाम्मोजेश्यान् विच्छेदेकातर । घनादिषु स्त्रियाप्रीति प्रवृत्तिवर्त्मगच्छताम्
 श्रीकृष्णवराणाम्मोजे निष्पृहाणा मनोरथा ॥ ७४ ॥

अरत्कारुवच श्रुत्वा मनसा शोककातरा । सा साधुनेत्रा विनयादुवाच प्राणबह्वभम् ।
 मनसोवाच ।

दोषेणाहृत्वया त्यक्तानिद्रामुनेने प्रभो । यत्र स्मरामिन्वा बन्धो तत्रमामागमिष्यसि
 बन्धुभेद् क्लेशात्म पुत्रभेदस्तत्र पर । प्राणेशभेद् प्राणाना विच्छेदात् सर्वत पर ॥
 त्वि पतिप्रतानाञ्च शतपुत्रात्रिक प्रिय । सर्वस्माश्च प्रिय स्त्रीणा प्रियस्तेनोच्यतेबुधै
 बुधे यथैकपुत्राणा वैष्णवाना यथ हरौ । नेत्र यथैकनेत्राणा तृपिताना यथा जले ॥
 श्रुधिताना यथात्रे च कामुकाना यथा स्त्रियाम्
 यथा परस्त्रे चौराणा यथा जारे कुयोपिताम् ॥ ८४ ॥
 विदुषाञ्च यथाशास्त्रे वाणिजे वणिना यथा ।
 तथा शर्वन्ननकान्ते सार्वना योपिताप्रभो ॥ ८५ ॥

इत्युक्त्वा मनसादेरी पपत् स्वामिन पदे । क्षणञ्चकार क्रोडे ता वृषयाच वृषानिधि-

नेत्रोदनेन मनसा स्थापयामास ता मुनि । साधुणाचमुनेः क्रोडं सिपेच भेदकातरा
 वदा ज्ञानेन तौ द्वौच विशोकौवचभूषतु । स्मारं स्मारं पदाम्भोजंरुष्णस्य परमात्मन.
 जगामतपसेषिप्र स कान्तासुप्रगोश्र्यच । जगाममनसाश्राम्भोः कैलासं मन्दिरंगुरोः ॥
 पार्वती बोधयामास मनसा शोककर्पिताम् । शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालये ॥
 सुप्रशस्ते दिने सार्ध्या सुपाष मङ्गले क्षणे । नारायणांशं पुत्रञ्च ज्ञानिनां योगिनांगुस्म
 गर्भस्थितो महाज्ञान श्रुत्वा शङ्करवस्त्रतः । स बभूवच योगीन्द्रोयोगिनां ज्ञानिनांगुरु ।
 जातक कारयामास वाचयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास शिषायच शिवः शिशोः
 रत्नत्रिकोटिलक्षञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः । पार्वतीच गवां लक्षं रत्नानि विविधानिच ।
 शम्भुश्च चतुरो वेदान् वेदाङ्गानितरास्तथा । बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युञ्जयंपरम् ॥
 मक्तिरास्ते स्वकान्ते चार्भाष्टे देवे हरीगुरौ । यस्यास्तेन च तन्पुत्रो बभूवास्तीकपवच
 जगाम तपसे विष्णो पुष्करं शङ्कराज्ञया । संप्राप्य च महामन्त्रं तपश्च परमात्मनः ॥
 दिव्यं धर्मत्रिलक्षञ्च तपन्तपत्या तपोधनः । आजगाम महायोगी नमस्कृतुं शिवंप्रभुम् ।
 शङ्करश्च नमस्कृत्य कृत्वाच बालकं पुरः । सा आजगाम मनसा कश्यपस्याश्रमं पितु ॥
 तां सपुत्रां सुता इष्टा मुदं प्राप प्रजापतिः । शतलक्षञ्च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने ॥
 ब्राह्मणान् भोजयामास असंख्यान् श्रेयसे शिशोः ।

यदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्रापुः परं तथा ।

सा सपुत्रा च सुचिरं तस्यी तातालये तदा । तदोयं पुनराख्यानं वक्ष्यामि तन्निशामय ॥
 अयामिमन्युतनये ब्रह्मशापः परिशिने । बभूव सहसा बहान् दैवदोषेण कर्मणा ॥०३॥
 सताहेसमतीते तु तक्षकस्त्वाञ्चभोक्षयति । शशाप शृङ्गाचेतीदं कौशिक्याश्च जलेनच ।
 राजा श्रुत्वा तन्प्रवृत्ति गद्गाद्वारंजगामसः । तत्र तस्योच सताइंशुधाय धर्मसंहिताम् ।
 सताहे समतीते तु गच्छन्तं तक्षकं पथि । धन्वन्तरिर्नृपं भोकुं ददर्श गामुकोनृपम् ।
 तयोर्भूय संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम् । धन्वन्तरिर्मणिं प्राप तत्रक स्येच्छया ददौ ।
 स ययौ तं गृहीत्वा तु नुष्टं प्रहृष्टमानसः । तक्षको भक्षयामास नृपञ्च मञ्चकस्थितम् ।
 राजाजगाम वैकुण्ठं स्मारंस्मारं हरिगुस्म । सत्कारं कारयामास विनुर्जन्मैजयःशुवा ॥

गजा चकार यत्रञ्च सर्गस्य ततो मुने । प्राणास्तत्याज सर्वाणा सन्तो ह्यनेवसा ॥
स तस्यैव मातश्च महेन्द्र शरणं ययौ । सेन्द्रञ्च तस्यै हन्तु विप्रवर्गा समुपत ॥१११॥
अथ देवाश्च मुनयश्चाप्ययुर्मनसान्तिकम् । ता तुगाव महेन्द्रश्च मयकातरविह्वल ॥११२॥
तत्र आस्ताक भ्रातय यत्रञ्च मानुराजया । महेन्द्रतस्यैकप्राणान् यथाचे भूमिर धरम् ॥
ददौ वा नृश्रेष्ठ ऋषया ब्रह्मगात्रया । यत्र समाप्य प्रियेभ्यो दक्षिणाञ्च ददौ मुदा ॥
विप्राश्च मुनयोऽप्या गत्वान्नमनसान्तिकम् । मनसा पूनयामासुस्तुष्टुश्च पृथक्पृथक् ।
शक्रं समृतम्भारो मन्त्रियुक्तः सदाशुचिः । मनसा पूनयामास तुगाव परमादरम् ॥११६॥
दत्त्वा षोडशोपचारैर्बलिञ्च तन् प्रियं तदा । प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुनुराजया ॥
संपूज्य मनसादेवैः प्रथयुः स्मालयञ्च वै । इत्येककथितं सर्वं किं भूय श्रोतुमिच्छसि ॥
नारद उवाच ।

केतसोऽप्येतुगाव महेन्द्रोऽमनसास्तनीम् । पूनाविप्रिसमन्त्या श्रोतुमिच्छामितत्त्वत ॥
नारायण उवाच ।

मुन्नत शुचिगन्तान्तोऽप्युत्वा शीतेव वाससा । रत्नसिंहासने देव वासयामासभक्तिः ।
स्वर्गाङ्गाञ्चैवैव रत्नकुम्भस्थितेन च । स्नायमानास मनसा महेन्द्रो वैदमन्त्रत ॥
वाससा वासयामास वह्निगुह्ये मनोमे । सर्वाङ्गे चन्दन दत्त्वा पात्रान्यै भक्तिभयुत ॥
गणेशञ्च त्रिशुञ्च वर्हे शिष्णु शिवशिवम् । संपूज्य देवस्यैकञ्च पूनयामास तास्तनीम्
ओं ह्रीं श्रीं मनसादेवैः स्वाहेत्येवञ्च मन्त्रत । दशक्षरेण मन्त्रेणददौ सर्वं ययोचितम्
दत्त्वा षोडशोपचार भक्तियो दुर्जमहरिः । पूनयामास मन्त्राच्च ब्रह्मणाप्रेरितो मुदा ॥
गाय नानाप्रकारञ्च वादयामास तत्र वै । यन्मू पुण्यवृष्टिश्च नमसा मनसोपरि ॥१२०॥
देवो विनाजया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाजया । तुगाव साश्रुतेरश्च पुलकाञ्चिनविग्रह ॥
महेन्द्र उवाच ।

देवि त्वा स्मोतुमिच्छामि सार्धं ना प्रवग वराम् ।

परापराञ्च परमा न हि स्मोतु क्षमोऽयुता ॥ १२१ ॥

स्मोत्राणां लक्षणं वैदे स्वमवच्छयानवपम् । न क्षमं प्रकृतं वक्तु गुणानां तव सुवते

शुद्धसत्वस्वरूपात्त्व कोपहिंसाविवर्जिता । न च शतोमुनिस्तेनत्यक्तया च त्वयायतः ॥

त्व मया पूजिता साधि जननी च यदादितिः ॥ १३० ॥

दयारूपाच भगिनी क्षमारूपा यथाप्रसूः । त्वग्रामे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि ॥
अहंकगेमित्या पूज्यां प्रीतिश्च वर्द्धन्ते मम । निर्यं यत्रित्वं पूज्या भवेऽत्रजगदम्बिके ।
तथापि तवपूजाञ्च वर्द्धयामि च सर्वतः । ये त्वामापादुत्संकान्यां पूजयिष्यन्ति भक्तिः
पञ्चम्या मनसाऽप्यायामियान्तवा दिनेदिने । पुत्र सौत्रादयस्त्रेपां वर्द्धन्ते च धनानि च ॥

यशस्विन कीर्त्तिमन्तो विद्य वन्तो गुणाधिपाः ।

ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निदन्तश्च नतो जनाः ॥ १३५ ॥

लक्ष्मीर्हिना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा । त्वं सर्गलक्ष्मीः स्वर्गं च वैकुण्ठेकमलाकला
नारायणांशो भगवान् जरत्कार्मुनीश्वरः । तपसा तेजसा त्वाञ्च मनसा ससृजे पिता
अस्पाक् रक्षणार्थैव तेन त्वं मनसामिधा । मनसा देवितुं शक्ता आत्मनासिद्धयोगिनी
तेन त्वं मनसादेवी पूजिता घनिदिता भवे । यां भक्त्या मनसा देवा पूजयन्त्यनिशंभृशम्
तेन त्वा मनसादेवी प्रवदन्ति पुराविदः । सत्यरूपा च देवी त्वं शश्वत् सत्वनिपेचया
यो हि यद्वाचयेन्नित्यं शतंप्राप्नोति त समम् । इन्द्रश्च मनसांस्तुःचागृहीत्वभगिनीञ्चताम्
प्रजगाम स्वभवतं भूपायासपरिच्छदाम् । पुत्रेण सार्द्धं सा देवी चिरं तस्योपितुर्गृहे ॥

भ्रातृभि पूजिता शश्वन्मान्या वन्द्या च सर्वतः ।

गोलोकात् सुरभी ब्रह्मन् तत्रागत्य सुपूजिताम् ॥ १४३ ॥

तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम् । ज्ञानञ्च कथयामास सुगोप्यं सर्वदुर्लभम्
तदा देवै पूजिता सा स्वर्लोकं पुनर्ययी ॥ १४४ ॥

इदं स्तोत्रं पुण्यवीजं तां संपूज्य च यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्तितस्य वंशोद्भवस्य च
विषं भवेत् सुधानुन्यं सिद्धस्तोत्रं यदापठेत् । पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नर ॥

सर्पशायी भवेत् सोऽपि निश्चितं सत्साहनः ॥ १४७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रहृतिखण्डे नारायणनारदमंत्रादे मनसोपाख्याने

स्तोत्रकथनं नाम षट्षोडशोऽध्यायः ।

सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सुरभ्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

का वा सा सुरभीदेवी गोलोकादागता च या । तज्जन्मचरितं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
नारायण उवाच ।

गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः । गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा ॥
सर्वादिसृष्टेः कथनं कथयामि निशामय । बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने घने ॥ ३ ॥
एकदा राधिकानायो राधया सह कौतुकान् । गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ
सहसा तत्र रहसि विजहार च कौतुकान् । बभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छामयस्य च
ससृजे सुरभीं देवी लीलया घामपार्वतः । चत्सयुक्तां दुग्धवतीं चत्सानाञ्च मनोरमाम्
दृष्ट्वा सवत्सां सुदामा रत्नभाण्डे दुदोह च । क्षीरं सुधातिरिक्तञ्च जन्ममृत्युहरं परम् ॥
सदुष्णञ्च पयः स्वादु पर्णो गोपपतिः स्वयम् । सरो बभूव पयसा भाण्डचिह्नं सनेन च
दीर्घं च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम् । गोलोकेषु प्रसिद्धश्च स च क्षीरसरोवरः ॥
गोपिकानाञ्च राधायाः क्रीडावापीवभूयसा । रत्नेन रविता तूर्णं भूता वार्षाश्वरेच्छया
बभूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः । तावन्तो हि च चत्साश्च सुरभी लोमकूपतः ॥
तासां पुत्राश्च पौत्राश्च संयभूवुरसंरयकाः । कथिता च गवां सृष्टिस्तया च पूरितं जगत्
पूजाञ्चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने । ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥
दीपान्वितापरदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया भवे । बभूव सुरभी पूजा धर्मवक्त्रादितिथुतम् ॥
ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यदुच्यते पूजाविधिर्मम । वेदोक्तञ्च महाभाग निबोध कथयामिते
ओं सुरभ्यै नम इति मन्त्रस्य च पङ्कजरः । सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥
ध्यानञ्च यजुर्वेदोक्तं पूजनं सर्वसम्मतम् । ऋद्धिदां वृद्धिदाञ्चैव मुक्तिदां सर्वकामदाम् ॥
लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरिं पराम् । गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥

पवित्ररूपा पूज्याञ्च भक्तानां सर्वकामदाम् । यया पूतं सर्वविश्वं ता देवीं सुरभीं मजे
घटे वा धेनुशिरसि बद्धस्तम्भे गवाञ्च वा । शालग्रामे जलेऽग्नौ वा सुरभीपूजयेद्ब्रह्मिजः
दीपान्वितापरदिने पूर्वाह्ने भक्तिसंयुत । यः पूजयेच्च सुरभीं स च पूज्यो भवेद्भुवि ॥
एकदा त्रिषु लोकेषु धाराहे विष्णुमायया । क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताश्च सुरादयः
ते गत्वा ब्रह्मलोकञ्च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा । तदाज्ञया च सुरभीं तुष्टाव पाकशासनः ॥

महेन्द्र उवाच ।

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः । गवां धीजस्वरूपायै नमस्तेजगदम्बिके । २४
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः । नम कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः

कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सन्ततं परम् ॥ २५ ॥

श्रीदायै धनदायै च वृद्धिदायै नमो नमः । शुभदायै प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः ॥ २६
यशोदायै कीर्त्तिदायै धर्मज्ञायै नमो नमः । स्तोत्रध्रुवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः ॥
धाविर्वभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी । महेन्द्राय घरं दत्त्वा घाञ्छितञ्चापि दुर्लभम् ॥
जगाम सा च गोन्दोकं ययुर्देवादयो गृहम् । बभूव विश्वं सहसा दुग्धपर्णञ्च नारद ॥
दुग्धात् घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिं सुरभ्यै च । इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्
स गोमान् धनवाश्चैवकीर्त्तिमान् पुण्यमान् भवेत् । सन्नास सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षित-
इह लोके मुखं भुक्त्या यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् । सुचिरं निवसेत्तत्र करोति कृष्णसेवनम्

न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्रं भवे भवेत् ॥ ३३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिलखण्डे नारायणनारदसंवादे सुरभ्युपाख्यानं
नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

राधिकाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग नारायणपरायण । नारायणांश भगवन् ब्रूहि नारायणी कथाम् ॥१॥
श्रुतं सुरभ्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु पुराविद्धिः प्रशंसितम् ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामिराधिकाख्यानमुत्तमम् । तदुत्पत्तिञ्चतद्बुद्ध्यानंस्तोत्रं कवचमुत्तमम्

श्रीनारायण उवाच ।

पुरा कैलाशशिखरे भगवन्तं सनातनम् । सिद्धेशं सिद्धिदं सर्वं स्वरूपं शङ्करं परम् ॥३॥
प्रफुल्लगदनं प्रीतं सस्मितं मुनिभिः स्तुतम् । कुमाराय प्ररोचन्तं कृष्णस्य परमात्मनः ।
रासोत्सवरसाख्यानं रासमण्डलवर्णनम् ॥ ५ ॥

तदाख्यानावसाने च प्रस्तावावसरे सती ॥६॥

पप्रच्छ पार्वती स्फीता सस्मिता प्राणवह्नभम् । स्तवनं कुर्वती भीताप्रापेशेनप्रसादिता
प्रोवाच तं महादेवं महादेवी सुरेश्वरी । अपूर्वं राधिकाख्यातं पुराणेषु सुदुर्लभम् ॥८॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

आगमं निखिलं नाथ श्रुतं सर्वमनुत्तमम् । पञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगञ्चयोगिनाम्
सिद्धानां सिद्धिशास्त्रञ्च नानातन्त्रमनौहरम् । भक्तानां भक्तिशास्त्रञ्च कृष्णस्य परमात्मनः
देवीनामपि सर्वासांचरितं त्वन्मुखाम्बुजात् । अधुना श्रोतुमिच्छामिराधिकाख्यानमुत्तमम्
श्रुतौ श्रुतं प्रशंसा च राधायाश्च समासतः ।

त्वन्मुखात् काण्वशाखायां व्यासेन तां वदधुना ॥ १२ ॥

भागमाख्यानकाले च भवता स्वीकृतं पुरा । नहीश्वरव्याहृतिश्च मिथ्या भवितुमर्हति
तदुत्पत्तिञ्च तद्बुद्ध्यानं नामनोमाहात्म्यमुत्तमम् । पूजाविधानंचरितंस्तोत्रं कवचमुत्तमम्
आराधन विधानञ्च पूजापद्धतिमीरितम् । सांप्रतं ब्रूहि भगवन्मांभक्तां भक्तवत्सल

कथं न कथितं पूजामागच्छानकालत । पार्वतीवचनं श्रुत्वा नत्रयवत्रो बभूव स ॥
 पञ्चवक्त्रश्च भगवान् शुष्करुद्रोऽनुतापकः । स्वस्य भङ्गमीतश्च मीनो भूतो हि विनित्तः ॥
 सस्मार कृष्णाय तोनाभीष्टेऽयं तृणानिधिम् । तदनुज्ञाञ्च स प्राप्य स्वाह्वाङ्गातामुवाच सः ॥
 निषिद्धोऽहं भगवता कृष्णेन परमात्मना । आगमारम्भसमये राधाख्यानप्रसङ्गतः ॥
 मद्दर्शाङ्गस्वरूपा त्वं न मद्भिन्ना स्वरूपतः । अनोऽनुज्ञां ददौ कृष्ण मह्यवकु महेश्वरि ॥
 मदीष्टदेवकान्तायारा प्रायाश्चरित्सति । अतीव गोपनीयञ्च सुखदं कृष्णभक्तिदम् ॥२१॥

जानामि तदहं दुर्गे सर्वं पूजापर वरम् ।

यज्ञानामि रहस्यञ्च न तन् वहा फणीश्वर ॥२२॥

न तत् सन कुमारश्च न च धर्मं सनातन ।

न देवेन्द्रो मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः सिद्धपुङ्गवा ॥२३॥

मत्तो बलवती त्वञ्च प्राणास्त्यक्तुं समुग्रता ।

अतस्त्वा गोपनीयञ्च कथयामि सुरेश्वरि ॥२४॥

शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । चरितं रात्रिकायाश्च दुर्लभञ्च सुपुण्यदम् ॥

पुरा वृन्दावने रम्ये भोलोके रासत्रण्डले । शतशृङ्गैकदेशे च मालतीमं हिकावने ॥२६॥

रत्नसिंहासने रम्ये तस्यौ तत्र जगत्पति । स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूव मणोत्सुकः ॥

रमणं कर्तुमिच्छां च तद्बभूव सुरेश्वरी ।

इच्छया च भवेत् सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥२८॥

पतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव स ।

दक्षिणाङ्गञ्च श्रीहृणं वामार्द्धाङ्गञ्च राधिका ॥२९॥

बभूव रमणी रम्या रासेशा रमगोत्सुका । अतूत्तरत्नभरणा रत्नसिंहासने स्थिता ॥३०॥

बह्विगुद्धाशुकाग्रता कोटिपूर्णशशिप्रभा । ततः काञ्चनवर्णाभाराजिताचस्पतेजसा ॥३१॥

सस्मिता सुदती शुद्धा शरत्पत्रनेभानना । विभ्रतीकरौंरम्यामागतीमालयमण्डिताम् ॥

रत्नमालाञ्च दधती प्रीप्ससर्व्यं समप्रभाम् । मुक्ताहारेण शुभ्रेण गागधारानिभेन च ॥३३॥

सयुक्तं वचुं लोत्सुङ्गं सुमेरुगिरिसन्निभम् । कठिनं सुदरदृश्यकस्तूरीपत्रचिह्नितम् ॥३४॥

मांगल्यं मंगलार्हञ्चस्तनयुग्मञ्च विध्नति । नित्यं श्रोणिभारत्तां नवर्यौवनसंयुता ॥३५॥
 कामातुरां सस्मितां तां ददर्शरसिकेश्वरः । दृष्ट्वाकान्तांजगत्कान्तोऽमूर्ध्वमणोत्सुकः ॥
 दृष्ट्वाचैवं सुकान्तञ्च सा दधार हरेःपुरः । तेन राधासमाख्याता पुराविद्धिर्महेश्वरि ॥३७॥
 राधा भजति श्रोकृष्णं सचताञ्चरस्वरम् । उभयोःसर्वसाम्यञ्चसदासन्तोषदन्ति च ॥
 भयनं धावनं रासे स्मरत्यालिंगनं जपेत् । तेन जल्पतिशङ्केतांशस्यां राधां मदीश्वरः ॥
 राशन्द्रोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्तिं सुदुर्लभाम् ।

धाशन्द्रोच्चारणात् दुर्गे धावत्येव हरेःपदम् ॥४०॥

कृष्णवामांशसःभृता राधा रासेऽरतोपुरा । तस्याश्चांशांशकृश्या चमूर्धुर्देवयोपितः ॥
 राश्यादानववनो धा च निर्वाणवाचकः । ततोऽप्राप्नोतिमुक्तञ्चसावराधाप्रकीर्त्तिता ॥
 चमूर्ध्व गोपीसंघञ्च राधाया लोमकूपतः । श्रोकृष्णलोमकूपेभ्यःवभृशुः सर्वबल्लवाः ॥४३॥
 राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्वभूव सा ।

शस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्वभूव सा ॥४४॥

चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी । तदंशाराजलक्ष्मीश्चराजसम्पत्प्रदायिनी ॥
 तदंशा मर्यादलक्ष्मीश्च गृहिणाञ्च गृहे गृहे । शस्याधिष्ठातृदेवो च सा एव गृहदेवती ॥
 स्वयं राधाकृष्णपत्नीकृष्णवक्षस्यलस्थिता । प्राणाधिष्ठातृदेवीचतस्रैव परमात्मनः ॥
 व्याप्रहस्तम्यदर्शनं सर्वं मिथ्यैव पार्यति । भजसन्त्यंपरं ब्रह्मराशेशं त्रिगुणात्परम् ॥४८॥
 परं प्रधानं परम परमात्मानमाश्रयम् । सर्वाद्यं सर्वपूज्यञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥४९॥
 स्वेच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् । तद्विन्नानाञ्चदेवानां प्राकृतं रूपमेव च ॥५०॥
 तस्य प्राणाधिकाराद्यादु सीभाग्यसंयुता । महद्विष्णोः प्रसूसावनूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
 गान्तिनाराधिकांसन्तःसदासेवन्तिनित्यशः । सुकर्मव्यत्यदमभोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥

स्वप्ने राधा पदाम्भोजं न हि पश्यन्ति बल्लवाः ।

स्वयं देवी हरेः क्रोडे छायारूपेण कामिनी ॥५३॥

स च द्वादश गोपानां रायाजः प्रवरः प्रिये ।

श्रोकृष्णांशञ्च भगवान् विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥५४॥

सुदामशापात् सा देवी गोलोकादागता महीम् ।

वृषभानुगृहे जाता तन्माता च कलावती ॥५५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे हरगौरी-
संवादे राधोपाख्यानं नामाष्टत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरगौरीसंवादे राधोपाख्यानम् ।

पाचंत्युवाच ।

कथं सुदामशापञ्च सा च देवी ललाभ ह ।

कथं शशाप भृत्यो हि स्वामीष्टदेवकामिनीम् ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु शुभदंभक्तिमुक्तिदम् ॥२॥

एकदा राशिकेशश्च गोलोके रासमण्डले । शतशृंगपर्वतैकदेशे वृन्दावने वने ॥३॥

गृहीत्वा विरजां गोपीं सौभाग्यां राधिकासमाम् ।

क्रीडाञ्चकार भगवान् रत्नभूषणभूषित ॥४॥

रत्नप्रदीपसंयुक्ते रत्ननिर्माणमण्डले । अमूल्यरत्ननिर्माण तल्पेवग्णकचर्चिते ॥५॥

कस्तूरीकुङ्कुमासक्ते सुगन्धिचन्दनार्चिते । सुगन्धिमालतीमालासमूहपरिशोभिते ॥६॥

सुस्तेर्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ । तौ द्वौ परस्परसक्तौ सुखसम्भोगतन्त्रितौ ॥

मन्यन्तराणां लक्ष्मण काल परमितोगत । गोलोकस्यस्यल्पकालेजन्मादिरहितस्य च ॥

दूत्यश्चतस्रो ज्ञात्वा च कथयामासु राधिकाम् ।

धृत्या परमरुष्टा सा तत्याज हारमीश्वरी ॥६॥

प्रबोधिता च सखिमिः कोपरक्तास्यलोचना । विहाय रत्नालंकारं षड्विंशत्शुक्रेशुभे ॥

क्रीडापद्मञ्च सदत्ना मूल्यदर्पणमुञ्ज्वलम् । चकार लोपं घस्त्रेणसिन्दूरं चित्रपत्रकम् ॥
 प्रक्षाल्य तोयाञ्जलिभिर्मुखरागमलककम् । विन्नस्तकबरीभारामुक्तेश्रीप्रकम्पिता ॥१२
 शुक्लवस्त्रपरीधाना रूक्षावेशादिर्वर्जिता । ययौ यानान्तिकं तृणं प्रियालीभिर्निवारिता ॥
 आजुहावसखीसंघंरोपविस्फुरिताधरा । शश्वत्कम्पान्वितांगीसागोपीभिःपरिवारिता
 ताभिर्भवयायुताभिश्च कातराभिश्च संस्तुता । आरुरोहरथं दिव्यममूल्यरत्ननिर्मितम् ।

दशयोजनविस्तीर्णं दीर्घं च योजनं शतम् ॥१५॥

सहस्रवक्रयुकं च नानाचित्रसमन्वितम् । नानाविचित्रवसनैःसुश्रमैःश्रीमैर्विराजितम् ॥
 ममूल्यरत्ननिर्माणदर्पणैःपरिशोभितम् । मर्णान्द्रजालमालालिपुष्पमालाविराजितम् ॥
 सदत्नकलसैर्युक्तंरूप्यैर्मेन्दिरकोटिभिः । त्रिलक्षकोटिभिः साङ्गंगोपीभिश्चप्रियालिभिः ॥
 ययौ रथेन तेनैव सुमनोमालिना प्रिये । श्रुत्वा कोलाहलं गोपःसुदामा कृष्णपार्षदः ॥

कृष्णं कृत्वा सावधानं गोपैः साङ्गं पलायितः ।

भयेन कृष्णः सन्नस्तो विहाय विरजां सतीम् ॥२०॥

स्वप्रेमभग्नो कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः ।

सा सती समयं ज्ञात्वा विचार्य स्वहृदि क्रुधा ॥२१॥

राधाप्रकोपभीता च प्राणांस्तन्याज तत्क्षणम् ।

विरजालिगणास्तत्र भयविह्वलकातराः ॥२२॥

प्रययुः शरणं साध्वीं विरजां तन्क्षणं भिया । गोलोकेसासखिद्रूपा बभूव शैलकन्यके ॥
 कौटियोजनविस्तीर्णा दीर्घं शतगुणा तथा । गोलोकं चेष्टयामास परिवेष मनोहरा ॥
 बभूवुः क्षुद्रनद्यश्च तदान्या गोप एव च । सर्वा नद्यस्तदंशाश्च प्रतिविश्वेषु सुन्दरि ॥
 इमे सप्तसमुद्राश्च विरजानन्दना भुवि । अथागत्य भगवती राधारासेश्वरी परा ॥२६॥
 न दृष्ट्वा विरजां कृष्णं स्वगृहञ्च पुनर्ययौ । जगाम कृष्णस्त्र्यं राधांगोपालैरष्टभिःसह ॥
 गोपीभिर्द्वारियुक्तामिर्वारितश्च पुनः पुनः । दृष्ट्वाकृष्णञ्चसादेवी भर्तृसनञ्च चकारतम् ॥
 सुदामा भर्तृसयामास तामेव कृष्णसन्निधौ । क्षुब्धाशशापसादेवीसुदामानं सुरेश्वरी ॥
 गच्छ त्वमासुरीं योनिं गच्छदूरप्रतोद्भुतम् । शशापतांसुदामाचत्वमितोगच्छभारतम् ॥

भव गोपीगोपकन्यागोपीभि स्वामित्वेव । तत्रतेऽणविच्छेदोमविष्यतिशानसमा ॥
 तत्रमारातरण भगवाश्च करिष्यति । इत्येवमुक्त्वा सुदामा प्रणम्य मातर हरिम् ।

साधुनरो मोहयुक्तस्तत्र गन्तुमुग्रत ॥३२॥

राधा जगाम तन्पश्चान् साधुनेत्रातिविह्वला ।

घत्स क यासीत्युच्यार्थं पुत्रविच्छेदकातरा ॥३३॥

कृष्णस्ता रोत्रयामास विप्रया चक्रामधीम् । शास्त्रप्राप्स्यसिस्तुनमास्देत्येवमेवच ॥

स चासुर शङ्खचूट बभूव तुऽसीपति । मच्छूलभित्कामेनगोलोकञ्चजगामस ॥३५॥

राधा जगाम वाराहे गोकुल भारत सती । वृषभानोश्चरैश्वर्यस्यसावकन्याबभूवह ॥३६॥

अयोनिस्तमया देवा वायुर्गर्भा कलावती । सुपुरे मायया वायु सा तत्राविरभूव ह ॥

अतीने द्वादशाद्रे तु वृष्टा ता नवर्योचनाम् ॥३८॥

साङ्गं राधाणरैश्वरेण तन् सम्यग्ध चकार स ।

छाया नस्याप्य तद्गृहे सान्तरानं चकार ह ॥३९॥

बभूव तस्य वैश्वर्यं विराहशुभायया सह । गने चतुर्दशाद्रे तु कसमीतशुद्धेन च ॥

जगाम गोकुलं ऋणं शिशुं गानगतपति । कृष्णमातायशोदाया राधाणस्तन्सहोदर ॥

गोलोके गोपकृष्णाश सम्यग्धातु कृष्णमातुः ॥४१॥

कृष्णेन सह राधाया पुण्ये वृन्दावने घने । विराहकारयामास विधिनागता विधि ॥

स्यजे राधापदाम्भोजं नहिपश्यन्तिपङ्कजा । स्वयंपराधाहरे त्रौढे छायारायाणमन्दिरे ॥

पदि वर्षसहस्राणि तपस्नेपे पुग विधि । राधिषावरणाम्भोजदर्शनार्थान्वपुष्करे ॥४४॥

मारायतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले । दर्शं तन् पदाम्भोजं तपसस्तन् फलेन च ॥४५॥

विञ्चित्कालञ्च श्रीकृष्ण पुण्ये वृन्दावने घने ।

रमे गोलोकनाथश्च राधया सह भागने ॥४६॥

तत्र सुदामशापेन विच्छेदश्च बभूव ह । तत्र मारायतरण भूमे कृष्णञ्चकार स ॥४७॥

शलाद्रे समर्पिते तु तार्थयात्रापमगत । दर्शं कृष्ण सा राधा स च ताञ्च परस्परम् ॥

स्तौ जगाम गोलोकं राधया सह तत्रविन् । कलावती यशोदा चजगामराधयासह ॥

वृषभानुश्च नन्दश्च ययो गोलोकमुत्तमम् ।

सर्वे गोपाश्च गोप्यश्च ययुस्ता याः समागताः ॥१०॥

छायागोपाश्च गोप्यश्च प्रापुर्मुक्तिञ्च सत्रिणौ ॥११॥

रुनेताश्च तत्रैव सार्द्धं कृष्णेन पार्वति । पद्मिशङ्खसकोटयश्चगोप्योगोपाश्चतसनाः ।

गोलोकं प्रययुर्मता सार्द्धं कृष्णेन रात्रया ॥१२॥

श्रोतः प्रजापतिर्वन्दो यशोदा तन्प्रिया धम । सत्राप पूर्वंतपसा परमात्मानर्माश्वरम् ॥

वसुदेव काश्यपश्च देवकीचाद्रितिः सर्गा । देवमाता दैवपिता प्रतिकल्पे स्वभावतः ॥

पितृणा मानर्माश्वर्या गजानाता कलावती ।

वसुदानापि गोलोकात् वृषभानु समाययौ ॥१३॥

इत्येवं कथितं दुर्गे गणिकान्वातनुत्तमम् । सगन्धर्वं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥१६॥

श्रीकृष्णश्च द्विपान्धो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठगोलोकेद्विभुज स्वयम् ॥

चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मी नाम्भरती । गंगावतुलमाचंभदेव्योत्तराप्रणप्रियाः ॥

श्रीकृष्णपत्नी सा गया तदर्द्धागममुद्रया । तेजसा वयससा वीम्भेणवगुणेनच ॥१६॥

बार्ही रागा समुत्वात्पपश्चान्ज्जवदेव्युयः । इय विक्रमेगृह्णन्त्यात्मनेतारसंशयः ॥

कार्तिकीपूर्णिमायाञ्चगोलोकैगसमण्डले । चकारपूनीरायायातत्सन्ध्वन्धिमहोत्सवम् ॥

सदन्नगुडिकायाञ्च कृत्वा तत् कवचं हरि ।

द्वारकाष्ठे बाही च दक्षिणे सङ् गोपकै ॥१७॥

कृत्वा ध्यानञ्च भक्त्या च स्तोत्रमैत्र चक्रामस । रायाचरितताम्बूलवन्वाद्रमधुसूदनः ॥

राया पूज्या च दृष्णान्य तत्पूजो भगवान् प्रभु ।

पस्पगभाष्टदेवो भेदङ्गत्वं प्रजेन् ॥१८॥

द्विर्नये पूजिता सा च धर्मैष दृष्टाना मया ।

अनन्तेन वानुकिना रविना शरिना पुग ॥१९॥

महेन्द्रेण च रुद्रेश्च भक्त्या मानयेत च । सुरेन्द्रेश्च मुनान्द्रेश्च सर्वे वैग्यैश्च पूजिता ॥१६॥

द्विर्नये पूजिता सा च सत्कारैश्चरेण च । मास्ते च सुरातेन पार्वैर्मिर्मैर्मुद्रान्वितैः ॥१७॥

ब्राह्मणेनाभिशक्तेन दैवदोषेण भूभृता । व्याधिप्रस्तेन हस्तेन दुःखिनाञ्च विदूयता ॥६८
संप्राप राज्यं भ्रष्टश्रोः स च राधावरुण च । ब्रह्मदत्तेन स्तोत्रेणस्तुत्वाच्चपरमेश्वरीम् ॥
अभेद्यं कर्मचं तस्याः कण्ठे घाही दधारस' । ध्यात्वाच्चकारपूजाञ्चपुष्करेशतवत्सरम् ॥
अन्ते जगाम गोलोकं रत्नयानेन भूमिपः । इतितेकथितंसर्वकिम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण नारद संवादे हरगौरीसंवादे
राधोपाख्यानं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुयज्ञोपाख्यानम् ।

पार्वत्युवाच ।

को वा सुयज्ञो नृपतिः कुत्र वंशे समुद्भवः । कथं विप्रामिशतञ्च कथं संप्राप राधिकाम्
सर्वात्मनश्च कृष्णस्य पत्नीश्रीकृष्णपूजिताम् । कथं विण्मूत्रधारी च सिपेवेषरमेश्वरीम्
पष्टिं वर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । यत्पादाम्भोजरेणूनां लब्धये पुष्करे विभुः ॥
कथं ददर्श तां देवीं महालक्ष्मीं पुरासतीम् । दुर्दर्श्यामपि युष्मार्कं दृश्यासावाकथं नृणाम्
कथं त्रिजगतां धाता तस्मै तत्कवचं ददौ । ध्यानं पूजाविधिं स्तोत्रं तस्याव्याख्यातुमर्हसि
श्रीमहादेव उवाच ।

स्वायम्भुवो मनुर्देवि मनूनामादिदेव च । ब्रह्मात्मजस्तपस्वी च शतरूपापतिः प्रभुः ॥
उत्तानपादस्तनूपुत्रस्तनूपुत्रो ध्रुव एव च । ध्रुवस्य कीर्त्तिर्विख्यातात्रैलोक्ये शैलकन्यके
वत्कलस्तस्य पुत्रश्च नारायणपरायणः । सहस्रं राजमृशानां पुष्करे स चकार ह ॥८॥
सर्वाणि रत्नपात्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा । अमूल्यरत्नराशीनां सहस्रं तेजसावृतम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा यजान्ते सुमहोत्सवे । दृष्ट्वा तच्छोभनं धनं विधाता जगतां प्रिये ।
सुयज्ञं नाम नृपतेश्चकार सुरसंसदि । स च राजा सुयज्ञश्च मनुवंश समुद्भवः ॥ ११ ॥

अन्नदाता रत्नदाता दाता च सर्वसम्पदाम् । दशलक्षं गवाञ्चैव रत्नशृङ्गपरिच्छदम् ॥
 नित्यं ददौ स विप्रेभ्यो मुदायुकःसदक्षिणम् । गवां द्वादशलक्षाणांददौ नित्यमुदान्वितः
 सुपकानिवमांसानिब्राह्मणेभ्यश्च पार्वति । पट्कोटिं ब्राह्मणानाञ्च भोजयामास नित्यशः
 चुप्य चर्ष्य लेह्य पेशैरतिवृतं दिने दिने । धिप्रलक्षं सूपकारं भोजयामास तत्परम् ॥१५
 पूषमन्नञ्च सूपान्तं सगव्यं मांसवर्जितम् । विप्रा भोजनकाले च मनुवंशसमुद्भवम् ॥

न तुष्टुवुः सुयज्ञञ्च तुष्टुवुस्तन्पितृंश्च ते ॥ १६ ॥

दिनेषु यज्ञ यज्ञान्ते पट्त्रिशल्लक्षकोटयः ॥ १७ ॥

चक्रुः सुभोजनं विप्राश्चातितुमाश्च सुन्दरि । गृहीतानि च रत्नानि स्वगृहं बोहुमक्षमाः ।
 वृषलेभ्यो ददौ किञ्चिन् किञ्चिन् पथि च तत्यजुः ।

विप्राणां भोजनान्ते च विप्रान्येभ्यो ददौ नृपः ॥ १६ ॥

तथाप्युद्वर्त्तनन्तत्र चान्नराशिसहस्रकम् । कृत्वा यज्ञं महाबाहुः समुवास स्वसंसदि ॥
 रत्नेन्द्रसारनिर्माणञ्चक्रौटिसन्निविते । रत्नसिंहासने रम्ये चावृते च सुसंस्कृते ॥
 चन्दनादिसुसंसृष्टे रम्ये चन्दनपल्लवैः । शाखायुक्तपूर्णकुम्भरम्भावृक्षैश्च शोभिते ॥
 चन्दनागुहकस्तूरीफरसिन्दूरसंयुते । वसुवासवबन्द्रेन्द्रध्वादित्यसमन्विते ॥२३॥

मुनिनाम्दमन्वादिब्रह्मविष्णुशिवान्विते । एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्र एकः समापयी ॥
 रूक्षो मलिनयासाश्च शुष्ककण्ठीष्टनालुकः । रत्नसिंहासनस्यञ्च माल्यबन्दनवर्चितम् ॥
 राजानमाशिरश्चक्रे सस्मितः सम्पुटाञ्जलिः । प्रणनाम नृपस्तञ्च नोत्तसौ किञ्चिदेव हि
 समासदश्च नोत्तस्युर्जहमुः स्वल्पमेवव । मुनिभ्योऽपि च देवेभ्यो नमस्कृत्यद्विजोत्तमः
 शशाप नृपतिं क्रोधात् तत्रातिप्रन्निरङ्कुशः । गच्छ दूरमतो राज्याद्भ्रष्टश्रीर्भव पामर ॥
 भवाचिरंगलत्कुष्ठीनुद्धिहीनोऽप्युपद्रुतः । इत्युक्त्वा कम्पितःक्रोधात्सभास्यानशसुमुद्यतः
 ये तत्र जहसुः सर्वे समुत्तस्युः समासदः । सर्वे चक्रुः परीहारं क्रोधं तत्याज ब्राह्मणः
 राजागत्य तं प्रणम्य रुरीद् भयकातरः । नि ससार समामध्यात् हृदयेन विदूयता ॥३१
 ब्राह्मणो गूढरूपी च प्रज्वलन् ब्रह्मनेत्रसा । तन्पश्चान्मुनयः सर्वे प्रययुर्मयकातराः ॥३२
 हे विप्र तिप्र तिष्ठेति समुच्चार्य पुनः पुनः । पुलहश्च पुलस्त्यश्च प्रचेता भृगुरङ्गिराः ॥

मरीचि' करप्रखर्वे वशिष्ठ क्रतुरेव च । शुको बृहस्पतिर्यैव दुर्वासा लोमशस्तथा ॥
 मोतमक्षकृपाश्चरुष्य कान्यायन कउ । पाणिनिर्जाजलिस्त्वैवऋष्यशृङ्गोविमाण्डकः
 मापिशलिस्तैत्तिलिश्च मार्कण्डेयो महातपाः । सनकश्च सनन्दश्च षोडुपैलः सनातनः ॥
 सनन्दुमारो भगवान् नरनारायणानृषी । पराशरो जरत्कारुः संवर्तः कश्यपस्तथा । २७।
 धौवश्च्यवनश्चैवभरुहाजश्चवाल्मीकिः । अगस्त्योऽतिहृत्तप्यश्चसङ्कृतौऽस्तीकआसुरिः
 शिलालिर्लाङ्गलिश्चैव शालक्य शाकटायनः । गगौ घत्स पञ्चशिखो जमदग्निश्चदेवलः
 जैर्गायत्रो घामदेवो बालखिलशादयस्तथा । शक्तिर्दक्ष कर्दमश्च प्रस्कन्नः कपिलस्तथा
 विरवामिन्त्रश्चकौत्सश्च ऋषीकोऽप्यधर्मणः । पतेवान्देवमुनयः पितरोऽग्निर्हृदिप्रिया
 दिक्पाला देवता सर्वेविप्रश्चान् सभाययुः । ब्राह्मणं बोधयामासुर्वासयामासुरीश्वरि
 समूचुस्तं क्रमेणैव नीति नीतिविशारदाः ॥ ४३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे ह्यगौरीसंवादे
 राधोपाख्याने सुयज्ञोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नृपमुनिमंशदः ।

श्रीपावंत्युवाच ।

किमुचुर्ब्राह्मणं ब्रह्मन् ब्राह्मणप्रह्वज मुनाः । नीतिज्ञा नीतिपवनंतग्मां व्याख्यातुमर्हसि ।

श्रीमहादेव उवाच ।

तुष्टं रुन्वा ब्राह्मणश्च स्तरेन विनयेन च । क्रमेण पञ्चमारंभे मुनिसङ्घो धरानने ॥ २ ॥

सनन्नुमार उवाच ।

एवंपश्चादागता लक्ष्मीः कीर्त्ति सन्वं यशस्तथा ।

सुशीलश्च महेश्वर्यं पितरोऽग्निः सुरास्तथा ॥ ३ ॥

आगता नृपनेहेभ्यः कृत्वा म्रष्टश्रियं नृपम् । भव तुष्टो द्विजश्रेष्ठ आशुतोपश्च ब्राह्मणः ॥
ब्राह्मणानान्तु हृदयं कोमलं नवनीतवत् । शुद्धं सुनिर्मलञ्चैव मार्जितं तपसा मुने ॥५॥

क्षमस्वागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥ ६ ॥

अतिथिर्यस्य मग्नाशो गृहान् प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य देवाश्च वह्निश्चैव तथैव च ॥७॥
निराशा प्रतिगच्छन्ति चातिथेरप्रतिग्रहान् । क्षमस्वागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरुनृपालयम् ॥
खीर्णैर्गौर्णैः कृतप्रैश्च द्रह्मन्नेर्गुस्तल्पगैः । तुल्यदोषो भवत्येतैर्यस्यातिथिरर्चितः ॥८॥

पुलस्त्य उवाच ।

ये पश्यन्तिवक्रदृष्ट्या चातिथिगृहमागतम् । दन्वास्वपापंतस्मैतन् पुण्यमादायगच्छति ।
क्षमस्य नृपदोषञ्च गच्छवत्स यथासुखम् । राजा स्वकर्मदोषेणनोत्तस्थौतन्क्षमांकुरु ॥

पुलह उवाच ।

राजश्रियाविद्ययावा ब्राह्मणं योऽवमन्यते । त्रिसन्ध्याहीनो विप्रश्च श्रीहीन क्षत्रियो भवेत् ।
एकादशाविहीनश्च विष्णुनैवेद्यवञ्चितः । क्षमस्वागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥

ऋतुरवाच ।

ब्राह्मणक्षत्रियो घापिवैश्यो वा शूद्र एव च । दीक्षाहीनो भवेत् सोऽपि ब्राह्मणं योऽवमन्यते
धनहीन पुत्रहीनो भार्य्याहीनो भवेत् ध्रुवम् । क्षमस्वागच्छ भगवन् शुद्धं कुरु नृपालयम् ।

अङ्गिरा उवाच ।

ज्ञानवान् ब्राह्मणो भूत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते । वृषावाहो भवेत् सोऽपि भारते सप्तजन्मसु
मरीचिरवाच ।

पुण्यक्षेत्रे भारते च देवञ्च ब्राह्मणं गुरुम् । विष्णुभक्तिविहीनश्च स भवेत् योऽवमन्यते ॥
कश्यप उवाच ।

वैष्णवं ब्राह्मणं दृष्ट्वा योऽसत्यमवमन्यते । विष्णुमन्त्रविहीनश्च तन् पूजाविरतो भवेत् ।
प्रचेता उवाच ।

अतिथिं ब्राह्मणं दृष्ट्वा नाभ्युत्थानं करोति यः । पितृमानृभक्तिहीनः स भवेद्भारते भुवि ॥
प्राप्नोति कौञ्जरो योर्निस मूढः सप्तजन्मसु । शीघ्रं गच्छ द्विजश्रेष्ठ राजानमाशिरं कुरु ॥

दुर्वासा उवाच ।

गुरवा ब्राह्मण वाणि देवताप्रतिमामपि । दृष्ट्वा शीघ्रन नमेदुयोस भवेच्छूकरो भुवि ॥२१॥
मिथ्यासाक्षात्भवति तथाविश्वासघातक । क्षमस्वसर्वमस्माकमातिथ्यग्रहणं कुरु ॥

राज्ञोवाच ।

उत्तेन कथितो धमा युष्मानिमुनिपुङ्गवै । सर्वं हृत्वाच विस्पष्ट माञ्चमूढ प्रबोधय ॥
स्त्राघ्नगोघ्नस्तप्राना गुरस्त्रीगामिनान्तथा । ब्रह्मघ्नानाञ्चकोदोपो मा घूतकोविदावरा ।

वशिष्ठ उवाच ।

कामतोऽगोधये राजन् वर्षतीर्थं भ्रमेऽर । यवयावकभोजीच करेणच जल पिबेत् ॥२५॥
तदाधेनुशतदिग्ब्राह्मणेभ्य सदक्षिणम् । दत्त्वामुञ्चतिपापाच्चभोजयित्वा द्विज शतम् ॥
प्रायश्चित्ते च क्षीणे च सर्वपापाञ्च मुञ्चति । पापाघशोपाद्भवति दुःखी चाण्डाल एवच
आतिदेशिकहत्याया तद्द्रुं फलमश्नुते । प्रायश्चित्तानुकम्पेन सर्वपापाञ्च मुञ्चति ॥२८॥

शुक उवाच ।

गोहत्याद्विगुण पाप स्त्रीहत्याया भवेद्बुधुवम् । पट्टिबर्षसहस्राणिकालसूत्रेवसेद्बुधुवम् ।
ततो भवेन्महापापी शूकर सतजन्मसु । ततो भवति सर्वश्च जन्मसत तत शुचि ॥३०॥

बृहस्पतिरुवाच ।

स्त्रीहत्याद्विगुण पापो ब्रह्महत्याचतुर्गुण । लक्षवर्षमहाघोरे कुम्भीपाकेवसेद्बुधुवम् ॥
ततो भवेन्महापापी चिष्टाकीट शता दकम् । ततो भवति सर्वश्च समजन्म तत शुचि ॥

गौतम उवाच ।

दोषं हृतघ्नं राजेन्द्र ब्रह्महत्याचतुर्गुण । निष्कृतिर्नास्ति वेदे च हृतघ्नानाञ्च निश्चितम्
राज्ञोवाच ।

लक्षणञ्च हृतघ्नाना यद् वेदविदावर । हृतघ्नं कतिविधं प्रोक्तं केपु को क्षीयन् च ॥३४॥
ऋष्यशृङ्ग उवाच ।

हृतघ्ना षोडशविधा सामदेदे निरूपिता । सर्वं प्रत्येकदोषेण प्रत्येकं फलमश्नुते ३५॥
ग्ने सव्ये च पुण्ये च स्वधर्मे तपसि स्थिते । प्रतिज्ञायाञ्च दाने च स्वगोष्ठीपरिपालने ॥

गुरुकृत्ये देवकृत्ये कामकृत्ये द्विजार्चने । नित्यकृत्ये च विश्वासे परधर्मप्रदानयोः ॥३७॥
एतान् यो हन्तिपापिष्टं सकृतप्रदति स्मृतः । एतेषां सन्ति लोकाश्च तज्जन्मभिन्नयोनिषु
यान्यांश्चनरकां स्नेचयान्ति राजेन्द्रपापिन । तेतेचनरकाः सन्तियमलोकेचनिश्चितम् ॥

सुयज्ञ उवाच ।

केकिंकृत्याकृतप्राश्चकान्कान्गच्छन्तिरौरवान् । प्रन्येकंश्रोतुमिच्छामिवक्तुमर्हसिमेप्रभो
कान्पायन उवाच ।

कृत्वा शपथरूपञ्च सत्यं हन्ति न पालयेत् । सकृतप्रःकालसूत्रे घसेदेव चतुर्युगम् ४१॥
सप्तजन्मसु कारुश्च सप्तजन्मसु पेचकः । ततः शूद्रोमहाव्याधिः सप्तजन्म ततः शुचिः ॥
श्रीसतन्द्र उवाच ।

पुण्यं कृत्वा वदत्येव कीर्तिवर्द्धनहेतुना । सकृतप्रस्तप्तसर्ग्यां घसत्येव युगत्रयम् ॥४३॥
पञ्चजन्मसु मण्डकस्त्रिषु जन्मसु कर्कटः । तदा म्रको महाव्यार्थाद्विद्विश्च ततः शुचिः ॥
सनातन उवाच ।

स्वधर्मं हन्ति यो विप्रः सन्ध्यात्रयविवर्जितः । अतर्पणञ्चयत्स्नानं विष्णुनैवेद्यवञ्चितः ॥
विष्णुपूजा विहीनश्च विष्णुमन्त्र विहीनकः । एकादशीविहीनश्चरुष्णस्यजन्मवासरे ॥
शिवरात्रौ चःयो भुङ्क्ते श्रीरामनवमीदिने । पितृकृत्यादिहीनो यः सकृतप्रदति स्मृतः ॥
कुम्भीपाके घसत्येवं यावद्विन्द्राश्चतुर्दशः । ततश्चाण्डालतां याति सप्तजन्मसु निश्चितम्
शतजन्मनि गृध्रश्च शतजन्मनि शूकरः । ततो भवेद्ब्राह्मणश्च शूद्राणां सपकारकः ॥
ततो भवेज्जन्मसप्त ब्राह्मणो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च भवेत् सप्तसु जन्मसु ॥
द्विजो भूत्वा जन्मसप्त भारते वृषलीपतिः । भुञ्ज्या स्वभोगलेशश्च भ्रमित्यायातिरौरवम्
पुनः पुनः पापयोनिं नरकञ्च पुनः पुनः । ततो भवेद्ब्रह्मभक्ष मार्जारः पञ्चजन्मसु ॥५२॥

पञ्चजन्मसु मण्डको भवेच्छुद्धस्तनः क्रमान् ॥५३॥

सुयज्ञ उवाच ।

शूद्राणां पाककरणे शूद्राणां शवदाहने । शूद्रान्नभोजने चापि शूद्रस्त्रीगमनेऽपि च ॥५४॥
ब्राह्मणानाञ्च को दोषोवृषाणांवाहनेतथा । एतान्सर्वान्समालोच्यग्रूहि मां निश्चयं मुने

पराशर उवाच ।

शूद्राणां सूपकारश्च यो विप्रो हानदुर्बलः ।

असीपत्रे वसत्येव युगानामेकसप्ततिः ॥५६॥

ततो भवेद्गर्भश्च मृषिकः सप्तजन्मसु । तैलकीटो जन्म सप्त ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥५७

जरत्काररवाच ।

भृत्य द्वारा स्वयं वापि यो विप्रो वृषवाहकः ।

सप्ततप्त इति ख्यातः प्रसिद्धो भारते नृप ॥५८॥

ब्रह्महत्यासम पापं तन्नित्यं वृषताडने । वृषपृष्ठे भारदानात्पापं तद्दुष्टिगुणं भवेत् ॥५९॥

सूर्यातपे वाहयेद् य क्षमिन् तृपितं वृषम् । ब्रह्महत्याशतं पापं लभतेऽनात्र संशयः ॥

अन्नं विष्टा जलं मूत्रं विप्राणां वृषवाहिनाम् । नाधिकारोऽभवेत्तेषां पितृदेवार्चने नृप ॥

लालाकुण्डे वसत्येव यावन्नन्द्रिधावरो । विष्टाभक्ष्यं मूत्रजलं तत्र तस्यभवेद् ध्रुवम् ॥

त्रिसन्ध्यां ताडयेत्तञ्च शूलैर्न यमकिङ्करः । ऊढका ददाति सुखतः सूच्यावृन्तन्ति सन्ततम्

पष्टि वर्षसहस्राणि विष्टायाञ्च वृषिस्ततः । ततः काको जन्मपञ्चजन्मपञ्च वकस्तथा ॥

जन्म पञ्च गृध्रकश्च गृगालः सप्तजन्मसु । ततो दरिद्रः शूद्रश्च महाध्यायिस्ततः शुचिः ॥

भरद्वाज उवाच ।

शूद्राणां शवदाही यः सः कृतघ्न इति स्मृतः । शवप्रमाणांराजेन्द्रब्रह्महरयांलभेदुध्वम् ॥

तत्तुल्यं योनिप्रमणात् तत्तुल्यनरकाच्च्युचिः । योदौषोब्राह्मणानाञ्चशूद्राणां शवदाहने ॥

तापदेव भवेद्दोषः शूद्रभ्रातृभोजने ॥६०॥

विमाण्डक उवाच ।

पितृश्राद्धे च शूद्राणां भुङ्क्ते यो ब्राह्मणोऽधमः ।

सुरापीति ब्रह्मघातो पितृदेवार्चनादुवहिः ॥६१॥

मार्कण्डेय उवाच ।

यो दोषो ब्राह्मणानाञ्च शूद्रस्त्रीगमने नृप । तद्वश्यमि वेदोक्तं सावधानं निशामय ॥

कृतघ्नाणां प्रधानश्च यो विप्रोवृषलीपतिः । वृमिदंष्ट्रे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दशः ॥

कृमिमश्यो भवेद्विप्रो विह्वलो यमकिङ्करीः । प्रतिमायां तनर्लाह्यामाश्लेषयति नित्यशः
ततश्च पुंश्चर्लायोर्ना कृमिर्भवति निश्चितम् । एव वर्षसहस्रञ्च ततः शूद्रस्तनः शुचिः ॥

सुयज्ञ उवाच ।

अन्येषाञ्च कृतघ्नातां वद कर्मफलं मुने । श्लाघ्यो मे ब्रह्मरापश्चकस्यसम्पद्विपद्विना ॥
घन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । आगतास्तु यतो मुक्तामद्वेहेमुनयःसुराः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे नृपमुनिसंवादे

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरगौरीसंवादे कर्मविपाकवर्णनम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

अन्येषाञ्च कृतघ्नातां यदुयन् कर्मफलं प्रभो । तेषां किमृचुर्मुनयो वेदवेदाङ्गपारणाः ॥१॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

प्रश्नं कुर्वन्ति राजेन्द्रे सर्वेषु मुनिषु प्रिये । तत्र प्रवक्तुमारमे ऋषिर्नारायणो महान् ॥२॥

नारायण उवाच ।

स्वदत्तां परदत्तांवा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः । स कृतघ्न इति ज्ञेयः फलञ्च शृणु भूमिप ॥३॥

यावन्तो रेषवः सिका विप्राणां नेत्रविन्दुभिः । तावद्वर्षसहस्रञ्च शूलप्रोते स तिष्ठति ॥

तत्राद्गाश्च तद्गर्ह्यं पानञ्च तनमूत्रकम् । ततद्गारे च शयनं ताडितो यमकिङ्करीः ॥५॥

तदन्ते च महापापी विष्टायां जायते कृमिः । पष्टि वर्षसहस्राणि देवमानेन भारते ॥६॥

ततो भवेद्भूमिहीनः प्रजार्हीनश्च मानवः । दग्धिः कृपणो रोगी शूद्रोनिन्द्यस्तनःशुचिः ।

नारद उवाच ।

हन्ति यः परकीर्त्तिञ्च स्वकीर्त्तिं चानराधमः । स कृतघ्न इति ख्यातस्तत्कनञ्च निशामय

अन्धकूपे वसेत् सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । कीटैश्चकुलमानैश्च भक्षित सन्तत नृप ॥
ततक्षारोदक पापी नित्य पिबति खादति । तत सर्पैर्जन्मसप्त काक पञ्च तत शुचि ॥
देवल उवाच ।

ब्रह्मन्व प्रा गुरस्व वा देवस्व धारिषि यो हरेत् । स वृत्तप्र इति ज्ञेयो महापापी च भारते
अवटोद्दे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततो भवेत्सुरगपीति तत शूद्रस्तत शुचि
जैगीपन्थ उवाच ।

पितृमातृगुरु ध्यापि भक्तिहीनो न पालयेत् । वाचा च ताडयेत् ताश्च सवृत्तप्र इति स्मृत
वाचा च ताडयेन्नित्य स्वामिन कुलटा च या ॥ १३ ॥

सा वृत्तर्षाति विख्याता भारते पापिनी वग । बह्लिकुण्ड महाघोर सच साच प्रयातिच
तत्र वह्नी वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततो भवेज्जलीकाश्च जन्मसप्त तत शुचि ॥१५॥
वाल्मीकिरवाच ।

यथा नरपु वृक्षत्व सर्वत्र नजहाति च । तथा वृत्तप्रता राजन् सर्वपापेषु घत्तते ॥१६॥
मिथ्यासाध्य यो ददाति कामान् क्रोधात्तथा भयात् ।

सभाया पाक्षिन् घकि स वृत्तप्र इति स्मृत ॥१७॥

पुण्यमात्र चापि राजन् यो हन्ति सवृत्तप्रक । सर्वत्रापिच सर्वेषा पुण्यहानी वृत्तप्रता
मिथ्यासाध्य पाक्षिक वाभारते घकियो नृप । यावदिन्द्रसहस्रञ्च सर्पकुण्डेषुसेदुघ्रुधम्
सन्तत वेष्टित सर्पैर्भीतश्च भक्षितस्तथा । भुङ्क्तेच सर्पकिपूत्र यमदूतेन ताडित ॥२०
वृचलासो भवेत्तत्र भारते सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु मण्डक पितृभि समभि सह ॥
ततो भवेच्च वृक्षश्च महारण्ये च शाऽमलि । ततो भवेन्नरो मूकस्तत शूद्रस्तत शुचि ॥
आस्तीक उवाच ।

शुर्वङ्गानां गमने मातृगामी भवेश्वर । नराणा मातृगमने प्रायश्चित्त न विद्यते ॥२३॥
भारते च नृपश्चेष्ट यो दोषो मातृगामिनाम् । ब्राह्मणीगमनेष्वेव शूद्राणा तावदेव हि ॥२४
तावदेव हि ब्राह्मण्या दोष शूद्रस्य मैथुने । वन्याना पुत्रपत्नीना श्वधूणा गमने तथा ॥
सगमं मातृपत्नीना भगिनीना तथैवच । दोष पश्यामि राजेन्द्र यदाह कमलोद्भव २६॥

य करोति महापापी एताभि सह मैथुनम् ।

जीवन्मृतोभवेत् सोऽपि चाण्डालोऽस्पृश्य एव च ॥ २७ ॥

नाधिकारो भवेत्तस्य सूर्यमण्डलदर्शने । शालग्राम तज्जलञ्च तुलस्याश्च दल जलम् ॥

सर्वतीर्थजलञ्चैव विप्रपादोदक तथा । स्पृष्टञ्च नैव शक्नोति विस्तृत्य पातकी नर ॥२६॥

देवगुरु ब्राह्मणञ्च नमस्कर्तुं न चाहति । विष्ठाधिक तदनञ्च जल मूत्राधिकन्तथा ॥

देवता पितरो विप्रा नैव गृह्णन्ति भारते । भवेत्तद्गृहातेन तीर्थमङ्गारवाहनम् ॥३१॥

सप्तरात्रमुपवसेद्देवस्पर्शात् तथा द्विज । भाराक्रान्ता च पृथिवी तद्भार बोधुमक्षमा

तन्पापात् पतितो देश कन्याविक्रयिणो यथा ।

तन्स्पर्शाच्च तदालापात् शयनाश्रयभोजनात् ॥ ३३ ॥

नृणाञ्चतस्रसो पापो भवत्येव न सशय । कुम्भीपाके वसेत्सोऽपि यावद्ब्रह्मणशतम्

दिवानिश भ्रमेत्तत्र चक्रावत्तं निरन्तरम् । दग्धोवाग्निशिखाभिश्च यमदूतैश्च ताडित ॥

एव नित्य महापापी भुङ्क्ते निरययातनाम् । आहारश्चापि सर्वत्रकुम्भीपाके विवर्जित ।

गते प्राङ्गतिके घोरे महति प्रलये तथा । पुन सुप्ते समारम्भे तद् विधो वा भवेत् पुन

पण्डिर्षसहस्राणि विष्ठायाञ्च कृमिर्भवेत् । ततो भवति चाण्डालो भार्याहीनो नपुंसक ।

सप्तजन्मसु शूद्रश्च गल्तकुष्ठो नपुंसक । ततो भवेद्ब्रह्मणश्चाप्यन्ध कुष्ठा नपुंसक ॥

एव लब्ध्वा जन्म सप्त महापापी भरेच्छुचि ॥ ४० ॥

मुनय ऊचु ।

इत्येव कथितसर्वं मस्माभिर्वा यथागमम् । एभिस्तुल्यो भवेद्दोषोऽप्यतिर्याना पराभवे

प्रणाम कुरु विप्रेन्द्रगृहप्राप्य निश्चितम् । सपूज्यब्राह्मण यत्नात् गृहीत्वाब्राह्मणाशिषम् ।

घन गच्छ महाराज तपस्या कुरु सत्वरम् । ब्रह्मशापैर्विनिमुक्त पुनरेवागमिष्यसि ॥४३॥

इत्युक्त्वा मुनय सर्वेयगुस्तूर्णं स्वमन्दिरम् । सुराश्चापि च राजानो यन्धुवर्गाश्चपार्थति ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे हरगौरीसंवादे

कर्मविपाको नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ।

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुतपःसुयज्ञसनादवर्णनम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

गतेषु मुनिसद्येषु श्रुत्वा कमफल नृणाम् । किञ्चकार नृपश्रेष्ठो ब्रह्मशापेन विह्वल ॥१॥
अतिथिर्ब्राह्मणोवापि किञ्चकार तदा प्रभो । जगाम नृपगेहं वा न वा तद्वक्तुमर्हसि ॥२॥

महेश्वर उवाच ।

गतेषु मुनिसद्येषु निन्दाग्रस्तो नराधिप । प्रेरितश्च वशिष्टेन धर्मिष्ठेन पुरोधसा ॥ ३ ॥
पपात दण्डवद्भूमौ पादयोर्ब्राह्मणस्यच । त्यक्त्वा मन्यु द्विजश्रेष्ठो ददौ तस्मैशुभाशिपम्
सस्मित ब्राह्मणं दृष्ट्वा त्यक्तमन्यु वृषामयम् । उवाच नृपतिश्रेष्ठ साश्रुनेत्र पुनायलि ॥

राजोवाच ।

कुत्र वशे भवान् जात किं नाम भवत प्रभो । किं नामवापि तद्ब्रूहि क वास कथमागत
विप्ररूपीस्त्वय विष्णुगूढ कपट मानुष । साक्षात् समूर्त्तिमानग्नि-प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ।
कोवा गुरुस्ते भगवन्तिष्टदेवश्च भारते । तव वेश कथमयं क्षान्तिपूर्णस्य साम्प्रतम् ॥८॥
गृहाण राज्यं निघिलमैश्वर्यं कोपमेवच । स्वभृत्य कुस्ये पुत्र माञ्च दासी स्त्रिय मुने
सप्तसागरस्युक्ता सप्तद्वीपा धसुन्धराम् । नवद्वयोपद्वीपाक्तं सशैलवनशोभिताम् ॥९॥
मया भृत्येन त्वं शाधि राणेन्द्रो भवभारते । रत्नेन्द्रसारनिर्माणे तिष्ठ सिंहासने वरु
नृपस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गव । उवाच परम तत्त्व महत् सर्वदुर्लभम् ॥ १२ ॥

अतिथिरवाच ।

मरीचिर्ब्राह्मण पुत्रस्तत्पुत्र कश्यप स्वयम् । कश्यपस्यसुता सर्वेप्राप्तादेवत्वमीप्सिता ॥
तेषु त्वष्टा महाज्ञानी चकार परमतप । दिव्य धर्मसहस्रञ्च पुष्करं दुष्कर तप ॥१५॥
सिपिवि ब्राह्मणार्थञ्च देवदेव हरिं परम् । नारायणाद्वरं प्राप विप्र तेजस्विन सुतम् ॥
ततो बभूव तेजस्वी विश्वरूपस्तपोधन । पुरोधस चकारेन्द्रो वाकपती तं ब्रुवा गतो

मातामहेभ्यो दैत्येभ्यो दत्तवन्तं घृताहुतिम् । चिच्छेद् तं सुनाशीरो ब्राह्मणं मातुराज्ञया
विश्वरूपस्य तनयो विरूपो मत्पिता नृप ।

अहञ्च सुतपा नाम वैरागी काश्यपो द्विजः ॥ १८ ॥

महादेवो मम गुरुर्विद्याज्ञानमनुप्रदः । अभीष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥१६॥
चिन्तयामितत्पदाञ्जनमेयाञ्छास्ति सम्पदि । सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यंगधिकापतेः
तेन दत्तं न गृह्णामि चिना तन्सैवनं शुभम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा मन्येऽहं जलविम्बवत् ॥
भक्तिव्यवहितं मिथ्याभ्रममेव तु नश्यम् । इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सौरत्वं वा नराधिप
न मन्ये जलरंखेति नृपत्वं केन गण्यते । श्रुत्वा सुयज्ञ यज्ञे तु मुनीनां गमनं नृप ॥२३॥
लालसा विष्णुभक्तिर्मे प्राप्तिहेतुमिहागतः । केवलानुगृह्णातन्त्य न हि शक्नो मयाधुना
समुद्भूतश्च पतितो घोरे निम्ने भवार्णवे । नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः
ते पुनन्त्युत्कालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात् । राजन्निर्गम्यतां गेहाद्देहि राज्यं मुताय च ।
पुत्रे न्यस्य प्रियां साध्वीं गच्छ वत्स वनंत्तरा । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वमिथ्यैवभूमिप
श्रीकृष्णं भजराधेशं परमात्मानमीश्वरम् । ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः
आधिभूतैस्तिरोभूतैः प्राकृतैः प्रकृते परम् । ब्रह्मा स्रष्टा हरिः पाता हरः संहारकारकः
दिवपालाश्च दिगीशाश्च भ्रमन्ति यस्यमायया । यदाज्ञयावाति वायु सुख्यो दिनपतिः सदा
निशापतिः शशी शश्वच्छस्यसुक्लिग्धकारकः । कालेन मृत्युः सर्वेषां सर्वविश्वेषुभीतवत्
काले वर्षति शक्रश्च दहत्यग्निश्च कालतः । भीतवत् विश्वशास्ता च प्रजासंयमनो यमः
कालः संहरते काले काले सृजति पाति च । स्वदेशे च समुद्रश्च स्वदेशे च वसुन्धरा
स्वदेशे पर्वताश्चैव स्यपातालाः स्वदेशतः । स्वर्लोकः सप्तराजेन्द्र सप्तद्वीपा वसुन्धरा
शैलसागरसंयुक्ताः पातालाः सप्त एव च । एभिर्लोकैश्च ब्रह्माण्डं डिम्बकारं जलप्लुतम्
सन्त्येव प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णु शिवादयः । सुरा नराश्च नागाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः
आपातालाद्ब्रह्मलोक पर्यन्तं डिम्बरूपकम् । इदमेव तु ब्रह्माण्डं ब्रह्मणः कृत्रिमं नृप ॥
नाभिपद्मे विराड्विष्णोः क्षुद्रस्य जलशायिनः । स्थितं यथापञ्चवीजं कर्पिकारञ्च पङ्कजे
एवं सोऽपि शयानश्च जलतल्पे सुविस्वते । ध्यायते स महायोगी प्राकृतः प्रकृतेः परम्

कालभीतश्च कालेश कृष्णमात्मानमीश्वरम् ।
 महाविष्णोर्लोमकूपे साधार सोऽस्ति विस्तृते ।
 लोम्ना कूपेषु प्रत्येकमेव विश्वानि सन्ति वै ॥ ४० ॥
 महाविष्णोर्गात्रलोम्ना ब्रह्माण्डानाञ्च भूमिप ।
 सख्या कर्तु न शक्नोति कृष्णोऽप्यन्यस्य का कथा ॥ ४१ ॥

महाविष्णु प्राकृतिक सोऽपि डिम्बोद्भव सदा । भजेत्कृष्णेच्छया डिम्ब प्रकृतेर्गर्भसम्भव
 सवाधारो महान् विष्णु कालभात सशङ्कित । कालेश-यायतेशश्चत्कृष्णमात्मानमीश्वरम्
 एवञ्च सर्वविश्वस्था ब्रह्मविष्णुशिवाद्य । महान् विराट्शुद्धविराट्सर्वे प्राकृतिका सदा
 सा सर्वर्षीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । काले लीना च कालेशे कृष्णे त ध्यायते सदा
 एव सर्वे कालभीता प्रकृति प्राकृतास्तथा । श्राविभूतास्तिरोभूता कालेन परमात्मनि
 इत्येव कथित सर्वे महात्रान सुदुर्लभम् । शिषेन गुरुणा दत्त किं भूय श्रोतुमिच्छसि
 इति श्राब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिस्रष्टे नारायणनारद सवादे हरगौरीसवादे
 त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्याय ।

चतु पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुतपसुयज्ञसवादर्णनम् ।

राज्ञोवाच

कुनाधारो महाविष्णो सर्वाधारस्य तस्य च । कालभातस्य कतिच फालमाया मुनीश्वर
 क्षुद्रस्य कतिचित्काल ब्रह्मण प्रकृतेस्तथा । मनोरिन्द्रस्य चन्द्रस्य सूर्यस्यायुस्तथैव च
 अन्येषाञ्च जनानाञ्च प्राकृतानां पर वय । वेदोक्त सुविचार्यञ्च घद वेदचिदा घर ॥३॥
 विश्वानामुद्गर्भभागे च ब्रह्म वा लोकएव स । कथयस्व महाभाग सन्देहच्छेदन कुरु

मुनिस्त्वाच ।

विश्वाना गोलोक राजन् विस्तृतञ्च नभसमम् ।

शश्वन्नित्य डिम्बरुप श्रीऋण्णच्छासमुद्भवम् ॥ ७ ॥

जलेन परिपूर्णञ्च ऋणस्य मुखविन्दुना । सृष्ट्युन्मुखस्यादिसर्गे परिश्रान्तस्य क्रीडत
प्रकृत्या सह युक्तस्य कल्या नितया नृप । तत्राधारो महाविष्णुर्विश्वाधारस्यविस्तृत
प्रकृतेर्गर्भसयुक्तडिम्बोद्भूतस्य भूमिप । सुविस्तृते जलाधारे शयानश्च महाविराट् ॥
राधेश्वरस्य ऋणस्य षोडशाद्य प्रकाशित । दूर्धादलश्यामरूप सस्मितश्च चतुर्भुज
घनमालाधर श्रीमानशोभित पीतवाससा । ऊर्ध्वं नभसि सद्दिष्णोर्नित्यवैकुण्ठमेवच
आत्माकाशसमनित्यविस्तृत चन्द्रविम्बवन् । ईश्वरच्छासमुद्भूत निर्लक्षञ्च निराश्रयम्
आकाशयन्सुविस्तारञ्चामृल्यरत्ननिर्मितम् । तत्र नारायण श्रीमान् घनमाली चतुर्भुज
लक्ष्मीसखस्वर्गाङ्गातुलसीपतिरीश्वर ।

सुनन्दनन्दकुमुदपार्यदादिमिरावृत ॥ ८ ॥

सर्वेश सर्वसिद्धेशो भक्तानुग्रहधिप्रह । श्रीऋणश्च द्विधामूतो द्विभुजश्च चतुर्भुज ॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुज स्वयम् । ऊर्ध्वं वैकुण्ठदेशाद्यपञ्चाशत्कोटियोजनात्
गोलोके घर्तुलाकार वरिष्ठे सर्वलोकत्र अमृल्यरत्ननिर्माणैर्मन्दिरैश्च विभूषितम् ॥ १६ ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणै स्तम्भसोपानवित्रकै । मर्णान्द्रर्पणासक्तै क्वाटकलसोज्ज्वलै ।
नानानित्रविचित्रैश्च शिविरैश्च विराजितम् । कोटियोजनविस्तीर्णैर्दैर्घ्यै रतगुण तथा ।

विरजासरिदाकार्णशतगुणेन वेष्टितम् ॥ १८ ॥

सरिदर्द्रप्रमाणेन दैर्घ्येन विस्तृतेन च । शैलार्द्धपरिमाणेन युक्त वृन्दावनेन च ॥ १६ ॥
तत्रर्द्रमाननिर्माणरासमण्डलमण्डितम् सरिच्छैलवनार्द्राना मध्ये गोलोकमेव च ॥ २० ॥
यथा पङ्कजमध्ये च कर्णिकारो मनोहर । तत्र गोगोपगोपीभिर्गोपीशो रासमण्डले ॥
रासेभ्यर्ष्या राधिक्या सयुक्त सन्तन नृप । द्विभुजो मुरलीहस्त शिशुगोपालम्पधृक् ।
वद्विशुद्धाशुकाधानो रत्नभूषणपित । चन्द्रनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नमालाविराजित ॥ २३ ॥
रत्नसिंहासनस्यश्च रत्नच्छत्रेण छात्रिन । शश्वत् स प्रियगोपालै सेवित श्वेतवामरै ॥

गोपीमि सेविताभिश्चमालाचन्दनचर्चितम् । सस्मिन् सकटाक्षामि सुवेशामिश्चवीक्षित-
कथितो लोच निर्माणो यथाशक्ति यथागमम् । यथाश्रुतशम्भुवक्त्रात् कालमानंनिशामय
पान परपलनिर्माणं गर्भार चतुरदृलम् ॥ २७ ॥

सर्णमापै हृत्च्छिद्र दण्डैश्च चतुरङ्गुलै । यावज्जलप्लुन पारं तत्कालं दण्डमेव च ॥
दण्डद्वय मुहूर्त्तञ्च यामस्तस्य चतुर्गुण । वासरश्चाष्टभिर्यामै पक्ष पञ्चदश स्मृत ॥
मासो षाभ्याञ्च पञ्चाभ्या वर्षाद्वादशमासकै । मासेन च नराणाञ्च पितृणात्तदहर्निशम्
वृष्णपक्षे दिन प्रोक्त शुक्ले रात्रि प्रकीर्त्तिता । चत्सरेण नराणाञ्च देवानाञ्चदिवानिशम्
उत्तरायणे दिन प्रोक्त रात्रिश्च दक्षिणायने । युगकर्मानुरूपञ्च नरादीना वयो नृप ॥३२॥
प्रकृते प्राक्तनानाञ्च प्रह्लादीना निशामय । हृत् त्रेताद्वापरञ्च कल्पिञ्चेतिचतुर्युगम् ॥३३॥
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रै सावधान निशामय । चत्वारि त्रीणि द्वे चैक वृतादिषु यथायुगम्
तेषां च स्यात्सायाशौ द्वे सहस्रेप्रकीर्त्तिने । त्रिचत्वारिंशल्लक्षेण विंशत्सहस्राधिनेनच
चतुर्युग परिमित नरमाणकमेण च । सप्तदशलक्षमितमष्टाविंशत् सहस्रकम् ॥ ३६॥
नृमानेन प्रतयुग मर्यादिवि द्वि प्रकीर्त्तितम् । द्विपञ्चदशपरिमित वृष्णवतिसहस्रकम् ॥
त्रेतायुग परिमित कालविद्वि प्रकीर्त्तितम् । अष्टलक्षपरिमित चतु षष्टिसहस्रकम् ॥३८॥
परिमित द्वापरञ्च प्रोक्त मर्यादविपश्चिता । चतुर्लक्षपरिमित द्वारिंशच्च सहस्रकम् ॥

नमानाद् कल्पियुग विदु कालविपश्चित ॥ ३६ ॥

यथा सप्त च घागश्चतिथय षोडश सृष्टा । दिवागरत्रिंशपक्षौ द्वौ मासोवर्षञ्चनिर्मितम्
यथा भ्रमति सततमेधमेव चतुर्युगम् । यथा युगानि गजेन्द्र तथा मन्वन्तराणि च ॥४१॥
मन्वन्तरन्तु दिव्याना युगानामेकसप्तति । एव क्रमाद् भ्रमन्त्येव भववश्च चतुर्दशा ॥
पृथयधिक पञ्चशत पञ्चविंशत् सहस्रकम् । नरमाणयुगञ्चैव परं मन्वन्तर स्मृतम् ॥४३॥
धारत्यानञ्च मन्वताञ्च धर्मिष्ठानानराधिप । यच्छ्रु नशिववक्त्रेण तत्त्वं मत्तोनिशामय
थाद्यो मनुर्ब्रह्मपुत्र शतरूपा पतिव्रता । धर्मिष्ठाना वरिष्ठश्च गरिष्ठो मनुषु प्रभु ॥ ४५॥
स्वायम्भुव शम्भुशिष्यो विष्णुव्रतपरायण । जीवन्मुक्तो महाजानी भवत प्रपितामहः
राजसूयसहस्रञ्च चकार नर्मदातटे । त्रिलक्षमण्यमेधञ्च त्रिलक्ष नगमेधकम् ॥ ४७ ॥

गोमेधञ्च चतुर्लक्ष विधिवन्महदद्रुतम् । ग्राहणाना त्रिकोटिञ्च भोजयामास नित्यश
पञ्चलक्षगवा मासै सुपर्णैर्घृतसंस्कृतै । चर्व्यचूप्यलेह्यपेयैर्मिष्टद्रव्यै सुदुर्लभै ॥४६॥
अमूल्यरत्नलक्षञ्च दशकोटिसुवर्णकम् । स्वर्णशृङ्गयुत दिव्य गद्या लक्ष सुपूजितम् ॥
वह्निशुद्धञ्च वल्लञ्चमुनीन्द्राणाञ्चलक्षकम् । भूमिञ्च सर्पशय्याढ्यागजेन्द्ररत्नलक्षकम्
त्रिलक्षमाचरत्नञ्च शातकुम्भविनिर्मितम् ॥ ५१ ॥

सहस्र रथरत्नञ्च शिविकालक्षमेव च । त्रिकोटिस्वर्णपात्रञ्च सात सजलर्माप्सितम्
त्रिकोटिस्वर्णपात्रञ्च कपूरादिसुवासितम् ॥ ५२ ॥

तान्मूल सुविचित्रञ्च त्रिकोटिस्वर्णतपकम् । रत्नेन्द्रसाररचित रचित विश्वकर्मणा
वह्निशुद्धाशुभैश्चित्रै रानित मातरजालकै । नित्यदर्शोग्राहणेभ्यो विष्णुप्रीत्याशिवाज्ञया
सप्राप्य शङ्कराजज्ञान वृष्णमन्त्रसुदुर्लभम् । सप्राप्य वृष्णदास्यञ्च गोलोकञ्चजगामस
दृष्ट्वा मुक् स्वपुत्रञ्च प्रहृष्टश्च प्रनापति । तुष्टाव शङ्करं तुष्टं सख्यै मनुमन्यकम् ॥५३॥
स च स्वयम्भुपुत्रश्च स च स्वायम्भुवो मनु ।

स्वारोचिषो मनुश्चैव द्वितायो वह्निन्दन ॥ ५७ ॥

राजा वदान्यो धर्मिष्ठ स्वायम्भुवसमो महान् । प्रियत्रतनुतावर्णो द्वौ मनुर्धर्मिणावरी
तौ तृतीयौ चतुर्थौ च वैष्णवौतापसोत्तमौ । तौ च शङ्करशिष्यौ चवृष्णभक्तिपरायणौ
धर्मिष्ठाना वरिष्ठश्च रैवत पञ्चमो मनु । पृष्ठश्च चानुषा ज्ञेयो विष्णुभक्तिपरायण ॥
श्राद्धदेव सार्यसतो वैष्णव सतमो मनु । सावर्णि सार्यतनयो वैष्णवोमनुरण्म ॥
नवमो दक्षसावर्णिर्विष्णुत्रतपरायण । दशमो ब्रह्मसावर्णिर्ब्रह्मज्ञानविशारद ॥ ६२ ॥
ततश्च धर्मसावर्णिर्मनुरेकादश स्मृत । धर्मिष्ठश्च वरिष्ठश्च वैष्णवाना सदा व्रती ॥६३
ज्ञाना च रद्रसावर्णिमनुश्च द्वादश स्मृत । धर्मात्मा देवसावर्णिर्मनुरेवत्रयोदश ॥६४
चतुर्दशो महाज्ञानी चन्द्रसावर्णरैव च । यावदायुर्मनूनाञ्चैरेन्द्राणा तावदेव हि ॥६५॥
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्न ब्रह्मणो जिनमुच्यते ।

तावती ब्रह्मणो रात्रि सा च ब्राह्मी निशा नृप ॥६६॥

कालरात्रिश्च सा ज्ञेया वेदेषु परिकर्त्तिता । ब्रह्मणोवासरे राजन् भुद्रकल्प प्रकीर्त्तित

एव सप्तकल्पनाद्या मार्कण्डेयो महातपा । ब्रह्मलोकादध सर्वलोकादग्धाश्चतत्रवे ॥६८
 उत्थितेनैव सहसा शङ्कर्पणमुखाग्निना । चन्द्रार्कब्रह्मपुत्राश्च ब्रह्मलोक गता ध्रुवम् ॥६९
 ब्राह्मीरात्रिव्यतिने तु पुनश्च समृजे विधि । तस्या ब्रह्मनिशायाञ्च क्षुद्रप्रलय उच्यते ॥
 देवाश्च मनवश्चैव तत्र दग्धा नरादय । एव त्रिंशद्दिवारात्रैर्ब्रह्मणो मास एव च ॥७१॥
 एव षडशमासैश्च ब्रह्मसम्बन्धि धीव हि । एव पञ्चदशा दे तु गते च ब्रह्मणो नृप ।

दैनदिनन्तु प्रलयो वेदेषु परिकीर्त्तित ॥७२॥

मोहरात्रिश्च सा प्रोक्ता वेदविद्धि पुरातनै ।

तत्र सर्वे प्रणवाश्च चन्द्रार्कादिदिगीश्वरा ॥७३

आदित्या वसवो रद्रा मन्विन्द्रा मानवादय ।

ऋषयो मुनयश्चैव गन्धर्वा राक्षसादय ॥७४॥

मार्कण्डेयो लोमशश्च पैचकश्चिरर्जाविन । इन्द्रद्युम्नश्च नृपनिश्चाकृपारश्चकच्छप ॥७५
 नाडीजङ्घो चकश्चैव सर्वे नष्टाश्च तत्रथै । ब्रह्मलोकादध सर्वे लोका नागालयास्तथा ॥
 ब्रह्मलोक ययु सर्वे ब्रह्मपुत्रादयस्तथा । गते दैवे दिने ब्रह्मा लोकाश्चसमृजे पुन ॥७७
 एव शताब्दपर्यन्त परमायुश्च ब्रह्मण । ब्रह्मणश्च निपातेन महाकल्पो भवेन्नृप ॥७८॥
 प्रकीर्त्तिता महारात्रि सा एव च पुरातनै । ब्रह्मणश्चनिपातेचब्रह्माण्डौघोजलप्लुत ॥
 वेदमाता च सावित्री वेदा धर्मादयस्तथा । सर्वे प्रणवा मृत्युश्चप्रवृत्तिश्चशिशि चिना ॥
 नारायणे प्रलीनाश्च विभवन्त्या वैष्णवास्तथा । कालाग्निरद्र सहर्त्ता सर्वरद्रगणै सह ॥
 मृत्युञ्जये महादेवे प्रलीन स तमोगुण । ब्रह्मणश्च निपातेन निमेष प्रवृत्तेर्भवेत् ॥८२॥
 नारायणश्च शम्भोश्च महद्विष्णोश्च निश्चितम् ।

निमेषान्ते पुन सृष्टिर्भवेत् कृष्णेच्छया नृप ॥८३॥

वृष्णो निमेषरहितो निर्गुण प्रवृत्ते एव । समुजाता निमेषश्च कालसरयावयोमित ॥
 निर्गुणस्य च नित्यस्य चाद्यन्तरहितस्य च । निमेषाणा सहस्रेण प्रवृत्तेर्दण्ड उच्यते ॥

षष्टिदण्डादिमका तस्या घासरश्च प्रकीर्त्तित ।

मासत्रिंशद्दिवारात्रैर्वैषं षडशमासत्रै ॥८६॥

एवं गते शताब्दे च श्रीकृष्णे प्रकृतैर्लये । प्रकृत्याञ्च प्रलीनायां श्रीकृष्णे प्राकृतौलयः ॥

सर्वान् संहृत्य सा चैका महाविष्णोः प्रसूश्च या ।

कृष्णवक्षसि लीना च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥८८॥

सन्तो वदन्ति तां दुर्गा विष्णुमायासनातनाम् । सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च परानारायणीसतीम्
बुद्ध्याधिष्ठानदेवीञ्च कृष्णस्यनिर्गुणान्मिकाम् । यन्नायामोहिताञ्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः
वैष्णवाग्राम्नामहालक्ष्मापरांराजा वदन्ति ते । अर्द्धाङ्गाञ्चमहालक्ष्मीं प्रियानारायणस्य च ॥

प्राणाग्निष्ठान्देवीञ्च प्रेम्णा प्राणाधिका वराम् ।

शश्वन् प्रेममयीं शक्तिं निर्गुणा निर्गुणस्य च ॥८९॥

नारायणश्च शम्भुश्च सहस्रं स्वगणान् वदन् । शुद्धसत्त्वस्वर्पांचकृष्णे लीनश्च निर्गुणे ॥
गोपा गोप्यश्च गापश्च सुगम्यश्च नराग्निः । सर्वे लीनाः प्रकृत्याञ्चप्रकृतिः प्रकृतीश्वरे ॥
महाविष्णोः विलीनाश्च ते सर्वेऽन्नद्विष्णवः । महाविष्णु प्रकृत्याञ्चसाचैत्रपरमात्मनि ॥
प्रकृतियोगनिद्रा च श्रीकृष्णनेत्रपद्मयोः । अग्निष्ठानञ्चकारैवं माययाचेश्वरेच्छया ॥९०॥

प्रकृतेर्वासरो यावन्नितः कालः प्रकीर्तितः ।

तावद्वृन्दाने निद्रा कृष्णस्य परमान्मनः ॥९१॥

अमूल्यरत्नत्वे च बह्विशुद्धाशुकार्चिते । गन्धवन्दनमाल्यानां वायुनाः सुरभीकृते ॥९२॥
पुनः प्रजागरे तस्य सर्वसृष्टिर्भवेत् पुनः । एवं सर्वे प्राकृताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना ॥
तद्वन्दनं तन्स्मरणं तस्य ध्यानं तदचनम् । कीर्तनंतदुगुणानाञ्चमहापातकनाशनम् ॥९३॥
एतत्ते कथितं सर्वैर्यन्मृत्युञ्जयाच्छ्रुतम् । यथागममहाराजकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

सुयज्ञ उवाच ।

कालाग्निच्छ्रो विश्वानांसहर्ताचतमोगुणः । ब्रह्मणोऽन्नेविलीनश्चसत्त्वोमृत्युञ्जयेशिषे ॥

शिषो लीनो निर्गुणेचेत् श्रीकृष्णे प्राकृते लये ।

कथं तत्र गुरोर्नाम मृत्युञ्जय इति श्रुत्वा ॥९४॥

कथं वा मूलप्रकृतिर्महाविष्णोः प्रसूरियम् ।

असंख्यानि च विश्वानि वसन्ति यस्य लोमसु ॥९५॥

सुतपा उवाच ।

ब्रह्मणोऽन्ते मृत्युकन्या प्रणष्टाजलविम्बवत् । संहर्त्रीसर्वलोकानांब्रह्मादीनानराधिप ॥
 कतिधा मृत्युकन्यानां ब्रह्मणां कोटिशो लये । कालेनलीन शम्भुश्चसत्वरूपेच निर्गुणे ॥
 मृत्युकन्या जिताशण्वच्छिवेनगुरणामम । नमृत्युनाजित-शम्भु-कल्पेकल्पेथुतीथृतम् ॥
 शम्भुर्नारायणस्यैव प्रकृतेश्च नराधिप । नित्याना लीनता नित्येतन्मायान तु धारतधी ॥
 स्वय पुमान् निर्गुणश्च कालेनसगुण स्वयम् । स्वयनारायणःशम्भुर्माययाप्रकृति स्वयम् ॥
 तदशन्तस्सम शण्वद् यथावह्ने-स्फुलिङ्गवत् । येयेचब्रह्मणासृष्टास्त्रादित्यादयस्तथा ॥
 कल्पेकल्पेजिनास्त्रैते नश्यरामृत्युकन्यया । नशिषोब्रह्मणासृष्टःसत्योनित्यःसनातनः ॥
 कतिधा ब्रह्मणा पातो यन्निमेयेण भूमिष । अधादिसर्गेश्ठीरुष्णःप्रकृत्याञ्च जगद्गुरुः ॥
 चकारवार्ध्याघानञ्च पुण्ये वृन्दावने वने । तद्वामांशसमुद्भूता रासे रासेश्वरि परा ॥
 गर्भं दधान सा राधा यावद्वै ब्रह्मणो वयः । तत-मुपावसाडिम्यंगोलोके रासमण्डले ॥
 चुकोप डिम्यं सा दृष्ट्वा हृदयेन विदूयता । तडिम्यं प्रेरयामास तदधो विश्वगोलके ॥
 त्यक्तयापत्य महादेवी ररोद च मुहुर्मुहुः । कृष्णस्तांब्रीधयामासमहायोनेनयोगवित् ॥

वभूव तन्माङ्गिवाच्च सर्वाधारं महाविराट् ॥११७॥

सुयज्ञ उवाच ।

अद्य मे सफल जन्म जीवनं सार्थकं मम । शापो मे वररूपश्च वभूव भक्तिकारणम् ॥
 सुदुर्लभा हरिर्भक्तिः सर्वमङ्गलमङ्गला । न तस्याश्च समं विप्र वेदेपुभक्तिपञ्चकम् ॥११८॥
 यथा भक्तिर्मम भवेत् श्रीरुष्णे परमात्मनि । सुदुर्लभा च सर्वेषां ननुकुरुष्वमहामुने ॥
 न ह्यम्मयानि तीर्थानि नदेद्यामृच्छिलामयाः । तेपुनन्त्युरकालेनकृष्णभक्ताश्चदर्शनात् ॥
 सर्वेषामाश्रमाणाश्च द्विजातिर्जातिरुत्तमा । स्वधर्मनिरताश्चैवतेपुश्रेष्ठाश्च भारते ॥१२२॥
 कृष्णमन्त्रोपासकश्च कृष्णभक्तिपरायणः । नित्यंनैवेद्यभांजीचततश्रेष्ठोमहान् शुचिः ॥
 त्वां वीष्णवं द्विजश्रेष्ठं महाज्ञानार्णवं परम् । संश्राप्य शिवशिष्यश्च कं यामि शरणं मुने
 अधुनाहं गलत्कुप्टी तव शापान्महामुने । कथं तपस्यामशुचिर्नाधिकारी करोमि च ॥

सुतपा उवाच ।

हरिभक्तिप्रदात्री सा विष्णुमाया सनातनी । सा च याननुगृह्णाति तेभ्यो भक्तिं ददाति च ॥
याश्च माया मोहयति तेभ्यस्ता न ददाति च । करोति चञ्चना तेषानश्वरेण धनेन च ॥
वृष्णप्रेममयीं शक्तिं प्राणाधिष्ठातृदेवताम् । भन राधानिर्गुणाताप्रदात्री सर्वसम्पदाम् ॥
शीघ्रं यास्यसि गोलोक तदनुग्रहसेवया । सा सेविता श्रीकृष्णेन सर्वाराभ्येन पूजिता ॥

ध्यानासाध्य दुराराभ्य भक्ता ससेव्य निर्गुणम् ।

सुचिरेण च गोलोक प्रयान्ति यद्गुणमत ॥ १३० ॥

कृपामयीञ्च ससेव्यभक्ता यान्त्यचिरेण च । साप्रसन्नमहाविष्णो सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥
विप्रपादोदक भुङ्क्त्व सहस्रवर्षसयुत । कामदेवस्वरूपश्च रोगहीनो भविष्यति ॥ १३२ ॥
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्सिद्धति मेदिनी । तावत्पुष्करपत्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥
पृथिव्यायानि तीर्थानितानि तीर्थानिसागरे । सागरेयानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च
विप्रपादोदकञ्चैव पापव्याधिविनाशनम् । सर्वतीर्थोदकसम भुक्तिमुक्तिप्रद शुभम् ॥
विप्रो मानवरूपी च देवदेवो जनार्दन । विप्रेण दत्त द्रव्यञ्च भुञ्जते सर्वदेवता ॥ १३६ ॥
इत्येवमुक्त्वा विप्रश्चगृहीत्वा तस्य पूजनम् । जगामगृहमित्युक्त्वा चायास्ये वत्सरान्तरे ॥
भक्त्या च युभुजे राजा विप्रपादोदकशिरे । विप्राश्च पूजयामास भोजयामास वत्सरम् ॥
स वत्सरव्यतीते तु निर्मुक्तो व्याधितो नृप । आजगाम मुनिश्रेष्ठ सुतपा कश्यपाग्रणी
राधापूजाविधानञ्च स्तोत्रञ्च कवच मनुम् । ध्यानञ्च सामयेदोक्त ददा तस्मै नृपाय च ॥
राजनिर्गम्यताशीघ्रमित्युक्त्वा तपसे मुनि । जगाम स्वात्थ दुर्गे निर्जगाम त्वरान्वित ॥
रुदुर्यान्धवाः सर्वे त्रिरात्र शोकमूर्च्छिता । भार्याश्च तस्य नु प्राणान् पुत्रो राजा बभूव ह ॥
सुयज्ञ पुष्कर गत्वा चकार दुष्कर तप । दिव्य वर्षं शत राजा जज्ञाप परम भनुम् ॥
तदा ददर्श गगने रथस्या परमेश्वरीम् । स तद्दर्शनमात्रेण निष्पापश्च यभूव ह ॥ १४४ ॥
तत्याज मानुष देह दिव्या मूर्त्तिं दधार ह । सा देवी तेन यानेन रत्नेन्द्रनिर्मितेन च ॥
नृप नीत्याच गोलोक तत्र चैव ययौ तदा । राजा ददर्श गोलोक नद्या विरजयावृतम् ॥
वेष्टित पर्वतेनैव शतशृङ्गेण चारणा । श्रीवृन्दावनसयुक्त रासमण्डलमण्डितम् ॥ १४७ ॥

गोगोपीनोपनिकरं शोभित परिसेचितै । रत्नेन्द्रसारनिर्माणमन्दिरै सुमनोहरै ॥
नाताचित्रविविधै रजित परिशोभितम् । सतत्रिशदुपवनै कल्पवृक्षसमन्वितै ॥
पारिजातद्रुमाकाणै वेष्टिन कामवेनुभि । आकाशवन् सुविस्तीर्णवस्तुलबन्द्वविम्वयत् ॥

अत्युद्वर्धमपि वैकुण्ठात् पञ्चाशत्कोटियोजनम् ।

शून्यस्थित निराधार ध्रुवमैश्वरैच्छया ॥ १५१ ॥

आत्माकाशसमनित्यमस्माकञ्चतुर्दुर्लभम् । अहनारायणोऽनन्तोब्रह्माविष्णुर्महान्चिराद्
धमभुद्रविराट्सङ्घो गङ्गात्मा सरस्वती । त्वविष्णुमायासावित्रीतुलसीचरणेश्वर ॥
सतत्वुमार स्कन्दश्च नरनारायणावृषी । कपिलोदक्षिणा यज्ञो ब्रह्मपुत्राश्चयोगिन ॥
पवनो वरुणश्चन्द्र सूया रदो हुताशन । कृष्णमन्त्रोपासकाश्च भारतस्थाश्चवैष्णवा ॥
एभिर्दृष्टश्च गोलोको नान्यैर्दृष्ट कदाचन । निरामयेच तत्रैव रत्नसिंहासने स्थितम् ॥
रत्नमालाकिरीटैश्च भूषित रत्नभूषणै । सुनिर्मलै पीतयस्त्रै षड्विंशद्विपरिजितम् ॥
चन्दनोक्षितसवाङ्ग किशोर गोपनपिणम् । नर्वाननीरदश्याम श्वेतपङ्कजलोचनम् १५८
शरत्पार्वणचन्द्रासमीपद्वास्य मनोहरम् । द्विभुज मुरलीहस्त भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥
स्नेच्छामयपर ब्रह्मनिर्गुणप्रभृते परम् । ध्यानासाध्यदुराराध्यमस्माकञ्च सुदुर्लभम् ॥
प्रियैर्द्वादशगोपालै सेवित श्वेतचामरै । घोक्षित गोपिकावृन्दै सस्मितै सुमनोहरै ॥
पीडितै कामवाणैश्च शश्वत् सुस्थिरयोवने । षड्विंशदाशुकाधानै रत्नभूषणभूषिणै
रासमण्डलमयस्थ श्रीरूष्णञ्च परात्परम् । ददर्श राजा तत्रैव राधया दर्शितन्तदा ॥
स्तुत चतुर्भिर्वेदैश्च मूर्त्तिमद्भिर्मनोहरै । रागिणीनाञ्च रागाणामतीव सुमनोहरम् ॥
श्रुतवन्तश्च सङ्गीत यन्त्रयन्त्रोल्लिखत शिष्ये । नित्यया च सनातन्या प्रकृत्याच सह त्वया
शश्वन् पूजितपादान्ज मण्डित तुलसीदलै । कस्तूरीकुङ्कुमाकैश्च गन्धचन्दनवर्चितै ॥
दूर्वाभिरक्षनाभिश्च पारिजातप्रसूनै । निर्मलैर्विरजातोयैर्दान्धैरतिशोभितम् ॥ १६७ ॥
सुप्रसन्न स्वतन्त्रश्च सर्वकारणकारणम् । सर्वेषाञ्चान्तरात्मान सर्वेश सर्वजीवनम् ॥
सर्वाधारपर पूष्यब्रह्मज्योति सनातनम् । सर्वसम्पत्स्वरूपञ्चदातार सर्वसम्पदाम् ॥
सर्वमङ्गलरूपश्च सर्वमङ्गलकारणम् । सर्वमङ्गलद सर्वमङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ॥ १७० ॥

संभृष्टा नृपतिस्त्वस्तोत्रावरह्य रथात् त्वरा । साश्रुनेत्रः पुलकितो मूढधर्मा च प्रणनाम च
परमात्मा ददौ तस्मै स्वदास्यञ्च शुभापितम् ।

स्वभक्तिं निश्चलां सत्यामस्माकञ्च सुदुर्लभम् ॥ १७२ ॥

राधावरह्य स्वस्थादुवासकृष्णवक्षसि । गोपीभिः सुप्रियाभिश्चसेविता श्वेतचामरैः ॥
सम्भाषिता श्रीकृष्णेनसस्मितेनचपूजिता । समुत्थितेनसहस्रा भक्त्याच सम्भ्रमेणच ॥
आदौ राधां समुच्चार्यपश्चात् कृष्णञ्च माधवम् । प्रवदन्तिचवेदेषु वेदविद्भिः पुरातनैः ॥
विपद्यर्थं ये वदन्ति ये निन्दन्ति जगत्प्रसूम् । कृष्णप्राणाधिकां प्रेममयी शक्तिञ्चराधिकाम्
ते पच्यन्ते कालसूत्रे याचञ्चन्द्रदिवाकरौ । भवन्ति ह्यीपुत्रहीना रोगिणः शतजन्मसु ॥
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम् । सा त्वं सती भगवती वैष्णवीच सनातनी
नारायणी विष्णुमाया मूलप्रकृतिरीश्वरी । मायया मां पृच्छसि त्वं सर्वज्ञा सर्वरूपिणी
ह्यीजातिस्वधिद्वेषी च पराजातिस्मरावरा । कथितं राधिकाख्यानं किंभूयः श्रोतुमिच्छसि
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे हरगौरी-
संवादे सुतपः सुयज्ञसंवादे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

श्रीकृष्णस्य स्थिते मन्त्रे युष्माकमीश्वरस्य च । कथं जप्राहराधाया मन्त्रञ्चयैष्णवोनृपः
किं विधानञ्च किं ध्यानं किंस्तोत्रं कवचञ्च किम् । कं मन्त्रञ्चददौ राक्षेतांपूजापद्धतिवद्
श्रीमहेश्वर उवाच ।

हे विप्र कं भजामीति प्रश्नं कुर्वति राजनि । शीघ्रं प्राप्नोमि गोलोकं कस्याराधनया मुने
इत्युक्तवन्तं राजेन्द्रमुवाच ब्राह्मणोत्तमः । तन्सेवया च तल्लोकं प्राप्स्यसे बहुजन्मतः ॥

तन्प्राणाधिष्ठातृदेवीं भज राधा परात्पराम् । हृष्यामयीप्रसादेन शीघ्रं प्राप्नोति तत्पदम् ॥
 इत्युक्त्वा राधिकामन्त्रं ददौ तस्मै पण्डितम् । ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं बह्विजायान्तमेव च
 प्राणायाम भूतशुद्धि मन्त्रन्यास तथैव च । कराङ्गन्यासमेवञ्च ध्यात् सर्वसुदुर्लभम् ॥ ७
 स्तोत्रञ्च स्वचन्तञ्च शिक्षयामास भक्ति । राजा तेन क्रमेणैव जजाप परम मनुम् ॥
 ध्यात्तञ्च सामवेदोक्तं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । वृष्णस्ता पूजयामास पुरा ध्यानेन येन च
 श्वेतचम्पकवणाभा कोटिचन्द्रसमप्रभाम् । शन्त्यार्वणचन्द्रास्या शल्पङ्कुजलोचनाम् ।

सुधोर्णां सुनितम्बाञ्च पद्मविम्बाधरा वराम् ॥ १०

मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपञ्क्तिमनोहराम् । इषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातराम् ।

वह्निशुद्धाशुकाधामा ग्लामालाविभूषिताम् ॥ ११ ॥

रत्नकेयूरवल्या रत्नमर्षाररविताम् । रत्नकेयूरयुग्मेन चिचित्रेण विराचिताम् ॥

सूर्यप्रभाच्छादितेन गण्डस्थलविराचिताम् ॥ १२ ॥

अमृत्यरत्ननिम्माणश्रेयैकविभूषिताम् । सद्ग्लसारनिर्माणकिरीटमुकुटोज्ज्वलाम् ॥

रत्नाङ्कुरीयस्युक्ता रत्नपाशकशोभिताम् ॥ १३ ॥

विक्रती कवरीभार मालतीमाल्यशोभिताम् । रूपाधिष्ठातृदेवीञ्च गजेन्द्रमन्दगामिनीम् ॥

गोपीभि सुप्रियाभिश्च सेविता श्वेतचामरै ॥ १४ ॥

कम्बूरीरिन्दुमि सार्द्धमथश्चन्दनरिन्दुना । सिन्दूरविन्दुनाचाट्सीमन्ताद्य स्थलोज्ज्वलाम्

नित्यं सुपूजिता भक्त्या वृष्णेन परमात्मना ॥ १५ ॥

वृष्णसौभाग्यसयुक्ता वृष्णप्राणाधिका वराम् ।

वृष्णप्राणाधिदेयाञ्च निर्गुणाञ्च पतात्पराम् ॥ १६ ॥

महाविष्णुविधानीञ्च शार्वाञ्च सर्वसम्पदाम् । वृष्णभक्तिप्रदाशान्तामूलप्रवृत्तिमीश्वरीम्

वैष्णवीं विष्णुमायाञ्च वृष्णप्रेममयीं शुभाम् । रासमण्डलमध्यस्वारत्नसिंहासनास्थिताम्

रासे रासेश्वरयुता राधा रासेवरा मने ॥ १७ ॥

ध्यात्वा पुष्प मूर्ध्निदत्त्वा पुनर्भ्यायेज्जगत्प्रसम् । दद्यात्पुष्पपुष्कर्यात्वाचोपहाराणिषोडश

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं गन्धानुलेपनम् । धूपं दाप्य सुपुष्पञ्च क्षानीय रत्नभूषणम् ॥ १८ ॥

नानाप्रकारनैवेद्यं ताम्बूलं वासितं जलम् । मधुपर्कं रत्नतल्पमुपचाराणि षोडश ॥२२॥
 प्रत्येकं वेदमन्त्रेण दत्त भक्त्या च भूभृता । मन्त्राञ्च ध्रुयता दुर्गेवेदोक्तान्सर्वसम्मतान्
 रत्नसारविकाराञ्च निर्मितं विष्वक्कर्मणा । वरं सिंहासनं रम्यं राधे पूजामु गृह्यताम् ॥२३॥
 अमूल्यरत्नखचितममूल्यं सूक्ष्ममेव च । षड्विंशुद्धं निर्मलञ्च वसनं देवि गृह्यताम् ॥२४॥
 सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतायैदकं शुभम् । पादप्रक्षालनार्थञ्च रात्रौ पाद्यञ्च गृह्यताम् ॥२५॥
 दक्षिणावर्त्तशङ्खस्य सद्पूर्वापुष्पचन्दनम् । पूतं युक्तं तीर्थतोयैः राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
 पार्थिवद्रव्यसम्भूतमर्थावसुरमाकृतम् । मङ्गलार्हं पवित्रञ्च राधे रम्यं गृहाण मे ॥ २८ ॥
 श्रावणचूर्णं सुस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । सुगन्धयुक्तं देवेशि गृह्यतामनुलेपनम् ॥
 वृक्षनिर्जाससयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम् । ज्वलदग्निशिखाभूतं धूपं देवि गृहाण मे ॥३०॥
 अन्नकारभयहरममृत्युवृत्तनुज्ज्वलम् । रत्नप्रदीपं शोभाट्टं गृहाण परमेश्वरि ॥ ३१ ॥
 पारिजातप्रसूनञ्च गन्धचन्दनचर्चितम् । अर्थाव शोभनं रम्यं गृह्यता परमेश्वरि ॥ ३२ ॥
 सुगन्धामलकान्चूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम् । विष्णुनैलसनायुक्तं स्नानार्थं देवि गृह्यताम्
 अमूल्यरत्ननिर्माणं देयूरवल्ग्यादिकम् । शङ्खं सुरोभनं रात्रौ गृह्यता भूषणं मन ॥३४॥
 कालदेशोद्भूतं पञ्चकलञ्च लङ्कडुकादिकम् । परमान्नञ्च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ॥
 ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सर्वभोगादिकं स्वादु ताम्बूलं देवि गृह्यताम्
 अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम् ।

मया निवेदिनं भक्त्या गृह्यता परमेश्वरि ॥३७॥

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं षड्विंशुद्धारुक्कान्वितम् । पुष्पचन्दनचर्चितं पत्र्यङ्कं देवि गृह्यताम् ॥
 एतं संपूज्य देवा ता दद्यान् पुण्याञ्जलित्रयम् । यन्नेन पूजयेद्देवा नायिकाष्टौत्रतेजती ॥
 प्राणादिक्रमयोगेन दक्षिणावर्त्ततः प्रिये । भक्त्या पञ्चोपचारेणसुप्रिया परिचारिकाः ॥
 मालावतीं पूर्वकोणे षड्विकोणे च माधवीम् । दक्षिणेऽग्लमालाञ्चसुरीलानैर्ऋतेसति ॥
 पश्चिमे च शशिकलां पारिजाताञ्च मारुते । पद्मावतीमुत्तरे च ऐशान्या सुन्दरीं तथा ॥
 यूर्थिकामालतीपद्ममाला व्रजान् वने व्रती । परित्यज्य कुर्वते सप्तवेदोक्तेषु च ॥४३॥
 त्वं देवीजगतांमाताविष्णुमायासनातनी । कृष्णप्राणाधिदेवीचकृष्णप्राणाधिकारुणा ॥

कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरूपिणी । कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्तेमङ्गलप्रदे ॥४५॥
 अथ मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम । पूजितासि मयासाचयाश्रीकृष्णेन पूजिता ॥
 कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसयुता । रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दावृन्दावने वने ॥
 कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसी कानने तु या । चम्पावतीकृष्णसगेक्रीडाचम्पककानने ॥
 चन्द्रायला चन्द्रवने शतशृङ्गे सती सति । विरजा दर्पहन्त्री च विरजरतटकानने ॥४६॥
 पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे । भद्रा कुञ्जकुटीरे च काम्या च काम्यके वने ॥
 वैकुण्ठे च महालक्ष्मीवाणी नारायणोरसि । क्षीरोदसिन्धुकन्याचमर्यलक्ष्मीहृदिप्रिया
 सर्वस्वर्गं स्वर्गलक्ष्मिर्देवदुःखविनाशिनी । सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शङ्करवक्षसि ॥
 सावित्री वेदमाता च कल्याणवक्षसि । कल्याणधर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रसू ॥४७॥
 कल्याणतुलसी त्वञ्च गङ्गाभुवनपावनी । लोमहृषोद्ववा गोप्य कलाशा रोहिणी रति
 कला कलाशरूपा च शतरूपा शचा दिति । अदितिर्देवमाता च त्वत्कलाशा हरिप्रिया
 दिव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कला कल्याणशुभे । कृष्णभक्तिं कृष्णदास्यदेहिमे कृष्णपूजिते
 एव कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत् ॥ ५७ ॥

पुरातनं स्तोत्रमेतन् भक्तिदास्यप्रदं शुभम् । एतन् नित्यं पूजयेद् यो विष्णुतुल्यं सभारते
 जीवनमुक्तश्च पूनश्च गोलोकं याति निश्चितम् ॥ ५८ ॥

फार्त्तिका पूर्णिमायाञ्च राधा यं पूजयेच्छिवे । एव क्रमेण प्रत्यङ् राजसूयफलं लभेत्
 परमैश्वर्ययुक्तश्च इहलोके स पुण्यवान् । सर्पपापाद्विनिमुक्तो यास्यन्ते विष्णुमन्दिरम्
 आदायैव क्रमेणैव रासे वृन्दावने वने । स्तुत्वा सा पूजिता राधा श्रीकृष्णेन पुत्रा सति
 सपूजिता द्वितीये च ध्याता एव क्रमेण च । त्वद्वरेण च संप्राप्य विधाता देवमातरम्
 नारायणो महालक्ष्मा प्राप सपूज्य भारतीम् । गङ्गाञ्च तुलसीञ्चैव परा भुवनपावनीम्
 विष्णु क्षीरोदशायां च प्राप सिन्धुमुता तथा । मृतायारक्षकन्यायामयाकृष्णाज्ञयापुरा
 त्वमेव दुर्गा संप्राप्ता पूजिता पुष्करे च सा । अदितिं कश्यप प्रापचन्द्र संप्रापरोहिणीम्
 कामां रतिञ्च संप्राप धर्मो मूर्ति पतिव्रताम् ॥ ६७ ॥

देवाश्च मुनयश्चैव या सपूज्य पतिव्रताम् । संप्रापुर्यद्वरेणैव धर्मकामार्थमोक्षकम् ॥६८॥

एव पूजाविधानञ्च कथितञ्च स्तव शृणु ॥ ६८ ॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

एकदा मानिनी राधा बभूवादरुशना प्रभो । ससक्तस्य तुलस्याञ्च गोप्याञ्च तुलसीवने
सा सहत्य स्वमूर्त्तीञ्च कला सर्वाञ्च लीलया ॥ ६९ ॥

सर्वे बभूवुर्देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादय ॥ ७० ॥

भ्रष्टैश्वर्याश्चनिश्रीका भार्याहीनाह्यपद्रुता । तेचसर्वेसमालोच्य श्रीकृष्णशरणययु ॥
तेयास्तोत्रेण सन्तुष्ट स्नात्वा सपूज्यताशुचि । तुषाव परमात्माससर्वेया राधिका सतीम्
श्रीकृष्ण उवाच ।

एवमेव प्रियोऽहन्ते प्रमोदमेव ते मयि । सुव्यक्तमद्य कापट्यवचनन्ते धरानने ॥ ७१ ॥

हे कृष्ण त्व मम प्राणा जीवात्मैति च सन्ततम् ।

यद्गूह्यं नित्यं प्रेम्णा च साम्प्रतन्तद् गत द्रुतम् ॥ ७२ ॥

तस्मात् सर्वमलीकन्ते वचनजगदग्निके । श्रुधाराञ्च हृदय स्त्रीजातीनाञ्च सर्वत ॥ ७३ ॥

अस्माकवचनसत्य यद्गूह्यमीतितद्गूह्यम् । पञ्चप्राणाधिदेवीत्य राधाप्राणाधिकेतिमे ॥

शक्तो न रक्षितु त्वाञ्च यान्ति प्राणास्त्वया विना ।

विनाधिष्ठातृदेवीञ्च कौ वा कुत्र च जीवती ॥ ७४ ॥

महाविष्णोश्च माता त्व मूलप्रकृतिरीश्वरी । सगुणात्वञ्च कल्या निर्गुणा स्वयमेवतु ॥

ज्योतीरूपा निराकारा भक्तानुग्रहविग्रहा । भक्ताना रुचिर्चिन्त्या मानामूर्त्तिश्च विभ्रती

महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भारती च सता प्रत् । पुण्यश्रेत्रे भारतेच सतीच पार्वतीतथा ८० ॥

तुलसी पुण्यरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । ब्रह्मलोके च सावित्री कल्या त्व वसुन्धरा ॥

गोलोके राधिका त्वञ्चसर्वगोपालकेश्वरी । त्वयाविनाह निर्जीवोहाशक्त सर्वकर्मसु ॥

शिवशक्तस्त्वयाशक्त्या शवाकारस्त्वयाविना । वेदकर्त्तास्त्वयग्रहा वेदमात्रास्त्वयासहा ॥

नारायणस्त्वया लक्ष्मा जगत्पाता जगत्पति । फलददाति यज्ञश्चत्वया दक्षिणया सह

विभर्त्ति सृष्टिं शेषश्च त्वा कृत्वा मस्तके भुवम् ।

विभर्त्ति गङ्गारूपा त्वा मूर्द्धनि गङ्गाधर शिव ॥ ८५ ॥

शक्तिमच्च जगत्सर्वं शबरूपं त्वया विना । यत्का सर्वं स्वयावाप्या सूतोमूकस्त्वया विना ॥
 यथामृदाघटं कर्तुं कुलालः शक्तिमान् सदा । सृष्टिं स्रष्टुं तथा हञ्च प्रकृत्या च त्वया सह ॥
 त्वया विना जडञ्चाह सर्वत्र च न शक्तिमान् । सर्वशक्तिस्वरूपात्वं त्वमागच्छममान्तिकम्
 घहिन्यं दाहि फाशक्तिनाग्निः शक्तस्त्वया विना । शोभास्वरूपा चन्द्रेत्वं त्वां विना न स सुन्दरः
 प्रभारूपा हि सूर्ये त्वं त्या विना न स भानुमान् ।

न काम. कामिनीबन्धुस्त्वया इत्या विना प्रिये ॥ ६० ॥

इत्येवस्तपन कृत्वा ता सप्रापजगत् प्रभुः । देवायभूयु सथ्रीका.समाख्याः शक्तिसंयुताः
 सर्स्त्रीकञ्च जगत् सर्वं यभूय शैलकन्यके । गोर्धापूर्णञ्च गोलोको यभूव तत्प्रसादतः ॥
 राजा जभामगोलोकमिति स्तुत्वा हरिप्रियाम् । श्रीहृण्णेन कृतं स्तोत्रं राधाया यः पठेन्नरः ॥
 कृष्णभक्तिञ्चतद्दास्यं स प्राप्नोति न संशयः । स्त्रीविच्छेदेय शृणोति मासमेकमिदं शुचिः ॥
 अचिराद्भते भार्या सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । भार्याहीनो भाग्यहीनो वर्षमेकं शृणोति यः
 अचिराद्भते भार्या मुशीलां सुन्दरीं सतीम् । पुरा मया च त्वं प्राप्ता स्तोत्रेणानेन पार्वति ॥
 मृतायां दक्षकन्यायामाज्ञया परमात्मनः । स्तोत्रेणानेन संप्राप्ता सा वित्री ब्रह्मणापुरा ॥
 पुरा दुर्वाससः शापान्निश्रीके देवतागणे । स्तोत्रेणानेन देवैस्त्विः संप्राप्ता श्रीः सुदुर्लभम् ॥
 शृणोति वर्षमेकञ्च पुत्रार्थे लभते सुतम् । महाव्याधिगेगमुक्तो भवेत्स्तोत्रप्रसादतः ॥
 कार्तिका पूर्णिमायान्तु तां संपूज्य पठेत्तु यः । अचलां श्रियमाप्नोति राजसूयफलं लभेत् ॥
 नारी शृणोति चेत् स्तोत्रं स्वामिसौभाग्यतां लभेत् ।

भक्त्या शृणोति यः स्तोत्रं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥ १०१ ॥

नित्यपठति यो भक्त्या राधासंपूज्यभक्तिः । सप्रयाति च गोलोकं निर्मुक्तो भवबन्धनात्
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनाम्न संवादे प्रकृतिखण्डे हरगौरीसंवादे
 श्रीराधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधाकनकवर्णनम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

पूजाविमान स्तोत्रञ्च श्रुत्नन्त्यतमुत मया । शशुना क्वचन बृहिश्रोत्र्यानि त्वत्प्रसादनः
श्रीनिहेश्वर उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि हे दुर्गे क्वचन परमाद्भुतम् । पुनः मया निगदितं गोलोके परमात्मना ॥०
अतिगुह्यं पर तत्त्वं सर्वमन्त्रां परिप्रदम् । यद्ब्रूत्वा पटनाद् ब्रह्मा मन्त्राय वेदनातरम् ॥
यद्ब्रूत्वाहं तव म्यानां सर्वमातुः सुखेऽपि । नागराञ्च यद्ब्रूत्वा महालिङ्गमनिनापस्त-
यद्ब्रूत्वा परमात्मा च निर्गुणः प्रकृतेः परः । यन्ब्रूय शक्तिमानृषाणां मूर्ध्निशृणु पुनःविभुः
त्रिभुवना च यद्ब्रूत्वा मन्त्राय स्निग्धुस्त्वयकाम् ।

शेषो विमर्त्तं ब्रह्माण्डं मूर्ध्नि सर्वप्रदयत ॥६॥

लोककूपेषु प्रत्येकं ब्रह्माण्डान्निहान् विगच्छ । विमर्त्ति श्रावणात्प्रम्य सर्वां प्रागेऽब्रूवत्-
यद्ब्रूत्वाश्च पटनाद्ब्रह्मं, नाश्री च सर्वतः । यद्ब्रूत्वात् कुम्भश्च यता यक्षश्च मार्गते ॥
इन्द्रः सुगर्गानांशश्च पटनाद्ब्रह्माण्डयतः । नपागा मनुर्गिरश्च पटनाद्ब्रह्माण्डयतः ॥६॥
श्रीनाथश्चन्द्रश्च यद्ब्रूत्वा राजसूयं चकार मः । स्वयं सूर्यन्मिन्द्रलोकेऽपः पटनाद्ब्रह्माण्डयतः
यद्ब्रूत्वा पटनादौर्जगत्युत कर्गति च । यद्ब्रूत्वा वार्ति वानोऽयं पुनाति सुखप्रदम् ॥
यद्ब्रूत्वा च स्वतन्वो हि मृत्पुञ्जगतिजन्तुषु । त्रिसतयुत्वा निःशरान्चकारचन्द्रमुत्तराम्
जामदग्न्यश्च गमश्च पटनाद्ब्रह्माण्डयतः । पर्षोः समुद्रं यद्ब्रूत्वा पटनात् कुम्भसम्भवः ।
सन्तकुमारो मगवान् यद्ब्रूत्वाजानिना शुक्रः । जीवन्मुक्तौ च सिद्धीचनगरनारायणात्रयी
यद्ब्रूत्वापटनात् सिद्धोवशिष्टो ब्रह्मपुत्रकः । सिद्धेश कपिलो यस्मात्प्रसादतः प्रजापतिः
यस्माद्बृहस्पतिश्च मां द्वेष्टि कूर्मः शेषविमर्त्ति च । सर्वां प्रागे यतो वायुर्ब्रह्म पवनोयतः
इशानो दिक्पतिश्चैव यन्- शास्त्रा यतः शिवे ।

काल कालाग्नि रुद्रश्च सहस्रा जगता यत ॥१७॥

यद्धृत्वा गौतम सिद्ध कश्यपश्च प्रजापति । वसुदेवसुता प्राप चैकाशेनतुत्कलाम्
पुरा स्वजायाविच्छेदे दुर्वासा मुनिपुङ्गव ॥१८॥

सप्राप राम सीताञ्च रावणेन हता पुरा ॥१९॥

पुरा तल्लश्च सप्राप क्षमयन्ती यत सतीम् । शङ्खचूडो महावीरो दैत्यानामीश्वरो यत
वृषो बहवि मा दुर्गे यतो हि गरुडो हरिम् । एव सप्राप ससिद्धिं सिद्धाश्चमुनय पुरा
यद्धृत्वा च महालक्ष्मी प्रदात्री सर्वसम्पदाम् । सरस्वती सता श्रेष्ठायत क्रीडावतीरति
सावित्रीदेवमाताचयत सिद्धिमवाप्नुयात् । सिन्धुकन्यामर्च्यलक्ष्मीर्यतोविष्णुमवापता
यद्धृत्वा तुलसी पृता गङ्गा भुवनपावनी । यद्धृत्वा सर्वशस्याढ्या सर्वाधारा वसुन्धरा
यद्धृत्वा मनसा द्वेषी सिद्धा च विश्वपूजिता । यद्धृत्वा देवमाता च विष्णुपुत्रमवापता
पतिप्रता च यद्धृत्वा लोपामुद्राप्यरन्धरी । लेभे च कपिल पुत्र देवहुती यत सती ॥
प्रियव्रतौत्तानपादौ सुतो प्राप च तत्प्रसू । त्वन्मातात्रापि सप्राप त्वादेवींशिरिजायत
एव सर्वे सिद्धगणा सर्वैश्वर्यमवाप्नुयु । श्रीजगन्मङ्गलस्यास्व कथयस्य प्रजापति ।
ऋषिश्छन्दोऽस्य गायत्री देवी रासेश्वरी स्थयम् ।

श्रीरृष्णभक्तिसप्राप्तौ विनियोग प्रकीर्तित ॥२६॥

शिष्याय कृष्णभक्त्याब्राह्मणाय प्रकाशयेत् । शठाय परशिष्याय दत्त्वामृत्युमवाप्नुयात्
राज्य देय शिरोदेय न देय कथच प्रिये । कण्ठे धृतमिदं भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥
मया द्रुपञ्च गोलोकै ब्रह्मणः विष्णुना पुरा । ओं राधेति चतुर्थ्यन्त बहिजायान्तमेव च
कृष्णेनोपासितोमन्त्र कत्प्ररुक्ष शिरोऽवतु । ओं ही थीं राधिकाडेन्तबहिजायान्तमेवच
कपाल नेत्रयुग्मञ्च ध्रौत्रयुग्म सदाऽवतु । ओं रा हीं था राधिने तिलेन्तबहिजायान्तमेवच
मस्तक केशसघाथ मन्त्रराज सदाऽवतु । ओं रा राधेति चतुर्थ्यन्त बहिजायान्तमेवच
सर्वसिद्धिप्रदं पातुकपोलनासिकामुखम् । क्लार्थीरृष्णप्रियाडेन्तकण्ठपातुनमोऽन्तकम्
ओं रा रासेश्वरीडेन्तस्कन्धपातुनमोऽन्तकम् । आंरारासविलासिन्यैपृष्ठपातुसदाऽवतु
वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहावक्ष सदावतु । तुलसीघनवासिन्यै स्वाहापातुनितम्बकम्

कृष्णप्राणाधिकाडेन्तं स्वाहान्तं प्रणवादिकम् । पादयुग्मञ्च सर्वाङ्गी सन्ततं पातुसर्वतः
 राधा रक्षतु प्राच्याञ्च घर्षां कृष्णप्रियाऽवतु । दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैऋतेऽवतु
 पश्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता । उत्तरे सन्ततं पातु मूलप्रकृतिरिश्वरी ॥
 सर्वेश्वरी सदृश्यानां पातु मा सर्वपूजिता । जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणेतथा
 महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु सन्ततम् । कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् ।
 यस्मै कस्मैतदातव्यं गूढाद् गूढतरं परम् । तव स्नेहाग्नयारायातं प्रवक्तव्यं कस्म्यचिन्
 गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्ब्रह्मालङ्कारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणेवाहौ धृत्वा विष्णुसमोभवेन्
 शतलक्षजपेनैव सिद्धञ्च कवचं भवेत् । यद्वि स्यात् सिद्धकवचो न दग्धो वह्निनाभवेत्
 एतम्मान्कवचाद् दुर्गे राजादुर्योधनपुरा । विशारदोजलस्तम्भेवह्निस्तम्भेचनिश्चितम्
 मया सन्त्कुमाराय पुग दत्तञ्च पुष्करे । सूर्यपर्वणि मेरौ च स सान्दीपनये ददां ॥

बलाय तेन दत्तञ्च ददां दुर्योधनाय सः ।

कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥५६॥

नित्यं पठति भक्तयेदं तन्मन्त्रोपासकश्चयः । विष्णुतुल्योभवेन्नित्यंराजसूयफलंलभेत् ॥
 स्नानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत् फलं ॥ सर्वत्रतोपवासे चपृथिन्याश्चप्रदक्षिणे ॥५१
 सर्वयज्ञेषु दीक्षायां नित्यञ्च सन्त्यरक्षणे । नित्यं श्रीकृष्णसेवायां कृष्णनैवेद्यमक्षणे ॥५२
 पाठे चतुर्णां वेदाना यत्फलञ्च लभेन्नरः । तत्फलं लभते नूनं पठनात् कवचस्य च ॥
 राजद्वारे श्मशाने च सिंहव्याघ्रान्विते घने । टावाग्रीं संकटेचैव दम्प्युर्वासान्विते भये ॥
 कारागारे विपद् ग्रस्ते घोरैश्चद्रुग्न्धने । व्याधियुक्तोभवेन्मुक्तो धारणान्कवचम्यच ॥
 इत्येतत्कथितं दुर्गे तवैवेदं महेश्वरि । त्वमेव सर्वरूपा मा माया पृच्छसि मायया ॥५६

श्रीनारायण उवाच ।

इत्युत्तराधिकाध्यानंस्मारंस्मारञ्चमाथयम् । पुलकाङ्कितसर्वांग साधुनेत्रोक्कृषत्सः ॥
 न कृष्णसदृशो देवो न गंगासदृशीसगिन् । नपुष्करात्समंतीर्थनाश्रमोब्राह्मणात् परः ॥
 परमाणु परं सूक्ष्मं महाविष्णोः परो महान् । नमःपरञ्चिस्तीर्णयथानास्त्रयेवतारद ॥

यथा न वैष्णवान् ज्ञानी योगीन्द्रः शङ्करान् परः ।

कामरूपलोभमोहा जिताग्नेनैव नारद ॥६०॥

स्वप्ने जामरणे शश्वन् कृष्ण यानरत शिव ।

यथा कृष्णस्तथा शम्भुर्न भेदो माधवेशयो ॥६१॥

यथा शम्भुरैष्णवेषु यथा देवेषु माधव । तथेदं ऋचं घन्स कचचेषु प्रशस्तकम् ॥६२

शिरिति मगलार्थञ्च घकारोदातृवाचक । मगलानां प्रदाता यः सशिवः परिकीर्तितः ॥

नगणां सन्तन विष्णोः श कल्याण करोति यः । कल्याणमोक्षवचनसंपवशङ्कर स्मृतः ॥

ब्रह्मादीनां सुराणाञ्च मुनानां वेदवादिनाम् । तेषाञ्च महता देवो महादेवः प्रकीर्तितः ॥

महती पूजिता विष्णोः मृत्प्रकृतिरीश्वरी । तस्याः देवः पूजितश्च महादेवः स च स्मृतः ॥

त्रिग्वस्थानाञ्च सर्वेषां महतामाश्वरः स्वयम् । महेश्वरश्च तेनैव प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

हे ब्रह्मपुत्र धन्योऽसि यद्गुरुरश्च महेश्वरः ।

श्राद्धाण्यभक्तिदाता यो भवान् पृच्छति माञ्च किम् ॥६८॥

इति ब्रह्मरैवते महापुगणे नारायणनारदः सवादे प्रवृत्तिखण्डे राधिकोपाख्यान

नाम षट्षाशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्गापाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

सर्वाङ्घ्रान् श्रुतं ब्रह्मज्ञतीव परमाद्भुतम् । अधुना श्रोतुमिच्छामिदुर्गापाख्यानमुत्तमम् ॥

दुर्गा नारायणीशानां त्रिणुमायाशिवास्ती । नित्यासत्वाभगवतासवाणीसर्वमगला ॥

अम्बिका वीणवी गौरी पार्वतीचसनातनी । नामानिर्कोथमोक्तानिसर्वेषामुभयानि च ॥

अथं षोडशनाम्ना च सर्वेषामापिसन वग्म् । ब्रूहि वेदविदां श्रेष्ठ वेदोक्तसर्वसम्मतम् ॥

केन वा पूजिता सादौ द्वितीये केन वा पुनः । तृतीये वा चतुर्थे वा त्रैतसर्वत्रपूजिता ॥

नारायण उवाच ।

अथ षोडशतान्नाञ्च विष्णुर्वेदे चकारसः । पुनःपृच्छसिजात्वान्वंकथयामियथागमम् ॥
दुर्गा-दैत्यै महाविघ्ने भववन्धेचरुर्मणि । शोके दुःखे च तर्के यमदण्डेच जन्मनि ॥
महामयेऽनिगेगेवाप्याशब्दोहन्तृवाचकः । एतान्हन्त्येवयादेर्वासादुर्गा परिकीर्त्तिता ॥
यशसा तेजसा रूपैर्नागयपसमा गुणैः । शक्तिर्नागयपस्यैश्च तेन नारायणा स्मृता ॥
ईशान सर्वसिद्धयर्थेचागद्वोदातृवाचकः । सर्वसिद्धिप्रदात्रीयासार्पशानाप्रकीर्त्तिता ॥

मृष्टा माया पुग मृष्टा विष्णुना परमान्मना ।

मोहितं मायया विष्वं विष्णुना रा प्रकीर्त्तिता ॥११॥

शिवे कल्याणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया ।

प्रिये दातरि च शब्दो शिवा तेन प्रकीर्त्तिता ॥१२॥

सद्बुद्धयधिष्ठान्देर्वा विद्यमाना युगे युगे । पत्रिप्रतासुर्शालाचसासर्तापरिकीर्त्तिता ॥
यथा नित्योहि भगवान् नित्या भगवती तथा । स्वमायया निरोभूता तत्रेशे प्राकृतेत्ये ॥
आप्रह्वम्नम्यपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैवकृप्रिमम् । दुर्गासत्यस्वरूपासाप्रकृतिर्भगवान्यथा ॥
सिद्धैश्वर्यादिकं सर्वं यस्यामन्ति युगे युगे । सिद्धादिकेभगोर्जयस्तेनभगवतीस्मृता ॥
सर्वान्मोक्षं प्रापयति जन्ममृत्युजगदिभम् । चराचरंश्चविष्वक्स्थान् सर्वाणीतेनकीर्त्तिता ॥
मंगलं मोक्षपवनं च शब्दोदातृवाचकः । सर्वान्मोक्षान्याददातिसाश्व सर्वमंगला ॥
हर्षे सन्गदि कल्याणे मंगलं परिकीर्त्तिताम् । तान् ददाति या देवीसाएव सर्वमंगला ॥
अस्येति मानृवचनो वन्दने पूजने सदा । पूजिता वन्दिता माता जगतातेन साम्बिका ॥
विष्णुमन्त्रविष्णुरूपाविष्णो शक्तिम्यरूपिणी । सृष्टौ चविष्णुनाम्रष्टावैणर्वातेनकीर्त्तिता
गौरः पीते च निर्लिप्ते परे ब्रह्मणि निर्मले ।

तन्मात्मनः शक्तिरियं गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२२॥

गुरुः शम्भुश्च सर्वेषां तस्य शक्तिः प्रिया सती ।

गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२३॥

तिथिभेदे सर्वभेदे कल्पभेदेऽभेदतः । न्याता नेपु च विन्पातापार्पतीनेन कीर्त्तिता ॥२४॥

महोत्सवविशेषे च परंजिति प्रकीर्त्तिता ।

तस्याधिदेवी या सा च पार्वता परिकीर्त्तिता ॥२५॥

पर्वतस्य मुता देवा साविभूता च परंते । पर्वताधिष्ठातृदेवि पार्वती तेन कीर्त्तिता ॥
 सर्वकाले सना प्रोक्ता विद्यमाने तनोति च । सर्वत्र सर्वकाले चविद्यमाना सनातनी ॥
 अर्थं षोडशानाम्नाञ्च कार्त्तितश्च महामुने । यथागमश्च वेदोक्तोपाख्यानश्च निशामय ॥
 प्रथमे पूजिता सा च वृष्णेन परमात्मना । वृन्दावने चसृष्ट्वादींगोलोकैरासमण्डले ॥
 मधुकैम्भभाते च ब्रह्मणा सा द्वितीयत । त्रिपुत्रेतिनेव तृतीये त्रिपुरारिणा ॥३०॥
 भ्रमश्रिया महेंद्रेण शापाद् दुर्वासस पुरा । चतुर्थं पूजिता देवीभक्त्यामगवती सती ॥
 तदा मुनीन्द्रै स्त्रिदन्द्रैर्देवैश्च मुनिपुङ्गवै । पूजिता सर्वविश्वेषु बभूव सर्वत सदा ॥
 तेज सु सर्वदेवाना साविभूता पुरा मुने । सर्वदेवा ददुस्तस्यै शस्त्राणि भूषणानि च ॥
 दुर्गादयश्च दैत्याश्च निहता दुर्गया तथा । दत्त स्वराज्य देवेभ्यो वरञ्चयदभीप्सितम् ॥
 कृत्वान्तरे पूजिता सा सुरथेन महात्मना । राजा मेघसशिष्येणमृष्मण्याञ्च सरित्ते ॥
 मेपादिभिश्च महिषे वृष्णसारैश्चगण्डकै । छागैश्शुक्रकुम्भाण्डै पक्षिभिर्वलिभिमुने ॥
 वेदोक्तानि च दत्तैवमुपचाराणि षोडश । ध्यात्वा च कथयधृत्वासपूज्यच विधानत ॥
 राजा वृत्वा परीहार वर प्राप यथेप्सितम् । मुक्तिं सप्राय वैश्यश्चसपूज्यच सरित्ते ॥
 तुष्टाच राजा वैश्यश्च साश्रुनेत्र पुटाञ्जलि । विससर्ज मृष्मण्यां ता गभारेनिर्मले जले ॥
 मृष्मण्यां ताहरीं दृष्ट्वा जलथीता नराधिप । रुतोद च तदा वैश्यस्तत स्थानान्तरययी ॥

त्यक्त्वा देहश्च वैश्यश्च पुष्करं दुष्करं तप ॥४१॥

वृत्वा जगाम गोलोकदुर्गादेवीधरेणस । राजाययीस्वराज्यञ्चपूज्योनिष्कण्ठकवली ॥
 भोगश्च बुभुजे भूषणप्रियर्षसहस्रकम् । भाष्यां स्वराज्यसन्धस्यपुत्रेच कालयोगत ॥
 मनुर्भूय सावर्णिस्तप्त्वा च पुष्करे तप । इत्येवं कथित वत्स समासेन यथागमम् ॥

दुर्गाख्यान मुनिश्रेष्ठ किं भूय श्रोतुमिच्छसि ॥४०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद सवादे दुर्गापाख्यान
 नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्गांपाख्यानै-तारोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

कस्य वंशोद्भवो राजानुरथोधर्मिणांवरः । कथंसंप्रापजानञ्जमेघसाहस्रानिनां वरात् ॥
कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन् मेघसो मुनिसत्तमः । यभूव कुत्र संवादो नृपस्य मुनिना सह ॥
यभूव कुत्र साक्षाद्वा भगवन् नृपवैश्वयोः । व्यासेन श्रोतुमिच्छामि वद वेदविदांवर ॥३

नारायण उवाच ।

अत्रिश्च ब्रह्मणः पुत्रस्तस्य पुत्रोनिशाकरः । स च कृत्वा राजसूर्यं द्विजराजो यभूव ह ॥४
गुरुपत्न्याञ्च तारायां तस्याभूच्च युधः सूतः । युधपुत्रस्तु चैत्रश्चतन् पुनः सुरथः स्मृतः ॥

नारद उवाच ।

गुरुपत्न्याञ्च तारायां यभूव तन् सूतः कथम् । अहो व्यतिक्रमं ब्रूहि वेदस्य च महामुने ॥

नारायण उवाच ।

सम्पन्मत्तो महाकामी ददर्शजाह्नवीतटे । तारां सुरगुरोः पत्नी धर्मिष्ठाञ्च पतिप्रताम् ॥
सुम्नातां सुन्दरीं रम्यां पीनोन्नतपयोधराम् । सुश्रोणीसुनितम्बाञ्च मध्यक्षीणां मनोहराम् ॥
सुदतीं कोमलाङ्गीञ्च नवयौघनसंयुताम् । सूक्ष्मवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥६॥
कस्तूरीचिन्दुनासार्द्धमधश्चन्दनविन्दुना । सिन्दूरविन्दुना चारुभालमध्यस्थलोज्ज्वलाम् ॥
चायुनाधोवस्त्रहीनां सकामां रक्तलोचनाम् । शरत्पार्षणचन्द्रास्यां पङ्कविम्बाधरां वराम् ॥
सस्मितां नम्रवक्त्राञ्जलजयाचन्द्रदर्शनात् । गच्छन्तीं स्वगृहं हर्षात् गजेन्द्रमन्दगामिनीम् ॥
तां दृष्ट्वा मन्मथान्तं चन्द्रोलजां जहौ मुने । पुलकाङ्कितसर्षांगः सकामस्तामुवाच स ॥

चन्द्र उवाच ।

योपिच्छेष्टे क्षणं तिष्ठ धरिष्ठे रसिकासु च ।

सुविदग्धे विदग्धानां मनो हरसि सन्ततम् ॥१४॥

नियेद्य प्रवृत्तिं चमसहस्र कामसागरे । तप फलेन त्वा प्राप बृहत्श्रोणिं बृहस्पति ॥
 अहो तपस्विना सार्द्धमविदग्नेन वेधसा । योजिता त्व रसवतीशश्वत्कामानुरागरा ॥
 किंचा सुगन्ध विजातमपिज्ञेषु समागमे । विदग्धाया विदग्नेन सगम सुखसागर ॥
 कामेन कामिनी त्वञ्च दग्धासि व्यर्थमीवसि ।

कर्मणां गमदोषाद्वा को जानाति मनस्त्रिया ॥१८॥

दिन दिन व्रथा याति दुर्लभ नवयौवनम् । नवीनयौवनस्थाय्या बृद्धेन स्वामिना तव ॥
 शश्वत्तपस्यायुक्तश्चसृष्णमात्मनीप्सितम् । स्वप्नेतापरणेवापि ध्यायनेचबृहस्पति ॥

सर्कामरसता त्व तिष्वाम काममीप्सितम् ।

कामुक्ता यावते शश्वद्भ्यूना श गारमात्मनि ॥१९॥

अन्यश्च त्यग्मन कामोभित त्वद्भुत्तुरीप्सितम् ।

का प्रीति सगमे कस्ते द्वयोश्चिप्यमिगतयो ॥२०॥

वासन्तापुपनपे च गन्धचन्दनचर्चिते । वसन्ते मा गृहीत्वा च मोदस्व मात्रवाचने ॥
 निर्जने चन्दनवने सुगन्धिपुष्पचर्चिते । भवती युवती भाग्यवती तत्रैव मोदताम् ॥२१॥
 चन्दने चम्पकवने शीतचम्पकवायुना । रम्ये चम्पकतपे च व्राडा कुरु मया सह ॥२२॥
 इत्युक्त्वा मदतौगमत्तो मदनाधिकसुन्दर । पपात चरणे द्वेष्या मन्दो मन्दाकिनीतटे ॥
 निरुद्धमाया चन्द्रेण शुष्ककण्ठीष्ठतालुना । अर्भीतोवाच धोषेनर क्पङ्कजलोचना ॥२३॥
 तारोवाच ।

धिरु त्वा चन्द्र तृण मन्ये पग्वीलिम्पट शम्भु ।

अपरेमाग्यात् त्व पुत्रो व्यर्थन्ते जन्म जीवतम् ॥२४॥

अरे कृत्वा रानस्यमात्मान मन्यसे बली । बभूव पुण्य ते व्यर्थं धिरुत्तीपुचयन्मन ॥
 यम्य चित्त पग्वीपुसोऽशुचि सर्कर्मसु । नकर्मफलमाकूपापीमिन्द्योविश्वेपुसर्वत ॥
 हसिन्नेमेसर्तौत्वच्ययश्मप्रस्तोमविष्यसि । अत्युच्छितोनिपतनप्राप्तोर्तातिश्रुतोऽश्रुतम् ॥
 दुपान्ता दर्पहा वृष्णो दर्पन्ते निहतिष्यति । त्यजमामातर वत्स यदि ते श भविष्यति ॥
 इयुक्त्वा तारका सात्री स्तोद चमुद्गमुद्गु । चकारसाक्षिणधम्मसूर्य्यंवायुदुताशनम् ॥

ब्रह्माणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराम् । दिनं रात्रिञ्च सन्ध्याञ्च सर्वसुरगणं मुने ॥३४॥
 तारकावचनं श्रुत्वा न भीतः स चुकोपह । करे धृत्वा रथेनूपांस्थापयामास सुन्दरीम् ॥
 रथञ्च चालयामास मनोपार्या मनोहरम् । मनोहरां गृहीत्वा तां स च रमे मनोहरम्
 विस्यन्दके सुरवने चन्दने पुष्पभद्रके । पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने ॥३७॥
 सुगन्धिपुष्पतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना । निर्जने मलयद्रोण्यां स्निग्धचन्दनचर्चिते ॥३८॥
 शैले शैले नदौ नद्या शृंगारं कुर्वतस्तयोः । गतं वर्षशतं हर्षान्मुहूर्त्तमिव नारद ॥३९॥
 यभूव शरणापन्नो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः । तेजस्विनि तथा शुक्नेतेपाञ्चयलिनां गुरौ ॥
 अभयञ्च ददौ तस्मै कृपया भृगुनन्दन । गुरु जहास देवाना सुविपशं बृहस्पतिम् ॥
 सभायां जहसुर्दृष्टा बलिनो दितिनन्दनाः । अभयञ्च ददुस्तस्मै भीताय च कलङ्किने ॥
 सती सन्वीच्य ध्वंसेन पापेन चन्द्रमण्डले । यभूव शशास्पर्ञ्च कलङ्कं निर्मले मलम् ॥
 उवाच तं महाभीतं शुक्रो वेदविदाम्बरः । हितं तथ्यं वेदयुक्तं परिमाणसुखावहम् ॥४४॥

शुक्र उवाच ।

त्वमहो ब्रह्मणः पौत्रोऽप्यत्रैर्मगद्यत सुतः । दुर्नीतं कर्म ते पुत्र नीचवन्न यशस्करम् ॥
 राजस्य पुण्यफले निर्मलेकीर्त्तिमण्डले । सुधाराशीं सुराविन्दुरूपमङ्कुमुपार्जितम् ॥४६॥
 त्यज देव गुरोः पत्नीं प्रसूमिव महासतीम् । धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य ब्राह्मणानां बृहस्पतेः ।
 शम्भोः सुराणामीशस्य गुरु पुत्रस्य ब्रह्मणः । पौत्रस्याङ्गिरस शश्वज्ज्वलनो ब्रह्मतेजसा
 शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि । इति सङ्गं ज्ञातानां स्वभावश्च सतामपि
 स शत्रुर्मु सुगुरः परो विश्वे निशाकर । तथापि सहजाख्यानं वर्णितं धर्मसंसदि ॥

यत्र लोकाश्च धर्मिष्ठास्तत्र धर्मः सनातनः ॥५०॥

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः । गौरिकं पञ्च च व्याघ्रीं सिर्हासतप्रसूयते
 हिंसकाः प्रलयं यान्ति धर्मो रक्षति धार्मिकम् । देवाश्च गुरुो विप्राः शक्रायद्यपिरक्षितुम्
 तथापि न हि रक्षन्ति धर्मघ्नं पापिनं जनम् । कुलटा विप्रपत्नीनां गमने सुरविप्रयोः ॥
 ब्रह्महत्या षोडशंशपातकञ्च भवेद्ब्रुवम् । तासामुपस्थितानाञ्च गमने तच्चतुर्थकम् ॥५३॥
 विप्रपत्नी सतीनाञ्च गमनेन बलेन चेत् । ब्रह्महत्याशतं पापं भवेद्देव ध्रुतीं ध्रुतम् ॥५५॥

धर्मश्च महाभाग ब्राह्मणी त्यज साम्प्रतम् । कृत्वानुताप पापाच्च निवृत्तिस्तु महाफला
 उपायेन च त पाप दूराभूत करीम्यहम् । शरणागतस्य भीतस्य मयि देवस्य धर्मत ॥
 शरुत्रहाञ्च भातश्च दीनश्च शरणार्थितम् । यो न रक्षत्यधर्मिष्ठ कुम्भीपाकेवसेद्भुवम्
 राजस्यशानताञ्च रक्षिता लभते फलम् । परमेश्वर्य्ययुक्तश्च धर्मेण स भवेदिह ॥५६॥
 इत्युक्त्वा स दैत्यगुरु स्वर्गे मन्दाकिनीनटे । स्नात्वाता स्नापयामासविष्णुपूजाञ्चकारस
 विष्णुपादोदक पुण्य तत्रैवेद्य शुभप्रदम् । गङ्गोदकञ्च पुण्यञ्च भोजयामास चन्द्रकम् ॥
 क्राडे कृत्वा नु त भीत लज्जित पापकर्मणा । कुशहस्त इत्युवाच स्मारस्मार हरिं मुने
 शुक उवाच ।

यद्यस्ति मे तप सत्य सत्य पूजाफल हरे । सत्य व्रतफलञ्चैव सत्य सत्यवच फलम्
 तीर्थक्षान्तफल सत्य सत्य दानफल यदि । उपवासफल सत्य पापान्मुक्तो भवान् भवेत्
 त्रिसन्ध्याहीन विप्रश्च विष्णुपूजाविहीनकम् । त गच्छतु महाघोर चन्द्रपापं सुदारुणम्
 स्वमाय्या चञ्चन कृत्वा य प्रयाति परस्त्रियम् । स यातु नरक घोरचन्द्रपापेनपातकी
 वाचा वा ताडयेन् कान्त दु शीला दुमुखा च या ।

सा युग चन्द्रपापेन यातु लालामुख ध्रुवम् ॥ ६७ ॥

अनेवेद्य वृथात्रश्च यश्च भुङ्क्ते हरद्विज । स यातु कालसूत्रश्च चन्द्रपापाच्चतुयुगम् । ६८
 अम्युवाच्या भूखनन करोति यो नराधम । चन्द्रपापात् युगशत कालसूत्र स गच्छतु
 स्वकान्त घञ्चन कृत्वा या याति परपूरुषम् । सा यातुबह्विकुण्डश्च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम्
 कीर्त्ति करोति रजसा परकीर्त्ति विलुप्य च । स युग चन्द्रपापेन कुम्भीपाकञ्चगच्छतु
 पितर मातर भार्य्या यो न पुष्पाति पातकी । स्वगुरु चन्द्रपापेन यातुचाण्डालताध्रुवम्
 कुलटानमवीरान्त ऋतुलातात्रमेव च । योऽश्नाति चन्द्रपापञ्च त यान्तु पापिन ध्रुवम्
 स यातु तेन पापेनकुम्भीपाकचतुर्युगम् । तस्मादुत्तीर्य्यचाण्डालीं योनिमाप्नोतिपातकी
 दिवसे यो प्राभ्यधर्म महापापी करोति च ।

यो गच्छेन् कामत कामी गुर्धिणीं वा रजस्वलाम् ॥७५॥

त यातु चन्द्रपापञ्च महाघोरञ्च पापितम् । स यातु तेन पापेन कालसूत्र चतुर्युगम्

मुखंश्रोणीस्तनञ्चापि योपश्यतिपरस्त्रियाः । कामतः कामदग्धश्च तं यातुचन्द्रकल्मसम्
 स यातु लालाभक्ष्यञ्च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् । तम्मादुर्त्तार्य्यभवतुचाण्डालान्धोनपुंसकः
 कुहूपूर्णेन्दुसक्रान्त्या चतुर्दशप्रश्नीषु च । मांसं ममूरं लकुचं यश्चभुङ्क्ते खेदिने ॥७९॥
 कुरुते ग्रान्यघर्मञ्च तं यातु चन्द्रकिरियम् । चतुर्युगं कालमूरं तेन पापेन गच्छतु ॥
 तम्मादुर्त्तार्य्य चाण्डालो योनिमाप्नोति पातकी । सतजन्ममहारोगी दरिद्रः कुञ्जपवव
 एकादश्याञ्च यो भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने । शिवरागौ महापार्पातंयातु चन्द्रपातकम्
 स यातु कुर्मीपाकञ्च यावदिन्द्राञ्चतुर्दश । तेन पापेन प्राप्नोतु चाण्डाली योनिमेव च ।
 ताम्रम्यं दुग्धमाध्वाकमुच्छिष्टे घृतमेव च । नारिकेलोदकं काम्ये दुग्धं स लवणं तथा
 पीतशैपत्रलञ्चैव मक्षारोमोदनम् । ओदनमसकृद् भुङ्क्ते सूर्य्येनास्तं गते द्विजः ॥
 तं यातु चन्द्रपापञ्च दुर्निवारञ्च दारुणम् । स यातु तेन पापेन चान्यकृपंचतुर्युगम् ।८६
 स्वकन्याविक्रया विप्रो देवलो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाहो च तेषाञ्च सूपकारकः ॥
 क्षत्रवन्धतन्घाती च विष्णुवैष्णव निन्दकः । तं यातु चन्द्रपापञ्च दारुणं पापिनं भृशम्
 स यातु तम्मान् पापाच्च तत्रशूर्माञ्च पातकी ।

शश्वद्गधो भवतु स यावदिन्द्राञ्चतुर्दश ॥ ८६ ॥

तम्मादुर्त्तार्य्यचाण्डालोयोनिप्राप्नोतिपातकी । सतजन्म स चाण्डालोवृषश्चजन्मपञ्चव
 गर्दभो जन्मशतकं शूकरो जन्मसत च । तीर्य्यश्वाङ्क्षो जन्मसत विट्कर्मिजन्म पञ्च च
 जलौका जन्मशतकं शुचिर्भवतु तत्परम् ॥ ९१ ॥

वृथा मांसं(तु)यो भुङ्क्ते स्वार्थपाकान्नमेव च । तत्रदत्तं महापापी प्राप्नोतुचन्द्रपातकम्
 स यातु चन्द्रपापेन चासीपत्रं चतुर्युगम् । ततो भवतु सर्पश्च पशुश्च सतजन्म च ॥९३

विप्रो घातृभुषिको यो हि योनिर्जावी चिक्त्सिकः ।

हरेर्नाम्नाञ्च विनेता यश्च वा स्वाङ्गविक्रयी ॥ ९४ ॥

स्वघर्मकथञ्चैव यश्च स्वान्मप्रांसकः । मसीर्जावी घावकश्च कुलटापीप्य एव च ॥
 तं यातु चन्द्रपापञ्च चन्द्रोऽभवतु विज्वरः । स यातु तेन पापेन शूलप्रातं सुदारुणम्
 ततो विद्वो भवतु स यावदिन्द्राञ्चतुर्दश । ततो दरिद्रो रोगी च दीक्षार्हानो नरः पशुः

लाक्षामांसरसानाञ्च तिलातां लवणस्थ च । अश्वानाञ्चैव लौहानां विक्रैतानरघातकः
 वीरश्च विप्रां वृष्टीशस्तं यातु चन्द्रपातकम् । स यातु तेन पापेन क्षुरधारं सुदुःसहम्
 तत्र छिन्नां भवतु स यावदिन्द्रसहस्रकम् । तस्मादुत्तीर्ष्य भवतु शृगालः सप्तजन्मसु ।
 सप्तजन्म च मार्जारो महिषो जन्मपञ्चकम् । सप्तजन्म च भल्लूकः कुक्कुरो सप्तजन्म च
 मत्स्यश्च जन्मशतकं कर्कटी जन्मपञ्चकम् । गोधिका जन्मशतकं गर्दभः सप्तजन्मसु ॥
 सप्तजन्म च मण्डूकस्ततश्च मानवोऽधमः । चर्मकारश्च रजकस्तैलकारश्च वार्दकी ॥
 नाविक. शवजीवी च व्याघ्रश्च स्वर्णकारकः ।

कुम्भकारो लौहकारस्ततः क्षत्रस्ततो द्विजः ॥ १०४ ॥

इतिचन्द्रशुचिकृत्वासमुवाचतारकाम् । त्यक्त्वा चन्द्रंमहासाध्यगच्छकान्तमितिद्विजः
 प्रायश्चित्तं विना पूता त्वमेव शुद्धमानसा । अकामा या बलिष्टेन न स्त्री जायेण दुष्यति
 इत्येवमुत्त्वा शुक्रश्च चन्द्रश्च तारकांस्तनीम् । सस्मितासस्मितश्चैव चकारचशुभाभिपम
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्यानं
 नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनपष्टितमोऽध्यायः

बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिष्यप्रेषणम् ।

नारद उवाच ।

बृहस्पति. किञ्चकार तारकाहरणानरे । कथं संप्राप तां सार्ध्वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
 श्रीनारायण उवाच ।

दृष्ट्वा विलम्बं तारायाः क्षान्त्याश्चापि गुरुः स्वयम् ।

प्रस्थापयामास शिष्यमन्यैपार्यञ्च स्वर्णदीम् ॥२॥

शिष्यो गत्वा स्वर्णदीञ्च संप्राप्य लोकधन्वतः । रुद्रह्याच स्वगुरुं तारकाहरणं मुने ॥

श्रुत्वा सुरगुर्वाता शशिना च प्रिया हताम् । मुहूर्तं प्राप मूर्च्छाञ्जनत सप्राप चेतनाम्
रुरोदौचै सशिष्यश्च हृदयेन विद्रूयता । शोकेन लज्जया विप्रो बिल्लाप मुहुर्मुहु ॥५॥

उवाच शिष्यान् सन्बोध्य नातिञ्च श्रुतिसम्भताम् ।

साश्रुनेत्र साश्रुनेत्रान् शोकार्त्तं शोककर्षितान् ॥६॥

बृहस्पतिस्वाच ।

हे वन्सा केन शतोऽह न जाने कारण परम् । दु ख धर्मविरुद्धो य सप्राप्तोतिनसशय
यस्य नास्ति सतीमाय्या गृहेषु प्रियवादिनी । अरण्य तेन गन्तव्य यथारण्यतथागृहम्
भावानुरक्ता धनिता हता यस्य च शत्रुणा । अरण्य तेन गन्तव्य यथारण्य तथा गृहम्
सुशीला सुन्दरी भार्या गता यस्य गृहाद्दहे । अरण्य तेन गन्तव्ययथारण्य तथागृहम्
दैवेनापहता यस्य पतिसाभ्या पतिव्रता । अरण्य तेन गन्तव्य यथारण्य तथा गृहम् ॥
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता । अरण्य तेनगन्तव्य यथारण्यतथागृहम्
प्रियाहीन गृह यस्य पूर्णं द्रविणग्रन्थुभि । अरण्य तेन गन्तव्य यथारण्य तथा गृहम् ।
भार्याशून्या वनसमा सभाय्याश्चगृहा गृहा । गृहिणा च गृह प्रोक्तन गृह गृहमुच्यते
अशुचि स्त्रीविहीनश्च दैवे पैत्र्यै च कर्मणि । यद्वा कुर्वते कर्म न तस्यफलभाग्भवेत्
दाहिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्द्रोहुताशन । प्रमार्ह नो यथासूर्य शोभाहीनो यथाशशी
शक्तिहीनो यथाजंबो यथावात्माननुविना । विनाऽऽधारयथाऽऽधेयोयथेश प्रकृतिं विना
न च शक्तो यथा यज्ञ फलदा दक्षिणा विना । कर्मणाञ्च फल दातु सामग्र्यमूलमेव च
विनास्वर्णस्वर्णकारोयथाशक स्वकर्मणि । यथाशक कुलालश्चमृत्तिकाञ्चविनाद्विजा
तथा गृही नशकश्च सन्तन सर्वकर्मणि । भार्यामूलाक्रिया सर्वा भार्यामूलागृहास्तथा
भार्यामूल सुखसर्वगृहस्थाना गृहे सदा । भार्यामूल सदाहर्षो भार्यामूलञ्चमङ्गलम्
भार्यामूलञ्चससारोभार्यामूलञ्चसौरभम् । यथारथञ्च रथिनागृहिणाञ्चतथागृहम्
सारथिस्तु यथा तेषा गृहिणाञ्च यथाप्रिया । सर्वरत्नप्रधाना च ह्रीरत्न दुष्कुलादपि
गृहीता सा गृहस्थेनैवेत्याह कमलोद्भव । यथा जल विना पद्म पद्म शोभा विना यथा
तथैव च गृहसुख गृहिणा गृहिणीं विना । इत्येवमुक्त्वा स गुरु प्रविवेश गृह मुहु ॥

गृहाद् वहिर्नि त्सार भूयोभूयः शुचान्वितः । मुहुर्मुहुश्च मूर्च्छाञ्च चेतनां समवाप सः
भूयोभूयोऽरगेदाञ्च स्मरंस्मारं प्रियामुणान् । अथान्तरंमहाज्ञानी ह्यनिभिश्चप्रयोधितः
सच्छिर्ष्यर्मनिभिश्चान्यैः पुरन्दरगृह ययौ । स गुरः पूजितस्तेन चातिध्येन मरत्वता ॥
तमुवाच स्ववृत्तान्तं हृदि शल्पमिवाप्रियम् । वृहस्पतिवच श्रुत्वा रक्तपङ्कजलोचनः ॥

तमुवाच महेन्द्रश्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥ ३० ॥

महेन्द्र उवाच ।

दूतानाञ्च सहस्रञ्च गच्छतु चारकर्मणि । अतीव निपुणं दक्षं तव्यप्राप्तिनिमित्तकम् ॥३१
यत्रास्ति पातकी चन्द्रो मन्मारातात्या सह । गच्छामि तत्र सन्नद्धः सर्वदेवगणैःसह
त्यज चिन्तां महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति । भद्रवीजं दुर्गमिदं फस्य सम्पद्विपद्विना ॥
इत्युनवाच सुनाशीरो दूतानाञ्च सहस्रकम् । तूर्णं प्रस्थापयामास तत्कर्मनिपुणं मुने ॥
ते दूताश्च वर्षशतं ययुर्निर्जनमेव च । सुदुर्लभ्यश्च विश्वेषु भ्रमित्वा शक्रमाययुः ॥३५
चन्द्रश्च शुक्रभवने तत्रप्रपन्नश्च विज्वरम् । इष्ट्वा सतारकं भीतं कथयामासुरीश्वरम् ॥
इति श्रुत्वा सुनाशीरो नतवक्रो वृहस्पतिम् । उवाच शोकसन्तप्तो हृदयेन विदूयता ॥

महेन्द्र उवाच ।

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि परिणामसुखावहम् । भयं त्यज महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति ॥
त्वयानहि जितः शुक्रो न मया दितिनन्दनः । एतदालोच्य चन्द्रश्च जगाम शरणं क्वचिम्
गच्छ शीघ्रं ब्रह्मलोकमस्माभिः सार्द्धमेवच । ब्रह्माणासहयास्याम कैलासे शङ्करं वयम्
इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च सन्तप्तो गुरुणा सह । जगाम ब्रह्मलोकञ्च सुखदृश्यं निरामयम् ॥
तत्र इष्ट्वा च ब्रह्माणं ननाम गुरुणा सह । प्रोवाच सर्ववृत्तान्तं देवानामीश्वरं परम् ॥
महेन्द्रवचनं श्रुत्वा जहास कमलोद्भवः । हितं तथ्यं नीतिसारमुवाच विनयान्वितः ॥

ब्रह्मोवाच ।

यो ददातिपरस्मै च दु एमेव च सर्वतः । तस्मै ददाति दु एञ्चशास्ता कृष्ण सनातनः ॥
अहं ऋष्टाच सृष्टेश्च पाता विष्णुः सनातनः । तथा रुद्रश्च भंहर्ता ददाति च शिवंशिवः ॥
निगन्तरं सर्पसाक्षी धर्माश्च सर्वकारणः । सर्वे देवा विषयिणः कृष्णाहापरिपालकाः ॥

बृहस्पतिरित्यथ संवर्त्तश्च जितेन्द्रियः । त्र्यञ्चाङ्गिरसः पुत्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥४९॥
संवर्त्ताय कनिष्ठाय न च किञ्चिद्ददौ गुरुः । स धभूव तपस्वीचध्यायते कृष्णमाश्वरम् ॥

उत्थस्य मध्यमस्य भाय्याञ्च गुर्विणीं सर्ताम् ॥

जहार कामतस्ताञ्च भ्रातृजायामकामुकीम् ॥ ४९ ॥

यो हरेदु भ्रातृजायाञ्च कामी कामदकामुकीम् । ब्रह्महत्यासहस्रञ्च लभते नात्रसंशयः ॥
स याति कुर्मापाकञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ । भ्रातृजायापहारी च मानुगामी भवेन्नरः ॥
तस्मादुर्त्तार्यपापाचविप्रायां जायनेकमि । वर्षकोटिसहस्रापितत्र स्थित्वा च पातकी
ततो भवेन्महापापी वर्षकोटिसहस्रकम् । पुंश्चलीयोनिगर्त्तत्र कृमिश्चैव पुरन्दर ॥ ५३ ॥
गृध्रः कोटिसहस्रापि शतजन्मानि कुङ्कुरः । भ्रातृजायापहरणाच्छतजन्मानि शूकरः ॥ ५४ ॥
यो न ददाति दायञ्च बलिष्ठो दुर्दलाय च । सयाति कुर्मापाकञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ
मा भुङ्क्ते क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभारुभम्
जगद्गुरोः शिवस्यापि गुरुपुत्रो बृहस्पतिः । ज्ञातं करोतु वृत्तान्तमोश्वरं बलिनाश्वरम्
सर्वे समूहाः देवानां सन्नद्धाश्च सवाहनाः । मध्यस्था मुनयश्चैव तिष्ठन्तु नर्मदातटे ॥

पश्चाद्ब्रह्मञ्च यास्यामि पुण्यञ्च नर्मदातटम् ।

गुरुस्तत् गुरुपुत्रोऽपि शीघ्रं यानु शिवालयम् ॥ ५६ ॥

महेन्द्र उवाच ।

कथं वा वेदकर्तुंश्च सिद्धानां योगिना गुरोः । मृत्युञ्जयस्यशम्भोश्च गुरुपुत्रो बृहस्पतिः
अङ्गिरास्तवपुत्रश्च तत् पुत्रश्च बृहस्पतिः । त्वत्तोऽज्ञानी महादेवः कथं शिष्यो गुरोःपितुः
ब्रह्मोवाच ।

कथेयमतिगुना च पुराणेषु पुरन्दर । इमां पुरा प्रवृत्तिञ्च कथयामि निशामय ॥६२॥
मृतवत्सा कर्मदोषाङ्गार्यावाङ्गिरसः पुरा । व्रत चकार साचैवं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
व्रतं पुंसवर्नं नाम वर्षमेकं चकार सा । सनत्कुमारो भगवान् कारयामास तां व्रतम् ॥
तदागम्य च गोलोकात् परमात्मा कृष्णमयः । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म मत्कानुब्रह्मिब्रह्मः ॥
सुव्रताञ्चसलर्म्हिकां तानुवाच कृष्णनिधिः । प्रणतांसाश्रुनेत्राञ्च विनीताञ्चनयास्तुतः

श्रीकृष्ण उवाच ।

गृहाणेदं व्रतफलं मम तेजसमन्वितम् । भुङ्क्ष्व मधुव्रतः पुत्रो भविष्यति मद्दंशतः ६७
पतिर्गुरुश्च देवानां बृहतां ज्ञानिनां वरः । पुत्रस्ते भविता साध्वि मद्दरेण बृहस्पतिः ६८
मद्दरेण भवेद्योहि स च मद्दरपुत्रकः । त्वद्गर्भे मम पुत्रोऽयं चिरजीवी भविष्यति ॥ ६९ ॥
वरजो वीर्य्यजश्चैव क्षेत्रजः पालकस्तथा । विद्यामन्त्रसुतोच्चैव गृहीतः सप्तमः सुतः ॥
इत्युत्ताराधिकांशः स्वलोकञ्च जगाम सः । श्रीकृष्णवरपुत्रोऽयं ज्ञानीश्वरगुरुः स्वयम्
मृत्युञ्जयं महाज्ञानं शिवाय प्रददौ पुरा ॥ ७१ ॥

दिश्यं वर्षत्रिलक्षन्व तपश्चक्रे हिमालये । स्वयोगं ज्ञानमखिलं तेजः स्वात्मसमं परम् ॥
स्वशक्तिं विष्णुमायाञ्च स्वांशन्व द्याहनं वृषम् ॥ ७२ ॥

स्वशूलञ्च स्वकवचं स्वमन्त्रं द्वादशाक्षरम् । कृपामयः स्तुतस्तेन श्रीकृष्णश्च परात्परः ॥
शिवलोके शिवा सा च विष्णुमाया शिवप्रिया ॥ ७३ ॥

शक्तिनारायणस्यैयं साविर्भूता सनातनी । तेजसु सर्वदेवानां साविर्भूता सनातनी ॥
जघान वैश्वानिकरं देवेभ्यः प्रददौ पदम् । कल्पान्ते दक्षकन्याच सामूलप्रकृतिः सर्ता ॥
पितृपञ्चेतनुं त्यक्त्वा योगेन सिद्धयोगिनी । बभूव शैलकन्यासा साध्वी च भर्तृनिन्दया
कालेन कृष्णतपसा शङ्करं प्रापसुन्दरी । श्रीकृष्णो हि गुरुः शम्भोः परमात्मा परात्परः ॥
कृष्णस्य वरपुत्रोऽयं स्वयमेव बृहस्पतिः । अतो हेतोः सुरगुरुर्गुरुपुत्रः शिवस्य च ॥ ७८ ॥
इत्येषं कथितं सर्वमतिगुह्यं पुरातनम् । इति प्रधानसम्बन्धः श्रुतश्च कथितो मया ॥
पारम्परिकमन्यञ्च कथयामि निशामय । दुर्वासा गरुडश्चैव शङ्करांशप्रतापवान् ॥ ८० ॥
शिष्यो चाङ्गिरसस्तीर्हो गुरुपुत्रोऽथ घाततः । प्राणाधिकायां सत्याञ्च मृतायां दक्षशापतः ।
स्वज्ञानं स्वञ्च भगवान् विसस्मार स्वमोहतः । स्मरणं कारयामास कृष्णेन प्रेरितोऽङ्गिराः
अतो हेतोर्गुरुश्चैव शिवस्य मनसुतश्च सः । शीघ्रं गच्छतु कैलासं स्वयमेव बृहस्पति ॥
त्वं गच्छ तत्र सन्नद्धः सद्देवो नर्मदातटम् । इत्युक्त्वा जगतां धाता विरगमच नागद् ॥
गुरुर्षयो च कैलासं महेन्द्रो नर्मदातटम् ॥ ८५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतित्वण्डे दुर्गोपाख्याने
एकौतमष्टितमोऽध्यायः ।

षष्ठितमोऽध्यायः

बृहस्पतेः शिवपुरगमनम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । निपीतञ्च सुधारयान तन्मुखेन्दुविनि सृतम् ॥
अधुनाश्रोतुमिच्छामि विमुचा च बृहस्पति । शिवञ्चगत्वा कैलासदातारसत्रसम्पदाम्
जगत्कर्त्ता विधाताच किंवा त प्रत्युवाचस । ण्तन् सर्वं समालोच्य चद वेदविदावर
नारायण उवाच ।

शीघ्र गत्वा च कैलास भएश्री शङ्कर गुर । प्रणम्य तस्यौ पुरतो लज्जामलिनविग्रह ॥
दृष्ट्वा गुरसुत शम्भुरदतिष्ठन् कुशासनात् । आलिङ्गन ददौ तस्मै शीघ्र मङ्गलमाशियम् ॥
स्यासने चासयित्वा च पप्रच्छ कुशल वच । उवाचमधुर वाक्य भीत त लज्जित शिव
श्रीशङ्कर उवाच ।

कथमेव विधस्त्वञ्च दुःखी मलिनविग्रह । साश्रुनेत्रो लज्जितश्च भ्रातस्तन् कारण चदा ॥
किंवातपस्याहीनाते सन्त्याहीनाऽथवा मुने । किंवा धारणसेवाचविहीना दैवदोषत
किंवा गुरौ भक्तिहीनोऽभीष्टदेवेऽथवा गुरौ । किंवा न रक्षितु शक्त प्रपन्न शरणागतम् ॥
किं वाऽतिथिस्ते विमुच किंवा पोष्या बुभुक्षिता ।

किंवा स्वतन्त्रा स्त्री वा ते किंवा पुत्रोऽवचस्कर ॥१०॥

सुशासितोनशिष्योवाकिंभृत्याश्चोत्तरदा । किंवातेविमुपालक्ष्मी किंवारणोगुरस्तव
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च शश्वत् सन्तुष्टमानस । गुरस्तव वशिष्ठश्च प्रेष्ठ श्रेष्ठ सतामहो ॥
किंवारणोऽभीष्टदेव किंवारणश्चब्राह्मणा । किंवारणवैष्णवाश्च किंवातेप्रवलोरिपु
किंवा ते बन्धुविच्छेदो विग्रहोवलिना सह । किंवा पद परप्रस्त किंवा बन्धुधनञ्चया ।
केनते वा वृत्ता निन्दा खलेन पाविना मुने । केन वा त्व परित्यक्त प्रियेणबान्धवेन वा
बन्धुस्त्यक्तस्त्वया किंवावैराग्येण क्षुधाऽथवा । किंवातीर्थेन हि क्त्वातन दत्तपुण्यवासरे

गुरुनिन्दाकन्धुनिन्दा खलवक्त्रात् धृताऽथवा । गुरुनिन्दा हि साधूना मरणादतिरिच्यते
 असद्व्यशप्रजाताना खलानां निन्दन तथा । दुःशीलमेवमसता शश्वन्नागकिणामिह ॥१८॥
 पृथुशसका सन्त पुण्यवन्तो हि भारते । शश्वन्मङ्गलयुक्ताश्च राजन्ते मनसा सदा ॥
 पुत्रे यशसि तोये च समृद्धे च पराक्रमे । ऐश्वर्य्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधनेषु च ॥
 पचनेषु च युद्धौ च स्वभावे च चरित्रत । आचारं व्यचहारे च ज्ञायते हृदय नृणाम् ॥२१॥
 यादृग्येपाञ्चद्वयतादृक् तेषाञ्चमङ्गलम् । यादृग्येपापूर्वपुण्य तादृक् तेषाञ्च मानसम् ॥
 इत्युनवा च महादेवो विरराम स्वससदि । तमुवाच महावक्ता स्वयमेव बृहस्पति ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

अकथ्यमेव वृत्तान्तं कथयामि किमीश्वर । लोका कर्मघशीभूतास्तत्कर्म यस्मिन् पुरा ॥
 स्वकर्मणा फलं भुङ्क्ते जन्तुर्जन्मनि जन्मनि । नहि नष्टञ्चतन्कर्म विना भोगाच्चभारते
 सुखं दुःखं भयं शोकं नराणां भारते प्रभो । केचिद्बदन्तीह भवे स्वकृतेन च कर्मणा ॥
 केचिद्बदन्ति देवेन स्वभावेनेति केचन । त्रिविधाश्च मता वेदे वेदवेदाङ्गपारग ॥ २७ ॥
 स्वयञ्चकर्मजनकस्तन्कर्म देवकारणम् । स्वभावो जायतेनृणाम् स्यात्तमन पूर्वकर्मण
 स्वकर्मणाञ्च सर्वेषां जन्तूनां प्रतिजन्मनि । सुखदुःखं भयं शोकं स्वात्मनश्च प्रजायते
 स्वकर्मफलभोक्ता च जीवो हि सगुण सदा । आत्मा भोजयिता साक्षी निर्गुणः प्रकृते पर
 स एवात्मा सर्वसेव्यः सर्वेषाञ्च फलप्रदः । स च सृजति देवञ्च स्वभायं कर्म एव च
 कर्मणाञ्च नृणां लज्जा प्रशसा च प्रफुल्लता । लज्जार्थं जञ्च वृत्तान्तं तथापि कथयामि ते ॥
 इत्युन्वा सर्ववृत्तान्तमुवाच तं बृहस्पति । श्रुत्वा यभूय नम्रास्योगौरीशो लज्जया तदा ॥
 जयमाला कराद् भ्रष्टा कोपाविष्टस्य शूलिनः । यभूय सद्यः कर्म्यश्च रत्नपङ्कजलोचने ॥
 सहस्रं तुरीशोऽद्वैतस्य विष्णोः पानु सखाशिवः । क्वष्टु स्तुत्यश्च मान्यश्च स्वात्मनः परमात्मनः ॥
 निर्गुणस्य च कृष्णस्य प्रकृतीशस्य नारदः । कोपात् प्रथकुमारं भे शुष्ककण्ठीप्यतलुक
 शिष्य उवाच ।

शिवमस्तु च साधूना वीष्णवानां सतामिह । अवैष्णवानामसतामशिवञ्च पदे पदे ॥
 ददाति वीष्णवेभ्यश्च योद्दुःखं मुस्थितो जनः । ध्रीः कृष्णस्तस्य सहस्रां विद्मस्तस्य पदे पदे ॥

अवैष्णवानां हृदयं नहि शुद्धं सदा मलम् । श्राद्धेष्णमन्त्रस्मरणं मनो नैर्मल्यकारणम् ॥
 भिद्यते हृदयप्रवृत्तिश्छिद्यते सर्वसंशयः । विष्णुमन्त्रोपासनया क्षीयते कर्म तन्नृणाम् ॥
 अहो श्राद्धेष्णदासानां कः स्वभावः सुनिर्मलः । हतभार्यमूर्च्छितञ्चन शशापरिपुंगुः
 गुरुर्यस्य वशिष्ठश्च क्रोधहीनश्च धार्मिकः । हन्तारञ्च पुत्रशतं न शशापरिपुंगु निः ॥४२
 निश्वासेन सुरगुरोर्भ्रातुर्मम बृहस्पते । भस्मीभूतो निमेषेण शतचन्द्रो भवेद् ध्रुवम् ॥
 तथापि तं न शशाप धर्मभङ्गभयेन च । तपस्या हीयते शत्रुः कौपाषिष्ठस्य निन्यशः ॥
 अहो ह्यत्रैरसत्पुत्रः परस्त्रालुञ्चकः शठः । तपस्विनो वैष्णवस्य ब्रह्मपुत्रस्य धर्मिणः ॥
 धर्मिष्ठा ब्रह्मणः पुत्रा वैष्णवा ब्राह्मणास्तथा । केचिद्देवा द्विजादैत्याः पूर्वाश्च त्रिविधामताः

ये सास्विका ब्राह्मणास्ते देवा राजसिकास्तथा ।

दैत्यास्तामसिका रौद्रा बलिष्ठाः चोद्धता मताः ॥४७॥

स्वधर्मनिरता विप्रा नारायणपरायणाः । शैवाः शाक्ताश्च ते देवादैत्याः पूजाविवर्जिताः ॥

मुमुक्षुवो विष्णुभक्ता ब्राह्मणा दास्यलिप्सवः ।

ऐश्वर्यलिप्सवो देवाश्चासुरास्तामसास्तथा ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कृष्णस्यार्चनमीप्सितम् ।

निष्कामानां निर्गुणस्य परम्य प्रकृतेरपि ॥५०॥

ये ब्राह्मणा वैष्णवाश्च स्वतन्त्राः परमंपदम् । यान्यन्योपासकाश्चान्यैः सार्द्धञ्च प्राकृते लये ॥

घर्णानां ब्राह्मणाः श्रेष्ठाः साधवो वैष्णवा यदि । विष्णुमन्त्रविहीनेभ्यो द्विजैर्भ्यः श्वपचोचरः

परिपक्वा विपक्वा वा वैष्णवाः साधवश्च ते । सन्तं पाति तांश्चैव विष्णुवक्त्रं सुदर्शनम्

यथा घर्णा शुक्लतृणं भस्मीभूतं भवेन् सदा । तथा पापं वैष्णवे पुकाष्ठानां बहुताशने ॥

शुक्लवक्त्रान् विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रवेश्यति । तत्रैष्णवमहापूतं प्रवृत्तिमर्तापिणः ॥

पुंसां शतं पितृणाञ्च शतं मातामहस्य च । स्वसोदराञ्च जननीमुद्धरन्त्येव वैष्णवाः ॥

गयायां पिण्डदानेन पिण्डदाः पिण्डभोजिनम् ।

समुद्धरन्ति पुंसाञ्च वैष्णवाश्च शतं शतम् ॥५१॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यमस्तम्भान्महार्भातो वैननेयादिवोरगः ॥५८

निष्पुनन्त्येव तीर्थानि गङ्गादीनि च भारते ।

कृष्णमन्त्रोपासकाश्च स्पर्शमात्रेण वाक्पते ॥१६॥

पापानि पापिनां तीर्थं यावन्ति प्रभवन्ति च ।

नश्यन्ति तानि सर्वाणि वैष्णवस्पर्शमात्रतः ॥६०॥

कृष्णमन्त्रोपासकानां रजसा पादपद्मयोः । सद्योमुक्तापातकेभ्यः कृत्स्ना पूतावसुन्धरा ॥

वायुश्च पवनो बहिः सूर्यः सर्वं पुनानि च । एते पूतावैष्णवानां स्पर्शमात्रेण लीलया

अहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम् ।

एते हृष्टाश्च वाञ्छन्ति वैष्णवानां समागमम् ॥६३॥

फलं कर्मानुरूपेण सर्वेषां भारते भवेत् । न भवेत्तद्वैष्णवे च सिद्धधान्ये यथाङ्कम् ॥

इन्ति तेषां कर्म पूर्वं भक्तानां भक्तवन्सलः । कृपया स्वपदं तेभ्योददात्येव कृपानिधिः

तेजस्विनाश्च प्रवरं वैष्णवं भृगुनन्दनम् । स चन्द्रो दुर्बलो भीतः शुक्रञ्च शरणं ययौ ॥

सुदर्शनाद् यलिष्टञ्च शुक्रं जेतुं न शक्तिमान् । तथापिचोद्धरिष्यामितारांमन्त्रणयागुरो ॥

भजसत्यं परं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् । सुप्रसन्ने भगवतिपत्नीं प्राप्स्यसिर्लीलया ॥

मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम् । कोटिजग्मावनिगञ्चसर्वमद्गुलकारणम् ॥

ब्रह्मादिस्तभ्यपठ्यन्तं नश्वरं जलविभवत् । शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानमीश्वरम्

तावद्भवेच्छा भोगेच्छा स्त्रीसुखेच्छा नृणामिह ॥७०॥

यावद्गुणमुखाभोजान्तं प्राप्नोति भक्तुं हरेः । संप्राप्यदुर्लभंमन्त्रं वितृष्णोहि भवेन्नरः ॥

इन्द्रत्वममत्यञ्च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः । नहिवाञ्छन्तिमोक्षञ्चदास्यंभक्तिविनाहरेः

भक्तिनिर्मञ्छन्तंभक्तोत्करोतिचमोक्षणम् । ज्ञानंमृत्युञ्जयत्वञ्चसर्वसिद्धित्वमीप्सितम् ॥

वाक्सिद्धित्वञ्च ब्रह्मत्वं भक्तानां न हि वाञ्छितम् ।

भक्तिं विहाय कृष्णम्य विषयं यो हि वाञ्छति ॥७४॥

विषमन्ति सुधां त्यक्त्वा चञ्चितीं विष्णुमायया ॥७५॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः । कपिलश्च कुमारश्च नरनारायणावृषी ।

म्यायम्भुवो मनुश्चैव ब्रह्माश्च पराशरः ॥७६॥

भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वशिष्ठःऋतुरङ्गिराः । बलिश्च बालखिल्याश्चवरणश्च हुताशनः ॥
वायुः सूर्यश्च गरुडो दक्षो गणपतिः स्वयम् । एते पराभक्तवराःकृष्णस्यपरमात्मनः ॥
ये च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्भक्तिपरायणाः । इत्युक्त्वाशङ्करस्तस्मै दर्शो कल्पतरुं मनुम्
लक्ष्मीमायाकामयोजं डेन्तं कृष्णपदं मुने । परं पूजाविधानञ्चस्तोत्रञ्च कवचं मुने ॥
तत्पुरश्चरणं ध्यानं सिद्धे मन्दाकिनीतटे । गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शङ्कराच्चजगद्गुरोः ॥

वितृष्णो हि भवाञ्छ्रीं च बभूव तमुवाच ह ॥८०॥

वृहस्पतिरुवाच ।

आत्रा कुरु जगन्नाथ यामि तनुं हरेस्तपः । तारा तिष्ठतु तत्रैव न तथा मे प्रयोजनम् ॥
पश्यामि विपतुल्यञ्च सर्वं नश्वरमीश्वर । श्रीकृष्णंशरणं यामि सत्यं नित्यञ्च निर्गुणम्
श्रीमहादेव उवाच ।

परप्रस्तां ह्वयं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने । सम्भावितस्यदुश्चर्चां भ्रमणादतिरिच्यते ॥
पुरो गच्छ महाभाग तमेव नर्मदातटम् । यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्राहं यामि सन्धरम् ॥
शिवस्य वचनं श्रुत्वा ययौ सुरगुरुः स्वयम् । आययौ च महाभागः शङ्करो नर्मदातटम्
सगणं शङ्करं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा ॥८१॥

नताम शम्भुः शिस्ता विष्णुञ्च कमलोद्भवम् ।

दर्शो विष्णुर्महेशाय प्रेम्णालिङ्गनमाशिषम् ॥८२॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्च वृहस्पतिः । प्रणताम महादेवं विष्णुञ्च कमलोद्भवम् ॥
सूर्यं धर्ममनन्तञ्च नरं माञ्च मुनीश्वरान् । स्वगुहं पितरं भक्त्यावोवास तत्र संसदि
सञ्चिन्त्य मनसा युक्तिमुवाचतत्रसंसदि । स्वयंविष्णुश्चभगवान्ब्रह्माणं चन्द्रशेखरम् ॥

विष्णुरुवाच ।

युवाञ्च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं त्वरा । शुक्रं कञ्चिच्चमध्यस्थं प्रस्थापयितुमर्हसि ॥८३॥
विप्रहेणैव विप्रमं भविष्यति न संशयः । मदाशिषा सुरगुरस्तारांप्राप्स्यतिनिश्चितम् ॥
सुरैस्स्तुतश्च सन्तुष्टः शुकावाप्यौ भविष्यति । सुरैःशुक्रो नजितश्चकृष्णचक्रेण रक्षितः
युवाभ्यां प्रार्थ्यमानोऽहं युधयोः स्तवनेन च । श्वेतर्षीपादागतोऽस्मि परितुष्टस्तवेन च

शुक्राश्रममस्तीपणं सर्वा गच्छन्तु देवताः ॥६६॥

रिपुर्बलिष्ठ स्तोत्रेण वशीभूत इति श्रुतिः । इत्युक्त्वा जगतां नाथ स्तत्रैवान्तरधीयत ॥
स्तुतो ब्रह्मादिभिर्देवैः प्रणतैः परिपूजितः । गते च जगतां नाथे श्वेतदीपञ्च नारदा ॥६८

चिन्तिताश्च सुरा सर्वे विपण्णमानसास्तथा ।

मुनीन् देवाश्च सर्वोध्य ब्रह्मा च तत्र संसदि ॥६९॥

उवाच नीतिसारञ्च सम्मन शङ्कोण सः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच ।

ममशमोश्चविष्णोश्चधर्मस्यसर्वसाक्षिणः । अस्माकञ्चसम स्नेहोदैत्यैदेवेच पुत्रकाः ॥

दैत्यानाञ्च गुरो शुक्रे प्रपन्नश्च निशाकर । न जितश्चसुरैः शुक्र पूजितोदितिनन्दनैः ॥

ताराहेतोरहं यामि शुक्रस्य भवन सुरा । सर्वे समुद्रपुलिनं यान्तु विष्णोर्निदेशत ॥

इत्युक्त्वा जगता धाता जगाम शुक्रसन्निधिम् । प्रययुर्देवता विप्रा समुद्रपुलिनं मुने ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तारोद्धारण

प्रस्तावे षष्टितमोऽध्यायः ।

एकषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मणः शुक्रगृहे गमनम् ।

नारद उवाच ।

ततः पर किं रहस्यं बभूवासुखदेवयोः । श्रोतुमिच्छामि भगवन् पर कौतूहलं मम ॥१॥

नारायण उवाच ।

ब्रह्मा जगाम निलयं शुक्रस्य च महात्मनः । नानादैत्यगणाकाणं रत्नमन्दिरभूषितम् ॥

पञ्चाशन्कोटिमि शिष्यैः परेतं ब्रह्मवादिभिः ।

सप्तभिः परिखामिश्च वेष्टिनं दुर्गमेव च ॥३॥

रक्षितं रक्षकगणैर्दैत्यैश्च शतकोटिमिः ॥४॥

पद्मरागविरचितैः प्रार्च्यैः परिशोभितम् । दर्शं जगतां धाता सभायां भृगुनन्दनम् ॥

स्तुतं मुनिगणैर्दैत्यै रत्नसिंहासनस्थितम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥६॥

शनसूर्यप्रभं शश्वज्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । दृष्ट्वा पौत्रं प्रभायुक्तं विधाता हृष्टमानसः ।७॥

आत्मानं कृतिनं मेने पुत्रं पौत्रञ्च नारद । दृष्ट्वा पितामहं शुक्रो धातारं जगतां प्रभुम् ॥

उत्थाय सहसा भीत प्रणनाम पुट्राञ्जलिः । प्रदाय पूजयामास चोपचाराणि षोडश ॥

तुष्टाव परया भक्त्या सम्भ्रमेण यथागमम् ।

विद्यामन्त्रप्रदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥१०॥

स्वकर्मणाञ्च फलदं सर्वेषा विश्वतो वरम् । शुक्रस्य स्तवनेनैव सन्तुष्टो जगतां पतिः

यवद्वारथात्तूर्णमुवाच तत्र संसदि । शुक्रेण शिरसा दत्ते रत्नसिंहासने वरं ॥ १२ ॥

तेजसा ज्वलिते रम्ये निर्मिते विश्वकर्मणा । शुक्रः प्रणम्यब्रह्माणं कुमारं शकुनंक्रतुम्

चशिष्टञ्च मरोचञ्च सनन्दञ्च सनातनम् । कपिलञ्च पञ्चशिखं षोडशमङ्घ्रिसं मुने ॥ १४ ॥

धर्मं माञ्च नरं भक्त्या प्रणनाम पुट्राञ्जलिः । प्रत्येकं पूजयामास सादरञ्च यथोचितम् ॥

सिंहासनेषु रत्नेषु वासयामास धार्मिकः । प्रहृष्टवदनाः सर्वे प्रणेमुर्दितिनन्दनाः ॥१६॥

ऋषिसंघाश्च ब्रह्माणं तुष्टुञ्च यथागमम् । सर्वान् संस्तूय स कविरवाच सम्पुट्राञ्जलिः

साश्रुनेत्रः सपुलकः प्रणतो विनयान्वितः ॥ १८ ॥

शुक्र उवाच ।

अद्य मे सफलंजन्मजीवितञ्चसुजीवितम् । स्वयं विधाता भगवान्साक्षाद्दृष्टःस्वमन्दिरे

साक्षाद् दृष्टाञ्च तत्पुत्रा भगवन्त सनातनाः । तुष्टः कृष्णोऽद्यमामेवं परमात्मापरत्परः

दृतायं कर्तुमीशानां युष्माभिःस्वागतं शिशुम् । स्वात्मारामेषु कुशलंप्रक्षमेयविडम्बनम्

पवित्रं कर्तुमीशानां हेतुरागमने तव । अपरं ब्रूहि किं वापि शाधि नः करवाम किम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

उद्विग्नाश्चिद्विच्छेदात्त्वां पौत्रं द्रष्टुमागतः । विच्छेदः पुत्रपौत्राणां मरणादतिरिच्यते ।

कुशलं ते मुनिश्रेष्ठ पुत्रयोश्चापि योषितः । कुशलं ते स्वकर्माणं काम्यानां तपसामपि

दिने दिनेपरिच्छिन्ना श्रीकृष्णार्चनार्मीप्सितम् । स्वगुरोः सेवनंनित्यमधिच्छिन्नंभवेत्तव
 गुर्विष्टयो पूजनञ्च सर्वमङ्गलकारणम् । पापाधिरोगशोकघ्नं पुण्यहर्षप्रदं शुभम् ॥२६॥
 अर्माष्टदेव सन्तुष्टो गुरो तुष्टे नृणामिह । इष्टदेवे च सन्तुष्टे सन्तुष्टाः सर्वदेवता ॥
 गुरर्विप्र सुरोरष्टां येषां पातकिनामिह । तेषाञ्च कुशलं नास्ति विप्रस्तस्य पदे पदे ॥
 तुष्टश्च सन्तत घत्स श्रीकृष्णप्रकृते परः । सर्वान्तरात्मा भगवांस्तव भक्त्या च निर्गुणः
 तव तुष्टो गुरुरह विधाता जगतामपि । मयि तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे तु देवताः ॥३०
 साम्प्रत शृणु मे हेतुं गमनस्य मुनीश्वर । प्रेषितस्य सुराणाञ्च विश्वसंहर्तु रैव च ॥३१॥
 शिवस्य गुरुपुत्रस्य साध्वी तारां बृहस्पतेः । अपहृत्य निशानाथस्तत्रैव शरणागतः ॥
 शम्भुर्धर्मश्च सूर्यश्चशक्रोऽनन्तश्चपुत्रक । आदित्या वसधोरद्रादिक्पालाश्चदिर्गाश्वराः
 गुद्धापायान्ति सन्नदास्तिध्रः कोट्यश्चदेवताः । नागाःकिम्पुरपाश्चैव यक्षराक्षसगुह्यकाः
 भूता प्रेता पिशाचाश्चकुम्भाण्डाःप्रहाराक्षसाः । किराताश्वैवगन्धर्वा समुद्रपुलिनेऽधुना
 ताक्कामयसंप्राने मध्यस्थोऽहं सुतैः सह । देहि तारां रणं किं घा त्यजचन्द्रश्च कामिनम्
 शुक्र उवाच ।

आगच्छन्तु सुरा सर्वे सन्नदा रणदुर्मदाः । योत्से विना भद्रेशञ्च सर्वेषाञ्च गुरुं परम्
 दैत्या उचुः ।

उभयेषां गुरुः शम्भुर्मान्यो घन्द्यश्च सर्वदा । धर्मश्च साक्षा सर्वेषां त्वमेव च पितामह
 अन्याश्च तृणनुव्यांश्च नहिमन्यमहैवयम् । आगच्छन्तुचयोत्स्यातो ब्रजद्रुहिजगद्गुरो
 कृपया गुरुपुत्रस्य यद्यत्याति महेश्वरः । अग्नेनाखं विधास्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे प्रभो
 ब्रह्मोवाच ।

कालाग्निरद्रः संहर्त्ताविश्वस्यवलित्नां घटः । हे घत्सास्तेनमार्द्धञ्च कोवायुद्धंकरिष्यति
 भद्रकाली जगन्माता खड्गपरंरघारिणी । तथा दुर्द्धर्या साद्धं को वा युद्धं करिष्यति ॥
 सा सहस्रभुजा देवी मुण्डमाला विभूषणा । योजनायतवचन्या च दशयोजनविस्तृता ।
 सन्ततालप्रमाणाश्च यस्या दन्ता भयानकाः । कौशप्रमाणाजिह्वा च महालोला भयङ्करी ॥
 अतीव रोद्राः सन्नदा भीमाः शङ्करकिङ्करा । अतिभीमा भैरवाश्च नन्दी च रणकर्कशाः

तारा भिक्षा दाह नद्वा भिक्षुकायच ब्रह्मणे । विमुखे भिक्षुके राजन् गृहस्य सर्वपापभाक्
सनत्सुमार उवाच ।

स्वकात्तिभगानेन्द्र सिंहस्त्वसुरदैत्ययो । यस्य भिक्षुर्जगद्धाता तस्यकीर्तिश्चकाकथा
सनातन उवाच ।

न नितस्त्व सुरेन्द्रेश्च ब्रह्मेशानपुगेगमै । रक्षित वृष्णचक्रेण वैष्णव पुण्यवान् शुचि
सनन्द उवाच ।

यस्योपदेव सवात्मा धाकृष्ण प्रकृत पर । गुरुश्चवैष्णव शुक्र स च केनजितोमहान्
सनक उवाच ।

पुण्यवान्न नित केन नितपार्वीस्वपातकै । पुण्यदापो न निर्वाति पाण्डनेनैव धायुना
ऋषय ऊचु ।

देहि तारा महाभाग चन्द्र प्राणाधिकगुरो । स्वकात्ति रक्ष मुचिर प्रार्थयाम् पुन पुन
प्रहाद उवाच ।

स्थिते मदाद्वरे साक्षाद्गहि भृत्यो विराजते । कत्तार ग्रूहि मनाथ गुरु शुक्र सता परम्
शिष्याणामाधिपत्ये च साधुतां गुरुरीश्वर । गुरो समर्पित पूनं सर्वैश्वर्यं मुनीश्वरे ।
वप भृत्याश्चपोष्याश्चस्वगुरो परिचारका । ते चशिष्या कुशालिनो गुर्वाङ्गापाल्यन्त्ये
प्रहादस्य वचं श्रुत्वा चकार प्रार्थना कविम् ।

ददौ शुक्रश्च तारा ता चन्द्रश्च मलिन मुने ॥ ७६ ॥

दत्त्वा तारा विष्णु शुक्र प्रणताम विधे पदे । नमस्कृत्य मुनिभ्यश्च प्रणत स्वपुर ययौ ।
प्रहाद स्वगणो भक्त्या नमस्कृत्य विधे पदे ॥ ७७ ॥

प्रत्येकञ्च मुनिगणान् प्रणत स्वगृह ययौ । ब्रह्मा ददर्श ताराञ्च प्रणता स्वपदे सताम् ।
लज्जया नम्रवक्त्राञ्च रदतीं गुर्चिणीं मुने ॥ ७८ ॥

चन्द्रश्च प्रणत धाता क्रौडे सस्थाप्य मायया । उवाच मलिना तारा कातराञ्चट्टपामय
तारे त्यज भय मातर्मय किंते मयि स्थिते । सर्वभाग्ययुक्तास्यपती भविष्यसि घरेण मे
दुष्यगमलिना प्रस्तानिष्कामा नच युतामचेत् । प्रायश्चित्तेनशुद्धास्तान्खी जारणदु प्यति

सकामाकामतो जारं मज्जतेस्वसुखेनच । प्रायश्चित्ताग्निशुद्धास्ता स्वामिना परिवर्जिता ॥
कुम्भीपाके पच्यते सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ । अन्नं विप्रा जलं मूत्रं स्पर्शनं सर्वपापदम् ॥
पापीयस्याश्चतस्याश्च साधुभिः परिवर्जितम् । कस्यगर्भं वद शुभे गच्छवत्सेगुरोर्गृहम् ॥
त्यज लज्जां महामागे सर्वञ्च प्राक्तनाद्भवेन् । ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा समुवाच सतीतदा ॥
चन्द्रस्य गर्भं हेतात विमर्मि दैवयोगत । सर्वे मे साक्षिणः सन्ति दुर्बलायाः प्रजापते ॥
यदा जग्राह चन्द्रोमां द्याहीनश्च दुर्मति । इत्युक्त्वा तारका देवी सुपाव कनकप्रभम् ॥
कुमारं सुन्दरं तत्र ज्वलन्तं ब्रह्मणेजसा । गृहीत्वा तनयं चन्द्रो नत्वा ब्रह्माणमीश्वरम् ।

जगाम स स्वभवनं ब्रह्मा सिन्धुतटं ययौ ॥८८॥

साध्वीं ताराञ्च गुरवे देवेभ्योऽप्यमयं ददौ ॥ ८९ ॥

आशिपं शम्भुधर्माग्यां ब्रह्मलोकं ययौ विधिः । देवा ययुः स्वभवनं स्वगृहञ्च बृहस्पतिः
भावानुरक्तवनितां संप्राप्य हृष्टमानसः । तारकागर्भसंभूतः सव च बुधः स्वयम् ॥९१॥
तेजस्वी सद्गुणो ब्रह्मश्चन्द्रस्य तनयो महान् । स एव नन्दनवने चित्रां संप्राप्य निर्जने ॥
घृतान्या गर्भसंभूतां कुशेरस्य च रेतसा । दृष्ट्वा च निर्जने रम्यां कन्यां कमललोचनाम् ॥
अतीव यौवनस्थाञ्च धालां द्वादशार्थिकीम् । गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राहविधोःसुतः
तस्यामतीव रहसि वीर्याधानं चकार सः । बभूव राजा चित्रायां चैत्रश्च मण्डलेश्वरः
सतद्दीपवतीं पृथ्वीं प्रशास्ति धार्मिको बली । शतनद्यो घृतानाञ्च दग्धो नयः शतानि च
शतानि नद्यो दुग्धनां मधुनद्यश्च षोडश । दश नयश्च तैलानां शर्करा लक्षराशयः ॥
मिश्राज्ञानां स्वस्तिकानां लक्षराशिश्च नित्यशः । पञ्चकोटिगवांमांसं सपूर्णं स्वान्नमेव च ॥
पनेयाञ्च नदीराशीभुञ्जते ब्राह्मणा मुने । गवांलक्षञ्च रत्नानां मर्षानां लक्षमेव च ॥९६॥
शतलक्षं सुवर्णानां लक्षञ्च सूक्ष्मवाससाम् । रत्नानां भूषणं पात्रमतीव सुमनोहरम् ॥
ददौ द्विजातये राजा नित्यञ्च जीवनावधि । तस्य चैत्रस्य पुत्रश्च राजाधिरथ एव च ॥
तस्य पुत्रश्च सुरथश्चक्रवर्ती बृहत्शुक्लवाः । महाज्ञानञ्च संप्राप्य मेघसात्मुनिसत्तमात्
मेजे पुरा विष्णुमायां पुण्यक्षेत्रे च भारते । शतकाले महापूजाञ्चकार स सरित्तेटे ॥
चैश्येन साद्धं स महान् ज्ञानिनामुनिसत्तम । राजाकलिङ्ग देशस्य विराथश्च विशांवरा ॥

तस्यपुत्रो मयागी द्रुमिणो ज्ञानिनाथ । द्रुमिणो वैष्णव प्राज्ञः पुष्करे दुष्करतपः ॥
 वृत्त्यासमाधि सप्रापज्ञानिना वैष्णवाग्रणीम् । पुत्रदारैर्निरस्तध्वंशलोमाद्दुःखतमि
 स च काटिसुवर्णञ्च नित्यदत्त्वा जलपयो । मुक्तिं सप्रापससेव्य विष्णुमायासनातनीम्
 रानाले मे मनुत्वञ्चराय्य निष्कण्टक मुने । उवाच मधुरवाक्य धाता त्रिजगतापति ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गापारत्याने

एक्यष्टितमोऽध्यायः ।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

राज्ञः सुरथस्य वैश्यसमाधेश्च विवरणम् ।

नारद उवाच ।

कथं राजा महाज्ञानसप्राप मुनिसत्तमान् । वैश्यो मुक्तिं मेघसाक्षतन्मे व्याप्यातुमर्हसि

थानारायण उवाच ।

ध्रुवस्यपीत्रो बलवान् नन्दिरुक्लनन्दन । म्वायम्मुघमनोवैश सत्यवादी जितेन्द्रिय
 बक्षीहिणीना शतक गृहीत्या सैन्यमेव च । लोकाश्च वैष्ट्यामास सुरथस्य महामते ॥
 युद्ध यभूष नियत पूर्णमध्वञ्च नारद । चिरर्जीवी वैष्णवश्च त्रिगाय सुरथ नृप ॥ ४ ॥
 एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च बहिष्कृत । निशाया ह्यमारुह्य जगाम गहन वनम् ॥
 ददर्श तत्र वैश्यञ्च पुष्पभद्रानदीतटे । तयोर्दभूव सप्रीति वृत्त्याध्वयोऽने ॥ ५ ॥
 वैश्येन साद्धं नृपतिर्नगम मेघसाध्रमम् । पुष्करे दुष्करे पुण्यक्षेत्रे च भारते सताम् ॥
 ददर्श तत्र नृपतिर्मुनिं तर्ह्यनेजसम् । शिष्येभ्यश्च प्रयोचन्त ब्रह्मतरु सुदुर्लभम् ॥
 राजाननामवैश्यश्च शिरस्तामुनिपुङ्गवम् । मुनिरतो पूजयामास ददौ ताम्ब्या शुभाशिरम् ॥
 प्रश्नं चकार कुशलं जाति नाम पृथक् पृथक् । ददौ प्रत्युत्तर राजा त्रमेण मुनिपुङ्गवम्

सुरथ उवाच ।

राजाऽहं सुरथो ब्रह्मक्षेत्रवंश समुद्भव । वहिर्भूतं स्वराज्याच्च नन्दिना बलिनाधुना ॥
 किमुपायंकरिष्यामि कथं राज्यंभवेन्मम । तन्ना ब्रूहि महाभाग त्वय्येवशरणागतम् १२
 अयं वैश्यः समाधिञ्च स्वगृहाच्च वहिष्कृत । पुत्रैः कलत्रैर्देवेन धनलोभेन धार्मिकः ॥
 ब्राह्मणाय ददौ नित्यं रत्नकोटिं दिने दिने । निषिद्धमानः पुत्रैश्च कलत्रैर्धान्यवैरयम् ॥
 कोपान्निराहृतस्तैश्च पुनरन्वेषित शुचा । अयं गृहञ्चन ययौ विरक्तो ज्ञानवान् शुचिः ॥
 पुत्राश्च पितृशोकेनगृह त्यक्त्वा ययुर्वनम् । दत्त्वा धनानि विप्रेभ्योविरक्ताः सर्वकर्मसु ॥
 सुदुर्लभं हरेर्दास्यं वैश्यस्यास्य च वाञ्छितम् ।

कथंप्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

श्रीमेधस उवाच ।

करोतिमायताच्छ्रद्धंविपुमायादुस्त्यया । निर्गुणस्यचकृपणस्य त्रिगुणाविश्वमाज्ञया ॥
 कृपां करोति येषांसा धर्मिणाञ्चकृपाभया । तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम् ॥
 येन मायाविनांमाया न करोति कृपां नृप । माययातामिन्द्रयाति मोहजालेन दुर्गतान् ॥
 नखरे नित्यसंसारे भ्रमेण चर्वरा सदा । कुर्वन्ति नित्यबुद्धिञ्च विहाय परमेश्वरम् ॥
 देवमन्यं निषेवन्ते तन्मन्त्रञ्च जपन्ति च । मिथ्याकिञ्चिन्निमित्तञ्च रत्वा मनसिलोभतः
 हरेः कलाः देवताश्च निषेव्य जन्म सप्त च । तदा प्रकृत्या कृपया सेवन्ते प्रकृतिं तदा
 निषेय विष्णुमायाञ्च सप्तजन्म कृपाभया । शिवे भक्तिं लभन्ते ते ज्ञानानन्दे सनातने
 ज्ञानाधिष्ठातृदेवञ्च निषेव्य शङ्करं हरेः । अचिराद्विष्णुभक्तिञ्च प्राप्नुवन्ति महेश्वरात्
 सेवन्ते सगुणं सत्त्वं विष्णुं विप्रयिण तदा । सन्त्यज्ञानाच्चपश्यन्ति ज्ञानञ्चनिर्मलंनराः
 निषेव्य सगुणं विष्णुं सात्त्विका वैष्णवा नराः । लभन्ते निर्गुणैर्भक्तिं श्रीकृष्णैः प्रकृतेः परै
 कुर्वन्ति ब्रह्मणं सन्तो मन्त्रं तस्य निरामयम् । निषेव्य निर्गुणं देवं ते भवन्ति च निर्गुणाः
 अमनस्यब्रह्मणः पानं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः । दास्यं कुर्वन्ति सततं गोलोके च निरामये
 कृष्णभक्तान् कृष्णमन्त्रं यो गृह्णाति नरोत्तम । पुरुषाणांसहस्रञ्च स्वपितृणां समुद्धरेत्
 मातामहानां पुरुषं सहस्रं मातरं तथा । दासादिकं समुद्धृत्य गोलोकं स प्रयाति च ॥

भवार्णवे महाघोरे कर्णधारस्वरूपिणी । पारं करोति दुर्गातानकृष्णभक्त्या च नौकया
 स्वकर्मबन्धन छेत्तुं वैष्णवानाञ्च वैष्णवी । तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपासाकृष्णस्यपरमात्मनः
 विवेचनाचावरणी शक्तेः शक्तिर्द्विधा नृप । पूर्वं ददाति भक्ताय चैतराय परां परा ॥३४
 सत्यस्वरूप श्रीकृष्णस्तस्मात् सर्वञ्च नश्वरम् । बुद्धिर्विवेचनेत्येषं वैष्णवानांसनातनी
 नित्यरूपा मयेयं श्रीरिति चावरणी च धीः । भवैष्णवानामसतां कर्मभोगभुजामहो ।
 अहं प्रचेतस पुत्रं पौत्रञ्च ब्रह्मणो नृप । भजामि कृष्णमात्मानं ज्ञानं संप्राप्य शङ्करात्
 गच्छ राजन् नदीतीरं भज दुर्गां सनातनीम् ।

बुद्धिमावरणी तुभ्यं देवी दास्यति कामिने ॥ ३८ ॥

निष्कामाय च वैश्याय वैष्णवायच वैष्णवी । बुद्धिं विवेचना शुद्धादास्यत्येषकरूपामयी
 इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठोददीताभ्यां कृपानिधिः । पूजाविधान दुर्गाया स्तोत्रञ्चकवचंमनुम्
 वैश्यो मुक्तिञ्च संप्रापतानिपेत्यकृपामयीम् । राजा राज्यं मनुत्तञ्चपरमैश्वर्य्यमाप्सितम्
 इत्येवं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारसंवादे दुर्गोपाख्याने
 सुरभमेधससंवादे द्विपष्ठितमोऽध्यायः ।

त्रिपष्ठितमोऽध्यायः

मुरथसमाधिमेधससंवादे प्रकृतिवैश्यमंवादेः

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग घद वेदविदांघर । राजा केन प्रकारेण सिपेवे प्रकृति पराम् ॥ १ ॥
 समाधिर्नामवैश्यो धा निष्कामं निर्गुण विभुम् । भेजे केन प्रकारेण प्रकृतेरुपदेशतः ॥२
 किं धा पूजाविधानञ्च ध्यानं धा मनुमेध च । किं स्तोत्रं कवचंकिंवा दक्षीराज्ञेसहामुनिः
 तामै वैश्याय प्रकृतिः किंवा ज्ञानं ददौ परम् । साक्षाद् बभूव सहसा वेनवाप्रकृतिस्तयोः

ज्ञानं संप्राप्य वैश्यश्च किं पदंप्रापदुर्लभम् । गतिर्वभूव राजश्च का वाताञ्जशृणोम्यहम्
श्रीनारायण उवाच ।

राजा मन्त्रञ्चसंप्राप्यवैश्यश्चमेघसान् मुने । स्तोत्रञ्च कवचं देव्याध्यानञ्चैवपुरस्कियाम्
जजाप परमं मन्त्रं राजा वैश्यश्च पुष्करे ॥ ६ ॥

स्नात्वा त्रिकालं वर्षञ्च ततः शुद्धो यभूव सः । साक्षाद् यभूव तत्रैव मूलप्रकृतिरोध्वरी
राजे ददौ राज्यवरं मनुत्वं चाञ्छितं सुखम् । ज्ञानं निगूढं वैश्याय ददौ चातिदुर्लभम्
यद्दत्तं शूलिने पूर्वं कृष्णेन परमात्मना । निराहारमतिक्लिष्टं दृष्ट्वा वैश्यं कृपामयी ॥ ६ ॥
रुगेद् कृत्वा क्रोडे तमचेष्टं श्वासवर्जितम् । चेतनां कुरु भो वन्सेन्युचार्य्य च पुनःपुनः
चेतनाञ्च ददौ तस्मै स्वयं चैतन्यरूपिणी । संप्राप्य चेतनां वैश्यो र्गोद प्रवृत्तेः पुनः ॥

तमुवाच प्रसन्ना सा कृपयाऽतिकृपामयी ॥ १२ ॥

श्रीप्रकृतिरवाच ।

वरं वृणुव हे घन्स यत्ते मनसि वर्त्तते । ब्रह्म वममरत्वं वा तनो वाऽति सुदुर्लभम् ॥ १३ ॥
इन्द्रत्वं वा मनुत्वंवा सर्वसिद्धित्वमेव च । तुच्छं तुभ्यं न दास्यामि नश्वरं बालवञ्चनम्
वैश्य उवाच ।

ब्रह्मत्वममरत्वं वा मातर्मे नहि चाञ्छितम् । ततोऽतिदुर्लभं किंवा न जानेतदमीप्सितम्
त्वय्येव शरणापन्नो देहि यद्वाञ्छित तव । अनश्वरं सर्वसारं वरं मे दातुमर्हसि ॥ १६ ॥

प्रकृतिरवाच ।

अदेयं नास्ति मे तुभ्यं दास्यामिममवाञ्छितम् । यतो यास्यसि गोलोकंपदमेवमुदुर्लभम्
सर्वसारञ्च यज्ज्ञानं सुरपीणां सुदुर्लभम् । तद्गृह्यतां महाभाग गच्छ वत्स हरेः पदम्
स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्तनम् । श्रवणं मावनं सेवा सर्वं कृष्णे निवेदितम् ॥
एतदेव वैष्णवानां नवधामकिल्बिषम् । जन्ममृत्युजराव्याधियमताडनखण्डनम् ॥
आयुर्हरति लोकानां रचिरेव हि सन्ततम् । नवधामन्निर्हीनानामसतां पापिनामपि ॥
भक्तास्तद्गतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः । जीवन्मुक्ताश्च निष्पाया जन्मादिपरिवर्जिताः
शिवः शेषश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णुर्महान् चिराद् । सतकुमारः कपिलः सतञ्चसनन्दनः

बोद्धुः पञ्चशिखो वक्रो नारदश्च सनातन । भृगुर्मरीचिर्दुर्वासाः कश्यपः पुलहोऽङ्गिराः
 मेधसो लोमः शुक्रो वशिष्ठ क्रतुरेव च । बृहस्पतिः कर्दमश्च शक्तिरत्रिः पराशरः ॥
 मार्कण्डेयो वल्किश्चैव प्रहादश्च गणेश्वर । यमः सूर्यश्च वरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशनः ।
 भृगुपाप उल्बकश्च नाडीजिह्वश्च वायुज । नरनारायणौ कूर्म इन्द्रद्युम्नो विभीषणः ॥२७
 नवधा भक्तियुक्तश्च कृष्णस्य परमात्मन । एते महान्तो धर्मिष्ठा भक्तानां प्रवरास्तथा ।

ये तद्भक्तास्ते तदंशा जीवन्मुक्ताश्च सन्ततम् ।

पापापहारास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विशाम्पते ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वं च सप्त स्वर्गाश्चसप्तद्वीपावसुन्धरा । अधः सप्तः च पाताला एतद्ब्रह्माण्डमेव च
 एव विधानां विश्वानां संख्यानास्त्येव पुत्रक । एवञ्च प्रतिचिश्येषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः

देवा देवर्षयश्चैव मनवो मानवादयः ।

सर्वाध्रमाश्च सर्वत्र सन्ति यद्वाश्च मायया ॥ ३२ ॥

महद्विष्णोर्लोकैर्मरूपे सन्ति विभवानि यस्य च ।

स षोडशांशः कृष्णस्य चात्मनश्च महान् विराट् ॥३३॥

भज सन्त्यं परं ब्रह्म नित्यं निर्गुणमच्युतम् । प्रकृतेः परमीशानंकृष्णमात्मानमीप्सितम् ॥

निरीहश्च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् ।

निष्कामं निर्विरोधञ्च नित्यानन्दं सनातनम् ॥३५॥

स्येच्छामय सर्वरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् । तेजस्वरूपं परमं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥३६॥

ध्यानासाध्यंदुराराध्यंशिवादीनाञ्चयोगिताम् । सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वस्य सर्वकामदम् ॥

सर्वाधारञ्च सर्वज्ञं सर्वानन्दकरं परम् । सर्वधर्मप्रदं सर्वं सर्वज्ञं प्राणरूपिणम् ॥३८॥

सर्वधर्मस्वरूपञ्च सर्वकारणकारणम् । सुखदं मोक्षदं सारं पररूपञ्च भक्तिदम् ॥३९॥

दास्यदं धर्मदञ्चैव सर्वसिद्धिप्रदं सताम् । सर्वं तदतिरिक्तञ्च नश्वरं कृत्रिमं सदा ॥४०॥

परतपरतरं शुद्धं परिपूर्णतमं शिवम् । यथासुखं गच्छ वत्स भगवन्तमधोक्षजम् ॥४१॥

कृष्णेति द्वयक्षरं मन्त्रं गृहाण कृष्णदास्यदम् । पुष्करं दुष्करं गत्वा दशलक्षमिमंजप ॥

दशलक्षत्रयेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तव । इत्युक्त्वा सा भगवती तथैवान्तरधीयत ॥ ४३ ॥

वैश्यो नत्वाच्चतांभक्त्याजगामपुष्करंमुने । पुष्करेदुस्तरं तप्त्वा संप्राप कृष्णमीश्वरम् ।

भगवत्याः प्रसादेन कृष्णदासो बभूव सः ॥४४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने
सुरथसमाधिमेघसंवादे प्रकृतिवैश्यसंवादकथनं नाम त्रिपष्टितमोऽध्यायः ।

चतुःपष्टितमोऽध्यायः

राज्ञः सुरथस्य दुर्गापूजनम् ।

नारायण उवाच ।

राजा येन क्रमेणैव भेजे तां प्रकृतिं पराम् । तच्छ्रूयतां महाभाग वेदोक्तं क्रममेव च ॥

स्नात्वाऽऽचम्य महाराजः कृत्वान्यासत्रयंतदा । स्वकराङ्गाङ्गमन्त्राणांभूतशुद्धिचकारसः

प्राणायामं ततः कृत्वा कृत्वा च शङ्खशोधनम् ।

ध्यात्वा देवीञ्च मृष्मप्यां चकारवाहनं तदा ॥३॥

पुनर्ध्यात्वा च भक्त्या च पूजयामास भक्तिः ।

देव्याश्च दक्षिणे भागे संस्थाप्य कमलालयाम् ॥४॥

संपूज्य भक्तिभावेन भक्त्या परमधार्मिकः । देवयद्वकं समावाह्य देव्याश्चपुरती घटे ॥५॥

भक्त्या च पूजयामास विधिपूर्वञ्च नारद । गणेशञ्च दिनेशञ्च घड्धिं विष्णुंशिवंशिवाम् ॥

देवयद्वकञ्च संपूज्य नमस्कृत्य चित्तक्षणः । तदा ध्यायेन्महादेवीं ध्यानेनानेन भक्ति ॥

ध्यानञ्च सामवेदोक्तं परं कल्पतरुं मुने । ध्यायेन्नित्यं महादेवीं मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥८॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पूज्यां चन्द्यां सनातनीम् ।

नारायणीं विष्णुमायां वैष्णवीं विष्णुभक्तिदाम् ॥९॥

सर्वस्वरूपां सर्वेषां सर्वाधारां परात्पराम् । सर्वचिदासर्वमन्त्रसर्वशक्तिस्वरूपिणीम् ॥

सगुणा निर्गुणां सत्यां वरां स्वैच्छामयीं सतीम् ।

महाविष्णोश्च जननीं कृष्णस्यार्द्धाङ्गसम्भवाम् ॥११॥

कृष्णप्रिया कृष्णशक्ति कृष्णबुद्ध्यधिदेवताम् ।

कृष्णस्तुतां कृष्णपूज्यां कृष्णवन्द्यां कृषामयीम् ॥१२॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभां कौटिसूर्य्यसमप्रभाम् । ईषद्भास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम् ॥

दुर्गां शतभुजा देवीं महद्दुर्गतिनाशिनीम् ।

त्रिलोचनप्रियां साध्वीं त्रिगुणाञ्च त्रिलोचनाम् ॥१४॥

त्रिलोचनप्राणरूपां शुद्धार्द्धचन्द्रशेखराम् । विभ्रतीं कथरीभारं मालतीमाल्यमण्डिताम् ॥

वर्तुलं घामवक्त्रञ्चशम्भोर्मानसमोहिनीम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥

नासा दक्षिणभागेन विभ्रती गजमौक्तिकाम् । अमृत्यरत्नं बहुलं विभ्रतीं श्रवणोपरि ॥

मुक्तावकिचिनिन्द्यैकदन्तपंक्तिवुशोभिताम् । एकविम्बाधरोष्ठीश्चसुप्रसन्नां सुमङ्गलाम् ॥

चित्रपत्रावलीरम्यकपोलयुगलोज्ज्वलाम् । रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जिताम् ॥ १६ ॥

रत्नकङ्कणभूषाढ्यां रत्नपाशकशोभिताम् ।

रत्नाङ्गुरीयनिकरैः कराङ्गुलिबयोज्ज्वलाम् ॥२०॥

पादाङ्गुलिनखासकालकरेखासुशोभनाम् । बह्विशुद्धांशुकाभानांगन्धचन्दनचञ्चिताम् ॥

विभ्रतीं स्तनयुग्मञ्च कस्तूरीविन्दुशोभिताम् ।

सर्वरूपगुणवती गजेन्द्रमन्दगामिनीम् ॥२२॥

अतीव कान्तां शान्ताञ्च नीतान्तां योगसिद्धिपु ।

विधानुश्च विधात्रीञ्च सर्वधात्रीञ्च शङ्करीम् ॥२३॥

शरत्पार्वणचन्द्राम्यामतीव सुमनोहराम् । कस्तूरीविन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनविन्दुना ॥

सिन्दूरविन्दुना शश्वद् भालमध्यस्थलोज्ज्वलाम् ।

शरत्पञ्चाङ्गकमलप्रभामोचनलोचनाम् ॥ २५ ॥

चारुकञ्जलरेखाभ्यांसर्षतश्चसमुज्ज्वलाम् । कौटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितविग्रहाम् ॥

रत्नसिंहासनस्थाञ्च सत्रत्नमुकुटोज्ज्वलाम् । सृष्टौ स्रष्टुः शिल्परूपां दयांवातुश्च पालने ॥

सहारकाले सहस्रं परा सहाररूपिणीम् । निशुम्भशुम्भमधिनी महिषासुरमर्दिनीम् ॥
पुरा त्रिपुरयुद्धे च सस्तुता त्रिपुरारिणा । मधुकैटभयोर्युद्धे विष्णुशक्तिस्वरूपिणीम् ॥
सर्वदैव्य निहन्त्रीञ्च रक्तीजविनाशिनीम् । नृसिंहशक्तिरूपाञ्च हिरण्यकशिपोर्वधे ॥
धराहशक्तिं धाराहे हिरण्याक्षवधे तथा । परब्रह्मस्वरूपाञ्च सर्वशक्तिं सदा भजे ॥३१॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्प दत्त्वा विचक्षण ।

पुनर्ध्यात्वा चैव भक्त्या कुर्व्यादावाहनन्तत ॥३२॥

प्रकृते प्रतिमां धृत्वा मन्त्रमेव पठेन्नर । जीवन्त्यास तत कुर्व्यात् मनुमानेनयत्नत ॥
एहोहि भगवत्यम्य शिवलोकात् सनातनि । गृहाण मम पूजाञ्च शारदीया सुरेश्वरि ॥
इहागच्छ जगत्पूज्ये तिष्ठ तिष्ठ महेश्वरि । हे मातरस्यामर्चायासन्निरुद्धाभवाम्बिके ॥
इहागच्छन्तु त्वत् प्राणाश्चाथ प्राणैः सहाच्युते । इहागच्छन्तु त्वरित तवैवसर्पशक्तयः ॥
ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं च दुर्गायै वद्विजायान्तमेव च । समुच्चाप्यो रसिप्राणा सन्तिष्ठन्तु सदाशिवे ॥
सर्वेन्द्रियाधिदेवास्ते इहागच्छन्तु चण्डिके । इहागच्छन्तु ते शक्तय इहागच्छन्तु ईश्वरा ॥
स इहागच्छेत्यावाह्य परिहार करोति च । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्रतच्छृणुष्व समाहित ॥
स्वागत भगवत्यम्य शिवलोकाच्छिवप्रिये । प्रसादं कुरुमाभद्रेभद्रकालि नमोऽस्तुते ॥
धन्योऽहं कृत्यकृत्योऽहं सफल जीवन मम । आगतासियतो दुर्गे माहेश्वरि मदालयम् ॥

अद्य मे सफल जन्म सार्थक जीवन मम ।

पूजयामि यतो दुर्गा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥४२॥

भारते भवतीं पूज्या दुर्गा य पूजयेद्दुग्ध । सोऽन्तेयातिचगोलोक परमैश्वर्यवानिह
इत्वाच वैष्णवीपूजाविष्णुलोकं व्रजेन्सुधी । माहेश्वरीञ्च सपूज्य शिवलोकञ्च गच्छति ॥
सात्त्विकी राजसी चैव त्रिधा पूजा च तामसी । भगवत्याश्च वेदोक्तोत्तमामभ्यमाधमा ॥
सार्विकी वैष्णवानीनाश्च शाक्तादीनाश्च राजसी । अदीक्षितानामसतामन्यानातामसी स्मृता
जीवहत्याविहीनायाचरापूजा च वैष्णवी । वैष्णवा यान्ति गोलोक वैष्णवीवरदानत ॥
माहेश्वरी राजसी च त्रिदानसमन्विता । शाक्तादयो राजसाश्च कैलास यान्ति ते तथाः ॥
किराता नरक यान्ति तामस्या पूजया तथा । त्वमेव जगतामातश्चतुर्गणफलप्रदा ॥४६॥

सर्वशक्तिस्वरूपा च ऋणस्य परमान्मन । जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्वञ्चपरात्परा ॥
सुखदा मोक्षदा भद्रा कृष्णभक्तिप्रदा सदा । नागायणि महामाये दुर्गे दुर्गतिनाशिनि ॥
दुर्गेति स्मृतिमात्रेण याति दुर्गं नृणामिह । इति कृत्वा परिहारं देव्यायामे च साधकः
त्रिपदा उपगृह्णात्तु कुर्याच्च शङ्करक्षणम् । तत्र दत्त्वा जलं पूर्णं दूर्वां पुष्पञ्च चन्दनम् ॥

धृत्वा दक्षिणहस्तेन मन्त्रमेवं पठेन्नरः ।

पुण्यस्त्व शङ्क पुण्याना मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । प्रभव शङ्कचूडारं पुराकल्पे पवित्रकः
ततोऽर्घ्यपात्रं सम्थाप्य विधिनानेन पण्डितः । दत्त्वा संपूजयेद्देवीमुपचाराणि षोडश
त्रिकोणमण्डलं दृत्वा सजलेन कुशेन च । कूर्मं शेषं धरित्रीञ्च संपूज्य तत्र धार्मिकः
त्रिपर्दिं स्थापयेत्तत्र त्रिपदां शङ्कमेव च । शङ्के त्रिभागतोयञ्च दत्त्वा संपूजयेत्ततः ॥५१॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरी चन्द्रभागे च कौशिकि
स्वर्णरेखे कनखले पारिमद्रे च गण्डकि । श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे परमे चमे च गोमति ॥५६॥
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रमे । शतहृदे चेलगङ्गे जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
चर्हि सूर्यञ्च चन्द्रञ्च विष्णुञ्च वरुणं शिवम् । पूजयेत्तत्र तीर्थे च तुलस्या चन्दनेन च ।

नैवेद्यानि च सर्वाणि प्रोक्षयेत्तज्जलेन च ॥६१॥

ततो दद्याच्च प्रत्येकमुपचाराणि षोडश । आसनं घसनं पाद्यं स्नानीयमनुलेपनम् ॥६२॥
मधुपर्कं गन्धमर्घ्यं पुष्पं नैवेद्यमीप्सितम् । पुनराचमनीयञ्च ताम्बूलं रत्नभूषणम् ॥६३॥

धूपं प्रदीपं तत्पञ्चेत्युपचाराणि षोडश ॥ ६४ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणं नानाचित्रविराजितम् । धरं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शङ्करप्रिये ॥ ६५॥
अनन्तमृत्प्रभवमोश्वरेच्छाविनिर्मितम् । ज्वलदग्निविशुद्धञ्च घसनं गृह्यता शिषे ॥६६॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाड्यीजलम् । पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे पाद्यं प्रगृह्यताम् ॥६७॥
सुगन्धामलकीं स्निग्धद्रवमेव सुदुर्लभम् । सुपर्कं विष्णुनेलञ्च गृह्यता परमेश्वरि ॥६८॥
चमूर्तीं कुङ्कुमाक्षु सुगन्धि चन्दनद्रवम् । सुवासितं जगन्मातृं गृह्यतामनुलेपनम् ॥६९॥
माथीकं रत्नपात्रस्थं सुपवित्रं सुमङ्गलम् । मधुपर्कं महादेवि गृह्यता प्रीतिपूर्वकम्
वृक्षमेदमलचूर्णं गन्धद्रव्यसमन्वितम् । सुपवित्रं मङ्गलाहं देवि गन्ध गृहाण मे ॥७१॥

पवित्रशङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम् । स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे ॥
सुगन्धिपुष्पश्रेष्ठञ्च पारिजाततद्भवम् । मालत्यादिपुष्पमाल्यं गृह्यतां जगदम्बिके ॥
दिव्यं सिद्धान्तमामान्नं पिष्टकं पायसादिकम् ।

मिष्टान्नं लड्डुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे ॥ ७४ ॥

सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके ॥
गुवाकपर्णचूर्णञ्च कर्पूरादि सुवासितम् । सर्वभोगवरं रम्यं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥
अत्यमूल्यरत्नसारनिर्माणमीश्वरच्छया । सर्वाङ्गशोभनकरं भूषणं देवि गृह्यताम् ॥ ७७ ॥
तहनिर्य्यासचूर्णञ्च गन्धवस्तुसमन्वितम् । हुताशनशिखाशुद्धं धूपञ्च देवि गृह्यताम् ॥
दिव्यरत्नविशेषञ्च सान्द्रध्वान्तनिरावृतम् । सुपवित्रं प्रदीपञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥ ७९ ॥
रत्नसारविनिर्माणं दिव्यं पर्यङ्कमुत्तमम् । सक्षमवत्समाकीर्णं देवि त्वयं प्रगृह्यताम् ॥
एवं संपूज्य तां दुर्गां दद्यात् पुष्पाञ्जलिं मुने । ततोऽष्टनायिका देव्या यत्नतः परिपूजयेत्
उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोग्रां चण्डनायिकाम् ।

अतिचण्डाञ्च चामुण्डां चण्डां चण्डवतीं तथा ॥ ८२ ॥

पद्मे चाष्टदले चैताः प्रागादिऋतस्तथा । पञ्चोपचारैः संपूज्य भैरवाग्मध्यदेशतः ॥ ८३ ॥
आदौ महाभैरवञ्च संहारभैरवं तथा । असिताङ्गभैरवञ्च रत्नभैरवमेव च ॥ ८४ ॥
ततः कालभैरवञ्च क्रोधभैरवमेव च । ताम्रचूडं चन्द्रचूडमन्ते च भैरवद्वयम् ॥ ८५ ॥
एतान् संपूज्य मध्ये च नवशक्तीश्च पूजयेत् । तत्र पद्मे चाष्टदले मध्ये च भक्तिपूर्वकम्
वैष्णवीञ्चैव ब्रह्माणोरौद्रांमाहेश्वरीं तथा । नारसिंहीञ्चवाराहामिन्द्राणीकार्त्तिकीं तथा
सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च प्रधाना सर्वमद्गलाम् । नवशक्तीश्च संपूज्य घटे देवांश्च पूजयेत् ॥
शङ्करं कार्त्तिकेयञ्च सूर्यं सोमं हुताशनम् । वायुञ्च वरुणञ्चैव देव्याश्चेतीं यदुन्तथा
चतुःषष्टियोगिनीञ्च संपूज्य विधिपूर्वकम् । यथाशक्ति बलिदत्त्वा करोति स्तवनबुधः
कवचञ्च गले बद्ध्वा पाठ्वा भक्तिपूर्वकम् । ततः वरुणापरीहारं नमस्कुप्याद्विचक्षणः
बलिदानविधानञ्च श्रूयतां मुनिसत्तम । मायाति महिषं छागं दद्यान्मेपादिकं शुभम् ॥
सहस्रवर्षं सुप्रीता दुर्गामायाति दानतः । महिषेण वर्षशतं दशवर्षञ्च छागलात् ॥ ९३ ॥

धर्मं मेधेन कृष्णाण्डं पक्षिभिर्हरिणैस्तथा । दशवर्षं कृष्णसारैः सहस्राब्दञ्च गण्डकैः ।
 वृत्रिमै पिप्पलिमाणै पण्नास पशुभिस्तथा । मासं सुपकाद्रिकलैरक्षतैरिति नारद ॥
 युवक व्याधिहानञ्च सशृङ्ग लक्षणाञ्चितम् । विशुद्धमविकाराङ्गं सुपर्णं पुष्टमेव च ॥
 शिशुना बलिना दातुर्हन्ति पुत्रञ्च चण्डिका । वृद्धेनैव गुरजनं वृशेण यान्धवस्तथा ॥
 धनञ्चवाधिकाङ्गेन हीनाङ्गेन प्रजान्तथा । कामिनीं शृङ्गभङ्गेन काणेन भ्रातरन्तथा । ६८
 युट्टिरेन भयेन्मृत्युर्विघ्नश्च चित्रमस्तर्कं । हत मित्र ताप्रपिष्टैर्षष्ट्रिंशो पुच्छहीनत । ६९।
 नायातानाञ्च निर्णोत श्रूयता मुनिसत्तम । वक्ष्याम्यथर्ववेदोकं फलहानिर्त्यतित्रमे ॥
 पितृमातृविहीनञ्च युवक व्याधिबर्जितम् । विवाहितं दीक्षितञ्च परदारविहीनकम् ॥
 धजातज विशुद्धञ्च सच्छूद्र मूलक घटम् । तद्गन्धुभ्यो धनं दत्त्वा क्रीतं मूल्यातिरेकत
 स्नापयित्वाच त धर्मो सपूज्य घस्त्रचन्द्रनै । माल्यैर्धूपैश्च सिन्दूरैर्दधिगोरोचनादिभि-
 तञ्च वर्षं भ्रामयित्वा चरद्दारेण यत्नत । धरान्तेव समुन्सृज्य दुर्गायै तं निवेदयेत् ॥
 अष्टर्मानवमीसन्धी दयान्मायातिमेव च । इत्येव कथितं सर्वं बलिदानं प्रसङ्गत ॥

वर्ति दत्त्वा च स्तुत्वा च धृत्वा च कथञ्च बुध ।

प्रणम्य दण्डवद् भूमौ दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥ १०६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवन्त महापुराणे प्रकृतिलवण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

दुर्गोपाख्याने ज्ञानकथनम् ।

नारद उवाच ।

श्रुत सर्वं महाभाग सुधारसपर वरम् । स्तोत्रञ्च कथञ्च पूजाफलं काम घद प्रभो ॥१॥

नारायण उवाच ।

यात्राया बोधयेद्देवीं मूलेनैव प्रवेशयेत् । उत्तरेणाक्षन धृत्वा श्रवणाया विसर्जयेत् ॥२॥

आर्द्रायुक्तनवम्यान्तु कृत्वा देव्याश्च बोधनम् ।

पूजाया शतवार्षिक्या फलमाप्नोति मानव ॥ ३ ॥

मूलायान्तु प्रवेशे च नरमेऽफल लभेत् । उत्तरे पूजन कृत्वा वाजपेयफल लभेत् ॥४॥

कृत्वा विसर्जन देव्या श्रवणायाञ्चमानव । लक्ष्मीञ्च पुत्रपौत्राणा लभते नात्रसशय
भुव प्रदक्षिण पुण्य पूजाया लभते नर । नक्षत्रहीने वर्षे चेन् पार्वत्याश्चैव नारद ॥६॥

नवम्या बोधन कृत्वा पञ्च सपूज्यमानव । अश्वमेऽफल लब्ध्वा दशम्याञ्च विसर्जयेत्

सतम्या पूजन कृत्वा बलि दद्याद्विचक्षण । अष्टम्या पूजन शस्त्र बलिदानविवर्जितम् ॥

अष्टम्या बलिदानेन विपत्तिर्नायते नृणाम् । दद्याद्विचक्षणो भक्त्यानवम्या विधिवद्बलिम्

बलिदानेन विपेन्द्र दुर्गाप्रातिर्भवेन्नृणाम् । हिंसाजन्यञ्च पापञ्च लभते नात्रसशय ॥१०

उत्सर्गकर्त्ता दाता च छेत्ता पोष्टा च रक्षक । अग्रपञ्चान्निग्दा च सनेते घघमागिन ॥

यो य हन्ति सनहन्ति चेति वेदोक्तमेव च । कुर्वन्ति वैष्णवीं पूजा वैष्णवास्तेन हेतुना

एव सपूज्य सुख्य पूर्ण वर्षञ्च भक्ति । कवचञ्च गले बद्ध्वा तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥

स्तोत्रेण परितुष्टा सा तस्य साक्षाद्गमूवह । स ददर्श पुरो देवीं श्रींमसूर्यसमप्रभाम् ॥

तेज स्वरूपा परमा सगुणा निगुणा वराम् । दृष्ट्वा ता कमनीयाञ्च तेजोमण्डलमभ्यत ॥

स्वेच्छामयीं कृपारूपा भक्तानुग्रहकातराम् । पुनस्तुष्टाव राजेन्द्रो भक्तिघ्नान्मकरम् ॥

स्त्रेण परितुष्टा सा सस्मिता भक्तिपूर्वकम् । उवाच सत्य राजेन्द्र कृपया जगदम्बिका ॥

प्रकृतिरुवाच ।

साक्षान् सप्राप्य मा राजन् वृणोपि विभय वरम् ।

द्दामि तुभ्य विभय साम्प्रत धाञ्छित तव ॥ १८ ॥

निर्जित्यसर्गान् शत्रूञ्च लभ राज्यमकण्टकम् । भविष्यसि महाराज सावर्षिरष्टमोमनु

दास्यामि तुभ्य ज्ञानञ्च परिणामे नराधिर । भक्तिं दास्यञ्च पश्ये श्रींरूपे परमात्मनि ॥

वृणोति विभय यो हि साक्षान्मा प्राप्य मन्दथो ।

माथया वञ्चित सोऽपि त्रिषमत्यमृत त्यजेत् ॥ २१ ॥

ग्रह्यादिस्तमपर्यन्त सर्वं नश्वमेव च । नित्य सत्य पर ब्रह्म कृष्ण निर्गुणमेव च ॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्याना महामायापरात्परा । सगुणानिर्गुणा वापि परा स्वेच्छामयीसदा ॥
 नित्यानित्या सर्वरूपा सर्वकारणकारणा । धीजरूपा च सर्वेषा मूलप्राकृतिरीश्वरी ॥२४॥
 पुण्ये वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । राधा प्राणाधिकाहञ्च कृष्णस्य परमात्मनः
 अहं दुर्गा विष्णुमाया बुद्धयधिष्ठातृदेवता । अहं लक्ष्मीश्च वैकुण्ठे स्वयं देवी सरस्वती ॥
 सावित्रा वेदमाताऽहं ब्रह्मणी ब्रह्मलोकत । अहं गङ्गा च तुलसी सर्वाधार वसुन्धरा
 नानाविधाह कल्या मायया सर्वयोषित । साहं वृष्णेन सृष्टा च भ्रूमङ्गलीलया नृप ॥

भ्रूमङ्गलीलया सृष्टो येन पुंसा महान् विराट् ।

यस्य लोलाञ्च कूपेषु विश्वानि सन्ति नित्यश ॥२६॥

असत्त्वानि च तान्येव कृत्रिमाणि च मायया । अनित्येषु नित्यैरुर्द्धं सर्वे कुर्वन्ति सन्ततम्
 सप्तसागरसयुक्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा । तदधः सप्तपाताला स्वर्लोकाश्चैव सप्त च ॥
 एतद्विश्वञ्च निर्माणं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । प्रत्येकं सर्वत्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
 सर्वेषामरीश्वर कृष्ण इति ज्ञान परात्परम् । वेदानाञ्च अतानाञ्च तीर्थानां तपसा तथा ॥
 देवानाञ्चैव पुण्यानां सारं कृष्ण इति स्मृतम् । तद्भक्तिहीनो यो मूढ सचजीवनमृतोऽधुवम्
 पवित्राणि च तीर्थानि तद्भक्तस्पर्शबाधुना । तन्मन्त्रोपासकश्चैव जीवन्मुक्त इति स्मृतम् ॥
 मन्त्रप्रवृत्तमात्रेण नरो नारायणो भवेत् । विना जपेन तपसा विना तीर्थेन पूजया ॥
 मातामहानां शतरूपा पितृणाञ्च सहस्रकम् । पुंसामेव समुद्धृत्य गोलोकं स च गच्छति ॥
 इदं ज्ञानं सारमूला कथितं ते नराधिप । मन्यन्तरान्ते भोगान्ते भक्तिं दास्यामि ते हरि ॥
 माभुक्त क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । जपश्चमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥
 अहं यमनुगृह्णामि तस्मै दास्यामि निर्मलाम् ।

निश्चयं सुदृढा भक्तिं श्रीवृष्णे परमात्मनि ॥ ४० ॥

करोमि पञ्चनाय यं तेभ्यो दास्यामि सम्पदम् । प्रातः स्वप्नस्वरूपञ्चमिष्येति भ्रमरूपिणीम्
 इति ते कथितं ज्ञानं गच्छं वत्स यथामुखम् । इत्युक्त्वा च महादेवी तत्रैवान्तरधीयता ॥
 राजा स्वप्राप्य राज्यञ्च नत्वा तां प्रययागृहम् । इतिते कथितवत्स दुर्गापाश्यान्मुत्तमम्
 इति श्रीब्रह्मसूत्रपुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनामदसवादे दुर्गापाश्याने
 प्रकृतिसुरथसवादे ज्ञानकथनं नाम पञ्चपष्ठितमोऽध्यायः ।

पट्टपण्डितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकृतदुर्गास्तोत्रम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं नावशिष्टं किञ्चिदेव हि तिश्चितम् । प्रवृत्तेः कवचं स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तम॥

नारायण उवाच ।

पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना । संपूज्य मधुमासे च प्रीतेन रासमण्डले ।

मधुकैटभयोर्युद्धे द्वितीये विष्णुना पुरा ॥ २ ॥

तत्रैव काले सा दुर्गा ब्रह्मणा प्राणसंकटे । चतुर्थे संस्तुता देवी भक्त्याच त्रिपुरारिणा

पुरा त्रिपुरस्युद्धेन महाघोरस्तरे मुने । पञ्चमे संस्तुता देवी वृत्रासुरखधे तथा ॥ ४ ॥

शक्रेण सर्वदैवैश्च घोरे च प्राणसङ्कटे । तदा मुनीन्द्रैर्मनुभिर्मानवैः सुरथादिभिः ॥ ५ ॥

सस्तुतापूजितासा च कल्पेकल्पेपरात्परा । स्तोत्रञ्चश्रूयतां प्रह्वन् सर्वविघ्नविनाशतम् ॥

सुखदं भोक्षदं सारं भवाब्धिपारकारणम् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी । त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका

कार्यार्थं सगुणा त्वञ्च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।

परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥ ८ ॥

तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुहविग्रहा । सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥ ९ ॥

सर्वयोजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया । सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमद्गुलमद्गुला ॥ १० ॥

सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी । सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी ॥ ११ ॥

त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वध्यास्वयम् । दक्षिणासर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥

निद्रा त्वञ्च दया त्वञ्च तृष्णा त्वञ्चात्मनश्च मे ।

धृत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च काङ्क्षिः सृष्टिश्च शाश्वती ॥ १३ ॥

ध्रुवा पुष्टिश्च तन्त्रा च लज्जा शोभा दया सदा । सतांसम्पत्स्वरूपा श्रीविपस्त्रिसतामिह

प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा । शश्वत्कर्ममयी शक्तिः सर्वदा सर्वजीविनाम् ॥

दैवेभ्यः स्वपद दामा धातुर्धात्री रूपामयी । हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी ॥

शंगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम् ।

सिद्धिस्वरूपा सिद्धिना सिद्धिदा सिद्धियोगिनी ॥१७॥

माहेष्वाग च ब्रह्मार्पा विष्णुमाया च वैष्णवी । भद्रदा भद्रकालीचसर्वलोकभयङ्करी ॥

ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे । सतां कीर्त्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां सदा

महायुद्धे महामारी दुष्टमहारूपिणी । रक्षास्वरूपा शिष्टानां मातेव हितकारिणी ॥२०

वन्द्या पूज्या स्तुतात्वञ्चब्रह्मादीनाञ्चसर्वदा । ब्राह्मण्यरूपाविप्राणांतपस्याचतपस्विनाम्

विद्याविद्यावतात्वञ्चतुद्धिवृद्धिमतासताम् । मेधास्मृतिस्वरूपाचप्रतिभाप्रतिभायताम् ॥

राज्ञा प्रतापरूपा च विशाखाणिञ्चरूपिणी । सृष्टिस्वरूपा सृष्टौ त्वं रक्षारूपाच पालने

तथान्ते त्वंमहामातेविश्वस्वविश्वपूजिते । कालरात्रिर्महारात्रिमोहरात्रिश्च मोहिनी ॥

दुख्यया मे माया त्व यया संमोहिनंजगत् । ययामुग्धोहिविद्वान्धमोक्षमार्गंनपश्यति ॥

इत्यात्मना कृत स्तोत्रं दुर्गायादुर्गनाशनम् । पूजाकालेपठेद्योहिसिद्धिर्भवतिषाञ्छित्ने ॥

वन्द्या च काकवन्द्या च मृतकयत्सा च दुर्भगा ।

श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ॥२७॥

कारागारे महाघोरे यो वद्धो दृढबन्धने ।

श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं वन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥२८॥

यश्माप्रस्तो गलत्कुष्ठी महाशूली महाज्वरी ।

श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सद्यो रोगात् प्रमुच्यते ॥२९॥

पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः । श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्रसंशयः ॥३०

राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले । हिस्त्रजन्तुसर्मापे च श्रुत्वा स्तोत्रंप्रमुच्यते ॥

गृहदाहे च दावाग्नी दक्ष्युसैन्यसमन्विते । स्तोत्रध्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः ॥

महाद्विद्वो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः । विद्याधाम् धनवांश्चैव सभवेन्नात्रसंशयः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गापाठ्याने

दुर्गास्तोत्रं नाम पद्मपठितमोऽध्यायः ।

सतपथितमोऽध्यायः

प्रकृतिरुवापरनामकं ब्रह्माण्डमोहनरूपचम् ।

नारद उवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानविशारद । ब्रह्माण्डमोहन नाम प्रकृते कवच घद ॥ १ ॥

नारायण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचञ्च सुदुर्लभम् । श्रीऋष्येणैव कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥

ब्रह्मणा कथितं सर्वं धर्माय जाह्नवीतटे । धर्मेण दत्तं महाञ्च कृपया पुष्करे प्रभु ॥३॥

त्रिपुरास्थि यद्धत्वा जपान त्रिपुर पुग । मुमोच ब्रह्मा यद् धृत्वा मधुकैटभयोर्भयम् ।

मजहार रक्तरीजं यद्धत्वा भद्रकालिका ॥४॥

यद्धत्वा तु महेन्द्रञ्च सप्राप वमलालयाम् । यद्धत्वाचमहाकालश्चिरजीवीवधामिक ॥

यद्धत्वा च महात्राणी नन्दी सातन्द्रपूर्वकम् ।

यद्धत्वा च महायोद्धा राम शत्रुभयङ्कर ॥६॥

यद्धत्वा शिरानुष्यञ्चदुर्गासात्रानितार । ओं दुर्गेतिचतुर्थ्यन्तस्वाहान्तोमेशिरोऽवतु ॥

मन्त्रं षडसुरोऽयञ्च भक्तानां कन्धरादय । विचारो न्नास्ति वेदेषु ब्रह्मणे चमनोर्मुने ॥८॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुनुशो भवेन्नर । मम वक्त्रं सत्रापातु ओं दुर्गायैतमोऽन्तत ॥

ओं दुर्गे रक्ष इति च कण्ठ पातु सदा मम ।

ओ ही श्रा इति मन्त्रोऽयं स्वप्न पातु निगन्तरम् ॥१०॥

ओ ही श्रा ह्रा इति पृष्टञ्च पातु मे सर्वत सदा ।

ह्रीं मे वक्ष्यन्त पातु हस्तं श्रीमिति सन्ततम् ॥११॥

ओ श्रा हा श्रीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा ।

प्राच्या मा पातु प्रगतिं पातु वद्रीं च चण्डिका ॥१२॥

दक्षिणेऽभद्रकालीं च नैर्ऋते च महेष्वरी । वारुणे पातु वाराहीं वायव्या सर्वमङ्गला ॥

उत्तरे वैष्णवी पानु तथैशान्यां शिवप्रिया । जलेस्थलेचान्तरीक्षेपातुमां जगदम्बिका ॥
इति ते कथितं घत्स कवचञ्च सुदुर्लभम् । यस्मैकस्मैनादातव्यंप्रयत्नञ्चानकस्यचित् ॥
गुह्यमभ्यर्च्य विधिवद्ब्रह्मालङ्कारन्दनैः । कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥
भ्रमणे सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे । यन् फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणेमुने ॥१७॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्भवेद् ध्रुवम् । लोकञ्च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति सङ्कटे ॥
नतस्यमृत्युर्भवति जलेवह्निं विशेद्द्रुधुम् । जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि सर्वसिद्धेश्वरः स्वयम् ।
यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुतुल्यो भवेद्द्रुधुम् । कथितं प्रकृते खण्डं सुधाखण्डात्परं मुने

या एव मूलप्रकृतिर्यस्याः पुत्री गणेश्वरः ।

कृत्वा कृष्णाद्यतं सा च लेभे गणपतिं सुतम् ॥२१॥

भ्याशेन कृष्णो भगवान् यभूव च गणेश्वरः ॥२२॥

श्रुत्वा च प्रकृते खण्डं सुश्रवश्च सुधोषमम् । भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम् ।
सवत्सां सुरभी रम्यां दद्याच्च भक्तिपूर्वकम् ॥२३॥

वासोऽलङ्कारस्तैश्च तोषयेद्वाचकं मुने । पुष्पालङ्कारसनेनानोपाहारसंयुतैः ॥२४॥

पुस्तकं पूजयेद्देवं भक्तिश्रद्धासमन्वितः । एवं कृत्वा यः शृणोति तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥
वर्द्धते पुत्रपौत्रादिर्यशस्वी तत्प्रसादतः । लक्ष्मीर्भवेति तद्गुहेह्यन्ते गोलोकमाप्नुयात् ॥

लभेत् कृष्णस्य दास्यं स भक्तिं कृष्णे सुनिश्चलाम् ॥२६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गापार्याने
प्रकृतिकवचं नाम सप्तपष्ठितमोऽध्यायः ।

समाप्तध्यायं प्रकृतिखण्डः ।

✽ श्रीगणेशायनमः ✽

अथ तृतीयं गणपतिखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

गंगेशजन्मविषयकप्रश्नविचारः ।

नागायणं नमस्कृत्य नगञ्चैव नगोत्तमम् । देवां सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

नारद उवाच ।

श्रुतं प्रकृतिखण्डं तदमृतार्णवमुत्तमम् । सर्वोन्मृष्टमीप्सितञ्च मृदानां ज्ञानवर्द्धनम् ॥

अथुना श्रोतुमिच्छामि गणेशखण्डमीश्वर । तज्जन्मचरितं नृणां सर्वमद्गुलमद्गुलम् ॥३॥

कथं जने सुरश्रेष्ठः पार्वत्या उदरे शुभे । देवी केन प्रकारेण ललाभ तादृशं सुतम् ॥४॥

सत्वांशकस्य देवस्य कथंजन्मललाभसः । अयोनिसम्भवः किंवाऽसौचकियोनिसम्भवः

किं वा तद् ब्रह्मतेजो वा किं तस्य च पराक्रमः ।

का तपस्या च किं श्रानं किं वा तग्निर्मलं यशः ॥६॥

कथं तस्य पुरः पूजा विधेषु निगिलेषु च । स्थिते नारायणेशर्म्माजगदीशेश्वरद्वयि ॥

पुराणेषु निगृह्यञ्च तज्जन्म परिर्कारितम् । कथं वा गजवक्रोऽयमैकदन्तो महोदरः ॥

एतत् सर्वं समान्चञ्च श्रोतुं कौतूहलं मम । सुविस्तीर्णं महाभाग तदनीय मनोहरम् ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । पापसन्तापहरणं सर्वविप्रघ्निनाशनम् ॥१०॥

सर्वमद्गुलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् । सुखदं मोक्षगीजञ्च पापमूलनिहन्तनम् ॥ ११ ॥

दैव्यार्दितानां देवानां नेत्रोराशिसमुद्भवा । देवी महन्त्य दैत्यैर्घान् दक्षकन्या बभूव ह

सा च नान्नासती देवीभ्यामिदोनिलया पुरा । देहं संन्यज्य योगेन जाताशौलप्रियोद्दे

शङ्कराय दक्षो नाऽपार्यती पर्वतो मुदा । ता गृहीत्वा महादेवो जगाम निर्जनं वनम् ।
शय्या रतिक्रमांश्च पुष्पचन्दनचर्चिताम् । स रेमे नर्मदातीरे पुष्पोद्याने तथा सह ।
सहस्रवर्षपर्यन्तं देवमानेन नांरद । तपोर्वभूव शृङ्गारं विपरीतादिकं परम् ॥ १६ ॥

दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण कामेन मूर्च्छितः शिवः ।

मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद् द्रुवुधे न दिवानिशम् ॥ १७ ॥

सकारणञ्चकार्कीर्णं पुष्कोकिल्लतश्रुते । नानापुष्पविकसिते भ्रमरध्वनिसंयुते ॥ १८ ॥
सुगन्धियुसुमार्त्तनं वायुना सुरभीकृते । क्षतीय सुखदे तत्र सर्वजन्तुविवर्जिते ॥ १९ ॥
दृष्ट्वा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तांप्रापुःसुराःपराम् । ब्रह्माणञ्जपुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम्
त नत्वा कथयामास ब्रह्मावृत्तान्तमीप्सिनम् । संतस्थुर्देवताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिकायथा
ब्रह्मोवाच ।

सहस्रवर्षपर्यन्तं देवमानेन शङ्करः । रतो रतश्च निष्प्रेषो न योगी विरराम ह ॥ २२ ॥
मैथुनस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर । किं भूतं भवितापत्यं तथ्यं कथितुमर्हसि ॥

श्रीभगवानुवाच ।

चिन्ता नान्ति जगद्धातु सर्वं भद्रं भविष्यति । मयि ये शरणापन्नास्तेषां दुःखकुतोविधे
येतोपायेन तद्दीप्यं भूमौ पतति निश्चितम् । तत्कुर्वन् प्रयत्नेन साङ्गं देवगणेन च ॥ २५ ॥
यदा च शम्भोर्वीर्यन्तत्पार्वत्या उदरे पतेत् । ततोऽपत्यञ्च भविता सुरासुरविमर्दकम्
ततः शक्रादयः सर्वे सुरा नारायणाजया । प्रययुर्नर्मदातीरं यथा ब्रह्मा निजालयम् ॥ २७ ॥
तत्रैव पर्वतद्रोणी वहिर्देशे सुराः पराः । विपण्णघटनाः सर्वे धमृधुर्मयकातराः ॥ २८ ॥
शक्रो राजा कुबेरश्च कुबेरो घटणन्तथा । समीरणं च घटणो धमं समीरणस्तथा ॥ २९ ॥
हुताशनं यमश्चैव माम्कारश्च हुताशनं । चन्द्रं तथा भास्करश्च ईशानं चन्द्र एव च ॥
एवं देवाः प्रेरयन्ति देवाश्च रतिभङ्गने । हरश्शृङ्गारमङ्गश्च कुर्धित्युक्त्वा परम्परम् ॥ ३१ ॥

हारस्थितो घक्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम् ॥ ३२ ॥

इन्द्र उवाच ।

किङ्करोपि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते । जगदीश जगदधीज भक्तानां भयभङ्गन ॥

हरिर्जगामेत्युत्तवैवमाजगाम च भास्करः । उवाच भीतो द्वारस्थो भयार्त्तो वक्रचक्षुषा
श्रीसूर्य उवाच ।

किङ्करोपि महादेव जगतां परिपालक । सुरश्रेष्ठ महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तुते ॥३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीसूर्यः प्रजगाम भयान्ततः । आजगाम तथा चन्द्र उवाच चक्रकन्धरः ॥
चन्द्र उवाच ।

किङ्करोपि त्रिलोकेश त्रिलोचन नमोऽस्तुते । आत्माराम पूर्णकाम पुण्यश्रवणकीर्त्तन
इत्येवमुक्त्वा भीतश्च विरराम निशापतिः । संवीक्ष्योवाच द्वारस्थः स्वयमेव समीरणः
पवन उवाच ।

किङ्करोपि जगन्नाथ जगद्बन्धो नमोऽस्तु ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां धीजरूप सनातन
इत्येवं स्तवनं श्रुत्वा योगज्ञानविशारदः । त्यक्तुकामो न तत्याजशृङ्गारपार्वतीभयात् ॥
दृष्ट्वा सुरान् भयार्त्तांश्चपुनस्तोतुंसमुद्यतान् । विजहौ सुखसम्मोगंकण्ठलग्नाञ्चपार्वतीम्
उत्तिष्ठतो महेशस्य त्रस्तस्य लज्जितस्य च । भूर्मो पपात तद्दीर्घ्यं ततः स्कन्दो बभूव ह
पश्चात्तां कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम् । स्कन्दजन्मप्रसङ्गे च साभ्रतंवाञ्छितंशृणु
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे शंकरपार्वती-
समागमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः

क्रीडाविरतेन शिवेन देवदर्शनम् ।

नारायण उवाच ।

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान् । पलायध्वमित्युवाच कृपया पार्वतीभयात्
देवाः पलायिता भीताः पार्वतीशापहेतुना । ब्रह्माण्डसर्वसंहर्त्ता चक्रभे पार्वतीभयात्
तल्पादुत्थाय सा दुर्गा न च दृष्ट्वा पुरः सुरान् । समुत्थितं कोपवह्निस्तम्भयामासदेहतः
अद्य प्रभृति ते देवा व्यर्थवीर्या भवन्त्विति । शशाप देवी तान्देवानतिरुष्टा बभूव ह

तत शिव शिवा दृष्ट्वा क्रोधसरक्तलोचनाम् । रुदन्तीं नम्रवदना लिखन्तीं धरणीतलम् ।
शिवस्ता द्रु ग्विता दृष्ट्वा क्रोधसरक्तलोचनाम् । हस्तेगृहीत्या देवेशो वासयामासवक्षसि
शतीय भात सत्रस्त उवाच मधुर वच ॥७॥

शङ्कर उवाच ।

कथं एषा गिरिश्चण्डकन्ये धन्ये मनोहरे । मम सौभाग्यरूपे च प्राणाधिष्ठातृदेवते ॥

किन्तेऽभाष्ट करिष्यामि वद मा जगदम्बिके ॥ ८ ॥

ब्रह्माण्डसदृगुनिखिते किमसा यमिहाद्ययो । अहो निरपराध मा प्रसन्ना भव सुन्दरि ।
दैवादज्ञानदोषस्य शान्ति मे कस्तुमर्हसि । त्वया युक्त शिवोऽहञ्च सर्वेषां शिबदायक
त्वयाविनाहादवरश्चरावतुल्योऽशिव सदा । प्रवृत्तिस्त्वञ्च्युद्विस्त्वशक्तिस्त्वञ्चमादया
तुष्टिस्त्वञ्च तथापुष्टि शान्तिस्त्व क्षान्तिरेवञ्च । श्रुत्वाञ्छायातथानिद्रातन्द्राध्रुद्धालुरेभ्वरा
सवाधारस्वरूपा त्व सर्वार्थाजस्वरूपिणी । स्मितपूर्वं वद वच साम्प्रत सरस शिरे ।

त्वत्कोपयिपसदग्ध तेन जायय मा मृतम् ॥ १४ ॥

शङ्करस्य वच श्रुत्वा कोपयुक्ता च पार्वती । उवाच मधुर देवी हृदयेन विदूयता ॥१५॥

पार्वत्युवाच ।

किन्वाह कथयिष्यामि सर्वज्ञ सर्वरूपिणाम् । आत्माराम पूर्णकाम सर्वदेहेष्ववस्थितम्
कामिना मानस्य काममग्रज्ञ स्वामिन वदेत् । सर्वेषां हृदयज्ञञ्च हृदीष्ट कथयामि किम् ।
सुगोप्य सर्वनारीणां लज्जाजनककारणम् । अकथ्यमपि सर्वासां तथापि कथयामि ते
सुखेषु मन्ये स्त्रीणाञ्च विभवेषु सुरेश्वर । सत्पुसा सह सम्भोगो निर्जनेषु पर सुप्तम् ।
तद्ब्रह्म च यद्दु खतत्समनास्ति च स्त्रिया । कान्तानाकान्तविच्छेद शोक परमदारुण
रुष्णपक्षे यथा चन्द्र क्षीयमाणो दिने दिने ।

तथा कान्त विना कान्ता क्षाणा कान्त क्षणे क्षणे ॥ २१ ॥

चिन्ताञ्चरञ्च सर्वेषामुपतापश्चवाससाम् । सार्थानां कान्तविच्छेदस्तुरगानाञ्चमैथुनम्
रतिमङ्गो दुःखमेक द्वितीय घाट्यर्पातनम् । दुःखातिरेकदुःखञ्च तृतीयमनपत्यता ॥२३॥
त्रैलोक्यवान्त कान्तत्याल्लभापिनचमेसुत । या स्त्र्या पुत्रविहानाचजीवनतन्निरर्थकम्

जन्मान्तरमुद्यं पुण्यं तपोदानमनुद्भवम् । सङ्गंजातपुत्रश्च पद्मेह सुखप्रद ॥
सुपुत्रः स्वामिनोऽप्यश्च स्वामितुल्यमुग्रप्रदः । कुपुत्रश्च कुलाद्गो मनन्नापायकैवलम् ।

स्वार्त्ता स्वार्त्तैर्न स्वार्त्ताणां गर्भे जन्म लभेद् द्रुवम् ।

सार्ध्या स्त्री मान्तुल्या च सततं हितकारिणी ॥ २७ ॥

असार्ध्या वैशितुल्याचशश्वत्सन्नापटायिनी । मुखदुष्टार्थोनिदुष्टार्थैवामार्ध्यातिहिंस्रता
किमुपायं करिष्यामि वद योगेश्वरेश्वर । उपायमिच्छो तपसां सर्वपात्र फलप्रद ॥

इत्युक्त्या पार्वतीदेवी नम्रवस्त्रा बभूव ह ।

प्रहस्य शङ्करोदेवो बोधयामास पार्वतीम् । मन्पुत्रर्षाजं सुखदं सन्नापनाशकारणम् ।

मिनं म्निष्यं सुखचिरं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीता महापुण्ये नागयजुर्नागद् संज्ञादे गणपतिखण्डे शिवाशिवयोः

पुत्रमुपलक्ष्यमन्वाद्यवर्गनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः

पार्वतीम्प्रति हरिन्नतकर्मणाय शिवस्योपदेशः ।

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति । उपायत कार्यसिद्धिर्भवेदेव जगत्त्रये ॥

सर्वपाञ्चितमिद्वेम्नु रीत्ररूप सुमङ्गलम् । मनसः प्रीतिजननमुपायं कथयामि ते ॥२॥

हरैर्गागधनं कृत्वा धनं कुरु वगनने । व्रतञ्च पुण्यकं नाम वर्धमेकं करिष्यसि ॥ ३ ॥

महाकटोर्षात्रञ्च वाञ्छाकल्पतरुं परम् । सुखदं पुण्यदं सारं पुत्रदं सर्वसम्पदम् ॥४॥

नर्तनाञ्च यथा गृहा देवानाञ्च हरिष्यथा । वीणयानां यथाहञ्च देवीनां त्वं यथाप्रिये ॥

काथनाजायथा विप्रनार्यानां पुष्करं यथा । पुष्पाणांपारिजातञ्चरत्नाणांतुलसी यथा

यथा पुष्पप्रदानाञ्च त्रिषिरोकाठरी म्भृता । रवियारञ्च वागणां यथा पुण्यप्रदः शिवे ॥

मासानां मार्गार्गर्षभसूतानामाश्वीयथा । संवत्सर्गोचनमराणांशुगानाञ्चइतयथा ॥८॥

विद्याप्रदश्च पूज्याना गुरूणा जननी यथा ।

साध्वी पत्नी यथात्ताना विश्वस्तानां मनो यथा ॥ ६ ॥

यथा धनाना रत्नञ्च प्रियाणाञ्च यथा पतिः । यथापुत्रश्च बन्धूनां वृक्षाणां कल्पपादपः ॥
चूतफल फलानाञ्च वर्षाणां भारतं यथा । घृन्दावनं घनानाञ्च शतरूपाच योषिताम् ॥

यथाकाशीं पुरीणाञ्च सूर्यं स्तेजस्विनायथा । यथेन्दुं सुखदानाञ्च सुन्दराणाञ्चमन्मथः ॥
शास्त्राणाञ्च यथा वेदाः सिद्धानां कपिलो यथा ।

हनूमान् धानराणाञ्च क्षेत्राणां ब्राह्मणाननम् ॥ १३ ॥

यशोदाना यथा विद्याकविताच मनोहरा । आकाशोव्यापकानाञ्च ह्यङ्गानां लोचनं यथा
विभवाना हरिकथामुखानां हरिचिन्तनम् । स्पर्शानांपुत्रसंस्पर्शो हिंस्रानाञ्च यथा खलः
पापानाञ्चयथामिध्यापापिनांपुंश्चलीयथा । पुण्यानाञ्चयथा सत्यं तपसां हरिसेवतम् ॥
यथाघृतञ्च गव्यानायथा ब्रह्मातपस्विनाम् । अमृतं भक्ष्यवस्तूनां शस्याना धान्यकंयथा
पुण्यदाना यथा तोय शुद्धानाञ्च हुताशन । सुवर्णं तैजसानाञ्च मिष्टानां प्रियमापणम्
गर्ह. पक्षिणाञ्चैव हस्तिनामिन्द्रयाहनः । योगिनाञ्च कुमारश्चदेवर्षीणाञ्च नारदः ॥

गन्धर्वाणा चित्ररथो जीवो बुद्धिमतां यथा ।

सुकवीनां यथा शुक्र काव्यानाञ्च पुराणकम् ॥२०॥

स्रोत स्वतां समुद्रश्च यथा पृथ्वी क्षमावताम् ।

लाभानाञ्च यथा मुक्तिर्हरिभक्तिश्च सम्पदाम् ॥ २१ ॥

पवित्राणांविष्णवाश्च वर्षाणां प्रणवोयथा । विष्णुमन्त्रश्चमन्त्राणां बीजानां प्रकृतिर्यथा
विदुषाञ्चयथाघाणीनायत्री छन्दसांयथ । यथा कुबेरोयक्षाणां सर्पाणां वासुकिर्यथा ॥
यथा पिता ते शैलानां गवाञ्च सुरभिर्यथा । वेदानां सामवेदश्च तृणानाञ्च यथा कुशः ॥
सुखदानां यथा लक्ष्मीर्मनश्च शीघ्रगामिनाम् । अक्षराणामकारश्च हितैविणांपितायथा ॥
शालग्रामश्च यन्त्राणां पशूनां विष्णुपञ्जरः । चतुष्पदानांपञ्चास्यो मानवो जीविनांयथा
यथा स्वान्तमिन्द्रियाणां मन्दाग्निश्चरजांयथा । बलिनाञ्च यथाशक्तिरहंशक्तिमतांयथा ॥
महान्बिराट्च स्थूलाणां सश्मानांपरमाणुकः । यथेन्द्रादिनेयानां दैत्यानाञ्चबलिर्यथा

प्रहाश्चैवसाधूनां दातृणां दर्धीचिर्यथा । ब्रह्मास्त्रञ्चयथास्त्राणां चक्राणाञ्चसुदर्शनम् ॥
नृणां राजारामचन्द्रो धन्विनां लक्ष्मणो यथा । सर्वाधारः सर्वसेव्यः सर्वधीजञ्चसर्वदः

सर्वसारो यथा कृष्णो व्रतानां पुण्यकं यथा ॥ ३० ॥

व्रतं कुरु महाभागे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । सर्वसारश्च पुत्रस्ते व्रतादेव भविष्यति ॥

व्रताराध्यश्च श्रीकृष्णः सर्वेषां वाञ्छितप्रदः ।

जनो यन्सेवनान्मुक्तः पितृभिः कोटिभिः सह ॥ ३२ ॥

हरिमन्त्र गृहीत्वा च हरिसेवां करोति यः । भारते जन्मसफलं स्वात्मनः स करोति च
उद्धृत्य कोटिपुरपान् वैकुण्ठं याति निश्चितम् । श्रीकृष्णपार्षदो भूत्वा सुखंतत्रैवमोदते
सहोदरान्स्वभृत्यांश्च स्वयन्धून्सहचारिणम् । स्वस्त्रियञ्च समुद्धृत्य भक्तो याति हरेः परम्
तस्माद् गृहाण गिरिजे हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम् । जपमन्त्रं व्रतेतत्र पितृणां मुक्तिकारणम्
इत्युक्त्वा शङ्करो देवो गत्वा गिरिजया सह । शीघ्रञ्च जाह्नवीतीरं हरेर्मन्त्रं मनोहरम् ॥
तस्यै ददौ च संप्रीत्या कवचं स्तोत्रसंयुतम् । पूजाविधाननियमं कथयामास तां मुनेः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिषष्ठे

हृद्यितफलघर्षणं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः

शिवेन पार्वत्यै व्रतोपकरणकथनम् ।

नारायण उवाच ।

ध्रुत्वा व्रतविधानञ्च दुर्गां प्रहृष्टमानसा । सर्वं व्रतविधानञ्च संप्रमुपचक्षमे ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच ।

सर्वं व्रतविधानं मां वद वैदविदां वर । हे नाथ करुणासिन्धो दीनयन्धो परात्पर ॥ २ ॥
कानि व्रतोपयुक्तानि द्रव्याणि च फलानि च । समयं नियमं भक्ष्यं विधानं तन्फलं प्रभो
देहि मह्यं विनीतायै नियुक्तं सत्पुरोहितम् । पुष्पोपहारान् विप्रांश्च द्रव्याहरणकिङ्करान् ॥

अन्यानि चोपयुक्तानिमयाज्ञातानियानिच । सन्नियोजयतन्संस्त्रीणांस्वामीचसर्वदः ॥
 पिता कौमारकाले चसर्वपालनकारक । भर्ता मध्ये सुत शेषेत्रिधावस्था च योपिताम्
 तातोऽशोकः प्राणतुल्या दत्त्वा सत्स्वामिने सुताम् ।

स्वामी निवृत्तिमाप्नोति मन्यस्य स्वसुते प्रियाम् ॥७॥

बन्धुत्रययुता या स्त्रीसाचभाग्यवतीपरा । किञ्चिद्धिहीनामध्याचसर्वहीनाऽधमा भुवि ॥
 एतेषाञ्च समीपस्था प्रशस्या सा जगन्नये । निन्दितान्येषु संन्यस्तासर्वमेतच्छ्रुतोद्युतम्
 सर्वात्मा भगवास्त्यञ्च सर्वसाक्षीचसर्ववित् । देहिमहापुत्रवरंस्वात्मनिवृत्तिहेतुकम् ॥
 स्वात्मबोधानुमानेनमहात्मनिनिवेदितम् । सर्वान्तरामिप्रायज्ञंबोधज्ञबोधयामि किम् ॥

इत्युक्त्वा पार्यती प्रीत्या पपात स्वामिनः पदे ।

कृपासिन्धुश्च भगवान् प्रवक्तुमुपचकमे ॥१२॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विधानं नियमं फलम् ।

फलानि चैव द्रव्याणि व्रतोपर्यौगिकानि च ॥१३॥

विप्राणा शतक शुद्ध फलपुष्पोपहारकम् । किङ्कुराणाञ्च शतकद्रव्याहरणकारकम् ॥१४॥
 दासीनां शतक लक्षं नियुक्तञ्च पुरोहितम् । सर्वव्रतविधानज्ञं वेदवेदान्तपारगम् ॥१५॥
 प्रवर हरियुक्तानां सर्वज्ञ ज्ञानिना घरम् । सनत्कुमारं मत्तुल्यं गृहाण व्रतहेतवे ॥१६॥
 देवि शुद्धे च काले च पर नियमपूर्वकम् । माघशुक्लत्रयोदश्या व्रतारम्भ शुभः प्रिये ॥
 गात्रं सुनिर्मलं कृत्वा शिरः सस्कारपूर्वकम् । उपोष्यपूर्वदिवसे वस्त्रप्रक्षालयज्वतः ॥
 अरुणोदयवेलाया तस्यादुत्याय मुत्रती । मुखप्रक्षालनं कृत्वा स्नात्वाचनिर्मलेजले ॥१७॥
 आचम्य यत्नपूर्तो हि हरिस्मरणपूर्वकम् । दत्त्वाऽर्घ्यं हरयेभक्त्यागृहमागत्यसत्वरम् ॥

धौते च घ्राससी भृत्वा उपविश्यासने शुची ।

आचम्य तिलक कृत्वा निर्घाप्यस्त्याहिक पुन ॥२१॥

घटमारोपण कृत्वा स्वस्तिनाचनपूर्वकम् । पुनोहितम्य वरुण पुर कृत्वा प्रयत्नत ।

मङ्कुरं वेदविहितं व्रतमेतन् समाचरेत् ॥२२॥

व्रते द्रव्याणि नित्यानि चोपचाराणि षोडश ।

देयानि नित्यं देवेशि कृष्णाय परमात्मने ॥२३॥

भासन स्वागत पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ॥२४॥

मधुपर्कञ्च स्नानाय वस्त्राणि भूषणानि च । सुगन्धिपुष्पधूपञ्च दीपनैवेद्यचन्दनम् ॥२५॥

यज्ञसूत्रञ्च ताम्बूलं कपूरादिसुवासितम् । द्रव्याप्येतानि पूजायाश्चाङ्गरूपाणि सुन्दरि ॥

देवि किञ्चिद्धिर्हानेनैवाङ्गहानि प्रजायते । अङ्गहानञ्च यत् कर्म चाङ्गहानो यथा नर ॥

अङ्गहाने च कार्य्ये च फलहानि प्रजायते ॥२७॥

अष्टोत्तराशतं पुष्प पारिजातस्य विष्णवे । देयं प्रतिदिनं दुर्गे स्वात्मनो रूपहेतवे ॥२८॥

श्वेतचम्पकपुष्पाणां लक्षमक्षनर्माप्सितम् । प्रदेयं हरये भक्त्या वर्षसौन्दर्यहेतवे ॥२९॥

सहस्रपत्रं पद्मानामक्षतं पुष्पलक्षकम् । भक्त्या देयञ्च हरये मुखसौन्दर्यहेतवे ॥३०॥

अमूल्यरत्नरचितं दर्पणानां सहस्रकम् । देयं नारायणायैव नेत्रयोर्दोषहेतवे ॥३१॥

नालौतपलानां लक्षञ्च देयं कृष्णाय भक्तितः । जताङ्गभूतं देवेशि चमुरो रूपहेतवे ॥३२॥

हिमालयोद्भवं लक्षं रुबिरं श्वेतचामरम् । प्रदेयं केशवायैव केशसौन्दर्यहेतवे ॥३३॥

अमूल्यरत्नरचितं पुटुकानां सहस्रकम् । प्रदेयं गोपिकेशाय नासिकारूपहेतवे ॥३४॥

बन्धूकपुष्पलक्षञ्च देयं राघवेश्वराय च । सौम्योष्ठाधरयोश्चैव वर्षसौन्दर्यहेतवे ॥३५॥

मुक्ताफलानां लक्षञ्च दन्तसौन्दर्यहेतवे । देयं गोलोकनाथाय शैलजे भक्तिपूर्वकम् ॥

रत्नगण्डूकलक्षञ्च गण्डसौन्दर्यहेतवे । मदीश्वराय दातव्यं व्रते शैलेन्द्रकन्यके ॥३७॥

रत्नपाराकलसृञ्च देयं ब्रह्मेश्वराय च । ओष्ठाद्यं स्वरूपाय प्राणेशि भक्तितो व्रता ॥३८॥

कर्णभूयणलक्षञ्च रत्नसारविनिर्मितम् । देयं सर्वेश्वरायैव कर्णसौन्दर्यहेतवे ॥३९॥

मावीककलसानाञ्च लक्षं रत्नविनिर्मितम् । देयं विश्वेश्वरायैव स्वरसौन्दर्यहेतवे ॥

सुधापूर्णाञ्च कुम्भानां सहस्रं रत्ननिर्मितम् ।

देयं कृष्णाय देवेशि वाक्पसौन्दर्यहेतवे ॥४०॥

रत्नप्रदीपलक्षञ्च गोपवेशविनायिने । देयं विश्वेशाय दृष्टिसौन्दर्यहेतवे ॥४१॥

धुम्नूरकुसुमाकारं रत्नपात्रसहस्रकम् । देयं गोरक्षकायैव गणसौन्दर्यहेतवे ॥ ४३ ॥

सद्रत्नसाररचितं पद्मनालसहस्रकम् । देयं चण्डकपालाय बाहुसौन्दर्यहेतवे ॥ ४४ ॥
 लक्ष्मञ्च रक्तप्रधानां करसौन्दर्यहेतवे । देयं गोपाङ्गनेशाय नारायणि हरिचित्रे ॥४५ ॥
 जङ्घुगोपकलक्षञ्च स्नानसारविनिर्मितम् । अङ्गुलीनाञ्च रूपार्थं देयं देवेश्वराय च ॥४६ ॥
 मर्णान्द्रसारलक्षञ्च प्रेतवर्णं मनोहरम् । देयं मुनीन्द्रनाथाय भक्तसौन्दर्यहेतवे ॥४७ ॥
 सद्रत्नसारहरिणां लक्षञ्जातिमनोहरम् । देयं मदनमोहाय वक्ष्ये सौन्दर्यहेतवे ॥ ४८ ॥
 सुपर्शुश्रीकलानाञ्च लक्ष्मञ्च सुमनोहरम् । देयं सिद्धेन्द्रनाथाय स्नानसौन्दर्यहेतवे ॥४९ ॥
 सद्रत्नवर्तुलाकारं पात्रं लक्षं मनोहरम् । देयं पद्मालयेशाय देहस्य रूपहेतवे ॥ ५० ॥
 सद्रत्नसाररचितं नामीनाञ्च सहस्रकम् । प्रदेयं पद्मनाभाय नाभिसौन्दर्यहेतवे ॥५१ ॥
 सद्रत्नसाररचिनं नखचन्द्रसहस्रकम् । नितम्बसौन्दर्यार्थञ्च प्रदेयंचक्रपाणये ॥ ५२ ॥
 सुवर्णरम्भास्तम्भानां लक्ष्मञ्च सुमनोहरम् । प्रदेयं श्रीनिवासाय श्रोणिसौन्दर्यहेतवे ॥
 शतवक्त्रस्थलाज्ञानां लक्षमस्तुनमक्षतम् । प्रदेयं पद्मनेत्राय पादसौन्दर्यहेतवे ॥ ५३ ॥
 सुवर्णरचितानाञ्च खड्गनानां सहस्रकम् । गतिसौन्दर्यहेतवर्थं देयं लक्ष्मीश्वराय च ॥
 राजहंससहस्रञ्च गजेन्द्राणां सहस्रकम् । सुवर्णरचितं देयं हरये गतिहेतवे ॥ ५६ ॥
 सुवर्णद्वलक्षञ्च देयं नारायणाय च । विवित्रं स्नानसारेण मूर्ध्नि सौन्दर्यहेतवे ॥५७ ॥
 मालनीनाञ्च कुसुममक्षतं लक्ष्मीश्वरि । देयं वृन्दावनेशाय हास्यसौन्दर्यहेतवे ॥५८ ॥
 अमूल्यरत्नलक्षञ्च देयं नारायणाय वै । सुव्रते व्रतपूर्णांशं शीलसौन्दर्यहेतवे ॥ ५९ ॥
 स्वच्छन्दफटिकसङ्काशं मर्णान्द्रसारलक्षकम् । देयं मुनीन्द्रनाथाय मनःसौन्दर्यहेतवे ॥
 प्रवालसारसङ्काशं मणिसारसहस्रकम् । देयं कृष्णाय भक्त्या च प्रियानुरागवृद्धये ॥६१ ॥
 माणिक्यसारलक्षञ्च देयं कृष्णाय यत्नतः । जन्मनःकोटिपर्यन्तं स्वामिसौभाग्यहेतवे ॥
 कुष्माण्डं नारिकेलञ्च जम्बोरं श्रीफलन्तथा । फलान्येसानि देयानि हरये पुत्रहेतवे ॥
 रत्नेन्द्रसारं लक्षञ्च देयं कृष्णाय यत्नतः । असंख्यजन्मपर्यन्तं स्वामिनो धनवृद्धये ॥
 घाशं नानाप्रकारञ्च कांस्यतालादिकं परम् । व्रते सम्पत्तिवृद्धयर्थं श्रोत्रं ध्यायेत् व्रती
 पायसं पिष्टकं सर्पिः शर्कराक्तं मनोहरम् । प्रदेयं हरये भक्त्या स्वामिनो भोगवृद्धये ॥
 सुगन्धिपुष्पमालानां लक्षमक्षतमीप्सितम् । प्रदेयं हरये भक्त्या हरिभक्तिवृद्धये ॥६७ ॥

नैवेद्यानि च दैवानि स्वादूनि मधुगाणि च । श्रीकृष्णप्रीतिप्राप्त्यर्थं दुर्गे नानाविधानि च
 नानाविधानि पुष्पाणि तुलसीमन्त्रियुतानि च । श्रीहृण्ण प्रीतये भक्त्या व्रते दैवानि सुव्रते
 ब्राह्मणाणां सहस्रञ्च प्रत्यहं मौजयेद्व्रती । स्वात्मनः शम्यवृद्धयर्थं व्रते जन्मनिजन्मनि
 पुष्पाञ्जलिशतं देयं नित्यं पूर्णञ्च पूजने । प्रणानशतकं देवि कर्त्तव्यं भक्तिवृद्धये ॥७१॥
 यणमान्नाञ्च हविष्यान् मानान् पञ्चफलादिकम् । हविः पक्षं जलं पक्षं व्रतेनशेचनुव्रते
 नक्षप्रदीपशतकं बद्धिं दद्याद्दिवानिशम् । गर्वां कुर्यात्सन कृत्वा नित्यं जागरणं व्रते ॥
 स्मरणं कर्त्तनं केलिः श्रवणं गुहाभाषणम् । सङ्कुल्योऽव्ययनायश्च क्रियानिपत्तिहेतवे
 स्वप्नं नैथुतकं त्याज्यं व्रती क्रोडा च शुद्धये । सन्पूर्णं च व्रते देवि प्रतिष्ठा तदनन्तरम् ॥
 त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं डल्लकं वन्दनमन्युतम् । समो ज्यं सोपवीतञ्च सोपहारं मनीहरम्
 त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं सहस्रं विप्रमोजनम् । त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं सहस्रं तिलहोमकम्
 त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं सहस्रम्वर्णनैव च । देया व्रतसनात्तां च दक्षिणा विधिवोचिता
 ग्रन्यां मन्मनि दिवसे कययिष्यामि दक्षिणाम् । एतद्व्रतफलं देवि वृद्धानिर्द्धरौ भवेत्
 हगितुल्यो भवेत्पुत्रो विम्यातो भुवनत्रये । सौन्दर्यं स्वामिनीभाग्यमैश्वर्यं विपुलं धनम्
 सर्वं वाञ्छितसिद्धिनां बीजं जन्मनि जन्मनि । इत्येवं कथितं देवि व्रतं कुन महेश्वरि
 पुत्रन्ते भविता साध्वीत्युक्त्या स विररान ह ॥ ८२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे व्रतमाहात्म्यविधानं
 नान चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः

व्रतमाहात्म्यकथा ।

नारायण उवाच ।

श्रुत्वा व्रतविमानञ्चदुर्गां प्रहृष्टमानसा । पुनः परञ्च कालं ना दिव्यां व्रतकथांशुनाम्

श्रीपार्वत्युवाच ।

किमद्भुतं व्रतं नाथ विधानं फलमस्य च । अधिकान्तं कथां ब्रूहि व्रतं केन प्रकाशितम्

अथ व्रतं कथा । श्रीमहादेव उवाच

शतम्पा मनोः पत्नी पुत्रदु खेत दुःखिना । ब्रह्मणः स्थानमागत्य सा ब्रह्माणमुवाच ह ॥

शतरूपोवाच ।

ब्रह्मण केन प्रकारेण ब्रह्म्यायाश्च सुतो भवेत् । तन्मे ब्रूहि जगद्धातः सृष्टिकारणकारण

तज्जन्म निष्फलं ब्रह्मन्लैश्वर्यं धतमेव च ।

किञ्चिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम् ॥ ५ ॥

तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तासुग्राहहम् । सुखदौ मोक्षदः प्रीति दाता पुत्रश्चपुत्रिणाम्

पुत्री पुत्रमुखदृष्टा शताश्वमेधिनां फलम् । पुत्रामनरकत्राणकारणं लभते ध्रुवम् ॥ ७ ॥

पुत्रोपायं यदि विधे च्छ मां तापसंयुताम् । तदा भद्रं नरेद्भर्त्रा सह याम्यामि काननम्

गृहाण गन्धमैश्वर्यं धनं पृथ्वी प्रजावहाम् । किमेतेनावयोस्तात विना पुत्रैरपुत्रिणोः ।

अपुत्रिणो सुखं द्रष्टुं विद्वान्नोत्सहन्ऽशिवम् । सुगं दर्शयितुं लज्जां समवाप्तोत्यपुत्रकः ॥

अथवा गगलं भुक्त्वा प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । अपुत्रपुत्रमशिवं गृहाण स्त्रीविहीनकम् ॥

इत्येवमुक्त्वा सा साक्षाद् ब्रह्मणश्च रुरोद ह । कृपानिधिश्च ता दृष्ट्वा प्रवक्तुमुपचरमे ॥

ब्रह्मोवाच ।

ऽष्टणु वन्मे प्रवेक्ष्यामि पुत्रोपायं सुखावहम् । सर्वैश्वर्याद्विर्वाजस्रबंधवाञ्छाप्रदेशुभम्

माघशुक्लत्रयोदश्या व्रतमेतन् सुपुण्यकम् । कर्त्तव्यं शुद्धकाले च कृष्णमाराध्य सर्वदम्

भवत्सख्यं कर्त्तव्यं सर्वविप्रविनाशनम् । वेदोक्तानि च द्रव्याणि व्रते देयानि सुव्रते ॥

व्रतञ्च काण्यशास्त्रोक्तं सर्ववाञ्छितसिद्धिदम् । कृत्वा पुत्रं लभशुभे विष्णुनुन्यपराक्रमम्

ब्रह्मणश्च चक्षुःश्रुत्या सादृश्या व्रतमुत्तमम् । प्रियत्रतोत्तानपादौ लेभे पुत्रो मनोहरौ ॥

व्रतं कृत्वा देवहर्त्री लेभे सिद्धेश्वरं सुतम् । नागयणारां कपिलं पुण्यकं पुण्यदं शुभम् ॥

अरन्धरीदं कृत्वा तु लेभे शक्तिमुनं शुभा । शक्तिकाता व्रतं कृत्वा सुतं लेभे पराशरम्

अदितिश्च धनं कृत्वा लेभे वामनकं सुतम् । शची जयन्तं पुत्रञ्च लेभे कृत्वेदमीश्वरी ॥

उत्तानपादपत्नीदं कृत्वा लेभे ध्रुवं सुतम् । कुबेरजाया कृत्वेदं लेभे च नलकूवरम् ॥२१॥
 सूर्यपत्नी मनु लेभे कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । अत्रिपत्नी सुतं चन्द्रं लेभे कृत्वेदमुत्तमम् ॥२२॥
 लेभे चाङ्गिरसः पत्नी कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । बृहस्पतिं सुरगुरुं पुत्रमस्य प्रभावतः ॥२३॥
 भृगोर्मातर्यां व्रत कृत्वा लेभे दैत्यगुरुं सुतम् । शुक्रं नारायणांशञ्च सर्वतेजस्विनांपरम् ।
 इत्येवं कथितं देवि व्रतानां व्रतमुत्तमम् । त्वमेव कुरु कल्याणि हिमालयसुते शुभे ॥२४॥
 साध्यंराजेन्द्रपत्नीनां देवीनाञ्चसुखावहम् । व्रतमेतन्महासाधिव साध्वीनांप्राणत प्रियम् ॥
 व्रतम्यास्य प्रमावेण स्वयं गीपाङ्गनेश्वरः । ईश्वरः सर्वदेवानां तत्र पुनो भविष्यति ॥
 इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद । व्रतञ्चकार सा देवी प्रहृष्टा शङ्कराज्ञया ॥२५॥
 इत्येवं कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि । सुखदं मोक्षदं सारं गणेशजन्मकारणम्
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे व्रतकथा-

प्रकरणं नाम षष्ठमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः

पार्वत्या व्रतारम्भोद्योगः ।

शौनरु उवाच ।

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः । किं पप्रच्छ पुन साधो तन्मे ब्रूहि तपोधना ॥

सूत उवाच ।

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः । व्रतारम्भविधानञ्च संद्रष्टुमुपचकमे ॥ २ ॥

नारद उवाच ।

कृतं केन प्रकारेण व्रतमेतन् शुभावहम् । तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ पार्वत्या भक्तुंराज्ञया ॥ ३॥
 लक्ष्म जन्म गोर्पाशः कृते सुमृतया वने । ब्रह्मन् केन प्रकारेण तत्रः शंसितुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

कथयित्वाकथा दिव्यां विधानञ्च व्रतस्य च । स्वयंविधाता तपसां जगाम तपसेशियः ।
 हरैरागधनव्यग्रो मूर्त्तिभेदधरो हरिः । हरिभावनशीलश्च हरिध्यानपरायणः ॥ ६ ॥
 परमानन्दपूर्णश्च ज्ञानानन्द सनातनः । दिवानिशं न जानाति हरिमन्त्रं चहिः स्मरन् ॥
 ब्रह्ममनसा देवी पार्वती भर्तुराज्ञया । किङ्करान् प्रेरयामास विप्रांश्च व्रतहेतवे ॥ ८ ॥
 आनीय सर्षट्श्याणि ऋषीपयो गिकानि च । व्रतं कर्तुं समारंभे शुभदा सा शुभक्षणे ॥
 सनत्कुमारो भगवानाजगाम विधेःसुतः । मूर्त्तिमांस्तेजसां राशिः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा
 ब्रह्माजगाम हृष्टश्च ब्रह्मलोकात् सभापर्यकः । अतिव्रस्तो हि भगवानाजगाम महेश्वरः ।
 विष्णुर्क्षारोदशार्थाच्च सलक्ष्मीकश्चतुर्भुजः । भगवाञ्जगतां पाता शास्ताभर्ता सपार्षदः
 वनमात्याधर श्यामो भूपितो रत्नभूपणैः । महासम्भूतसम्भारो रत्नयानेन नारद ॥ १३ ॥
 सनकश्च सनन्दश्च कपिलश्च सनातनः । आसुरिश्च व्रतहंसी चोद्धुः पञ्चशिखोऽरुणिः ॥
 यतिश्च सुमतिश्चैव चशिष्टश्च सहानुगः । पुहलश्च पुलस्त्यश्च अत्रिश्च भृगुरङ्गिराः ॥ १५ ॥
 अगस्त्यश्च प्रचेताश्च दुर्वासश्च्यवनस्तथा ।

मरीचि कश्यपः कण्वो जरत्कारुश्च गौतमः ॥ १६ ॥

बृहस्पतिस्तथ्यश्च संवर्त मौरभिस्तथा । जायादिर्जमदक्षिश्च जैगीपच्यश्च देवलः ॥ १७ ॥
 गोकामुखो घन्नरथः पारिभद्रः पराशरः । विध्वामित्रो घामदेव ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः
 मार्कण्डेयो मुकण्डुश्च पुंकारो लोमशास्तथा । कौत्सो वत्सश्च दक्षश्च बालाश्रिरघमर्षणः
 कात्यायन कणादश्च पाणिनिः शाकटायनः । शङ्करापिशलिश्चैव शाकल्यः शङ्खपव च
 एने चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयो मुने । आवाञ्च धर्मपुत्रो च नरनारायणौ समौ
 दिक्पालाश्च तथा देवा यक्षगन्धर्वकिङ्कराः । आजगमुः पार्वताः सर्वे सगणाः पार्वतीघ्नं
 हिमालय शैलराजः सापन्थश्च सभापर्यकः । सगणः सानुगश्चैव रत्नभूपणभूपितः ॥
 महासम्भूतसम्भारो नानाद्रव्यसमन्वितः । मणिमाणिक्यरत्नानि व्रतोपयोगिकानि च ।
 नानाप्रकारवस्त्रानि जगतां दुर्लभानि च । लक्षञ्च गजरत्नानामश्वरत्नं त्रिलक्षकम् ॥ २५ ॥
 दशलक्षं गवां रत्नं शतलक्षं सुवर्णकम् । रचकानां हीमकाणां स्पर्शानाञ्च तथैव च ॥ २६ ॥

मुक्तानाञ्च चतुर्लक्षं कौस्तुभानां सहस्रकम् । सुम्बादुमिष्टद्व्यापांलक्षमारुपिकौतुकी
अन्तरत्नप्रभव आजगाम सुताव्रते ॥२७॥

ब्राह्मणा मनवः सिद्धानागाविद्याधरास्तथा । सन्यासिनो भिक्षुकाश्च वन्दिनःपार्वतीव्रते
विद्याधरी नर्तकी च नर्तकाऽप्सरसां गणाः ।

नानाविधा वायुभाण्डा आजग्मुः शिवमन्दिरम् ॥ २६ ॥

कैलासराजमार्गञ्च चन्दनेन मुसुंस्कृतम् । आप्रपल्लवसूत्राकं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥३०॥
दूर्वाधान्यपर्णालाजफल्गुपविभूषितम् । निर्मितं पद्मरागेण ददृशुस्ते गणा मुदा ॥३१॥
उच्चैः सिंहासनेभ्येते पूजिता शङ्करेण च । कैलासवासिनः सर्वे परमानन्दसंयुताः ।३२॥
दानाध्यक्ष सुनाशीरः कुबेरः कोपरक्षकः । आद्रेष्टा च स्वयं सूर्यः परिवेष्टा जलाधिपः
दधनां नय सहस्राणि दुग्धानाञ्च तथैव च । सहस्राणि घृतानाञ्च गुडानाञ्च शतानि च
माञ्जीकानां सहस्राणि तैलानाञ्च शतानि च । लक्षाणि चैव तक्राणां बभूवुः पार्वतीव्रते
पीयूषाणाञ्च कुम्भानि शतलक्षाणि नारद । मिष्टानानां शर्कराणां बभूवुर्लक्षराशयः ॥
यवगोधूमचूर्णानां घृताक्तानाञ्च नारद ॥ ३६ ॥

स्वस्तिकानाञ्च पूषाना बभूवुर्लक्षराशयः । गुडसंस्कृतलाजानां बभूवुः कोदिराशयः ॥
शालीनां पृथुकानाञ्च राशीना दशकोटयः । तण्डुलानाञ्च राशीनां मुने संख्या न विव्रते
स्यर्णरौप्यप्रवालानां मणीनाञ्च महामुने । बभूवुः पर्वतास्तत्र कैलासे पार्वतीव्रते ॥
पायसं पिष्टरुडचैव शाल्यन्नं सुमनोहरम् । चकार लक्ष्मीः पाकञ्च व्यञ्जनं घृतसंस्कृतम्
युमुजे देवर्षिगणैः सार्द्धं नागयणाः स्वयम् । बभूवुर्लक्षविद्याश्च परिवेष्टेनकारकाः ॥३९॥
ताम्वूलञ्च ददौ तेभ्यः कर्पूरादिमुद्यासितम् । रत्नसिंहासनम्येभ्यो विप्रलक्षाः सुदक्षकाः
रत्नसिंहासनस्थञ्च विष्णुं क्षीरोदशाथितम् । सेज्यमानं पार्वदैश्च सम्मिनैः श्वेतचामरैः
ऋषिमिस्मन्यमानाञ्च सिद्धैर्देवगणैस्तथा । विद्याधरोपां नृत्यानि पश्यन्तं सम्मिनं मुदा
गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं श्रुतपन्नं मनोहरम् ॥ ४४ ॥

पप्रच्छ शङ्कते ब्रह्मन् ब्रह्मेणं भक्तिपूर्वकम् । ब्रह्मणा प्रेरितो युक्तं व्रतं कर्तव्यमीप्सितम्
देवर्षिगणपूर्वायां समायां स पुदाञ्जलिः ॥ ४६ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

मदाय प्रार्थन नाथ श्रीनिवास शृणु प्रभो । तपस्वरूप तपसा कर्मणाञ्च फलप्रद ॥४७॥
 वनाना जपयज्ञाना पूजाना सर्वपूजित । सर्वेषा वाजरूपेण वाञ्छाकल्पतरो हरे ॥४८॥
 सुपुण्यकर्मन् वत्तु ब्रह्मन्निच्छति पार्वती । पुत्रार्थिनी सा शोकात्तां हृदयेन विदूयता
 रतिभङ्ग वृत्ते देवैर्वीर्यव्यर्धशुचादिता । प्रबोधिता मया साध्वी विधिधर्मचनान्मृतै ॥
 । स पुत्रस्वामिसौभाग्यसुप्रतायाचनेवने । तगभ्यायिदानसन्तुप्रास्यप्राणास्त्यक्तुमिच्छति
 पुत्र त्यक्त्वा स्वदेहञ्च पित्र्यज्ञे च मानिनी । मानन्दया शैल्येहे पुत्रजन्म ललाभ सा ॥
 सर्वं जानासि व्रत्तान्त सर्वज्ञ त्वा वदामि किम् । काऽऽज्ञा तावदतत्त्वज्ञपरिणामशुभप्रदाम्
 दुर्निरार्य्यश्च सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापल ।

दुस्त्यज्य योगिमि सिद्धैरस्मामिश्च तपस्विमि ॥ ५४ ॥

जितेन्द्रियैर्जितबोधै स्त्रीरूप मोहकारणम् । सर्वमायाकरणञ्च कामवर्द्धनकारणम् ॥
 प्रह्लाख कामदेवस्य दुर्भेद्य जयकारणम् । अतिर्मितश्च विधिना सर्वाद्य विधिपूर्वजम् ॥
 मोक्षद्वारकपाटञ्च हरिमन्निरोधनम् । ससारबन्धनस्तम्भरज्जूरूपमद्वन्तनम् ॥ ५७ ॥
 वैराग्यनाशर्वाजञ्च शश्वद्रागविचर्जनम् । पत्न साहसानाञ्च दौषाणामालय सदा ॥५८॥
 अप्रत्ययाना क्षेत्रञ्च स्वयं कपटमूर्तिमन् । अहङ्काराथय शश्वद्विपकुम्भ सुधामुहम् ॥
 सर्वैरसाध्यमानञ्च दुराराग्यञ्च सर्वदा । स्वकार्यसाध्यश्चाराध्य कलहाङ्करकारणम् ॥
 सर्वं निरोदित नाथ कर्त्तव्यं वक्तुमर्हसि । कार्यं सर्वं परामर्शं परिणामसुखावहम् ॥६१॥

श्रीनारायण उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा भगवान्निरीक्ष्य ब्रह्मणोमुखम् । विरगामरुभामध्ये स्तुत्वा च कमलापतिम्
 शङ्करस्य ध्वज ध्रुवा प्रहस्य जगदीश्वर । हित नीतिञ्च वचनं प्रवक्तुमुदचनमे ॥ ६३ ॥

श्राविष्णुस्वाच ।

सुपुण्यकर्मन् सार सती सन्तानहैतये । स्वामिसौभाग्यवीजञ्चपक्षं ते वक्तुमिच्छति ॥
 सर्वासाध्य दुराराध्य सर्वकामफलप्रदम् । सुखद सुप्तसारञ्च मोक्षदपार्वतीश्वर ॥६५॥
 धारमा साक्षिस्वरूपञ्च ज्योतीरूप सनातन ।

निगद्यथश्च निर्लिप्तो निम्पाधिर्निरामयः ॥६६॥

भक्तप्राणश्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः ।

दुर्गाद्यो हि योऽन्येषां भक्तानामतिसाधकः ॥६७॥

भक्त्या रीनो हि भगवान् सर्वसिद्धो हि निष्फलः ।

ने यन्म्य च कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६८॥

महान् विगद् यदंशश्च निर्लितः प्रकृतेः परः ।

अव्ययो निग्रहश्चोप्रो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६९॥

उग्रप्रहोप्रहाणाञ्च ग्रहनिग्रहकारक । त्रिकोटिजन्ममध्ये च न साध्यो भवता विना ॥
लब्ध्वा हि भारते जन्म हरिभक्ति लभेन्नर । सेवनं शत्रुदेवानां कृत्वा सतसु जन्मसु ॥
सूर्यमन्त्रमवाप्नोति केवलं स तदाशिया । सूर्यमन्त्रं समागच्छ त्रिषु जन्मसु भारते ॥
प्राप्नोति शैवं मन्त्रञ्च सर्वदं मानवो मुदा । संसेव्य परया भक्त्या त्वामैव सतजन्मसु
प्राप्नोति मायामन्त्रञ्च त्वत्पदान्जप्रसादनः । शतं जन्मसमागच्छमायांनागयणीं पराम्
नागयणकलां सेव्या समवाप्नोति मानवः । कलां निषेव्य वर्षेऽत्रपुण्यक्षेत्रे सुदुर्लभे ॥
कृष्णभक्तिप्राप्नोति भक्तमंसर्गहेतुर्काम् । मंत्राप्यभक्तिनिष्पक्कान्नामन्नामञ्च भारते ॥
प्राप्नोति पण्डिताञ्च भक्ति भक्तनिषेवया । तदा भक्तप्रसादेन देवानामाशिया शिव ॥

श्रीकृष्णमन्त्रं प्राप्नोति निर्वाणफलदं परम् ॥७०॥

कृष्णमन्त्रं कृष्णमन्त्रं सर्वकामफलप्रदम् । कृष्णतुल्यो भवेद्भक्तश्चिं कृष्णनिषेवया ॥७१॥
महति प्रलये पातः सर्वेषां सर्वनिश्चितम् । तपात् कृष्णभक्तानांसाधूनामविनाशिताम् ॥
अविनाशिनिगोलोन्नेमोदन्तेकृष्णकिङ्कराः । हसन्तिनेमुनिश्चिन्तादेवान्प्रह्लादिकान्शिव
त्यं संहर्ता च सर्वेषां न भक्तानां महेश्वर । माया मोहयते सर्वान्भक्तात्रृपथा मम ॥
मायानागयणीमातासर्वेषांकृष्णभक्तिदा । नकृष्णभक्तिप्राप्नोतिविनामायानिषेवणम् ॥
सा च नागयणीमायामूलप्रकृतिरीश्वरी । कृष्णप्रियाकृष्णभक्ता कृष्णतुल्याविनाशिनी
सा च तेजःस्वच्छा च स्वच्छाविग्रह्यागिणी । आदिर्भूताचदेवानानेजसा सुरनिग्रहे ॥
निहत्य दैत्यसङ्घाञ्च दशपत्न्याञ्च भारते । ललाभ दशस्तपसा जन्म चानेकजन्मनः ॥

स्यनया देह पितुर्यज्ञे सा सती तव निन्दया ।

जगाम देवी गोलोकं कृष्णशक्तिं सनातनी ॥८६॥

गृहीत्वा विग्रह तस्या गुणरूपाश्रय परम् । भ्राम भ्राम भारते त्व विष्णोऽभू पुराहर ॥
 प्रयोधिता मथा त्वञ्च श्रीशैलेषु सखित्ये । ललाभ जन्म सा शैलकान्तायामखिरेणव
 करोतु पुण्यक साध्वी सुव्रता सुव्रत शिवा । राजसूयसहस्राणा पुण्य शङ्कर पुण्यके ॥
 राजसूयसहस्राणा व्रते यत्र धनयय । न साभ्यं सर्पसाध्वीना व्रतमेतन् त्रिलोचन ॥
 स्वय गोलोकनाथश्च पुण्यकस्य प्रभावतः । पार्यतोर्गर्भजातश्च तव पुत्रो भविष्यति ॥
 स्वय देवगणानाञ्च यस्माद्दीश कृपानिधि । गणेशइतिविख्यातोभविष्यति जगत्त्रये ॥
 यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ननिघ्न भवेद्बुधुवम् । जगताहेतुना तेन विघ्ननिघ्नानिघो विभु
 नानाविधानिद्रयाणियस्माद्देयानिपुण्यके । भुक्त्वा लंपोदरवञ्च तेनलम्बोदर मृत्यु
 शनिदृष्ट्या शिखण्डेदादगजवक्त्रेण योजित । गजानन शिशुस्तेन निश्चय केनचार्यते ॥
 पशुना पशुरामस्य यदेकदन्तखण्डनम् । भविष्यति निश्चयेन चैकदन्ताभिध शिशु ॥
 पूज्यश्च सर्वदेवानामस्माक जगता विभु । सर्वांगे पूजनन्तस्य भविता महद्रेण वै ॥६७
 पूजासु सर्वदेवानामग्रे सपूज्य त जन । पूजाफलमवाप्नोतिनिर्विघ्नेनृषाऽन्यथा ६८
 गणेशञ्च दिनेशञ्च विष्णुशम्भुदुताशनम् । दुर्गांमेतान् सत्रिपेव्य पूजयेद्देवतान्तरम् ॥
 गणेशपूजने विघ्ननिर्विघ्न जगताभवेत् । निर्व्याधि सूर्यपूजायाशुचि धीविष्णुपूजने ॥
 मोक्षश्च पापनाशश्च यश्चैश्वर्यं वर्द्धनम् । तत्त्वज्ञानसुनृताना वीजशङ्करपूजनम् ॥१०१
 स्वसुद्धिशुद्धिजनन धीर्त्तितवह्विपूजनम् । विधिससृत्तवह्वेस्तु ज्ञानमृत्यु लभेन्नर ॥१०२
 दाता भोक्ता च भवति शङ्कराग्निपेवणात् । हरिभक्तिप्रदञ्चैव परदुर्गाञ्चर्चनशिवम् ॥
 विपरीत त्रिजगतामेतेषा पूजन विना । एव ब्रह्मो महादेव कल्पैकल्पेऽस्ति निश्चितम् ॥
 एते शश्वद्विद्यमाना नित्या सृष्टिपरायणा । आविर्भावतिरोभावीचैतेषामीश्वरेच्छया
 इत्युक्त्वा धीहरिस्तत्र विरराम सभातले । प्रहृष्टा देवता विप्रा पार्जन्यासहशङ्कर ॥१०६

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे व्रताज्ञाग्रहण
 नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सतमोऽध्यायः

हरिर्गदंशत व्रतविधानम् ।

नागयम उवाच ।

हरिर्गता स्नादाय हरः प्रहृष्टमानसः । उवाच पावता प्रीत्या हृग्मिलापनद्गलम् ॥१॥

शिवाज्ज्वल्य स्नादाय शिवा प्रहृष्टमानसा । वाश्रज्य वाद्रमानान् मद्गलं मद्गलव्रते ॥२॥

मुक्तातानुदनीगुदाधिपत्रतोऽर्थात्वासनी । संन्याप्यगन्त कलान् शुक्लवान्योपरिगम्यितम् ॥

आप्रपत्त्रयस्युक्तं फलाद्यतलुगोमितम् । चन्दनागुनकम्बूगुकुङ्कुमेन विभूषितम् ॥ ४ ॥

गन्तान्मनस्या गत्वाद्या गत्तोऽयमुता मता । गन्तमितामनस्याश्च संपूज्यमुनिपुङ्गवान्

गन्तमिहान्तन्यज्य स्वंपूज्य च पुणोहितम् । चन्दनागुनकम्बूगुगन्तमूषितम् ॥६॥

संन्याप्य पुगतो मन्त्रा दिक्पालान् गन्तभूषितान् ।

देवान्गर्भश्च नागाश्च सनन्तर्यं विधिवोचितम् ॥७॥

सनन्तर्यं ऋषा मन्त्रा ब्रह्मविष्णुभद्रेश्वरान् । चन्दनागुनकम्बूगुकुङ्कुमेनविगजितान् ॥

दक्षिणुदाश्च वन्त्रैश्च सद्रत्नभूषणैश्च । पूजार्हैश्चैर्विविधैः पूजितान् पुण्यके मुने ।

सागरे व्रत देवैः स्वस्मिन्वाचनपूर्वकम् ॥१०॥

आवाह्यानीपुत्रव त श्रीकृष्ण मद्गले षटे । मन्त्रा दृशे क्रमेणैव चोपचाराणि पौत्रा ॥

यानि व्रते विप्रेगानि देवानि विविधानि च । प्रदृशे तानिन्मर्षाणिप्रत्येकफलदानि च ॥

व्रतोक्तलुपदान्श्च दुर्लभं मुदतप्रये । तच्च सर्वे दृशे मन्त्रा मुव्रते मुव्रता मती ॥१२॥

दत्त्वा स्वर्षाणि द्रव्याणि वेदमन्त्रेण सा मती ।

होमञ्च काग्मानान् द्रिलक्षं तिलमर्षिषा ।

श्राद्धभान् भोजयामान् देवानतिशिपूजितान् ॥१३॥

कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्ये मुव्रते मुव्रता मती । प्रत्यहं स्नायमानञ्च चकार पूर्णवत्सगम् ॥१४॥

स्नातिलिवने विप्रस्नानुवाच पुणोहितः । मुव्रते मुव्रते मह्यं देहानि पतिदक्षिणाम् ॥१५॥

श्रुत्वा पुरोहितोक्तं सा विलम्बं सुरसंसदि । मूर्च्छां प्रापमहामायामायामोहितचेतसा
तां ते च मूर्च्छिता दृष्ट्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवाः । शङ्करं प्रेययामास ब्रह्मा विष्णुध्वनारद ॥
संप्रेरित सभासद्भिः शिवां बोधयितुं तदा । शिवः समुधमञ्जके प्रबहुं घृतां घरः ॥
श्रीमहादेव उवाच ।

उत्तिष्ठ भद्रे भद्र ते भविष्यति न सशयः । साम्प्रत चेतनं कृत्वा मदीयं घवनं शृणु ॥
शिवः शिवां नामित्युक्त्वा शुष्ककण्ठीष्ठतालुकाम् ।
घक्षसि स्थापयामास कारयामास चेतनाम् ॥२०॥

हितं सत्यं मितं सर्वं परिणामसुखाद्यहम् । यशस्करञ्च फलदं भवकुमुपचक्रमे ॥२१॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यदुद्येद् न रूपितम् । सर्वसम्मतमिष्टञ्च धर्मार्थं धर्मसंसदि ॥२२॥
सर्वेषां कर्मणां देवि सारभूतावदक्षिणा । यशोदाफलदानिन्यंधर्मिष्ठे धर्मकर्मणि ॥
देवं वा पैतृकं चापि नित्यं नैमित्तिकं प्रिये । यत्कर्मदक्षिणाहीनं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥
दाता च कर्मणां तेन कालमूर्त्रं व्रजेद् भुवम् ॥२४॥

अथान्ते दैत्यमाप्नोति शत्रुणा परिपीडितः । दक्षिणा विप्रमुद्दिश्यतन्कालन्तुतशीयते ॥
तन्मुहूर्ते व्यतीते तु दक्षिणा द्विगुणा भवेत् । चतुर्गुणा दिनातीते पक्षेशतगुणा भवेत् ॥
मासे पञ्चशतगुणा षण्मासे तत्तुर्गुणा । संबत्सरे व्यतीते तु तत्कर्मनिष्फलं भवेत् ॥
दाता च नत्वं याति यावद्वर्षसहस्रकम् । पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं क्षयमाप्नोतिपातकात् ॥
धर्मो नष्टो भवेत्तस्य धर्महाने च कर्मणि ॥२८॥

श्रीविष्णुत्वाच ।

रक्ष स्वधर्मं धर्मिष्ठे धर्मज्ञे धर्मकर्मणि । सर्वेषाञ्च भवेद्रक्षा स्वधर्मपरिपालने ॥२९॥
ब्रह्मोवाच ।

यश्च केन निमैत्तेन न धर्मं परिरक्षति । धर्मो नष्टे च धर्मज्ञे तस्य धर्मो विनश्यति ॥३०॥
धर्म उवाच ।

मां रक्ष यत्नतः साधि प्रदाय प्रतिदक्षिणाम् ।

मयि स्थिते महासाधिवि सर्वं भद्रं भविष्यति ॥३१॥

देवा ऊचुः ।

धर्मं रक्ष महासाध्वि कुरु पूर्णं व्रतं सति । वयं तव व्रते पूर्णं कुर्मस्ते पूर्णमानसम् ॥३२

मुनय ऊचुः ।

वृत्वा साध्वि पूर्णहोमं देहि विप्राय दक्षिणाम् ।

स्थितेष्वस्मासु धर्मज्ञे किमभद्रं भविष्यति ॥३३॥

सनत्कुमार उवाच ।

शिने शिवं देहि मद्यं न चेद्भ्रतफलं त्यज । सुचिरं सञ्चितस्यापि स्वात्मनस्तपसःफलम्
कर्मण्यदक्षिणे साध्वि यागस्याहन्तुतत्फलम् । प्राप्स्यामियजमानस्यसंपूर्णकर्मणःफलम्

पार्वत्युवाच ।

किं कर्मणा मे देवेशा किं मे दक्षिणया मुने ।

किं पुत्रेण च धर्मेण यत्र भर्ता च दक्षिणा ॥३६॥

वृक्षार्चने फलं किं वै यदि भूमिर्न चाच्यते ।

गते च कारणे कार्यं कुतः शस्यं कुतः फलम् ॥३७॥

प्राणास्त्यक्ताः स्वैच्छया चेद्देहेन किं प्रयोजनम् ॥३८॥

शतपुत्रसमः स्वामी साध्वीनाञ्च सुरेश्वराः । यदि भर्ता व्रते देयः किञ्चित्तेन सुतेन वा
भर्तुवंशश्च तनयः केवलं भर्तृमूलकः ।

यत्र मूलं भवेद् भ्रष्टं तद्वापि ज्यञ्च निष्फलम् ॥ ४० ॥

श्रीविष्णुस्वाच ।

पुत्रादपि परः स्वामी धर्मश्च स्वामिनः परः । नष्टे धर्मे च धर्मिष्ठे स्वामिना किं सुतेन वा
ग्रहोवाच ।

स्वामिनश्च परोधर्मो धर्मात् सत्यञ्च सुव्रते । सत्यं सङ्कल्पितं कर्म न तु भ्रष्टं कुरु व्रतम्
पार्वत्युवाच ।

निरूपितश्च वेदेषुस्वंशब्दो घनवाचकः । तद् यस्यास्तीति स स्वामी वेदज्ञ शृणु मद्रवः
तस्य दाता सदा स्वामी न च स्वं स्वामिनी भवेत् ।

नहो रथस्या भवतां वेदज्ञानानयोधता ॥ ४४ ॥

धम्मं उवाच ।

पक्षा विनश्यन्त्यस्यैवास्वामिनंदातुनभना । इत्यर्थाधुवनेकाङ्क्षा इयोदांतावर्द्धासर्वा ॥

पार्श्व्युवाच ।

विना इवाति ज्ञानात् सच गृह्णाति तन्मुताम् । न धृतं विपरितञ्ज धृतां श्रुतिपरतनाः ॥

देवा उचुः ।

सुखिन्मया त्वं दुर्गे बुद्धिमन्तो वरं न्यथा । वेदवेधेद्वादेषु के वा तां जेतुर्मात्सर्यः ॥

निर्विद्वानुग्रहेतु मने म्यामांश्च उचिषा । धृताधुना य स धर्मा विपरितो ह्यर्जकः ॥

पार्श्व्युवाच ।

वेदत वेदमाश्रित्य कः कर्माणि विनिर्णयन् ।

बलवान् शौचिको वेदाहोकावाञ्छ कस्यश्च ॥ ४६ ॥

वेदे प्रवृत्तिसौश्रवर्गायाश्च पुण्योद्भवम् । तिस्रोधरमुगाः प्राजागल्लोत् कथयामि किम् ॥

ब्रह्मपतिर्ग्योच ।

न पुनाम वितामृष्टितं साध्वि प्रवृत्तिविता । श्रद्धिग्नश्च हरोन्मथा सर्वा प्रवृत्तिपूर्णा ॥

पार्श्व्युवाच ।

यः कृतः अथा सर्वेषां सौप्रमेत मगुणः पुमान् ।

पुमान् गर्वीमान प्रवृत्तेस्तथापि न शतश्च सा ॥ ५२ ॥

पत्न्यस्मिन्नने देवा सुतपस्वत्र संसृष्टि । ग्लेच्छसागनिर्ताभमावासे उदृग्ना ग्यम् ॥ ५३ ॥

पार्श्वेद्य पातृवृत्तं सर्वैः प्रामेद्यतुर्मुञ्जेः । चतमाद्यारिष्टुते ग्लनृपणापिनैः ।

अपश्य सुवा यत्तादाजगान सनादकम् ॥ ५४ ॥

सुदृशुत्सं सुग्लाम्ने देवं वीकृष्टासिन्म् । सुदृशुत्सं सदापयप्रमल्लुत्तुर्मुञ्जम् ॥ ५५ ॥

त्यन्तासुग्लवर्द्धासल्लं शालं नं मुनतोद्गम् । सुदृशुत्सं नतातानदृश्यं कांदिजगमनिः ॥

कांदिक्त्तुर्नतातानं कांदिक्त्तुत्तननमम् । अमृत्पयजगवियं चाम्पुत्सं नृपिक्त्तम् ॥ ५६ ॥

मेव्यं स्यादितिदेवैश्च वेपकैः सुत्तर्त्तं मुत्तम् । तद्वासा न प्रच्युत्तैर्वेदितञ्च सुग्लपिनिः ॥

वासयामाम तं ते च रत्नसिंहसर्पे वरे । तं प्रणेमुश्च शिरसा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥१२॥

सम्पुटाङ्गलयः सर्वे पुलकाङ्गाश्रूलोचनाः ॥ ६० ॥

सस्मितम्नांश्च पप्रच्छ सर्वं मधुर्या गिरा । प्रबोधितः सुबोधज्ञ प्रवक्तुमुपचक्रमे । ६१
श्री नारायण उवाच ।

सहस्रद्वया बुद्धिमन्तोनशक्तमुनिर्तंसुषा । सर्वे शक्त्या यया विश्वे शक्तिमन्तोहिर्जीविनः
ब्रह्मादिगुणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं जगत् । सत्यं सत्यं विनामाञ्जमया शक्तिः प्रकाशिता
आग्निमृता च सा मत्तः मृष्टी देवी मदिच्छया । निर्गोहिता च स शैवे मृष्टिमंहरणे मयि
मृष्टिकर्त्री च प्रकृतिः सर्वेषा जतनी पग । मम तुल्या च मन्मायातेन नारायणी स्मृता
सुचिरं तपसा तत्र शम्भुना ध्यायता च माम् । तेन तस्मै मया दत्ता तपसा फलरूपिणी
व्रतञ्च लोकशिक्षार्थमम्या न स्वार्थमेव च । स्वयं व्रताना तपसा फलदार्त्री जगन्त्रये ॥
मात्रयामोहिता सर्वस्मिम्या वा म्मव व्रतम् । साध्यमम्याव्रतफलं कल्पेकत्पे पुनपुनः
सुगण्डवरा मदंशाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा । कलाः कलांशम्पाश्च जीविनश्च सुरादयः ॥ ६६
मृता विना घटं कर्तुं कुलालश्च यथाश्रमः । विना म्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमश्रमः
विना शक्त्या तथाऽहञ्च स्वमृष्टिं कर्तुमश्रम ॥ ७० ॥

शक्तिप्रधाना मृष्टिश्च सर्वदर्शनसम्पत्ता । अहमान्माहि निर्लिप्तोऽदृश्यः साक्षीचदेहिनाम्
देहा प्राकृतिकाः सर्वे नश्वराः पाञ्चभौतिकाः । अहं निव्यः शरीरी च भानुविग्रहविग्रहः
सर्वाधारा च प्रकृतिः सर्वात्माहं जगत्तनु च ॥ ७३ ॥

अहमान्मामनो ब्रह्मा ज्ञानरूपोमहेश्वरः । पञ्च प्राणाःस्वय विष्णुर्वृद्धिः प्रकृतिरीश्वरी ॥
मेजा निन्द्रादयश्चैताः सर्वाश्च प्रकृतेः कलाः । सा च शैलेन्द्रकन्यया इति वेदे निरूपितम्
अहं गोलोकनाथश्च वैकुण्ठेशः सनातन । गोपीगोपैः पगिबृतस्तत्रैव द्विभुजः स्वयम् ॥
चतुर्भुजोऽत्र देवेशो लक्ष्मिप्रियः पार्यदैर्बुधतः ॥ ७६ ॥

ऊर्ध्वपरश्च वैकुण्ठान् पञ्चाशत्कोटियोजने । ममाश्रयश्चगोलोके यत्राहं गोपिकापतिः
व्रतागध्या हि द्विभुजः स च तत्फलदायकः ।

यदूपं चिन्तयेद् यो हि तच्च तत्फलदायकम् ॥ ९८ ॥

व्रतं पूर्णं कुम्भिशिरे शिख दन्वाचक्षिणाम् । पुन समुचितं मूढ्यं दत्त्वा नायं प्रदीप्यसि
विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिषः ।

द्विजाय दन्वा गोमूढ्य गृहाण म्यामिनं शुभे ॥ ८० ॥

यज्ञयज्ञा यथा दानु क्षमस्यामा सदैवतु । तथा सा स्वामिनं दातुमीश्वरति ध्रुतेर्मतम्
इत्युक्त्वा स सभामध्ये तत्रैवान्तरर्थायत ।

दृष्टान्ते सा च संहृष्टा दक्षिणां दातुमुद्यताः ॥ ८१ ॥

हृत्वा शिवा पूर्णहोम सा शिखं दक्षिणा ददा । म्यस्तान्युत्तयाचजप्राह कुमारो देवमंसदि
उवाच दुर्गा मरुत्ना शुक्ककण्ठीष्ठनालुका । पुट्याञ्जलियुता विप्रं हृदयेन चिदूयता ॥
पावन्युवाच ।

गोमूढ्य मन्वसिममिनि वेदे निरूपितम् । गवां लक्षं प्रवक्ष्यामि देहि मन्स्वामिनं द्विज
तदा दान्यामिविप्रेभ्यो दानानिविविधानिव । आत्महीनो हि वैश्वकिर्कर्मकर्तुमीश्वरः
सनत्कुमार उवाच ।

गवा लक्षेण मे देवि विप्रस्य किं प्रयोजनम् । दत्तस्यामूढ्यरत्नस्य गवां प्रत्यर्पणेन च
स्वस्य स्वस्य स्वयं कर्त्ता लोक सर्वो जगन्प्रये ।

कर्त्तुरेवेप्सितं कर्म भवेत् किं वा परेच्छया ॥ ८८ ॥

द्विगम्यरं पुन हृत्वाभ्रमियामिजगन्प्रयम् । बालकानां बालिकानांसमहम्मितरकारणम्
इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो गृहीन्वा शङ्करं मुने । सन्निर्घो वासयामास नैजम्वा देवसंसदि
दृष्टा शिवं गृह्यमाणं कुमारेण च पार्वती । समुद्यता ननुं त्यक्तुं शुक्ककण्ठीष्ठनालुका ॥
विचिन्त्य मनसा साधनीत्येवमेव दुर्ग्ययम् । न दृष्टोऽमीश्वरश्च न च प्राणं फलं यत्
एतस्मिन्नन्तरे देवाः पार्यतीसहितास्तदा । सत्रो वृद्धशुराकाशे नैजसां निरुत्तरं परम् ॥ ९३
फोटिर्ग्यप्रभोद्भ्रञ्च प्रञ्चलञ्च दिशोदश । कैलासशैलं पुरतः सर्वदेवादिभिर्युतम् ॥
सर्वान् कुर्वन्नें प्रचुष्टं विस्तीर्णमण्डलारतिम् । दृष्ट्वा तच्च भगवतस्तुपुत्रुस्ते ब्रमेण च
विष्णुदवाच ।

ब्रह्माण्डानि च सर्वाणि यह्योमविचरेषु च । सोऽयं नरोऽशांशश्च के वयं योमहाधिराट्

ब्रह्मोवाच ।

वेदोपयुक्तं दृश्यं यन्प्रत्यञ्जं द्रष्टुमीश्वर । स्तोतुं तद्वर्णितुमहं शक्तः किं स्तौमि तत्परः ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

ज्ञानाधिष्ठातृदेवोऽहं स्तौमि ज्ञानपरञ्च किम् ।

सर्वानिर्घञनीयं यं ते न्या म्येच्छामयं विभुम् ॥ ६८ ॥

धर्म उवाच ।

अदृश्यमवतारेषु यद्दृश्यं सर्वजन्तुभिः । किं स्तौमि तेजोरूपगतद्वक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ६९ ॥

देवा ऊचुः ।

के घयं त्वत्कलांशाश्चकिंवाण्यांस्तोतुमीश्वराः । स्तोतुं न शक्ताधेदायंनचशक्तासगस्वती

मुनय ऊचुः ।

वेदान्पटित्याविद्वांसोवयंकिंचेदकारणम् । स्तोतुमीशानवाणीचन्वाञ्जधाद्भनसोःपरम्

सगस्वत्युवाच ।

वाग्धिष्ठातृदेवा मां वदन्ति वेदवादिनः । किञ्चिन्न शक्ता त्वां स्तोतुमहोवाद्भनसोःपरम्

सावित्री उवाच ।

वेदप्रसूहं नाथ सृष्टा त्वत्कलया पुग । किं स्तौमि स्त्रीस्वभावेन सर्वकारणकारणम् ।

लक्ष्मीरुवाच ।

त्वदंशविष्णुकान्ताहं जगत्पोषणकारिणी । किं स्तौमि त्वत्कलासृष्टाजगतांर्थाजकारणम्

हिमालय उवाच ।

हसन्ति सन्तोमांनाथकर्मणास्थावरं परम् । स्तोतुं समुद्यतं क्षुद्रं किं स्तौमि स्तोतुमक्षमः

क्रमेण सर्वे तं स्तुत्वा देवा विरगमुमुने । देव्यश्च मुनयः सर्वे पार्वती स्तोतुमुद्यता ॥

धौतरत्नजटाभारं धिन्नती सुव्रता व्रते । प्रेरिता परमात्मानं व्रताराध्यं शिवेन च ॥

ज्वलदग्निशिखाम्पा तेजोमूर्त्तिमती सती । तपसां फलदा माता जगतां सर्वकर्मणाम् ॥

पार्वत्युवाच ।

कृष्ण जानासि मां भद्रनाहंत्वांस्तोतुमीश्वरी । केवा जानन्ति वेदज्ञा वेदावावेदकारकाः

स्वशाब्द्या न जानन्ति कथं शाम्यन्ति त्वत्कला ।

तद्वापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वरा ॥ ११० ॥

सम्मानं मृश्मतामोऽप्यक्तं स्थूलात् स्थूलतमो महान् ।

विपश्चरस्त्व विपश्चर्यश्च विपश्चरीन सनातन ॥ १११ ॥

काय-प्रकारणत्वञ्चकारणानाञ्चकारणम् । तेजस्वरूपो भगवान्निराकारो निराश्रय
निर्गुणानिर्गुण साक्षात्स्वात्माराम परात्पर । प्रगताशो विराडग्रीन विराड् रूपस्त्वमेव च
सगुणस्त्वं प्राकृतिक कलया सृष्टिहेतवे ॥ ११३ ॥

प्रगतिस्त्व पुमास्त्वञ्च वेदान्यो न ह्यविद्वेत् ।

नावस्त्व साक्षिणो भोगो स्वात्मन प्रतिविम्बक ॥ ११४ ॥

कर्म प्रकर्मज्ञानं त्वं कर्मणापन्नदायक । श्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वज्ञायमशरीरिणम्
त्रेचिञ्चतुभुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥ ११५ ॥

वैष्णवाण्येव साकारं कर्मनीयं मनोहरम् । शङ्खचक्रगदापद्मं च पीताम्बरं परम् ॥ ११६ ॥
द्विभुजं कर्मनायञ्च किशोरं श्याममुन्दरम् । शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥
एतं तेन स्थितं भक्तः सेवते सन्ततं मुदा । श्यायन्ति योगिनो यत् कुतस्तेन स्थितं विना
तत्तनो मित्रता देव देवानां तेजसा पुरा । अविभूता सुराणाञ्च चक्राय ब्रह्मण स्तुता ।
नित्या तेजस्वरूपाऽहं विभूत्य विग्रहं विभं । ग्यारूपं कर्मनीयञ्च विधाय समुपस्थिता
मायया तत्र मायाहं मोहयित्वा सुरान् पुरा । निहत्य सर्गान् शैलेन्द्रमगमतहिमाचलम्
ततोऽहं मस्तुता देवैस्तारकाक्षेण पीडितैः । अभव दक्षजायाया शिववर्त्ती भवजन्मनि ।
त्यक्त्वा देव दक्षयज्ञे शिराहं शिवनिन्दया । अभव शैलजायाया शैलाधीशस्य कर्मणा ।
अनेकतपसा प्राप्तं शिवश्चात्रापितन्मनि । पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितो ब्रह्मणा किमु
अङ्गारनञ्च तत्तेजो नालभम् देवमायया । स्तौमि त्वमेव नेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥

घृते भवद्विधं पुत्रं लभुमिच्छामि साम्प्रतम् ।

देवेन विहिता वेदे साङ्गे स्वस्थामिदक्षिणा ॥ १-६ ॥

० सर्वं वदासिन्वो ऋषा मा कर्तुमर्हसि । इत्युक्त्वा पार्यती तत्र विरराम च नारद

भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः । सन्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥
 संवत्सरं हविष्प्राशी हरिमभ्यर्च्य भक्तिः । सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः ॥
 विष्णुस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् सर्वसम्पत्तिवर्द्धनम् । सुखदंमोक्षदंसारं स्वामिसौभाग्यवर्द्धनम्
 सर्वसौन्दर्यवीजञ्च यशोराशिविधर्द्धनम् । हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिविधर्द्धनम् ॥१३१

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणारदसंवादे पुण्यकव्रते
 पार्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

स्वप्रीतेन कृष्णेन पार्वत्यै निजरूपप्रदर्शनं वरप्रदानञ्च ।

नारायण उवाच ।

पार्वतीस्तत्र श्रुत्वा श्रीकृष्णः कर्णानिधिः । स्वरूपं दर्शयामास सर्वाद्दृश्यं सुदुर्लभम्
 स्तुत्वा देवी ध्यानलला कृष्णैकतानमानसा । ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सारमोहनम्
 सद्ब्रह्मसारनिर्माणे हीरकेण परिष्कृते । युक्ते माणिस्यमालामी रत्नपूर्णे मनोरथे ॥ ३ ॥
 चहिसंशुद्धपीतांशुधरं वंशीकरं परम् । वनमालागलं श्यामं रत्नभूयणभूषितम् ॥ ४ ॥
 किशोरवयसं वेशविचित्रं चन्दनाङ्कितम् । चारस्मितास्यमादरं तच्छारद्रेन्दुविनिन्दकम्
 मालतीमाल्यसंयुक्तमयूरपुच्छचूडकम् । गोपाङ्गनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोऽञ्जलम् ॥
 कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । अतीव हृष्टं सर्वेष्टं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ७ ॥
 दृष्ट्वा रूपं रूपवती पुत्रं तद्रुरूपकम् । मनसा वरयामास वरं संप्राप्य तत्क्षणम् ॥ ८ ॥
 वरं दत्त्वा वरेशस्तु यद्यन्मनसि वाञ्छितम् । दत्त्वाभीष्टं सुरेभ्यश्च तत्तेजोऽन्तरर्धायित
 कुमारं बोधयित्वा तु देवा देव्यै दिगम्बरम् । ददुर्निरुपमं तत्र प्रहृष्टायै रूपान्विताः ॥
 ब्राह्मणेभ्योऽददौ दुर्गारत्नानिविधानि च । सुवर्णानि चभिभ्रुभ्योऽधन्दिभ्योऽविश्वमन्दिता
 ब्राह्मणान् भोजयामास देयांश्च पर्वतांस्तथा । शङ्करं पूजयामास चोपहारैरनुत्तमैः ॥१२

दुन्दुभि वाद्यमास कारयामास मङ्गलम् । सङ्गीतं गाययामास हरिसम्बन्धि सुन्दरम्

व्रत समाप्य सा दुर्गा दत्त्वा दानानि सस्मिता ।

सर्वा ध्व भोजयित्वा तु बुभुजे स्वामिना सह ॥ १४ ॥

ताम्रदूध वर रम्य कपूरादिसुवासितम् । क्रमात् प्रदाय सर्वेभ्यो बुभुजे तेन कौतुकात्
पय फेननिभा शय्या रम्यां सद्गत्निर्मिताम् । पुष्पचन्दनसंयुक्तां कस्तूरीकुङ्कुमान्विताम्

रहसि स्वामिना सादं मुष्याप परमेश्वरी ॥ १६ ॥

बैलासस्यैकदेशे च रम्ये चन्दनकानने । सुगन्धिकुमुमाक्तेन वायुना सुरभीकृते ॥ १७ ॥

भ्रमण्यनिसयुके पुंस्कोकिलरतश्रुते । विज्ञहार सुरसिका तत्र तेन सहायिका ॥ १८ ॥

रेत पतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया । विधाय विप्ररूपन्तु आजगाम रतेर्गृहम् ॥

रश्मचन्नं विना तैलं कुचैलं भिक्षुकं मुने । अर्ताय शुकुदशनं तृष्णया परिपीडितम् ॥ २० ॥

अर्ताय कृशमात्रञ्च विन्नसिलकमुञ्ज्वलम् । बहुकाकुस्वरं दीनं दैन्यात्कुत्सितमूर्तिमत् ।

भाञ्जहाव महादेवमतिवृद्धोऽन्नयाचकः । दण्डावलम्बनं कृत्वा रतिद्वारेऽतिदुर्बलः ॥ २२ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

किङ्करोपि महादेव रक्ष मां शरणागतम् । सप्तरात्रिन्त्रतेऽतीति पारणाकाङ्क्षिणं क्षुधा ॥

किङ्करोपि महादेव हे तात करुणानिधे । पश्य वृद्धं जराग्रस्तं तृष्णया परिपीडितम् ॥

मातरुत्तिष्ठ मामन्न प्रयच्छ वासितं जलम् । अनन्तरत्नोद्भवजे रक्ष मां शरणागतम् ॥ २५ ॥

मातर्मातर्जगन्मातरैहिनाहंजगद्बहिः । सीदामि तृष्णया कस्मात् स्थितायामात्ममातरि

इति काकुस्वरं श्रुत्वा शिवस्योनिष्ठतोमुने । पपात वीर्य्यंशय्यायां न योनीं प्रकृतेस्तदा

उत्तस्थौ पार्वती त्रस्ता सृष्टमवच्छं विधाय च । आजगाम रतिद्वारं पार्वत्या सह शङ्करः

ददर्श ब्राह्मणं दीनं जरया परिपीडितम् । वृद्धं लुलितगात्रञ्च विन्नतं दण्डमानतम् ॥ २६ ॥

तपस्विनमशान्तञ्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकम् । बुर्धन्तं परया शक्त्या प्रमाणं स्तधनं तयोः

श्रुत्या तद्भवत तत्र नीलकण्ठः सुधोत्तमम् । उवाच परया प्रीत्या प्रसन्नस्त प्रहस्य च

शङ्कर उवाच । -

गृह्णते शुच विप्रैर्ष वेदविदां चर । किन्नाम भवतः क्षिप्रं क्षातुमिच्छामि साम्प्रतम् ।

पार्वत्युवाच ।

आगतोऽसि कुतो विप्र मम भाग्यादुपस्थितः ।

अद्य मे सफलं जन्म ब्राह्मणो मद्गृहेऽतिथिः ॥ ३१ ॥

अतिथिः पूजितो येन त्रिजगत्तेन पूजितम् । तत्रैवाधिष्ठिता देवा ब्राह्मणा गुरवो द्विजाः
तीर्थान्यतिथिपात्रेषु शश्वत्तिष्ठन्ति निश्चितम् । तन्पादधीतनोयेन मिश्रितानि लभेद्गृही
सत्तातःसर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । अतिथिः पूजितोयेन स्वात्मशक्त्या यथोचितम्
महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले । अतिथिः पूजितो येन भारते भक्तिपूर्वकम् ॥
नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानिचयानिच । अन्येवातिथिसेवायाःकलां नार्हन्तिपोऽशीम्
अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्त्तते । पितृदेषामयः पश्चाद्गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

तानि सर्वाणि लभते नाऽभ्यर्च्यतिथिमीप्सितम् ॥ ४० ॥

ब्राह्मण उवाच ।

जानासि वेदान् वेदज्ञे वेदोक्तं कुलपूजनम् । ध्रुत्वृद्ध्यां पीडितोमातर्वचनञ्च श्रुतोऽश्रुतम्
व्याधियुक्तो निराहारो यद्वा घाऽनशनव्रती । मनोरथेनोपहारं भोक्तुमिच्छति मानवः ॥

पार्वत्युवाच ।

भोक्तुमिच्छसि किं विप्र त्रैलोक्ये चेन् सुदुर्लभम् ।

दास्यामि भोक्तुं त्वामद्य मज्जन्म सफलं कुरु ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

व्रते सुव्रतया सर्वमुपहारं समाहृतम् । नानाविधं मिष्टमिष्टं भोक्तुं श्रुत्वा समागतः ॥
सुव्रते तव पुत्रोऽहमग्रे मां पूजायिष्यसि । दत्त्वामिष्टानि वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानिच
ताताः पञ्चविधाः प्रोक्ता मातरो विविधाः स्मृताः ।

पुत्रः पञ्चविधः साध्य कथितो वेदवादिभिः ॥ ४६ ॥

विद्यादाताऽन्नदाताच मयत्राताच जन्मदः । कन्यादाताच वेदोक्ता नराणां पितरःस्मृताः
गुरुपत्नीगर्भधात्री स्तनदात्रीपितुः स्वसा । स्वसा मातुः सपत्नीच पुत्रभार्यान्नदायिका

भृ - शप्यञ्च पोष्यञ्च वीर्य्यञ्च शरणागत ।

धनदुग्धाञ्च चत्वारो धाप्यञ्चो धनभागिति ॥ ४६ ॥

शुसृङ्गराधा इतो मातृङ्गोऽह शरणागत । सामप्रततव वन्ध्याया अनाथ पुत्रएवच
पिण्क पामाञ्च सुपहानि फलानि च । नानाविधानि पिणानि कालदेशोद्भवानिच ॥
पत्रान न्यस्तिक क्षारमिश्रुमिभु वकारजम् । घृत दधि च शाल्यञ्च घृतपञ्चस्रव्यजनम्
लङ्कुका नि तिलानाञ्च भृणानं सगुडानिच । ममाज्ञातानि घस्त्वि सुधयानुल्यवानिच
ताम्रलङ्घवर रम्य कपूरादिसुवासितम् । जलसुनिर्मलस्वादु द्रव्याभ्येतानिवासितम्
द्रव्याणि या नि भुजवा मे चारु लम्बोद भवेत् । अनन्तरत्नोद्भवजे तानिमह्य प्रदास्यसि
स्वामा ते त्रिनागतकसा प्रदाता सर्वसम्पदाम् । महालक्ष्मास्वरूपात्त्व सर्वैश्वर्य्यप्रदायिनी
रत्नसिंहासन रम्यममूल्य रत्नभूषणम् । पहिशुद्धाशुक चारु प्रदास्यसि सुदुर्लभम् ॥५॥
सुदुर्लभ हर्षमन्त्र हर्षो भक्ति दृढा सति । हरिमिथा हरे शक्तिस्त्वमेव सर्वदा सदा ॥५८
ज्ञान मृत्युश्च नाना दातृशक्तिं सुखप्रदाम् । सर्गसिद्धिञ्च किं मातादेय स्वसुताय च ॥
मन सुनिर्मल कृत्वा धर्मं तपसि सन्ततम् । श्रेष्ठे सर्वं करिष्यामि न कामं जन्महेतुके ।

स्वकामात् कुरते कर्म कर्मणो भोग एव च ।

भोगो शुभाशुभौ ज्ञेयो तौ हेतु सुखदुःखयो ॥ ६१ ॥

दु ष न कस्माद्भवति सुख वा जगदग्धिके । सर्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो बुध ।
कर्म निमूल्यन्त्येव सन्तो हि सतत मुदा । हरिभावनबुद्ध्या तत्तपसा भक्तसङ्गत ॥
इन्द्रियद्रव्यसयोगसुख विध्वंसनावधि । हरिसलापरूपञ्च सुख तत्सर्वकालिकम् ॥६४॥
हरिस्मरणशीलाना नायुर्याति सता सति । न तेषामाश्वर कालो नवमृत्युञ्जयो ध्रुवम्
चिर जीवन्ति ते भक्ता भारतेचिरजीवित । सर्वसिद्धिञ्च विज्ञाय स्वच्छन्दसर्वगामिन
जातिस्मरा हरेर्भक्ता जानन्तिकोटिजन्मन । कथयन्तिकथा जन्म लभन्तेस्वेच्छयामुदा
पर पुनन्ति ते पूतास्तीर्थानि स्वावलीलया । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सेवायै परार्थञ्च भ्रमन्ति ते ॥
वैष्णवाना पदस्पर्शात् सद्य पूता घसुन्धरा । काल गोदोहनमात्र तीर्थे यत्र घसन्ति ते
गुरोरास्याद्विष्युमन्त्र धृतो यस्य प्रविश्यति । त वैष्णव तीर्थपूत प्रवदन्ति पुराचिद

पुण्याणां शत पूर्वमुद्गरन्ति शत परम् । लोचन्या भान्ते भक्त्या सोदरान्मातर तथा ।१७
मातामहाना पुण्यान् दशपूर्वान् दशापरान् ।

मानु प्रसमुद्गरन्ति दान्पात यमनाटनान् ॥ १८ ॥

भक्तदर्शनमाश्रेय मानवा प्राप्नुवन्ति ये । नै याता सर्वतार्थेषु सर्वयोगेषु दीप्तिता ॥
न त्त्रिा पातके भक्ता मन्तव हृदिमानमा । यथाश्रय सर्वमन्त्या यथाश्रेयेषु वायव
त्रिकोटिचन्मतोचन्तु प्राप्नोतिचन्मातरम् । प्राप्नोतिभक्तमङ्ग स मानुषैकोटिजन्मत
भक्तसद्गान् भवेत् भक्तेः श्रेयं जायते सति । अमक्तदर्शनादेव सर्व प्राप्नोतिशुभकताम्
पुन प्रकृत्या याति वैष्णवाद्यापमात्रत । श्रेयश्चाप्रिनाशी च वर्द्धते प्रतिचन्मनि ।१९
तत्तर्गोर्द्धमानस्य हृदिदाम्य फल सति । परिणामे भक्तिपाके पार्यद्वय भवेद्वर ॥२०॥
महति प्रत्ये नाशो न भवेत्तस्य निश्चितम् । सर्वश्रेयं सहाने प्रह्लादोक्तस्य प्रह्लाद ॥
तस्मान्नाशयणे भक्ति देहिमाभक्तिं सदा । न भवेद्विष्णुभक्तिश्च विष्णुमायेत्ययाविना
नङ्गन् लोकशिशार्थं स्वतपस्वतपूवतम् । सर्वेषां फलदात्री एव नियन्ता सनातनी ॥
गणेशस्य श्रावण कर्त्तव्ये कर्त्तव्ये तत्रात्मन । स्वच्छोष्टमागतत्रिभक्तियुक्तान्तराश्रयत
स्त्वान्तर्दानमाश्रय शारूप विप्राय स । जगाम पार्षताक्ष्य मन्दिगाम्यन्तर्गमितम्
कृपस्ये शिष्यार्थे च मित्रित स उभूत् ह । दर्शनं गेहशिवं प्रमृतो बालको यथा ॥
शुद्धचमत्कर्याम कोटिचन्द्रसमप्रभ । सुगदृश्य सर्वजनैश्चरगमिपिपर्द्धक ।२१॥
अनीत सुन्दरतनु कामदेवविमोहन । मुग्य निरूपम विन्नल्लाग्नेन्तुपिनिन्दकम् ।२२॥
सुन्दर लोचने विन्नद्यान्पद्मनिन्दके । वीष्ट्यागपुष्ट विन्नत पद्मविम्बचिनिन्दकम् ।२३॥
कपाशञ्च कपोतञ्च परम सुमतोद्दहम् । नामाप्र रचिग विन्नत गणेश्वरच्युनिन्दकम् ॥
वैशेष्येषु निरूपम सर्वाद् विन्नदुत्तमम् । शयान शयने रम्ये प्रेम्प्यन् हस्तपादकम् २४
इति श्रीप्रह्लादवैवर्ते महापुण्ड्रे गल्पनिम्बण्डे नारायणनागस्यवादे गणेशोत्पत्तिर्नाम

अथमोऽध्याय ।

नवमोऽध्यायः

हरौ तिरोहिते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम् ।

नारायण उवाच ।

हरौ तिरोहिते भूते दुर्गा च शङ्करस्तदा । ब्राह्मणान्वेषणं कृत्वा बन्नाम परितो मुने ॥१॥

पार्वत्युवाच ।

अये विप्रेन्द्रातिवृद्ध क्व गतोऽसि क्षुधातुरः । हे तात दर्शनं देहि प्राणांश्च रक्ष मे विमो
शिव शीघ्रं समुत्तिष्ठ ब्राह्मणान्वेषणं कुरु । क्षणमुन्मत्तसोररेपः प्रत्यक्षमावयोगतः ॥३॥

अगृहीत्वा गृह्णात् पूजां गृहिणोऽतिथिरीश्वर ।

यदि याति क्षुधार्त्तश्च तस्य किं जीवनं वृथा ॥ ४ ॥

पितरस्तत्र गृह्णन्ति पिण्डदानञ्च तर्पणम् । तस्याहुति न गृह्णन्ति घृष्टिः पुष्यं जलं सुरा-
ह्वयं पुष्यं जलं द्रव्यमशुचैश्च सुरासमम् । अमेध्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र धाम्बभूवाशीरीणि । कैवल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुभ्राद्य शुचानुरा ॥
शान्ता भव जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे । कृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम्
सुपुण्यकप्रततरोः फलरूपं सनातनम् । यत्तेजो योगिनः शश्वत् ध्यायन्ते सन्ततं मुदा
ध्यायन्तेवैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । यस्त्वपूज्यस्य सर्वांगे कल्पे कल्पेच पूजनम्
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति । पुण्यराशिस्वरूपञ्च स्वसुतं पश्य मन्दिरे ॥
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं ज्योतीरूपं सनातनम् । पश्यत्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्
तव धान्द्यापूर्णवाजं तपः कल्पतरौः फलम् । सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पोत्तमम्
नायं विप्र क्षुधार्त्तश्च विप्ररूपी उनादनः । किं वा विलपसे दुर्गे क्वावृद्ध क्वातिथिः
सरस्वतीत्येवमुक्त्वा विरराम च नारद ॥१४॥

अस्ता धृत्वाऽकाशवाणीं जगामस्थालयं मती । ददर्श बाल पय्यङ्गे शयानं सस्मितं मुदा
पश्यन्तं गेहशिखरं शतचन्द्रसमप्रभम् । स्वप्रभापटलेनैव द्योतयन्तं महीतलम् ॥ १६ ॥

कुर्वन्त भ्रमण तल्पे पश्यन्त स्वेच्छया मुदा । उमेति शब्द कुर्वन्तस्वन्त त स्तनार्थिनम्
दृष्ट्वा तमद्भुत रूप व्रस्ता शङ्करसन्निधिम् । गत्येत्युवाच प्राणेश मङ्गल सर्वमङ्गला ॥१८

पार्वत्युवाच ।

गृहमागच्छ प्राणेश तपसा फल्दायकम् । कल्पे कल्पे ध्यायसे य त पश्यागत्यमन्दिरम्
शीघ्र पुत्रमुख पश्य पुण्यरीज महोत्सवम् । पुत्रामनकत्राण कारण भवतारणम् ॥२०
ज्ञानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । पुत्रसुदर्शनस्यास्य कला नार्हति षोडशीम्
सर्वदानेन यत्पुण्ययत्पृथिव्या प्रदक्षिणात् । पुत्रदर्शनपुण्यस्य कला नार्हति षोडशीम्
सर्वैस्तपोमिथ्यत्पुण्य यदेवानशनैर्व्रतै । मत्पुत्रोद्भवपुण्यस्य कला नार्हति षोडशीम् ।
यद्विप्रभोजनै पुण्य यदेव सुरसेवनै । सत्पुत्रप्रातिपुण्यस्य कला नार्हति षोडशीम्
पार्वती वचन श्रुत्वा शिव प्रहृष्टमानस । आजगाम स्वभवनं शिप्र स कान्तया सह ।
ददर्श तल्पे स्वसुत ततकाञ्चनसन्निभम् । हृदयस्थ च यद्रूप तदेवाति मनोहरम् ॥२५॥
दुर्गातल्पात् समादाय कृत्वावज्ञसि त सुतम् । चुचुम्भानन्दजलधौ निमग्नासेत्युवाचह
सप्राप्यामूल्यरत्न त्वा पूर्णमेव सनातनम् । यथा मनो दक्षिणसहसा प्राप्यसद्गनम् ।
कान्ते सुचिरमायाते प्रोपिते योपितो यथा । मानस परिपूर्णञ्च बभूव च तथा मन ॥
सुचिर गतमायान्तमेकपुत्रा यथा सुतम् । दृष्ट्वा तुण यथा घत्स तथाहमपि साम्प्रतम् ॥
सद्रत्न सुचिर भ्रष्ट प्राप्य हृषो यथा जन । अनावृणौ सुवृष्टिञ्च सम्प्राप्याह तथासुतम्
यथा सुचिरमन्धाना स्थितानाञ्च निराश्रये । चक्षु सुनिर्मल प्राप्य मन पूर्णं तथैवमे
दुस्तरे सागरे घोरे पतितस्य च सङ्कटे । अनौकस्य प्राप्य नौका मन पूर्णं तथा मम ॥
तृष्णया शुष्ककण्ठाना सुचिराच्चक्षुशीतलम् । सुवासितजलप्राप्य मन पूर्णं तथामम ॥
दावाग्निपतितानाञ्च स्थितानाञ्च निराश्रये । निरग्निमाश्रय प्राप्यमन पूर्णं तथा मम ॥
चिर बुभुक्षितानाञ्च व्रतोपवासकारिणाम् । सद्ग्न पुरतो दृष्ट्वा मन पूर्णं तथा मम ॥
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र क्रोडे कृत्वा स्ववालकम् ॥ ३५ ॥

प्रात्या स्तन ददौ तस्मै परमानन्दमानसा । क्रोडे चकार भगवान् वालकं हृष्टमानस ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे गणेशदर्शन

नाम नवमोऽध्याय ।

दशमोऽध्यायः

नमस्यो बहुभिधदानम् ।

नारायण उवाच ।

तौ दम्पता र्हरिर्गत्वा पुत्रमङ्गलहेतवे । विविधानि च रत्नानि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

यन्दिभ्यो भिभुकेभ्यश्च दानानि विविधानि च ।

नानाविधानि वाद्यानि वाद्ययामास शङ्कर ॥ २ ॥

हिमालयत्र रत्नाना ददौ ऋक्ष द्विनातये । सहस्रश्च गनेन्द्राणामग्वाताञ्च त्रिलक्षकम् ॥

दशलक्ष गवाञ्चैव पञ्चलक्ष सुवर्णकम् । मुक्ताभाषिवरत्नानि मणिध्रुवानि यानि च ॥

अन्यान्यपि च दानानिवस्त्राणिभूषणानि च । सवाप्यमृत्युगत्नानि क्षारोदसम्भवानि च

ब्राह्मणेभ्यो ददौ विष्णु कौस्तुभ कौतुकान्वित ।

प्रह्ला विशिष्टदानानि विभ्राना वाञ्छितानि च ।

सुन्दर्भानि मृषो च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ ३ ॥

धर्म सूर्यश्च शनश्च देवाश्चा मुनयस्तथा । गन्धर्वा पर्यता देव्यो ददुर्दान क्रमेण च ॥

माणिस्यानासहस्राणि रत्नानाञ्जशतानि च । शतानिकौस्तुभानाञ्च हीरकाणाशतानि च ॥

हृदिर्धर्मणीन्द्राणा सहस्राणि मुनान्वित ॥ ४ ॥

गवा रत्नानि लक्षाणि गजसहस्रसहस्रकम् । अमृतान्यन्यरत्नानि प्रेतपर्णानिकौतुकान्

शतलक्ष सुवर्णाना च द्विशुद्धाशुकानि च । ब्राह्मणेभ्यो ददौ प्रह्लन् तत्र धर्मोदकार्णव ॥

हास्त्राप्रत्यरत्नाना त्रिषु लोकेषु दुर्भमम् । अतीवनिमल सार सूर्यभाऽनुचिनिन्दकम्

परिष्कृतञ्च माणिस्यैर्दौरकैश्च विरगजितम् । रम्य कौस्तुभध्वम्य ददौ देवो सरस्वती ॥

त्रैलोक्यसारहाञ्च सत्रज्ञसारनिर्मितम् । भूषणानि च सर्वाणि सा सावित्री ददौ मुदा

लक्ष सुवर्णलोप्राणा धनानि विविधानि च । शतान्यमूल्यरत्नाना कुपेश्च ददौ मुदा ॥

दानानि दत्त्वा विप्रेभ्यस्ते सर्वे ऋशु शिशुम् । परमानन्दसयुक्ता शिवपुत्रोत्सरेमुने ॥

भारं वोदुमशकाश्च ब्राह्मणा बन्दिनस्तथा । स्थायं स्थायञ्च गच्छन्तो धनानां पथि कातराः

कथयन्ति कथाः सर्वे विश्रान्ताः पूर्वदायिनाम् ।

बुद्धाः शृण्वन्ति मुदिता युवानो भिक्षुका मुने ॥ १८ ॥

विष्णुः प्रमुदितस्तत्र वादयामास दुन्दुभिम् । सङ्गीतं गाययामास कारयामास नर्तनम्

वेदाश्च पाठयामास पुराणानि च नारद ।

मुनीन्द्रानानयामास पूजयामास तान् मुदा । आशिरं दापयामास कारयामास मङ्गलम् ।

सादं देवैश्च देवोभिर्ददौ तस्मै शुभाशिरम् ॥ २० ॥

विष्णुरवाच ।

शिवेन तुभ्यं ज्ञानन्ते परमायुश्च बालक । पराक्रमे मया तुभ्यः सर्वसिद्धीश्वरो भव ॥

ब्रह्मोवाच ।

यशसा ते जगन् पूर्णं सर्वपूज्यो भवाचिरम् । सर्वेषां पुरतः पूजा भवन्वतिसुदुर्लभा ॥

धर्म उवाच ।

मया तुल्यः सुधर्मिष्ठो भवान् भव सुदुर्लभः । सर्वज्ञश्च दयायुक्तो हरिभक्तो हरे सम ॥

महादेव उवाच ।

दाता भव मया तुल्यो हरिभक्तश्च बुद्धिमान् । विद्यावान् पुण्यवान् शान्तो दान्तश्च प्राणबलम

लक्ष्मीहवाच ।

मम स्थितिश्च गेहे ते देहे भवतु शाश्वती । पतिव्रता मया तुल्या शान्ता कान्ता मनीहरा

सरस्वत्युवाच ।

मया तुल्या सुकविता धारणाशक्तिरेव च । स्मृतिर्विवेचनाशक्तिर्भवन्वतिशया सुत ॥

सावित्र्युवाच ।

घत्साहं वेदजननी वेदज्ञानी भवान्चिरम् । मन्मन्त्रजपशीलश्च प्रचरो वेदवादिनाम् ॥ २१ ॥

हिमालय उवाच

श्रीकृष्णोतिमतिशयत्सुमतिर्भवतु शाश्वती । श्रीकृष्णतुल्यो गुणवान् भव कृष्णपरायणः

मेनकोवाच ।

समुद्रतुल्यो गाम्भीर्यकामतुल्यश्च रूपवान् । श्रीयुक्तश्रीपतिसमो धर्मं धर्मसमो भव ॥

वस्तुनरोवाच ।

क्षमाशीनो मया त्वं शरण्यः सर्वम्बवान् । निर्विघ्नो विप्रनिघ्नश्च मय वत्सशुभाश्रयः
पाथेन्युवाच ।

वातनुन्मशायोगा सिद्धः मिद्धिप्रदः शुभः । मृत्युवृषश्च भगवान् भवत्वतिविगाहकः
शरणो मुनय मिद्धा सर्वे युयुतुः श्रेयम् । ब्रह्मगा वन्दितस्त्वेव युयुतुः सर्वमङ्गलम्
सय ने कथितं वत्स सर्वमङ्गलमङ्गलम् । गणेशजन्मकथनं सर्वविप्रचिन्ताशनम् ॥ ३३ ॥
इमं सुमङ्गलाध्यायं यः शृणोति सुसंयतः । सर्वमङ्गलसंयुक्तः स मयेन्मङ्गलालयः ॥ ३४ ॥
अयुरो लमने पुत्रमयनो लमने घनम् । वृषणो लमने सत्यं शश्वत् सम्यन्त्रदायि च ॥
भाष्याधीलमनेमायां प्रजाधीलमनेप्रजाम् । धातोर्ग्यंलमने रोगी सौभाग्यदुर्मगालमने
न्नष्टयुवं नष्टयनं प्रोपितञ्च प्रियं लमेत् । शोकाविष्टःसदानन्दं लमने नात्र संशयः ॥ ३७ ॥
गणेशान्यानध्रषणे यत् पुण्यं लमने ऋतः । तत् फलं लमने नूतमध्यायध्रषणे मुने ॥
अथञ्च मङ्गलाध्यायो ग्रन्थे च तिष्ठति । सदा मङ्गलसंयुक्तः स सर्वज्ञान संशयः ३६
यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः । सर्वामोष्टं सठमते श्रीगणेशप्रसादतः ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारङ्ग-भंवादे गणपतिखण्डे

गणेशोद्भवमङ्गलं नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

गणेशदग्धनाथं शनैश्चरागंभनम् ।

नारायण उवाच ।

इतिमन्मार्शियं कृत्वा गन्धसिंहासने वरे । देवैश्च मुनिभिः सार्द्धंमुपास्य तत्र मंसदि ॥१॥
वसिष्ठे शूद्रमृगम्य वामे ब्रह्मा प्रजापति । पुरतो जगतां साक्षी धर्मो धर्मवतां वरः ॥
वायां धर्मसर्गारे च सूर्यः शक्रः कल्याणिणि । देवाश्चनुतपोब्रह्मन्मृषुश्रीशः मुपासते ॥

ननर्त्त नर्त्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिन्नराः । श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुः श्रुतयो हरिम् ॥४॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शङ्करनन्दनम् । आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः ॥ ५ ॥
 अत्यन्तनम्रवदन ईषन्मुद्रितलोचनः । अन्तर्यहिः स्मरन् कृष्णं कृष्णैकगतमानसः ॥ ६ ॥
 तपःफलाशी तेजस्वी ज्वलदग्निशिखोपमः । अतीवसुन्दरः श्याम पीताम्बरधरो वरः ॥७॥
 प्रणम्य विष्णुं ब्रह्माण शिवं धर्मं रविं सुरान् । मुनीन्द्रान् वालकं द्रष्टुं जगाम तदनुज्ञया
 प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपरारुमम् । द्वारिण शूलहस्तञ्च विशालाक्षमुवाच ह ॥६॥

शनैश्चर उवाच ।

शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शङ्करकिङ्कर । विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ॥१०॥
 आज्ञा देहि च मां गन्तुं पार्वतीसन्निधिं बुध ।
 पुनर्यामि शिशुं दृष्ट्वा विषयासक्तमानसः ॥११॥

विशालाक्ष उवाच ।

आज्ञावहो न देवानां नाहं शङ्करकिङ्करः ।

द्वारं दातुं न शक्नोऽहं विनाऽऽत्ममातुराज्ञया ॥१२॥

इत्युक्त्वाभ्यन्तरभ्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया । ददौ द्वारं ग्रहेशायविशालाक्षो मुदा ततः
 शनिरभ्यन्तरं गत्वा ननाम नम्रकन्धरः । रत्नसिंहासनस्थाञ्च पार्वतीं सस्मितां मुदा ॥
 सपिभिःपञ्चभिःशश्वन्सेवितां रवेतवामरैः । सखिदत्तञ्चताम्बूलंभुक्तवन्तामुवासितम् ॥
 घट्टिशुद्धांशुकाघ्रातां रत्नभूषणभूषिताम् । पश्यन्तीं नर्त्तकीनृत्यं पुत्रं दृष्ट्वा च वक्षसि ॥
 नतं सूर्यसुतं दृष्ट्वा दुर्गां संभाष्य सन्वरम् । शुभाशिवं ददौ तस्मै पृष्ट्वा तन्मङ्गलं शुभम् ॥
 पार्वत्युवाच ।

कथमानम्रवक्त्रस्त्वं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।

किं न पश्यसि मां साधो वालकं वा ग्रहेश्वर ॥१८॥

शनिरवाच ।

सर्वे स्वकर्मणा साध्वि भुञ्जते तस्य फलम् । शुभाशुभञ्च यत्कर्मकोटिकल्पैर्न लुप्यते ॥
 कर्मणा जायते जन्तुर्न ह्येन्द्रसूर्यमन्दिरे । कर्मणा नरगेहेषु पश्वादिषु च कर्मणा ॥२०॥

कर्मणा नरकं याति वैकुण्ठं याति वरुणा । स्वकर्मणाचराजेन्द्रोभृत्यश्चापि स्वकर्मणा ॥
 कर्मणासुन्दरं शश्वदन्पाधियुक्तं स्वकर्मणा । कर्मणाविपयीमातर्निलितश्च स्वकर्मणा ॥
 कर्मणा धनवानलोकोदैन्ययुक्तं स्वकर्मणा । कर्मणासत्त्वदुर्भोचकर्मणा रन्धुकण्टक ॥
 सुभार्यश्चसुपुत्रश्चसुखीशश्वत्स्वकर्मणा । अपुत्रकश्चकुर्त्सीवान्निर्त्सीकश्च स्वकर्मणा ॥
 इतिहासञ्जातिगोप्यं शृणु शङ्करबल्लभे ।

अकथ्यं जननीसाक्षाल्लज्जाजनककारणम् ॥२५॥

धायालान् कृष्णमक्तोऽहं कृष्णभ्यानेकमातसः ।

तपस्यासु रतं शश्वत् विषये विरतं सदा ॥२६॥

पिता ददौ विवाहे तु कन्याञ्चित्ररथस्य च ।

अतिनेजस्विनीं शश्वत् तपस्यासु रतां सती ॥२७॥

एकदा सा ऋतुस्नाता सुवेशं स्व विधाय च ।

रत्नालङ्कारसयुक्ता मुनिमानसमोहिनी ॥२८॥

हरं पादं ध्यायमाना सा मां पश्येत्युवाच ह । मत्समीपं समागत्य सस्मितालोल्लोचना
 शशाप मामपश्यन्तं ऋतुनष्टां स्वकोपतः । बाह्यज्ञानविहीनञ्च ध्यानैकतानमानसम् ॥
 न दृष्ट्वाहं त्वया येन न वृत्तमृतुरक्षणम् । त्वया दृष्टञ्च यद्वस्तु मूढं सर्वं विनश्यति ॥३१॥
 अहञ्च विरक्ते भ्यानेऽतोपयतां तदा सतीम् । शापं मोक्तुं न शक्ताता पश्चात्तापचकार ह
 तेनमातर्न पश्यामि किञ्चिद्वस्तु स्वचक्षुषा । ततः प्रवृत्तिनम्रास्य प्राणिर्हि साभयादहम्
 शनैश्चरयच्च श्रुत्वा जहास पार्वती मुने । ऊचैः प्रजहसु सर्वां नर्त्तकीकिन्नरीगणा ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्तं महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शनिपार्वती

संवादो नामैकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः

शनिना बालऋदर्शनम् ।

नारायण उवाच ।

दुर्गा तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हर्षिर्माण्डवम् । ईश्वरेच्छावशीभूत जगद्देवेत्युवाचह ॥१॥
साचदेवी वशीभूता शनिं प्रोवाच कौतुकान् । पश्यमा मलिशुमिति निपेक केनपार्यते
पार्वतीवचनं श्रुत्वा शनिर्मेने हृदा स्वयम् । पश्यामि किं पश्यामि पार्वतीसुतमिन्यहो

यदि वा नो मया दृष्टस्तस्य पित्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ ३ ॥

इत्येवमुनया धर्मिष्ठो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम् । जालं द्रष्टुं मनश्चक्रे न बालमातर शनि
विशम्भमानस पूर्वं शुष्ककपर्शोष्णतालुक । स यलोचनकोपेन ददर्शत शिशोर्मुसम् ५।
शनेश्च दृष्टिमात्रेण चिच्छेद् मस्तक मुने । चभ्रुर्नियारयामास तर्था नप्राणन शनि ॥५॥

तर्था च पार्वताकोडे तत्सर्पान् सलोहित ।

विशे मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलौकर्मिप्सितम् ॥ ७ ॥

मूर्च्छां नप्राप सादेवी विलप्यच भ्रशमुहु । मत्ताइव पृथियान्तुक्त्वा वक्षसिपालकम्
विम्बिताम्ने सुरा सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ।

देव्यश्च शैला गन्धर्वा शिव कैलासवासिन ॥ २ ॥

तान् सर्पान् मूर्च्छितान् दृष्ट्वावाह्य गरुड हरि ।

जगान पुष्पमट्टा स उत्तरस्या द्रिदि क्षिताम् ॥ १० ॥

पुष्पमट्टानर्दीतीरे ददर्श कानने प्थित । गजेन्द्र निद्रिव तत्र शयान हस्तिर्नायुतम् ॥१॥
दिशुत्तरस्या शिरसमूर्च्छित सुरतश्रमान् । परितः शावकान् कृत्वा परमानन्दमानसम्

गर्ध्र मुत्सर्शनेनैव चिच्छेद् तच्छिरोमुदा । स्थापयामास गरुडे रुधिराल मनोहरम् ॥३॥
गतच्छिद्राङ्गविशेषान् प्रसोष प्राप्य हस्तिर्नः । शावकान् प्रोथयामास चाशुभ चर्ततटा

करोद् शावकै साद्धं सा विलप्य शुचानुरा ॥ १४ ॥

नृणां च कर्मफलं शान्तं सम्मितमग्रम् । शङ्खजगदापन्नपरं पातित्वरं परम् ।

गणेशं जगत्कालं नामयन्तं सुदर्शनम् ॥ १५ ॥

निषेकं चोक्तं शक्तं निषेकजतरं विभुम् । निषेकभोगद्रातरं भोगनिन्तारकारणम् ॥

प्रभुमन्तं स्तयताकृष्णमूर्तिं विप्रवरदर्शं । मुष्णन्मुष्णं विनिर्कृत्य युयुतेऽन्यगजस्य च

जपयामास तत्र ब्रह्मत्रायेन ब्रह्मविन् । सर्वाङ्गे योजयामास गजस्य चरणान्मुजम् ॥

न्य ज्ञायाकथयत्यन्तं परिपारं सनगजः । इत्युक्त्वा च मनोयार्या कैलासमाजगामसः

जागत्य पार्वतीस्थानं यालं कृत्वा स्ववदन्नि ।

स्वैर तच्छिरः कृत्वा योजयामास यालके ॥ २० ॥

ब्रह्मस्यरूपो भगवान् ब्रह्मत्रायेन लीयते । जीवत कारयामास हुद्गातोच्चारणेन च ॥ २१ ॥

पार्वतीं बोधयित्वा तु कृत्वा क्रोडे च तं शिराम् ।

योजयामास तत्र जप्य ध्यायान्मिकविरोधनै ॥ २२ ॥

विष्णुस्थानम् ।

ब्रह्मादिकोटपर्यन्तं जगद् भुंक्ते स्वकर्मणा ।

जगद्बुद्धिस्वल्पासि त्वं न जानामि किं शिरे ॥ २३ ॥

कथ्यकोटिश्रमं भोगो जीविता तत् स्वकर्मणा ।

उपस्थितो भवेन्नित्यं प्रतिगोर्तो गुमाशुम् ॥ २४ ॥

इन्द्रं स्वकर्मणा कोटगोर्तो जन्म लभेत् सति । कोटश्चापि भवेदिन्द्रं पूर्वकर्मफलैर्न वै

सिद्धोऽपि मञ्जिका हन्तुमक्षमं प्राक्तनं विना । मशको हस्मिन हन्तुं क्षमस्यप्राक्तनेन च

मुखं दुर्गं भयं शोकमानन्दं कर्मणः परम् ।

सुकर्मणं मुखं हर्षमितरे पापकर्मणः ॥ २५ ॥

इहैव कर्मजो भोगः परत्र च गुमाशुम् ॥ कर्मोपार्जनयोग्यञ्च पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम् ॥ २६ ॥

कर्मण फलदाताय विप्राताय विप्रैरपि । मृत्योर्मुक्ष्युः कारुणागेतिपैकस्य निषेककृत्

संहन्तुं रपि महर्त्ता पातु पाता पतन्वा । गौळोकनाथ आरुण्य परिपूर्णतमः स्वयम्

यद्यं यस्य कथा पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा । महाविराडवरंशश्च यद्गोमविपरे जगत् ॥

कलांशाः केऽपि तद्धर्मं कलांशांशाश्च केचन । चराचरं जगत् सर्वं तत्रतस्थौविनायकः
 श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती । स्तनं ददौ च शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम्
 तुष्टाव पार्वती तुष्टा प्रेरिता शङ्करेण च । पुटाञ्जलियुता भक्त्या विष्णुं त कमलापतिम् ॥
 आशिषं युयुजे विष्णु शिशुञ्च शिशुमातरम् । ददौ गले बालकस्य कौस्तुभञ्जस्रभूपणम्
 ब्रह्मा ददौ स्वमुकुटं धर्मञ्च रत्नभूषणम् । क्रमेण देव्यां रत्नानि ददुः सर्वे यथोचितम् ॥
 तुष्टाव तं महादेवश्चातीवहृष्टमानसः । देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोपित ॥१७॥
 दृष्ट्वा शिवः शिवाचैव बालक मृतर्जावितम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र कोटिरत्नानि नारद
 अश्वानाञ्च गजानाञ्च सहस्राणि शतानि च ।

चन्द्रिभ्यः प्रददौ तत्र बालके मृतर्जाविते ॥ ३६ ॥

हिमालयञ्च संहृष्टो हृष्टा देवाश्च तत्र वै । ददुर्दानानि विप्रेभ्यो चन्द्रिभ्यः सर्वयोपितः
 ब्राह्मणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम् । वेदाश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः
 शनिं सलज्जितं दृष्ट्वा पार्वती कोपशालिनी । शशाप च समामभ्येऽप्यङ्गहीनो भवेति च
 दृष्ट्वा शनं शनिं सूर्यः कश्यपश्च यमस्तथा । तेऽतिरिष्टा समुत्तस्थुर्गामुकाः शङ्करालयात्
 रक्ताक्षास्ते रक्तमुखाः कोपप्रस्फुरिताधराः । ता धर्मं साक्षिणंकृत्वा विष्णुञ्चशशुमुयताः
 ब्रह्मा तान्बोधयामासविष्णुनाप्रैरितैः सुरैः । रक्तास्यापार्वतीञ्चैवकोपप्रस्फुरिताधराम्
 ब्रह्माणमूचुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम् । भार्गवो देवताः सर्वे मुनयः पर्वतास्तथा ॥

कश्यप उवाच ।

दुर्हृष्टोऽयं प्राक्तनेन पत्नीशापेन सर्वदा । बालं ददर्श यत्नेन तस्यैव मातुराज्ञया ॥ ४७ ॥

श्रीसूर्य उवाच ।

त धर्मं साक्षिणं कृत्वा पुत्रस्य मातुराज्ञया । मत्पुत्रोऽतिप्रयत्नेन ददर्श पार्वती सुतम्
 यथा निरपराधेन मत्पुत्रं सा शशाप ह । तत्पुत्रस्याङ्गमङ्गञ्च भविष्यति न संशयः ॥

यम उवाच ।

प्रदाय स्वयमाज्ञाञ्च शशाप बस्वर्यंकथम् । वयं शपाम कोऽधर्मा जिघांसौश्चविहिंसने

ऋग्वेदाय ।

शशाप पापता त्वा ह्यास्वभावाच्च चापयात् । सर्वेषा वचनेनैव क्षन्तुमर्हन्तु साधव ॥
दुर्गे त्वा वमन्ताञ्च पुत्रदर्शनहेतवे । कथं शपसि निर्दोषमतिथिं त्वद्गृहहागतम् ॥५२
इत्युक्त्वा शानमादाय बोधयिष्या तु पापताम् । ता त समर्पण चक्रे शापमोचनहेतवे
वभ्रम पापता तुष्टा ब्रह्मणा पचनान्मुने । शान्ता यभूजुस्ते तत्र दिनेशयमकश्यपा ॥५४
उवाच पापता तत्र स तुष्टा त शनैश्चरम् । प्रसादिता शिवेनैव ब्रह्मणा परिलेखिता ॥

पार्वत्युवाच ।

प्रहराज्ञा भयं शनै मद्दरेण हरिप्रिय । विरचीया च योगन्द्रो हरिभक्तस्य का विपत्
अथ प्रभृतिनिर्विघ्नाहरौभक्तिर्दृढास्तु ते । मन्त्रडापामोघतो घत्सकिञ्चित्पञ्चोभविष्यति
इत्युक्त्वा पार्वतीतुष्टायाः कृत्वा च वक्षसि । उवास योषिता मन्ये तस्मैदत्त्वाशुभाशिपम्
शनिन्याम देवाना समाप हृण्मानस । प्रणम्य भक्त्या ता ब्रह्मनभ्यिका जगदग्निकाम्
इति श्रावह्यैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे विघ्नोपपण्डन

नाम द्वादशोऽध्याय ।

त्रयोदशोऽध्याय

विष्णुकृत गणेशमन्त्रम् ।

नारायण उवाच ।

अथ विष्णु शुभे काले देवैश्च मुनिभि सह । पूजयामास त वाग्मुपहारैः पुनर्मै ॥१॥
सवाप्रे च तव पूजा च मया दत्तासुरोत्तम । सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भववत्सेत्युवाच तम्
घतमाग ददौ तस्मै ब्रह्मनातञ्च मुक्तिदम् । सर्वसिद्धिं प्रदायैव चरात्तमसम हरि ॥
ददौ द्रव्याणि चाङ्गणि चोपचाराणि पाङ्कजा । तत्रामकरण चक्रे मुनिभिश्च मम सुरै
विघ्नैश्च गणेशश्च हेरम्भश्च गणानन । तत्रोदरश्चैकदन्त शूर्पकर्णो घितायक ॥२॥

दाडिग्याना श्रीफलानामसख्यानि फलानि च ॥ २६ ॥

खजूराणा करञ्जाना जम्बूना विविधानि च । आम्नाणा पनसानाञ्च कदलीनाञ्च नारद
फलानि नारिकेलानामसत्यानि ददौ मुदा ॥ २७ ॥

अन्यानि पग्पिडानि कालदेशोद्भवानि च । ददौ तानि महामाया स्वादूनि मधुराणिच
म्यच्छ मुनेप्रलङ्घ्यैव कपूरादिसुवासितम् । गङ्गाजलञ्च पानार्थं पुनराचमनायकम् ॥
ताम्रूलञ्च घर रम्य कपूरादिसुवासितम् । सुवर्णपात्रशतक परिपूर्णञ्च नारद ॥ ३० ॥
शैलेश्वरी शैलराज शैलज शैलराजज । शैलराजप्रियामाल्या पुपूजु शैलजात्मजम् ॥
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे । सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नम
इत्यनेनेव मन्त्रेण दत्त्वा द्रव्याणि भक्ति । सर्वे प्रमुदितास्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवादय ॥
द्वारिशादक्षरो मालामन्त्रोऽय सर्वकामद । धर्मार्यकाममोक्षाणा फलद सर्वसिद्धि
पञ्चलक्षजपेनेव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिण । मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते
विघ्नानि च फलायन्ते तन्नामस्मरणेन च । महावाग्मी महासिद्ध सर्वसिद्धिसमन्वित
वाक्पतिर्नगतायातितस्यसाक्षात्सुनिश्चितम् । महाकर्वान्द्रो गुणवान्विदुषाञ्चगुरोर्गुह
सपूज्यानेन मन्त्रेण देवा धानन्दसप्लुता । नानाविधानि वाद्यानि वादयामासुरस्वै
ब्राह्मणान् भोजयामासु कारयामासुः सद्यम् । ददुर्दानानि तेभ्यश्च धन्दिभ्यश्चविशेषत
नारायण उवाच ।

बध विष्णु सभामध्ये सपूज्य त गणेश्वरम् । तुणव परया भक्त्यासर्वविघ्नघिनायकम्
श्रीविष्णुस्त्वाच ।

इंश त्वा स्तोनुमिच्छामिऽहज्ज्योति सनातनम् । निरूपितुमशक्तोऽहमनुरुपमनीहकम् ॥
प्रवर सर्वदेवाना सिद्धाना योगिना गुरम् । सर्वस्वरूप सर्वेश ज्ञानराशिस्वरूपिणम् ॥
अव्यक्तमक्षर नित्यसत्यमात्मस्वरूपिणम् । वायुतुल्यातिर्निल्लित्वाक्षतसर्वसाक्षिणम् ॥
ससाराण्यधपारे च मायापोते सुदुर्लभे । वर्णधारस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहकारकम् ॥४४॥
घर घरण्य घरद वादानामपीश्वरम् । सिद्ध सिद्धिस्वरूपञ्च सिद्धिद सिद्धिसाधनम् ॥
ध्याना तैरिक्त ध्यैयञ्च ध्यानासाध्यञ्च धार्मिकम् । धर्मस्वरूप धर्मज्ञधर्माधर्मफलप्रदम् ॥

वीजं संसारवृक्षाणामङ्कुञ्ज तदाश्रयम् । स्त्रीपुंनपुंसकानाञ्च रूपमेतदतीन्द्रियम् ॥४९॥
सर्वाद्यमग्रपूज्यञ्च सर्वपूज्यं गुणार्णवम् । स्वेच्छया सगुणं ब्रह्मनिर्गुणञ्चापिस्वेच्छया॥
स्वयं प्रकृतिरूपञ्च प्राकृतं प्रकृतेः परम् । त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ॥५६॥
न क्षम पञ्चवक्त्रञ्च न क्षमश्चतुराननः । सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ॥

न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥५०॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा सुरेशं सुरसंसदि । सुरेशश्च सुरैः सार्द्धं विरराम रमापतिः ॥५१॥
इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यःपठेत् । सायंप्रातश्चमध्याह्नेभक्तियुक्तः समाहितः ॥
तद्विघ्ननिघ्नं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने । वर्द्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकःसदा ॥५२॥
यात्राकाले पठित्वा तु यो याति भक्तिपूर्वकम् । तस्यसर्वाभीष्टसिद्धिर्भवत्येव न संशयः॥
तेन दृष्टञ्च दुःस्वप्नं सुस्वप्नमुपजायते । कदापि न भवेत्तस्य ग्रहपीडा च दारुणा ॥५५॥
भवेद्विनाशः शत्रूणां बन्धूनाञ्च विवर्द्धनम् । शश्वद्विघ्नविनाशश्च शश्वन्सम्पद्विवर्द्धनम्॥
स्थिरा भवेद्गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्द्धनी । सर्वैश्वर्यमिह प्राप्यहान्तेविष्णुपदंलभेत्
फलञ्चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्वेद् ध्रुवम् । महतां सर्वदानानां श्रीगणेशप्रसादतः ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रं समाप्तम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं स्तोत्रं गणेशस्य पूजनञ्च मनोहरम् । कवचं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतंभवतारणम् ॥

नारायण उवाच ।

पूजायां सुनिवृत्तायां सभामध्ये शनैश्चरः । उवाच विष्णुं सर्वेषां तारकंजगतां गुरम् ॥

शनैश्चर उवाच ।

सर्वदुःखविनाशाय दुःखप्रशमनाय च । कवचं विघ्ननिघ्नस्य यद् वेदविदां चर ॥६१॥

बभूव नो विवाद्श्च शक्त्या च मायया सह ।

तद्विघ्नप्रशमार्थञ्च कवचं धारयाम्यहम् ॥६२॥

श्रीविष्णुस्त्वाच ।

विनाकस्य कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । सुगोप्यञ्च पुराणेषु दुर्लभञ्चागमेषु च ॥६३॥

उक्तं कौशुमशाखे ॥ सामवेदे मनोहरम् । कवचं विघ्ननाथस्य सर्वविघ्नहरं परम् ६५॥
राज्यं देयं शिवाय देयं प्राणा देयाश्च सूर्य्यज । एवम्भूतञ्च कवचं न देयं प्राणसङ्कटे ६५॥

विघ्नैर्भाविस्तोभायः स्थेच्छयाऽस्य च मायया ।

नित्याऽयमेकदन्तश्च कवच चास्य घत्सक ॥६६॥

पूजास्य नित्या स्तोत्रञ्च कल्पे कल्पेऽस्ति सन्ततम् ।

अस्यास्य जन्मतः पूर्वं मुनयश्च सिपेविरे ॥६७॥

यथा मदयनारंपु जन्मविग्रहधारणम् । तथा गणेश्वरस्यापि जन्म शैलसुतोदरे ॥६८॥

यद्बुध्त्वा मुनयः सर्वे जीवन्मुक्ताश्च भारते । नि शङ्काश्च सुराः सर्वे शत्रुपक्षविमर्दकाः॥

कवचं विघ्नतां मृत्युर्न याति सन्नधि मिया ।

नायुर्व्ययो नाशुभञ्च ब्रह्माण्डे न पराजयः ॥७०॥

दशलक्षत्रपेनैव सिद्धञ्च कवचं भवेत् । यो भवेत् सिद्धकवचो मृत्युं जेतुं स च क्षमः ॥

मुसिद्धकवचो वाग्मी चिरजीवी महीतले । सर्वत्र विजयी पूज्यो भवेद्ग्रहणमात्रतः ॥

मालामन्त्रमिमं पुण्यं कवचञ्चेदमेव च । विघ्नतां सर्वपापानि प्रणश्यन्ति सुनिश्चितम्

भूतप्रेतपिशाचाश्च कृष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः । डाकिन्यो योगिन्यश्चैव वेतालादयप्यवच

बालग्रहा ग्रहाश्चैव क्षेत्रपालादय स्तथा । तेषाञ्च शब्दमात्रेण पलायन्ते च भीरवः ॥

आघयो व्याधयश्चैवशोकाश्चैवभयावहाः । न यान्तिसन्नधिर्वेपागदङ्गस्य यथोरगाः ॥

ऋजवे गुरुभक्ताय स्वशिष्यायप्रकाशयेत् । खलायपरशिष्यायदत्त्वामृत्युमवाप्नुयात् ॥

संसारमोहकस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्चवृहतीदेवोल्मवोदरः स्वयम् ॥

घनार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥७६॥

सर्वेषां कवचानाञ्च सारभूतमिदं मुने । ओं गं हु श्रीगणेशाय स्वाहामेपातु मस्तकम् ।

हात्रिंशदक्षपेमन्त्रो ललाटं मे सदायतु ॥८०॥

ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गमिते च सन्ततंपातुलोचनम् । तालुकंपातुविघ्नेश सन्ततंघरणांतले ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लींमितिचसन्ततंपातुनासिकाम् । ओंवीं गं शूर्पंकर्णायस्वाहा पात्यधरं मम ।

दन्तानि तालुकां जिह्वां पातु मे पौडशाक्षतः ॥८३॥

ओं लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु ।

ओं ह्रीं हीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदाऽवतु च ॥ ८४ ॥

ओं श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ।

ओं हीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥ ८५ ॥

ओं ह्रीं हीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलञ्च गम् ।

करो पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत् ॥ ८६ ॥

प्राच्यांलम्बोदरःपातु आग्नेय्यांविघ्ननायकः । दक्षिणेपातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यान्तुगजाननः

पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शङ्करात्मजः । कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च ॥

प्रेशान्यामेकदन्तश्च हेरम्नः पातु चोर्ध्वतः । अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः

स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः ॥ ६० ॥

इति ते कथितं घत्स सर्वमन्त्रीघयिग्रहम् । संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥ ६१ ॥

श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले । वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज ॥

मया दत्तञ्च तुभ्यञ्च यस्मै कस्मै न दास्यसि । परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसङ्कटारणम् ६३

गुह्यमभ्यर्च्यविधिबत् कवचं धारयेत्तुयः । कण्ठेवा दक्षिणे बाहौसोऽपि विष्णुर्नसंशयः

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशाम्

इदं कवचमवात्वा यो भजेच्छङ्करात्मजम् । शतलक्षप्रजतोऽपि न मन्त्रःसिद्धिदायकः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते संसारमोहनं नाम कवचम् ।

दत्त्वेदं सूर्यपुत्राय विरराम सुरेश्वरः ।

परमानन्दसंयुक्ता देवा ऊचुः समीपतः ॥ ६६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे गणपतिखण्डे गणेशपूजा

स्तवकवचकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः

कार्तिकेयप्रवृत्तिप्राप्तिः ।

भारायण उवाच ।

देवा विष्णुसभायाते सर्वे प्रहृष्टमानसाः । गन्धर्वा भुनय शैलाः पश्यन्तः सुमहोत्सवा
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा । उवाच विष्णुं प्रणता देवेश देवससदि ॥ २ ॥

पार्वत्युवाच ।

त्व पाता सर्वजगता नाथनाहंजगद्व्युद्दि । कथं मत्स्वामिनो धीर्यं नामोघ रक्षितंप्रभो
रतिभङ्गे कृते देवैर्ब्रह्मणा प्रेरितैस्त्वया । भूमौ निपतितं धीर्यं केन देवेन वै हृतम् ॥४॥
सर्वे देवास्त्वत्पुरतस्तद्वेषणमर्हति । अराजकं कथं युक्त तिष्ठति त्वयि राजनि ॥५॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः । उवाच देवर्षो च मुनिवर्गो च तिष्ठति ॥ ६ ॥

श्रीविष्णुर्वाच ।

देवा शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम् । शिवस्यामोघधीर्यं यत्तत् पुराणेननिर्हृतम्
सभामानय तन् क्षिप्रं न चेत्सदण्डमर्हति । सकोराजान शास्ताय प्रजावाध्यश्चपाक्षिकः
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम् । ऊबुः सर्वे क्रमैर्णैव आसिता पुरतोहरः

ब्रह्मोवाच ।

तर्हीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते । स वञ्चितो भवत्वत्र पुण्याहे पुण्यकर्मणि ॥

महादेव उवाच ।

स्वधीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते । स वञ्चितो भवत्वत्र सेवने पूजने तव ॥११॥

यम उवाच ।

स वञ्चितो भवत्वत्र शरणागतक्षणे । एकादशीव्रते चैव तर्हीर्यं येन निर्हृतम् ॥१२॥

इन्द्र उवाच ।

तर्हीर्यं निर्हृतं येन पापिना पापमोचने । भयःयत्र यशोलुप्तन्तत् पुण्यकर्म सन्ततम् ॥

वरुण उवाच ।

भवत्वत्र कलौ जन्म वर्षेऽस्य भारते हरे । शूद्रयाजकपत्न्याश्च गर्भे तद्दु'येन निर्ह'तम् ।

कुबेर उवाच ।

स्थाप्यहारी स भवतु विश्वाङ्गश्च मित्रहा । सत्यघ्नश्च हृतघ्नश्च तद्दोष्यं येन निर्ह'तम् ॥

ईशान उवाच ।

परद्रव्यापहारी च स भवत्वत्र भारते । नरघाती गुरुद्रोहो तद्दोष्यं येन निर्ह'तम् ॥२६॥

रुद्रा ऊचुः ।

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते पारदारिकाः । गुरुनिन्दारताः शश्वत्तद्दोष्यं येन निर्ह'तम्

कामदेव उवाच ।

कृत्वाप्रतिज्ञां योमूढो न सम्पालयते भ्रमात् । भाजनं तस्य पापस्य सभवेत्येन निर्ह'तम्

स्वर्वेद्यावूचतुः ।

मातुः पितुर्गुणेष्वैव स्त्रीपुत्राणाञ्च पोषणे ।

भवेतां धञ्जितां तौ च याभ्यां धीर्ष्यञ्च निर्ह'तम् ॥ २६ ॥

सर्वे देवा ऊचुः ।

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारो भवन्त्वत्र च भारते । अपुत्रिणोऽद्रिदिाश्च यैश्चर्षीर्यञ्च निर्ह'तम् ॥

देवपत्न्य ऊचुः ।

तानिन्दन्तु स्वभर्तारं गच्छन्तु परपूरुषम् । सन्तु बुद्धिविहीनाश्च याभिर्वीर्य्यञ्च निर्ह'तम्

देवानां वचनं श्रुत्वा देवीनाञ्च हरिः स्वयम् । कर्मणां साक्षिणं धर्मं सूर्यं चन्द्रं हुताशनम्

पवनं पृथिवीं क्षीरं सन्ध्ये रात्रिं दिनं मुने । उवाच जगतां कर्ता पाताशास्त्राजगत्त्रये

श्रीविष्णुस्त्वाच ।

देवैर्न निर्ह'तं धीर्ष्यं तदेतन् केन निर्ह'तम् । तद्भ्रमोर्धं भगवतो महेशस्य जगद्गुरोः ॥

यूयञ्च साक्षिणो विश्वे सन्तर्न सर्वकर्मणाम् । युष्माभिर्निर्ह'तं किंचा किम्भूतं यक्षुर्महथ

ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कम्पिताश्च ते । परस्परं समालोच्य क्रमेणोचुः पुरोहरैः

श्रीधर्म उवाच ।

स्तेरुत्तिष्ठन्तो धीर्ष्यं पपात घनुधातले । मया ज्ञातममोर्धं तच्छुद्धुरस्य प्रकोपतः ॥२७॥

क्षितिस्त्वाच ।

वीर्यं वीरुमशक्तोऽहं न्यक्षिपं पुरा । अतीव दुर्बहं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि ॥२८॥

वद्विस्त्वाच ।

वीर्यं वीरुमशक्तोऽहं न्यक्षिपं शरवानने । दुर्बलस्य जगन्नाथ किं यशः किञ्च पौरुषम्
धायुस्त्वाच ।

शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह । अतीवसुन्दरो विष्णो स्वर्णरेखानदीतटे ३०
श्रीसूर्य उवाच ।

रुदन्तं बालकं दृक्ष्वगममस्ताचलं प्रति । प्रेरितः कालचक्रेण निशि संभ्यातुमश्रमः ॥३१॥
नन्द उवाच ।

रुदन्तंबालकंप्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः । जगाम स्वालयं विष्णोर्गच्छन्वद्वरिकाश्रमात्
जलमुवाच ।

धमुं रुदन्तमानीय म्स्तनं दत्त्वा स्तनार्थिने । वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं सूर्याधिकप्रभम्
सन्ध्ये ऊच्यतुः ।

अधुना कृत्तिकानाश्रयणांतत्पोष्यपुत्रक । तत्रामचक्रुस्ताः प्रेम्णाकार्तिकश्चेतिकौतुकात्
रात्रिस्त्वाच ।

न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पौष्टा तस्यपुत्रकः
दिन उवाच ।

यानिधानि च धस्तुनित्रैलोक्ये दुर्लभानि च । प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासुरेव तम् ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सन्तुष्टो मधुसूदन । ते सर्वे हर्षित्य्यूचुः समायां हृष्टमानसाः ॥
पुत्रस्य वान्तां सम्प्राप्य पार्वती हृष्टमानसा । कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौ बहुधनानि च
ददौ सर्वाणि विप्रेभ्यो चासांसि विविधानि च ॥३८॥

लक्ष्मी सारम्बती मैना सावित्री सर्वयोगपितः । विष्णुश्चसर्वदेवाश्चब्राह्मणेभ्योऽदुर्धनम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कार्तिकप्रवृत्ति-
प्रातिनाम चतुर्दशोऽध्याय ।

पञ्चदशोऽध्यायः

शिवदूतैः कृत्तिकाभवनगमनम् कार्तिकनन्दिसंवादश्च ।

नारायण उवाच ।

पुत्रस्य वार्त्तां सम्प्राप्य पार्यत्या सह शङ्करः । प्रेरितो विष्णुना देवैर्मुनिभिः पर्वतैर्मुने
दूतान् प्रस्थापयामास महाबलपराक्रमान् । वीरभद्रं विशालाक्षं शङ्कुर्णं कबन्धकम् ॥
नन्दीश्वरं महाकालं घञ्जदन्तं भगन्दरम् । गौधामुखं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥
लक्षञ्च क्षेत्रपालानां भूतानाञ्च त्रिलक्षकम् । वेतालानां चतुर्लक्षं यक्षाणां पञ्चलक्षकम् ।
कुम्भाण्डानाञ्चतुर्लक्षं त्रिलक्षं ग्रहारक्षसाम् । डाकिनीनाञ्चतुर्लक्षं योगिनीनां त्रिलक्षकम्
रुद्राञ्च भैरवाञ्चैव शिवतुल्यपराक्रमान् । अन्यांश्च विहृताकारानसंख्यातपि नारद ॥६॥
ने सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रारूपाण्यः । कृत्तिकानाञ्च भवनं वेष्टयामासुः सत्वरम् ॥७॥
दृष्ट्वा तान् कृत्तिकाः सर्वा भयविह्वलमानसाः । कार्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा

कृत्तिका ऊचुः ।

घन्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम् । न जानामीवयंकस्य करालानि च कार्तिक
कार्तिकेय उवाच ।

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वीर्यस्थिते । दुर्निवाप्यो निपेक्षमातरः केन वार्यते
पतस्मिन्नन्तरे तत्र सैन्येन्द्रो नन्दिकेश्वरः । पुरतः कार्तिकस्यापि तिष्ठंस्तासामुवाच ह
नन्दिकेश्वर उवाच ।

घ्नतः प्रवृत्तिं शृणु मे मातरश्च शुभाचहम् । प्रेरितस्य सुरेन्द्रस्य संहर्तुं शङ्करस्य च ॥
कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सभायां ते वसन्तश्च गणेशोत्सवमङ्गलम् ॥१३॥
शैलेन्द्रकन्या तं विष्णुं जगतां परिपालकम् । संशोभ्य कथयामास तवान्वेषणहेतुकम्
पप्रच्छदेवान् विष्णुस्तान् क्रमेणावाप्तिहेतवे । प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकञ्च यथोचितम्
त्वमत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम् । सर्वे धर्मादयो देवाधर्माधर्मस्य साक्षिणः

यथा । रह क्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा ॥ १६ ॥

दृष्टस्य न । नमोर्वाप्यं भूमौ पपात ह । भूमिस्तदक्षिपद् धर्तुं बद्धिश्च शरकानने ॥

न लब्धव्यं कृत्तिकाभिरमृभिर्गच्छ साम्प्रतम् ॥ १७ ॥

नवा । .F विष्णुश्च करिष्यति सुरैः सह । इनिष्यसि तारकाल्यं सर्वशस्त्रं लभिष्यसि

पुत्रस्त्व विष्वसंहर्तुं स्त्रां गोप्तुं न क्षमा इमाः ॥ १८ ॥

नाग्नि गोप्तु यथा शक्तः शुष्कवृक्ष स्वकोटरे । दीप्तिमांस्त्वञ्च विष्वेपुतासांगेहेपुशोभस्ते

यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते ॥ १९ ॥

करोपि जगदालोकनाच्छत्रांऽस्याद्भूतेजसा । यथा सूर्यः कराच्छत्रो नमवेन्मानवस्य च

विष्णुस्त्वञ्च जगद्व्यापी नासां व्याप्योऽसि शाम्भव ।

यथा न केपां ज्योष्यञ्च तत्सर्वं व्यापकं नमः ॥ २१ ॥

योगान्द्रो नानुलिप्तस्त्वं भोगीचपरिपोषणे । नैवल्लिमोयथात्मा चकर्मभोगेपुजीविनाम्

विधाधारस्त्वमीशश्चनामृतेसम्भवेत् स्थितिः । सागरस्य यथा नद्यां सरितामाश्रयस्य च

न हि सर्वेश्वरावासः सम्भवेत् कृत्तिकालये । गरुडस्य यथावासः श्रुद्रे च चटकोदरे

त्वाञ्च देवा न जानन्ति भक्तानुग्रहविग्रहम् । गुणानां तेजसां राशिं यथाज्ञानमयोगिनः

त्वामनिर्वचनीयञ्च कथं जानन्ति कृत्तिका । यथा परां हरेर्मक्तिमक्ता मूढचेनसः

त्रातर्यं यं न जानन्ति तेत्कुर्वन्त्यनादम् । नाद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकवासांश्चपङ्कजान्

कार्तिक उवाच ।

ब्रातः सर्वं विजानामि ज्ञानं त्रैकालिकञ्च यत् । ज्ञानोत्वं काप्रशंसा ते यतो मृत्युञ्जयाधितः

कर्मणा जन्म येषां वायासुयासु च योनिषु । तासु ते निर्वृत्तिनात् प्राप्नुवन्ति च सन्ततम्

ये यत्र सन्ति सन्तो वामद्वावा कर्मभोगतः । तेऽपि तं बहुमन्यन्ते मोहिता विष्णुमायया

साम्प्रतं जगतां माता विष्णुमायासनातनी । सर्वांवा विष्णुमाया च सर्वदा विष्णुमङ्गला

शैलेन्द्रपत्नीगर्भे सा ललाम जन्म भारते । दाहणञ्च तपस्त्रया सम्प्राप शङ्करं पतिम् ॥

ग्रहादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथैव कृत्तिमम् । सर्वे कृष्णोद्भवा काले विलीनास्तत्रकेवलम्

कल्पे कल्पे जगन्माता मातामेति जन्मति । यजन्ममायया बद्धो नित्यः सृष्टिविधावहम्

प्रकृतेरुद्भवाः सर्वा जगत्सुसर्वयोषितः । काश्चिदंशा कलाः काश्चिन् कलांशांशेनकाश्चन
 कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतैः कलाः । स्तनेनाभिर्वर्द्धितोऽहमुपहारेण सन्ततम्
 तासामहंपोष्यपुत्रोमदम्बा.पोषपादिमाः । तस्याश्चप्रकृते.पुत्रो यतस्त्वत्स्वामिर्बीर्य्यतः
 न गर्मजोऽहं शैलेन्द्रकन्याया नन्दिकेश्वर । सा च मे धर्मतो माता तथेमाः सर्वसम्भताः
 स्तनदात्री गर्मघात्री मक्ष्यदात्री गुणप्रिया ।

अर्माश्रदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यकाः । सगर्मकन्यामगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः ।
 मातुर्माता पितुर्माता सादरस्य प्रिया तथा । मातुः पितुश्च भगिनीमातुलानीतथैव च
 जनानां वेदविहिता मातरः षोडशः स्मृताः ॥३८॥

इमाश्च सर्वसिद्धिज्ञाः परमेश्वर्य्यसंयुताः । न क्षुद्रा ब्रह्मण.कन्यास्त्रिपुलोकेपुपूजिताः ॥
 विष्णुनप्रेरितमन्वञ्जशम्भोःपुत्रसन्मोहहान् । गच्छयामित्वयासाद्दृश्यामि देवताकुलम्
 इति श्रौत्रह्रवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे नन्दिकार्त्तिक-
 संवादे षड्दशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः

कार्तिकागमनम् ।

नारायण उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्र संबोध्य कृत्तिकागमम् । उवाच नीतियुक्तञ्च वचनं शङ्करात्मजः ॥
 कार्तिक उवाच ।

याम्यामि शङ्करस्थानं दृश्यामि देवताकुलम् । मातरं यन्बुवर्गाश्च विद्रायं दत्तमातरः ॥
 दैवाद्योनं जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभावहम् । संयोगश्च वियोगश्च न च दैवान्परंबलम् ॥
 कुम्भारत्तञ्च तदैवं स च दैवान् परस्परः । भजन्ति सततंसन्तः परमात्मानमीश्वरम् ॥
 दैवं वर्द्धयितं शक्तः क्षयं कर्तुं स्वर्लोदरा । न दैवयद्दत्तद्वक्तव्याविनाशी च निर्णय

तस्माद्भजत मोह त्यजत हृष्यदम् । सुखद मोक्षद सारजन्ममृत्युभयापहम् ॥
परमानन्दजन्त मोहजालनिवृत्तनम् । शश्वद्भजन्ति यन् सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादय ॥७॥

कोऽह भवाब्धौ युष्माक का वा यूय ममात्मिका ।

तत्कर्म स्रोतसा सच पुत्राभूतञ्च फेनवत् ॥८॥

सश्लेष विपरात वा तत्सर्जमाश्रयेच्छया । ब्रह्माण्डमीश्वराधीन न स्वतन्त्रविदुर्बुधा
जलदुदुदुदवन् सर्वमनित्यञ्च जगत्त्रयम् । मायामनित्ये कुर्वन्ति माययामूढचेतस ॥१०॥
सन्तस्तत्र न लिप्यन्ति वायुवत्क्वप्णचेतस । तस्मान्मोहपरित्यज्यविदायदत्तमातर ॥
इत्यैवमुक्त्वा ता नत्वा सार्द्धं शङ्करपार्षदै । यात्राञ्चकार भगवान्मनसाधोहरिस्मरन् ॥
एतन्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम् । विश्वकर्मनिर्मितञ्च हीरकेण विरानितम् ॥१३॥
सद्गन्तसाररचित माणिक्येन विराजितम् । पारिजातप्रसूतानामालाजालैश्चशोभितम् ॥
मणीन्द्रदर्पणै श्वेतचामरैरतिदीपितम् । काडार्हमन्दिरै रम्यैश्चित्रितैश्चित्रितवरम् ॥१५॥
शतवक् सुविस्ताणं मनोयायि मनोहरम् । प्रस्थापितञ्च पार्वत्या वेष्टित पार्षदैर्वरै ।
तमारहन्त यान ता हृदयेन विदूयता ॥१६॥

सहसा चेतना प्राप्य मुक्तकेश्य सुचातुरा ॥१७॥

दृष्ट्वा च स्वपुर स्कन्द स्तम्भिता अतिशोकत । उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तुमारेभिरेभिया ॥
वृत्तिका ऊचु ।

किं कुर्म क्व च यास्यामो वय वत्स त्वदाश्रया ।

विहायास्मान् क्व यासि त्व नाय धर्मस्तवाधुना ॥१८॥

सहेनवर्दिताऽस्माभि पुत्रोऽस्माकस्वधर्मत । नायधर्ममातृवगानुपयुक्त सुतस्त्यजेत् ॥

इत्युक्त्वा वृत्तिका सर्वा वृत्वा वक्षसि कार्तिकम् ।

पुनर्मूर्च्छामवापुस्ता सुतविच्छेददाहणाम् ॥२१॥

कुमारो बोधयित्वा ता अथात्मचचनेन वै । तामिश्च पार्षदै सार्द्धमाधरोह रथ मुने ॥

पूर्णकुम्भ द्विज वेश्या शुकुप्रान्यञ्च दर्पणम् । द्वाप्राज्यमधुलाजञ्चपुष्पदूर्वाक्षतसितम् ।

८ गनेन्द्र तुरग ज्वलदग्नि मुचर्णकम् । पूर्णञ्च परिपशानि फलानि विविधानि च ।

पतिपुत्रवतीं नारी प्रदीपं मणिमुत्तमम् । मुक्तां प्रसन्नमालाञ्च सद्यो मांसञ्च चन्दनम् ।

ददर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि पुरो मुने ॥२३॥

शृगालं नकुलं कुम्भं शवं वामे शुभावहम् । राजहंसं मयूरञ्च खञ्जनञ्च शुक्रं पिकम् ।

पारावतं शङ्खचिल्लं चक्रवाकञ्च मङ्गलम् । कृष्णसारञ्च सुरभीं चामरीं श्वेरचामरम् ।

धेनुञ्च घत्ससंयुक्तां पताकांःदक्षिणे शुभाम् । नानाप्रकारवाद्यञ्च शुश्राव मङ्गलध्वनिम्

हरिशब्दस्य सङ्गीतं घण्टाशङ्खध्वनिन्तथा ॥२४॥

दृष्ट्वा श्रुत्वा मङ्गलं स जगाम तातमन्दिरम् । क्षणेनानन्दयुक्तञ्च मनोयागिरथेन च ॥२५॥

कुमारः प्राप्य कैलासं न्यग्रोघ्राक्षयमूलके । क्षणं तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह ॥

पार्वती मङ्गलं कृत्वा राजमार्गं मनोहरम् ।

पद्मरागैरिन्द्रनीलैः संस्कृतं परितः पुरम् ॥२७॥

रम्भास्तम्भसमूहैश्च पट्टसत्रप्रवर्द्धितैः । श्रीखण्डपल्लवैर्युक्तं पूर्णकुम्भैः सुशोभितम् ॥२८॥

पूर्णकुम्भजलैर्व्याप्तं सिक्तं चन्दनवारिभिः । रत्नप्रदीपासंरच्यैश्च मणिराजैर्विराजितम् ॥

नटनर्तकवेश्यानामुत्सवैः सकुल सदा । वन्दिभिर्विप्रवर्गैश्च दूर्वापुष्पकरैर्युतम् ।

पतिपुत्रवतीभिश्च सार्ध्वाभिश्च समन्विताम् ॥३०॥

लक्ष्मी सरस्वतीं दुर्गां सावित्रीतुलसीरतिम् । अरुन्धतीमहल्याञ्चदितितारां मनोरमाम् ।

अदितिं शतरूपाञ्च शर्वा सन्ध्याञ्च रोहिणीम् ॥३१॥

अनसूयाञ्च स्वाहाञ्च संज्ञा चरुणकामिनीम् । आकृतिञ्च प्रसूतिञ्च देवहूतीञ्च मेनकाम् ॥

तामेकपाटलामेकपर्णां मैनाककामिनीम् । वसुन्धराञ्च मनसां पुरस्कृत्य समाययौ ॥

रम्भा तिलोत्तमा मेना घृताची मोहिनी शुभा ।

उर्वशी रत्नमाला च सुशीला ललिता कला ॥३४॥

कदम्बमाला सुरसा घनमाला च सुन्दरी । पताश्रान्याश्चबह्वयश्चविप्रेन्द्राऽप्सरसाङ्गणाः

सङ्गीतनर्तनपराः सस्मिता वेशसंयुताः । करतालकराः सर्वा जामुरानन्दपूर्वकम् ॥३६॥

देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः किन्नरास्तथा । सर्वे ययुः प्रमुदिताः कुमारस्यानुमज्जने ॥

नानाप्रकारवाद्यैश्च रट्टैश्च पार्षदैः सह । भैरवैः क्षेत्रपालैश्च ययौ साङ्गं महेश्वरः ॥३८॥

अथ शक्तिधराः २ । दृष्ट्वाऽऽरात् पार्वतीन्तदा । अवरह्य रथात्पूर्णं शिरसा प्रणनाम ह
तं पद्माग्रतः ३ । गणञ्च मुनिकामिनाम् । शिवञ्च परया भक्त्यासर्वान्संभाष्ययत्नतः ।

१ प्रता कार्तिकं दृष्ट्वा कण्ठे कृत्वा बुबुध्रं च ॥४०॥

शङ्करश्च नुरा शोला देव्यश्च शैलरोपितः । पार्वतीप्रमुखा देव्यो देवाश्च शङ्करस्तथा ।

शैलाश्च मुनयः सर्वे ददुस्तस्मै शुभाशिपम् ॥४१॥

कुमार सगणे सार्द्धमागत्यचशिखालयम् । ददर्शनसभामभ्ये विष्णुं क्षोरोदशायिनम् ।

रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥४२॥

धर्मप्रज्ञेन्द्रवन्द्यार्कबहिवाप्यादिभिर्पुंतम् । इन्द्रास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।

स्तुतं मुनीन्द्रदेवेन्द्रे सेवितं श्वेतचामरीः ॥४३॥

त दृष्ट्वा जगतां नाथं भक्तिप्रदात्मकन्धरः । पुलकान्वितसर्वाङ्गीः शिरसा प्रणनाम ह ॥

विधि धर्मश्च देवाश्च मुनीन्द्रोश्च मुदान्वितान् । प्रणनाम च प्रत्येकंप्रापतेषां शुभाशिपम्
सर्वान् संभाष्य प्रत्येकमुवाच कनकासने । ददौ धनानि विप्रेभ्यः पार्वत्यासहशङ्करः ॥

इति धर्मप्रज्ञेयवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदक्षंवादे गणपतिखण्डे कार्तिकागमनं
नाम षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः

कुमाराभिषेकः ।

नारायण उवाच ।

अथविष्णुर्जगत्कान्तोद्दृष्ट' कृत्वाशुभक्षणम् । रत्नसिंहासनेरम्येवासयामास कार्तिकम् ॥

नानाविधानि चाद्यानि कान्ध्यानालादिकानि च ।

नानाविधानि यन्त्राणि चादयामास कौतुकान् ॥२॥

चेदमन्त्रामिषिर्नश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः । सद्रत्नकुम्भपतकैः स्थापयामास तं मुदा ॥३॥

सद्रत्नसाररचितकिरीटमङ्गलाद्गदम् । अनल्परत्नरचितभूषणानि वह्नि च ॥
 वह्निगुह्यांशुके दिश्ये क्षीरोदाण्यसम्मथम् । कौस्तुभं वनमालाञ्च तस्मै चक्रं ददौ मुदा
 ब्रह्मा ददौ यज्ञसूत्रं वेदाश्च वेदमातरम् । सन्ध्यामन्त्रं कृष्णमन्त्रं स्तोत्रञ्च कवचं हरेः ॥
 कमण्डलुञ्च ब्रह्मास्त्रं विद्याञ्च वैरिर्मर्दिनीम् । धर्मो धर्ममति दिव्यां सर्वजीवे दयां ददौ
 परं मृत्युञ्जयं ज्ञानं सर्वशास्त्रायबोधनम् । शश्वत् सुखप्रदं तत्त्वज्ञानञ्च सुमतोहरम् ॥
 योगतत्त्वं सिद्धितत्त्वं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम् । शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं धनुः ॥
 संहारास्त्रविनिक्षेपं तन् संहारं ददौ शिवः ॥८॥

इवेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ तस्मै जलेश्वरः । गजेन्द्रञ्च महेन्द्रञ्च सुधाकुम्भं सुधानिधिः
 मनोयायिरथं सूर्यः सन्नाहञ्च मनोरमम् । यमदण्डं यमश्चैव महाशक्तिं हुताशनः ॥

नानाशास्त्राण्युपायानि सर्वे देवा ददुर्मुदा ॥ १० ॥

कामशास्त्रं कामदेवो ददौ तस्मैमुदान्वितः । क्षीरोदोऽमृत्यरत्नानि विशिप्रंरत्ननूपुरम्
 पार्वती सस्मिता हृष्टा परमानन्दमानसा ।

महाविद्यां सुरीलाञ्च विद्यां मेधां दयां स्मृतिम् ॥

बुद्धिं मुनिर्मलां शान्तिं तुष्टिं पुष्टिं क्षमां धृतिम् ।

सहृदाञ्च हरीं भक्तिं हरिदास्यं ददौ मुदा ॥ १२ ॥

प्रजापतिर्देवसेनां रत्नभूषणभूषिताम् । सुविनीता सुरीलाञ्च सुन्दरीं सुमतोहराम् ॥
 ददौ तस्मै विवाहेन वेदमन्त्रेण नारद । यां चरन्ति महाप्रष्टी पण्डिताः शिशुपालिकाम्
 अभिषिच्य कुमारञ्च सर्वे देवा ययुर्गृहम् । मुनयश्चैव गन्धर्वाः प्रणम्य जगदीश्वरान्
 नारायणञ्च ब्रह्माणं धर्मं तुष्टाय शङ्करः । प्रणनाम हरिं तान् धर्ममालिङ्ग्य नारद ॥१५॥
 प्रीत्या ययां च शैलेन्द्रः सगणः शङ्कराक्षितः । ये ये तत्रागताः सर्वे ययुरानन्दपूर्वकम्
 परमानन्दसंयुक्तो देव्या सह महेश्वरः । कालान्तरे च तान् सर्वान् पुनरानीय शङ्करः ।

पुष्टिं ददौ विवाहेन गणेशाय महात्मने ॥ १७ ॥

सुताभ्यां सगणैः सार्द्धं पार्वतीं हृष्टमानसा । सिपैवै स्वामिनः पादपद्मं सासर्वकामदम्
 इत्येवं कथितं सर्वं कुमारस्याम्बिकेचनम् । विवाहः पूजनं तस्य गणेशस्य विवाहकम् ।

पार्वतीपुत्रलान्नां शैरानाञ्जसमागमः । कानेमतसिवाञ्छान्ति किं भूयःश्रोतुमिच्छसि
इति श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसवादे कुमारभियेको
नाम सप्तदशोऽध्याय ।

अष्टादशोऽध्यायः

विघ्नेशविघ्नकथनम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । पृच्छामि त्वामहं किञ्चिदतिसन्देहमीश्वर ॥ १ ॥
सुतस्य त्रिदशेशस्य शङ्करस्य महात्मनः । विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नमीश्वरस्य कथं प्रभो ॥२॥
परिपूर्णतमः श्रीमान् परमात्मा परात्परः । गोलोकनाथः स्वांशेन पार्वतीतनयः स्वयम्
अहां भगवन्तस्तस्य मस्तकच्छेदनं विभो । ग्रहहृष्ट्या ग्रहेशस्य तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

सावधानं शृणु ब्रह्मव्रिंहितासं पुरातनम् । विघ्नेशस्य विघ्नमिदं वभूव येन नारद ॥५॥
एकदा शङ्करः सूर्यं जघान परमक्रुधा । मालिमुमालिहन्तारं शूलेन भक्तवत्सलः ॥६॥
श्रीसूर्योऽव्यर्धशूलेन शिवतुल्येन तेजसा । जहार चेतनां सद्यो रथाच्च निपपात ह ॥७॥
ददर्श कश्यपः पुत्रं मृतमुत्तानलोचनम् । कृत्वा वक्षसि तं शोकात् विललापः भृशं मुहुः
हाहाकारं सुरास्त्रस्ताश्चकुर्विललपुर्भृशम् । अन्धीभूतं जगत्सर्वं वभूवः तमसावृतम् ॥८॥
निघ्नमं तनयं दृष्ट्वा शशाप कश्यपः शिवम् । तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा
मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य च । त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नमेवम्भूतमविप्यति
शिवश्च गलितक्रोध क्षणेनैवाशुतोषकः । ब्रह्मज्ञानेन तत्सूर्यं जीवयामास तत्क्षणात् ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामशश्च त्रिगुणात्मकः । सूर्यश्च चेतना प्राप्य समुत्सथुः पितुः पुरः ।
ननाम पितरं भनया शङ्करं भक्तवत्सलः । विज्ञाय शम्भोः शापञ्च कश्यपञ्च चुकोप ह

विषयं नैव जग्राह कोपेनैवमुवाच ह । विषयञ्च परित्यज्य भजामि कृष्णमीश्वरम् ॥१५॥
 सर्वं तुच्छमतिन्यञ्च न्धरं चेष्टवं विना । विहाय मङ्गलं सन्धं विहायेच्छ्रेयमङ्गलम् ॥
 देवैश्च प्रेरितो ब्रह्मा समागत्य ससम्भ्रमः । बोधयित्वा रविं तत्र युयोज विषये प्रभुः ।
 शिरस्तमाशिरं कृत्वा ब्रह्मा च स्वालयं मुदा । जगाम कश्यपश्चैव स्वराशिं रविरेव च
 अथ मालीं सुमालीं च व्याधिप्रस्तौवभूवतु । शिघ्रोगलितसर्वाङ्गीं शक्तिहीनीं हतप्रभौ
 तावुवाच स्वयं ब्रह्मा युवाञ्च भजतां रविम् । सूर्यकोपेन गलिता युवामेव हतप्रभौ ॥
 सूर्यस्य कवचं स्तोत्रं सर्वपूजाविधिविधिः । जगाम कथयित्वा तौ ब्रह्मलोकसनातनः
 ततस्तौ पुष्करं गन्धा सिधेवाते रविं मुने ।

स्नात्वा त्रिकालं भक्त्या च जपन्तौ मन्त्रमुत्तमम् ॥ २२ ॥

ततः सूर्याद्वरं प्राप्य निजरूपं बभूवतुः । इत्थं कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि
 इति श्रो ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनाट्यसंवादे विष्णेशविघ्नकथनं
 नाम अष्टादशोऽध्यायः ।

एकोनविंशोऽध्यायः

भास्करपूजनं स्तोत्रञ्च ।

नारद उवाच ।

किं स्तोत्रं कवचं ब्रह्मन् ब्रह्मणा च ददौ मुने । दानवाभ्यांपुरादत्तं सूर्यस्य परमात्मनः
 किं वा पूजा विधानं वार्किमन्त्रं व्याधिनारायणम् । सर्वं चास्य महाभाग तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि,
 मूत्र उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान् कद्वणानिधिः । स्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रमुवाच पूजनक्रमम्
 नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि धीमसूर्यपूजनक्रमम् । स्तोत्रञ्च कवचं सर्वं पापव्याधिविमोचनम्

मालिन्नुमालिना - व्याधिग्रस्तां बभूव - । विधिं सस्मरतु स्तोतुंशिवमन्त्रप्रदायकम्
ब्रह्मा गन्तुः - ७७ पप्रच्छ कमलापनम् । शिवं तत्रैवगच्छन्तं वसन्तं हरिसन्निधौ

ब्रह्मोवाच ।

मालिन्नुमालिनां दैत्यौ व्याधिग्रस्तां बभूवतुः । कमुपायं वद ब्रह्मंस्तयोर्व्याधिचिनाशने
विष्णुत्वात् ।

कृत्वा सूर्यस्य सेवाञ्च पुष्करं पूर्णवत्सरम् । व्याधिहन्तुर्मदंशस्यतीं च मुक्तौभविष्यत
शङ्कर उवाच ।

सूर्यस्य स्तोत्रकवचमन्त्रकल्पतरुं परम् । देहि ताम्यांजगत्कान्त व्याधिहन्तुर्महात्मनः
धारात् सम्पत् प्रदातारौ सर्वदाता हरिः स्वयम् ।

व्याधिहन्ता दिनकरो यस्य यो विषयो विधे ॥ १० ॥

तयोरनुमतिं प्राप्य यथौ दैत्यगृहं विधिः । प्रणम्य तौ तं पृष्ट्वा च तस्मै ददतुरासनम् ॥
तामुवाच स्वयं ब्रह्मा गलितां च दयानिधिः । स्तभ्यावाहात्परहितौ पूयदुर्गन्धसंयुतौ ॥

ब्रह्मोवाच ।

गृहीत्वा कवचस्तोत्रमन्त्रं पूजाविधिक्रमम् । गत्याहिपुष्करं वत्सो भजथ प्रणतौ रविम्
तावूचतु ।

भजाव केन विधिना केन मन्त्रेणवाविधे । किं स्तोत्रं कवचं किंवा तदावाम्याप्रदेहि च
ब्रह्मोवाच ।

कृत्वा त्रिकालस्नानञ्चमन्त्रेणानेनभास्करम् । ससेव्य भास्करंभक्तयार्तीरुजौचभविष्यथः
धौ ह्रीं नमो भगवते सूर्याय परमात्मने स्वाहा । इत्यनेनच मन्त्रेणसावधानदिवाकरम्
संपूज्य भक्त्या दत्त्वा चैवोपहाराणि षोडश । एवं संवत्सरं यावन्ध्रुवंमुक्तौभविष्यथ
अपूर्वं कवचं तस्य युवाभ्यां प्रदाम्यहम् । यदत्तं गुरुणा पूर्वमिन्द्राय प्रीतिपूर्वकम् ॥
तम् सहस्रभगाङ्गाय शापेन गौतमस्य च । अहल्याहरणेनैव पापयुक्ताय सङ्कटे ॥ १८ ॥

बृहस्पतिरवाच ।

इन्द्र शृणु प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम् । यद्धृत्वा मुनयः पूता जीवन्मुक्ताश्च भारते ॥

कवचं विन्नतो व्याधिर्न याति सन्निधिं भिया । यथा दृष्ट्वा वैनतेयं पलायन्ते भुजङ्गमाः
शुद्धाय गुरुभक्तायस्वशिष्यायप्रकाशयेत् । खलाय परिशिष्याय दत्त्वामृत्युमवाप्नुयात्
जगद्विलक्षणस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो दिनकरस्वयम्
व्याधिप्रणाशे सौन्दर्ये विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥

सद्यः पूतकरं सारं सर्वपापप्रणाशनम् ।

ओं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा मे पातु मस्तकम् ॥ २३ ॥

अष्टादशाक्षरोमन्त्रः कपालमेसदावतु । ओं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्यायस्वाहामेपातुनासिकाम्
चभ्रुर्मै पातु सूर्यश्च तारकाञ्च विकर्तनः । भास्करो मेऽधरं पातु दन्तं दिनकरः सदा
प्रचण्डः पातु गण्डं मे मार्त्तण्डः कर्णमेव च । मिहिरश्च सदा स्कन्धंपातु जङ्घेचपूयणः
वक्षः पातु रविः शश्वन्तार्भि सूर्यः स्वयं सदा । कट्कालं मे सदापातु सर्वदेवनमस्कृतः
करौ पातु सदा ब्रजः पातु पादौ प्रभाकरः । विभाकरो मे सर्वाङ्गंपातु सन्ततमीश्वरः
इति ते कथितं षट्स कवचं सुमनोहरम् । जगद्विलक्षणं नाम त्रिजगत्सु सुदुर्लभम् ॥
पुरा दत्तञ्च मनत्रे पुलस्त्यः पुष्करे मुदा । मया दत्तञ्च तुभ्यञ्च यस्मै कस्मै न दास्यसि
व्याधितो मुच्यसे त्वं च कवचस्य प्रसादतः । भवानरोगी श्रीमांश्च भविष्यतिनसंशयः
लक्षवर्षहविष्येण यत्फलं लभते नरः । तत्फलं लभते नूनं कवचस्यास्य धारणात् ॥३२
इदं कवचमज्ञात्वा यो मूढो भास्करं भजेत् । दशलक्षप्रजतोऽपि मन्त्रसिद्धिर्न जायते
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सूर्यकवचं समाप्तम् ।

ब्रह्मोवाच ।

धृत्वेदं कवचं वत्सो वृत्वा च स्तवनं रवेः ।

युवां व्याधिविमुक्तौ च निश्चितन्तु भविष्यथः ॥ ३४ ॥

स्तवनं सामवेदोक्तं सूर्यस्य व्याधिमोचनम् । सर्वपापहरं सारं श्रीरारोग्यकरं परम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

तं ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम् । त्वामिहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम् ।

त्रैलोक्यलोचन त्रेवनाथ पापप्रमोचनम् । तपसा फलदातार तु तद् पापिना सदा ॥
 कर्मनिरूपणं कर्मबीज दयानिधिम् । कर्मरूप क्रियारूपमरूप कर्मबीजकम् ॥ ३८ ॥
 ब्रह्मविष्णुब्रह्मज्ञानामशञ्च त्रिगुणात्मकम् । व्याधिद्व्याधिहन्तार शोकमोहभयापहम्

मुग्ध मोक्षद सार भक्तिर् सर्पकामदम् ॥ ३९ ॥

सर्वत्र सरूप साक्षिण सर्वकर्मणाम् । प्रत्यक्ष सर्वलोकानामप्रत्यक्ष मनोहरम् ॥४०॥
 शश्वटसहर पञ्चाद्रसद् सर्वसिद्धिदम् । सिद्धिस्यरूप सिद्धेश सिद्धाना परम गुरम् ॥
 स्ववराजमिदं प्रोक्तं गुणाद्गुणतर परम् । त्रिसन्धय पठेन्नित्यं सर्वव्याधि प्रमुच्यते
 आन्ध्र कुष्ठञ्च दारिद्र्य रोग शोक भय कलि ।

तस्य नश्यति विश्वेश श्रोतुर्धर्मवया ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

महातुष्टाचगलितो चभूर्होमो महात्रणी । यक्षमग्रस्तोमहाशूली नानाव्याधियुतोऽपि
 मासकृत्वा हविष्याज श्रुत्वास मुच्यतेध्रुवम् । स्नानञ्च सर्वतीर्थानां लभते नात्रसशय
 पुष्कर गच्छत शाश्व भास्कर भजत सूती । इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जगाम स्वालय मुदा
 तौनिषेच्य दिनेशत नीरुजौ तौ बभूवतु । इत्येव कथितं धत्स किम्भूय श्रोतुमिच्छसि
 सर्वविघ्नहर सार विघ्नेशविघ्नकारणम् । स्तोत्रेणानेन तं कृत्वा मुच्यते नात्रसशय ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारद सवादे गणपतिलखण्डे चिन्न

कारणकथन नामोत्तमविंशतितमोऽध्याय ।

विंशोऽध्यायः

गजसुखयोजनहेतुकथनम् ।

नारद उवाच ।

हरेरशसमुत्पन्नो हरितुर्यो भवान् धिया । तेजसा चिक्रमेणैव मत्प्रथमं श्रोतुमर्हसि ॥२॥

चिन्ननिम्नस्य यद्विघ्नं श्रुतं तत्परमाद्भुतम् । तद्विघ्नकारिणञ्चैव विश्वकारणवक्त्रत ॥२॥

अधुनाध्रोतुमिच्छामि स्वात्मसन्देहमञ्चनम् । त्रैलोक्यतायतनये गजास्ययोजनाकथम्
स्थितेष्वन्येषु सर्वेषां जन्तूनां जन्तुसम्भव । विशिष्टानां सुरूपेषु नानारूपेषु रूपिणाम्

श्रीनारायण उवाच ।

गजास्ययोजनायाश्च कारणं शृणु नारद ! गोप्यं सर्वपुराणेषु वेदेषु च सुलभम् ॥ ५ ॥
तारणं सर्वदुःखानां कारणं सर्वसम्पदाम् । हारणं विपदाञ्चैव रहस्यं पापमोचनम् ॥६॥
महालक्ष्म्याश्च चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् । सुखदंमोक्षदञ्चैव चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ७ ॥
शृणु तान् प्रसस्येऽहमितिहासं पुरातनम् । रहस्यं पापकरस्य पुरा तानमुखाच्छ्रुतम् ।
एकदैव महेंद्रश्च पुष्पमत्रां नदी यया । महासन्तन्मत्रोन्मत्तः कामा राजधियाग्वित ॥
तत्तीरंऽतिरहस्याने पुण्ड्रियाने मनोहरे । अतीवदुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविराजिते ॥१०॥
त्रमस्त्रतिमंयुक्ते पुंस्कोकिरुत्तन्ध्रुने । सुगन्धिपुष्पसङ्घिलप्रयायुना सुरभीकृते ॥११॥
ददर्श रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकान् समागताम् । सुलभमविभ्रामकामुकीं कामकामुकीनां
इच्छन्तीर्माप्सिता क्रीडा गच्छन्तीं मदनाश्रमम् ।

एकाकिर्नामुग्धतस्कां मग्धयोद्गतमानसाम् ॥ १३ ॥

सुश्रोणीं सुदतींऽपानां विन्वाधरसरोरुहाम् । बृहन्नितम्बभारार्त्तां गजेन्द्रमन्दगामिनीनां
सस्मितास्यशरचन्द्रां सकटाक्षञ्चविन्नतीनां । विन्नतीकवरीं रम्यांमालतीमाल्यशोभिताम्
घहिरुद्धांशुरुधरां रत्नभूषणभूषिताम् । कस्तूरीविन्दुना साद्वं सिन्दूरविन्दुमण्डिताम् ॥
नीलोत्पलविनिन्द्यैककञ्जलोऽञ्जललोचनाम् । मणिकुण्डलयुग्मेनगण्डस्थलविराजिताम्
धन्युन्नतं सुकडिनं पत्रराजिविराजिनम् । सुखदं रसिकानाञ्च स्तनयुग्मञ्च विन्नतीम् ॥
सर्वशोभाद्वयवैशाढ्यां सुभगां सुरतीत्सुकाम् ।

प्राणाधिकाञ्च देवानां स्वच्छां स्वच्छन्दगामिनीम् ॥ १६ ॥

वरामप्सरसां रम्यामनोवस्थिरर्यावताम् । गुणरूपवतीं शान्तां मुनिमानसमोहिनीम् ॥
दृष्ट्वा तामतिवैशाढ्यां तत्कटाक्षेण पीडितः । इन्द्रोऽतीन्द्रियवापल्यात् प्रवक्तुमुपचक्रमे
इन्द्र उवाच ।

क गच्छसि वरारोहे कागनासि मनोहरे । मया दृष्टान्त(सि) सुविटं मन्प्रियाणि तवाधना

तवान्वेषणवत्ताह श्रुत्वा धान्निकवक्त्रत । शश्वत्तवानुरक्तश्च कामन्या गणयामि च ।
सुवासितजतार्योय किमिच्छेत्पङ्किलजलम् । पङ्कनेच्छेच्चन्दनार्थी पङ्कजार्थीनचोत्पलम्

सुधार्थी न सुरामिच्छेद् दुग्धार्थी न जलाविलम् ।

सुगन्धिपुष्पशायी यो न चाख्यतरपमिच्छति ॥ २५ ॥

य स्वर्गी नरक नेच्छेत् सुभोगी मन्दभोजनम् ।

पण्डितै सह सवासी नेच्छेत् कामिनीसन्निधिम् ॥ २६ ॥

विहाय रत्नाभरण कोऽपीच्छेत्सौहभूषणम् ।

त्वामाश्लिष्य महाविज्ञा को मूढो गन्तुमिच्छति ।

विहाय गङ्गा को विशो नदीमन्याश्च वाञ्छति ॥ २७ ॥

नेन्द्रियैश्चेन्द्रियरतिं वर्द्धमानाञ्च सेचनै । वर प्रार्थयितारश्च जीविनश्च सुखार्थिन ॥ २८

इत्येवमुक्त्वा भगवानवरह्य गजेश्वरात् । कामयुक्तश्च पुरतस्तस्थौ तस्याश्च नारद ॥ २९ ॥

श्रुत्वा तद्वचन रम्भा महाशृङ्गारलोलुपा । जहासानम्रचदना पुलकाञ्चितधिप्रहा ॥ ३० ॥

स्मेराननकटाक्षेण स्तनोर्दर्शनेन च । कामान्याहुतिवाक्येन जहार तस्य चेतनम् ॥ ३१ ॥

मित सार सुमधुर सुस्निग्ध कोमल प्रियम् । पुरपायत्तवीजश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३२ ॥

रम्भोवाच ।

यास्यामि वाञ्छित यत्र प्रश्नेन तव किं फलम् । नाहसन्तोपजननीधूर्त्तानादुष्टमित्रता ॥

यथा मधुकरो लोभात् सर्वपुष्पासव लभेत् । स्वादुयत्रातिरिक्तसत्रतिष्ठतिसन्ततम् ॥

तथैव लम्पटपुमान् भ्रमेद् भ्रमरवत् सदा । न विबद्धो हि कास्वेव घायुवद्रसमाहरेत् ॥

सुपुमानद्भवत्सुखीजायथाशाखाश्चशाण्डिपु । लम्पट काकबल्लोल फलभुक्त्वाप्रयाति च ॥

स्वकार्य्यमुद्धरेद् युवावन्नावद्वासप्रयोजनम् । स्थिति कार्यानुरोधेनयवाकाष्टेहुताशन ॥

यावत्तडागेतोर्यानितायद्दुयादासितेपुच । शुष्कारम्भेत्तोर्यानायाग्नित्स्थानान्तर पुन ॥

एव देवानामीश्वरोऽसि कामिनीनाञ्च वाञ्छित ।

पुमास रसिक शब्दश्च वाञ्छन्ति रसिका सुधात् ॥ ३६ ॥

सुधान रसिक शान्तसुवैशसुन्दरप्रियम् । गुणितधनिनस्यच्छकान्तमिच्छतिवामिनी ॥

दुःशीलं रोगिणं वृद्धं रतिशक्तिविहीनकम् । अदातारमविज्ञञ्च नैव वाञ्छन्तियोपितः ॥

का मूढा न च वाञ्छन्ति त्वामेवं गुणसागरम् ।

तवज्ञाकारिणी दासीं गृहाणात्र यथासुखम् ॥४२॥

इत्युत्त्वा सस्मिता साचतंपपौचक्रुचक्षुषा । कामाग्निदग्धाविगललज्जातस्थौ समीपतः ॥

ज्ञात्वा भावं स्मरार्त्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः । गृहीत्वातांपुष्पतल्पेविजहारतया सह ॥

सहसा रहसि प्रौढां नग्नाञ्चसुभगांवराम् । पक्वविम्बाधरौष्ठौचचुचुम्य चुम्बितस्तया ॥

नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं मुने । चकार कामी तत्रैव शृङ्गारो मूर्त्तिमानिव ॥४३॥

तौ कामाहितचित्तौ मा युवुधाते दिवानिशम् ।

शद्वत्तद्गतचित्तौ च कामार्त्तां ज्ञानवर्जितौ ॥४५॥

स च कृत्वा स्थले क्रीडां तया सहसुरेश्वरः । ययौजलविहारार्थं पुष्पमद्रानदीजलम् ॥

स चकार जलक्रीडां तया सह क्षणं मुदा । जलात् स्थलेस्थलात्तोयेविजहारपुनःपुनः ॥

एतस्मिन्नन्तरे तेन वर्त्मना मुनिपुङ्गवः । सशिष्यो याति दुर्वासा वैकुण्ठाच्छङ्करालये ॥

तञ्च दृष्ट्वा मुनीन्द्रश्च देवेन्द्रः स्तम्भमानसः । ननामागत्य सहसा ददौतस्मैसचाशिरः ॥

पारिजातप्रसूनं यद्वत्तं नारायणेन वै । तच्च दत्तं महेन्द्राय मुनीन्द्रेण महात्मना ॥५२॥

दत्त्वा पुष्पं महाभागस्तमुवाचरूपानिधिः । माहात्म्यंतस्ययन्किञ्चिदपूर्वमुनिसत्तमः ॥

दुर्वासा उवाच ।

सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम् । मूढुर्ध्नीदं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः ॥५३॥

पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत् । तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहातिकदापि तम् ॥

ज्ञानिव तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण बलेन च । सर्वदेवाधिकः श्रोमान्हरितुल्यपराक्रमः ॥

भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहङ्कारेण पामरः । नैवेद्यञ्च हररेवसप्रष्टुर्भ्रीःस्वजातिभिः ॥

इत्युत्त्वा शङ्करांशश्च जगाम शङ्करालयम् ॥५५॥

शक्रो रम्भान्तिके पुष्पं संस्थाप्य गजमस्तके । शक्रं न्नष्टध्रियंदृष्ट्वासाजगामसुरालयम् ॥

पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाधमा ॥५८॥

देवराजं परित्यज्य गजराजो महावली । प्रविवेश महारण्यं तं निक्षिप्य स्वतेजसा ॥

तत्रैव करिणा प्राप्य मत्त सबुभुजेयलात् । सातद्रुचमूषवशगा योपिजाति सुधारिणी ।

तयोर्बभूवापत्याना निवहस्तत्र कानने ॥६०॥

हरिस्तन्मस्तव छित्त्वा युयोजतेनवालके । इत्येवकथितवत्सकिंभूय श्रोतुमिच्छसि ॥

गजास्ययोजनायाश्च कारण पापनाशनम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसवादे गणपतिखण्डे गजास्य

योजनहेतुकथन नाम विंशतितमोऽध्याय ।

एकविंशोऽध्यायः

शकलक्ष्मीप्राप्तिः ।

नारद उवाच ।

ते देवा ब्रह्मशापेन निश्रीका वेन वा प्रभो । यभृशुस्तद्रहस्यञ्च गोपनीय सुदुर्लभम् ॥

कथं वा प्रापुरेते ता कमला जगता प्रसूम् । किञ्चकार महेन्द्रश्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुमन्द्धी । भ्रष्टश्रीर्दैन्ययुक्तश्च स जगामामरावतीम् ॥

ता ददर्श निरानन्दो निरानन्दा पुरी मुने । दैन्यग्रस्ता कन्धुहीना वैरिवर्गे समाकुलाम् ॥

सर्वं ध्रुत्वा दूतमुखाज्जगाम मन्दिरे गुरो । तेन देवगणे सार्द्धजगामब्रह्मण समाम् ॥

गत्वा ननाम त शक्र सुरैः सार्द्धं तथा गुरु ।

तुपाय वेदविधिना स्तोत्रेण भक्तिसयुत । प्रवृत्तिं कथयामास चाकपतिस्त प्रजापतिम्

श्रुत्वा ब्रह्मा नम्रयवन्न प्रधक्तुमुपवन्नमे ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

मत्प्रपौत्रोऽसि देवेन्द्र शश्वद्राजन् ध्रिया ज्वलन् ।

लक्ष्मीसम शक्तीभर्ता परस्त्रीलोलुप सदा ॥ ७ ॥

गौतमस्यामिशापेन भगाङ्गः सुरसंसदि । पुनर्लज्जाविर्हानस्त्वं परर्क्षारतिलोलुपः ॥८॥
यःपरर्क्षीपुनिरतस्तस्य श्रीर्वाकुती यशः । स च निन्द्यः पापयुक्तः शश्वत् सर्वसभामनुच
नैवेद्यं श्रीहरैरेव दत्तं दुर्वाससा च ते । गजमूर्ध्नित्वया न्यस्तं रम्मया हतवेतसा ॥१०॥

क सा रम्भा सर्वमोग्या ऋधुना त्वं श्रिया हतः ।

पद्मा त्यक्त्वा यन्निमित्ताद्गता त्वत्तः क्षणेन सा ॥ ११ ॥

वेश्या सश्रीकमिच्छन्ती निःश्रीकं न च चञ्चला । नवंनवं प्रार्थयन्ती परिनिन्द्य पुणतनम्
यद्गतं तद्गतं घत्स निष्पन्नं न निवर्त्तते । भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्राप्तिहेतवे ॥१३
इत्युक्त्वा तं जगत्स्त्रुः स्तोत्रञ्च कवचं ददौ । नारायणस्य मन्त्रञ्च नारायणपरायणः ॥
स तैः सार्द्धञ्च गुरुणा जजाप मन्त्रमीप्सितम् । गृहीत्वा कवचं तेन तुष्टाव पुष्करेहरिम्
धर्ममेकं निराहारो भारते पुण्यदे शुभे । सिपेव कमलाकान्तं कमलाप्राप्तिहेतवे ॥ १६ ॥
आविर्भूय हरिस्तस्मै धाच्छितञ्च घरं ददौ । लक्ष्मीस्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रमैश्वर्यवर्द्धनम्
दत्त्वा जगाम वैकुण्ठमिन्द्रः क्षीरोदमेव च । गृहीत्वा कवचं स्तुत्वा प्राप पद्मालयां मुने
सुरेश्वरोऽरिं जित्वा स ललाभामरावतीम् । प्रत्येकञ्च सुराः सर्वे स्वालयंप्रापुरीप्सितम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शक्र-

लक्ष्मीप्राप्तिर्नामैकविंशतितमोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः

लक्ष्मीस्तोत्रं कवचञ्च ।

नारद उवाच ।

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ । महालक्ष्म्याञ्च लक्ष्मीप्रस्तने द्रुहितपोधन
नारायण उवाच । .

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः । आविर्भव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम् ॥

तमुवाच हृषीकेशो वर वृणु यथेप्सितम् । स च वद्रे वर लक्ष्मीशस्तस्मै ददौ मुदा ॥
वर दत्त्वा हृषीकेश प्रवक्तुमुपचक्रमे । हित सत्यञ्च सारञ्च परिणामसुखावहम् ॥ ४ ॥

श्रीमधुसूदन उवाच ।

गृहाण काच शक्र सर्पदु खविनाशनम् । परमैश्वर्यजनक सर्वशत्रुषिमर्दनम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मणे च पुरा दत्त ससारे च जलप्लुते । यद्धृत्वा जगता श्रेष्ठ सर्वैश्वर्ययुतो विधि
यभूतुर्मनव सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यत । सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधि ॥
पडक्तिश्छन्दश्चसा दैवो स्वय पद्मालया सुर । सिद्धैश्वर्यजपेभ्येव विनियोग प्रकीर्तित

यद्धृत्वा कवच लोक सर्वत्र विजयी भवेत् ॥८॥

मस्तरु पातु मे पद्मा कण्ठ पातु हरिप्रिया ।

नासिका पातु मे लक्ष्मी कमला पातु लौचनम् ॥९॥

पेशान् केशवकान्ता च कपाल कमलालया । जगत्प्रसूर्णण्डयुग्म स्वध सम्पत्प्रदा सदा
ओं श्री कमलवासिन्यैस्वाहा पृष्ठ सदाऽवतु । ओं श्री पद्मालयायै स्वाहा वक्ष सदाऽवतु

पातु श्रीर्मम कङ्काल बाहुयुग्मञ्च श्रीं नम ॥ ११ ॥

ओं हीं श्री लक्ष्म्यै नम पादौ पातु मे सन्ततञ्चिप्सु ।

ओं हीं श्रीं नम पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम् ॥ १२ ॥

ओं श्री महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्ग पातु मे सदा ।

ओं हीं श्रीं हुं महालक्ष्म्यै स्वाहा मा पातु सर्वत ॥ १३ ॥

इति ते कथित घत्स सर्वसम्पत्करपरम् । सर्वैश्वर्यप्रद नाम कवच परमाहुतम् ॥१४॥
गुरुभ्यर्च्य विधियत् कवच धारयेन्नु य । कण्ठेवा क्षिणे वाहौ स सर्वविजयीभवेत्
महालक्ष्मीर्गृह तस्य न जहाति कदाचन । तस्य छायेव सतत सा च जन्मनि जन्मनि
इद कवचमहात्वा भजेत्क्ष्मीं सुमन्धी । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्र सिद्धिदायक ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे लक्ष्मीकवच समाप्तम् ।

नारायण उवाच ।

दत्त्वा तस्मै च कवच मन्त्रञ्च षोडशाक्षरम् । सन्तुष्टश्च जगन्नाथो जगता हितकारणम्

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वाहा ।

ददौ तस्मै च रूपया इन्द्राय च महामुने ॥ १६ ॥

ध्यानञ्च सामवेदोक्त गोपनीयं सुदुर्लभम् । सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम्
श्वेतवर्णकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । बह्विशुद्धांशुकाद्यानां रत्नभूषणभूयिताम् ॥ २१ ॥
ईन्द्रास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारकाम् । सहस्रदलपद्मस्यां स्वस्याञ्च सुमनोहराम् ॥

शान्ताञ्च श्रीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम् ॥ २३ ॥

ध्यानेनानेनदेवेन्द्रध्यात्वालक्ष्मीं मनोहराम् । भक्त्यादास्यसि तस्यैचचोपचाराणिपोडश
स्तुत्वानेन स्तवनेनैव बक्ष्यमाणेन वासव । नत्वा वरंगृहीत्वा च लभिष्यसिचनिर्वृतिम्
स्तवनं शृणु देवेन्द्र महालक्ष्म्याः सुखप्रदम् । कथयामि सुगोप्यञ्च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्
नारायण उवाच ।

देवित्वांस्तोतुमिच्छामिनक्षमास्तोतुमीश्वराः । बुद्धेरगोचरांसूक्ष्मांतेजोरूपासनातनीम्
अन्यनिर्व्वर्त्तनीयाञ्च को वा निर्व्वक्तुमीश्वरः ॥ २७ ॥

स्वेच्छामयीनिराकारांभक्तानुग्रहविप्रहाम् । स्तीमिवाङ्मनसोःपारांकिवाऽहंजगदम्बिके
परां चतुर्णां वेदानां पारशीर्जं भवार्णवे । सर्वशल्याधिदेवीञ्च सर्वात्मानपि सन्पदाम् ॥
योगिनाञ्चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनान्तथा ।

वेदानाञ्च वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ॥ ३० ॥

यथा विना जगत्सर्वमवस्तुनिष्फलं ध्रुवम् । यथा स्तनान्धबालानांमात्रावस्तुत्वयासह
प्रसन्ना जगतां माता रक्षास्मान्तिकातरणम् । घयं त्वच्चरणान्मोजे प्रपन्नाः शरणं गताः
नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः । ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः ॥
हरिमक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः । सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥
कुपुत्राः कुत्रचित् सन्ति न कुत्रचित्कुन्मातरः । कुत्र माता पुत्रदोषे तं विहायचगच्छनि
हे मातर्दर्शनदेहि स्तनान्धान् बालकानिव । कृपां कुरु कृपासिन्धुप्रियेऽस्मान्भक्तवत्सले
इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाञ्च शुभावहम् । सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं सन्पदः पदम् ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् । महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तञ्च तत्रैवान्तरर्थायत । देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः साद्धं तदाज्ञया ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्मीस्तव-
कवचपूजाकथनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

महालक्ष्मीचरितम् ।

नारायण उवाच ।

इन्द्रश्च गुरणा साद्धं सुरैश्च हृष्टमानसः । जगाम शीघ्रं पद्मायै तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥
कवचञ्च गले बद्धुष्या सद्रत्नगुटिकान्वितम् । मनसा स्तवनं दिव्यं स्मारं स्मारं पुनः पुनः-
ते सर्वे भक्तिरक्ताश्च तुष्टुवुः कमलालयाम् । साधुनेत्रातिदीनाश्च भक्तिनम्रात्मकन्धराः
सा तेषां स्तवनं श्रुत्वा संघः साक्षाद् यभूव ह । सहस्रदलपद्मस्या शतचन्द्रसमप्रभा ॥
जगद्द्व्याप्त सुप्रभया जगन्मात्रा यया मुने । तानुवाच जगद्वात्री हितं सारं यथोचितम्
श्रीमहालक्ष्मीस्वाय ।

घत्सा नेच्छामि घो गोहान्तान्तुं नैधं क्षमाधुता । भ्रष्टानां ब्रह्मशापेन विभेमि ब्रह्मशापतः
प्राणा मे ब्राह्मणाः सर्वे शश्वत्पुत्राधिकप्रियाः । विप्रदत्तञ्च यत्किञ्चिदुपजीव्यंसदैवच
विप्रा ध्रुवन्तु मां तुष्टा यास्यामिचतदाज्ञया । न मे पूजां ध्रुधं कर्त्तुं क्षमास्तेचतपस्विनः
गुरुभिर्ब्राह्मणैर्देवैर्भिभ्रुभिर्वैष्णवैस्तथा । यद्यभाग्यं भवेद् दैवात्ते शप्ताः सन्ति सन्ततम्
नारायणश्च भगवान् विभेति ब्रह्मशापतः । सर्वजीवश्च भगवान् सर्वेशश्च सनातनः ॥
एतस्मिन्नन्तरं ब्रह्मन् ब्राह्मणाहृष्टमानसाः । आजग्मुःसस्मिताः सर्वे ज्वलन्तोब्रह्मतेजसा
अङ्गिराश्च प्रचेताश्च क्रतुश्च भृगुरेव च । पुलहश्च पुलस्त्यश्च मरीचिरत्रिरेव च ॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान् साक्षान्नारायणात्मकः ।
फणिलक्ष्मासुरिश्चैव षोडुःपञ्चशिरस्तथा । दुर्घासाः कश्यपोऽगस्त्योगौतमःकण्वपवच

और्वं कान्यायनश्चैवकणाद् पाणिनिस्तथा । मार्कण्डेयोलोमशश्चवशिष्टो भगवान्स्वयम्
 ब्राह्मणा विविधैर्द्रव्यै पूनयामासुरीश्वरीम् । देवाश्चारण्यनैवेद्यै परिहारेण भक्तित् ॥
 स्तुत्वा मुनीन्द्रास्ता भक्त्या चक्रुराराधन मुदा । आगच्छ देवभवन मर्त्यञ्जगदम्बिके
 तेषा तद्वचन श्रुत्वा तानुवाच जगत्प्रसू । परितुष्टा गामुकीच निर्भया ब्राह्मणाज्ञया ॥

श्रीमहालक्ष्मीस्त्वाच ।

गृहान् यास्यामि देवाना युष्माकमाज्ञया द्विजा । येषा गेह नगच्छामिश्रणुन्वभारतेषु च
 स्थिरा पुण्यवता गेहे सुनीतिवेदिनामहम् । गृहस्थाणा नृपाणा वा पुत्रवत्पालयामि तान्
 य य स्तो गुरुर्देवो मातातातश्चान्धवा । अतिथिः पितृलोकश्च न यामितस्य मन्दिरम्
 मिथ्यावादीच य शश्वन्नास्तीतिवाचक सदा । सन्वहीनश्च दुःशीलेन गेह तस्य याम्यहम्
 सन्वहीनं स्थाप्यहारीमिथ्यासाक्ष्यप्रदायक । विश्वासघ्न ऋतुघोरो न यामितस्य मन्दिरम्
 चिन्ताप्रस्तो भयप्रस्त शत्रुघ्नस्तोऽतिपातकी ।

ऋणप्रस्तोऽतिरूपणो न गेह यामि पापिनाम् ॥ २० ॥

दीक्षाहीनश्च शोकात्तो मन्दर्था स्त्रीनित सदा । न यामि चकदा गेहपञ्चल्यापतिपुत्रयो
 यो दुर्बाक कलहाविष्कलि शब्दु यदालये । स्त्रीप्रधाना गृहे यस्य न यामितस्य मन्दिरम्
 यत्र नास्ति हरे पूजा तदीयगुणकीर्तनम् । नोत्सुकस्तन्प्रशसायान यामितस्य मन्दिरम्
 कन्यान्वेदविक्रता नरघाती च हिंसक । नरकागारसदृश न यामि तस्य मन्दिरम् ॥
 मातर पितरभाय्या गुरुपत्नीगुरु सुतम् । अनाथाभगिनीं कन्यामनन्याधयवान्धवान् ॥
 कापर्ण्याद् यो न पुष्पातिसञ्चयकुर्ये सदा । तद्नेहा नरकागारात् यामितान्मुनीश्वरा
 दशन घसन यस्य समल रश्ममस्तकम् । विजृतां प्रासहासीं न यामि तस्य मन्दिरम्
 मूत्र पुरीषमुन्सृज्य यस्तन्पश्यति मन्दर्था । यः शेते क्षिण्वपादेन न यामि तस्य मन्दिरम्
 अधीतपादशायी यो नद्रः शेतेऽतिनिद्रित ।

सन्ध्याशायी दिवाशायी न यामि तस्य मन्दिरम् ॥ २६ ॥

मूर्धाध्नतैलपुरोदत्त्वा योऽन्यद्द्रुमुपसृशेत् । ददाति पश्चाद्गात्रे घान यामितस्य मन्दिरम्
 दत्त्वा तैल मूर्धाध्नगात्रे विष्मृत्रयः समुत्सृजेत् । प्रजमेदाहरेत् पुष्पनयामितस्य मन्दिरम्

तृणं छिनत्ति नखौर्नखरैर्विलिखेन्महीम् । गात्रे पादे मर्लं यस्य न यामि तस्य मन्दिरम्
 स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं सुरस्य च । यो हरेर्ज्ञानशीलश्च न यामि तस्य मन्दिरम्
 यत्कर्म दक्षिणाहानं कुरुते मूढधी शठ । स पापी पुण्यहीनश्च न यामि तस्य मन्दिरम्
 मन्त्रविद्योपजीवी च ग्रामयाजी चिकित्सकः । सूपरुद्देवलश्चैव न यामि तस्य मन्दिरम्
 विवाहंधर्मकार्यंवा यो निहन्ति चकोपतः । दिवामैथुनकारी यो न यामितस्य मन्दिरम्
 इत्युक्त्वा च महालक्ष्मीरन्नर्दानं चकार ह । ददौ दृष्टिञ्च देवानां गृहे मर्त्यं च नारद ॥
 ता प्रणम्य सुराः सर्वे मुनयश्च मुदान्विताः । प्रजग्मुः स्वालयंशीघ्रं शत्रुत्यक्तंसुहृद्युतम्
 नेदुर्दुन्दुभय स्वर्गं बभूवुः पुण्यवृष्टयः । प्रापुर्देवाः स्वराज्यञ्च निश्चलां कमलां मुने ॥
 इत्येव कथितं धत्स लक्ष्मीचरितमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं पुनः श्रोतुमिच्छसि
 इति श्रोत्रह्रवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्मीचरितं
 नाम त्रयोविंशतिमोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

गणेशस्य एकदन्तत्वे विवरणम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग हरेरंशसमुद्भव । सर्वं धृतं त्वत् प्रसादाद्गणेशचरितं शुभम् ॥ १ ॥
 दन्तद्वययुतं षक्त्रं गजराजस्य धालके । विष्णुना योजितं ब्रह्मन्नेकदन्तः कथं शिशुः ॥
 कुतो गतोऽस्य दन्तोऽग्न्यस्तद्भवान्चकुर्महति । सर्वेश्वरस्त्वंसर्वज्ञःरूपावान्भक्तयत्सलः
 सूत उवाच ।

नारदस्य षक्त्रः श्रुत्वा स्मेरारणसरोरुहः । एकदन्तस्य कथनं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ४ ॥

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ ५ ॥

एकदा कार्तवीर्यश्च जगाम मृगयां मुने । मृगान्निहत्य बहुलान् परिश्रान्तो बभूव सः
 निशामुखे दिनेऽतीते तत्र तस्थौ घने नृप । जमदग्न्याश्रमाभ्यासे उपोष्य सैन्यसंयुतः
 प्रातः सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलंकृतः । दत्तात्रेयेन दत्तञ्च जजाप भक्तितो मनुम् ॥
 मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठीष्ठतालुकम् । प्रीत्या सम्भाषयामास पप्रच्छ कुशलं मुनिः
 ननाम सम्भ्रमाद्राजा मुनि सूर्य्यसमप्रभम् । सच तस्मै ददौप्रीत्या प्रणताय शुभाशिसम्
 वृत्तान्तं कथयामास राजा चानशनादिकम् । सम्भ्रमेणैव मुनिना त्रस्तं राजानिमन्त्रितः
 विश्नाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा । लक्ष्मीसमां कामधेनुं कथयामास मातरम्
 उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते । जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मयाकोनृपोमुने
 राजभोजनयोग्याहं यद् यद् द्रव्यं प्रयाचसे । सर्वतुभ्य प्रदास्यामि त्रिपुलोकेषुदुर्लभम्
 सौवर्णानि राजतानि पात्राणि विविधानि च ।

भोजनाहार्णवसंख्यानि पाकपात्राणि यानि च ॥ १५ ॥

पात्राणि स्वादुपूर्णानि प्रददौ मुनये च सा । नानाविधानि स्वादूनि परिपक्वफलानि च
 पनसाप्रनारिकेलश्रीफलानि च नारद । राशीभूतान्यसंख्यानि स्वादूनि लड्डुकानि च
 यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकानां बहूनि च । पकान्तानां पर्वतञ्च परमानस्य कन्दरम् ॥ १८
 दुग्धानाञ्च घृतानाञ्च नदीं दध्नां ददौ मुदा । शर्कराणां तथा राशिं मोदकानाञ्चपर्वतम्
 पृथुकानां सुशालीनां पर्वतं प्रददौ मुदा ॥ १६ ॥

ताम्बूलं प्रददौ पूर्णं कर्पूरादिसुवासितम् । नृपयोग्यं कौतुकञ्च सुन्दरं बल्लभूपणम् ॥ २०
 मुनि सम्भृतसम्भारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम् । भोजयामास राजानं ससैन्यमवलीलया
 यद् यत् सुदुर्लभं घस्तु परिपूर्णं नृपेश्वरः । जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्रमुवाच ह ॥

राजोवाच ।

द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च । ममासाध्यानि सहसा कागतान्यवलोक्य
 नृपाक्षया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहे । राजानं कथयामास वृत्तान्तं महदद्भुतम् ॥ २४

सचिव उवाच ।

दृष्टं सर्वं महाराज नियोध मुनिमन्दिरे । वह्निकुण्डयज्ञकाष्ठकुशापुष्पफलान्वितम् ॥ २५ ॥

वृष्णधर्मस्रुवस्रुग्भि शिष्यसङ्घैश्च सङ्कलम् । तेजसाधारशस्यादि सर्वसम्पद्विवर्जितम्
वृक्षचर्मपरोधाना दृष्टा सर्वे जटाधरा ॥ २७ ॥

हैवदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा । चार्वङ्गी चन्द्रवर्णाभा रत्नपङ्कजलोचना ॥२८
ज्वलन्ता तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा । सर्वसम्पद्गुणाधारा साक्षादिव हरिप्रिया ॥
सर्वधाराधितो राजा दुर्बुद्धि सचिवाज्ञया । मुनि ययाचे ता धेनु निबद्ध कालपाशत
किवापुण्यञ्जकापुद्धिर्नियेक सर्वतोवली । पुण्यवान् बुद्धिमान् देवाद्राजेन्द्रोयाचते द्विजम्
पुण्यात्प्रजायते कर्म पुण्यरूपञ्च भारते । पापात्प्रजायते कर्म पापरूप भयावहम् ॥३२॥

पुण्यान् कृत्वा स्वर्गभोग जन्म पुण्यस्थले नृणाम् ।

पापान् भुक्त्या च नरकं कुत्सित जन्म जीविनाम् ॥ ३३ ॥

जाविना निष्कृतिर्नास्ति स्थिते कर्मणिनारद । तेन कुर्वन्ति सन्तश्च सन्ततकर्मण क्षयम्
सा विद्या तत्तपो ज्ञान स गुरु सचबान्धव । सामाता सपित्रा पुत्रस्तन्भ्रूवकारयेत्तुय
जीविना दारुणो रोग कर्मभोग शुभाशुभ । भक्तयेस्तनिहन्ति वृष्णभक्तिरसायनात्
माया ददाति ता भक्ति प्रतिजन्मनि सेविता । परितुष्टा जगद्भ्रात्रो भक्ताय बुद्धिदायिनी
परा परमभक्त्या माया यस्मै ददाति च । माया दत्त्वा मोहयितु न विधेय कदाचन ॥
मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नत । उवाच विनय भक्त्या पुत्राञ्जलियुतो मुदा
राजोवाच ।

मिक्षा देहि कल्पतरु कामधेनुञ्च कामदाम् । मह्य भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकातर ॥
सुम्पद्विधाना दातृणामदेय नास्ति भारते । दधीचिर्देवताभ्यश्च ददौ स्वासि पुगाधुतम्
भूमङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन । समूह कामधेनूना स्रष्टु शक्तोऽसि भारते ॥४२
मुनिरवाच ।

अहो व्यतिक्रम राजन् ब्रवीषि शठ वञ्चक । दान दास्यामि विप्रोऽह क्षत्रियायनृपाधम
वृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना । कामधेनुरिय यत्ने न देया प्राणत प्रिया ॥
प्रदाणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप । मह्य दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम ॥
गोलभजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये । लीलामात्रात् कथमह कपिला स्रष्टुर्माश्वर ॥

नाह रै हालिकोमूढत्वयानोत्थापितोबुध । क्षणेनभस्मसात् कर्तुं क्षमोऽहमतिथिचिन्ता
 गृह गच्छ गृह गच्छ मन्कोप नैव घर्क्ष्य । पुत्रदारादिकपश्य दैववाधित पामर ॥४८॥
 मुनेस्तद्वचन श्रुत्वा चुकोप स नराधिप । नत्वा मुनिं सैन्यग्रन्थ प्रययौ विधिवाधित
 गत्वा सैन्यसकाश स कोपप्रस्फुरिताधर । किङ्करान् प्रेषयामास धेनुमानयितु बलात्
 कपिलासन्निधिं गत्वा हरोद् मुनिपुङ्गव । कथयामास वृत्तान्त शोभेन हतचेतन ॥५१
 र्दन्त ब्राह्मण दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह । साक्षाह्लक्ष्मा स्वरूपा सा भक्तानुग्रहकातरा
 सुरभिरवाच ।

इन्द्रोवाहालिकोवापिस्ववस्तुद्रातुमीश्वर । शास्तापालयिताश्रतास्ववस्तुताञ्जसन्ततम्
 स्वेच्छया चेन्नृपेन्द्राय माददासि तपोधन । तेनसार्द्धं गमिष्यामि स्वेच्छयाचतवाज्ञया
 अथवा न ददासि त्व न गमिष्यामि ते गृहात् । मत्तोदत्तेन सैन्येन दूरीभूत नृप कुर ॥
 कथ रोद्रिपि सर्वज्ञ मायामोहितचेतन । सयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो नचात्मन
 त्ववा कोमे तवाह का सम्बन्ध कालयोजित । यावदेव हि सम्बन्धोममत्वतावदेवहि
 मनो जानाति यद्द्रव्यमात्मनश्चापिकेवलम् । दु खञ्चतस्यविच्छेदात्यावत्स्वत्वञ्चतत्रवै
 इत्युचवाकामधेनुश्चसुपावविविधानि च । शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानिस्त्र्यंतुल्यप्रभाणिच
 निर्गता कपिलावक्त्रात्रिकोटिखड्गधारिण । विनिःसृतानासिकाया शूलिन पञ्चकोटयः
 विनिःसृतालोचनाभ्याशतकोटिधनुर्दरा । कपालान्निःसृतावीरास्त्रिकोटिदण्डधारिण
 वक्ष स्थलान्निःसृताश्चत्रिकोटिशक्तिधारिण । शतकोटिगदाहस्ता पृष्टदेशात्विनिर्गता
 विनिःसृता पादतलाद्वाद्यभाण्डा सहस्रश । जङ्घादेशान्निःसृताश्च त्रिकोटिराजपुत्रका.
 विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटि म्लेच्छजातय । दत्त्वा सैन्यानि कपिलामुनयेनिर्भय ददौ

युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्व न यासीत्युवाच ह ॥ ६४ ॥

मुनिः सम्भृतसम्भारैर्हर्षयुक्तो बभूव ह । नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृप सर्वमुवाच ह ॥ ६५ ॥
 कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् । तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्त कातरमानस

दूतद्वारा च सैन्यानि चाजहार स्वदेशत ॥ ६६ ॥

इति ध्रान्तह्रवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे एकदन्त
 प्रश्नप्रसङ्गे जमदग्निकार्तवीर्यार्जुनयुद्धे चतुर्विंशोऽध्याय ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

वनदग्नि-कार्तवीर्याङ्गुनपुङ्गवम् ।

नासादस्य उवाच ।

हरि स्मरत् कार्तवीर्याङ्गो हृदयेन विदूषता । द्रुतं प्रस्थापयानास कुपितो मुनिसन्निधिम् ॥

युद्धं व्रैहो मुनिभ्रेष्टु किं वा धेनुञ्च बाञ्छितम् ।

मयं मृत्यानातिथये सुविचार्य यथोचितम् ॥२॥

दृष्टस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गव । हितं सत्यं नीतितारं सर्वं द्रुतुवाच ह ॥३॥

मुनिस्वाच ।

द्रुष्टो नृपो निराहारः सन्नानीतो मया गृहम् ।

विविधञ्च यथा शक्या भोजितञ्च यथोचितम् ॥४॥

कपिलां यावन्ने राजा मनः प्राणाधिका दलात् ।

तां शत्रुनक्षत्रो द्रुत युद्धं दास्यामि निश्चितम् ॥५॥

मुनेन्दुवचनं श्रुत्वा द्रुतः सर्वमुवाच ह । नृपेन्द्रञ्च सभामन्त्रे सन्नाहसंयुक्तं भिया ॥६॥

मुनिश्च कपिलामाह सान्प्रतकिङ्करोन्महम् । कर्णधारविनातोकातयासैन्यं नयाविना ॥

कपिला वदद्दीर्घतन्मैशख्यजिविविधानिव । युद्धशास्त्रोपदेशञ्च सन्धानमोपयोगिकम् ॥

जयं भवतु ते विप्र युद्धे जैष्यसि निश्चितम् । तवमृत्युनभविताचाव्यर्थास्त्राविना ध्रुवम् ॥

नृपेण साहसं ते युद्धमयुक्तं ब्राह्मणस्य च । दत्तात्रेयस्य शिष्येणैवाव्यर्थाशक्तिधारिणा ॥

इत्युक्त्वा कपिला ब्रह्मन् विरामेन मनस्विनी ॥७॥

मुनिर्भनस्यो सैन्यञ्च सज्जानूनञ्चकार ह । गृहीत्वा सर्वसैन्यञ्च प्रजगामरणस्थलम् ॥८॥

राज्ञा जगाम युद्धाय ननाम मुनिपुङ्गवम् । उभयोः सैन्ययोर्पुङ्गं वनूच बहु दुष्करम् ॥

राज्ञसैन्यं जितं सर्वं कपिलासैनया दलात् । विचित्रञ्च रथं रात्रौ वनञ्च लालया रणे ॥

धनुश्चिच्छेद् सजाहं सा सेना कापिर्णी मुना ।

नृपेन्द्रः कापिलेयानि सैन्यानि जेतुमक्षमः ॥१४॥

सैन्यानि तंशस्त्रवृष्ट्यान्यस्त्रशस्त्रञ्चकारह । शरवृष्ट्याशस्त्रवृष्ट्यापजामूर्च्छामवापह ॥

किञ्चित् सैन्यं मृतं राक्षःकिञ्चिदेवपलायितम् । मुनीन्द्रोमूर्च्छितं दृष्ट्वानृपेन्द्रमतिर्धिमुने ॥

कृपानिधिञ्च कृपया तत्सैन्यं सञ्चहार च । गत्वासैन्यं विलीनञ्चकपिलायाञ्च कृत्रिमम् ॥

नृपाय मुनिना शीघ्रं दत्त्वा चरणरेणवः । आशीर्वादं प्रदत्तञ्च जयोऽस्त्विदिकृपालुना ॥

कमण्डलुजलं दत्त्वा कारयामास चेतनाम् ॥१८॥

स राजा चेतनां प्रात्य समुत्थाय रणाङ्गिरे । मूर्ध्नातनामभक्त्याचमुनिश्रेष्ठं पुटाञ्जलिः ॥

मुनिः शुमाशिरं दत्त्वा राजानमालिलिङ्गं च ।

पुनस्तं क्षापयित्वा च भोजयामास यत्नतः ॥२०॥

नावनीतञ्च हृदयं ब्राह्मणानाञ्च सन्ततम् । अन्येषां धुरधाराभमसाध्यं दारुणं सदा ॥

उवाच तं मुनिश्रेष्ठो गृहं गच्छ नृपाधिप ।

राजोवाच ।

रणं देहि महाबाहो धेनुं किंवा मयेप्सिताम् ॥२२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे नृपमुनियुद्ध-

कथनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

पुनः जमदग्निकार्तवीर्यार्जुन युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं स्मरन् मुनिश्रेष्ठो वाक्यं श्रुत्वा च भूभृतः । हितं सत्यं नीतिसांप्रवक्तुमुपब्रजमे ॥

मुनिरुवाच ।

गृहं गच्छ महामाग रक्ष धर्मसनातनम् । सर्वसम्पत्स्वियशब्दस्वितेधर्मे मुनिश्चितम् ॥

त्वाञ्च दृष्ट्वा निराहारं समानीय गृहं नृप । तव पूजामकरुणं यथाशक्त्या विधानतः ॥२॥

साम्प्रतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा पादरेणुं शुभाशिरम् । अर्द्धं चेतनां कृत्वा घक्तुमेवोचिनं न च ॥

नृपस्तद्वचनं १७ । नम्य मुनिपुङ्गवम् । रथमन्यमारुरोह युद्धं देहीत्युवाच ह ॥ ५ ॥
 मुनिः कृत्वा च सत्तहं तं योद्धुमुपचक्रमे । राजा तं युयुधे तत्र कोपेनाहतचेतनः ॥६॥
 कपिलादत्तजात्रेण न्यस्तशस्त्रं चकार तम् । कपिलादत्तपाशक्त्यापुनर्मूर्च्छां चकार च ॥
 पुनश्च चेतना प्राप्य राजा राजीबलोचनः । मुनिना युयुधे तत्र कोपेन पुनरेव च ॥८॥
 वरिष्ठं योजयामास समरे मुनिपुङ्गवः । मुनिर्निर्वापयामास घातुणेनावलीलया ॥ ९ ॥
 नपेन्द्रो वारणाखञ्च चिक्षेप समरेमुनी । वायव्यास्त्रेणसमुनिःशमयायामास लीलया ॥
 वायव्यास्त्रं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप समरे तदा । गान्धर्वेण मुनिश्रेष्ठःशमयायामासतत्क्षणम् ॥११॥
 नागाखञ्च नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप रणमूर्द्धनि । गारुडेन मुनिश्रेष्ठो जघान तत्क्षणं मुदा ॥१२॥
 माहेश्वरं महाखञ्च शतमूर्धसमप्रभम् । चिक्षेप नृपतिश्रेष्ठो द्योतयन्तं दिशोदश ॥१३॥
 वैष्णवारुत्रेण दिव्येन त्रिलोकव्यापकेन च । मुनिर्निर्वापयामास बहुयत्नेन नारद ॥१४॥
 मुनिर्नारायणाखञ्च चिक्षेप मन्त्रपूर्यकम् । शस्त्रं दृष्ट्वा महाराजो ननाम शरणं ययौ ॥
 ऊर्ध्वञ्च भ्रमण कृत्वा क्षणं दीप्त्वा दिशोदश । प्रलयाग्निसमन्तरं स्वयमन्तरधीयत ॥
 जृम्भणास्त्रञ्च स मुनिश्चिक्षेप रणमूर्द्धनि । निद्रां प्राप तेन राजा सुष्वाप च मृतोयथा
 दृष्ट्वा नृपं निद्रितञ्च अर्द्धचन्द्रेण तत्क्षणम् । विच्छेद सारथिं यानं धनुर्बाणंमुनिस्तदा ॥
 मुकुटञ्च क्षुरप्रेण छत्रं सन्नाहमेव च । अस्त्रं तूष्णं घाजिगणं विविधेन च भूभृतः ॥१६॥
 मुनिस्तत्सचिवान् सर्वान् नागास्त्रेणावलीलया । निबध्यस्थापयामासप्रहस्यसमरस्थले ॥
 मुनिस्तंबोधयामाससुमन्त्रेणावलीलया । निबद्धान्सचिवान्सर्वान्दर्शयामासभूमिपम् ॥
 दर्शयित्वा नृपं ताश्च मोक्षयामास तत्क्षणम् । नृपेन्द्रमाशिरं कृत्वागृहंगच्छेत्युवाचह ॥
 राजा कौपात् समुत्थाय शूलमुद्यम्ययत्नतः । चिक्षेपतंमुनिश्रेष्ठंमुनिःशक्त्याजघान तम् ॥
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य रणस्थलम् । सुप्रीतिं कारयामास सुनीत्याचपरस्परम् ॥
 मुनिर्ननाम ब्रह्माणं सन्तुष्टञ्च रणस्थले । राजा नत्या विधिं विप्रं स्वालयंप्रययौ तदा ॥
 मुनिर्पयौ च स्वगृहं स्वगृहं कमलोद्भवः । इत्येवं कथितं किञ्चिदपरं कथयामिते ॥२६॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे जमदग्नि-
 कार्तवीर्यार्जुन युद्धविरामकथनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

सप्तविंशतितमोऽध्यायः

समैन्यस्य राज्ञः मुनितपोवने पुनर्गमनम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः । पुनर्जगामारण्यञ्जमदन्याश्रमंतदा ॥
रथानाञ्च चतुर्लक्षं रथीनां दशलक्षकम् । अश्वेन्द्राणांगजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम् ॥
राजेन्द्राणां सहस्रञ्च महाबलपराममम् । महासमृद्धियुक्तश्च त्रैलोक्यं जेतुमीश्वरः ॥३॥
समृद्ध्या वेष्टयामास जमदन्याश्रममुदा । रथस्थोवर्मयुक्तश्चकार्तवीर्यार्जुन स्वयम् ॥
सैन्यशार्देवाद्यशार्देर्महाकोलाहलैर्मुने । जमदन्याश्रमस्थाश्च मूर्च्छामापुर्मयेत च ॥५॥
पुरीं प्रविश्य बलवान् गृहीत्वा कपिलां शुभाम् । गृहं गन्तुं मनश्चक्रेदुर्बुद्धिरसदाश्रयः ॥
समुत्तस्थौ मुनिश्रेष्ठो गृहीत्वा सशरं धनुः । एकाकी मुक्तगात्रश्चभ्रेनुंनन्त्वाहरिस्मरन् ॥

आश्रमस्थान् जनान् सर्पान् समाश्रवास्य च यत्नतः ।

आजगाम रणस्थानं नि शङ्को नृपतेः पुरः ॥८॥

चकार शरजालञ्च स मुनिर्मन्त्रपूर्वकम् । चच्छाड स्वाश्रमं तैश्च मानरं वर्मणा यथा ॥
अपरं शरजालञ्च चकार मुनिपुङ्गवः । तैरेव धारयामास सर्वसैन्यं यथाममम् ॥ १० ॥
मुनिना शरजालेन सर्वसैन्यं समावृतम् । तानिसर्पाणिगुप्तानिपत्राणिपञ्जरे यथा ॥११॥
राजा दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठमवाह्य रथान् पुरः । सार्द्धं नृपेन्द्रैर्मत्तया च प्रणनाम पुटाञ्जलिः ॥
नन्वा हरोह यानं स मुनेः प्राप्य शुभाशिपम् । आररोह नृपेन्द्रश्चस्वयानं हृष्टमानसः ॥
नृपैः सार्द्धं नृपश्रेष्ठश्चिषेप मुनिपुङ्गवम् । अस्त्रं शस्त्रं गदा शक्तिं जघानलीलयामुनिः ॥
मुनिश्चिषेप दिव्यास्त्रं विच्छेद् लीलया नृपः । शूलश्चिषेपनृपतिर्जघान तत्तदामुनिः ॥

अपरं शरजालञ्च चिषेप मुनिपुङ्गवः ॥१५॥

शरौघैर्दुर्निवार्यैश्च स्पण्डगण्डं नृपा ययुः । निरद्धाशरजालेननचशक्ताःपलायितुम् ॥
जृम्भणास्त्रेण मुनिना ते चसर्वैर्विजृम्भिताः । हस्त्यश्वरथपादातसहितं सर्वसैन्यकम् ॥

राजं निद्रितं दृष्ट्वा न जघान मुनीश्वरः ।
 दृष्ट्वा कपिलां दृष्टो रुदन्ती शोकमूर्च्छिताम् ।
 बोधयित्वा पुरः कृत्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यतः ॥१८॥

एतस्मिन्तरं राजा चेतनां प्राप्य नारद । निवारयामास मुनिं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥
 जगामकपिलात्रस्तास्वस्थानञ्चरणस्थलात् । मुनिश्चतस्थानिःशङ्कोगृहीत्वासशरंधनुः ॥
 ब्रह्मास्त्रञ्च नृपश्रेष्ठ प्रविशेषे मुनी तदा । ब्रह्मास्त्रेण मुनीन्द्रस्य सद्यो निर्वाणतांगतम् ॥
 दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशरं धनुः । रथञ्च सारथिञ्चैव विच्छेदधर्म दुर्बहम् ॥
 अथ राजा महाबुद्धो ददर्श स्वसमीपतः । दत्तेन दत्तां शक्तिं तामेकपुरपघातिनीम् ॥
 जग्राह नत्वा दत्तं तं प्रणम्य शक्तिमुत्थगात् । घूर्णयामास तत्रैव शतसूर्यसमप्रभाम् ॥
 यत्तेजः सर्वदेवानां तेजो नारायणस्य च । शम्भोश्च ब्रह्मणश्चैव मायायाश्चैव नारद ॥
 तत्रैवावाहयामास स योगी मन्त्रपूर्वकम् । तेजसा द्योतयामास गगनञ्चदिशोदश ॥२६॥
 दृष्ट्वा क्षिपन्ती ता देवा हाहाकारंचकारह । आकाशस्थाश्चसमरंपश्यन्तोदुःखिता इवा ॥
 विक्षेपतांघूर्णयित्वाकार्तवीर्याजुंनःस्वयम् । सद्यःपपातसाशक्तिर्न्वलन्तीमुनिवक्षसि ॥
 विदाप्योरो मुनेः शक्तिं जंगाम हरिसन्धिधिम् । दत्ताय हरिणा दत्तादत्तेनैव नृपायसा ॥
 मूर्च्छां सम्प्राप्य स मुनिःप्राणां स्तत्याज तत्क्षणम् ।

तेजोऽम्बरे भ्रमित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥३०॥

युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद् कपिला मुहुः । हे तात तातेत्युच्चार्यगोलोकंसा जगाम ह ॥
 सर्वं सा कथयामासगोलोकेकृष्णमीश्वरम् । रत्नसिंहासनस्थं गोपैर्गोपीभिरावृतम् ॥
 कृष्णेन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा । सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन् भृगुणा जमदग्नये ॥
 नत्वा च कामधेनूतां समूर्ह सा जगाम ह । तद्भ्रुविन्दुना मर्त्ये रत्नसङ्घो बभूव ह ॥
 अथ राजा तं निहत्य बोधयित्वा स्वसैन्यकम् ।

प्रायश्चित्तं धितिर्यत्यं जगाम स्वालयं मुदा ॥३५॥

प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रेणुकासती । मुनिवक्षसिसंस्थाप्यक्षणंमूर्च्छामवाप सा ॥
 तदा सा चेतनां प्राप्य न रुरोद् पतिवता । पहि घत्स भृगोराम राम रामेत्युवाच ह ॥

सतविशतितमोऽध्यायः] * परशुरामस्य मातृसमीपे क्षत्रियवधाङ्गीकारश्च * ४५३

आजगाम भृगुस्तूर्ण क्षणेन पुष्करादहो । ननाम मातरं भक्त्या मनोयायीचयोगवित् ॥

दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्त्तां जननीं सतीम् ।

आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रथान्तीं कपिलां शुचा ॥३६॥

विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च । चिताञ्जकार योगीन्द्रश्चन्द्रनैराज्यसंयुताम् ॥

रैणुका राम मादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि । चुचुम्ब गण्डेशिरसि ररोदोच्चैर्भृशंमुहुः ॥

राम राम महाबाहो क्व यामि त्वां विहाय च । वत्सवत्सेतिदृत्वैवविललापभृशंमुहुः ॥

मत्प्राणाधिक हे वत्स मदीयं वचनं शृणु । पित्रोःशेषक्रियां दृत्वापुत्र युद्धे नयास्यसि

गृहे तिष्ठ सुखं वत्स तपस्यां कुरु शाश्वतीम् । समरं नैव सुखदं दारुणैः क्षत्रियैःसह ॥

मातुर्वचनमभ्रुत्वा प्रतिज्रां तां चकार ह । त्रिःसतदृत्वोनिर्भूपांकरिष्यामिध्रुवंमहीम् ॥

क्वात्तवीर्य्यं हनिष्यामि लालसा क्षत्रियाधमम् । पितृंश्चतर्पयिष्यामिक्षत्रियक्षतजेन च ॥

इत्युदीर्य्यं पुरो मातुर्विललाप मुहुर्मुहुः । हितं तथ्यं नीतिसारं बोधयामास मातरम् ॥

राम उवाच ।

पितुः शासनं हन्तारं पितुर्वंधविधायकम् । यो न हन्ति महामूढोरोरवंसत्रजेद्भुघम् ॥

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनतापहः । क्षेत्रदारापहारी च पितुयन्धुविर्हिसकः ॥३६॥

सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुवाचकः । एकादशैने पापिष्ठा वधार्हा वेदसम्मताः ॥

द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति । वपनं ताडनञ्चैववधमाहुर्मर्मीपिणः ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र आजगाम भृगुः स्वयम् । अतिरस्तो मनस्वी च हृदयेनविदूयता ॥

दृष्ट्वा तं रैणुका रामो विनयञ्च चकार ह । सतावुवाच वेदोक्तं परलोकहिताय च ॥५३

भृगुस्त्वाच ।

मदंश जातो ज्ञानी त्वं कथं विलपसेसुत । जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारे च वराचरम् ॥

सत्यसारं सत्यवीजं कृष्णं चिन्तय पुत्रक । यद्गतं तद्गतं वत्स गतं मा पुनरागतम् ॥५५

यद्भवेत्तद्भवत्येव भविता यद्द्विष्यति । सत्यं नैपेकिकं कर्म निपेकः केन धार्य्यते ॥५६॥

भूतं भव्यं भविष्यञ्च यत् कृष्णेन निरूपितम् । निरूपितं यत्तत्कर्मकेनवत्सनिर्वाय्यते ॥

मायार्वाजं माधिनाञ्च शरीरं पाञ्चमौतिकम् । सङ्केतपूर्वकं नाम प्रातःस्वप्नसमं सुता ॥५८

भुधा निद्रा दया शान्ति क्षमा कान्त्यादय स्तथा ।

यान्ति प्राणो मनो ज्ञानं प्रयाते परमात्मनि ॥५६॥

बुद्धिश्च शक्तय सर्वा राजेन्द्रमिव किङ्कराः । सर्वे तमनुगच्छन्तितंरुष्णंभज यत्नतः ॥
केवा केवाञ्च पितरः केवा केवा सुताः सुत । कर्मोर्मिप्रेरिताःसर्वेभवाब्धौदुस्तरै परम् ॥
ज्ञानिनो मा र्दन्त्येव मा रोदीः पुत्र साम्प्रतम् । रोदनाश्रुप्रपतनान्मृतानानर्कधुवम् ॥
संकेताभिधमुच्चार्य्य यद् र्दन्तिचवान्धवाः । शतवयैरुदित्वातंनप्राप्नुवन्तिनिश्चितम् ॥

पार्थिवाशञ्च पृथिवी गृह्णाति च त्वचादिकम् ॥६३॥

तोयांशश्च तथा तोयं शून्यांशं गगनं तथा । धाव्यंशञ्चतथा घायुस्तेजस्तेजांशकं तथा ॥
सर्वे विलीनाःसर्वेषुकोवाऽऽयास्यतिरोदनात् । नामध्रुतिपश कर्मकथामात्रावशेषिताः ॥
वेदोक्तञ्चैव यन् कर्म कुरु तत् पारलौकिकम् । सच बन्धुःसपुत्रश्चपरलोकहिताय यः॥
भृगोस्तद्वचनं श्रुत्वा शोक तत्याज तदक्षणम् । रेणुका च महासाध्वी तं वसुमुपचक्रमे

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे परशुरामंप्रति

भृगोःप्रबोधवचनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

भृगु रेणुका संवादः ।

रेणुकोवाच ।

ब्रह्मन्नुगमिष्यामि प्राणनाथस्य साम्प्रतम् । ऋतोश्चतुर्थदिवसे मृतोऽय मद्य मानदः ॥
कर्त्तव्या का व्यवस्थात्र घद वेदविदांबर । त्वमागतो मे सहसापुण्येन कति जन्मनाम्

भृगुस्त्वाच ।

बहो पुण्यघतो भर्त्सुरनुगच्छ महासति । चतुर्थदिवसं शुद्धं स्वामिनः सर्वकर्मसु ॥३॥
शुद्धा मर्त्सुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा देवपैत्रयोः । देवे कर्मणि पैत्रे च पश्यमेऽह्नि विशुद्धयति ।

व्यालप्राहीयथाव्यालविलादुद्धरते बलात् । तद्वत् स्वामिनमादाय साध्वीस्वर्गप्रपातिक
मोदतेस्वामिनातत्रयावदिन्द्राश्चतुर्दश । अत ऊर्ध्वं कर्मभोगं भुङ्क्ष्वसाध्विशुभाशुभम्
स पुत्रोभक्तिदाताय साचर्त्वा यानुगच्छति । स बन्धुर्दानदाता य सशिष्योगुस्मर्चयेत्
सोऽमीष्टदेवो योरक्षेत्सराज्ञापालयेत्प्रजा । स च स्वामी प्रियाधर्मं मतिदातुमिहेश्वरः
स गुरुधर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः । एते प्रशंस्या वैद्रेषु पुराणेषु च निश्चितम् ॥

रेणुकोवाच ।

गन्तुं स्वस्वामिना साद्धं का शकामारते मुने । का वाप्यशक्तं नार्यश्चतन्मेरूहितपोधन
भृगुरवाच ।

बालापत्याश्च गर्भिण्यो हृष्टपृश्नतवस्तथा । रजस्वला च कुलटा गलितयाधिसंयुता ॥
पतिसेवाविहीनाया अभक्ताकटुधावकाः । प्रतागच्छन्तिचंदैवान् नकान्तंप्राप्नुवन्तिताः
ससृताग्निं पुरो दत्त्वा चित्तानु शायिनं पतिम् ।

कान्तास्तमनुगच्छन्ति कान्ताश्चेत् प्राप्नुवन्ति ताः ॥ १३ ॥

अनुगच्छन्ति या कान्ततमेव प्राप्नुवन्ति ताः । साद्धं कृत्वापुण्यभोगं प्रतिजन्मनिजन्मनि
इयन्ते कथितासाध्विव्यवस्था गृहिणाधुधम् । तीर्थं ज्ञानमृतानाञ्च वैष्णवधानाञ्चभ्रूयताम्
यासाध्वीरैष्णवंकान्तं यत्रयत्रानुगच्छति । प्रयातिस्वामिनासाद्धं वैकुण्ठेहरिसन्निधिम्
विशेषो नास्तिभक्तानां तीर्थैवान्यत्र तारुद । मरणे च समफलं मुक्तानां कृष्णभाविनाम्
तयोः पातोनास्ति तस्मान्महति प्रलये सति । नारायणं तंमजेत पुमांस्त्री कमलालयाम्
तीर्थं ज्ञानमृतश्चापि वैकुण्ठं याति निश्चितम् । सभाष्यो मोदते तत्र यावद्देवप्रह्लादःशतम्
इत्युक्त्वा रेणुकां तत्र पर्शुराममुवाच ह । वैदोक्तवचनं सर्वं स भृगुः समयोचितम् ॥२०॥
एहि वत्स महाभाग त्यजशोकममङ्गलम् । उत्तानं कुरु तातञ्च दक्षिणाशिरसं भृगो ॥
घर्त्रं यज्ञोपर्यातञ्च नूतनं परिधापय । अनश्रुनयनो भूत्वा सन्निष्ठ दक्षिणामुखः ॥२२॥
अर्प्यासंभवाग्निञ्च गृह्णाण भक्तिपूर्वकम् । पृथिव्यां याति तीर्थानि सर्वाणि स्मरणंकुरु
गपादीनि च तीर्थानियेव पुण्याः शिलोच्चयाः । कुरुक्षेत्रञ्च गङ्गाञ्च यमुनाञ्च सरिद्धिराम्
श्रीशक्तो चन्द्रमागाञ्च सर्वपापप्रणाशिर्नम् । गण्डकीमथकाशीञ्च पनसां सरयूं तथा ॥

पुष्पभद्राञ्च भद्राञ्च नर्मदाञ्च सरस्वतीम् । गोदावरीञ्च कावेरीं स्वर्णरेखाञ्च पुष्करम्
 रैघतञ्च वराहञ्च श्रीशैलं गन्धमादनम् । हिमालयञ्च कौलासं सुमेरुं रत्नपर्वतम् ॥२७॥
 वाराणसीं प्रयागञ्च पुण्यं वृन्दावनं वनम् । हृदिद्वारञ्च यदरीं स्मारं स्मारं पुनः पुनः ॥
 चन्द्रनागुरुकस्तूरी सुगन्धिकुसुम तथा । प्रदाय वासमाच्छाद्य स्थापयैनं चितोपरि ॥
 कर्णाक्षिनासिकास्येपुशलाकाञ्चहिरण्यमीम् । कृत्वानिर्ममच्छन्नं तातदेहिभिप्रायसादरम्
 सतिलं ताम्रपात्रञ्च धेनुञ्च रजतन्तया । सदक्षिणं सुवर्णञ्च दत्त्वाग्निं देह्यकातरम् ॥३१॥

ओं कृत्वा तु दुष्टृतं कर्म जानता वाप्यजानता ।

मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम् ॥ ३२ ॥

धर्माधर्मसमायुक्त लोभलोहसमावृतम् । दहेयं सर्गाग्राणि दिव्यान् लोकान्सगच्छतु
 र्मं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम् । मन्त्रेणानेन देह्यग्निं जनकाय हरिस्मरन् ।

ओं अस्मन्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयं जायतां पुनः ।

असौ लोकाय स्वर्गाय स्वाहेति वद साम्प्रतम् ॥ ३५ ॥

अग्निं देहि शिरःस्थाने हे भृगो भ्रातृभिःसह । तच्चकार भृगुःसर्वं सगोत्रैराहया भृगोः
 अथ पुत्रं रैणुका सा कृत्वा तत्र स्ववक्षसि । उवाच किञ्चिद्वचनं परिणाममुखावहम् ॥
 अविरोधो भवाद्यधो च सर्वमद्गलमद्गलम् । विरोधो नाशवीजश्च सर्वोपद्रवकारणम् ॥
 अकर्त्तव्यो विरोधो वै दारुणैः क्षत्रियैः सह । प्रतिज्ञा चैव कर्त्तव्या मदीये धचनेश्रुते ।
 आलोच्य ब्रह्मणासाद्धं भृगुणादिव्यमन्त्रिणा । यथोचितञ्चकर्त्तव्यं सद्द्विरालोचनंशुभम्

इत्युक्त्वा तं परित्यज्य कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि ।

सा सुष्याप चितायाञ्च पश्यन्ती तं हरिं स्मरन् ॥ ४१ ॥

वर्हिं ददौ चितायाञ्च स रामो भ्रातृभिः सह ।

भ्रातृभिः पितृशिष्यैश्च साद्धं स विललाप च ॥ ४२ ॥

रामरामेति रामेति धान्यमुच्चार्य सा सती । पुरस्तात् पशुरामस्य भस्मीभूता बभूवसु ।
 भर्तुर्नाम समाकर्ण्य तत्राजामु हरेश्चरा । रथस्याः श्यामवर्णाश्च सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥
 शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो धनमालिनः । किरीटिनः कुण्डलिनः पीतकौशेयवाससः ॥४५॥

रथे कृत्वा रेणुकां तां गत्वाते ब्रह्मलोककम् । जमदग्निं समादाय प्रजग्मुर्हरिसन्निधिम्
 तौ दम्पती च वैकुण्ठे तस्यतुर्हरिसन्निधौ । कृत्वा दास्यं हरिः शश्वत् सर्वमङ्गलमङ्गलम्
 अथ रामो ब्राह्मणैश्च भृगुणा सह नारद । पित्रोः शोषक्रियां कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥
 गोभृहिरप्यवासांसि दिव्यशय्यां मनोरमाम् । सुवर्णाधारसहितां जलमन्त्रञ्च चन्दनम् ॥
 रत्नदीपं सौम्यशैलं सुवर्णासनमुत्तमम् । सुवर्णाधारसहितं ताम्बूलञ्च सुवासितम् ॥
 छत्रञ्च पादुकाञ्चैव फलं माल्यं मनोहरम् । फल मूलं जलञ्चैव मिष्टान्नञ्च मनोहरम् ॥

ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा ब्रह्मलोकं जगाम सः ॥ ५१ ॥

ददर्श ब्रह्मलोकं स शातकुम्भविनिर्मितम् । स्वर्णप्राकारसंयुक्तं स्वर्णस्तम्भैर्विभूषितम् ॥
 ददर्श तत्र ब्रह्माणं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ ५२ ॥
 सिंहेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च ऋषीन्द्रैः परिवेष्टितम् । विद्याधरीणां नृत्यञ्च पश्यन्तं सस्मितमुदा
 सद्गतिं श्रुतवन्तञ्च गीयमानञ्च गायनैः । चन्दनागुरकस्तूरीकृङ्कुमेन विराजितम् ॥ ५५ ॥
 तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । धातारं सर्वजगतां कर्त्तारमीश्वरं परम् ॥ ५६ ॥
 परिपूर्णतमं ब्रह्म जपन्तं कृष्णमीश्वरम् । गुह्ययोगं प्रगदन्तं पृच्छन्तं शिष्यमण्डलम् ॥ ५७ ॥
 दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगुः पुरः । उच्चैश्च रोदनं कृत्वा स्ववृत्तान्तमुवाच ह
 भृगुस्त्वाच ।

ब्रह्मंस्त्वद्वंशजातोऽहं जमदग्निसुतो विधे ।

पितामह स्त्वमस्माकं त्वां विना कथयामि किम् ॥ ५६ ॥

मृगयामागतं भूपमुपोषन्तं पिता मम । पारणां कारयामास कपिलादत्तवस्तुना ॥

स राजा कपिलालोभात् कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम् ।

घातयामास मत्तातमित्युत्तवोच्चै ररोद सः ॥ ६१ ॥

निरध्यवाप्यंस पुनस्त्वाच करणानिधिम् । मातामेऽनुगता साध्वीमां विहायजगद्गुरो

बधुनाहमनाथश्च त्वमे माता पिता गुरुः । कर्त्ता पालयिता दाता पाहिमां शरणागतम्

भागतोऽहं तव समां प्रमानुर्मातुराजया । उपायेन जगन्नाथ मद्द्वैरिसूदनं कुरु ॥ ६४ ॥

स राजा सच धर्मिष्ठः स दयालुर्यशस्करः । स पूज्यः स स्थिरधीश्चयो दीनं परिपालयेत्

उच्चैर्नोचं समं दृष्ट्वा यः प्रजां नच पालयेत् । तद्देहाद्वयातिरष्टाश्रीः स भवेद् भ्रष्टलक्ष्मीकः
श्रुत्वाविप्रवटोर्याक्यं करुणासागरो विधिः । दत्त्वाशुभाशिष्येत्स्मै श्रासयामासघक्षसि
श्रुत्वा भृगोः प्रतिज्ञाञ्च विस्मितश्चतुराननः । अतीव दुष्करांधोरां बहुजीविविघातिनीम्
निपेक्षेण भवेत् सर्वमिति श्रुत्वा तु मानसे । उवाच पशुरामं तं परिणाममुखावहम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

प्रतिज्ञा दुर्लभा घत्स बहुजीविविघातिनी । सृष्टिरेषा भगवतः सम्भवेदीश्वरेच्छया ।
नृष्टिः सृष्टा मया पुत्र क्लेशेनैश्वराज्ञया । सृष्टिलुभा प्रतिज्ञाते दारुणा करुणा परा ॥
त्रिसप्तहृत्वोनिर्मुपा कर्तुमिच्छसि मेदनीम् । एकक्षत्रियदोषेण तज्जातिं हन्तुमिच्छसि
ब्रह्मक्षत्रियविदूशूद्रैर्नित्या सृष्टिश्चतुर्विधैः । आधिर्मूता तिरोभूता हरैरेव पुनः पुनः ॥७३॥
अन्यथा त्यत्प्रतिज्ञा च भविता प्राकृतेन च । यद्वायासेन ते कार्यसिद्धिर्भवितुमर्हति ॥
शियलोकं गच्छ घत्स शङ्करं शरणं ध्रज । पृथिव्यां बहवो भूपाः सन्ति शङ्करकिङ्कराः
विनाज्ञया महेशस्य को वा तान् हन्तुमीश्वरः ।

विभ्रत वचचं दिव्यं शक्तेश्च शङ्करस्य च ॥ ७६ ॥

उपाय कुरु यत्नेन जयबीजं शुभाचहम् । उपायतः समारब्धा सर्वे सिद्धन्त्युपक्रमाः ॥
कृष्णस्य मन्त्रं कवचं ग्रहणं कुरु शङ्करात् । दुर्लभं वैष्णवं तेजः शैवं शाक्तं विजेष्यति ॥
गुरस्तेजगतां नाथः शिष्यो जन्मनिजन्मनि । मन्त्रो भक्तो नयुक्तस्ते यो युक्तः स भवेद्विधिः ।
निपेकाह्वयते मन्त्रः कान्तः कान्ता गुरुः सुरः । स्वयमेवोपतिष्ठन्ते ये येषां तेपुतेभ्रुवम्
त्रैलोक्यविजयं नाम गृहीत्वा कवचं घरम् ।

त्रिसप्तहृत्वो निर्मुपां करिष्यसि महीं भृगो ॥ ८१ ॥

दिव्यं पाशुपतं तुभ्यं दाता दास्यति शङ्करः । तेन देयेन मन्त्रेण क्षत्रसङ्घं विजेष्यसि ॥
इति ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायण नारद संघादे गणपतिखण्डे
परशुरामं प्रति ब्रह्मवाक्यं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

उनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

पाशुरामस्य शिवसमीपे गमनम् तपस्योद्योगश्च ।

नारायण उवाच ।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रपन्न्य च जगद्गुरुम् ।

स्फूर्तिस्तम्भाद्वरं प्राप्य शिवलोकं जगाम सः ॥ १ ॥

लक्ष्म्योजननूर्ध्वञ्च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् । अत्यनिर्वचनीयञ्च वाय्वाधारं मनोहरम् ॥
वैकुण्ठं दक्षिणे यस्य गौरीलोकञ्च वामतः । यद्द्वयो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकान् परःस्मृतः
तेषानूर्ध्वञ्च गौलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनम् । अत ऊर्ध्वंन लोकश्च सर्वोपरिचसस्मृतः
मनोयार्थी स योगीन्द्रः शिवलोकं ददर्श ह । उपमानोपनेयाम्यां रहितं महदद्भुतम् ॥५॥
योगीन्द्राणाञ्च प्रवरैः सिद्धविशाविशारदैः । कोटिकल्पतपःपूतैः पुण्यवद्विनिषेवितम् ॥
वेष्टिनं कल्पवृक्षाणां सनूर्ध्वञ्चित्तप्रदैः । समूहैः कामधेनूनामसंख्यानां विराजितम् ॥
पारिजाततनपाञ्च वनराजिविराजितम् । पुष्पोद्यानायुतैर्युक्तं सदाचातिसुशोभितम् ॥
मर्षान्द्रसाररचितैः शोभितैर्मणिवेदिभिः । राजमार्गशतैर्दिव्यैरभ्यन्तरविभूषितम् ॥ ६ ॥
मर्षान्द्रसारनिर्माणशतकोटियुतैर्युतम् । नानाचित्रविचित्राढ्यैर्मर्षान्द्रकलसोऽञ्जलैः ।
तन्मध्यदेशे रम्ये च ददर्श शङ्करालयम् । मर्षान्द्रसारनिर्माणप्रकारं सुमनोहरम् ॥ ११ ॥
अत्यूर्ध्वमन्वरस्पर्शि क्षीरनीरनिभं परम् । षोडशद्वारसंयुक्तं शोभितं शतमन्दिरैः ॥ १२ ॥
अमूल्यरत्नरचितै रत्नसोपानभूपितैः । रत्नसन्मकपादैश्च हरिकेप परिष्वृतैः ॥ १३ ॥
माणिक्यजालमालामिः सद्रत्नकलसोऽञ्जलैः । नानाचित्रविचित्रेण चित्रिणै सुमनोहरैः
आलयस्य पुरतस्तत्र सिद्धद्वारं ददर्श सः । रत्नेन्द्रसारनिर्माणकपादैश्च विराजितैः ॥ १५ ॥
शोभितं वेदिकामिश्च बाह्याभ्यन्तरतः सदा । रचितामिः पद्मरागैर्महामरकतैर्गृहम् ॥ १६ ॥
नानाप्रकारविचित्रेण चित्रितं सुमनोहरम् । द्वारे नियुक्तौ ददर्श द्वारपालौ भयङ्करौ ॥ १७ ॥
महाकरालदन्तात्सौ विकृता रक्तलोचना । दग्धगैलप्रतीकार्शी महाबलपराक्रमा ॥ १८ ॥

विमूतिभूषिताङ्गं च व्याघ्रचर्माभ्वरोवरौ । पिङ्गलाक्षौविशालाक्षौजटिलौचत्रिलाचनौ ॥
त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलन्तौ ब्रह्मतेजसा । तौ दृष्ट्वा मनसा भीतस्त्रस्रः किञ्चिदुवाचह ॥
यिनयेन यिनांताश्च दुर्विनीतौ महाबलौ । आत्मनः सर्ववृत्तान्तं कथयामासतत्पुरः ॥२१॥
विप्रस्य चवनं श्रुत्वा शृवायुक्तौ बभूवतुः । गृहीत्वाजाञ्जघ्दारा शङ्करस्यमहात्मनः ॥२२॥
प्रवेष्टुमाज्ञा ददत्तुरीश्वरानुचरो वरौ । भृगुस्तदाजामादाय प्रचिवेश हरिस्मरन् ॥२३॥

प्रत्येकं षोडशद्वारान्दर्शं सुमनोहरान् ।

द्वारपालान्नियुक्ताश्च नानाचित्रविचित्रतान् ॥२४॥

दृष्ट्वा तान्महदाश्चर्यं ददर्श शूलिनः सभाम् ।

नानासिद्धगणाकीर्णां महर्षिगणसेविताम् ॥२५॥

पारिजातप्रसूनाकमयुना सुरभीकृताम् । ददर्श तत्र देवेशं शङ्करं चन्द्रशेखरम् ॥२६॥

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माभ्वरं परम् । विमूतिभूषिताङ्गं तं नागयज्ञोपवीतितम् ।

रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नभूषणभूषितम् ॥२७॥

महाशिवं शिवकरं शिवधीजं शिवाश्रयम् । आत्मारामं पूर्णकामंसूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥

ईपद्मास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥२८॥

शश्वज्ज्योतिःस्वरूपञ्च लोकानुग्रहविग्रहम् । धृतपन्तं जटाजालं दक्षकन्यासिभूषितम् ॥

तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलीचनम् ॥

गुह्यं ब्रह्म प्रबोचन्तं शिष्येभ्यस्तत्त्वमुद्रया ।

सूयमानश्च योगान्द्रीः सिद्धेन्द्रैः परिसेवितम् ।

पार्षदप्रवरैः शश्वन् सेवितं श्वेतचामरैः ॥३२॥

ध्यायमानं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं परम् । स्वैच्छामयं गुणातीतं जरामृत्युहरं परम् ॥३३॥

ज्योतीरूपञ्च सर्वाद्यं श्रीकृष्णं प्रकृतैः परम् । ध्यायन्तं परमानन्दं पुलकाञ्चितपिग्रहम् ।

सुस्वरं साधुनेत्रञ्च उद्गायन्तं गुणार्णवम् ॥३४॥

भवेन्द्रैश्च रद्रगणैः श्वेतपालैश्च घेष्टितम् । मृदुध्वां ननाम तं दृष्ट्वापर्शुरामोऽतिसादरम् ॥

सहामि कार्त्तिकेयञ्च दक्षिणे च गणेश्वरम् । नन्दीश्वरं महाकालं वीरभद्रञ्च तत्पुरः ।

क्रोडे ददर्श कान्ता ता गौरीं शैलेन्द्रकन्यकाम् ॥३६॥

ननाम सर्वान्मूढानां च भक्त्या च परया मुदा ।

दृष्ट्वा हर पर सार त स्तोतुमुपचक्रमे ॥३७॥

सगद्गदपद दीन साश्रुनेत्रोऽतिकातर । पुटञ्जलियुत शान्त शोकार्त्त शोकनाशनम् ॥

परशुराम उवाच ।

ईश त्वा स्तोतुमिच्छामि सर्वथा स्तोतुमक्षम ।

अक्षराक्षयबीजञ्च किं वा स्तौमि निरीहकम् ॥३८॥

न योजनाकर्तुमीशोदेवेशस्तौमिमूढधी । वेदानशक्त्यास्तोतुकस्त्वास्तोतुमिहेश्वर ॥

बुद्धेर्वाङ्मनसो पार सारात्सार परात्परम् ।

ज्ञाननुद्धेरसाध्यञ्च सिद्ध सिद्धैर्निषेवितम् ॥४१॥

यमाकाशमिवासीनमनन्तमादिमव्ययम् । विश्वतन्त्रमतन्त्रञ्च स्वतन्त्र तन्त्रबीजकम् ॥

ध्यानासाध्य दुराराध्यमतिसाध्य कृपानिधिम् ।

त्राहि मा करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम् ॥४३॥

अद्य मे सफल जन्म जीवितञ्चसुजीवितम् । स्वप्नादृष्टञ्चमकानापश्यामिचभुषाधुना ॥

शक्रादय सुरगणा कल्पया यस्य सम्भवा । चराचरा कलाशेन तनमामिमहेश्वरम् ॥

य भास्करस्वरूपञ्च शशिरूप हुताशनम् । जलरूपवायुरूप त नमामि महेश्वरम् ॥४६॥

अनन्तविश्वसृष्टीना सहस्रार भयङ्करम् । क्षणेन लीलामात्रेण त नमामि महेश्वरम् ॥

य काल कालकालश्च कालबीजञ्चकालज । अज प्रजश्चय सर्वस्तनमामिमहेश्वरम् ॥

इत्येव मुक्त्वा स भृगु पपात चरणाम्बुजे । आशिषञ्च ददौ तस्मै सुप्रसन्नोऽयभूष स ॥

जामदग्न्यकृत स्तोत्र य पठेद्भक्तिसयुत । सर्वपापविनिर्मुक्त शिवलोक स गच्छति ॥

इति श्रीप्रह्लादवैभक्तं महापुराणे नारायणनारदसवादे गणपतिखण्डे

शिवस्तोत्रकथन नामोत्तमत्रिंशत्तमोऽध्याय ।

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

शिवशिवा समीपे परशुरामस्य वरप्रार्थनम् ।

शङ्कर उवाच ।

क स्त्वं घटो कस्य पुत्र, क वासः स्तवनं कथम् ।

किं वा तेऽहं करिष्यामि धान्छितं घट साम्प्रतम् ॥१॥

पार्वत्युवाच ।

शोकाकुलं त्वां पश्यामि विमनस्कं सुविस्मितम् ।

वयसातिशियं शान्तं गुणेन गुणिनां धरम् ॥२॥

भृगुरवाच ।

जमदग्निमुतोऽहञ्च भृगुवंशसमुद्भवः । माता मे रेणुका साध्वी परशुरामश्च नामतः ॥३॥

क्रीणीहि मां दयासिन्धो विद्यापत्रेण किङ्करम् । मदीशशरणापन्नं रक्ष मां दीनवत्सल ॥४॥

भृगुव्यामागतं भूपमुपोषन्तं पिता मम । चकारातिथ्यमानीय कपिलादत्तवस्तुना ॥ ५ ॥

राजा तं कपिलालोभाद् घातयामास मन्दधीः ।

कपिला तं मृतं दृष्ट्वा गोलोकञ्च जगाम सा ॥६॥

मातानुगमनं चक्रे अनाथोहञ्च साम्प्रतम् ।

त्वं मे पिता शिवा माता रक्ष मां पुत्रवत् प्रभो ॥७॥

मया कृता प्रतिज्ञा चशोकेनैवातिदुष्करा । त्रिःसतकृत्वोनिर्मूपाकरिष्यामि महीमिति ॥

कार्तवीर्य्यं हनिष्यामि समरे तातघातकम् । इत्येवं परिपूर्णं मे भगवान् कर्त्तुमर्हति ॥८॥

ब्राह्मणस्य घवः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः । वभूवानप्रवक्त्रश्चसाच शुष्कौष्ठतालुका ॥

पार्वत्युवाच ।

तपस्विन्विप्रपुत्रस्त्वंनिर्मूपाकर्त्तुमिच्छसि । त्रिःसतकृत्व'कोपेतसाहसस्तेमहान्घटो ॥

हन्तुमिच्छसि निःशस्त्रःसहस्राजुंनमीश्वरम् । भ्रूमङ्गललीलायापस्यरावणस्य पराजयः ॥

तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरैः कथंचं घटो । शक्तिरूप्यरूपाच यया ते हिंसितः पिता ॥१३॥

हरेर्मन्त्रञ्च स्तरं ध्यायते स दिवानिराम् । को वा शक्तो तितंहन्तुं न पश्यामीह भूतले ॥
अरे विप्र गृहं गच्छ किङ्करिष्यति शङ्करः । अन्येभूपाश्च मदुभृत्यान्कामीस्तेषामयि स्थिते ॥

भद्रकाल्युवाच ।

अरे विप्रवदो जाल्म निर्मूपां रुक्षुमिच्छसि । यथा हि वामनश्चन्द्रं करेणाहर्तुमिच्छति ॥
नानायजः पुरः पुण्यान् महाबलपराक्रमान् । दिगम्बरसहायेन मदुभृत्यान् हन्तुमिच्छसि ॥
स तयोर्वचनं श्रुत्वा रुरोदोच्चैश्च शोकतः । सहसा पुरतस्तेषां प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः ॥
विप्रस्य रोदनं श्रुत्वा शङ्करः करुणानिधिः । पश्यन् दुर्गाञ्च कालीञ्च रुन्वाति विनयं विभुः ॥
तयोः अनुमतिं प्राप्य सर्वेषां भक्तवत्सलः । जमदग्निमुतं सद्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २० ॥

शङ्कर उवाच ।

अद्य प्रभृति हे वन्स त्वं मे पुत्रसमो महान् ।

दान्यामि मन्त्रं गुह्यं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२१॥

एवं भूतञ्च कवचं दास्यामि परमाद्भुतम् । लीलया मत्प्रसादेन कार्तवीर्य्यं हनिष्यसि ॥
त्रि. सत्तमृतवो निर्मूपां करिष्यसि महो द्विज । जगत्ते यशसा पूर्णं भविष्यति न संशयः ॥
इत्युक्त्वा शङ्करस्तस्मै ददौ मन्त्रं सुदुर्लभम् । त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥
स्तरं पूजाविधानञ्च पुरश्चरणपूर्वकम् । मन्त्रसिद्धेरनुष्ठानं यथावन्नियमक्रमम् ॥ २५ ॥
सिद्धिस्थानकालसंरथं कथयामास नारद । वेदवेदाङ्गनिखिलं पाठयामास तत्क्षणम् ॥
नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रञ्च सुदुर्लभम् । वह्निं नारायणास्त्रञ्च घायत्र्यं चारुणन्तथा ॥
शान्धर्वं गारुडञ्चैव जृम्भणास्त्रं तथैव च । गदा शक्तिं तथा परां शूलमन्त्रयर्थमुत्तमम् ॥

नानाप्रकारास्त्रास्त्रमन्त्रञ्च विधिपूर्वकम् ।

शस्त्रास्त्राणाञ्च संहारं विक्षेप मशयंघनुः ॥२६॥

आत्मरक्षणसन्धानं संग्रामविजयक्रमम् । मायायुद्धञ्च विविधं हृद्धारं मन्त्रपूर्वकम् ॥३०॥

रक्षणञ्च स्वसैन्यानां परसैन्यविमर्दनम् । नानाप्रकारमनुलमुपायं रणसङ्घटे ।

संहारमोहिनीं विद्या जन्ममृत्युहरां ह्यः ॥३१॥

स्थित्वाचिरंगुगेर्वासेसर्वविद्यांविद्योध्यसः । तीर्थैकृत्वामन्त्रसिद्धितांश्चनरवाजगामसः ॥ १

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे परशुरामाय
नानाविधास्त्रप्राप्तिनां त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

तुष्टेन शिवेन स्वकवचादि दानम् ।

नारद उवाच ।

भगवन् श्रोतु मिच्छामि किं मन्त्रं भगवान् हरः ।

कृपया पर्शुरामाय किं स्तोत्रं कवचं ददौ ॥१॥

को घास्य मन्त्रस्याराध्यः किं फलं कवचस्य च ।

स्तवनस्य फलं किं वा तद्वचान् वक्तुमर्हति ॥२॥

नारायण उवाच ।

मन्त्राराध्यो हि भगवान् परिपूर्णतमः स्वयम् । गोलोकनाथः श्रीरूपेणोपगोपीश्वरः प्रभुः

त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् । स्तवराजं महापुण्यं विभूतियोगसम्भवम् ॥३॥

मन्त्रकल्पतरुं नाम सर्वकामफलफलप्रदम् । प्रददौ पर्शुरामाय रत्नपर्वतसन्निधौ ॥ ५ ॥

स्वयंप्रभानदीतीरे पारिजातवनान्तरे । आश्रमे लोकदेवस्य माधवस्य च सन्निधौ ॥६॥

महादेश उवाच ।

घत्सागच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भवम् । पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कवचग्रहणं कुरु ॥

शृणु राम प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डे परमाद्भुतम् । त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीरूपेणस्य जयावहम् ॥

श्रीरूपेण पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रमे । रासमण्डलमध्ये च महानृन्दावने घने ॥ ६ ॥

अति गुह्यतरं तरुं सर्वमन्त्रीघचिप्रहम् । पुण्यात् पुण्यतरञ्चैव परं स्नेहाद्दामि ते ॥

यद्बधुत्वा पट्नादेवी मूलप्रकृतिरीश्वरी । शुभं निशुभं महिषं रक्तवीजं जघानह ॥११॥

यद्गृत्वाऽहञ्च जगतां संहर्ता सर्वतत्त्ववित् । अग्र्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमबलीलया ॥

यद्गृत्वा पठनाद् ब्रह्मा ससृजे सृष्टिमुत्तमाम् ।

यद्गृत्वा भगवान् शेषो विघत्ते विश्वमेव च ॥१३॥

यद्गृत्वाकूर्मराजश्चरोयंत्तेऽबलीलया । यद्गृत्वाभगवान्वायुर्विश्वाधारोविभुःस्वयम्

यद्गृत्वा वरुणः सिद्धः कुबेरश्च धनेश्वरः । यद्गृत्वा पठनादिन्द्रोदेवानामधिपःस्वयम्

यद्गृत्वा भाति भुवने तैजौराशिः स्वयं रविः । यद्गृत्वा पठनाच्चन्द्रो महाबलपराक्रमः

अगस्त्यः सागरान् सत यद्गृत्वा पठनात् पपी ।

चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम् ॥१७॥

यद्गृत्वा पठनाद्देवी सर्वाधारा वसुन्धरा । यद्गृत्वा पठनात् पूता गङ्गामुवनपावनी ॥

यद्गृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः । सर्वविद्याधिदेवीसा यच्चृत्वा सरस्वती

यद्गृत्वा जगतां लक्ष्मीरन्नदात्री परात्परा । यद्गृत्वा पठनाद्देवान् सावित्री प्रसुपाव च

वेदाश्च धर्मवकारो यद्गृत्वा पठनाद्भृगो । यद्गृत्वापठनाच्छुद्धस्तेजस्वी हव्यवाहनः

सनत्कुमारो भगवान् यद्गृत्वा ज्ञानिनां वरः ॥२१॥

दातव्यं कृष्णमक्ताय साधये च महान्मने । शठाय परशिष्याय दत्त्वामृत्युमवान्नुयात्

त्रैलोक्यविजयास्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्चगायत्रीदेवोरामेश्वरःस्वयम्

त्रैलोक्यविजयप्रार्थो विनियोगः प्रकीर्तितः । परात्परञ्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्

प्रणवो मे शिरः पातुश्रीकृष्णायनमःसदा । सदापायात्कपालंकृष्णायस्वाहेतिपञ्चाक्षरः

कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्णस्वाहेति तारकम् ।

हराय नम इत्येवं भूलतां पातु मे सदा ॥२६॥

ओं गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु सन्ततम् ।

गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा ॥२७॥

ओं नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम ।

ओं कृष्णाय नमः शश्वन् पातु मेऽधरयुग्मकम् ॥२८॥

ओं गोविन्दाय स्वाहेति दन्तावलिं मे सदावतु ।

ओं कृष्णाय दन्तरन्ध्रं दन्तोदुर्ध्वं क्लीं सदावतु ॥२६॥

ओं श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातुमेसदा । रामेश्वराय स्वाहेतितालुकंपातुमे सदा
रधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं पातु सदा मम । नमो गोपाङ्गनेशाय वक्षः पातु सदा मम
ओं गोपेशाय स्वाहेति स्कन्धं पातु सदा मम । नमः किशोरवेशायस्वाहापृष्ठं सदावतु
उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय नमः सदा । ॐ ह्रीं क्लीं कृष्णायस्वाहेतिकरौपादौसदामम
ओं विष्णवे नमो वाहुयुग्मं पातु सदा मम । ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा नखरंपातु मे सदा
ओं नमो नारायणायैति नपरन्ध्रं सदाऽवतु । ॐ ह्रीं ह्रीं पद्मनाभाय नाभिपातुसदामम
ओं सर्वेशाय स्वाहेति कङ्कालं पातु मे सदा । ॐ गौपीरमणायस्वाहानितम्बंपातुमेसदा
ओं गोपीरमणनाथाय पादौ पातु सदा मम । ॐ ह्रीं श्रीरसिकेशायस्वाहासर्वंसदावतु
ओं केशवाय स्वाहेति मम केशान् सदावतु । नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रंसदावतु
ओं माधवाय स्वाहेति लोमानि मे सदावतु । ॐ ह्रीं श्रीरसिकेशायस्वाहासर्वंसदावतु
परिपूर्णतमः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदावतु । स्वयं गोलोकनाथोमामाग्नेय्यांदिशिरक्षतु
पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदावतु । नैऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातुमां हरिः

गोविन्दं पातु मां शश्वद्वायव्यां दिशि नित्यशः ।

उत्तरे मा सदा पातु रसिकानां शिरोमणिः ॥४२॥

पैशान्यां मां सदा पातु वृन्दावनविहारकृत् ।

वृन्दावतीप्राणनाथः पातु मामूर्ध्वदेशतः ॥४३॥

सदैव माधवः पातु बलिहारी महाबलः । जले स्थले चान्तरीक्षे नृसिंहः पातु मां सदा ॥
स्यन्ने जागरणे शश्वत् पातु मांमाधवः सदा । सर्वान्तरात्मानिलितोरक्षमांसर्वतो विभुः
इति ते कथितं घत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥
मया श्रुतं कृष्णचक्रात् प्रवक्तव्यंनकस्यचित् । गुरुमन्व्यर्च्यविधिवत्कवचंधारयेत्तुय-

कण्ठे वा दक्षिणे वाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ।

स च भक्तो घसेद् यत्र लक्ष्मी वाणी घसेत्ततः ॥४८॥

यदि स्यात् सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः ।

निश्चित कोटिर्व्याणा पूजाया फलमाप्नुयात् ॥४६॥

राजस्यसहस्राणि वाजपेयशतानि च । अश्वमेधायुतान्येव नरमेधायुतानि च ॥ ५० ॥

महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्य भुवस्तथा ।

त्रैलोक्यविजयस्यास्य कला नार्हन्ति षोडशाम् ॥५१॥

व्रतोपवासनियम स्वायायाययन तप । स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु नास्प्रार्हन्ति कलाप्रपि ॥

सिद्धित्वममरत्वञ्च दास्यत्व श्राहरेरपि । यदि स्यात्सिद्धकवच सर्वप्राप्नोति निश्चितम्

स भवेत् सिद्धकवचो दशलक्ष जपेत्तु य । यो भवेत् सिद्धकवच सर्वज्ञ समनेदुधुवम्

इद कवचमज्ञान्वा भजेत् ऋणसुमन्दर्था । कोटिकल्पप्रजतोऽपितमन्त्र सिद्धिदायक

गृहीन्वा कवच वन्स महा नि क्षत्रियाकुट । त्रि सतः सन्वोति शङ्कासदानन्दोऽवलीलया

राज्य देय शिरो देय प्राणादेयाश्च पुरक । एत भूतञ्च कवच न देय प्राणसङ्कटे ॥५१॥

इति ध्यात्रह्यर्चने महापुराणे नारायणनारदसवादे गणपतिखण्डे कवचप्रदान

नामैकात्रिंशत्तमोऽध्याय ।

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

परशुरामाय स्तोत्रमन्त्रपूजाप्रदानम् ।

भृगुस्त्वाच ।

सम्प्राप्त कवच नाथ शश्वत्सर्पाङ्गरक्षणम् । सुखद मोक्षद सार शत्रुसंहारकारणम् ॥१॥

अधुना भगवन्मन्त्र स्तोत्र पूजाविधिं प्रमो । देहिमहामनायाय शरणागतपालक ॥२॥

महादेव उवाच ।

ओं धीं नम श्राङ्गनाथ परिपूर्णतमाय च । मन्त्रेषु मन्त्रराजोऽथ महान् सप्तदशाक्षर

सिद्धोऽय पञ्चनक्षेण जपेन मुनिपुङ्गव । तद्दशाक्षरञ्च हवन तद्दशाक्षामिषेचनम् ॥

सर्वेण तद्दशाक्षरञ्च तद्दशाक्षरञ्च मार्जनम् । सुवर्णानाञ्च शतक पुरश्चरणदक्षिणा ॥ ४ ॥

मन्त्रसिद्धस्य पुसञ्च विश्वं करतलं मुने । शक्तः पातुं समुद्रांश्च विश्वं संहर्तुमीश्वरः ॥

पाञ्चभौक्तिकदेहेन वैकुण्ठं गन्तुमीश्वरः ॥ ५ ॥

तस्य सस्पर्शमात्रेण पादपङ्कजरेणुना । पूतानि सर्वतीर्थानि सद्यः पूता वसुन्धरा ॥६॥
 ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणुमन्मुखतो मुने । सर्वेश्वरस्य कृष्णस्य भक्तिमुक्तिप्रदायि च ॥
 नवानजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीपद्मास्यं मनोहरम् ॥८ ॥
 कोटिकन्दर्पलाघण्यलीलाधाम मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थं तं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ६॥
 चन्दतोक्षितसर्वाङ्गं पीताम्बरधरंवरम् । वीक्ष्यमाणञ्च गोपीभिः सस्मितामिश्चसन्ततम्
 प्रफुल्लमालतीमालायनमालाविभूषितम् । दधतदुन्दपुष्पाढ्यां चूडां चन्द्रकचर्चिताम् ॥
 प्रभा क्षिपन्ती नभसञ्चन्द्रतारान्वितस्य च । रत्नभूषणसर्वाङ्गं राधावक्ष्ये स्थलस्थितम् ॥
 सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च दैवेन्द्रैः परिसेवितम् । ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च श्रुतिभिश्च स्तुतं भजे ॥

ध्यानेनानेन तं ध्यारया चोपचाराणि पोडश ।

दत्त्वा भक्त्या च संपूज्य सर्वज्ञत्वं लभेत् पुमान् ॥ १४ ॥

आद्यं पाद्यमासनञ्च वसनं भूषणं तथा । गामर्घ्यं मधुपर्कञ्च यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ॥ १५ ॥
 धूपदीपी च नैवेद्यं पुनराचमनीयकम् । नानाप्रकारपुष्पञ्च ताम्बूलञ्च सुवासितम् ॥१६ ॥
 चन्दनागुल्कसूरीदिव्यतल्पं मनोहरम् । भक्त्या भगवते देयं माल्यं पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥
 ततः पङ्कजं संपूज्य पश्चात् सम्पूजयेद्गणम् । श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च ॥१८ ॥
 हरिभानुं चन्द्रभानुं सूर्यभानुं सुभानुकम् । पार्षदप्रवरान् सप्त पूजयेद्भक्तिभावतः ॥१९ ॥
 गोपीश्वरी राधिकाञ्च मूलप्रकृतिमीश्वरीम् । कृष्णशक्तिं कृष्णपूज्यां पूजयेद्भक्तिपूर्वकम्,
 गोपगोपीगणं शान्तं मां ब्रह्माणञ्च पार्वतीम् । लक्ष्मी सरस्वती पृथ्वीसर्वदेवंसविग्रहम्
 देवपदकं समभ्यर्च्य पुनः पञ्चोपचारतः । पश्चादैवं क्रमेणैव श्रीकृष्णं पूजयेत् सुधीः ॥
 गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । समभ्यर्च्य देवपदकमिष्टदेवञ्च पूजयेत् ।

गणेशं विघ्ननाशाय व्यानिशाय भास्करम् ।

आत्मनः शुद्धये वह्निं श्रीविष्णुं मुक्तिहेतवे ॥ २४ ॥

आनाय शङ्करं दुर्गां परमैश्वर्यहेतवे । सम्पूजने फलमिदं विपरीतमपूजने ॥ २५ ॥

ततः कृत्वा परीहानमिष्टदेवञ्च मक्तितः । स्तोत्रञ्च सामवेदोक्तं पठेद्भक्त्या च तच्छृणु ॥

महादेव उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम पर ज्योतिः सनातनम् । निर्लिप्तं परमात्मानं नमामि सर्वकारणम् ॥

म्यूलान्म्यूलतनं देवं सृज्मात्सृज्मतनं परम् । सर्वदृश्यमदृश्यञ्च स्वेच्छाचारं नमान्यहम्

साकाशञ्च निगकारं सगुणं निर्गुणं प्रभुम् । सर्वाधारञ्च सर्वञ्च स्वेच्छारूपं नमान्यहम्

वर्तीवकमनीयञ्च रूपं नित्यनं विभुम् । करालरूपमत्यन्तं विभ्रतं प्रणमान्यहम् ॥३०॥

कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणः । फलञ्च फलदातारं सर्वरूपं नमान्यहम् ॥

क्षया पाता च संहर्ता कलया मूर्त्तिभेदतः ।

नानामूर्त्तिः कलांशेन यः पुनांस्त्वं नमान्यहम् ॥ ३२ ॥

स्वयं प्रकृतिरूपञ्च मायया च स्वयं पुनान् । तयोः परं स्वयं शश्वन् तं नमानिपगतपरम्

स्त्रीपुंनपुंसकं रूपयोविमर्त्तिं म्यनायया । स्वयं माया स्वयंमार्गी योदेवस्त्वं नमान्यहम्

तान्णं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम् । धारणं सर्वविश्वनां सर्वबीजं नमान्यहम् ॥

तेजस्विनां रविशोहि सर्वजातिषु ब्राह्मणः । नक्षत्राणाञ्च यश्चन्द्रस्त्वं नमानिजगत्प्रभुम्

रुद्राणां वैष्णवानाञ्च ज्ञानिना योद्विशङ्करः । नागानां योहि शेषञ्च तं नमानिजगत्पतिम्

प्रजापतीनां यो ब्रह्मास्त्रिद्वानांकपिलः स्वयम् । सनत्कुमारो मुनिपुत्रं नमानिजगद्गुरुम्

देवानां योहि विष्णुञ्च देवानांप्रकृतिं स्वयम् । स्वायम्भुवां मनूनां योनालवेपुचवैष्णवः

नार्गणां शतरूपा च बहुरूपं नमान्यहम् ॥ ३६ ॥

ऋतूनां योवसन्तश्च मालानानार्गशीर्षकः । एकादशीं निर्याताञ्च नमामि सर्वरूपिणीम्

सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः । बभ्रुन्धरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमान्यहम्

पत्राणां तुलसीपत्रं शत्रुरूपेषु चन्दनम् । वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्त्वं नमामि जगत्पतिम्

पुपाणां पाणिजातश्च शम्भ्यानां धान्यमेव च । अनृतं मक्ष्यवस्त्नूनां नानारूपं नमान्यहम्

ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम् । कामधेनूश्च धेनूनां सर्वरूपं नमान्यहम् ॥

तेजस्तातो सुवर्गञ्च धान्यानां यमएव च । यः केशरी पराणाञ्च वररूपं नमान्यहम् ४७॥

यज्ञाणाञ्च कुवेरो यो ब्रह्माणाञ्च बृहस्पतिः । दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमानिपरंवरम्

वेदसङ्घश्च शास्त्राणा पण्डितानां सरस्वती । अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम्
मन्त्राणा विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम् ।

इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम् ॥ ४८ ॥

सुदर्शनञ्च शास्त्राणा व्याधिनां वैष्णवो उचरः । तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यञ्च नमाम्यहम्
निषेकश्च बलवता मनश्च शीघ्रगामिनाम् । कालः कलयतां योहि तं नमामि विलक्षणम्
ज्ञानदाता गुरुणाञ्च मातृरूपश्च बन्धुपु । मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम् ॥
शिल्पीनां विश्वकर्माय कामदेवश्च रूपिणाम् । पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यन्तं नमाम्यहम्
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च । शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम् ॥
धर्मः कल्याणबीजानां वेदानां सामवेदकः । धर्माणां सत्यरूपो यो विशिष्टं नमाम्यहम्
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु । शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम् ॥
कर्तृनां राजस्यो यो गायत्री छन्दसाञ्च यः । गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठं नमाम्यहम्
क्षीरस्वरूपो गव्याना पवित्राणाञ्च पावकः । पुण्यदानाञ्च यः स्तोत्रं तं नमामि शुभप्रदम्
तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम् । गुणानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम्
तेजो रूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान् । सर्वा निर्वचनीयञ्च तं नमामि स्वयं विभुम्
सर्वाधारेषु यो धायुर्यधात्मा नित्यरूपिणाम् ।

आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम् ॥ ६० ॥

वेदानिर्वचनीयं यन्न स्तोतुं पण्डितः क्षमः । यदनिर्वचनीयञ्च को घातस्तोतुमीश्वरः ॥
वेदा नशक्तायं स्तोतुं जड़ीभूता सरस्वती । तञ्च घाद्मनसोः पारंकोविद्वान् स्तोतुमीश्वरः
शुद्धतेजःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीवकमनीयञ्च श्यामरूपं नमाम्यहम् ॥ ६३ ॥
द्विभुजं मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा । शश्वद्गोपाङ्गनाभिश्च धीश्र्यमाणं नमाम्यहम्
राधया दत्तताम्रमूलं भुक्तवन्तं मनोहरम् । रत्नसिंहासनरूपञ्च तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥ ६५ ॥
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः । पार्श्वप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम् ॥ ६६ ॥
वृन्दावनगन्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम् । रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम् ।
रातशृङ्गे महारौले गोलोके रत्नपर्वते । विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहाग्णिम् ॥ ६८ ॥

परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम् । सत्यं ब्रह्मस्वरूपञ्च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम् ।
 श्रीकृष्णस्य स्तोत्रनिद्रं त्रिसन्ध्यं यःपठेन्नरः । धर्मार्थकाममोक्षाणां सदाताभारतेभवेत्
 हरिदास्यं हरौमज्जिलमेन् स्तोत्रप्रसादतः । इह लोके जगत्पूज्योविष्णुतुल्योभवेद्भुवम्
 सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते यातिहरेःपदम् । तेजसा यशसा भाति यथासूप्योमहीतले
 जीवन्मुक्तः कृष्णमक्तः समवेत्तात्रसंशयः । अरोगीगुणवान्विद्वान्पुत्रवान्धनवान्सदा
 षडभिन्नो दशबलो मनोयार्थी भवेद्भुवम् । सर्वज्ञः सर्वदक्षैव स दाता सर्वसम्पदा ॥

कल्पवृक्षसमः शश्वद्भवेन् कृष्णप्रसादत ॥ ७३ ॥

इत्येवं कथितं स्तोत्रं त्वं वत्स गच्छ पुष्करम् ।

तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात् प्राप्स्यसि वाञ्छितम् ॥ ७५ ॥

त्रिःसतशृत्वो निर्मूपां कुरु पृथ्वीयथासुखम् । मनाशिना मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्यप्रसादतः
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे स्तवप्रदानं
 नाम द्वाविंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

परशुरामस्य तपश्चरणम् ।

नारायण उवाच ।

शिवं प्रणम्यसभृगुर्दुर्गां कालीं मुदान्वितः । गत्वा पुष्करतीर्थञ्च मन्त्रसिद्धिञ्चकारह
 स बभूवनिराहारो मासं भक्तिसमन्वितः । ध्यायन्कृष्णपदान्भोजं वायुरोधञ्चकारस्तः
 ददर्श चञ्चुर्नमीत्य गगनं तेजसावृतम् । दिशो दश द्योतयन्तं समाच्छन्नदिवाकरम् ॥ ३ ॥
 तेजोमण्डलमध्यस्थं रत्नयानं ददर्श ह । ददर्श तत्र पुष्टमतीव सुन्दरं धरम् ॥ ४ ॥
 ईशदास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् । मूढुर्धनां प्रणम्य दण्डवद्दरं वस्रे तमीश्वरीम् ॥
 त्रिःसतशृत्वो निर्मूपां करिष्यामि महीमिति । पदारविन्दे सुदृढां तां भक्तिमनपायिनीम्

दास्यं सुदुर्लभं शश्वत् त्वं पादाब्जे च देहि मे । कृष्णस्तस्मै घटं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत
भृगुः प्रणम्य भवनं जगाम तत्परात्परम् । पस्पन्द दक्षिणाङ्गञ्च परं मङ्गलसूचकम् ॥८॥
घाञ्छाप्रतीतिजननं सुस्वप्नञ्च ददर्श ह । मनः प्रसन्नं स्फीतञ्च तद्वभूव दिवानिशम्

सभाप्य स्वजनं सर्वं गृहे तस्थौ मुदान्वितः ॥ ६ ॥

स्वशिष्यान् पितृशिष्याश्च भ्रातृचर्गांश्च बान्धवान् ।

आनीयानीय विविधान् मन्त्रांश्च स चकार ह ॥ १० ॥

पौर्यापय्यं स्ववृत्तान्तं तानेवोक्त्वा शुभक्षणे । तैरेव सार्द्धं बलवान् यभूव गमनोन्मुखः ॥
ददर्श मङ्गलं रामः शुभ्राय जयसूचकम् । युयुवे मनसा सर्वं स्वजयं वैरितंक्षयम् ॥१२॥
यात्राकाले च पुरतः शुभ्राय सहसा मुनिः । हरिशब्दं सिंहशब्दं घण्टादुन्दुभिवादनम् ॥
आकाशवाणी सङ्गीतं जयस्ते भवितेति च । नवेङ्गितञ्च कल्याणं मेघशब्दं जयावहम् ॥
चकार यात्रां भगवान् श्रुत्वैवं विविधं शुभम् । ददर्श पुरतो विप्रवन्दिदैवज्ञभिश्चुकान् ।
ज्वलत्प्रदीपं विभ्रन्तो पतिपुत्रवती सतीम् । पुरो ददर्श स्मेरास्यां नानाभूषणभूषिताम् ॥
शर्वाशिवांपूर्णकुम्भं चासञ्च नकुलन्तथा । गच्छन्ददर्श रामश्च यात्रामङ्गलसूचकम् ॥१७॥
कृष्णसारं गजं सिंहं तुरगं गण्डकं द्विपम् । चमरी गजहंसश्च चक्रवाकं शुक्रं पिकम् ॥
मयूरं खड्गं चैव शङ्खचिह्नं चकोरकम् । पारावतं बलाकाञ्च कारण्डं चातकं चटम् ॥
सौदामिनी शक्रचापं सूर्यं सूर्यशोभां शुभम् ।

सद्योमांसं सजीवञ्च मत्स्यं शङ्खं सुवर्णकम् ॥ २० ॥

माणिक्यं रजतं मुक्तां मणीन्द्रञ्च प्रवालकम् । दधि लाजं शुकुधान्यं शुकुपुष्पञ्च कुङ्कुमम्
पर्णं पताकां छत्रञ्च दर्पणं श्वेतचामरम् । धेनुं घत्सप्रयुक्ताञ्च रथस्थं भूमिपं तथा ॥२२॥
दुग्धमाज्यं तथा पूगममृतं पायसन्तथा । शालग्रामं पङ्कजं स्वस्तिकं शर्करां मधु ॥
माञ्जरीञ्च वृषेन्द्रञ्च मेघं पर्यंतमूषिकम् । मेघाच्छन्तस्य च रवेरुदयं चन्द्रमण्डलम् ॥२४॥
कस्तूरीव्यजनं तोयं हरिद्रां तीर्थमृत्तिकां ।

सिद्धार्थं सर्पं दूर्वां विप्रवालञ्च चालिकाम् ॥ २५ ॥

मृगं वेश्याञ्च झरं कर्पूरं पीतवाससम् । गोमूत्रं गोपुत्रीञ्च गोधूलिं गोपदाङ्कितम् ॥

गोष्ठं गवां वर्त्मरम्यां गोशालां गोगतिं शुभाम् ।

भूमणं देवप्रतिमां ज्वलदग्निं महोत्सवम् ॥ २७ ॥

तात्रञ्च स्फटिकं शैवं सिन्दूरं माल्यचन्दनम् । गन्धञ्च हीरकं रत्नं ददर्श दक्षिणे शुभम् ।

सुगन्धिवायोरान्नाणं प्राप विप्राशिनं शुभम् ॥ २६ ॥

इत्येवं मङ्गलं ज्ञान्वा प्रययौ स मुदान्वितः । अस्मिन् गते दिनकरे नर्मदातीरतन्निधौ ॥

तत्राक्षयवटं दिव्यं ददर्श सुमनोहरम् । अत्युदुर्ध्वं विस्तृतमति पुण्याश्रमपदं परम् ॥३१॥

पौलस्त्यनपत्तः स्नानं सुगन्धिवायुतान्वितम् । कार्त्तरीप्यांजुनाभ्यासे तत्रतप्यौगणैः सह

सुन्वाप पुण्डरीक्याया किङ्करीः परितेवितः । निद्रां ययौ परिश्रान्तः परमानन्दसंयुतः

निशार्तानि च सभृगुश्चार स्वप्नं ददर्श ह ।

न चिन्तितं यन्मनसा वायुपित्तकफ बिता ॥ ३४ ॥

गजाश्वरौह्यप्रासादगोवृक्षकलितेषु च । आरह्यनागमान्मानं रदन्तं कृमिमक्षितम् ॥३५॥

आरह्यनागमान्माननौकाया बन्दनोक्षितम् । धृतदन्तं पुष्पमालां शोभिनं पीतवाससा

विष्णुत्रीक्षितसर्वाङ्गं वरापूयत्तमन्वितम् । वीणां वरा वादयन्तमात्मानञ्च ददर्श ह ॥

विस्तीर्णपद्मपत्रैश्च स्वं ददर्श सरित्तेटे । दग्ध्याज्यमधुमंयुक्तं भुक्तवन्तञ्च पायसम् ॥

भुक्तवन्तञ्च तामूलं लभन्त ब्राह्मणादिभ्यम् । फल्पुण्डरीकञ्च परदन्तं स्वं ददर्श ह ॥

परिपक्कलं क्षौरमुण्णात्रं शर्करान्वितम् । स्वस्तिकं भुक्तवन्त स्वं ददर्श च पुनः पुनः ॥

जलोक्ता वृश्चिकेन मीनेन भुजगेन च । भक्षितं भीतमान्मानं पलायन्तं ददर्श सः ॥

ततो ददर्श चान्मानं मण्डलं बन्दुमूर्त्ययो । पतिपुत्रवतीं नारो पश्यन्तं सम्मितद्विजम्

सुवेशया कन्यकया सस्मिनेन द्विजेन च । ददर्श झिलप्रमान्मानं तुष्टेन परितुष्टया ॥४३॥

फलितं पुष्पितं वृक्षं दैवताप्रतिमां नृपम् । गजस्यञ्च रथस्यञ्च पश्यन्तं स्वं ददर्श ह

पीतबह्वपरिधानां रत्नालङ्कारभूषिताम् । विरान्तीं ब्राह्मणीं गेहं पश्यन्तं स्वं ददर्श ह ॥

शङ्खञ्च स्फटिकं श्वेतमालां मुकाञ्च चन्दनम् । सुवर्णं रत्नं रत्नं पश्यन्तं स्वं ददर्श ह ।

गजं वृषञ्च सर्पञ्च श्वेतञ्च श्वेतचामरम् । नीलोत्पलं दर्पणञ्च मार्गवःस्वं ददर्श ह ॥

रथस्यं नवरत्नस्यं मालतीमाल्यभूषितम् । खसिहासनस्यं स्वं भृगुः स्वप्ने ददर्श ह ॥

पद्मश्रेणी पूर्णकुम्भं दधि लाजं घृतं मधु । पर्णछत्रं छत्रिणञ्च भृगुः स्वप्ने ददर्श ह ॥
 धकपङ्क्तिं एसपङ्क्तिं कन्यापङ्क्तिं व्रतान्विताम् । पूजयन्ती घटं शुभंभृगुः स्वप्नेददर्शह
 मण्डपस्थं द्विजगण पूजयन्तं हरं हरिम् । जयीऽस्तिथत्युक्तयन्तं तं भृगुः स्वप्नेददर्शह
 सुधावृष्टिं पर्णवृष्टिं फलवृष्टिञ्च शाश्वतीम् । पुष्पवन्दनवृष्टिञ्च भृगुः स्वप्ने ददर्श ह
 सद्यो मांस जीवमत्स्यं मयूरं श्वेतसङ्घनम् । सरोवरञ्च तीर्थानि भृगुः स्वप्ने ददर्श ह
 पारायतं शुकं चासं शङ्खचिह्नञ्च चातकम् । व्याघ्रं सिंहञ्च सुरभीभृगुः स्वप्ने ददर्शह
 गौरोचनां हरिद्राञ्च शुक्लघ्नान्याचलं घनम् । ज्वलद्रग्निं तथा दूर्वां भृगुः स्वप्नेददर्श ह
 देवालयसमूहञ्च शिवलिङ्गञ्च पूजितम् । अर्चितां मृण्मयीं शैवां भृगुः स्वप्ने ददर्शह
 यक्षगोधूमचूर्णानां पिष्टानि लड्डुकानि च । भृगुर्ददर्श स्वप्ने च युभुजे च पुनः पुनः ॥
 दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नभूषणभूषिताः । अगम्यागमनं स्वप्ने चकार भृगुनन्दनः ॥५८॥
 ददर्श नर्तकां वेश्या रुधिरञ्च सुरां पपौ । रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः स्वप्ने चभृगुनन्दनः ॥
 पक्षिणां पीतवर्णानां मानुषाणाञ्च नारद । मांसानि युभुजे रामो हृष्टः स्वप्नेऽरणोदये
 अकस्मान्निगडैर्बद्धं क्षतं शस्त्रेण स्वं भृगुम् । दृष्ट्वा च बुबुधेप्रातः समुत्तस्थीहरिस्मरन्
 अतीव हृष्टः स्वप्नेन प्रातःहृत्स्यञ्चकार सः । मनसा बुबुधे सर्वं विजेष्यामि रिपुं ध्रुवम्
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे परशुरामस्वप्नदर्शनं
 नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

परशुरामेण राजसमीपे दूतप्रेषणम् ।

नारायण उवाच ।

स प्रातराह्निकं कृत्वा समालोच्य च तैः सह । दूतं प्रस्थापयामास कार्तवीर्याश्रमंभृगुः
 स दूतः शीघ्रमागत्य घसन्तं राजसंसदि । वेष्टितं सचिवैः सार्द्धमुवाच नृपतीश्वरम् ॥

रामदूत उवाच ।

नर्मदातीरसान्निध्ये न्यप्रोधाक्षयनूलके । स भृगुभ्रातृभिः सार्द्धं त्वं तत्र गन्तुमर्हसि ॥
युद्धं कुरु महाराज जातिभिर्जातिभिः सह । त्रिः सप्तशृत्वो निर्भूपां करिष्यतिमहीमिति
इत्युक्त्वा रामदूतश्च जगाम रामसन्निधिम् । राजा विधाय सन्नाहं समरं गन्तुमुद्यतः ।
गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा । तमेव वारयामास वासयामास सन्निर्यौ ॥
राजा मनोरमा दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः । तानुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने ॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच ।

मामेवाह्वयते कान्ते जमदग्निस्तुतो महान् । स तिष्ठन्नर्मदातीरे रणाय भ्रातृभिः सह ॥

सम्प्राप्य शङ्कराच्छम्भ्रं मन्त्रञ्च कवचं हरेः ।

त्रिःसप्तशृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छति मेदिनीम् ॥ ६ ॥

आन्दोलयति मे प्राणान्मन संक्षमितं मुहुः । शश्वत्स्फुरति वामाङ्गं दृष्टंस्वप्नंशुप्रिये
तैलाम्यङ्गितमात्मानमदर्शं गर्दभोपरि । विभ्रन्तमोद्गुपुष्यस्य माल्यञ्च रत्नचन्दनम् ॥११
रक्तवम्भ्रपरीधानं लौहालङ्कारभूषितम् । हसन्तञ्चैव क्रीडन्तं निर्वाणाङ्गराशिना ॥

भस्माच्छन्ताञ्च पृथिवीं जवापुष्पान्वितां सति ।

रहितं चन्द्रसूर्याभ्या रक्तसंध्यान्वितं नमः ॥ १३ ॥

मुक्तकेशाञ्चनृत्यन्तीं विधवां छिन्ननासिकाम् । रक्तवम्भ्रपरीधानामदर्शमदृष्ट्वासिनीम
सशरानशिररहितां चितां भस्मसमन्विताम् । भस्मवृष्टिमसृग्वृष्टिमङ्गारवृष्टिर्माञ्चरि ॥
पक्तालफलाकीर्णां पृथिवीमस्त्रिसंयुताम् । अदर्शं कर्पराशिञ्च छिन्नकेशानजान्वितम्
पर्वतं लवणानाञ्च राशीभूतं कपर्दकम् । चूर्णानाञ्चैव तैलानामदर्शं चन्द्रं निशि ॥१७॥
अदर्शं पुष्पिनं वृक्षमशोककरवीरयोः । तालवृक्षञ्च फलितं तत्र एव पतन् फलम् ॥१८
स्वकान् पूर्णकलसः पपात च वमञ्च च । इत्यदर्शञ्च गगनान् सम्पतच्चन्द्रमण्डलम् ॥
अदर्शमन्वरात् सूर्यमण्डलं सम्पतदुवि । उल्कापातं धूमकेतुं ग्रहणञ्चन्द्रसूर्ययोः ॥
विहृताकारपुरं विकटास्यं दिगम्बरम् । आगच्छन्तञ्चाप्रतन्तु अदर्शञ्च मयानकम् ॥
वान्सा द्वादशवर्षीया बह्वभूषणभूषिता । संरष्टा याति मद्नेहादित्यदर्शनहं निशि ॥२२॥

विदाय देहि राजेन्द्र त्वद्गोहाद् यामि काननम् ।

घदसि त्व मामिति च निश्यदर्शमह शुवा ॥ २३ ॥

रथो विप्रो मा शपने सन्यासीचतथा गुर । भिक्ती पुत्तलिकाश्चित्रानृत्यन्तीत्यदर्श परम्
चञ्चलानाञ्च गृध्राणा काकाना निकरै सदा । पीडित महिषाणाञ्चस्वमदर्शमहनिशि
तैल पीडितयन्त्रञ्च तैलकारेण भ्रामितम् । दिगम्बरान् पाशहस्तानदर्शमहमीश्वरि ॥

नृत्यन्ति गायना सर्वे गान गायन्ति मे गृहे ।

विवाह परमानन्दमित्यदर्शमह निशि ॥ २७ ॥

रमण कुर्वतो लोकान् केशाकेशीति कुर्वत । अदर्श समर रात्रौ काकानाञ्च शुनामिति
मोटकानि च पिण्डानि श्याशान शवसयुतम् ।

रक्तवस्त्र शुकुवस्त्रमदर्श निशि कामिनि ॥ २९ ॥

वृष्णाम्बरावृष्णवर्णा नम्राच मुक्तकेशिनी । विघ्नघा श्लिष्यतिच मामदर्शनिशिशीभने ॥
नापितो मुण्डितो मुण्ड श्मश्रुश्रेणी मम प्रिये । घक्ष स्वल्ञ्च नखरमित्यदर्शमह निशि ॥
पादुकावर्मरञ्जनामदर्श राशिमुत्वनम् । चक्र भ्रमन्त भूमौ च कुलालस्येति सुन्दरि ॥
घात्यया घूर्णमानञ्च शुष्कवृक्ष तमुत्थितम् । घूर्णमान कचन्धञ्चैवादर्श निशि सुव्रते ॥
ग्रथिता मुण्डमालाश्च चूर्णमानाश्च घात्यया । अतीव घोरदर्शनामित्यदर्शमह घरे ॥
भूत्पेता मुक्तकेशा वमन्तञ्च हुताशनम् । मा भीषयन्ति सततमित्यदर्शमह निशि ॥ ३५ ॥
दग्धजीव दग्धवृक्ष व्याघ्रिग्रस्त नर परम् । अङ्गहीनञ्च वृषलमित्यदर्शमह निशि ॥ ३६ ॥
गेहपर्वतवृक्षाणा सहस्रा पतन परम् । मुहुर्मुहुर्वज्रपातमित्यदर्शमह निशि ॥ ३७ ॥
कुङ्कुराणा शृगालाना रोदनञ्चमुहुर्मुहु । गृहे गृहे च नियतमित्यदर्शमह निशि ॥ ३८ ॥

अधोमस्तमूढुर्घपाद मुक्तकेश दिगम्बरम् ।

भूमौ भ्रमन्त गच्छन्तमित्यदर्शमह नरम् ॥ ३९ ॥

विस्मृताकारशब्दञ्च प्राप्ताधिदेवरोदनम् । प्रात श्रुत्यैवावयोधञ्च कमुपाय वदाधुना ॥
नृपतेर्वचन श्रुत्वा हृश्येत् विदूयता । तद्वता त सगद्गदमुवाच सा नपेश्वरम् ॥ ४१ ॥

मनोरमा उवाच ।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठ सर्वमहीभृताम् । प्राणातिरेक प्राणेश शृणु वाक्यं शुभावहम् ॥
नारायणांशोभगवान् जामदग्न्योमहाबली । सृष्टिसंहर्तुरीशस्य शिष्योऽयं जगतःप्रभोः
त्रिःसतकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति । प्रतिज्ञायस्य रामस्य तेनःसार्द्धरणत्यज
पापिनं रावणं जित्वा शूरं स्वमपि मन्यसे । सत्वया न जितो नाथस्वपापेन पराजितः
यो न रक्षति धर्मञ्च तस्यको रक्षिता भुवि । सतश्चरति स्वयं मूढो जीवन्नपि मृतोहिस्तः

शुभाशुभस्य सतनं साक्षी धर्मस्य मर्मणः ।

आत्मारामः स्थितः स्वान्तः मूढस्त्वं नहि पश्यति ॥ ४७ ॥

पुत्रदारादिकं यद्वयत् सर्वैश्वर्यं सुधर्मिणाम् । जलपुद्गयुदवन् सर्वमनित्यं नश्वरं नृप
संसारं स्वप्रसदृशं मत्वा सन्तोऽत्र भारते । ध्यायन्तेसतनं धर्मं तपः कुर्वन्ति भक्तिः
दत्तेन दत्तं यज्जानं तत् सर्वं विसृजं त्वया ।

अस्ति चेत् विप्रहिंसायां कुबुद्धे त्वग्मनः कथम् ॥ ५० ॥

सुखार्थे मृगयां गन्वा तत्रोपोष्य द्विजाश्रमे । भुक्तवामिष्टमपूर्वञ्च हतो विप्रो निरर्थकम्
गुरुविप्रसुराणाञ्च यः करोति पराभवम् । अमीष्टदेवस्त एष्टो विपत्तिस्तम्य सन्निधौ ॥
स्मरणं कुरु राजेन्द्र दत्तात्रेयपदाम्बुजम् । गुरो भक्तिञ्च सर्वेषां सर्वविघ्नविनाशिनी ॥
गुरुदेवं समभ्यर्च्य तं भृगुं शरणं व्रज । विप्रे देवे प्रसन्ने च क्षत्रियाणां न हि क्षतिः ॥
विप्रस्य किङ्करोभूपो वैश्यो भूपस्य भूमिप । सर्वेषांकिङ्कराः शूद्रा ब्राह्मणस्य विशेषतः
अयशः शरणं शश्वन् क्षत्रियस्य च क्षत्रिये । महद्दुःपरास्तच्छरणं गुरुदेवद्विजेषु च ॥
ब्राह्मणं भज राजेन्द्र गरीयांसं सुरादपि । ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्नुष्टाः सर्वदेवताः ॥५१
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रं क्रोडि कृत्वा महासती । मुहुर्मुहुर्मुहं दृष्ट्वा विललाप ररोद् च ॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरेवमुवाच सा । स्नानं कुरु महाराज भोजयिष्यामि चाञ्छितम्
चन्दनागुरकस्नूरिकुङ्कुमावीरमुत्तमम् । अनुलेपं करिष्यामि सर्वाङ्गे तव सुन्दरे ॥६० ॥
क्षणं सिंहासने तिष्ठ क्षणं वृक्षसि मे प्रभो । समायां रचिनेतल्पे पश्यामि जग्मशोधनम्
शतपुत्राधिकः प्रेम्णा सर्तानाञ्च पतिर्नृप । निरुपितो भगवता वेदेषु हरिणा स्वयम् ॥

मनोरमावचः ध्रुव श्रुत्या राजा परमपण्डितः । वीधयामासतां राज्ञीं ददौप्रत्युत्तरंपुनः
कार्तवीर्यार्जुन उवाच ।

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि श्रुतं सर्वं त्वयेरितम् । शोकार्तानाञ्च ध्वनं नप्रशंस्यं सभासुव
सुषं दु ख भय शोकं कलहः प्रीतिरेव च । कर्मभोगार्हकालेन सर्वं भवति सुन्दरि ॥
कालो ददाति राजत्वं कालो मृत्युं पुनर्भवम् । कालः सृजतिसंसारं कालः संहर्तेपुनः
करोति पालन काल कालरूपी जनार्दनः । कालस्यकालः श्रीकृष्णो विधातुर्विधिरेषव
सहस्रुर्वापि संहर्ता पातुः पाता निपेककृत् । स निपेको निपेकेण ददाति तपसां फलम्
कं केन हन्यते जन्तुर्निपेकेण विना सति ॥ ६८ ॥

स्रष्टासृजति सृष्टिञ्चसंहर्ता संहरेन् पुनः । पाता पाति च भूतानि यस्याज्ञां परिपालयेत्
यस्याज्ञया घाति घात. सन्ततं भयविह्वलः । शयन् सञ्चरते मृत्युः सूर्यस्तपति सन्ततम्
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः कालो भ्रमति भीतवत् ।

तिष्ठन्ति स्थावराः सर्वे चरन्ति सन्ततं चराः ॥ ७१ ॥

वृक्षाश्च पुष्पिता.काले फलिता.पल्लवान्विताः । शुष्यन्ति कालतःकाले वर्द्धन्तेचतदाज्ञया
भाविभूता तिरोभूतासृष्टिरेवतद्राज्ञया । तस्याज्ञयाभवेत् सर्वनकिञ्चित् स्वेच्छयानृणाम्
नारायणांशो भगवान् पशंरामो महाबलः । त्रि सप्त कृत्यो निर्मूपां करिष्यतिमहीमिति
प्रतिज्ञा विफला तस्य न भवेत्तु कदाचन । निश्चितं तस्य दध्योऽहमिति जानामिसुवर्ते
ज्ञात्वासर्वं भविष्यञ्च शरणं यामितत्कथम् । प्रतिष्ठितानां चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रः समरं गन्तुमुद्यतः । वाद्यञ्च वादयामास कारयामास मङ्गलम् ॥
शतकोटिर्नृपाणाञ्च राजेन्द्राणां त्रिलक्षकम् । अक्षौहिणीनां शतकं महाबलपराक्रमम् ॥
वशवानाञ्च गजानाञ्च पदातीनां तथैव च । असंख्यकं रथानाञ्च गृहीत्वा गन्तुमुद्यतः ॥
वभूव स्तम्भिता साध्वी दृष्ट्वा तं गमनोन्मुखम् । धृतघन्तञ्च सन्नाहमक्षयं सशरं धनुः ॥

क्रीडागारै क्षणं तस्थौ कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि ।

पश्यन्ती तन्मुखाभोजं चुचुग्ध च मुहुर्मुहु ॥ ८१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे कार्तवीर्ययुद्धप्रस्थानं
नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

राज्ञो युद्धयात्रा ।

नारायण उवाच ।

मनोरमा प्राणनाथंक्षणं कृत्वा स्ववक्षसि । भविष्यं मनसा चक्रे यद्दयत्स्यामि मुखाच्छ्रुतम्
पुत्रांश्च पुरतः कृत्वा वाग्धरांश्च स्वकिङ्करान् । सासस्मार हरिपदं मेने सत्यं भवे मुने
योगेन भित्त्वा पट्चक्रं घायुं संस्थाप्य मूर्द्धनि । ब्रह्मरन्ध्रस्थकमले सहस्रदलसंयुते ॥३॥
स्थान्तमाकृष्य विपयाज्जलबुद्बुदसन्निभात् । संस्थाप्य बहुध्वाज्ञानेन लोलं ब्रह्मणि निष्कले
द्विविधं कर्म संन्यस्य निर्मूलमपुनर्भवम् । तत्र प्राणांश्च तत्याज न च प्राणाधिकं प्रियम्
स राजा तां मृतां दृष्ट्वा विललाप रुरोद च । सन्नाहं संपरित्यज्य कृत्वा धक्षस्युवाचताम्
राजोवाच ।

मनोरमे समुत्तिष्ठ न यास्यामि रणाजिरे । पश्य मां चेतनां प्राप्य विलपन्तं मुहुर्मुहुः ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मया सादं गृहं व्रज । न करिष्यामि समरं भृगुणा सह भाविनि ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ श्रोशैलं व्रजसुन्दरि । तत्र क्रीडां करिष्यामि त्वया सादं यथापुरा ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ व्रज गोदावरीं प्रिये । जलक्रीडां करिष्यामि त्वया सादं यथा पुरा ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ नन्दनं व्रज सुन्दरि । पुष्पभद्रानदीतीरे विहरिष्यामि निर्जने ॥ ११ ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मलयं व्रज सुन्दरि । त्वया सादं रमिष्यामि तत्र चन्दनकानने ॥ १२ ॥
शीतेन गन्धयुक्तेन घायुना सुरभीकृते । भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलस्तधिते ॥ १३ ॥
चन्दनागुष्कसूरी ममाङ्गे लेपनं कुरु । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पश्य मां सस्मिते सति ॥
सुधातुल्यं सुमधुरं वचनं रचय प्रिये । कुटिलभूषिकारञ्च कथं न कुरुपेऽधुना ॥ १५ ॥
नृपस्य रोदनं श्रुत्वा घाग् बभूवाशरीरिणी । स्थिरो भव महाराज करोपि रोदनं कथम्
त्वं महाज्ञानितां श्रेष्ठो दत्तात्रेयप्रसादतः । जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारं पश्य शोभनम्
कमलांशा च सा साध्वी जगाम कमलालयम् ।

त्यमं व गच्छ वैरुण्ड रण कृत्वा रणाजिरे ॥ १८ ॥

इत्येव वचन श्रुत्या जहौ शोक नराधिप । ततश्चन्द्रनकाष्टेन चिता दिव्याञ्जकार ह ॥
सस्काराग्निकारयित्वा पुत्रद्वाराद्दाह ताम । नानाविधानि रत्नानि ब्राह्मणेभ्योर्ददौ मुदा
नानाविधानि दानानि धन्वाणि विविधानि च ।

मनोरमाया पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ २१ ॥

भुञ्जता भुञ्जता शश्वदीयता दीयतामिति । शन्दो कभूय सर्वत्र कार्तवीर्याध्रमे मुने ॥
कोपेषु स्वाधिकारेषु स्थित यद् यद्ग्न तदा । मनोरमाया पुण्येनब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा
राना जगाम समर हृदयेन विदूयता । सार्द्धं सैन्यसमूहेश्च घाघभाण्डैरसख्यकै ॥२४॥
ददर्शामङ्गल राना पुत्रो वर्त्मनि वर्त्मनि । यथौ तथापि समर नाजगाम गृह पुन ॥२५॥
मुक्तकेशा छिन्ननाशा रदतीञ्च दिगम्बराम् । वृष्णघखपरिधानामपरा विधवामपि ॥२६॥
मुखदुष्टा योनिदुष्टा ध्याधियुक्ताञ्च कुट्टनाम् । पतिपुत्रविहीनाञ्च डाकिनीं पुञ्जलीं तथा
कुम्भकार तैलकार व्याध सर्पपजीविनम् । कुचैलमतिरुक्षाङ्ग नग्न कापायघासिनम् ।
घसाविक्रयिणश्चैव कन्याविक्रयिणन्तथा । चितादग्ध शव भस्म निर्वाणाङ्गारमेव च ॥
सर्पक्षतनर सप गोधाञ्च शशक विपम् । श्राद्धपाकञ्च पिण्डञ्च मोटकञ्च तिलास्तथा
देवल वृषवाहञ्च शूद्रश्राद्धान्नभोजितम् । शूद्रान्नपाचक शूद्रयाजक ग्रामयाजकम् ॥२९॥
कुशपुत्तलिकाञ्चैव शवदाहनकारिणम् । शून्यकुम्भ भग्नकुम्भ तैल लघणमस्थि च ॥
कापास कच्छप चूर्णं कुङ्कुर शन्दकारिणम् । दक्षिणे च शृगालञ्च कुर्वन्त भैरव रयम्
कपर्दकञ्च क्षौरञ्च छिन्नकेश नख मलम् । कलहञ्च विलापञ्च विलापकारिण जनम् ॥

अमङ्गल रदन्तञ्च रदन्त शोककारिणम् ॥ ३५ ॥

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातार वीरञ्च नरघातिनम् । पुञ्जलीपतिपुत्रौ च पुञ्जल्योदनभोजितम् ।
देवतागुरविप्राणा घस्तुचित्तापहारिणम् । दत्तापहारिण दस्यु हिंसक सूचक खलम् ॥
पितृमातृविरक्तञ्च द्विजाश्वत्थविवातिनम् । सत्यभ्रञ्च कृतघ्नञ्च स्याप्यापहारिण जनम्
विप्रद्रोह मित्रद्रोह क्षत विश्वासघातकम् ॥ ३६ ॥

शुद्धदेवद्विजानाञ्च निन्दक स्वाङ्गघातकम् । जीवाना घातकश्चैव स्वाङ्गहीनञ्च निर्दयम्

प्रतोपवासहीनञ्च दीक्षाहीनं नपुंसकम् । गलितव्याधिगात्रञ्च काणं बधिरमेव च ॥४१॥
पुङ्गवसं छिन्नलिङ्गञ्च सुरामत्तं सुरां तथा । क्षिप्तं घमन्तं हृदिरं महिषं गर्दभं तथा ।

मूत्रं पुरीषं श्लेष्माणं रुक्षिणं नृकपालकम् ॥ ४२ ॥

भङ्गभावातं रक्तवृष्टिं घायञ्च वृक्षपातनम् । वृक्षञ्च शूकरं गृध्रं श्येनं कङ्कञ्च भल्लुकम् ।

पाशञ्च शुष्ककाष्ठञ्च घायसं गन्धकं तथा ॥ ४४ ॥

अप्रदानिब्राह्मणञ्च तन्त्रमन्त्रोपजीविनम् । वैद्यञ्च रत्नपुष्पञ्च औषधं तुषमेव च ॥ ४५ ॥

कुवासां मृतवार्त्ताञ्च विप्रशापञ्च दारुणम् । दुर्गन्धिवातं दुःशब्दं राजा सम्प्रापवन्मनि
मनश्च कुत्सितं प्राणाः क्षुभिताश्च निरन्तरम् । वामाङ्गस्पन्दनं देहजाड्यं राशो बभूव ह

तथापि राजा नि शङ्को ददर्श युद्धमङ्गलम् । सर्वसैन्यसमायुक्तः प्रविवेश रणाजिरम् ॥

अवरह्य रथात्तूर्णं दृष्ट्वा च पुरतो भृगुम् । ननाम दण्डवद् भूमौ राजेन्द्रैः सह भक्तितः ॥

आशिर्यं युयुजे रामः स्वर्गं याहीतिवाञ्छितम् । तेषांसह्यंतद्वभूवदुर्लङ्घ्या ब्राह्मणाशिर्यः

भृगुं प्रणम्य राजेन्द्रो राजेन्द्रैः सह तन्क्षणात् । आरुरोह रथं तूर्णानासज्जसमन्वितम्

नानाप्रकारघायञ्च दुन्दुभि मुरजादिकम् । वादयामास सहसा ब्राह्मणेभ्यो दर्दो धनम्

उवाच रामो राजेन्द्रं राजेन्द्राणाञ्च संसदि । हिनं सत्यं नीतिसारं वाक्यं वेदविदांवरः

परशुराम उवाच ।

अये राजेन्द्र धर्मिष्ठ चन्द्रवंशसमुद्भव । विष्णोरंशस्य शिष्यस्त्वं दत्तात्रेयस्य धीमतः

स्वयं विद्वाश्च वेदांश्च श्रुत्वा वेदविदो मुखात् । कथं दुर्वृद्धिरधुनासज्जनानां विडम्बना

पूर्वमहनस्त्वं लोभान्निरीहं ब्राह्मणं कथम् । ब्राह्मणी शोकसन्तता भर्त्रासादं गता सती

किं भविष्यति ते भूप परत्रैवानयोर्वधात् । सर्वं मिथ्यैव संसारं पद्मपत्रे यथा जलम् ॥

सत्कीर्त्तिश्चाथ दुष्कीर्त्तिः कथा मात्रावशेषिता ।

विडम्बना वा किमतो दुष्कीर्त्तेश्च सतामहो ॥ ५८ ॥

क गता कपिला त्वं क क विवादो मुनिःकुत । यत्कृतविदुपाराज्ञा न कृतंहालिरेतत्

त्वामुपोऽन्तमीशं हि दृष्ट्वा क्षातो हि धार्मिकः । पारणां कारयामासदत्तंतस्यफलं त्वया

अधीतं विधिवद्दत्तं ब्राह्मणेभ्यो दिनेदिने । जगत् ते यशसा पूर्णमयशो वादकै कथम्

दाता वशिष्ठो धर्मिण्डी यशस्वान्पुण्यवान् सुधीः ।

कात्तर्वाध्यांजुनसमो न भूतो न भविष्यति ॥ ६२ ॥

पुरातना वदन्तीति वन्दिनो धरणीतले । यो विख्यातः पुराणेषु तस्य दुष्कीर्त्तिरीदृशो

दुर्वाक्य दुःसहं राजन् तीक्ष्णास्त्रादपि जीविनाम् ।

सद्गुणेषु सतां घवत्राद् द्विदन्तिर्न विनिर्गता ॥ ६४ ॥

न ददामि द्विदन्तिं प्रहृतं कथयाम्यहम् । उत्तरं देहि राजेन्द्र मह्यं राजेन्द्रसंसदि ॥

सूर्यचन्द्रमनूनाञ्च वंशा सन्त्यत्र संसदि । सत्यं वद् सभायाञ्च शृण्वन्तु पितरः सुराः

शृण्वन्तु सर्वे राजेन्द्राः सदसद्भक्तमीश्वराः । पश्यन्तो हि समंसन्तःपाक्षिकंनवदन्तिच

इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च विरराम रणस्थले । राजा बृहस्पतिसमः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६८ ॥

कात्तर्वाध्यांजुन उवाच ।

अये राम हरेरंशो हरिभक्तो जित्तेन्द्रियः । धृतो धर्मो मुखात्प्रेयां त्वञ्च तेषां गुरोर्गुरुः

कर्मणा ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनम् ।

स्वधर्मनिरतः शुद्धस्तस्माद् ब्राह्मण उच्यते ॥७०॥

धन्तर्वहिश्व मननात् करोति कर्म जन्मनि ।

मौनी शश्वद्भेत् काले यो हि स मुनिरुच्यते ॥७१॥

स्वर्णं लोष्ट्रे गृहेऽरण्ये पङ्के मुह्यिग्धचन्दने । समता भावना यस्य सयोगीपरिकीर्त्तितः

सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत् समताधिया ।

हरौ करोति भक्तिञ्च हरिभक्तः स च स्मृतः ॥ ७३ ॥

तपो धनं ब्राह्मणानां तपः कल्पतर्ह्यथा । तपस्या कामधेनुश्च सन्ततं तपसि स्पृहा ॥

प्रेश्वर्यं क्षत्रियाणाञ्च वाणिज्ये च तथा विशाम् ।

क्षत्रियाणाञ्च तपसि स्पृहाऽतीवाऽप्रशंसिता ॥७५॥

ब्राह्मणानां विवादे च स्पृहाऽतीवविनिन्दिता ॥७६॥

रागी राजसिकं कांष्यं कुरुते कर्मरागतः । रागान्धश्च राजसिकस्तेन राजा प्रकीर्त्तितः

रागतः कामधेनुश्च मया मिक्षा वृतामुने । को दोष एव मे जातः क्षत्रियस्यानुरागिणः

कृतः कस्य मुनेरति कामधेनुस्त्वयाधिना । स्पृहारणे वा भोगेवायुष्माकञ्चव्यतिक्रमः
त्रिशदशौहिर्णां सेनां राजेन्द्राणां त्रिकोटिकाम् ।

निहत्यायान्तमेकं मां न हन्तुं सहनं मुने ॥८०॥

आत्मानं हन्तु मायान्तमपि वेदाङ्गपारगम् । न दोषो हनते तस्य न तेन ब्रह्महा भवेत्
प्राग्धित्तं हिंसकानां न वेदेषु निरूपितम् । बधः समुचितस्तेषामित्याह कमलोद्भवः ॥
पित्रा ते निहता भूया महाबलपराक्रमाः । इदानीं राजपुत्राश्च शिशवोऽत्र समागताः ॥

त्रिसप्त कृत्वो निर्मूपां कृत्स्नां कर्तुं महीमिति ।

त्वया कृता प्रतिज्ञा या तस्याश्च पालनं कुरु ॥८१॥

क्षत्रियाणां रणो धर्मो रणे नृत्युर्न गर्हितः । रणे स्पृहा ब्राह्मणानां लोकेवेदे विद्वन्वना
तपोधनानां विप्राणां वाग्बलानां युगे युगे । शान्तिः स्वस्त्ययनं कर्मविप्रधर्मो न सङ्करः
क्षत्रियाणां बलं युद्धं व्यापारश्च बलं विरान् । मिश्राबलं मिथुकाणां शुद्राणां विप्रसेवनम्
हरो मक्तिर्हरेदास्यं वैष्णवानां बलं हरिः । हिंसा बलं खलानाञ्च तपस्याच तपस्विनाम्
बलं वैशश्च वैश्यानां योषितां यौवनं बलम् । बलं प्रतापो भूपानां बालानां रोदनं बलम्
सतां सत्यं बलं मिथ्या बलमेवा सतां सदा । अनुगतानामनुगमः स्वल्पस्वानाञ्च सत्त्वयः

विद्या बलं पण्डितानां गार्भार्थं साहसीबलम् ॥८१॥

धनं बलञ्च धनिनां शुर्बानाञ्च विशेषतः । बलं विवेकः शान्तानां गुणिनां बलमेकता
गुणो बलञ्च गुणिनां चौराणां चौर्यमेव च । प्रियवास्वञ्च कापट्यमधर्मः पुंश्चर्डीबलम्
हिंसा च हिंस्रजन्तूनां सर्पिणां पतिनेवनम् । धर्यापी सुराणाञ्च शिष्याणां गुस्सेवनम्
बलं धर्मो गृहस्थानां भृत्यानां राजसेवनम् । बलं लवः स्तावकानां ब्रह्मचर्याचारिणाम्
यतीनाञ्च सदाचारो न्यासः सन्यासिना बलम् ।

पापं बलं पातकानामराकानां हर्षिर्बलम् ॥८२॥

पुण्यं बलं पुण्यवतां प्रजानां नृपतिर्बलम् । फलं बन्धञ्च वृक्षाणां जलोकानां जलं बलम्
जलं बलञ्च शस्यानां मत्स्यानाञ्च जलं बलम् ।
शान्तिर्बलञ्च भूराणां विप्राणाञ्च विशेषतः ॥८३॥

विप्र शांती रणांशोर्गी नैव दृष्टो नच श्रुत । स्थिते नारायणेदेवे बभूवान्य विपर्यय
 इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विरराम रणाजिर । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वस्तूर्णी बभूवह ॥
 रामस्य भ्रातर सर्वे सुतीक्ष्णश्छपाणय । धारोभिरे रण क्तु महावीरास्तदाज्ञया ॥
 रणोन्मुखाश्च तान्द्रष्ट्वा मत्स्यराजो महान्त । समारंभे रण क्तु मङ्गलोमङ्गलालय ॥
 शरजालेन राजेन्द्रो वारयामास तानपि । चिच्छिद्दु शरजालञ्च जमदग्निमुतास्तदा ॥
 राजा चिक्षेप दिव्यास्त्र शतस्यार्थप्रभ मुने । माहेवरण मुनयश्चिच्छिद्दुश्चावलीलया ॥
 दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिच्छिद्दु सशर धनु । रथञ्च सारथिञ्चैव राज सत्राहमेवच ॥
 न्यस्तशस्त्र नृप दृष्ट्वा मुनयो हर्षविह्वला । दधार शूलिन शूल मत्स्यराजजिघासया ॥
 शूलनि क्षेपसमये चाभवभूवाशरीरिणी । शूल त्यजत विप्रेन्द्रा शिवस्याध्यर्थमेव च ॥
 शिवस्य क्वच दिव्य दत्त दुर्वाससा पुरा । मत्स्यराजगलेऽस्तीति सर्वावयवरक्षणम् ॥

प्राणान्ताञ्च प्रदातार क्वच याचत नृपम् ।

तदा निक्षिप्य शूलञ्च जघान नृपतीश्वरम् ॥१०६॥

तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतखण्डं गतं मुने । श्रुत्वाैवाकाशवाणीञ्च शृङ्गी सन्न्यासवेशकृत्
 ययाचे क्वच भूप जमदग्निमुतो महान् । राजा ददौ च क्वच ब्रह्माण्डे विजय परम् ॥
 गृहीत्वा क्वच तच्च शूलैर्नैव जघान ह । पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमानन ।

महाबलिष्ठो गुणयान् चन्द्रवशसमुद्भव ॥११२॥

नारद उवाच ।

शिवस्य क्वच ब्रूहि मत्स्यराजेन यदुभूतम् । नारायण महाभाग श्रोतुं धीतूहल मम
 नारायण उवाच ।

क्वच शृणु विप्रेन्द्र शङ्करस्य महात्मन । ब्रह्माण्डविजय नाम सर्वावयवरक्षणम् ॥
 पुरा दुर्वाससा दत्त मत्स्यराजाय धीमते । दत्त्वा पटक्षर मन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
 स्थिते च क्वचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम् ।

अस्त्रे शस्त्रे जले चहो तिद्विध्वेनास्ति सशय ॥११६॥

यदुभूत्वा पठनादुराण शिवस्य प्राप लीलया । बभूव विघ्नतुल्यश्च यदुभूत्वा नदिकेश्वर

वीर्येष्टो वीरभद्रो बभूव धारणाद् यत । त्रैलोक्यविजयो राजा हिरण्यकशिपुः स्वयम्
हिरण्याक्षश्च विजयी बभूव धारणाद् यतः । यद्बृन्वापट्नात्सिद्धोदुर्वासा विद्वज्पूजितः
जैगीर्यो महायोगी पटनान् धारणाद् यत । यद्बृन्वावामदेवश्चदेवलश्च्यवनः स्वयम्
अगस्त्यश्च पुत्रस्त्यश्च बभूव विज्वपूजितः ॥१२०॥

ओं नम शिवायेति च मस्तक मे सदावतु । ओं नमः शिवायेति चस्वाहाभालंसदावतु
ओ ही श्रीं ह्रीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदावतु ।
ओं हीं ह्रीं ह्रिं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम् ॥१२१॥
ओं नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदावतु ।
ओं हीं श्रीं ह्रिं सहारकरे स्वाहा कर्णौ सदावतु ॥१२२॥
ओ हीं श्रीं पञ्चवज्राय स्वाहा दन्त सदावतु ।
ओं हीं महेशाय स्वाहा चावरं पातु मे सदा ॥१२३॥
ओं हीं श्रीं ह्रीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान् सदावतु ।
ओं हीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षं सदावतु ॥१२४॥
ओं हीं श्रीं ह्रीं ऐं स्त्राय स्वाहा नाभि सदावतु ।
ओं हीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा पृष्ठ सदावतु ॥१२५॥
ओं हीं ह्रीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा ब्रूञ्च सदावतु ।
ओं हीं श्रीं ह्रीं ईशानाय स्वाहा पार्श्वं सदावतु ॥१२६॥
ओं हीं ईश्वराय स्वाहा उदरं पातु मे सदा ।
ओं श्रीं ह्रीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा वाह सदावतु ॥१२७॥

ओं हीं श्रीं ह्रीं ईश्वराय स्वाहा पातु करौ मम । ओं महेश्वराय स्त्राय नितम् पातु नेत्रे सदा
ओं हीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौ सदावतु । ओं सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा सर्वं सदावतु
प्राच्यां मां पातु भूवेश आग्नेय्या पातु शङ्खः । दक्षिणे पातु मां स्त्रो नैर्ऋत्यां स्थाणुरेव च
पश्चिमे खण्डपरशुरायैष्वां चन्द्रशेखरः । उत्तरे गिग्शिः पातु ऐशान्यार्मादवरः स्वयम् ॥
ऊर्ध्वं मृडः सदा पातु अधो मृत्युञ्जयः स्वयम् । जले स्थले चान्तरीक्षे स्वप्ने जागरणे सदा

पित्तानी पातु मा प्रीत्या भक्तञ्च भक्तवत्सल ॥१३३॥

इति ते कथितं क्वच क्वच परमाद्भुतम् । दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवतिनिश्चितम् ॥१३५॥

यदि म्यात्सिद्धयचोत्तुत्योभयेद्भुवम् । तवस्नेहान्मयात्पातप्रयत्नं यत्नकस्यचित्
क्वच क्वाण्वशात्वात्तमतिगोष्ठं सुदुर्लभम् । अश्वमेधसहस्राणि राजसूपशक्तानि च ॥

मयाणि क्वचस्यास्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ।

क्वचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेत्तर ॥१३८॥

सर्जं सर्जसिद्धाशो मनोवायी भजेद्भु ध्रुवम् । इदं क्वचमनाद्या भजेद्भुय शङ्कर प्रभुम्

शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रं सिद्धिदायकं ॥१३९॥

इति ध्यात्रहर्षवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसवादे गणपतिखण्डे शङ्करक्वचं

प्रकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

सुचन्द्रेण नृपतिना सह रामस्य पुद्गम् ।

नारायण उवाच ।

मत्स्यगजे निपतिते राजा युद्धविशारदः । रात्रेन्द्रान् प्रेषयामास युद्धशास्त्रविशारदान्
बृहद्भयं सोमदत्तं विदमं मिथिलेश्वरम् । निरघाधिपतिञ्चैव मगधाधिपतिन्तथा ॥

धाययुः समरे योद्धुं पशुराममहारथा । त्रिभिरक्षोहिणीभिश्च सेनाभिः सह नारदः ॥

रामस्य भ्रातरः सर्वे धीरास्तीक्ष्णास्त्रपाणयः । धारयामासुरस्त्रैश्च तानेव रणमूर्धनि ॥

ते धीराः शरजालेन द्वित्र्यास्त्रेण प्रयत्नतः । धारयामास सुरैकैकं भ्रातृवर्गान् भृगोस्तथा

धाययौ समरे शीघ्रं वृद्धा हाश्च पराजितान् ।

पिनाकहस्तं सभृगुर्ज्वलद्ग्निसिखोपमं ॥६॥

चिक्षेप नागपाशञ्च परारामो महाबलः । चिच्छेद तं गारुडेन सोमदत्तो महाबलः ॥७॥

भृगुः शङ्करशूत्रेण सोमदत्तं जघान ह । वृहद्वृषलञ्च गदया विदर्भं मुष्टिमिस्तथा ॥८॥

मैथिलं मुद्गरेणैव शक्तया च नैद्यं तथा । मागधं चरणोद्घातेरखजालेन सैनिकान् ॥९॥

निहत्य निखिलान् भूपान् संहाराग्निसमो रणे ।

दृष्ट्वा कार्तवीर्य्यञ्च पशुं रामो महाबलः ॥१०॥

दृष्ट्वा त योद्धमायान्तं राजानश्च महारथाः । धाययुः समरं कर्तुं कार्तवीर्य्यनिवार्य्य च

कान्यकुब्जाश्च शनशः सौराष्ट्राः शनशस्तथा । राट्टाया शनशश्चैव धारेन्द्राः शतशस्तथा

सौम्या चाङ्गाश्च शनशो महाराष्ट्रास्तथा दश ।

कतिथा गुर्जजातीयाः कालिङ्गाः शतशस्तथा ॥१३॥

कृत्वा तु शरजालञ्च भृगुगिच्छेद् तन्क्षणम् ।

तं छित्त्वाभ्युत्थिनो रामो नीहारमिव भास्करः ॥१४॥

त्रिरात्रं युयुधे रामस्तैःसाद्धं समराजिरे । द्वादशाक्षौहिणीं सेनां ततश्चिच्छेद् पशुं ना ॥

ग्मास्तम्मसमूहञ्च यथा राङ्गेन लीलया । छित्त्वा सेनां भूपवर्गं जघान शिवशूलतः ॥

सर्वांस्तान्निहतान् दृष्ट्वा सूर्य्यवंशसमुद्भवः । आजगाम सुचन्द्रश्च लक्षराजैन्द्रसंयुतः ॥

द्वादशाक्षौहिणीमिथ्य सेनाभिः सह संयुगे । कोपेन युयुधे रामं सिंहं सिंहो यथारणे ॥

भृगुः शङ्करशूत्रेण नृपलक्षं निहत्य च । द्वादशाक्षौहिणीं सेनां जघान पशुं ना बली ॥१६॥

निहत्य सर्वाः सेनाश्च सुचन्द्रं युयुधे बली । नागास्त्रं प्रेरयामास निर्हतंतंभृगुःस्वयम्

नागपाशञ्च चिच्छेद् गारुडेन नृपेश्वरः । जहास च भृगुं राजा समरं च पुन पुनः ॥२१॥

भृगुर्नारायणास्त्रञ्च विश्लेष रणमर्द्धनि । अस्त्रं ययौ तं निहन्तुं शतमूर्त्यसमप्रभम् ॥२२॥

दृष्ट्वास्त्रं नृपशार्दूलश्चावस्था रथान् क्षणान् ।

न्यस्तशस्त्रं प्रणनाम स्तुत्या नारायणं शिवम् ॥२३॥

तमेव प्रणतं त्यक्त्या ययौ नारायणान्तिष्ठम् । अस्त्रराजो भगवतो रामसंप्रापविस्मयम्

भृगुः शक्तिञ्च मुषलं तोमरं पट्टिशं तथा । गदां पशुं च कोपेन विश्लेष नृपहिसया ॥२५॥

जग्राह काली तान् सर्वान् सुचन्द्रस्यन्दनस्थिता ।

विश्लेष शिवशूलं स नृपमाल्यं यभूव तन् ॥२६॥

दर्शं पुरतो रामो भद्रकालीं जगत्प्रभम् । वहन्ता मुण्डमालाञ्च विकटास्या भयङ्करीम्
विहाय शम्भमम्भञ्च पिनाकञ्च भृगुस्तदा । तुष्टाव ता महामाया भक्तिनघ्रात्मकन्धर
परशुराम उवाच ।

नम शङ्करकान्तायै सारायै ते नमो नम । नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो नम
नमो नमो जगद्धायै जगत्कार्यै नमो नम । नमोऽस्तुते जगन्मात्रेकारणायै नमोनम ॥
प्रसीद जगता मात सृष्टिसंहारकारिणि । त्वत्पादे शरणं यामि प्रतिज्ञा सार्थकं कुर ॥
त्वयि मे विमुखायाञ्च को मा रक्षितुमीश्वर । तत्र प्रसन्ना भव शुभेमाभक्त भक्तचत्सले
युष्माभि शिवलोकै च मह्य दत्तो धर पुरा । त धर सफलं कर्तुं त्वमर्हसि धरानने
पशुं रामस्तत्र श्रत्वा प्रसन्नाभवदम्बिका । माभैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत ॥३४॥
एतद् भृगुश्च स्तोत्रं भक्तियुक्तञ्च य पठेत् । महाभयात्समुत्तीर्णं स भवेदलीलया ॥
स पूनितश्च त्रैलोक्ये त्रैलोक्यविजयी भवेत् । ज्ञानिश्रेष्ठो भवेच्चैव त्रैरिपक्षविमर्दक
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे भृगुश्च कालीस्तोत्रम् ।

एतस्मिन्तरे ब्रह्मा भृगु धर्मभृता वरम् । आगत्य कथयामास रहस्यं राममेव च ॥३७॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु राम महाभाग रहस्यं पूर्णमेव च । सुचन्द्रजयहेतुञ्च प्रतिज्ञासार्थकाय च ॥३८॥
दशाक्षरा महाविद्या दत्ता दुर्वाससा पुरा । सुचन्द्रायै च कवचं भद्रकाल्या सुदुर्लभम्
कवचं भद्रकाल्याश्च देवानाञ्च सुदुर्लभम् । कवचं तद्गलेयस्य सर्वशत्रुविमर्दकम् ॥
अतीव पूज्यं शस्तञ्च त्रैलोक्यजयकारणम् । तस्मिन् स्थिते च कवचे कस्त्वजेतुमलं भुवि
भृगो गच्छतु भिक्षार्थं करोतु प्रार्थनां नृप । सर्व्यवशोद्भवो राजा दाता परमधार्मिक
प्राणाश्च कवचं मन्त्रं सर्वं दास्यति निश्चितम् ॥४३॥

भृगु सन्न्यासिप्रेषेण गत्वा राजान्तिष्ठ मुने । भिक्षाञ्चकार मन्त्रञ्चकवचपरमाद्भुतम्
राजा ददौ च मन्त्रञ्च कवचं परमादरात् । ततः शङ्करशूलेन जघान तं नृप भृगु ॥४५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कालीस्तोत्रं नाम

पद्मत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

कालीकवचम् ।

नारद उवाच ।

कवचं श्रोतुमिच्छामिताञ्चविद्यां दशाक्षरीम् । नाथ त्वत्तोहिसर्वज्ञभद्रकाल्याश्चसाम्प्रतम्

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि महाविद्यां दशाक्षरीम् । गोपनीयञ्च कवचं त्रिपु लोकेषु दुर्लभम्

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहेति च महामन्त्रम् ।

दुर्वासा हि ददौ राज्ञे पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥ ३ ॥

दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिः कृता पुरा । पञ्चलक्षजपेनैव राज्ञा कवचमुत्तमम् ॥ ४ ॥

यभूव सिद्धकवचोऽप्ययोऽध्यामाजगाम सः । कृत्वाहि पृथिवीं जित्येकवचस्य प्रसादतः

नारद उवाच ।

श्रुता दशाक्षरी विद्या त्रिपु लोकेषु दुर्लभा । अधुना श्रोतुमिच्छामि कवचं ब्रूहिमेप्रभो

नारायण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम् । नारायणेन यदत्तं कृपया शूलिने पुरा ॥ ७ ॥

त्रिपुरस्य वधे घोरे शिवस्य विजयाय च । तदेव शूलिना दत्तं पुरा दुर्वाससे मुने ॥ ८ ॥

दुर्वाससा च यदत्तं सुचन्द्राय महामन्त्रे । अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्राद्यविग्रहम् ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ।

क्लीं कपालं सदा पातु ह्रीं ह्रीं ह्रीं इति लोचने ॥ १० ॥

ओं ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा नासिकां मे सदा वतु । क्लीं कालिके रक्षरक्षस्वाहादन्तं सदा वतु

ह्रीं भद्रकालिके स्वाहा पातु मेऽथरयुग्मकम् । श्रीं ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा कण्ठं सदा वतु

ओं ह्रीं कालिकायै स्वाहा कर्णयुग्मं सदा वतु । श्रीं क्लीं क्लीं कालिकायै स्वाहा स्कन्धं पातु सदा वतु

ओं क्लीं भद्रकालिके स्वाहा मनसः सदा वतु । श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा मनसि सदा वतु

ओं ही कालिकायै नमः स्वाहा ममपृष्ठं सदायतु । रक्तवीजघिनाशिन्यै स्वाहा हस्तौ सदायतु

श्रीं ह्रीं ह्रीं मुण्डमालिन्यै नमः स्वाहा पादौ सदायतु ।

ओं हा चामुण्डायै नमः स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदायतु ॥ १६ ॥

प्राच्यापातुमहाकालीआग्नेय्यांरक्तदन्तिका । दक्षिणेपातुचामुण्डानैर्ऋत्यांपातुकालिका
श्यामान चारुणेपातु वायव्यांपातु चण्डिका । उत्तरेविकट्टास्याचपेशान्यांसाट्टहासिनी
ऊर्ध्वपातुलोलजिह्वा मायाद्यापात्वधः सदा । जलेस्थले चान्तरिक्षेपातुविश्वप्रसू सदा
इति ते कथितं घत्सु सर्वमन्त्रैर्घृणपिग्रहम् । सर्वेषां कवचनाञ्च सारभूतं परात्परम् ॥
समद्वीपेश्वरो राजा सुचन्द्रोऽस्य प्रसादतः । कवचस्य प्रसादेन माम्घाता पृथिवीपतिः
प्रचेता लोमशश्चैव यतः सिद्धो बभूव ह । यतो हि योगिनां श्रेष्ठः सौमरिःपिप्पलायनः
यद्विद्यान् सिद्धकवचः सर्वसिद्धीश्वरोभवेत् । महादानानि सर्वाणि तपांसि च व्रतानि च
निश्चितं कवचम्यास्य कलां नार्हन्ति पोट्टशीम् ॥ २३ ॥

इदं कवचमज्ञात्वा भजेन् कालीं जगत्प्रसूम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे
कालीकवचं नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सुचन्द्रं पतितं दृष्ट्वाऽपरैः राजभिः सह रामयुद्धम्

नारायण उवाच ।

सुचन्द्रे पतिते ब्रह्मनृराजेन्द्राणांशिरोमणौ । आजगाम पुष्कराक्षः सेनाश्वक्षीहिणीयुतः
सूर्यवंशोद्भवो राजा सुचन्द्रतनयीमहान् । महालक्ष्मीसेवकश्च लक्ष्मीवान्सूर्य्यसन्निभः
महालक्ष्म्याश्च कवचं गले यम्य मनोहरम् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तस्त्रैलोक्य चिजयी ततः ।
तं दृष्ट्वा भ्रातरं सर्वे पशुरामस्य धीमत । आययुः समरं कर्तुं नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥

राजेन्द्रः शरजालेन छेदयामास लीलया । चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराश्चावलीलया ।
 चिच्छिदुः स्यन्दनं राक्षस्ते वीराः पञ्चबाणतः । सारथिं पञ्चबाणेन रथाग्रं दशबाणतः
 तदनु सतयाणेन तूर्णञ्च पञ्चबाणतः । चिच्छिदुस्तदुभ्रातृवर्गान् विप्राः शङ्करशूलतः ॥
 ते च व्यक्षाहिर्णासेना निजघ्नुश्चावलीलया । हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीरा शिवशूलनिचिक्षिपुः
 गले यभूय तन् शूल राज पुष्करमालिका ॥ ८ ॥

शक्तिञ्च परिघञ्चैव भुशुण्टी मुद्गरन्तथा । गदाञ्च चिक्षिपुर्विप्राः कोपेन ज्वलदग्नयः ॥९॥
 तानि शस्त्राणि चूर्णानि नृपेन्द्रदेहयोगतः । विस्मिता त्रातरः सर्वे भृगोरेव महामुने ॥
 रथंधनुश्चशस्त्राणिवास्त्राणिविविधानिच । सेनांप्रस्थापयामासकार्तवीर्यार्जुन स्वयम्
 राजा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महाबलः । चकार शरजालञ्च महाघोरतरं मुने ॥१०॥
 चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराः शस्त्रपाणयः । राजा प्रस्थापनेनैव निद्रितांस्तांचकारह
 भ्रातृंश्च निद्रितानृद्वापशंरामो महाबलः । क्षनविश्रतसर्वाङ्गान् योधयामास तत्त्वतः ॥
 योधयित्वा तान्निवार्यं जगाम रणमूर्द्धनि । चिक्षेप पशं कोपेन शीघ्रं राजजिघांसया
 छित्त्वा राज्ञः किराटञ्च पशुभूमौ पपात ह । जग्राह पशुं शीघ्रं पशुरामो महाबलः ॥
 तदा शङ्करशूलञ्च चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगामशिवसन्निधिम्
 राजा निहन्तुं तं रामं शरजालञ्चकार ह । चिच्छेद शरजालञ्च पशुरामश्च लीलया ॥
 क्रमेण राजा नानास्त्रं चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । तच्छिच्छेदे क्रमेणैव भृगुः शस्त्रभृतांघरः
 भृगुश्चिच्छेप नानास्त्रं महासन्धानपूर्वकम् । तच्छिच्छेदे महाराजः सन्धानेनावलीलया
 रामश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं सन्धानमन्त्रपूर्वकम् । राजा निर्वापणञ्चक्रे सन्धानेनावलीलया ॥
 सर्वाण्यस्त्राणिशस्त्राणिरामः पाशुपतविना । चिक्षेपकोपविभ्रान्तो भूपश्चिच्छेदतानिच
 रामः स्तुत्वा शिवं तत्त्वा ददे पाशुपतं मुने । नारायणश्च भगवानुवाच विप्ररूपधृक् ॥
 ब्राह्मण उवाच ।

किङ्करोपि भृगो वत्स त्वमेवज्ञानिनां वरः । नरं हन्तुं पाशुपतं कोपार्तिकक्षिपसिप्रमात्
 यिष्वं पाशुपतेनैव भवेद्भस्म च सत्वरम् । सर्वघ्नञ्च शस्त्रमिदं विना श्रीकृष्णमाश्वरम्
 अहो पाशुपतं जेतुमलमेव सुदर्शनम् । हरेः सुदर्शनञ्चैव सर्वास्त्रपरिमर्दकम् ॥ २६ ॥

पाशुपत पशुपतेऽङ्गं मुदर्शनम् । एत प्रधानं सर्वेषामस्त्राणाञ्च जगत्त्रये ॥ २७ ॥
 त्यज पाशुपत ब्रह्मन् मदाय वचनं शृणु । यथा जैष्यसि राजान पुष्कराक्ष महाबलम् ॥
 कार्तवीर्यमनेन यथा जैष्यसि साम्प्रतम् । ध्रुवता सावधानेन तत्सर्वं कथयामि ते ।
 महा- यश्च कश्च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । भक्त्याश्च पुष्कराक्षेण धृत कण्ठेविभ्रानत
 परं नृनिनाशित्वा कश्च परमाद्भुतम् । धृतञ्च दक्षिणे गार्हो पुष्कराक्षसुतेन च ॥
 कश्चस्य प्रसादेन विश्वं जेतुं क्षमं च तौ । कीं जेता च त्रिभुवने देहे चकवचे स्थिते
 नहं याम्यामि भिक्षार्थं सन्निधाने तयोमुने । करिष्यामि च तद्विक्षा प्रतिज्ञासफलायते
 ब्राह्मणस्य वचं श्रुत्वा राम सत्रस्तमानस । उवाच ब्राह्मण वृद्ध हृदयेन विदूयता ॥

परशुराम उवाच ।

न जानामि महाप्राज्ञकर्मब्राह्मणरूपवृक्ष । शीघ्रञ्च ब्रूहि मामृद्ध तदागच्छनृपान्तिकम्

परशुरामवचं श्रुत्वा ब्रह्मस्य ब्राह्मण स्वयम् ।

अहं विष्णुरेवमुक्त्वा ययौ भिक्षितुमीश्वर ॥ २६ ॥

गत्वातयो सन्निधानथयाचे कवचञ्जतौ । दृष्टतुस्तौ च कवचे विष्णवे विष्णुमायया ॥

गृह्णात्वा कवचे विष्णुर्वैकुण्ठं प्रतगाम स ॥ २७ ॥

नारद उवाच ।

महालक्ष्म्याश्च कवचं केन दत्तं महामुने । पुष्कराक्षाय भूपाय श्रोतुं कौतूहलं मम ॥२८

कश्चञ्चापि दुर्गाया पुष्कराक्षसुताय च । दुर्लभं केन वा दत्तं तद्वचान् चकुर्महसि ॥

कवचञ्चापि विम्भृतं तपोश्च तस्य किं फलम् ।

मन्त्रो च किं प्रकारो तन्मे ब्रूहि जगद्गुणे ॥ ४० ॥

नारायण उवाच ।

दत्तं सनत्कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते । महालक्ष्म्याश्च कवचं मन्त्रञ्चापि दशाक्षरं ॥

स्तनञ्चापि गोप्यञ्चैवोक्तं तच्छ्रितञ्च यत् । व्यानञ्च सामवेदीयं पूजाविधिमनोहरम्

दुर्गायाश्चापि कश्च दत्तं दुर्वाससा पुरा । स्तनञ्चापि गोप्यञ्च मन्त्रञ्चापि दशाक्षरं

पश्चात् श्रीप्यसि तन् सर्वं देयाश्च परमाद्भुतम् । महासुद्धसमारम्भेदत्तं प्रार्थनयाचयत्

महालक्ष्म्याश्च मन्त्रञ्च शृणु तं कथयामि ते ।

ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहेति परमाहुतम् ॥ ४५ ॥

ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणु पूजाविधिं मुने । दत्तं तस्मै कुमारैण पुष्कराक्षाय धीमते ॥

सहस्रदलपद्मस्थं पद्मनाभप्रियां सर्तीम् । पद्मालयां पद्मवक्त्रां पद्मपत्रामलौचनाम् ॥

पद्मपुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पविशायिनीम् । पद्मिनीं पद्महस्ताञ्च पद्ममालाविभूषिताम् ॥ ४८

पद्मभूषणभूषाङ्गां पद्मशोभाविभ्रङ्गिणीम् । पद्मकाननं पश्यन्तीं सस्मितां तां भजे मुदा ॥

चन्दनाष्टदले पद्मे पद्मपुष्पेण पूजयेत् । गणं सम्पूज्य द्वाचैद्योपचाराणि योऽश ॥ ५० ॥

ततस्तुत्वा च प्रणमेत् साधको भक्तिपूर्वकम् । कवचं धूयतां ब्रह्मन् सर्वसारं वदामि ते

नारायण उवाच ।

शृणु विद्रेन्द्र पद्माया कवचं परमं शुभम् । पद्मनाभेन यदत्तं नामिपद्मे च ब्रह्मणे ॥ ५२ ॥

सम्प्राप्य कवचं ब्रह्मा तत् पद्मे ससृजे जगत् । पद्मालयाप्रसादेन सलक्ष्मीको बभूव सः

पद्मालयावरं प्राप्य पाद्मश्च जगतां प्रभुः । पाद्मेन पद्मकल्पे च कवचं परमाहुतम् ॥ ५४ ॥

दत्तं सनत्कुमाराय प्रियपुत्राय धीमते । कुमारैण च यदत्तं पुष्कराय च नारद ॥ ५५ ॥

यदृत्वा पटनादुन्हा सर्वसिद्धेश्वरो महान् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तः सर्वसम्पन्समन्वितः ॥

यदृत्वान्न घनाध्यक्षः कुबेरश्च घनाधिपः । स्वायम्भुवो मनुःश्रीमान् पटनाद्धारणादुद्यतः

प्रियत्रतोत्तानपादौ लक्ष्मीवन्तौ यतो मुने । पृथुः पृथ्वीपति सप्तो बभूव धारणादुद्यतः

कवचस्य प्रसादेन स्वयं दक्ष प्रजापतिः । धर्मश्च कर्मणां साक्षी पातायस्य प्रसादतः

यदृत्वा दक्षिणे बाहौ विष्णुः क्षीरोदशायिकः ।

भक्त्या विधत्ते कण्ठे च शैवो नारायणांशकः ॥ ६० ॥

यदृत्वा वामनं लेभे कश्यपश्च प्रजापति । सर्वदेवाधिपः श्रीमान्महेन्द्रो धारणादुद्यतः

राजा महतो भगवान् बभूव धारणादुद्यतः ।

त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान्बहुषो यस्य धारणान् ॥ ६२ ॥

विद्वं विजिम्बे सद्वाङ्ग पटनाद्धारणादुद्यतः । मुचुकुन्दो यत श्रीमान्माग्धावृतनयोमहान्

सर्वसम्पन्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिःशुद्धश्च बृहती देवी पद्मालयास्वयम्

धर्मार्थकामनो न नयोग प्रकीर्तित । पुण्यर्थाजञ्च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥६५॥

ॐ न महादेवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ।

ॐ न पातु कपालञ्च लोचने ध्रौ ध्रियै नम ॥ ६६ ॥

ॐ न श्रा ध्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदावतु ।

ॐ श्रा ध्रौ ही क्लौ महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम् ॥ ६७ ॥

ॐ श्रा पद्मालयायै च स्वाहा दन्तं सदावतु ।

ॐ श्रा वृष्णप्रियायै च दन्तरुद्रं सदावतु ॥ ६८ ॥

ॐ श्रा नारायणेशायै मम कण्ठं सदावतु ।

ॐ श्रा क्षेत्रावकान्तायै मम स्कन्धं सदावतु ॥ ६९ ॥

ॐ श्रा पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदावतु ।

ॐ श्रा ससारमात्रे मम वक्षः सदावतु ॥ ७० ॥

ॐ श्रा श्रा वृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदावतु ।

ॐ श्रा ध्रौ ध्रियै स्वाहा मम हस्तौ सदावतु ॥ ७१ ॥

ॐ श्रा निवासकान्तायै मम पादौ सदावतु ।

ॐ श्रा ध्रौ ध्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥ ७२ ॥

प्राच्या पातु महालक्ष्मीराष्ट्रैर्व्यां कमलाख्या ।

पद्मा मा दक्षिणे पातु नैर्ऋत्या श्रीहरिप्रिया ॥ ७३ ॥

पद्मालया पश्चिमे मा वायव्यां पातु श्री स्वयम् ।

उत्तरे कमला पातु पेशान्या तिन्युकन्यका ॥ ७४ ॥

नारायणेशा पातूर्ध्वमथो विष्णुप्रियाऽवतु । सन्तत सर्वत पातु विष्णुप्राणाधिका मम

इति ते कथितं घत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । सर्वैश्वर्य्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ७५ ॥

सुवर्णपर्वत दत्त्वा मेऽस्तुल्य द्विजातये । यत् फलं लभते धर्मो कवचेन ततोऽधिकम् ॥

गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः । कण्ठेवा दक्षिणेवाही स श्रीमान् प्रतिजन्मनि

अस्ति लक्ष्मीर्गृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम् ।

देवेन्द्रैश्चानुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत् ॥ ७६ ॥

स सर्वपुण्यवान्यामान् सर्वश्रेष्ठेषु दीक्षितः । सन्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले ॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोह मयैरपि । गुरुमन्त्राय शिवाय शरणाय प्रकाशयेत्
इदंकवचमज्ञात्वा जपेह्यस्मजिगत्प्रसूम् । कोटिभङ्ग्यप्रजतोऽपिनमन्त्रः सिद्धिदायकः ॥
इति ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदनवादे गणपतिखण्डे लक्ष्मीकवचं नामाष्टात्रिं-
शत्तमोऽध्यायः ।

एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

दुर्गाकवचम् ।

नारद उवाच ।

कवचं कथितं ब्रह्मन् पद्मायाश्च मनोहरम् । परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं कथय प्रभो ॥
पद्माक्षप्राणतुल्यञ्च जीवनं बलकारणम् । कवचानाञ्च यत् सारं दुर्गास्तेवनकारणम् ॥२॥
नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गाशाः कवचं शुभम् । श्रीकृष्णेनैव यदत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शङ्कया ददौ पुरा । जघान त्रिपुरं स्त्री यद्गत्वा मक्तिपूर्वकम् ॥४॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः । यतो बभूव पद्माक्ष सतद्दीपेश्वरो जया ॥५॥
यद्गत्वापठनाद् ब्रह्माज्ञानवान् शक्तिमान् भुवि । शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनाञ्चगुरुर्यतः
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः ॥ ६ ॥

ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिच्छन्दश्च गायत्रीदेवी दुर्गतिनाशिनी
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्तितः । पुण्यतीर्थञ्च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥७॥

ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ॥

ओं ह्रीं मे पातु कपालञ्च ॐ ह्रीं श्रीमिति लोचने ॥ ६ ॥

पातुने कर्णप्रमञ्ज ओ दुर्गायै नमः सदा । ओं हीं धीमितिनात्ताने सदा पातु च सर्वतः ॥

हां धीं हूमिति दन्तानि पातु ह्योमोष्ठयुग्मकम् ।

कां नीं व्रीं पातु कण्ठञ्च दुर्गे रक्षतु गण्डकम् ॥ ११ ॥

स्वप्न्य दुर्गविनाशनैस्वाहा पातुनिःशतम् । वसो विपद्दिनाशिन्यैस्वाहा मे पातु सर्वतः
दुर्गे दुर्गे रक्षणीति स्वाहा नामि सदावतु । दुर्गे दुर्गे रक्ष रक्ष पृष्ठं मे पातु सर्वतः ॥ १२ ॥

ओ हीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदावतु ।

ओं हीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥ १४ ॥

प्राच्या पातु महामाया आग्नेय्यां पातु कालिका ।

दक्षिणे दक्षकन्या च नैऋत्यां शिवसुन्दरी ॥ १५ ॥

पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारणे सदा । कुबेरमाता कौशिक्यामिशान्यार्माश्वरी सदा ॥

उर्ध्वे नारायणी पातु अन्निकाशः सदावतु । ज्ञाने ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रासदावतु

इति ते कथितं ब्रह्म सर्वमन्त्रांघविग्रहम् । ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥

सुज्ञातं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यन् फलम् । सर्वप्रतोषवासे च तत्फलं लभते नरः ॥

गुस्मभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणे वाही कवचं धारयेत्तु यः

स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः । इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्दुर्गातिनाशिनीम् ॥

शतलक्षप्रज्ञतोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥ २२ ॥

कवचं काण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सुन्दरम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयंसुदुर्लभम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिकण्डे नारायणनारदसंवादे

दुर्गाकवचं नामैकीनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सहस्राक्षमरणानन्तरं कार्तवीर्यस्य युद्धागमनम् ।

नारायण उवाच ।

ते गृहीत्वा तदा विष्णो वैकुण्ठञ्च गते सति । सपुत्रञ्च सहस्राक्षं जघान भृगुनन्दनः ॥
 कृत्वा युद्धन्तु सप्ताहं ब्रह्मास्त्रेण प्रयत्नतः । राजा कचचर्हिनोऽपि सपुत्रश्च पपात ह ॥
 पतिते तु सहस्राक्षे कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम् । आजगाममहावीरोद्विलक्षाशौहिणीयुतः
 सुवर्णरथमारुह्य रत्नसारपरिच्छिदम् । नानास्त्रं परितः कृत्वा तस्थौ समरमूर्धनि ॥४॥
 पशुरामश्च समरे तं राजेन्द्रं ददर्श ह । रत्नालङ्कारभूषाढ्यं राजेन्द्रकोटिभिः सह ॥५॥
 रत्नातपत्रभूषाढ्यं रत्नालङ्कारभूषितम् । चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं सस्मितं सुमनोहरम् ॥६॥
 राजा दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमवच्छा रथादहो । प्रणम्य रथमारुह्य तस्थौ नृपगणैः सह ॥ ७ ॥
 ददौ शुभाशिरं तस्मै रामश्च समयोचितम् । प्रोवाच च गतार्थञ्च स्वर्गं गच्छेत्तिसानुगः
 उभयोः सेनयोर्युद्धं बभूव तत्र नारद । पलायिता रामशिष्या भ्रातरश्च महाबलाः ।

इतविहसतसर्वाङ्गाः कार्तवीर्यप्रपीडिताः ॥ ६ ॥

नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां धरः । न ददर्श स्वसैन्यञ्च राजसैन्यं स्वमेव च १०
 विश्लेष घर्हि रामश्च बभूवाग्निमयं रणे । निर्वापयामास राजा धारणेनावलीलया ॥११॥
 विश्लेष रामो गान्धर्वं शूलसर्पसमन्वितम् । वायव्येन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥
 विश्लेष रामो नागास्त्रं दुर्निवार्यं भयङ्करम् । गारुडेन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥
 माहेश्वरञ्च भगवांश्चिश्लेष भृगुनन्दनः । निर्वापयामास राजा वैष्णवास्त्रेण लीलया ॥
 भृगुश्चिश्लेष ब्रह्मास्त्रं नृपनाशाय नारद । ब्रह्मास्त्रेण च भूपस्य प्राप निर्वापणं रणे ॥
 दत्तदत्तञ्च यच्चूलमन्त्र्यं मन्त्रपूर्वकम् । जग्राह राजा समरे पशुरामरथाय च ॥१६॥
 शूलं ददर्श रामश्च शतसूर्यसमप्रमम् । प्रलयान्निशितोद्विकं दुर्निवार्यं सुरैरपि ॥ १७॥
 पपात शूलं समरे रामस्योपरि नारद । मूर्च्छामवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन् ॥१८

पतिने पर्णान्म व नय देवा भयाकुला । राजासुः समरं तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
 शङ्कुश्च मन्त्रान् महाजानेन लीलया । ब्राह्मणं जीवयामास तूर्णं नारायणाजया ॥२०॥
 भृगुश्च यत्ना प्राप्य ददर्श पुत्रं सुगन् । प्रणताम परं भक्त्या लज्जा नन्नात्मकन्धर । ॥
 राजा वृश मुग्धाश्च भक्तिनन्नात्मकन्धरः । प्रणम्य शिरसा मूर्ध्ना तुष्टाव परमेश्वरान्
 नन्नात्मा मगवान् दत्तान्यो रणस्थलम् । शिष्यरक्षानिमित्तेन कृपालुर्मकबन्सलः ॥
 भृगु पाशुपतास्त्रञ्च जग्राह कौपमयुतः । दत्तदत्तेन दृष्टेन यमूय स्तम्भितो रणे ॥२१॥
 ददर्श स्तम्भितो गमो राजान रणभूर्जनि । नातापार्षदयुक्तेन कृष्णेन रक्षितं रणे ॥२५॥
 सुदर्शनं प्रज्ज्वलन् क्षमण कुर्वता सदा । सम्भिनेन स्तुतेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥२६॥
 गोपाश्वानयुक्तेन गोपयोगविधारिणा । नवीनजल्लामेन वंशीहस्तेन धादयन् ॥ २७ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्भृवाशरीरिणी । दत्तेन दत्तं कवचं कृष्णस्य परमान्नतः ॥२८॥

राजोऽस्मि वक्षिणे बाहौ सट्टनगुट्टिकान्वितम् ।

गृहीतकवचे शम्भो मिश्रया योगिना गुप्तं ॥ २६ ॥

त्दाहन्तु नृपं शक्तो भृगुश्चेति च नारद । श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाणीं शङ्करो द्विजस्वरूपकृ
 मिश्रां कृत्वा तु कवचमानीय च नृपस्य च । शम्भुना भृगवे दत्तं कृष्णस्यकवचञ्च यत्
 एतस्मिन्नन्तरे देवा जग्मुः स्वस्थानमुत्तमम् । उवाच पर्शुरामश्च राजानं समरं प्रति ॥

परशुराम उवाच ।

राजेन्द्रोत्तिष्ठ समरं कुरु साहसपूर्वकम् । कालमेदे जयो नृणां कालमेदे पराजयः ॥
 धर्षयितं विधिवद्दत्तं कृत्वा पृथ्वा सुशासिता । यशःकृन्तन्मन्मग्नोत्वयाहंमूर्च्छितोऽधुना
 जिता । सर्वे च राजेन्द्रा लीलया रावणोजितः । जितोऽहं दत्तशूलेनशम्भुनाजीवितः पुनः
 रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः । मूर्ध्ना प्रणम्य तं भक्त्यायथायौक्तिमुवाचह

राजोवाच ।

किमर्थाय किं वा दत्तं कावा पृथ्वा सुशासिता । गताः कतिविधाभूपामादृशाद्यर्णातले
 बुद्धिन्नेजो विक्रमश्च विप्रिधा रणमन्त्रणा । श्रीरेश्वर्यन्तयाजानंदानराक्षिश्चर्लाकिकम्
 आचारो पितृयो विद्या प्रतिष्ठा परमं तपः । सर्वं मनोरमासङ्गे गतमेव मम प्रभा ॥२६॥

सा च स्त्री प्राणतुल्या मे साध्वीपद्मांशसम्भवा । यज्ञेषु पत्नी मातेवत्सेहेकीडतिसङ्गिनी
 आवाल्यान्सङ्गिनी शश्वन्शयनेभोजने रणे । तां विना प्राणहीनोऽहंविपहीनोययोरगः
 त्वया न दृष्टं युद्धं मे पुरेयं शोचना स्थिता । द्वितीयशोचना विप्र हतोऽहं ब्राह्मणेन च
 काले सिंहः शृगालञ्च शृगालः सिंहमेव च । काले व्यात्रं हन्ति मृगोगजेन्द्रंहरिणस्तथा
 महिषं मयिका काले गरुडञ्च तयोरगः । किङ्कःस्तौनिराजेन्द्रं कालेराराज च किङ्करम्
 इन्द्रञ्च मानवः काले काले ब्रह्मा मरिष्यति । तिरोभूत्वाच प्रकृतिः काले श्रीकृष्णविग्रहे
 मरिष्यन्ति सुराः सर्वे त्रिलोकस्थश्चरान्वराः । सर्वे कालेलयंयान्तिरालोहिदुरतिक्रमः

कालम्य कालः श्रीकृष्णः स्रष्टुः स्रष्टा यथेच्छया ।

संहर्त्ताचैव संहर्त्तुः पातुः पाता परान्परः ॥ ४७ ॥

महान् स्थूलतमः(स्थूलान्)सूक्ष्मान् सूक्ष्मतमःशुशः । परमाणुपरःकालःकालश्चकालमेदकः
 यस्य लोमानिविश्रानि स पुमांश्चमहाविराट् । तेजसा पोडशांशश्चकृणस्यपरमात्मनः
 ततः क्षुद्रविराड् जानः सर्वेषां कारणंपरम् । यः स्रष्टा च स्वयं ब्रह्मायन्नाभिकमलोद्भवः
 नामैः कमलद्रण्डस्य योऽन्तं न प्राप यत्नतः । भ्रमणाल्लभ्यवर्षञ्च ततः स्वस्थानसंस्थितिः
 तपश्चक्रे तनस्तत्र लक्षवर्षञ्च वायुभुक् । तनो ददर्श गोलोकं श्रीकृष्णञ्च सपार्यदम् ॥
 गोपगोपीपरिवृतं द्विभुजं मुरलीकरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च राधावशःस्थलस्थितम् ॥
 दृष्टानुजां गृहीत्वा च प्रणम्य च पुनः पुनः । ईश्वरेच्छाञ्च विनाय स्रष्टुं सृष्टिं मनां दधे
 यः शिवःसृष्टिर्नहर्त्ता स च स्रष्टुर्ललाटजः । विष्णुःपाताक्षुद्रविराट् श्वेतर्द्धीपनिवासकृन्
 सृष्टिकारणभूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सन्ति विश्वेषु सर्वेषु श्रीकृष्णस्य कलोद्भवाः

तेऽपि देवाः प्राकृतिकाः प्राकृतश्च महाविराट् ।

सर्वप्रसृतिः प्रकृतिः श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥५॥

न शक्तः परमेशोऽपि तां शक्तिं प्रकृतिं विना ।

सृष्टिं विधातुं मायेशो न सृष्टिर्मायया विना ॥५८॥

सा च कृष्णे निरोभूत्वा सृष्टिसंहारपालके । साविमूढा सृष्टिकाले साबन्धिन्यामहेश्वरी
 कुलालश्च घटं कर्त्तुं यथा शक्तो मृदं विना । स्वर्णं विना स्वर्णकारःकुण्डलंकर्त्तुं मन्मथः

सा च शक्तिं सृष्टिकाले पञ्चधा चेश्वरैर्ज्जया । राधापद्माचसावित्रीदुर्गादेवीसरस्वती
 प्राणाधिष्ठात्रा या देवावृष्णस्यपरमात्मन । प्राणाधिकप्रियतमा सा राधा परिकीर्त्तिता
 ऐश्वर्याधिष्ठात्रिदेवी सर्वमङ्गलकारिणा । परमानन्दरूपा च सा लक्ष्मी परिकीर्त्तिता
 विद्याधिष्ठात्रिदेवी या परमेशस्य दुर्लभा । वेदशास्त्रयोगमाता सा सावित्री प्रकीर्त्तिता
 बुद्ध्याधिष्ठात्रि या देवा सर्वशक्तिस्वरूपिणी । सर्वज्ञानात्मिका सर्वासादुर्गादुर्गनाशिनी
 वाग्नाधिष्ठात्रि या देवी शास्त्रज्ञानप्रदा सदा । कृष्णकण्ठोद्भवा साच याचदेवो सरस्वती
 पञ्चधादौ स्वयं देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी । ततः सृष्टिक्रमेणैव बहुधा कलया च सा ॥६७
 योषितः प्रकृतेर्या पुमास पुरुषस्य च । मायया सृष्टिकाले च तद्विना न भवेद्भव ॥
 सृष्टिश्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मन् ब्रह्मोद्भवासदा । पाताविष्णुश्च सहर्ता शिव शश्वत्शिवप्रद
 दत्तदत्त ज्ञानमिदं राम महाञ्ज पुष्करे । दाक्षाकाले च माभ्याञ्च मुनिप्रवरसन्निधौ ॥
 इत्युक्त्या कार्तवाय्यश्च राम नत्वा च सस्मित । आररोह रथं शीघ्रं गृहीत्वासशरधनु
 रामस्ततो राजसैन्यं ब्रह्मास्त्रेण जघान ह । नृप पाशुपतेनैव लीलया आहरिं स्मरत् ॥
 एव त्रिं सप्तहृत्पञ्च क्रमेण च वसुन्धराम् । रामश्चकार निभूपा लीलया च शिवस्मरन्
 गर्भस्य मातृकोडस्थं शिशुं वृद्धञ्च मन्थमम् । जघान क्षत्रियं राम प्रतिज्ञां पालनाय वै
 कात्तवीर्यश्च गोलोकजगामकृष्णसन्निधिम् । जगामपरशुरामश्च स्वालयथीर्हरिस्मरन्
 त्रिं सप्त हृत्यो निभूपां महा दृष्ट्वा महेश्वर । पशुना रमणं दृष्ट्वा पशुं रामश्चकार तम् ॥
 देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिनरा । सर्वे चक्रुः पुष्पवृष्टिं राममूर्ध्नि च नारद
 स्वर्गं दुन्दुभयो नेदुर्हरिशब्दो बभूव ह । परशुरामस्य यशसा शुभ्रेण पूरितं जगत् ॥७८
 ब्रह्मा भृगुश्च शुक्रश्च च्यवनो बाल्माकिस्तथा । जमदग्निर्ब्रह्मलोकादाजगाम प्रहर्षित ॥
 पुलकाङ्कितसवाङ्गा सानन्दाध्रुसमन्विता । दूषापुष्पकरा सर्वे कुर्वन्तो मङ्गलाशिपम्
 प्रणनाम च तान्रामोदण्डवत् पतितोभुवि । क्रोडे चकार ब्रह्मादौ क्रमात्तातेतिसवदन्
 तमुवाच स्वयं ब्रह्मा पशुं रामं जगद्गुरु । हितं नातिं वेदसारं परिणामसुखावहम् ८२
 ब्रह्मोवाच ।

भृगु रामं प्रवक्ष्यामि सर्वसम्पत्करं परम् । काण्वशाखीसवचनं सत्यञ्च सर्वसम्मतम् ।

पूज्यानामेव सर्वेषामिष्टः पूज्यतम' परः । जनको जन्मदानत्वात् पालनाच्च पितास्मृतः
 गरीयान् जन्मदानुश्च सोऽन्नदाता पिता मुने । विद्वान् नश्यरो देहोनित्यञ्च पितुरुद्धवः
 तयोः शतगुणेमातापूज्यामान्या चवन्दिता । गर्भधारणपोषाभ्यां साचताभ्यां गरीयसी
 तेभ्यः शतगुणे पूज्योऽभीष्टदेवः श्रुतौ श्रुतः । ज्ञानविद्यामन्त्रदाताऽभीष्टदेवात्परो गुरुः
 गुरुवद् गुरुपुत्रश्च गुरुपत्नी तनोऽधिका । देवे रष्टे गुरु रक्षेद् गुरौ रष्टे न कश्चन ॥८८
 गुर्वह्ना गुरुर्विष्णुर्गुर्वर्द्धो महेश्वरः । गुरुरेव परं ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यः प्रियः परः ॥ ८९ ॥
 गुरुर्ज्ञानं ददात्येव ज्ञानञ्च हरिभक्तिदम् । हरिभक्तिप्रदाता य' को वा बन्धुस्ततः परः ॥

अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानदीपं यस्तो लभेत् ।

लब्ध्वा च निर्मलं पश्येत् को वा बन्धुस्ततः परम् ॥ ९१ ॥

गुरुत्तन्मन्त्रञ्च जप्त्वा ज्ञानं ततो लभेत् । सर्वज्ञत्वञ्च सिद्धिञ्च को वा बन्धुस्ततोऽधिकः
 सुखं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया । यया पूज्योऽपि जगति को वा बन्धुस्ततोऽधिक
 विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मृदो न भजेद् गुरुम् ।

ब्रह्महत्याधिकं पापं लभते नात्र संशयः ॥ ९४ ॥

दष्टिं पतिनं क्षुद्रं रघुद्वयावरेद् गुरुम् । सोऽशुचिस्तीर्थस्नानतोऽपि नाधिकारी च कर्मसु
 अभीष्टदेवः श्रीरूपो गुरुस्ते शङ्करः स्वयम् । शरणं गच्छ हे पुत्र देवात्पूज्यतमं गुरुम्
 त्रिः सप्तहृन्चो निर्भूपा त्वया पृथ्वी कृता यत' । प्राप्ता त्वया हरेर्भक्तिस्तं शिरंशरणं व्रज
 शिवञ्च शिवरूपञ्च शिवदं शिवकारणम् । शिवाराध्यं शिरं शान्तं गुरुं त्वं शरणं व्रज
 गोलोकनाथो भगवानंशेन शिवरूपधृक् । य इष्टदेवः स गुरुस्तमेव शरणं व्रज ॥९६॥

आत्माह्वरणः शिवो ज्ञानमनोऽहं सर्वजीविषु । प्राणा विष्णोश्च प्रकृतिः सर्वशक्तियुतासुत
 ज्ञानदं ज्ञानरूपञ्च ज्ञानरीजं सनातनम् । मृत्युञ्जयं कालकालं तं गुरुं शरणं व्रज ॥९७॥

ब्रह्मज्योतिः स्वरूपं तं भक्तानुग्रहविग्रहम् । शरणं व्रज सर्वज्ञं भगवन्तं सनातनम् ॥
 प्रकृतिर्लक्ष्मणश्च तपस्तप्त्वा यमीश्वरम् । कान्तं प्रियपतिं लेभे तं गुरुं शरणं व्रज ॥

इत्युत्त्वा मुनिभिः सार्द्धं जगाम कमलोद्भवः । रामश्च गन्तुं कैलासं मनश्चक्रे च नारद ।
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिसप्तके नारायणनारदसंवादे कार्तवीर्यवधवर्णनं
 नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

भार्गवस्य कैलाशगमनम् ।

नारायण उवाच ।

हरेश्च कवचधृत्वावृत्त्वा नि क्षत्रियां महीम् । रामो जगाम कैलासं तमस्कत्तुं शिवंगुस्म्
गुरु पत्नीं शिवामभ्यां द्रष्टुं गुरुसुतो च तौ । गुणैर्नारायणसमो कार्तिकेयगणेश्वरौ ॥
मनोयायी महात्मा च शीघ्र संग्राप्य तदक्षणम् । ददर्श नगरं रम्यमतीव सुमनोहरम् ॥
शुद्धस्फटिकशङ्काशैर्मणिभि सुमनोहरैः । सुवर्णभूमिसदृशैः राजमार्गैर्विराजितम् ॥
सिन्दूराकारवर्णैश्च वेष्टितं मणिवेदिभिः । संयुक्तं मुक्तानिकरैः पूरितं मणिमण्डपैः ॥५॥
यक्षाणामालयैर्दिव्यैः संयुक्तं शतकोटिभिः । कपाटस्तम्भसोपानैः शोभितैर्मणिनिर्मितैः
सुवर्णकलसैर्दिव्यैः राजितैः श्वेतचामरैः । रत्नकाञ्चनपूर्णैश्च यक्षेन्द्रगणवेष्टितैः ॥ ७ ॥
रत्नभूषणभूषाढ्यैर्दीपितैः सुन्दरीगणैः । बालिकाभिर्बालकैश्च चित्रपुत्तलिकाकरैः ॥८॥

क्रीडद्भिः सस्मितैः शश्वत् स्वच्छन्दञ्च विराजितैः ।

पारिजातद्रुमगणैः स्वर्णदीतीरनीरजैः ॥ ९ ॥

धाकीर्णं पुष्पजालैश्च पुष्पितैश्चसुगन्धिभिः । कल्पवृक्षाश्रितैः सिद्धैः कामधेनुपुरस्कृतैः
सिद्धविद्यातिनिपुणैः पुण्यवद्विनिपेवितम् । घटवृक्षैरक्षयैश्च त्रिलक्षयोजनोच्छ्रितैः ॥
शतयोजनविस्तीर्णैः शतस्कन्धसमन्वितैः । असंख्यशाखानिकरैरसंख्यफलसंयुतैः ॥१२॥
नानापक्षिगणाकीर्णैः सुमनोहरशश्रितैः । कल्पितैः शीतवातेन मण्डितञ्च सुगन्धिना ।
पुष्पोद्यानसहस्रेण स्रस्ताञ्च शतेन च । सिद्धेन्द्रालयलक्षैश्च मणिरत्नविकारजैः ॥१४॥
रामश्च दृष्ट्वा नगरमतीव हृष्टमानसः । ददर्श पुरतो रम्यं ध्रीयुक्तं शङ्कराश्रमम् ॥ १५ ॥
सुवर्णमूल्यशतकैर्मणिभिः स्वर्णवर्णकैः । खचितं रत्नसारेण रचितं विश्वकर्मणा ॥१६॥
चतुर्योजनविस्तीर्णं त्रिपञ्चयोजनस्थितम् । चतुरस्रं चतुष्कोणं प्राकारं सुमनोहरम् ॥१७॥
द्वारं रत्नकपाटेन नानाचित्रान्वितेन च । युक्तं मणीन्द्रवेदिभिर्मणिस्तम्भविराजितैः ॥१८॥

तदक्षिणे वृषेन्द्रश्च घामे सिंहञ्च नारद । नन्दीश्वरं महाकालं पिङ्गलाक्षं भयङ्करम् ॥
 विशालाक्षञ्च घाणञ्च विरूपाक्षं महाबलम् । विकटाक्षंभास्कराक्षं रक्ताक्षं विकटोदरम्
 संहारभैरवं कालभैरवञ्च भयङ्करम् । रुहभैरवमीशार्भ महाभैरवमेव च ॥ २१ ॥
 कृष्णाङ्गभैरवञ्चैव क्रोधभैरवमुत्पणम् । कपालभैरवञ्चैव रुद्रभैरवमेव च ॥ २२ ॥

सिद्धेन्द्राश्च रुद्रगणान् विद्याधराश्च गुह्यकान् ।

भूतान् प्रेतान् पिशाचांश्च कुम्भाण्डान् ब्रह्मराक्षसान् ॥ २३ ॥

वेतालान्दानवांश्चैव योगीन्द्राश्च जटाधरान् । यक्षान् किम्पुरुपांश्चैव कित्तरांश्च ददर्श ह
 तान्द्रष्टुं नन्दिकेशाङ्गां गृहीत्वाभृगुनन्दनः । ता सम्भाष्याभ्यन्तरञ्च जगामानन्दमानसः
 रत्नेन्द्रसारनिर्माणं ददर्श शतमन्दिरम् । अमूल्यरत्नकलसैर्ज्वलद्भिश्च विराजितम् ॥
 अमूल्यरत्नरचितैर्मुक्तानिर्मलदर्पणैः । हरीसारविकारैश्च कपाटैश्च विराजितम् ॥ २७ ॥
 गोरोचनाभिर्मणिभिर्युतं स्तम्भसहस्रकैः । मणिसारविकारैश्च सोपानैः परिसेवितम्
 ददर्शाभ्यन्तरं द्वारं नानाचित्रैश्चित्रितम् । मुक्तामणिक्यप्रथितैर्मालाजालैर्चिराजितम्
 ददर्श कार्तिकं घामे दक्षिणे च गणेश्वरम् । धीरभद्रं महाकायं शिवतुल्यपराक्रमम् ॥
 प्रधानपार्षदगणान् क्षेत्रपालांश्च नारद । रत्नसिंहासनस्थांश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥ ३१ ॥
 तान् संभाष्य भृगु शीघ्रं महाबलपराक्रम । पर्शुहस्तः पर्शुरामो गमनङ्कुर्त्तुमुद्यतः ॥ ३२
 गच्छन्तं तं गणेशश्च क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह । निद्रितो निद्रया युक्तो महादेवोऽधुनेति च
 ईश्वराङ्गां गृहीत्वाहमन्नागत्य क्षणान्तरे । त्वया साङ्गमिष्यामिन्नातस्तिष्ठेति साम्प्रतम्
 श्रुत्वा गणेशवचनं पर्शुरामो महाबल । बृहस्पतिसमो वक्ता प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणतारदसंवादे कैलासवर्णनं
 नामैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गणेश्वरममीपे रामस्य शिवाशिवादर्शनप्रार्थनम् तयोः कथोपकथनञ्च
परशुराम उवाच ।

यास्यान्दन्त पुरंम्रात'प्रणामं कर्तुमीश्वरम् । प्रणम्यमातरं भक्त्या यास्यामित्वरितंगृहम्
त्रिःसप्तशतौ निर्भूपां कृतापृथ्वीञ्च लीलया । कार्तवीर्य्यः सुचन्द्रश्च हतोयस्यप्रसादतः
नानाविधा यतो लब्धा नानाशास्त्रं सुदुर्लभम् ।

तं गुरुं जगतां नाथं द्रष्टुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ३ ॥

सगुणं निर्गुणञ्चैव भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यं सत्यस्वरूपञ्च ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥
स्वेच्छामयं दयासिन्धुं दीनसिन्धुं मुनीश्वरम् । आत्मारामं पूर्णकामं व्यकाव्यक्तंपरात्परम्
परापराणं स्रष्टारं पुरहृतं पुरस्कृतम् । पुराणं परमात्मानमीशानमादिमव्ययम् ॥ ६ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वमङ्गलकारणम् । सर्वमङ्गलदं शान्तं सर्वैश्वर्य्यप्रदं धरम् ॥ ७ ॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं शरणागतवत्सलम् । भक्तमयप्रदं भक्तवत्सलं समदर्शनम् ॥ ८ ॥
इत्युक्त्वा पशुं रामश्च तस्यो गणपतेः पुरः । वाचा मधुरया तत्र तमुवाचगणेश्वरः ॥ ९ ॥

श्रीगणेश्वर उवाच ।

क्षणं तिष्ठ क्षणं तिष्ठ शृणु व्रातदि घचः । रहःस्थलनियुक्तो न द्रष्टव्यः स्त्रीयुतः पुमान्
स्त्रीसंयुक्तं पुरं यः पश्यति नराधम । करोति रसमङ्गं वा कालसूत्रं ब्रजेद् ध्रुवम् ११
तत्र तिष्ठति पार्ष्णीयान् यावच्चन्द्रदिवाकरौ । विशेषतश्च पितरं गुरुं भूतपतिं द्विज १२
रहः सुरतसंसर्कं न हि पश्येद्विचक्षणः । कामतः कोपतो वापि यः पश्येत्सुरतोन्मुखम्
स्त्रीविन्देदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु ।

श्रोणीविक्ष.स्थलं घक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियाः ।

कामतोऽपि विमूढश्च सोऽन्धो भवति निश्चितम् ॥ १४ ॥

गणेशस्य घचः श्रुत्वा ग्रहस्य भृगुनन्दनः । तमुवाच महाकोपान्निष्टुरं घचनं मुने ॥ १५ ॥

परशुराम उवाच ।

अहो धृतं किं घवनमपूर्वनीतिमुत्तमम् । इदमेवमयो नैवं ध्रुतमीश्वरवक्त्रतः ॥ १६ ॥

धृतं ध्रुतो वाक्यमिदं कामिनाञ्च विकारिणाम् ।

निर्विकारस्य च शिशो न दौषः कश्चिदेवहि ।

यास्याम्यन्तःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक ॥१७॥

यथा दृष्टिकरिष्यामि कार्य्यञ्च समयोचितम् । तवैव तातो माता च एवं नैवनिरूपितम् ।

जगतां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ । पार्वतीस्त्री पुमान् शम्भुरितिकैर्न निरूपितः । १६

सर्वरूपः शङ्करश्च सर्वारूपा च पार्वती । गुणातीतस्यका क्रीडा तद्गङ्गोद्याकुतो विभो । २०

क्रीडा लज्जा भीतिभङ्गो ग्राम्यस्य नेश्वरस्य च ।

स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा पित्रोर्लज्जा कुतो भवेत् ॥२१॥

लज्जायाश्च कुतो लज्जा लज्जेशस्य च तत्कुतः ।

लज्जा लज्जामवाप्नोति तापं किंवा हुताशनः ॥२२॥

शीतं शीतमहो भ्रातर्निदायो दाहमेव च । भीतिर्भीतिमवाप्नोतिमृत्योर्मृत्युर्विभेतिकिम् ॥

कुतो ज्वरो ज्वरं हन्ति व्याधिं व्याधिश्च जीर्यति । संहर्तानाञ्च संहर्ता कालः कालादुविभेति च

स्रष्टा सृजति न्नष्टारं पातास्त्वं पातित्यन्मते । ध्रुन्ध्रुधंसमवाप्नोति तृष्णा तृष्णां प्रयातिकिम्

निद्रा निद्राञ्च धीः शोभां शान्तिः शान्तिञ्च तन्मते ।

पुष्टिः पुष्टिमवाप्नोति तुष्टिस्तुष्टि क्षमा क्षमाम् ।

आत्मनः परमात्मास्ति शक्तिः शक्त्या विभेति किम् ॥२६॥

लोममोहकामक्रोधाः स्यात्मानानहिवाधिताः । दयान घदादययानेच्छ्रायद्वेच्छयाप्रभो ॥

ज्ञानबुद्ध्योः को विकारो ज्ञरामावाधते जरा । चिन्तानचिन्तयाप्रस्तावभुः स्वञ्जनपश्यति

हर्षमुदं किं प्राप्नोति शोकं शोकौ न राधते । काविपत्तिर्विपत्तेश्च सम्पत्तिः सम्पदः कुतः ॥

मेघायाधारणाशक्ति स्मृतेर्वा स्मरणंकुतः । न दग्धः स्वप्रतापेन विवस्वानिव सम्मतः ॥

विपरीतमतो भ्रातस्त्वयैवाचरितोऽधुना । न ध्रुतोऽयंगुस्मुषान्नद्रष्टेन ध्रुतो ध्रुतः ॥३१॥

इत्युक्त्वा परशुरामश्च प्रहस्य च पुनः पुनः । शीघ्रं गन्तुं मतश्चक्रे गुरो रभ्यन्तरं मुदा ॥३२॥

परशुरामवच श्रुत्वाजितक्रोधो गणेश्वर । शुद्धसत्यस्वरूपश्च प्रहस्यतमुवाच ह ॥३३॥
गणपतिरवाच ।

अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानप्राप्तोतित्रानिन । पितुर्भ्रातुर्मुखाजज्ञानदुर्लभभायवान् लभेत् ॥
श्रुतज्ञानविशिष्टज्ञानिनामपि दुर्लभम् । किञ्चिन्ममन्दुद्धे शृणुभ्रातर्निवेदनम् ॥३५॥
योगिगुण सो निर्लिप्त शक्तिभ्योनहिसयुत । सिद्धभुराश्रितो शक्तो निगुण सगुणो भवेत्
यावन्ति च शरीराणि भोगाहाणि महामुने । प्राकृतानि च सर्वाणि धीमृष्णविग्रह विना ॥
ध्यायन्ते योगिनस्तद्भुज्योति स्वरूपिणम् । हन्तपादादिरहितनिर्गुण प्रकृतं परम् ॥
वैष्णवास्त नमस्यन्ते भक्तानुग्रहकारकम् । कुतो वभूव तज्ज्योतिरहो ते जस्थिना विना ॥
ज्योतिरभ्यन्तरनित्यशरीरश्यामसुन्दरम् । द्विभुजमुरलीहस्तसस्मितपीतवाससम् ॥४०॥
अतावामूल्यसद्रत्नभूषणन विभूषितम् । ज्योतिरभ्यन्तरे मूर्त्तिं पश्यन्ति कृपया विभो ॥
तदादास्ये नियुक्तास्ते भवन्त्येवेश्वरच्छया । योगस्तपोवादास्यस्य क्लानाहन्ति षोडशीम्
यदा शृणुन्मुखा कृष्ण सख्ये प्रकृतिमुदा । तदुयोर्नोहापितर्वाप्यर्धीर्प्याङ्गिभ्यो वभूव ह ॥
दिव्येन लक्षवर्षेण गभाङ्गिभ्यो विनिर्गत । तदा चकार निश्वास ततो वायुर्धभूव ह ॥४४॥
निश्वासं सम भ्रातृमुखविन्दुर्विनिर्गत । ततो वभूव सहसा जलराशिर्हरे पुर ॥४५॥
तज्जले च स्थितो दिग्बो दिग्बवर्षश्च लक्षकम् । ततो वभूव सहसा विश्वाधारो महाविराट् ॥

यावन्ति गात्रलोमानि तस्य सन्ति महात्मन ।

ब्रह्माण्डानि च तावन्ति विद्यमानानि निश्चितम् ॥४७॥

तत्रैव प्रति ब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा । देवाश्च मुनयश्चैव विद्यमानाश्चराचरा ॥४८॥
महाविराडाश्च सर्वस्य च जनस्य च । निश्वासवायुर्भगवान् वभूव श्रीहरे मुने ॥४९॥
महान् विष्णु कल्यातत क्षुद्रविराड्भूत् । तन्नाभिकमले ब्रह्मा शङ्करस्तद्वराटज ॥५०॥
विष्णुस्तदश पाताय श्वेतद्वीपनिवासवृत् । एषन्ते प्रति ब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥
स्वयञ्च स्वाशकल्या नानामूर्त्तिधरो हरि । तदा भवच्च सगुण सर्वशक्तियुतस्तदा ॥५२॥
कथलज्जादिरहित स च स्वच्छामयो महान् । सर्वदा सर्वभोगार्ह सर्वशक्तिसमन्वित ॥
लज्जानास्ये च लज्जाया मतोऽय सर्वसम्मत । या च लज्जावती देधी तस्य लज्जा कुतो गता ॥

सर्वशक्तिमतीदुर्गाप्रकृत्यासाच शैलजा । तस्यालज्जादयःसन्ति सर्वदा सर्वसम्प्रता ॥५५॥
पञ्चधा याच प्रकृतिः श्रीकृष्णस्य बभूवह । राधापद्मा च सावित्री दुर्गादेवी सरस्वती ॥

प्राणाधिष्ठात्री या देवी कृष्णस्य परमात्मनः ।

प्राणाधिका प्रिया सा च राधास्ति तस्य वक्षसि ॥५७॥

विद्याधिष्ठात्रीयादेवीसावित्रीब्रह्मणःप्रिया । लक्ष्मीनारायणस्येवसर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥
सरस्वतीद्विधा भूत्वा कृष्णस्य मुपनिर्गता । सावित्रीब्रह्मणःकान्तास्त्रयंनारायणस्य च
बुद्ध्याधिष्ठात्री या देवी ज्ञानसूः शक्तिसंयुता ।

सा दुर्गा शूलिनः कान्ता तस्या लज्जा कुतो गता ॥६०॥

प्रकृतिः पञ्चधा भ्रातर्गोलोके च बभूवह । इमाः प्रधानाः कल्या बभूवानेकधापि सा ॥
विप्रेन्द्रनित्यं वैकुण्ठं ब्रह्माण्डात्परमुच्यते । अविनाशीम्यदंशश्वन्लयेप्राकृतिके ध्रुवम् ॥
तत्र नारायणो देवःकृष्णाद्दंशश्चतुर्भुजः । चरमाली पीतवासाःशक्त्या च पद्मया सह ॥
स्वयंकृष्णश्चगोलोकेद्विभुजःश्यामसुन्दरः । सस्मितोमुरलीहस्तोराधावक्ष स्थलस्थितः ॥

गोगोपगोर्षामि शश्वन् संयुक्तो गोपम्पधृक् ।

परिपूर्णतमः श्रीमान् निर्गुणः प्ररुतेःपरः ॥६५॥

स्वेच्छामयःस्वतन्त्रस्तु परमानन्दम्पधृक् । सुराःकलोद्भवायम्यर्षोऽङ्गशांशोमहाविराट् ॥
यतो भवन्तिविश्वानिस्थूलसूक्ष्मादिकानि च । पुनस्तत्र प्रलीयन्ते एवमेव मुहुर्मुहुः ॥

गोलोकमूदुर्ध्वं वैकुण्ठात् पञ्चाशन्कोटियोजनम् ।

नास्ति लोकस्तद्दुर्ध्वं च नास्ति कृष्णात्परः प्रभुः ॥६८॥

इदं श्रुतंशम्भुवत्तत्रान्मयातेकयिनद्विज । क्षणात्तथाधुना भ्रातर्गोश्वरः सुरतोःसुरः ॥६९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे पशुराम संवादे

ज्ञाननिरूपणं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गमनन्याघाते रामस्य गणेशेन सह वाग्पुङ्गवम् ।

नारायण उवाच ।

गणेशवचनं श्रुत्वा स तदा रागतः सुधीः । पशुं हस्तः पशुरामो निर्मयो गन्तुमुद्यतः ॥
गणेश्वरस्तदा दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाययत्नतः । धारयामास संप्रीत्या चकार चिनयं पुनः ॥२॥
रामस्तं प्रेषयामास हृत्त्वातु पुनः पुनः । वभूव च ततस्तत्रवाग्पुङ्गवं हस्तकर्पणम् ॥३॥
पशुं निक्षेपणं कर्तुं मनश्चक्रे भृगुस्तदा । हाहाकृत्या कार्तिकेयो बोधयामास संसदि ॥
अव्ययमस्त्रं हे भ्रातर्गुरुपुत्रे कथं क्षिप ।

गुरुवद् गुरुपुत्रश्च मा भवान् हन्तुमर्हति ॥ ५ ॥

पशुं क्षिपन्तं कुपित रक्तपद्मदलेक्षणम् । गणेशो रोधयामास निवर्त्तस्वेत्युवाच तम् ॥
पुनर्गणेशं रामश्च प्रेषयामास कोपतः । पपात पुरतो वेगाच्छिन्नमानो गजाननः ॥ ७ ॥
गजाननः समुत्थायधर्मं कृत्यातु साक्षिणम् । पुनस्तंबोधयामास जितक्रोधःशिवात्मजः
निवर्त्तस्व निवर्त्तस्वेत्युवाचार्थं च पुनः पुनः । प्रवेशेन ते का शक्तिरीश्वराणां विनाप्रभो
मम भ्राता त्वमतिथिर्विद्यासम्बन्धतो ध्रुवम् । ईश्वरप्रियशिष्यश्च सहामि तेन हेतुना ॥
नहाहं कार्तवीर्य्यश्च भूपास्ते क्षुद्रजन्तवः । अतो विप्रन जानःसिमाञ्चविश्वेश्वरात्मजम्
क्षणं तिष्ठ निवर्त्तस्व समरे ब्राह्मणातिथे । क्षणान्तरे त्वयासादं यास्यामीश्वरसन्निधिम्
नारायण उवाच ।

हैरभ्यवचनं श्रुत्वा प्रजहास पुनःपुनः । पशुं क्षेमं मनश्चक्रे प्रणम्य शङ्करं हरिम् ॥१३॥
पशुं क्षिपन्तं कोपेन पशुरामं गजाननः । दृष्ट्वा मुमुषुं देवेशो धर्मं कृत्यातु साक्षिणम् ॥
चकारहस्तं योगेन स तदा कोटियोजनम् । योगीन्द्रस्तत्र सन्तिष्ठन्भ्रामयित्वा पुनः पुनः
शतधा चेष्टयित्वा तु भ्रामयित्वा तु तत्रयै । ऊर्ध्वमुत्तोल्य वेगेन क्षुद्रार्हि गरुडो यथा
सप्तद्वीपांश्च शैलांश्च काञ्चनो सप्त सागरान् । क्षणेन दर्शयामास रामं योगेन स्तम्भितम्

हस्तपादाद्यनाथं तं जडं सर्वाङ्गकम्पितम् । पुनस्तं भ्रामयामास दर्पितं दर्पनाशनः ॥१८॥
मूलोक्ञ्च भुवोलोकं स्वर्लोक्ञ्च सुरेश्वरः । जनलोकं तपोलोकं ध्रुवलोकञ्च तत्परम् ॥
गौरीलोकं शम्भुलोकं दर्शयामास नारद । दर्शयित्वा तु ब्रह्माण्डं स पपी सप्तसागरान्
पुनर्द्वीरणं चक्रे सनक्रसागरोदकम् । तत्र तमर्पयामास गर्भीरे सागरोदके ॥ २१ ॥

मुमूर्त्तं तं सन्तरन्तं पुनर्जग्राह लीलया ।

पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डाद्बुद्ध्वमुत्तमम् ॥ २२ ॥

चैकुण्ठं दर्शयामास सलक्ष्मीकं चतुर्भुजम् । क्षणं तत्र भ्रामयित्वा योगान्द्रो योगमायया
पुनः कञ्च योगेन धर्षयामास लीलया । गोलोकं दर्शयामास विरजाञ्च नदीश्वरीम् ॥
वृन्दावनं शतशृङ्गशैलेन्द्रं रासमण्डलम् । गोपीगोपादिभिःसाद्धं श्रीकृष्णं श्यामसुन्दरम्
द्विभुजं मुग्धलहस्तं सस्मितं मुमनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ २६॥
तेजसा कोटिसूर्यामं राधावक्षःस्थलस्थितम् । एवंकृष्णं दर्शयित्वाप्रणमय्य पुनःपुनः
क्षणेन लम्बमानस्य भ्रामयित्वा पुनः पुनः । दृष्ट्वा कृष्णमिष्टदेवं सर्वपापप्रणाशनम् ।

भ्रूणहत्यादिकं पापं भृगोर्दूरं चकार ह ॥ २८ ॥

न भवेद्दु यातना नष्टा विनाभोगेन पापजा । स्वल्पाञ्च बुभुजेरामो गतान्या कृष्णदर्शनात्
क्षणेन चेतनां प्राप्य पपात वेगतो भुवि । वभूव दूरीभूतञ्च गणेशस्तम्भनं भृगोः ॥ ३०॥
सस्मार कवचं स्तोत्रं गुरदत्तं सुदुर्लभम् । अर्भीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शम्भुं जगद्गुम्
चिक्षेप पशुमन्वयर्थं शिवतुल्यञ्च तेजसा । प्रीप्समध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने ॥३२॥
पितुरव्यर्थमस्त्रञ्च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम् । जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थञ्चकार ह ॥
निपत्य पशुर्वेगेन छित्वा दन्तं समूलकम् । जगाम रामहस्तञ्च महादेवयत्नेन च ॥ ३४ ॥
हाहेति शब्दमाकारो देवाश्चक्रुर्महाभिया । वीरभद्रः कार्तिकेयः क्षेत्रपालाश्च पार्षदाः ॥
पपात भ्रूमी दन्तश्च सारक्तः शब्दमुच्चरन् । पपात गैरिकयुक्तञ्च महास्फाटिकपर्वतं ॥३६॥

शब्देन महता विप्र चकम्पे पृथिवी भिया ।

कैलासस्या जनाः सर्वे मूर्च्छामापुः क्षणं भिया ॥३९॥

निद्रा यमञ्च निद्राया निद्रेशस्य जगत्प्रमोः ।

वाजगाम वहि शम्भुः पार्वत्या सह सम्प्रमात् ॥ ३८ ॥

पुरो ददर्श हेस्म लोहितास्यं क्षतं नतम् । भग्नदन्तं जितकोपं सस्मितं लज्जितं मुने ॥

पप्रच्छ पार्वती शीघ्रं स्वन्दं किमिति पुत्रक ।

स च ता कथयामास वार्त्ता पौर्वापरौ मिया ॥ ४० ॥

चुकोप दुर्गा कृपया स्तोदच मुहुर्मुहुः । उवाच शम्भोः पुरतः पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥

स्वगोप्य शम्भुं शोकेन मिया वित्तयपूर्वकम् । उवाचप्रणतासाध्वी प्रणतार्त्तिहरंपतिम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसवादे गणपतिखण्डे गणेशदन्तभङ्गो

नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गणेशदन्तभङ्गं दृष्ट्वा रामं प्रति गौर्या उपालम्भः ।

पार्वत्युवाच ।

सर्वे जानन्ति जगति दुर्गां शङ्करकिङ्करीम् । अपेक्षारहिता दासी तस्याश्च जीवनं वृथा

ईश्वरस्य समा सर्वास्तृणपर्वतजातयः । दासीपुत्रस्य शिष्यस्य कस्य दोष इतिप्रभो ॥

विवारं कर्तुमुचितं त्वञ्च धर्मविदांघरः । वीरभद्रः कार्तिकेयः पार्षदाः सन्ति साक्षिणः

साक्ष्ये मिथ्यांको घदेद्वा द्रावेप्य भ्रातरौ समौ । साक्ष्ये समे शत्रुमित्रेसतां धर्मनिरूपणे

साक्षी सभायां यत् साक्ष्यं जानन्नप्य न्यथावदेत् ।

कामतः क्रोधतो घापि लोभेन च भयेन च ॥ ५ ॥

स याति कुम्भीपाकञ्च निपात्य शतपूरुषम् ।

तैश्च सार्द्धं वसेत्तत्र यावच्चन्द्रदिवाकरी ॥ ६ ॥

अहंविबोधितुं शक्ता निर्णेत्री च द्वयोरपि । तथापि तव साक्षात्तु ममाज्ञा निन्दिता ध्रुती

किङ्कराणां प्रभा कुत्र नृपे वसति संसदि । उदिते भास्करे पृथ्व्यां खद्योतो हि यथाप्रभो

चतुश्चत्वारिंशत्तनोऽध्यायः] *रोगाद्वन्तुमुद्रतायां गौरांरामम्यविशुम्भरणम् * ५२१

सुचिं तपना प्रात त्वदीय चरणान्वुजम् । पगित्यागनयेनैव सन्ततं मीतया मया ॥६॥

यत्किञ्चित् कोपशोकान्यासुक्तं मोहन तत्परम् ।

तत् क्षमस्व जगन्नाथ पुत्रनेहाद्य दाहण्यात् ॥ ७० ॥

त्वयायदि परित्यक्ता तदा पुत्रेणतेनकिम् । सा च्या सद्दयाजायाश्च शतपुत्राधिक पतिः
असद्दशप्रसूताया दुःशीला ज्ञानवर्जिता । स्वामिनः मन्यते नास्तीं पित्रोदोषेण कुत्सिता
कुत्सितं पतित मूढं दग्धिं रोगिणजडम् । कुलजा विष्णुतुल्यश्च काल्प पश्यतिनन्तम्
हुताशनीवा सूर्यो वा सर्पनेजम्बिना परः । पतिप्रतानेजसश्च कला नार्हन्तिरोडशीम्
महादानानि पुण्यानि धृतान्यनशानानि च । तपामि पतिमेवायाः कला नार्हन्तिरोडशीम्
पुत्रोवापिपितावापिरान्प्रबोऽय सहोदरः । योपितांकुलजातानान कश्चिन्स्वामिनः कनः
इत्युक्त्वा स्वामिनं दुर्गा ददर्श पुरतो भृगुम् । शम्भोः पदाब्जं सेवन् निर्भयं तमुवाचह
पार्वत्युवाच ।

अपेरामनहामाग ब्रह्मवशोऽग्निपण्डितः । पुत्रोऽग्नि जनदग्नेश्च शिष्योऽस्यरोगितागुणोः
मानाने रेणुकानार्त्वा पद्मशामन्कुलोद्भवा । मातामही वैष्णवश्चनातुल्यश्च ततोऽदिकः
स्वश्च रेणुकनूपस्य मनुवशोद्भवस्य च । दौहित्रो मातुलः सायु शूणे विष्णुपुत्रा नृपः
कस्य दोषेण दुर्दर्पं स्व न जानेऽयशुद्धत । येषां दोषैर्जनो दुष्टस्त्व ते शुद्धमानमाः
अनोरं प्राप्य पर्शुश्च गुरुश्च कर्णानिपिनः । परीक्षा क्षत्रिये कृत्वा ब्रह्मवाम्य सुतेपुनः
गुप्ते दक्षिणा दानुमुचितश्च श्रुतो श्रुतम् । भद्रोदन्तलनन्मुतस्य छेदस्त्वच मन्तकम् ॥

गणेश्वरं रणे जित्वा स्थितश्चेदावयोपुरः ।

मा त्वं लब्ध्वाशिषो भूत्वा पूजितोऽभूर्जगन्त्रये ॥२५॥

पर्युनाऽनोर्षवीर्येण शङ्करस्य वरेण च । हन्तुं शक्तः सृगालश्च निह शार्दूलमगुमुक्
त्वद्विषं लक्षकोटिश्चहन्तुं शक्तो गणेश्वरः । जितेन्द्रियाणा प्रवरोनहि हन्तिचनक्षिकान्
तेजसा वृषातुल्योऽयंकु जाशश्च गणेश्वरः । देवाश्चान्ये कृष्णकलापूजाम्य पुनस्ततः
व्रतप्रभावतः प्रातः शङ्करस्य वरेण च । शोकेनाति कठोरेण नहिसन् द्विपद्विता ॥२६॥

इत्युक्त्वा पार्वती रोगतं रामं हन्तुमुद्रता ।

राम सम्भार त कृष्ण प्रणम्य मनसा गुरुम् ॥ २६ ॥

एतस्मिन् नरुणा ददर्श पुरतो द्विजम् । धर्तव्यं धामन बाल सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥
शुक्लदन्त शङ्खपत्रे शुक्लयज्ञोपवीतिनम् । दण्डिन छत्रिणञ्चैव दधत तिलकोज्ज्वलम्
दधत तुटसामाला सस्मित मुग्धनोहरम् । रत्नकेयूरफल्य रत्नमालाविभूषितम् ॥ ३२ ॥
रत्ननूपुरपादञ्च रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥ ३३ ॥
स्थिरमुद्रा दर्शयन्त भक्त वामकरेण च । दक्षिणेऽभयमुद्राञ्च भक्तेश भक्तघटसलम् ॥
बालिकाबालकगणैर्नागरै सस्मितैर्युतम् । कैलासवासिभि सर्वावृद्धैरीक्षित मुदा ॥
त दृष्ट्वा सम्भ्रमात् शम्भु सम्भृत्य सहपुत्रक । मूढूर्ध्वा भक्त्या प्रणनाम दुर्गान्चक्षुष्वद्भुवि
आशिय प्रददौ बाल सर्वेभ्यो वाञ्छितप्रदम् ।

त दृष्ट्वा बालका सर्वे महाश्चर्य्यं ययुर्मिया ॥ ३७ ॥

दस्या तस्मै शिषो भक्त्या चोषचाराणि योडश । पूजाञ्चकार श्रुत्युक्तापरिपूर्णतमस्य च
तुणव काण्वशाखांसस्तोत्रेण नतकन्धर । पुलराङ्गिकतसर्वाङ्गो भगवन्त सनातनम्
रत्नसिंहासनस्थञ्च प्रोवाच शङ्कर स्वयम् । अतावतेजसा सर्वं प्रच्छन्नीरतमेव च ॥ ४०

शङ्कर उवाच ।

आत्मारामेषु कुशलप्रभोऽतीवविडम्बनम् । ते शश्वत् कुशलाधारा कुशलाकुशलप्रदा
यय मे सफलनन्मजावितञ्च सुजीवितम् । प्राप्तस्त्वमतिथिरहम् वृष्णसेवाफलोद्घात
परिपूर्णतम वृष्णो लोकनिस्तारहेतवे । कल्या पुण्यक्षेत्रे हि भारते च वृषानिधि ॥
अतिथि पूजितो येन पूजिता सर्वदेवता । अतिथिर्यस्य सतुणस्तस्य तुणे हरि स्वयम्
छानेन सर्वतीथाना सनदानेन यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासाभ्या सर्वयज्ञेषु दीक्षया ॥ ४५
सर्वैस्त्वपोभिर्विविधैर्नित्यैर्नैमित्तिकादिभिः । तद्देवातिथिसेवाया कलानार्हन्तिपौडशीम्

अतिथिर्यस्य भग्नाशो याति रष्ट्रश्च मन्दिरात् ।

कोटिजन्मार्जित पुण्य तस्य नश्यति निश्चितम् ॥ ४७ ॥

स्त्रीगोमूत्रश्च वृत्तप्रश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतदपग । पितृमातृगुरूणाञ्च निन्दको नरघातक ॥ ४८
सन्ध्यादीनो स्वघाती च सत्यघ्नो हरिनिन्दकः ।

ब्रह्मस्वस्थाप्यहारी च मिध्यासाह्यप्रदायकः ॥ ४६ ॥

मित्रद्रोही वृत्तघ्नश्च वृषवाहश्च सूपकृत् । शबदाही भ्रामयाजी ब्राह्मणो वृषलीपतिः ॥
शूद्रश्चादान्नभोजी च शूद्रश्चाद्वेषु भोजकः । कन्या विक्रयकारी च श्रीहरेर्नामविक्रयी ॥
लाक्षा मांस लौह रस तिलानां लघणस्य च । विक्रेता ब्राह्मणश्चैव तुरगाणां गवां तथा
एकादशीकृष्णसेवाहीनो विप्रश्च भारते । एते महापातकिनस्त्रिषु लोकेषु निन्दिताः ॥
कालसूत्रे च नरके पतन्तिप्रह्वणःशतम् । एतेभ्योऽप्यधिकःसोऽपियश्चातिथिपराङ्मुखः
नारायण उवाच ।

शङ्करस्य ध्वजः श्रुत्वा सन्तुष्टःश्रीहरिः स्वयम् । मेघगम्भीरया धावा तमुवाचजगत्पतिः
विष्णुरुवाच ।

श्वेतद्वीपादागतोऽहं ज्ञात्वा कोलाहलञ्च व । पर्शुरामस्य रक्षार्थं कृष्णभक्तस्यसाग्रतम्
नैतेषां कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । रक्षामि ताञ्चक्रहस्तो गुरुमन्युं विनाशिव
नाहं पाता गुरो रूढे बलवद् गुरुहेलनम् । तत्परः पातकी नास्ति सेवार्हीनो गुरोश्च यः
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषांजनको भवेत् । अहो यस्यप्रसादेन सर्वाङ्गप्रशयतिमानवः
जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम् ।

ततो विस्तीर्णकरणात् कलया स प्रजापतिः ॥ ६० ॥

पितुः शतगुणैर्माता पोषणाद्गर्भधारणात् । वन्द्या पूज्या च मान्या च प्रसूरूपावसुन्धरा
मातुः शतगुणैर्वन्द्याः पूज्योमान्योऽन्नदायकः । यद्विनानश्चरोदेहो विष्णुश्चकलयान्नदः
अन्नदातुः शतगुणोऽभीष्टदेवः परः स्मृतः । गुरुस्तस्माच्छतगुणो विद्यामन्त्रप्रदायकः
अज्ञानतिमिराच्छन्नं ज्ञानदीपेन चक्षुषा । यः सर्वार्थं दर्शयति तत्परःकोऽपि चान्धवः
गुरुदत्तेन मन्त्रेण तपसेष्टसुखं लभेत् । सर्वज्ञत्वं सर्वसिद्धिं तत्परः कोऽपि चान्धवः ॥
सर्वं जयतिसर्वत्रविद्यया गुरुदत्तया । तस्मात् पूज्योहिजगति कोवायन्धुस्ततोऽधिकः
विद्यान्धो वा धनान्धोवायोमूढोभजेद्गुरुम् । ब्रह्महत्यादिभिः पापैःसलितोनात्रसंशयः
दरिद्रं पतितं क्षुद्रंरखुद्धघाचरेद् गुरुम् । सोऽशुचिस्तीर्थस्नानोऽपि नाधिकारीचकर्म्मसु
पितरं मातरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरुं परम् । यो न पुण्याति कापट्यात्समहापातकीशिव

गुरुरंहा गुरर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुरेव परं ब्रह्म गुरर्भास्कररूपकः ॥ ७० ॥
गुरुञ्चन्द्रस्तयेन्द्रश्च वायुश्च वरुणोऽनल । सर्वरूपोहि भगवान् परमात्मा स्वयं गुरुः ।

नास्ति वेदान् परं शास्त्रं नहि कृष्णात् परं सुरः ।

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न पुष्प तुलसीपरम् ॥ ७२ ॥

नास्ति क्षमावती भूमे पुत्रान्नास्त्यपरः प्रियः । न च दैवात्पराशक्तिर्व्रतं नैकादशीविना
शालग्रामात् परो यन्त्रो न क्षेत्रं भारतात्परम् । परं पुण्यस्थलानाञ्च पुण्यंबृन्दावनंयथा
माध्वदानायथाकाशी वरुणवानायथाशिवः । न पार्यतीपरासाध्वी न गणेशात्परो वशी
न च विद्यासमोयन्धुर्नास्तिकश्चिद्गुरो परः । विद्यादातुः पुत्रदारौ तत्समीनात्रसंशयः
गुरन्त्रियाञ्च पुत्रे च बभूव रामहेलनम् । परं सम्मार्जनां कर्तुमागतोऽहं तवाल्लयम् ॥

नारायण उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा शम्भुञ्च दुर्गां सम्बोध्य नारद । उवाच भगवान् तत्र सत्यसारं परं घञः

विष्णुस्त्वाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मदीयं घञं शुभम् । नीतियुक्तं वेदसारं परिणामसुखावहम् ॥
यथा ते गजवक्त्रश्च कार्त्तिकेयश्च पार्वती । तथा परशुरामश्च भार्गवो नात्र संशयः । ८०
नास्त्येषु स्नेहभेदश्च तव वा शङ्करस्य च । विचार्य सर्वं सर्वज्ञे कुरु मातर्यथोचितम् ॥
पुत्रेण सार्द्धं पुत्रस्य विवादो दैघदोषतः । दैवं हन्तुं कोहि शक्तो दैवञ्च बलवत्परम् ॥
पुत्राभिधानं वेदेषु पश्य घत्से घनानने । एकदन्त इति ख्यातं सर्वदैवनमस्कृतम् ॥ ८२ ॥
पुत्रनामाष्टकं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीश्वरि । शृणुष्यावहितं मातः सर्वविघ्नहरं परम् ॥

विष्णुस्त्वाच ।

गणेशमेकदन्तश्च हेरम्बं विघ्ननायकम् । लम्बोदरं शूर्पकणं गजवक्त्रं गुहाप्रजम् ॥ ८५ ॥
नामाष्टार्थञ्च पुत्रस्य शृणु मातर्हरप्रिये । स्तोत्राणां सारभूतञ्च सर्वविघ्नहरं परम् ॥ ८६ ॥
ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः । तयोरीश परं ब्रह्म गणेश प्रणमाम्यहम् ॥
एकशब्दं प्रधानार्थं दन्तश्च बलवाचकः । बल प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम् ॥ ८८ ॥
दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः । दीनानां परिपालकं हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ॥

विपत्तिवाचको विघ्नोनायकःखण्डनार्थकः । विपत्खण्डनकारकं नमामि विघ्ननायकम्
 विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लभ्योदरं पुरा । पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लभ्योदरञ्च तम् ॥
 शूर्पाकारौ च यत्तूरुणौ विघ्नवारणकारणौ । सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पाकर्णं नमाम्यहम्
 विष्णुप्रसादपुष्पञ्च यन्मृद्भिर्नि मुनिदत्तकम् । तद्गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम् ॥
 गुहस्याग्रे च जातोऽयमादिभूनौ हरालये । वन्दे गुहाप्रजं देवं सर्वदेवाप्रपूजितम् ॥६४॥
 एतन्नामाष्टकं दुर्गे नामभिः संयुतं परम् । पुत्रस्य पश्य वेदे-च तदा कौपं यथा कुरु ॥
 एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतंशुभम् । त्रिस्तन्ध्यं यः पठेन्नित्यं ससुखी सर्वतो जयी
 तनो विघ्नाः पलायन्ते वैननेयाद् यथोरगाः । गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद् ध्रुवम् ॥
 पुत्रार्थोत्तमते पुत्रभाष्यार्थो विपुलांस्त्रियम् । महाजडः कर्वाण्डश्च विद्यायाश्च भवेद् ध्रुवम्
 इति श्रीऋष्यवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गणेश-
 स्तोत्रकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गौरीं बोधयित्वा रामंप्रति स्तवादिकरणे विष्णोरुपदेशः ।

नारायण उवाच ।

पार्वतीं बोधयित्वा तु विष्णुराममुवाच ह । हिनं सारं नीतिसारं परिणामसुखावहम्
 विष्णुरुवाच ।

रामन्वमधुना सन्वमपराधी श्रुतेर्मते । कोपात्कृत्वा दन्तभग्नं गणेशस्य स्थितोऽशिवे
 मयोक्तेनैवस्तोत्रेणस्तुत्वागणपतिं परम् । काण्वशाखोकस्तोत्रेणस्तीहिदुर्गां जगत्प्रसूम्
 श्रीऋष्यस्य परा शक्तिं बुद्धिस्था जगत्प्रभोः । अस्याञ्चतय रथ्यायां हतायुद्धिर्भविष्यति
 सर्वशक्तिस्वरूपेयमनया शक्तिमज्जात् । अनया शक्तिर्मान् कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
 सृष्टिं कर्त्तुं नशक्तश्च ब्रह्मा शक्तपाऽनया विना । वयमस्यां प्रसूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

सुरसङ्घेऽसुरग्रन्थे काले घोरतरे द्विज । तेज सु सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा सती ॥७॥
 कृष्णात्रयाऽसुरान् हन्वाद्दत्त्वा तेभ्यःपदन्तत । दक्षपत्न्यां जनि लेभे दक्षस्य तपसापुरा
 भाय्या भूत्वाशङ्कस्य पुनः पत्युश्चानन्दया । देहं त्यक्त्वा शैलपत्न्यां जनि लेभेपुरासती
 शङ्कस्तपसालधोयोगीन्द्राणा गुरोर्गुर । लब्धोगणपति पुत्रः कृष्णांश कृष्णसेवया
 यमेव ध्यायसे नित्य त न जानासि बालक । स एव भगवान्कृष्णश्चांशेन पार्वतीसुतः

पुटाञ्जलिर्नतौ भूत्वा स्तौहि दुर्गां शिवप्रियाम् ।

शिवा शिवप्रदा शैवां शिववीक्षा शिवेश्वरीम् ॥ १२ ॥

शिवाया स्तोत्रराजेन कृत्तेन शूलिना पुरा । त्रिपुरस्य बधे घोरै ब्रह्मणा प्रेरितेन च ॥
 इत्युक्त्वा श्रीपद शीघ्र जगाम श्रीनिक्तेतम् । गते हरौ हरि स्मृत्यारामस्तांस्तोतुमुद्यतः
 विष्णुदत्तेन स्तोत्रेण सर्वविघ्नहरेण च । धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणेन च नारद ॥
 पुटाञ्जलियुतो भूत्वा स्नात्वा गङ्गोदके शुभे । गुरुं प्रणम्य भक्तेशं धृत्वा धौतेचवाससी
 थाचम्यन्त्वा मद्रुर्धा ता भक्तिप्रदात्मरुन्धरः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गश्चानन्दाश्रुसमन्वितः

परशुराम उवाच ।

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च ।

आविर्भूता विग्रहत पुरा सृष्ट्युन्मुखस्य च ॥ १८ ॥

सूर्यकोटिप्रमायुक्ता वस्त्रालङ्कारभूषिता । वह्निशुद्धाशुकाधाना सुस्मिता सुमनोहरा ॥

नवयोधनसम्पन्ना सिन्दूरविन्दुशोभिता । ललितं वचरीभारं मालतीमात्यमण्डितम् ॥

अहोऽनिर्वचनीया त्वं चार्था मूर्त्तिञ्च विभ्रती ।

मोक्षप्रदा मुमुक्षुणां महद्विष्णोर्विधि खयम् ॥ २१ ॥

मुमोह लक्षमात्रेण दृष्ट्वा त्वा सर्वमोहिनीम् । बालेभ्यसहस्रासस्मिताधाचितापुरा ॥

सद्विग्याता तेन राधामूलप्रकृतिरीश्वरी । कृष्णस्त्वासहस्राहाय वीर्याधानञ्चकारह ॥

ततोऽिन्द्रमहदुज्जो ततोभूतो महाविराट् । यस्त्वैवलोमकृपेपु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च ।

तन् शृङ्गारजमेणैव त्वन्नि श्वासो बभूवह ।

स नि श्वासो महावायुः स विराड् विश्वधारकः ॥२५॥

स तव धर्मजलेनैव पुत्राव विश्वगोलोकम् । स विराड् विश्वनिलयोजलराशिवभूवह ॥
 सनस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्चमूर्तिश्च विभ्रती । प्राणाधिष्ठात्री यामूर्तिः कृष्णस्य परमात्मनः

कृष्णप्राणाधिका राधा ता घदन्ति पुराविदः ॥२७॥

वेदाधिष्ठात्री या मूर्तिर्वेदशास्त्रप्रसरपि । ता सावित्री शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

ऐश्वर्याधिष्ठात्री मूर्तिः शान्तिश्च शान्तरूपिणी ।

लक्ष्मीं घदन्ति सन्तस्तां शुद्धा सन्धस्वरूपिणीम् ॥२९॥

रागाधिष्ठात्री या देवी शुकुमूर्तिः सतां प्रसूः ।

सरस्वती ता शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो ॥३०॥

बुद्धिर्विद्यासर्वशक्त्या मूर्तिरधिदेवता । सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥३१॥

सर्वमङ्गलबीजस्य शिवस्य मन्दिरेऽधुना ॥३२॥

शिवे शिवस्वरूपा त्वं लक्ष्मीनारायणान्तिके ।

सरस्वती च सावित्री वेदसु ब्रह्मणः प्रिया ॥३३॥

राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च । परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी ॥३४॥

त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषित ॥३५॥

त्वद्विद्यायोषितः सर्वास्त्वसर्वबीजरूपिणी । छायासूर्यस्यचन्द्रस्यरोहिणीसर्वमोहिनी

शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी । चरुणानी जलेशस्यधायोः स्त्रीप्राणवल्लभा

बह्वैः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी । यमस्य तु सुशीलाचनैर्ऋतस्यचकैटमी

ईशानस्य शशिकला शतरूपा मनोःप्रिया । देवहृती कर्दमस्य वशिष्ठस्याप्यरन्धती ॥३६॥

अदितिर्देवमाता या मुद्रागस्त्यमुनेः प्रिया । अहत्या गौतमस्यापि सर्वाधारावसुन्धरा

गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां याः सरिद्धरा ।

एताः सर्वाश्च याः हान्याः सर्वास्त्वत्कलयाग्बिके ॥४१॥

गृहलक्ष्मी गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु । तपस्विनां तपस्या त्वंगावत्री ब्राह्मणस्य च

सतां सत्वस्वरूपा त्यमसतां कलहाङ्कुरा । ज्योतीरूपानिर्गुणस्य शशिसत्त्वं सगुणस्य च

सूर्य्यं प्रमास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने । जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे

त्वं भूमौ गन्धर्वा च आकाशे शब्दरूपिणी । श्रुतिपासादयस्त्वञ्जजीविनांसर्वशक्तयः
 सर्वबीजस्वर्गा न्य संसारे साररूपिणी । स्मृतिर्मया च बुद्धिर्वाज्ञानशक्तिर्विपश्चिताम्
 कृष्णेन विद्या या दत्ता सर्वज्ञानप्रस शुभा । शूलिने कृपया सा त्वयतोमृत्युञ्जयःशिवः
 सृष्टिपालनमहारशक्त्यस्त्रिविधाश्च याः । ब्रह्मविष्णुमहेशानां सा त्वमेव नमोऽस्तु ते
 मधुमैत्रभर्भान्या च त्रस्तोधाताप्रकम्पितः । स्तुत्वामुमोचयां देवीतांमूदुर्ध्वाप्रणमाम्यहम्
 मधुकैटभयोर्यु देवतातासौविष्णुरीश्वरीम् । बभूवशक्तिमानस्तुन्वातांदुर्गां प्रणमाम्यहम्
 त्रिपुरस्य महायुद्धे सरथे पतिने शिवे । यां तुष्टुः सुराः सर्वे तां दुर्गां प्रणमाम्यहम्
 विष्णुना वृपरूपेण म्वयं शम्भुः समुत्थितः । जघान त्रिपुरंस्तुत्वातांदुर्गां प्रणमाम्यहम्
 यदाज्ञया घाति घात. सद्यस्तपति सन्ततम् ।

वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निस्तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥५३॥

यदाज्ञया हि कालश्च शश्वद् भ्रमति वेगतः । मृत्युश्चरतिजन्त्वोघेतांदुर्गां प्रणमाम्यहम्
 स्रष्टा सृजति सृष्टिञ्च पाता पाति यदाज्ञया ।

संहर्त्ता संहरेत् काले तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥५४॥

ज्योति स्वरूपो भगवान् श्रीकृष्णो निर्गुणः स्वयम् ।

यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्तुं नमामि ताम् ॥५६॥

रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे । शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति ॥५७
 इत्युक्त्वा पशुरामश्च प्रणम्य तां रयोदह । तुष्टा दुर्गा सम्भ्रमेण चाभयञ्च वरंददौ ॥५८
 धर्मो भव हे पुत्र घटस सुखिरतां व्रज । सर्वप्रसादात् सर्वत्रजयोऽस्तु तव सन्ततम्
 सर्वान्तरात्मा भगवांस्तुष्टोऽस्तु सन्ततं हरिः । भक्तिर्भवतुते कृष्णेशिवदे च शिवे गुरौ
 इष्टदेवे गुरो यस्य भक्तिर्भवति शाश्वती । तं हन्तुं नहि शक्ताश्च स्रष्टाश्चसर्वदेवताः ॥६१

श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं शिष्योहि शङ्करस्य च ।

गुरपत्नीं स्तीसि यस्मात् कस्त्वां हन्तुमिहेश्वरः ॥६२॥

यहो न कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । अन्यदेवेषु ये भक्ता न भक्तावानिरङ्कुशाः ॥
 चन्द्रमा बलवांस्तुष्टो येषां भाग्यवतां भृगो । तेषां तारागणारष्ट्राः किंकुर्वन्तिच दुर्बलाः

यस्य तुष्टः सभायाञ्जेन्नरदेवो महान् सुखी । तस्य किंवाकरिष्यन्तिरुष्टाभृत्याश्चदुर्बलाः
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा दत्त्वा रामं शुभाशिमम् । जगामान्तं पुरं तूर्णं हरिशब्दो बभूवह ॥

काण्वशाखोकस्तोत्रञ्च पूजाकाले च यः पठेत् ।

यात्रा काले च प्रातः र्धा वाञ्छितार्थं लभेत् ध्रुवम् ॥६९॥

पुत्रार्थो लभते पुत्रं कन्यार्थो कन्यकां लभेत् ।

विद्यार्थो लभते विद्यां प्रजार्थो चाप्नुयान् प्रजाम् ।

भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं घनतष्टो धनं लभेत् ॥६८॥

यस्य स्तोत्रो गुह्ये देवो राजा वा बन्धवोऽथवा । तस्य तुष्टश्चवरदः स्तोत्रराजप्रसादतः ॥

दस्युग्रस्तोऽहिग्रस्तश्च शत्रुग्रस्तो भयानकः । व्याधिग्रस्तो भवेन्मुक्तः स्तोत्रस्मरणमात्रतः

राजद्वारे श्मशाने च कारागारे च बन्धने । जलराशौ निमग्नश्च मुक्तो भवति स्तोत्रतः

स्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दारुणे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण वाञ्छितार्थं लभेद् ध्रुवम् ॥

कृत्वा हविष्यं वर्षञ्च स्तोत्रराजं शृणोति या । भक्त्या दुर्गाञ्च संपूज्य महाबन्ध्या प्रसूयते

लभते सा दिव्यपुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् । अस्माभागाच्च सांभाग्यं पद्मासंभवणा लभेत्

नवमासं काकयन्ध्या मृतवत्सा च भक्तिः ।

स्तोत्रराजं या शृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥७०॥

कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं शृणोति या ।

घटे सम्पूज्य दुर्गाञ्च सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥७१॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे दुर्गास्तोत्रं

नाम पञ्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गणेशाय तुलसीदान निषेधकथनम् ।

नारायण उवाच ।

स्तुत्वा दुर्गां पशुं रामो हर्षविह्वलमानस । हरिणोक्तेन स्तोत्रेण प्रतुष्टाव गणेश्वरम् ॥
पूजाञ्चकार भक्त्या च नैवेद्यैर्विविधैरपि । धूपैर्दोषैश्च गन्धैश्च पुष्पैश्च तुलसीं विना ॥२॥
राम्भूज्य भ्रातर भक्त्या स राम शङ्कराङ्गया । गुरुपत्नीं गुरुं नत्वा गमनं कर्तुं मुद्यतः ॥

नारद उवाच ।

पूजा भगवतश्चक्रे रामो गणपतेर्यदा । नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैस्तुलसीञ्च विना कथम् ॥
तुलसीं सर्वपुष्पाणां मान्या धन्या मनोहरा । कथं पूजां सारभूतां न गृह्णाति गणेश्वरः

नारायण उवाच ।

शृणु नारद यक्ष्येहमितिहासं पुरातनम् ।

ब्रह्मकल्पस्य वृत्तान्तं निगूढञ्च मनोहरम् ॥६॥

एकदा तुलसी देवी प्रौढिन्ननवयौवना । तीर्थं भ्रमन्ती तपसा नारायणपरायणा ॥७॥
ददर्श गङ्गातीरे सा गणेशं यौवनान्वितम् । अतीव सुन्दरं शुद्धं सस्मितपीतवाससम् ॥
खन्दनोक्षित सर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् । ध्यायन्तं कृष्णपादाब्ज जन्ममृत्युजरापहम् ॥
जितेन्द्रियाणां प्रवरं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् । अरूपहार्यं निष्कामं सकामात्मुवाच ह
तुलस्युवाच ।

अथे किं ध्यायसे देव शान्तरूप गजानन । कथं लभ्योदरो देहो गजवक्त्रं कथं तव ॥
एकदन्तं कथं वदत्रे वदामृष्य च कारणम् । त्यज ध्यानं महाभाग सायङ्कालउपस्थित ।
इत्युक्त्वा तुलसी देवी प्रजहास पुनः पुनः । परं चेतसि क्षधा सा कामचाणैः सुदारणैः
गणेशस्य प्रधानाङ्गे द्रुवा किञ्चिज्जलं मुने । जघान तर्जन्यग्रेण निष्यन्दं कृष्णमानसम्
बभूव ध्यानभङ्गञ्च तस्य नारद चेतनम् । दुःखञ्च ध्यानभेदेन सद्विच्छेदोहि शोकदः ॥

ध्यानं त्यक्त्वा हरिं स्मृत्वा ददर्श कामिनीं पुरः ।

नवयौवनसम्पन्नां सस्मितां कामपीडिताम् ॥१६॥

लब्धोदरश्च तां दृष्ट्वा परं विनयपूर्वकम् ।

उवाच सस्मितः शान्तः शान्तां कामातुरां वशी ॥१७॥

गणेश्वर उवाच ।

का त्वं वन्दसे कस्य कस्ये मातर्मा ब्रूहि किं शुभे ।

पापदोऽशुभदः शश्वदु ध्यानमङ्गु स्तपस्विनाम् ॥१८॥

कृपाः करोतु कल्याणं हन्तु विघ्नं कृपानिधिः । मद्दुःखानमङ्गुजो दोषोनाशुभवतुने शुभे
गणेशान्नं श्रुत्वा तनुवाच स्मरातुरा । सस्मितं सकटाक्षञ्च देवं मधुर्या गिरा ॥२०

तुलस्युवाच ।

धर्मात्मजस्य कन्याऽहमप्रौढा च तपस्विनी ।

तपस्या मे स्वामिनोऽयं त्वं स्वामी भव मे प्रभो ॥ २१ ॥

तुलसी ध्वनं श्रुत्वा गणेशः श्रीहरिं स्मरन् । तानुवाच महाप्राजः प्राज्ञी मधुर्यागिरा ॥

गणेश उवाच ।

हे मातर्नामि मे वाञ्छा घोरैदारपरिदहे । दास्यहोहि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥

हरिभक्तैर्व्यवायश्च तपस्यानाशहेतुकः । भोक्षद्वारकपादञ्च भवग्रन्थनपाशकः ॥ २४ ॥

गर्भवासकरः शश्वन् तत्वज्ञाननिवृत्तनः । संशयानां समारम्भीयस्त्याज्यो वृग्भैरपि ॥

गेहोऽयं करणानाञ्च सर्वमाशकरण्डकः । साहसाना समूहश्च दौषाणाञ्च विशेषतः ॥

निवर्त्तस्व महामागे पश्यान्व्यं कामुकं पतिम् ।

कामुकैर्नैव कामुन्या सङ्गमो गुणवान् भवेन् ॥ २७ ॥

इत्येवं ध्वनं श्रुत्वा कौपातु सा शशापह । दास्यहस्तेभविता सा साध्वीतिगणेश्वरम् ॥

इत्याकर्ष्य सुग्रेष्टु स्तांशशापशिवान्मजः । देवित्वनसुरधम्ना भविष्यति न संशयः ॥

तत्पश्चान्महतां शापादुवृत्तन्वं भविनेति च । महातपस्वीत्युत्तवैव विरराम च नागद ॥

शापं श्रुत्वा तु तुलसीप्रह्लाद पुनःपुनः । तुष्टावव सुरग्रेष्टु स प्रसन्न उवाच तान् ॥३१॥

गणेश्वर उवाच ।

पुण्याणां सारभूता त्वं भविष्यसि मनोरमे । कलांशेन महामागेत्वं नारायणप्रिया ॥

प्रिया त्वं सर्वदेवना गङ्गास्यविशेषत । पूजाविमुक्तिदाननृपान्नन्याज्याच सर्वदा ॥
 इत्युक्त्वाता मुग्धश्रो जगाम तपसे पुन । हरैराराधनयग्नो षट्शीसत्रिधि ययौ ॥३४॥
 जगाम तल्लदेवा हृदयेन विदूषता । निराहारा तपश्चक्रे पुष्करे लक्षवर्षकम् ॥३५॥
 पञ्चान्मुनात् शानेन गणेशम्य च नारद । सा प्रिया शङ्खचूडस्य बभूव सुविरं मुने ॥
 तत शङ्करदूलेन समनारासुरेण्वर । सा कलाशेन वृक्षन्वं ययौ नारायणप्रिया ॥३६॥
 कथितत्रेतिहासम्ने धृतो धर्मसुखान् पुरा । मौञ्जप्रदश्च सारथ्य पुराणे न प्रकीर्तितः ॥
 पर्युरानो महाभागो जगाम तपसे घनम् । प्रणम्य शङ्करं दुर्गा सपूज्य च गणेश्वरम् ॥
 पूजितो धन्दित सर्वैमुरेन्द्रमुनिपुत्रवै । पार्वती शिवसान्निध्ये तत्रतस्थौ गणेश्वर ॥
 रदगणपते खण्ड य भृणोति सनाहिनः । स राजसूययज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥
 अपुत्रो लभते पुत्र धीगणेशप्रसादत । धीरं वीरञ्च धनिन गुणिनं चिरजीविनम् ॥
 यशस्विन पुत्रिपञ्च विद्वांस सुकवीश्वरम् । जितेन्द्रियाणा प्रवर दातारंसर्वसन्पदाम् ॥
 सुपवित्र सदाचार प्रशम्य वैष्णव लभेत् । अहिंसक दयालुञ्च तत्त्वज्ञानविशारदम् ॥
 भक्त्या गणेश सपूज्य वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । धृत्वा गणपतेः खण्डंमहागन्या प्रसूयते ॥

मृन्वत्सा काकबन्ध्या ब्रह्मन् पुत्र लभेद् धुधम् ।

अदूषितं दूषितापि शुद्धा चैव लभेत् सुतम् ॥४६॥

सपूर्णब्रह्मवैवर्तं धृत्वा यत्नमने फलम् । तन्फलं लभते मर्त्यः धृत्वेद् खण्डमुत्तमम् ॥
 चान्छाङ्कृत्वा तु मनसि भृणोति परमास्थित । तस्मैददातिसर्गेष्टं सुरश्रेष्ठोगणेश्वरः ॥
 धृत्वागणपतेः खण्ड विघ्ननाशाय यत्नत । सर्णयज्ञोपवीतञ्च श्वेतउत्राश्वमाल्यकम् ॥
 प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललङ्कुम् । परिपक्वफलान्येव देशकालोद्भवानि च ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नाटयणनारद सवादे गणपतिखण्डे

पद्मवत्वारिशतमोऽध्यायः ।

इति गणपतिखण्डं समाप्तम् ।

॥ श्रोगपेयाय नमः ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराणस्य ब्रह्म-प्रकृति-गणेशखण्डानां शुद्धिपत्रम्

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६	१६	रक्षसः परमात्मानः	वक्षसः परमात्मनः
१०	१५	सम्पुटाञ्जलिः	सङ्पुटाञ्जलिः
१३	५	जृम्भनम्	जृम्भणम्
"	६	काटि	काँटि
१६	२२	कृष्णाद्भि	कृष्णाद्भि
१६	१४	दानि	दानानि
"	२२	तपस्विनां	तपस्विनां
२०	१०	स्नेहान्	स्नेहात्
"	१२	घ्र्यं	घृयं
२२	२०	श्चक्रे	श्चक्रे
२४	७	तथौ	तन्थौ
२५	१६	सौधनः	सौधनः
२७	१३	पार्षदाः	पार्षदाः
"	१५	प्रियाणाञ्च	प्रियाणाञ्च
२८	१७	दुर्दग्	दुर्दग्
३०	१०	प्राणवहनम्	प्राणवहनम्
३२	७	गीतमाञ्जरे	गीतमाञ्जरे
३४	१२	पुषाञ्च	पुंसाञ्च

३५	११	करिष्यामि	करिष्यामि
"	२१	स्थिरस्त्वं	स्थिरस्त्वं
३७	३	कन्यायायां	कन्यायां
३८	३	शास्त्रञ्च	शास्त्रञ्च
३९	१०	सिग्ध	सिग्ध
"	१५	दुष्टासम्मोग	दुष्टासम्मोग
"	१८	अफीर्तित	अफीर्ति
४०	६	द्विजञ्च	द्विजञ्च
"	१४	प्रयतौ	प्रययौ
४१	११	बभूवस्तु	बभूवतु
४३	१६	वशिष्ट	वशिष्ट
"	२४	सर्वपिश्रं	सर्वपिश्रं पूतम्
४४	५	यावत्	यावत्
"	८	र्ववरा	र्वरा
"	२३	शिरायु	स्थिरायु
४६	६	जृम्भन	जृम्भण
४७	१८	निश्चिन्मम्	निश्चितम्
५१	२२	ब्राह्मणाना	ब्राह्मणाना
५४	१७	कृष्णवर्णा	कृष्णवर्णा
"	२५	स्तनन्धान्	स्तनन्धान्
५५	१७	सर्वापच्छन्ति	सर्वापच्छान्ति
५६	१६	ब्राह्मणस्य	ब्राह्मणस्य
५७	२	यद्	यत्
५८	८	शाश्वद्	शाश्वद्

५८	१३	प्राविशुभोः	प्रावृशुभोः
५९	७	मेवेत्	मेवेत्
७	११	चनक	चनकं
६३	३	श्रोत्रेभिः	श्रोत्रिभिः
७	९	निकृति	निश्रुति
७	१४	हरिरेति	हरिररेति
६६	२०	कलम्	कलम्
७	१७	प्रकाश	प्रकारेण
७	२०	प्रयत्न	नयत्न
६७	८	प्राप	प्राप
७	६	प्राप्य	प्राप्न
७७	२३	मत्तानुह	मत्तानुग्रह
७	२७	मूर्पिता	मूर्पिता
८०	१०	म्वनपक्ष	म्वनपक्ष
८३	११	योगिन्द्राणां	योगिन्द्राणां
७	१६	परिग्रहार्थं	परिग्रहार्थं
८४	९	साया	सायाः
७	३	वत्स	वत्स
८६	२१	पञ्चान्	पञ्चान्
८८	१३	हृत्पदमे	हृत्पदमे
७	१७	श्यानेदिष्टं	श्यानेदिष्टं
९४	१९	ब्रह्मणा	ब्रह्मान
९६	१३	गुणपदिष्टं	गुणपदिष्टं
७	१७	पत्रं	पत्रं

१०३	२	क्षत्	क्षुत्
१०४	६	परना	परमा
१०५	३	स्वरूपा	स्वरूपा
"	८	य	या
१०५	१६	पुत्रपौत्रा	पुत्रपौत्र
१०७	२३	प्यातं	व्यातं
१०८	१४	ग्राघ	ग्राम
१०९	८	पश्चात्	पश्चान्
११३	४	कृष्णे	श्रीकृष्णे
११५	१	नीर्णय	निर्णय
"	२	क्षद्	क्षुद्
११६	१३	शयामो	श्यामो
"	१७	शयानं	शयानं
१२८	८	चरिष्यमि	चरिष्यामि
१३०	३	तथौ	तस्थौ
१३१	१४	भवष्यन्ति	भविष्यन्ति
१३२	१०	कन्या	कन्य
१३३	५	वेदाज्ञा	वेदज्ञा
१३६	६	पर्यपस्थिता	पर्युपस्थिता
"	१४	स्तदूर्ध्वे	स्तदूर्ध्वे
१४०	११	पृथ्वी	पृथ्वी
"	१८	स्वरूपा	स्वरूपा
"	२१	सैव्या	शैव्या
१४२	१२	युगाद्यादि	यगाद्यादि

७	१४	दशगुणं	दशगुणं
१४३	३	शततं	सततं
१४६	१०	मन्दाकिनी	मन्दाकिनी
१४७	१०	मगीरथी	मागीरथी
७	११	पाख्यान	पाख्यान
१५०	२१	शुभद्रां	सुभद्रां
१५२	१३	स्वरूपायै	स्वरूपायै
१५३	१२	परमात्मान	परमात्मान
१५४	१७	दास्यामी	दास्यामी
१५७	१०	पद्मेर्षा	पद्मेर्षा
७	१६	परमात्मान	परमात्मान
१५८	६	वृषध्वजश्च	वृषध्वजश्च
१६१	१३	किञ्चि	किञ्चि
७	२१	न यौवनम्	नव यौवनम्
७	२५	पारायणः	परायणः
१६५	२०	शाप	शापा
१६६	७	विवर्जितः	वर्जितः
१७०	२	मुमुक्षुणा	मुमुक्षुणा
७	१६	वास्तुवञ्च	वास्तुवञ्चः
१७५	२५	तच्छ्रुत्वा	तच्छ्रुत्वा
१७७	१०	स्पर्श	स्पर्श
१७८	२५	सङ्गं	सङ्गं
१८०	२४	सुप्रीती	सुप्रीती
१८१	१५	श्रीकृष्णं	श्रीकृष्णं

१८६	१४	मन्व्यार्था	मन्व्यार्था
१८७	१५	जगद्	जगद्
,	२३	महद्भुतम्	महद्भुतम्
१९४	११	घर्त्तला	घर्त्तला
१९५	११	तिर्थानि	तीर्थानि
,	१२	त्यन्ते	व्यन्ते
,	१५	निस्तारतस्य	निस्तारस्तस्य
”	१८	धृत्या	धृत्या
१९६	४	रीश्वरस्य	रीश्वरस्य
,	७	तात्पा	तापा
१९७	२०	पवित्राणि	पवित्राणि
१९८	३	रुदन्ति	रुदन्ता
,	६	पठेताञ्च	पठेत्ताञ्च
२००	१४	सा	सदा
२०१	२	मुनी	मुनि
,	१७	माघहयेद्	माघाहयेद्
२०५	२	क्षणायु	क्षीणायु
”	११	निर्मूल	निर्मूल
२०६	४	घाञ्छन्ति	घाञ्छन्ति
,	६	कर्म	कर्म
२०६	२२	घर्षाण	घर्षाणा
२१४	१२	सग्राप्य	सग्राप्य
२१५	५	शुक्लाष्टमी	शुक्लाष्टमा
२१६	२४	यमञ्च	यमञ्च

२१७	५	वैष्णवानां	वैष्णवानां
"	६	पवित्राण	पवित्राणा
"	१०	सौभाग्य	सौभाग्या
२२०	८	सिद्धियोगीभि	सिद्धैर्यागिभि
२२१	२२	शुद्ध्य	शुद्ध
२२२	२१	भवे	भवेद्
२२३	४	लौहेण	लौहेन
"	७	भवेत्	भवेन्
"	१५	विधि	विधि
"	२२	वसेत्	वसेद्
२२४	२	गोलकुन्दं	गोलकुण्डं
२३०	१०	गृन्दावने	वृन्दावने
२३१	२४	अतुर्दश	अतुर्दश
२३३	२४	दुरिताति	दुरितानि
२३७	५	विस्तीर्णं	विस्तीर्णं
२४२	१२	जगतामपि	जगतामपि
२४३	३	तद्गुण	तद्गुण
"	२१	यद्गुण	यद्गुण
२४७	१५	गृहणी	गृहिणी
२४८	१५	दुर्घासम	दुर्घासस
"	१६	दुस्विता	दुखिता
२५०	७	विशुद्धेत	विशुध्येत
२५१	६	प्रदर्शयेत्	प्रदर्शयेत्
२५२	२	नाशायत्येव	नाशायत्येव

२५२	५	गोलोकमुत्तम्	गोलोकमुत्तमम्
२५५	१८	मुपवासना	मुपवासाना,
२५३	२	नित्येव्य	नित्येव्य
"	५	"	"
"	२०	भयङ्करम्	भयङ्करम्
२५८	३	सर्वेषां	सर्वेषां
"	५	जर्माजितं	जन्माजितं
२५९	११	कथयामास	कथयामास
"	१५	जितेन्द्रियः	जितेन्द्रियः
"	२२	दैवेन	दैवेन
२६०	१७	परमैश्वर्यं	परमैश्वर्यं
"	२५	श्रीः	श्री
२६१	५	भाग्यहीनश्च	भाग्यहीनश्च
"	६	शुद्राणां	शूद्राणां
"	१२	अधीरान्तञ्च	अधीरान्तञ्च
२६२	२	पद्मनिवासिनी	पद्मनिवासिनी
२६३	११	महालक्ष्मी	महालक्ष्मी
"	१२	षोडशः	षोडश
२६४	२२	दर्शन	दर्शनं
"	२५	विभ्रती	विभ्रती
२६५	२०	स्तनान्धानां	स्तनान्धानां
२६७	७	साम्प्रतन्	साम्प्रतम्
२६६	६	विपहीनो	विपहीनो
२७२	१६	स्वहा	स्वाहा

२७३	१३	निष्ठरं	निष्ठुरं
२७४	६	परिरुच्यते	पतिरुच्यते
२७५	६	स्थलोज्जलाम्	स्थलोज्ज्वलाम्
२७८	८	दोषीनां	देषीनां
२७९	६	घालकं	घालकं
२८०	३	तद्वारा	तद्द्वारा
”	२२	यत्श्रुतं	यच्छ्रुतं
२८३	२	नारद	नारद
”	६	फोमलाङ्गी	फोमलाङ्गी
”	२१	तम्मङ्गलम्	तन्मङ्गलम्
”	२३	नृपेन	नृपेण
२८४	१२	घैष्णघी	घैष्णघी
२८६	८	घक्त्रतः	घक्त्रतः
२८८	६	भयकपिता	भयकर्पिता
”	१८	मुदन्विता	मुदान्विता
”	१९	गर्भो	गर्भो
२८९	१४	श्रीकृष्णरणा	श्रीकृष्णचरणा
”	२०	यघ	यथा
२९१	१०	भूयः	भूयः
२९२	६	संक्रान्त्यां	संक्रान्त्यां
”	१५	गृहीत्व	गृहीत्या
”	२०	देवै	देवैः
२९६	१२	बलघती	बलघती
२९७	१५	देवा	देवी

२६६	१२	गोपै	गोपैः
३०३	५	चुष्य	चोष्य
३०६	३	एष	एषं
"	१८	तत्तद्गारे	तत्ताद्गारे
३१५	६	महाविष्ण	महाविष्णु
३१६	१३	नरमाण	नरमान
३१७	२२	साघाण	साघर्णि
३१८	३	शङ्कूर्पण	सङ्कूर्पण
"	४	व्यतिते	व्यतीते
३१९	१२	क्षद्र	क्षुद्र
३२१	२१	भनुम्	मनुम्
"	२५	मण्डितत्	मण्डितम्
३२३	२	मं	तं
३२५	१४	भूपणं	भूपणं
३३६	५	सदैश्यानां	सदैशान्यां
३३३	२०	विष्णु	विष्णु
३३६	१२	विषय	विषय
३३७	११	सत्वीत्व	सतीत्व
३३८	६	स्त्रापयामास	स्त्रापयामास
३३९	३	नपुंसक	नपुंसक
३४०	१२	शुभाशियम्	शुभाशियम्
३४२	१८	ब्रह्मणा	ब्रह्मणा
३४७	४	मूर्च्छि	मूर्च्छि
३५५	११	धर्माभ्यां	धर्माभ्यां

३५५	१२	सव	स एव
"	१५	योवनस्थाञ्च	योवनस्थाञ्च
"	१७	दधो	दधो
"	२३	मेघसात्	मेघसान्
३५६	१४	लोकाञ्च	लोकाञ्च
"	२१	पृथक्	पृथक्
३५७	१४	वन्धाति	वन्धाति
३६२	१६	चच्चिताम्	चर्चिताम्
३६३	१७	जम्म	जम्म
३६६	७	ताम्रपिष्टै	ताम्रपृष्टै
३६८	३	प्राकृति	प्रकृति
३७०	४	सिद्धानां	सिद्धानां
"	१४	मृतकवत्सा	मृतवत्सा
३७१	१०	धामिकः	धार्मिकः
३७३	१७	शृणु	शृणु
३७४	४	नारद	नारद्
"	१०	श्चित्त	श्चित्त
३७७	३	केवलम्	केवलम्
३७८	४	रस्तञ्च	रस्तञ्च
"	४	यथा	यथा
"	२२	अक्षरा	अक्षरा
३८६	४	मूर्ति	मूर्ति
"	५	वहिः	वहिः
"	१३	पुहलश्च	पुहलश्च

३८७	२२	मानाञ्च	मानञ्च
"	२५	द्वेषपि	द्वेषपि
३८६	१०	लभेन्नर	लभेन्नर
"	"	क्षद्र	क्षुद्र
"	२१	सर्वान्	सर्वान्
३६२	२२	निमित्तेन	निमित्तेन
३६३	३	पूर्ण	पूर्ण
३६४	१२	कस्यजेत्	कस्यचित्
"	२०	भूषणपितै	भूषणभूपितै
३६५	२	सिंहसने	सिंहासने
"	१२	व्रतफलं	व्रतफल
"	१४	मृना	मृदा
"	२०	निन्द्रादय	निन्द्रादय
३६७	२	ब्रह्मावाच	ब्रह्मोवाच
३६८	७	निलिप्तो	निलिप्तो
४०१	२१	पूजायिष्यसि	पूजयिष्यसि
४०२	६	व्यजनम्	व्यञ्जनम्
"	२०	ध्रुवम्	ध्रुवम्
४०३	७	प्राप्नोति	प्राप्नोति
"	१७	श्चक्ष	श्चक्षू
४०४	१८	निन्दकम्	निन्दकम्
४०५	१०	यद्	यद्
४०६	१३	देवाश्चा	देवाश्च
"	१८	सूर्यमाऽनु	सूर्यभानु

४१७	२५	विनाकस्य	विनायकस्य
४२०	८	ब्रह्मणा	ब्रह्मणा
४२१	५	विश्वाग्रश्च	विश्वासग्रश्च
४२४	११	व्योप्यञ्च	व्याप्यञ्च
"	२४	मिथ्यैव	मिथ्यैव
४२५	१०	क्षद्रा	क्षुद्रा
"	२२	वर्द्धयितं	वर्द्धयितुं
४२७	५	श्वेत्चामरम्	श्वेतचामरम्
४२८	२२	कुम्भपतकैः	कुम्भशतकैः
४३३	२	विभ्रतो	विभ्रतो
४३४	८	पटेनित्यं	पटेन्नित्यं
"	११	घ	घा
४३५	२५	तवाधना	तवाधुना
४४०	१५	लक्ष्यै	लक्ष्म्यै
"	१७	लक्ष्यै	"
"	१८	"	"
४४३	८	गृहस्थाणां	गृहस्थानां
"	२०	रुक्ष्म	रुक्ष
"	२४	मूढुधि	मूढुधिं
४४८	१०	इत्येव	इत्येवं
४४८	"	विचिघञ्च	विचिघञ्च
४४६	८	प्रात्य	प्राप्य
४५०	७	शमयायामास	शमयामास
४५१	२	राज्ञः	राज्ञो

४५१	१८	सादं	सादं
"	२१	खण्डखण्डं	खण्डंखण्डं
४५३	७	महावाहो	महावाहो
"	२१	जलबुद्बुद्	जलबुद्बुद्
"	२४	निर्वाच्यते	निवाच्यते
४५४	६	घाव्यं	घायव्यं
"	१२	शोक	शोकं
४५५	३	धतुर्दश	धतुर्दश-
"	२५	कौशर्की	कौशिकी
४५६	१०	लोभलोह	लोभमोह
४५७	१२	कुङ्कुमेन	कुङ्कुमेन
"	२२	साध्वी	साध्वी
४५८	८	तेपामूर्द्धञ्च	तेपामूर्द्धञ्च
"	६	मेदनीम्	मेदिनीम्
"	१४	विभ्रत	विभ्रत
४६०	२	त्रिलाचनी	त्रिलोचनी
"	८	विचित्रतान्	विचित्रितान्
४६२	१५	अनाथोद्दञ्च	अनाथोद्दञ्च
४६५	२६	विजयास्यास्य	विजयस्यास्य
४६७	२०	मन्त्रेषु	मन्त्रेषु
४६८	३	पाञ्चमीत्तिक	पाञ्चमीतिक
"	६	दधत	दधती
"	२३	व्याधिनाशाय	व्याधिनाशाय
४६९	१३	विश्वना	विश्वाना

४६६	२३	कामधेनुश्च	कामधेनुश्च
४७२	२०	पपं	पपं
४७५	१२	संक्षुमितं	संक्षुमितं
४७६	१०	श्याशानं	श्मशानं
"	२४	नपेश्वरम्	नृपेश्वरम्
४८३	१२	शुद्राणां	शूद्राणां
"	२३	र्वलम्	र्वलम्
४८७	१०	श्छिच्छेद	श्छिच्छेद
४८८	१६	त्रैलक्य	त्रैलोक्य
४९१	१२	पर्शरामो	पर्शरामो
"	१७	तच्छिच्छेद	तच्छिच्छेद
"	१८	श्चिचोप	श्चिक्षेप
"	१८	तच्छिच्छेद	तच्छिच्छेद
४९२	६	ब्राह्मणं	ब्राह्मणं
४९३	६	पद्मिनीं	पद्मिनीं
"	७	विवर्द्धनीम्	विवर्द्धिनीम्
४९४	८	सदायतु	सदायतु
"	२१	पातूर्द्ध	पातूर्द्ध्व
४९६	५	विनाशिन्यै	विनाशिन्यै
४९७	२०	वधाय	वधाय
५०२	७	शङ्काशौ	सङ्कासौ
५०६	२१	विमो	विमो
५०८	८	अव्ययं	अव्ययं
५१२	६	रद्रत्न	सद्रत्न